॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

(पूर्वविभाग)

॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कूर्मपुराण

[पूर्वविभाग]

पहला अध्याय

सूतजीकी उत्पत्ति, उनके रोमहर्षण नाम पड़नेका कारण, पुराणों तथा उपपुराणोंका नाम-परिगणन, समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न विष्णुमायाका वर्णन, इन्द्रद्युम्नका आख्यान और कूर्मपुराणकी महिमा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

नमस्कृत्वाप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना॥ १॥

(बदरिकाश्रममें निवास करनेवाले ऋषि) नारायण, नरोंमें उत्तम श्रीनर तथा उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वतीको नमस्कार कर जय (पुराण एवं इतिहास आदि सद्ग्रन्थों)-का पाठ करना चाहिये। कूर्मरूप धारण करनेवाले अप्रमेय भगवान् विष्णुको नमस्कार कर मैं उस पुराण (कूर्मपुराण)-को कहूँगा, जो समस्त विश्वके मूल कारण भगवान् विष्णुके द्वारा कहा गया था॥ १॥

सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषीया महर्षयः।
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छू रोमहर्षणम्॥ २॥

त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः॥ ३॥

तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत्।
द्वैपायनस्य भगवांस्ततो वै रोमहर्षणः॥ ४॥

नैमिषारण्यवासी महर्षियोंने (बारह वर्षतक चलनेवाले) सत्र (यज्ञ)-के पूर्ण हो जानेपर सर्वथा निष्पाप रोमहर्षण सूतजीसे पवित्र पुराण-संहिताके विषयमें प्रश्न किया—महाबुद्धिमान् सूतजी महाराज! आपने इतिहास और पुराणोंके ज्ञानके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें परम श्रेष्ठ भगवान् वेदव्यासजीकी भलीभाँति उपासना की है। चूँकि आपके वचनसे द्वैपायन भगवान् वेदव्यासजीके समस्त रोम हर्षित हो गये थे, इसलिये आप 'रोमहर्षण' कहलाते हैं॥ २—४॥

भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः।
मुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा॥ ५ ॥

त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते हरिः।
सम्भूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः॥ ६ ॥

तस्माद् भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद॥ ७ ॥

प्राचीन कालमें स्वयं समर्थ होते हुए भी भगवान् वेदव्यासजीने आपसे ही कहा था कि आप मुनियोंको पुराण-संहिता सुनायें। (सूतजी महाराज!) आप अपने अंशसे उत्पन्न साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीके महान् यज्ञमें सोमरस प्रस्तुत करनेके दिन पुराण-संहिताका वाचन करनेके लिये ही आपका आविर्भाव हुआ था। आप पुराणोंके अर्थको ठीक-ठीक जाननेवाले हैं। इसीलिये हम आपसे श्रेष्ठ कूर्मपुराणके विषयमें पूछ रहे हैं। आप हमें वह (कूर्मपुराण) बतलायें॥ ५—७॥

मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः।
प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम्॥ ८ ॥

मुनियोंके वचन सुनकर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीने देवी सत्यवतीके पुत्र अपने गुरु (भगवान् वेदव्यास)-को मन-ही-मन प्रणाम कर (इस प्रकार) कहा—॥ ८॥

रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्वा जगद्योनिं कूर्मरूपधरं हरिम्।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम्॥ ९ ॥

यां श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमां गतिम्।
न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात् कदाचन॥ १०॥

श्रद्दधानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये।
इमां कथामनुब्रूयात् साक्षान्नारायणेरिताम्॥ ११॥

रोमहर्षण सूतजी बोले—समस्त विश्वके मूल कारण, कूर्मरूप धारण करनेवाले भगवान् नारायण विष्णुको नमस्कार करके कूर्मपुराणकी उस दिव्य कथाको कहता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है और जिसे सुनकर महान्-से-महान् पाप करनेवाला पापी व्यक्ति भी परम गतिको प्राप्त कर लेता है। कूर्मपुराणकी इस पुण्यकथाको नास्तिक व्यक्तिको कभी भी नहीं सुनाना चाहिये। जो अत्यन्त श्रद्धालु हैं, शान्त हैं, धर्मात्मा हैं—ऐसे द्विजातियोंको साक्षात् नारायण भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी इस कूर्मपुराणकी कथाको विशेष रूपसे कहना चाहिये॥ ९—११॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ १२॥

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तर—ये पुराणोंके पाँच लक्षण हैं॥ १२॥

ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च।
शैवं भागवतं चैव भविष्यं नारदीयकम्॥ १३॥
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च।
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥ १४॥
कौर्मं मात्स्यं गारुडं च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्॥ १५॥

अठारह महापुराणोंमें प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण है, द्वितीय पद्मपुराण है। इसी प्रकार क्रमशः विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य और गरुडपुराण हैं। भगवान् वायुके द्वारा कहा गया अठारहवाँ पुराण ब्रह्माण्डपुराणके नामसे कहा जाता है॥ १३—१५॥

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः॥ १६॥

(सूतजीने पुनः कहा—) ब्राह्मणो! अठारह पुराणोंका नाम सुनकर (अब आप लोग) मुनियोंद्वारा कहे गये अन्य उपपुराणोंका नाम भी संक्षेपमें सुनें—॥ १६॥

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्॥ १७॥

(इन उपपुराणोंमें) पहला उपपुराण सनत्कुमारके द्वारा कहा गया सनत्कुमार उपपुराण है। तदनन्तर दूसरा नरसिंहपुराण है। स्कन्दकुमारके द्वारा कथित तीसरा पुराण स्कन्दपुराण कहा गया है॥ १७॥

चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्॥ १८॥

कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च॥ १९॥

माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम्।
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम्॥ २०॥

चौथे पुराणका नाम शिवधर्म है जो साक्षात् भगवान् नन्दीश्वर (शिव)-के द्वारा कहा गया है। महर्षि दुर्वासाके द्वारा कहा गया आश्चर्यपुराण पाँचवाँ है और छठा पुराण देवर्षि नारदके द्वारा कहा गया नारदपुराण है। इसी प्रकार (सातवाँ) कपिल, (आठवाँ) मानव और शुक्राचार्यद्वारा प्रोक्त उशना नामक (नवाँ) पुराण है। (दसवाँ) ब्रह्माण्ड, (ग्यारहवाँ) वरुण तथा (बारहवाँ पुराण) कालिकापुराणके नामसे कहा गया है। (तेरहवाँ) माहेश्वरपुराण, (चौदहवाँ) साम्बपुराण तथा सभी प्रकारके अर्थोंसे युक्त (पंद्रहवाँ) सौरपुराण है। (सोलहवाँ) पराशरपुराण महर्षि पराशरके द्वारा कहा गया है। (सत्रहवाँ) मारीचपुराण है और (अठारहवाँ पुराण) भार्गवपुराणके नामसे कहा गया है॥ १८—२०॥

इदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥ २१॥

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः।
चतस्त्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः॥ २२॥

यह कूर्मपुराण पंद्रहवाँ महापुराण है, जो पुराणोंमें श्रेष्ठ है। संहिताओंके भेदसे यह पवित्र पुराण चार भागों (चार संहिताओं)-में विभक्त है। ब्राह्मी, भागवती, सौरी तथा वैष्णवी नामक इस कूर्मपुराणकी चार पवित्र संहिताएँ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस प्रकार चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाली कही गयी हैं॥ २१-२२॥

इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता।
भवन्ति षट्सहस्त्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥ २३॥

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः।
माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः॥ २४॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं दिव्याः पुण्याः प्रासंगिकीः कथाः॥ २५॥

ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैः शान्तमानसैः।
तामहं वर्तयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा॥ २६॥

यह ब्राह्मी संहिता है, जो चारों वेदोंद्वारा अनुमोदित है। इसकी श्लोक-संख्या छः हजार है। हे मुनीश्वरो! इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अशेष माहात्म्य वर्णित है और (इसके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पठन-पाठन एवं श्रवण आदिसे) परमेश्वर ब्रह्मका ज्ञान होता है। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित और दिव्य एवं पुण्य प्रासंगिक कथाएँ भी कही गयी हैं। यह पुराणसंहिता शान्त-चित्त एवं धर्मात्मा ब्राह्मणादिकोंके द्वारा धारण करने योग्य है। (सूतजी कहते हैं—) मैं उसी पुराणसंहिताका प्रवचन करूँगा, जिसे प्राचीन समयमें वेदव्यासजीने कहा था॥ २३—२६॥

पुरामृतार्थं दैतेयदानवैः सह देवताः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम्॥ २७॥

मथ्यमाने तदा तस्मिन् कूर्मरूपी जनार्दनः।
बभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया॥ २८॥

प्राचीन कालमें अमृतकी प्राप्तिके लिये देवताओंने दितिके पुत्र दैत्यों और दानवोंके साथ मन्दर नामक पर्वतको मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथा। उस क्षीरसागरके मन्थन किये जाते समय देवताओंके कल्याणकी कामनासे जनार्दन भगवान् विष्णुने कूर्मरूप धारण करके उस मन्दराचलको ऊपर उठाये रखा॥ २७-२८॥

देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः।
कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम्॥ २९॥

कूर्म (कच्छप)-रूप धारण किये हुए सर्वद्रष्टा अविनाशी भगवान् विष्णुको देखकर देवताओं तथा नारदादि महर्षियोंने उन देवकी स्तुति की॥ २९॥

तदन्तरेऽभवद् देवी श्रीर्नारायणवल्लभा।
जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः॥ ३०॥

तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः।
मोहिताः सह शक्रेण श्रियो वचनमब्रुवन्॥ ३१॥

उसी समय नारायण भगवान् विष्णुकी प्रिया देवी श्रीलक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। उन्हें पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने ही ग्रहण किया। लक्ष्मीके तेजसे मोहित हुए इन्द्रसहित नारद आदि महर्षियोंने अव्यक्त भगवान् विष्णुसे यह वचन कहा— ॥ ३०-३१॥

भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय।
कैषा देवी विशालाक्षी यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥ ३२॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे नारायण! हे जगन्मय! हम पूछनेवालोंको आप ठीक-ठीक बतलायें कि विशाल नेत्रोंवाली यह देवी कौन है?॥ ३२॥

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्दनः।
प्रोवाच देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादीनकल्मषान्॥ ३३॥

उस समय उन देवताओं तथा महर्षियोंका वह वाक्य सुनकर दानवोंका मर्दन करनेवाले भगवान् विष्णु देवी लक्ष्मीकी ओर देखकर नारद आदि परम पवित्र महर्षियोंसे बोले— ॥ ३३॥

इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी।
माया मम प्रियानन्ता ययेदं मोहितं जगत्॥ ३४॥

अनयैव जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च॥ ३५॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
विज्ञायान्वीक्ष्य चात्मानं तरन्ति विपुलामिमाम्॥ ३६॥

अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजाः।
ब्रह्मेशानादयो देवाः सर्वशक्तिरियं मम॥ ३७॥

यह मेरी स्वरूपभूता ब्रह्मरूपिणी परम शक्ति है, यही माया है, यही अनन्ता है और यही मेरी वह प्रिया है जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को मोहित कर रखा है। हे श्रेष्ठ द्विजो! इसीके द्वारा मैं देवताओं, असुरों एवं मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको मोहित करता हूँ, संहार करता हूँ और पुनः सृष्टि करता हूँ। (ज्ञानीजन जगत्की) उत्पत्ति एवं प्रलयको तथा प्राणियोंके जन्म एवं मोक्षको ठीक-ठीक समझकर और आत्मतत्त्वका दर्शनकर इस महा-मायाके बन्धनसे पार उतरते हैं। द्विजो! मेरी सब प्रकारकी शक्ति यही है, इसीके अंशोंका आश्रय ग्रहणकर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता शक्तिमान् हुए हैं॥ ३४—३७॥

सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रागेव मत्तः संजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी॥ ३८॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता शुभान्विता।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ ३९॥

नालं देवा न पितरो मानवा वसवोऽपि च।
मायामेतां समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिनः॥ ४०॥

यही वह सत्त्व-रज तथा तम—तीनों गुणोंसे युक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति है और यही सारे संसारको उत्पन्न करनेवाली है। प्राचीन कालमें श्रीकल्पमें यह पद्मवासिनीके रूपमें मुझसे ही आविर्भूत हुई थी। ये चार भुजावाली हैं, ये हाथोंमें शंख, चक्र तथा कमल धारण किये रहती हैं, सभी मङ्गलमय गुणोंसे युक्त हैं, करोड़ों सूर्योंके समान इनकी आभा है, ये सभी प्राणियोंको मोहित करनेवाली हैं। देवता, पितर, मनुष्य, वसुगण तथा पृथ्वीपर रहनेवाले जितने भी अन्य देहधारी प्राणी हैं, वे सभी अर्थात् कोई भी ऐसा नहीं है जो इस मायाको पार करनेमें समर्थ हो॥ ३८—४०॥

इत्युक्ता वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन्।
ब्रूहि त्वं पुण्डरीकाक्ष यदि कालत्रयेऽपि च।
को वा तरति तां मायां दुर्जयां देवनिर्मिताम्॥ ४१॥

भगवान् वासुदेवके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मुनियोंने भगवान् विष्णुसे कहा—हे पुण्डरीकाक्ष! उस देवनिर्मित दुर्जय मायाको पार करनेवाला तीनों कालोंमें यदि कोई हुआ हो तो उसे आप बतलायें॥ ४१॥

अथोवाच हृषीकेशो मुनीन् मुनिगणार्चितः।
अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः॥ ४२॥

पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शंकरादिभिः।
दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम्।
संहितां मन्मुखाद् दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्॥ ४३॥

ब्रह्माणं च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः।
मच्छक्तौ संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः॥ ४४॥

तदनन्तर मुनियोंद्वारा पूजित भगवान् हृषीकेशने उन मुनियोंसे कहा—इन्द्रद्युम्न नामका द्विजातियोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण था, ऐसा सुना गया है। पूर्वजन्ममें वह शंकर आदि देवताओंसे भी अजेय राजा था। 'मैंने कूर्म-अवतार धारण किया है' यह जानकर तथा स्वयं मेरे मुखसे दिव्य पुराण-संहिताको सुनकर वह (राजा इन्द्रद्युम्न) मुनीश्वरोंसहित ब्रह्मा, शिव एवं अपनी-अपनी शक्तियोंके साथ अन्य सभी देवताओंको मेरी ही शक्तिमें प्रतिष्ठित समझकर मुझे देखनेके लिये मेरी शरणमें आया॥ ४२—४४॥

सम्भाषितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यसि।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जातिं स्मरसि पौर्विकीम्॥ ४५॥

सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम्।
वक्तव्यं यद् गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ।
लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि॥ ४६॥

अंशान्तरेण भूम्यां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृतः।
वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि॥ ४७॥

इसके बाद मैंने कहा—(इन्द्रद्युम्न!) तुम ब्राह्मणकी योनिमें उत्पन्न होओगे, तुम्हारा 'इन्द्रद्युम्न' यह नाम प्रसिद्ध होगा और तुम अपने पूर्वजन्मका स्मरण करोगे। हे अनघ! मैं तुम्हें सभी प्राणियों तथा देवताओंके लिये भी अज्ञात एवं जो अत्यन्त गूढ़रूपसे कहने योग्य है, उस ज्ञानको प्रदान करूँगा। उस मेरे ज्ञानको प्राप्तकर तुम अन्त समयमें मुझमें ही प्रविष्ट हो जाओगे और अपने ही अंशसे दूसरे रूपमें तुम पृथ्वीपर शान्तिपूर्वक रहो। वैवस्वत मन्वन्तरके व्यतीत हो जानेपर तुम (अभीष्ट) कार्यके लिये मुझमें ही प्रविष्ट हो जाओगे॥ ४५—४७॥

मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम्।
कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह॥ ४८॥

भुक्त्वा तान् वैष्णवान् भोगान् योगिनामप्यगोचरान्।
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुनः॥ ४९॥

(भगवान्ने पुनः कहा—) मुनिश्रेष्ठो! मुझे प्रणामकर वह राजा अपनी नगरीमें गया और पृथ्वीका पालन-पोषण करने लगा। यथासमय मृत्यु होनेपर वह मेरे स्थान—श्वेतद्वीपको प्राप्त हुआ और वहाँ मेरे साथ योगियोंके लिये भी अलभ्य दिव्य वैष्णव भोगोंको भोगकर पुनः मेरी ही आज्ञासे ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ॥ ४८-४९॥

ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र द्वे निहितेऽक्षरे।
विद्याविद्ये गूढरूपे यत्तद् ब्रह्म परं विदुः॥ ५०॥

सोऽर्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम्।
व्रतोपवासनियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः॥ ५१॥

जिसमें अविनश्वर गूढ़ स्वरूपवाली विद्या एवं अविद्या—ये दोनों प्रतिष्ठित हैं तथा जिसे ज्ञानीजन परब्रह्मके नामसे जानते हैं, उस वासुदेव नामवाले मुझे जानकर इन्द्रद्युम्नने व्रत, उपवास, नियम, होम तथा ब्राह्मणोंकी संतुष्टि आदि उपायोंद्वारा सभी प्राणियोंके एकमात्र आश्रय परमेश्वरकी आराधना की॥ ५०-५१॥

तदाशीस्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
आराधयन् महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम्॥ ५२ ॥

तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित् परमा कला।
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम्॥ ५३ ॥

दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा विष्णोर्भगवतः प्रियाम्।
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताञ्जलिरभाषत॥ ५४ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे।
याथातथ्येन वै भावं तवेदानीं ब्रवीहि मे॥ ५५ ॥

तस्य तद् वाक्यमाकर्ण्य सुप्रसन्ना सुमङ्गला।
हसन्ती संस्मरन् विष्णुं प्रियं ब्राह्मणमब्रवीत्॥ ५६ ॥

न मां पश्यन्ति मुनयो देवाः शक्रपुरोगमाः।
नारायणात्मिका चैका मायाहं तन्मया परा॥ ५७ ॥

न मे नारायणाद् भेदो विद्यते हि विचारतः।
तन्मयाहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः॥ ५८ ॥

येऽर्चयन्तीह भूतानामाश्रयं परमेश्वरम्।
ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम्॥ ५९ ॥

तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायणः।
ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ६० ॥

इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामतिः।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥ ६१ ॥

कथं स भगवानीशः शाश्वतो निष्कलोऽच्युतः।
ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रूहि मे परमेश्वरि॥ ६२ ॥

एवमुक्ताथ विप्रेण देवी कमलवासिनी।
साक्षान्नारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम्॥ ६३ ॥

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम्।
स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत॥ ६४ ॥

वह उन्हींकी मङ्गलकामना करते हुए उन्हींको नमस्कार करता था, उनमें ही उसकी अनन्य निष्ठा थी तथा वह उन्हींके आश्रित होकर योगियोंके हृदयप्रदेशमें विराजमान रहनेवाले महादेवकी आराधना करने लगा। उसके इसी प्रकार आराधना करते हुए एक दिन वैष्णवी शक्तिने भगवान् विष्णुसे प्रादुर्भूत दिव्य स्वरूप उसे दिखलाया। भगवान् विष्णुकी प्रिया देवी विष्णुप्रियाका दर्शनकर उसने सिर झुकाकर विनीतभावसे उन्हें प्रणाम किया और विविध स्तुतियोंके द्वारा उनकी स्तुतिकर हाथ जोड़कर कहा— ॥ ५२—५४ ॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—वैष्णव चिह्नोंवाली, मङ्गलमयी तथा विशाल नेत्रोंवाली हे देवि! आप कौन हैं? आपका जो यथार्थ स्वरूप हो उसे इस समय मुझे बतलायें॥ ५५ ॥

इन्द्रद्युम्नके वचन सुनकर अत्यन्त सुप्रसन्ना सुमङ्गला वह देवी विष्णुका स्मरणकर उस प्रिय ब्राह्मणसे हँसती हुई बोली— ॥ ५६ ॥

मैं उन विष्णुकी प्रकृतिस्वरूपा परा माया हूँ। मुझ अद्वितीय नारायणस्वरूपा नारायणीको मुनि तथा इन्द्र आदि देवता भी नहीं देख पाते हैं। सूक्ष्म विचार करनेपर मुझमें और नारायणमें कोई भेद नहीं दीखता। मैं उनकी प्रकृतिरूपा हूँ, वे विष्णु परब्रह्म हैं, परमेश्वर हैं। समस्त भूत (प्राणियों)-के आश्रयभूत उन परमेश्वरकी जो ज्ञानयोग अथवा कर्मयोगद्वारा यहाँ आराधना करते हैं ऐसे भक्तोंपर मेरा कोई वश नहीं चलता। अतः तुम कर्मयोगका आश्रय लेते हुए ज्ञानके द्वारा उन आदि और अन्तसे रहित अनन्त भगवान् विष्णुकी आराधना करो। इससे तुम मोक्ष प्राप्त करोगे॥ ५७—६० ॥

ऐसा कहे जानेपर अत्यन्त बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ उस इन्द्रद्युम्नने देवीको विनयपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर पुनः कहा—हे परमेश्वरी देवि! शाश्वत, अखण्ड तथा अच्युत सबके स्वामी उन भगवान्‌को किस प्रकार जाना जा सकता है, यह मुझे बतलायें॥ ६१-६२ ॥

ब्राह्मण (इन्द्रद्युम्न)-के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर कमलमें निवास करनेवाली देवीने उस मुनिसे कहा—'साक्षात् नारायण ही तुम्हें (वह) ज्ञान प्रदान करेंगे। तदनन्तर प्रणाम कर रहे उस मुनि (इन्द्रद्युम्न)-को अपने दोनों हाथोंसे भली-भाँति स्पर्श कर (वे देवी) परात्पर विष्णुका स्मरण करती हुई वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ६३-६४ ॥

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना।
आराधयद्धृषीकेशं प्रणतार्तिप्रभञ्जनम्॥ ६५॥

ततो बहुतिथे काले गते नारायणः स्वयम्।
प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मयः॥ ६६॥

दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम्॥ ६७॥

इन्द्रद्युम्न भी शरणागतके दुःखोंको सर्वथा दूर कर देनेवाले हृषीकेश भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये दीर्घकालीन समाधिमें निरत होकर आराधना करने लगा। तत्पश्चात् बहुत समय बीत जानेपर पीताम्बरधारी, जगन्मूर्ति महायोगी भगवान् नारायण उसके सामने स्वयं प्रकट हो गये। अविनाशी परमात्मा भगवान् विष्णुको आया हुआ देखकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर स्थित होकर वह गरुडध्वजदेवकी स्तुति करने लगा॥ ६५—६७॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नमः॥ ६८॥

नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्तये।
सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये॥ ६९॥

निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलायामलात्मने।
पुरुषाय नमस्तुभ्यं विश्वरूपाय ते नमः॥ ७०॥

नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥ ७१॥

नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः।
भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे॥ ७२॥

नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने।
अनन्तमूर्तये तुभ्यममूर्ताय नमो नमः॥ ७३॥

नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः।
नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने॥ ७४॥

नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः।
नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने॥ ७५॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—हे यज्ञोंके स्वामी! अच्युत! गोविन्द! माधव! अनन्त! केशव! कृष्ण! विष्णु! तथा हृषीकेश! आप विश्वात्माको नमस्कार है। पुराण-पुरुष! विश्वमूर्ति हे हरि! आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके मूल कारण हैं, आप अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। आप निर्गुण-स्वरूप हैं, निष्कल एवं विमलात्मा हैं, आपको नमस्कार है। हे विश्वरूप पुरुष! आपको नमस्कार है। विश्वकी योनि, वासुदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित ज्ञानद्वारा जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। निर्विकार तथा प्रपञ्चरहित आपको नमस्कार है। भेद-अभेदसे रहित आनन्द-स्वरूप आपको नमस्कार है। (संसारसागरसे) पार उतारनेवाले, शान्तस्वरूप आपको नमस्कार है। शुद्धात्मा आपको नमस्कार है। आप अनन्तमूर्तिवाले हैं, अमूर्त हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आप परमार्थरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप मायासे अतीत हैं, आपको नमस्कार है। ईशोंके भी ईश! आपको नमस्कार है। परमात्मा परब्रह्मरूप आपको नमस्कार है। अत्यन्त सूक्ष्म-रूप आपको नमस्कार है। देवोंके भी देव महादेव! आपको नमस्कार है। विशुद्धस्वरूप शिव! आपको नमस्कार है। परमेष्ठीस्वरूप आपको नमस्कार है॥ ६८—७५॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः।
त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम॥ ७६॥

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योम निष्कलम्।
सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम्॥ ७७॥

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम्।
प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ७८॥

आपने ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना की है। आप ही परम गति हैं। हे पुरुषोत्तम! आप ही सभी भूत-प्राणियोंके पिता हैं और आप ही सबकी माता हैं। आप अविनाशी हैं, परम धाम हैं, चित्स्वरूप हैं, व्योम हैं, निष्कल हैं, सबके आधार हैं, अव्यक्त हैं, अनन्त हैं और तमसे सर्वथा रहित नित्य प्रकाशस्वरूप हैं। (ज्ञानीजन) केवल ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा जिस परमात्माका दर्शन करते हैं, मैं आपके उस रूपकी शरण ग्रहण करता हूँ, वह विष्णुका परमपद है॥ ७६—७८॥

स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः।
शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ८२॥

यत्तद्बलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे।
सा भक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशं ते गमिष्यति॥ ८३॥

मायासे अत्यन्त मोहित उस तपस्वी प्रह्लादके द्वारा अपमानित होकर क्रोधसे रक्तनेत्रवाले उस तपस्वी ब्राह्मणने असुरराज (प्रह्लाद)-को शाप दे डाला—जिस बलका आश्रय ग्रहणकर तुम ब्राह्मणोंकी अवमानना कर रहे हो, तुम्हारी वह दिव्य वैष्णवी भक्ति विनष्ट हो जायगी॥ ८२-८३॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद् द्विजः।
मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात् ततः॥ ८४॥

बाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम्।
पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति॥ ८५॥

तयोः समभवद् युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः॥ ८६॥

कृत्वा तु सुमहद् युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात् परस्मिन् पुरुषे हरौ।
संजातं तस्य विज्ञानं शरण्यं शरणं ययौ॥ ८७॥

ततः प्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन्।
नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे॥ ८८॥

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण प्रह्लादके घरसे शीघ्र ही निकल पड़ा और प्रह्लाद भी शापके प्रभावसे राज्य-संचालनमें लगे रहनेपर भी मोहग्रस्त हो गया। वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको पीड़ित करने लगा और जनार्दनको भूल-सा गया। पिता (हिरण्यकशिपु)-के वधका स्मरणकर वह हरि (विष्णु)-पर क्रुद्ध हो गया। तब उन दोनों सुरद्रोही प्रह्लाद और नारायणदेवमें अत्यन्त घोर रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। बड़ा भारी युद्ध करनेके बाद विष्णुने उसे जीत लिया। पहलेके संस्कारके माहात्म्यसे उसे परमपुरुष हरिका वास्तविक ज्ञान उद्बुद्ध हो गया और वह उनकी शरणमें गया। तबसे नारायण पुरुषोत्तममें अनन्य भक्ति रखते हुए उस दैत्येन्द्र प्रह्लादको महायोगकी प्राप्ति हुई॥ ८४—८८॥

हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि।
अवाप तन्महद् राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः॥ ८९॥

हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः।
मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम्॥ ९०॥

हिरण्यकशिपुके पुत्र (प्रह्लाद)-का चित्त योगमें आसक्त हो जानेपर शम्भुके देहसे[1] उत्पन्न हिरण्याक्षके पुत्र असुर श्रेष्ठ अन्धकने उस विशाल राज्यको प्राप्त किया तथा मन्दर पर्वतपर अवस्थित पर्वत (हिमालय)-की पुत्री उमा देवीको प्राप्त करनेकी इच्छा की॥ ८९-९०॥

पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः।
ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः॥ ९१॥

ततः कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा।
अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद् भूतविनाशिनी॥ ९२॥

समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम्।
अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम्॥ ९३॥

स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः।
सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा॥ ९४॥

प्राचीन कालकी बात है, हजारों गृहस्थ मुनि पुण्यदायी दारुवनमें ईश्वरकी आराधना करनेके लिये तप करते थे। तदनन्तर कालयोगसे किसी समय प्राणियोंका विनाश करनेवाली अत्यन्त उग्र तथा भयंकर अनावृष्टि हुई। भूखसे व्याकुल सभी मुनियोंने साथ मिलकर तपोनिधि गौतमसे प्राण धारणके निमित्त भोजनकी याचना की। बुद्धिमान् उन गौतमने उन सभीको अत्यधिक स्वादुयुक्त अन्न प्रदान किया। उन सभी ब्राह्मणोंने निःशंक-मनसे भोजन किया॥ ९१—९४॥

गते तु द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शंकरी।
बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत्॥ ९५॥

बारह वर्ष व्यतीत हो जानेपर कल्पान्तमें होनेवाली कल्याणकारिणी वृष्टिके सदृश महान् वृष्टि हुई। संसार (पुनः) पहलेके समान हो गया॥ ९५॥

१-शम्भुकी आराधनासे ही हिरण्याक्षको अन्धक (पुत्र)-की प्राप्ति हुई थी।

आसामन्यतमां चाथ भावनां भावयेद् बुधः।
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥ ८९॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः।
समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ९०॥

जो असमर्थ व्यक्ति है उसे चाहिये कि वह प्रथम भावना अर्थात् वैष्णवी भावनाका अवलम्बन ग्रहण करे—ऐसा वेदका मत है। इसलिये (इन्द्रद्युम्न! तुम) समस्त प्रयत्नोंके द्वारा सम्पूर्ण संसारके स्वामी भगवान् विष्णुकी आराधना करो, उनमें ही निष्ठा रखो और उन्हींका आश्रय ग्रहण कर उन्हींके शरणागत हो जाओ, इससे तुम मोक्ष प्राप्त करोगे॥ ८९-९०॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं तत् परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्दन।
किं कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव॥ ९१॥

इन्द्रद्युम्न बोले—हे जनार्दन! वह परात्पर तत्त्व क्या है, विभूति क्या है? कार्य क्या है और कारण क्या है? आप कौन हैं? और आपकी प्रवृत्ति क्या है?॥ ९१॥

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम्।
नित्यानन्दं स्वयंज्योतिरक्षरं तमसः परम्॥ ९२॥

ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते।
कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम्॥ ९३॥

अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः।
सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते॥ ९४॥

एतद् विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज।
ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्चय॥ ९५॥

श्रीभगवान् बोले—वह परसे परतर तत्त्व एकमात्र अखण्ड परम ब्रह्म ही है। वह नित्य आनन्दस्वरूप है, स्वयं प्रकाशमान है, अविनाशी है और तम (अन्धकार)-से सर्वथा परे है। उस परमात्माका जो नित्य रहनेवाला ऐश्वर्य है, वही विभूति नामसे कहा जाता है। यह संसार ही (परमात्माका) कार्यरूप है और अविनाशी विशुद्ध अव्यक्त तत्त्व ही (इस संसारका) कारणरूप है। मैं ही समस्त प्राणियोंमें रहनेवाला अन्तर्यामी ईश्वर हूँ। सृष्टि, पालन और संहार ही मेरी प्रवृत्ति कही जाती है। हे द्विज! इन सभी बातोंको यथार्थरूपसे जानकर तुम कर्मयोगके द्वारा श्रद्धाभावसे (उस) सनातन (ईश्वर)-की भलीभाँति अर्चना करो॥ ९२—९५॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः।
ज्ञानं च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम्॥ ९६॥

कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः।
कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च।
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च॥ ९७॥

तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरे।
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः।
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष यथावदधुनाखिलम्॥ ९८॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—(भगवन्!) वर्णों तथा आश्रमोंके वे कौनसे पालनीय नियम हैं, जिनसे (उस) परतत्त्वकी आराधना की जाती है और वह दिव्य ज्ञान कैसा है जो तीन भावनाओंसे युक्त है? (परमात्माने) पूर्वकालमें इस (संसार)-की सृष्टि कैसे की और फिर कैसे इसका संहार होता है, लोकमें कितनी सृष्टियाँ हैं, कितने वंश हैं, कितने मन्वन्तर हैं। उनके कितने प्रमाण हैं और पवित्र व्रत तथा तीर्थ कौन-से हैं। सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति कैसी है, पृथ्वीकी लंबाई-चौड़ाई कितनी है, कितने द्वीप, समुद्र, पर्वत हैं और कितने नद हैं और कितनी नदियाँ हैं, हे पुण्डरीकाक्ष! इस समय यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये॥ ९६—९८॥

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया।
यथावदखिलं सर्वमवोचं मुनिपुंगवाः॥ ९९॥

श्रीकूर्मने कहा—हे श्रेष्ठ मुनियो! उस इन्द्रद्युम्नके द्वारा मुझसे इस प्रकार कहे जानेपर भक्तोंपर अनुकम्पा करनेकी कामनासे मैंने वे सभी बातें विस्तारसे ठीक-ठीक उसे बतला दीं॥ ९९॥

व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु।
अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम्॥ १००॥

सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमः।
आराधयामास परं भावपूतः समाहितः॥ १०१॥

त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
संन्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः॥ १०२॥

आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत्।
सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम्॥ १०३॥

अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति।
यं विनिद्रा जितश्वासाः कांक्षन्ते मोक्षकांक्षिणः॥ १०४॥

ततः कदाचिद् योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम्।
जगामादित्यनिर्देशान्मानसोत्तरपर्वतम्।
आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावतः॥ १०५॥

विमानं सूर्यसंकाशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम्।
अन्वगच्छन् देवगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
दृष्ट्वान्ये पथि योगीन्द्रं सिद्धा ब्रह्मर्षयो ययुः॥ १०६॥

ततः स गत्वा तु गिरिं विवेश सुरवन्दितम्।
स्थानं तद् योगिभिर्जुष्टं यत्रास्ते परमः पुमान्॥ १०७॥

सम्प्राप्य परमं स्थानं सूर्यायुतसमप्रभम्।
विवेश चान्तर्भवनं देवानां च दुरासदम्॥ १०८॥
विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्वदेहिनाम्।
अनादिनिधनं देवं देवदेवं पितामहम्॥ १०९॥

ततः प्रादुरभूत् तस्मिन् प्रकाशः परमात्मनः।
तन्मध्ये पुरुषं पूर्वमपश्यत् परमं पदम्॥ ११०॥

इस प्रकार उस ब्राह्मण इन्द्रद्युम्नने जो-जो भी मुझसे पूछा था, वह सब विस्तारसे बतलाकर और उसपर कृपा करके मैं वहीं अन्तर्धान हो गया॥ १००॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने भी मेरे द्वारा बताये गये विधानसे अत्यन्त पवित्र भावनासे समाहित-चित्त होकर परम तत्त्वकी उपासना की। उसने अपने स्त्री-पुत्र आदिका मोह छोड़ दिया, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो गया, किसी भी वस्तुका संग्रह करना सर्वथा त्याग कर अपरिग्रही हो गया और सभी कर्मोंका परित्याग कर उसने परम वैराग्यका आश्रय ग्रहण किया। अपनी आत्मामें ही परमात्माका दर्शन करके और अपनी आत्मामें ही सम्पूर्ण विश्वका अनुभव कर अक्षर-तत्त्व-सम्बन्धी अन्तिम ब्राह्मी भावनाको प्राप्त किया, जिसके कारण उसे उस दुर्लभ परम योगकी प्राप्ति हुई। इस योगसे ही उस अद्वितीय तत्त्वका साक्षात्कार होता है जिसकी अभिलाषा निद्रात्यागी, श्वासजयी, मोक्षार्थी पुरुष भी करते हैं॥ १०१—१०४॥

इसके बाद किसी दिन वह ब्राह्मणश्रेष्ठ योगीन्द्र इन्द्रद्युम्न भगवान् सूर्यके निर्देशसे अव्यय ब्रह्मका दर्शन करनेके लिये अपनी योग-सिद्धिके प्रभावसे प्रादुर्भूत सूर्यके समान प्रकाशमान श्रेष्ठ विमानमें चढ़कर आकाशमार्गसे मानसरोवरके उत्तरमें स्थित पर्वतपर गया। उस योगिराज इन्द्रद्युम्नको आकाशमार्गमें जाते हुए देखकर देवों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका समूह भी उसके पीछे-पीछे गया और अन्य सिद्ध तथा ब्रह्मर्षियोंने भी उसका अनुसरण किया॥ १०५-१०६॥

तदनन्तर वहाँ जाकर इन्द्रद्युम्नने देवताओंद्वारा वन्दित तथा योगियोंद्वारा सेवित पर्वतके उस स्थानपर प्रवेश किया, जहाँ परम पुरुष परमात्मा प्रतिष्ठित रहते हैं। दस हजार सूर्योंके प्रकाशके समान प्रकाशित उस श्रेष्ठ स्थानपर पहुँचकर (इन्द्रद्युम्नने) देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य (उस स्थानके) अन्तर्गृहमें प्रवेश किया॥ १०७-१०८॥

(वहाँ पहुँचकर उसने) सभी प्राणियोंके परम शरणदाता, आदि-अन्तसे रहित, देवाधिदेव पितामह ब्रह्मदेवका ध्यान किया। इसके बाद उसके ध्यान करते ही वहाँ परमात्माका प्रकाश प्रादुर्भूत हुआ। इन्द्रद्युम्नने

महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्।
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिभिरुपशोभितम् ॥ १११ ॥

सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य प्रणमन्तमुपस्थितम्।
प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे॥ ११२ ॥

परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहतः।
निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम्।
ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत् पवित्रममलं पदम्॥ ११३ ॥

हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक्।
द्वारं तद् योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम्।
ब्रह्मतेजोमयं श्रीमन्निष्ठा चैव मनीषिणाम्॥ ११४ ॥

उस प्रकाशपुञ्जके मध्यमें महान् तेजकी राशिके रूपमें ब्रह्मविद्वेषियोंके लिये अगम्य, परमपदस्वरूप पूर्व पुरुषका दर्शन किया, जो चार मुखवाले थे, जिनके सभी अङ्ग शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे और प्रकाशकी किरणोंसे सुशोभित थे॥ १०९—१११ ॥

समीपमें आये प्रणाम करते हुए योगी इन्द्रद्युम्नको देखकर वह विश्वात्मा ब्रह्मदेव स्वयं भी उसके समीपमें गये और उसको अपने हृदयसे लगाया। ब्रह्मदेवके द्वारा आलिङ्गन करते ही उस ब्राह्मणश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नके शरीरसे एक महान् प्रकाश निकला, जो आदित्य-मण्डलमें प्रविष्ट हो गया। वह पवित्र निर्मल पद (आदित्य-मण्डल) ऋक्-यजुः एवं साम नामवाला है। जिस स्थानमें हव्य (देवताओंको प्राप्त होनेवाला हवनीय द्रव्य) तथा कव्य (पितरोंको प्राप्त कराया जानेवाला श्राद्धीय पदार्थ)-का उपभोग करनेवाले भगवान् हिरण्यगर्भ निवास करते हैं। वह (स्थान) वेदान्तमें प्रतिपादित योगी जनोंका आद्य प्रवेश-द्वार है, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न है, श्रीयुक्त है और वह मनीषियोंकी निष्ठा भी है॥ ११२—११४ ॥

दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्मयो मुनिः।
अपश्यदैश्वरं तेजः शान्तं सर्वत्रगं शिवम्॥ ११५ ॥

स्वात्मानमक्षरं व्योम तद् विष्णोः परमं पदम्।
आनन्दमचलं ब्रह्म स्थानं तत्पारमेश्वरम्॥ ११६ ॥

सर्वभूतात्मभूतः स परमैश्वर्यमास्थितः।
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥ ११७ ॥

भगवान् ब्रह्माके देखते ही देखते वह मुनि इन्द्रद्युम्न तेजसे सम्पन्न हो गया और उसने सर्वत्र व्याप्त, परम कल्याणकारी, अत्यन्त शान्त स्वात्मस्वरूप, अक्षर, व्योम उस परमेश्वर-सम्बन्धी तेजको देखा। वह विष्णुका परम पद है। केवल आनन्दरूप, अचल वह ब्रह्मका स्थान परमेश्वररूप है। सभी प्राणियोंको अपनी ही आत्मा समझनेवाला वह योगी इन्द्रद्युम्न परम ऐश्वर्यमें प्रतिष्ठित हो गया और उसने 'मोक्ष' पदसे कहे जानेवाले उस अव्यय परमात्मधामको प्राप्त कर लिया॥ ११५—११७ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः।
समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः॥ ११८ ॥

इसलिये सभी प्रयत्नोंसे वर्ण एवं आश्रमके नियमोंका पालन करते हुए अन्तिम भावका आश्रय ग्रहण कर विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह लक्ष्मीरूप मायासे पार उतरे॥ ११८ ॥

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः।
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम्॥ ११९ ॥

सूतजी बोले—हरिके द्वारा इस प्रकार कहनेपर इन्द्रसहित नारद आदि सभी महर्षियोंने गरुडध्वज भगवान् विष्णुसे पूछा—॥ ११९ ॥

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश नाथ नारायणामल।
तद् वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा॥ १२० ॥
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम्।
शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय॥ १२१ ॥

ऋषियोंने कहा—हे देवाधिदेव! हे हृषीकेश! हे नाथ! हे अमलरूप नारायण! जो आपने पूर्वकालमें ब्राह्मण इन्द्रद्युम्नसे धर्मादि-सम्बन्धी ज्ञान कहा था, वह सब आप हमें बतलायें। हे जगन्मूर्ति! ये आपके सखा इन्द्र भी सुननेके लिये इच्छुक हैं॥ १२०-१२१ ॥

ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः।
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः॥ १२२॥

पृष्टः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
संनिधौ देवराजस्य तद् वक्ष्ये भवतामहम्॥ १२३॥

इसके बाद (सूतजीने कहा—) रसातलमें स्थित कूर्मरूपी जनार्दन भगवान् विष्णुदेवने नारदादि महर्षियोंके द्वारा (इस प्रकार) पूछे जानेपर जिस श्रेष्ठ सम्पूर्ण कूर्मपुराणको देवराज इन्द्रके समीप सुनाया था, मैं उसे आप लोगोंको सुनाता हूँ॥ १२२-१२३॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम्।
पुराणश्रवणं विप्राः कथनं च विशेषतः॥ १२४॥

श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते॥ १२५॥

इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा।
उक्तं देवाधिदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः॥ १२६॥

हे ब्राह्मणो! (इस कूर्म) पुराणका सुनना मनुष्योंके लिये यशकी प्राप्ति करानेवाला, दीर्घ आयु प्रदान करानेवाला, पुण्य प्रदान करानेवाला, कृतकृत्य करानेवाला तथा मोक्ष प्रदान करानेवाला है। इस पुराणके वाचन करनेकी तो और भी विशेष महिमा है। इसके मात्र एक अध्यायके सुननेसे ही सभी प्रकारके पापोंसे (व्यक्ति) मुक्त हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय, केवल एक उपाख्यानके श्रवणमात्रसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस श्रेष्ठ कूर्मपुराणको कूर्मरूपधारी देवाधिदेव स्वयं भगवान् विष्णुने कहा है, द्विजातियोंको इसपर अवश्य श्रद्धा रखनी चाहिये॥ १२४—१२६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पहला अध्याय समाप्त हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव, रुद्र तथा लक्ष्मीका प्राकट्य, ब्रह्माद्वारा नौ मानस पुत्रों तथा चार वर्णोंकी सृष्टि, वेदज्ञानकी महिमा, ब्रह्म-सृष्टिका वर्णन, वर्ण और आश्रमोंके सामान्य तथा विशेष धर्म, गृहस्थाश्रमका माहात्म्य, चतुर्विध पुरुषार्थोंमें धर्मकी महिमा, आश्रमोंका द्वैविध्य, त्रिदेवोंका पूजन, त्रिपुण्ड्र, तिलक तथा भस्म-धारणकी महिमा

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यत्पृष्टोऽहं जगद्धितम्।
वक्ष्यमाणं मया सर्वमिन्द्रद्युम्नाय भाषितम्॥ १॥

श्रीकूर्मने कहा—समस्त ऋषिगणो! संसारके कल्याणके लिये आप लोगोंने जो कुछ मुझसे पूछा है और इन्द्रद्युम्नके प्रति मैंने जो कुछ कहा है, वह सब मैं बतला रहा हूँ, आप लोग सुनें॥ १॥

भूतैर्भव्यैर्भविष्यद्भिश्चरितैरुपबृंहितम्।
पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्मानुकीर्तनम्॥ २॥

इस (कूर्म) पुराणमें भूत, वर्तमान एवं भविष्यकालमें हुए वृत्तान्तोंको विस्तारसे बतलाया गया है। यह पुराण मनुष्योंको पुण्य प्रदान करनेवाला और मोक्षधर्मका वर्णन करनेवाला है॥ २॥

अहं नारायणो देवः पूर्वमासं न मे परम्।
उपास्य विपुलां निद्रां भोगिशय्यां समाश्रितः॥ ३॥

मैं ही नारायण देवरूपसे पूर्वकालमें विद्यमान था। मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा न था॥ ३॥

चिन्तयामि पुनः सृष्टिं निशान्ते प्रतिबुध्य तु।
ततो मे सहसोत्पन्नः प्रसादो मुनिपुंगवाः॥ ४ ॥

मैं प्रगाढ़ योगनिद्राका आश्रय लेकर शेष-शय्यामें पड़ा था। मुनिश्रेष्ठो! रात्रिके बीत जानेपर जागकर मैं पुनः सृष्टिविषयक चिन्तन करने लगा। उसी समय अकस्मात् मुझे प्रसन्नता प्राप्त हुई॥ ४॥

चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः।
तदन्तरेऽभवत् क्रोधः कस्माच्चित् कारणात् तदा॥ ५॥

आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वरः।
रुद्रः क्रोधात्मजो जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
तेजसा सूर्यसंकाशस्त्रैलोक्यं संहरन्निव॥ ६ ॥

तदुपरान्त समस्त संसारके पितामह चतुर्मुख ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। इसी बीच किसी कारणसे अकस्मात् उस समय क्रोध उत्पन्न हुआ। हे मुनिश्रेष्ठो! (उस समय) क्रोधात्मज अपने तेजके द्वारा मानो त्रैलोक्यका संहार करनेके लिये हाथमें त्रिशूल धारण किये, तीन नेत्रोंवाले सूर्यके समान प्रकाशमान महेश्वर रुद्रदेव वहाँ उत्पन्न हुए॥ ५-६॥

ततः श्रीरभवद् देवी कमलायतलोचना।
सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ ७ ॥

शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा।
दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता॥ ८ ॥

नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया।
स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पार्श्वं समुपाविशत्॥ ९ ॥

तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिः।
मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम्।
येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्धते मम माधव॥ १०॥

तदनन्तर कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दर रूप एवं प्रसन्न मुखवाली तथा सभी प्राणियोंको मोहित करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुईं। पवित्र मुस्कानवाली, अत्यन्त प्रसन्न, मङ्गलमयी, अपनी महिमामें प्रतिष्ठित, दिव्य कान्तिसे सुसम्पन्न, दिव्य माल्य आदिसे सुशोभित, अविनाशिनी महामाया मूलप्रकृतिरूपा वे नारायणी अपने तेजसे इस (संसार)-को आपूरित करती हुई मेरे समीपमें आकर बैठ गयीं। उन्हें देखकर संसारके स्वामी भगवान् ब्रह्मा मुझसे कहने लगे—हे माधव! सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करनेके लिये इन सुरूपिणी (देवी)-को नियुक्त करो, जिससे यह मेरी सृष्टि और भी अधिक बढ़ने लगे॥ ७—१०॥

तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रुवं प्रहसन्निव।
देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्।
मोहयित्वा ममादेशात् संसारे विनिपातय॥ ११॥

ज्ञानयोगरतान् दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः।
अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय॥ १२॥

ब्रह्माके द्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने मुसकराते हुए देवी लक्ष्मीसे कहा—हे देवि! मेरे आदेशसे तुम देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको (अपनी मायासे) मोहित कर संसारमें प्रवृत्त करो। (किंतु) जो ज्ञानयोगमें निरत हैं, जितेन्द्रिय हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, ब्रह्मवादी हैं, क्रोधशून्य हैं तथा सत्य-परायण हैं—ऐसे लोगोंको दूरसे ही छोड़ देना॥ ११-१२॥

ध्यायिनो निर्ममान् शान्तान् धार्मिकान् वेदपारगान्।
जापिनस्तापसान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय॥ १३॥

वेदवेदान्तविज्ञानसंछिन्नाशेषसंशयान् ।
महायज्ञपरान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय॥ १४॥

ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम्।
स्वाध्यायेनेज्यया दूरात् तान् प्रयत्नेन वर्जय॥ १५॥

ध्यान करनेवाले, ममतारहित, शान्त, धार्मिक, वेदमें पारंगत, जप-परायण और तपस्वी विप्रोंको दूरसे ही छोड़ देना। वेद एवं वेदान्तके विशेष ज्ञानसे जिनके सम्पूर्ण संशय सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसे तथा बड़े-बड़े यज्ञोंमें परायण द्विजोंको दूरसे ही छोड़ देना। जो जप, होम, यज्ञ एवं स्वाध्यायके द्वारा देवाधिदेव महेश्वरका यजन करते हैं, उनका प्रयत्नपूर्वक दूरसे ही परित्याग कर देना॥ १३—१५॥

भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान् ।
प्राणायामादिषु रतान् दूरात् परिहरामलान्॥ १६॥
प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान्।
अथर्वशिरसोऽध्येतॄन् धर्मज्ञान् परिवर्जय॥ १७॥
बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान्।
ईश्वराराधनरतान् मन्नियोगान्न मोहय॥ १८॥

जो भक्तियोगमें लगे हुए हैं, जिन्होंने अपना चित्त भगवान्‌को अर्पण कर दिया है और जो प्राणायाम (धारणा, ध्यान तथा समाधि) आदिमें निरत हैं, ऐसे अमलात्माओंका दूरसे ही त्याग कर देना। जिनका मन प्रणवोपासनामें आसक्त है, जो रुद्र (मन्त्रों)-का जप करनेवाले हैं और जो अथर्वशिरस्‌के अध्येता हैं, उन धर्मज्ञ व्यक्तियोंको छोड़ देना। और अधिक क्या कहा जाय, जो अपने धर्मका पालन करनेवाले हैं, ईश्वरकी आराधनामें सतत रत हैं, (हे देवि!) उन्हें मेरे आदेशसे कदापि मोहित न करना॥ १६—१८॥

एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा।
यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ १९॥
श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्।
अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्॥ २०॥

इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित हरिप्रिया महामायाने जैसी मेरी आज्ञा थी, उसी प्रकार किया, इसलिये (उन) लक्ष्मीकी आराधना करनी चाहिये। भगवत्पत्नी (देवी महालक्ष्मी) पूजा किये जानेपर विपुल ऐश्वर्य, पुष्टि, मेधा, यश एवं बल प्रदान करती हैं, इसलिये लक्ष्मीकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये॥ १९-२०॥

ततोऽसृजत् स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया॥ २१॥
मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया॥ २२॥

तदनन्तर लोकपितामह भगवान्‌ने मेरी आज्ञासे पूर्वकी भाँति ही समस्त चराचर भूत—प्राणियोंकी सृष्टि की। योगविद्याके प्रभावसे ब्रह्माजीने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठको उत्पन्न किया॥ २१-२२॥

नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्मणो ब्राह्मणोत्तमाः।
ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः॥ २३॥
ससर्ज ब्राह्मणान् वक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद् विभुः।
वैश्यानूरुद्वयाद् देवः पादाच्छूद्रान् पितामहः॥ २४॥
यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह।
गुप्तये सर्ववेदानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ॥ २५॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ब्रह्माके मरीचि आदि ये नौ 'ब्रह्माण'- संज्ञक पुत्र साधक हैं, ब्रह्मवादी हैं। पितामह विभु देव (ब्रह्मा)-ने मुखसे ब्राह्मणों तथा भुजासे क्षत्रियोंकी सृष्टि की। दोनों जंघाओंसे वैश्योंको तथा पैरसे शूद्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माने यज्ञकी निष्पत्ति एवं सभी वेदोंकी रक्षाके लिये शूद्रके अतिरिक्त (अन्य सभी वर्णोंकी) सृष्टि की, क्योंकि उनसे यज्ञका निर्वाह होता है॥ २३—२५॥

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च।
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया॥ २६॥
अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ २७॥
अतोऽन्यानि तु शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित्।
न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते॥ २८॥

ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्ववेद ब्रह्माके सहज स्वरूप हैं और यह नित्य अव्यय शक्ति हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने प्रारम्भमें आदि और अन्तसे रहित वेदमयी दिव्य वाग्रूपी शक्तिको उत्पन्न किया, जिसके द्वारा सभी व्यवहार होते हैं। पृथ्वीपर इन (वेदों)-से भिन्न जो कोई भी शास्त्र हैं उनमें धीर पुरुषका मन नहीं लगता क्योंकि ऐसे वेदातिरिक्त ग्रन्थोंके अध्ययनसे मनुष्य पाखंडी हो जाता है॥ २६—२८॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा।
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः॥ २९॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ३०॥

वेदार्थ-ज्ञानमें श्रेष्ठ मुनियोंने प्राचीन समयमें जो कार्य (करने योग्य) बतलाया है, उसीको परम धर्म समझना चाहिये, (वह धर्म वेदातिरिक्त) अन्य शास्त्रोंमें प्रतिपादित नहीं है। वैदिक सिद्धान्तोंके विपरीत बातोंका प्रतिपादन करनेवाली जो स्मृतियाँ (धर्मशास्त्र) हैं और जो कोई भी कुदर्शन (नास्तिक दर्शन) हैं, पारलौकिक दृष्टिसे वे सभी निष्फल हैं, इसीलिये वे तामसी कहे गये हैं॥ २९-३०॥

पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वबाधाविवर्जिताः।
शुद्धान्तःकरणाः सर्वाः स्वधर्मनिरताः सदा॥ ३१॥

ततः कालवशात् तासां रागद्वेषादिकोऽभवत्।
अधर्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्मप्रतिबन्धकः॥ ३२॥

पूर्व कल्पमें जो प्रजा उत्पन्न हुई थी, वह सभी बाधाओंसे रहित थी। सभी लोग निर्मल अन्तःकरणवाले थे और सर्वदा अपनी-अपनी धर्म-मर्यादामें स्थिर रहते थे। हे श्रेष्ठ मुनियो! कुछ समय बाद कालकी गतिके प्रभावसे उन (लोगों)-में राग, द्वेष (लोभ, मोह तथा क्रोध) आदि उत्पन्न हो गये और स्वधर्ममें बाधा डालनेवाला अधर्म भी उत्पन्न हो गया॥ ३१-३२॥

ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते।
रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन्॥ ३३॥

तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः।
वार्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम्।
ततस्तासां विभुर्ब्रह्मा कर्माजीवमकल्पयत्॥ ३४॥

(इस कारण) उस समय उनमें (जो पहले सात्त्विक) सहज सिद्धि थी, वह धीरे-धीरे कम होने लगी और रजोगुणमूलक जो अन्य सिद्धियाँ थीं, वे ही उन्हें प्राप्त हुईं। उन सभी (रजोगुणमूलक सिद्धियों)-के भी कालयोगसे क्षीण हो जानेपर वे वार्तोपाय अर्थात् कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्यरूपी जीविकाके उपाय और कर्मसाध्य (परिश्रमसाध्य) हस्तसिद्धि अर्थात् शिल्पशास्त्र (हाथोंके माध्यमसे किये जानेवाले शिल्प, मूर्ति-कला आदि)-के उपाय करने लगे। तब विभु ब्रह्माजीने उन लोगोंके लिये कर्म एवं आजीविकाकी व्यवस्था की॥ ३३-३४॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं धर्मान् प्रोवाच धर्मदृक्।
साक्षात् प्रजापतेर्मूर्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणा द्विजाः।
भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्मानथोचिरे॥ ३५॥

हे ब्राह्मणो! ब्रह्मासे उत्पन्न साक्षात् प्रजापतिस्वरूप धर्मदर्शी स्वायम्भुव मनुने पूर्वकालमें धर्मोंका उपदेश किया (जो मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध हुई)। तदनन्तर उनके मुखसे उसे सुनकर भृगु आदि महर्षियोंने धर्मोंका वर्णन किया॥ ३५॥

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहम्।
अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः॥ ३६॥

दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः।
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते॥ ३७॥

शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्।
कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः॥ ३८॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, अध्ययन और अध्यापन—ये ब्राह्मणोंके छः कर्म हैं। दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीन क्षत्रिय और वैश्यके (सामान्य) धर्म हैं, दण्ड-विधान और युद्ध क्षत्रियका तथा कृषिकर्म वैश्यका प्रशस्त कर्म है। द्विजातियोंकी सेवा करना शूद्रोंके लिये एकमात्र धर्मका साधन है। धर्मानुसार पाकयज्ञ तथा शिल्पविद्या उनकी आजीविका है॥ ३६—३८॥

ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्।
गृहस्थं च वनस्थं च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम्॥ ३९॥

तदनन्तर वर्णोंकी व्यवस्था स्थिर हो जानेपर (उन्होंने) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास (इन चार) आश्रमोंकी स्थापना की॥ ३९॥

अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम्।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुंगवाः॥ ४०॥
होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च।
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम्॥ ४१॥
भैक्षाशनं च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः।
सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः॥ ४२॥
भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च।
संध्याकर्माग्निकार्यं च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम्॥ ४३॥

हे मुनिश्रेष्ठो! अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि)-की उपासना, अतिथि-सेवा, यज्ञ, दान एवं देवताओंकी पूजा—यह संक्षेपमें गृहस्थका धर्म है। हवन, कन्द-मूल-फलका सेवन, स्वाध्याय तथा तप, न्यायपूर्वक (सम्पत्तिका) विभाजन—यह वानप्रस्थोंका धर्म है। भिक्षावृत्तिसे प्राप्त पदार्थोंका सेवन, मौनव्रत, तप, सम्यक्-ध्यान, सम्यक्-ज्ञान तथा वैराग्य—यह संन्यासियोंका धर्म है। भिक्षा माँगना, गुरुकी सेवा करना, स्वाध्याय, संध्याकर्म तथा अग्निकार्य—यह ब्रह्मचारियोंका धर्म है॥ ४०—४३॥

ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः।
साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्भवः॥ ४४॥
ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु न चान्यतः।
पर्ववर्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥ ४५॥
आगर्भसम्भवादाद्यात् कार्यं तेनाप्रमादतः।
अकुर्वाणस्तु विप्रेन्द्रा भ्रूणहा तु प्रजायते॥ ४६॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! कमलसे प्रादुर्भूत ब्रह्माजीने ब्रह्मचर्यको ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासीका साधारण धर्म कहा है अर्थात् ब्रह्मचर्य तीनों आश्रमियोंका सामान्य धर्म है। ऋतुकाल (स्त्रीके रजस्वलाकी चार रात्रियोंको छोड़कर)-में, विशेष पर्वोंको छोड़कर अपनी पत्नीमें गमन करना गृहस्थके लिये 'ब्रह्मचर्य' ही कहा गया है, अन्य रात्रियोंमें नहीं। प्रथम गर्भ धारण करनेतक उसे बिना किसी प्रमादके इस नियमका पालन करना चाहिये। हे विप्रेन्द्रो! ऐसा न करनेवाला (गृहस्थ) भ्रूणघाती होता है॥ ४४—४६॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धं चातिथिपूजनम्।
गृहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यर्चनं तथा॥ ४७॥
वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि।
देशान्तरगतो वाथ मृतपत्नीक एव वा॥ ४८॥

यथाशक्ति प्रतिदिन वेदका स्वाध्याय, श्राद्ध, अतिथि-सेवा तथा देवताओंकी पूजा—यह गृहस्थका श्रेष्ठ धर्म है। किसी दूसरे देशमें जानेपर अथवा पत्नीके मर जानेपर भी गृहस्थको चाहिये कि वह प्रातःकाल और सायंकाल विधिपूर्वक विवाहाग्नि (गार्हपत्याग्नि)-को प्रज्वलित करता रहे॥ ४७-४८॥

त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते।
अन्ये तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी॥ ४९॥
ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य त्रयाणां श्रुतिदर्शनात्।
तस्माद् गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम्॥ ५०॥

गृहस्थ-आश्रमको तीनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास)-का बीज कहा जाता है, क्योंकि तीनों आश्रमोंके लोग गृहस्थाश्रमीपर ही निर्भर रहते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। वेदोंका अभिमत है कि केवल गृहस्थाश्रममें ही अन्य तीनों आश्रमोंका (समावेश) होता है, इसलिये एकमात्र गार्हस्थ्यको ही धर्मका साधन जानना चाहिये॥ ४९-५०॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरेन्न तु॥ ५१॥

धर्मसे रहित जो अर्थ एवं काम नामक (पुरुषार्थ) हैं, उनका परित्याग करना चाहिये। साथ ही सभी प्रकारसे जो लोकविरुद्ध हो उस धर्मका भी आचरण नहीं करना चाहिये॥ ५१॥

धर्मात् संजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्मं समाश्रयेत्॥ ५२॥

धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, धर्मसे ही कामकी भी सिद्धि होती है और धर्म (-के आचरण)-से ही मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिये धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये॥ ५२॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्॥ ५३॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ ५४॥

यस्मिन् धर्मसमायुक्तावर्थकामौ व्यवस्थितौ।
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥ ५५॥

धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग (क्रमशः) सत्त्व, रज, और तमरूपी त्रिगुणसे युक्त है, इसलिये धर्मका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। सात्त्विक गुणोंका आश्रय लेनेवाले ऊर्ध्व लोकको प्राप्त करते हैं, राजसी व्यक्ति मध्य लोकमें रहते हैं तथा तमोगुणके कार्यमें स्थित तामसी व्यक्ति अधोगतिको प्राप्त होते हैं। जिस व्यक्तिमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम प्रतिष्ठित रहते हैं, वह इस लोकमें सुखोंका उपभोग कर मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है॥ ५३—५५॥

धर्मात् संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते।
एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्ये प्रदर्शितम्॥ ५६॥

य एवं वेद धर्मार्थकाममोक्षस्य मानवः।
माहात्म्यं चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते॥ ५७॥

तस्मादर्थं च कामं च त्यक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्।
धर्मात् संजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः॥ ५८॥

धर्मसे (धर्माचरणसे) मोक्षकी प्राप्ति होती है और अर्थसे कामकी सिद्धि होती है। इस प्रकार चार प्रकारके पुरुषार्थोंमें साधन और साध्यका वर्णन दिखाया गया। जो मानव धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके इस प्रकार बताये गये माहात्म्यको जानता है और तदनुसार आचरण करता है, वह मोक्ष (प्राप्त) करनेमें समर्थ होता है। इसलिये (धर्मविरुद्ध) अर्थ एवं काम (-रूपी पुरुषार्थ)-का सर्वथा परित्याग कर धर्मका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। धर्मसे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है—ऐसा ब्रह्मवादियोंका कहना है॥ ५६—५८॥

धर्मेण धार्यते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
अनादिनिधना शक्तिः सैषा ब्राह्मी द्विजोत्तमाः॥ ५९॥

कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः।
तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाचरेत्॥ ६०॥

धर्मके द्वारा ही स्थावर-जंगमात्मक सारा विश्व धारण किया जाता है। हे द्विजोत्तमो! यह (धर्मशक्ति) ब्रह्माजीकी वह ब्राह्मी शक्ति है जो आदि और अन्तसे रहित है। कर्म एवं ज्ञान—दोनोंके द्वारा ही धर्मकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ज्ञानके[1] साथ ही कर्मयोगका भी आचरण ग्रहण करना चाहिये॥ ५९-६०॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात् प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा॥ ६१॥

निवृत्तं सेवमानस्तु याति तत् परमं पदम्।
तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत् पुनः॥ ६२॥

प्रवृत्त एवं निवृत्त—इस प्रकारसे वैदिक कर्म दो प्रकारका होता है। निवृत्तकर्म ज्ञानपूर्वक एवं प्रवृत्तकर्म इससे भिन्न प्रकारका होता है। निवृत्तकर्मका सेवन करनेवाला उस परमपद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है। अतः निवृत्तकर्म (निवृत्तिमार्ग)-का ही सेवन करना चाहिये, इससे अन्यथा करनेपर पुनः संसारमें आना पड़ता है॥ ६१-६२॥

१-यहाँ ज्ञानका तात्पर्य धर्मज्ञानसे है, आत्मज्ञानसे नहीं।

क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च।
आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा॥ ६३॥

सत्यं संतोष आस्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः॥ ६४॥

अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता।
सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ ६५॥

क्षमा, दम (इन्द्रियनिग्रह), दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव (मन-वाणी आदिकी सरलता), अनसूया, तीर्थानुसरण अर्थात् गुरु एवं शास्त्रका अनुगमन या तीर्थसेवन, सत्य, संतोष, आस्तिकता (वेदादि शास्त्रोंमें श्रद्धा), श्रद्धा, जितेन्द्रियत्व, देवताओंका अर्चन, विशेष रूपसे ब्राह्मणोंकी पूजा, अहिंसा, मधुर भाषण, अपिशुनता तथा पापसे राहित्य—स्वायम्भुव मनुने चारों वर्णोंके लिये ये सामान्य धर्म कहे हैं॥ ६३—६५॥

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्॥ ६६॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम्।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्तताम्॥ ६७॥

अपने ब्राह्मण-धर्मका यथावत् पालन करनेवाले क्रिया-निष्ठ ब्राह्मणोंके लिये प्राजापत्य स्थान (प्राजापत्य लोक) तथा संग्राममें पलायन न करनेवाले क्षत्रियोंके लिये ऐन्द्र-स्थान (इन्द्रलोक) सुनिश्चित है। इसी प्रकार स्वधर्मका पालन करनेवाले वैश्योंके लिये मारुत-स्थान (वायुलोक) और परिचर्यारूप स्वधर्मका पालन करनेवाले शूद्रजातिवालोंके लिये गन्धर्वलोक सुनिश्चित है॥ ६६-६७॥

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्॥ ६८॥
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद् वै वनौकसाम्।
प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयम्भुवा॥ ६९॥

ऊर्ध्वरेता अट्ठासी हजार (शौनक आदि) ऋषियोंका जो स्थान है, वही स्थान गुरुके अन्तेवासी ब्रह्मचारियोंको प्राप्त होता है। सप्तर्षियोंका जो स्थान है, वही स्थान वनमें रहनेवाले वानप्रस्थियोंको प्राप्त होता है और स्वयम्भू ब्रह्माने गृहस्थोंके लिये प्राजापत्य स्थान (प्राजापत्य लोक)-की प्राप्ति बतलायी है॥ ६८-६९॥

यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम्।
हैरण्यगर्भं तत् स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः॥ ७०॥
योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम्।
आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गतिः॥ ७१॥

समाहित-चित्त यतात्मा ऊर्ध्वरेता संन्यासियोंको हिरण्यगर्भ नामक वह स्थान प्राप्त होता है, जहाँसे पुनः लौटना नहीं पड़ता। योगियोंको अविनाशी वह व्योमसंज्ञक श्रेष्ठ अमरस्थान प्राप्त होता है जो आनन्दस्वरूप और ऐश्वर धाम है, वही पराकाष्ठा (अन्तिम) और परम गति है॥ ७०-७१॥

ऋषय ऊचुः

भगवन् देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन।
चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते॥ ७२॥

ऋषियोंने कहा—देवताओंके शत्रुओंका विनाश करनेवाले, हिरण्याक्षका वध करनेवाले हे भगवन्! (आपने) चार आश्रम बताये (किंतु) योगियोंके लिये एक ही आश्रम बतलाया॥ ७२॥

श्रीकूर्म उवाच

सर्वकर्माणि संन्यस्य समाधिमचलं श्रितः।
य आस्ते निश्चलो योगी स संन्यासी न पञ्चमः॥ ७३॥

सर्वेषामाश्रमाणां तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम्।
ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः॥ ७४॥

श्रीकूर्मने कहा—सभी कर्मोंका परित्याग कर एकमात्र अचल समाधिमें निरन्तर स्थिर रहनेवाला जो निश्चल योगी है, वही संन्यासी होता है, अतः (चार ही आश्रम होते हैं) पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं होता। वेदमें बतलाया गया है कि सभी आश्रम दो प्रकारके होते हैं। ब्रह्मचारीके दो भेद हैं—उपकुर्वाण और नैष्ठिक ब्रह्मतत्पर॥ ७३-७४॥

योऽधीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममाव्रजेत्।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः॥ ७५॥

जो ब्रह्मचारी विधिवत् वेदोंका अध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है, उसे उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी समझना चाहिये और जो यावज्जीवन गुरुके पास रहकर ब्रह्मविद्याका अभ्यास करता है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है॥ ७५॥

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।
कुटुम्बभरणे यत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत्॥ ७६॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः॥ ७७॥

(इसी प्रकार) गृहस्थाश्रमी भी दो प्रकारका होता है—(१) उदासीन और (२) साधक। जो कुटुम्बके भरण-पोषणमें लगा रहता है, वह गृहस्थ साधक कहलाता है और जो देवऋण, पितृऋण एवं ऋषिऋण—इन तीन ऋणोंसे उऋण होकर स्त्री, धन आदिका परित्याग कर देता है तथा एकाकी विचरण करता है, वह मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छावाला गृहस्थ उदासीन कहलाता है॥ ७६-७७॥

तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद् देवान् जुहोति च।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः॥ ७८॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः॥ ७९॥

जो वनमें अनुष्ठान करता है, देवताओंकी पूजा करता है, हवन करता है और स्वाध्यायमें निरत रहता है, वह वनमें रहनेवाला 'तापस' नामक वानप्रस्थ कहलाता है और जो अत्यन्त तपसे अपने शरीरको कृश कर लेता है तथा निरन्तर ध्यानपरायण रहता है, वह वानप्रस्थ-आश्रममें रहनेवाला सांन्यासिक वानप्रस्थी कहलाता है॥ ७८-७९॥

योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः।
ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः॥ ८०॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः।
सम्यग् दर्शनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते॥ ८१॥

नित्य योगाभ्यासमें रत रहनेवाला, मोक्षमार्गमें आरूढ़ होनेकी इच्छावाला, जितेन्द्रिय तथा ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील संन्यासीको 'पारमेष्ठिक' संन्यासी कहा जाता है और जो केवल आत्मामें ही रमण करनेवाला है, नित्य-तृप्त महामुनि है, सम्यक्-दर्शन-सम्पन्न है वह संन्यासी 'योगी' कहलाता है॥ ८०-८१॥

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे।
कर्मसंन्यासिनः केचित् त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः॥ ८२॥
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च।
तृतीयोऽत्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममास्थितः॥ ८३॥
प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी॥ ८४॥

पारमेष्ठिक (संन्यासी)-के तीन भेद होते हैं—(१) कोई ज्ञानसंन्यासी होते हैं, (२) कोई वेदसंन्यासी होते हैं और (३) कोई कर्मसंन्यासी होते हैं। (इसी प्रकार) योगी भी तीन प्रकारका समझना चाहिये—पहला भौतिक, दूसरा सांख्य और तीसरे प्रकारका योगी अत्याश्रमी कहा गया है, जो श्रेष्ठ योगमें ही नित्य स्थित रहता है। पहले भौतिक योगीमें प्रथम भावना, (दूसरे) सांख्ययोगीमें अक्षर-भावना और तीसरे अत्याश्रमी नामक योगीमें जो अन्तिम भावना रहती है, वह पारमेश्वरी भावना कहलाती है॥ ८२—८४॥

तस्मादेतद् विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम्।
सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते॥ ८५॥

इसीलिये (हे ऋषियो!) सभी वेदशास्त्रोंमें चार ही आश्रम निश्चित किये गये हैं, ऐसा जानना चाहिये। पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं है॥ ८५॥

एवं वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जनः।
दक्षादीन् प्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधाः प्रजाः॥ ८६॥

ब्रह्मणो वचनात् पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमाः।
असृजन्त प्रजाः सर्वा देवमानुषपूर्विकाः॥ ८७॥

इस प्रकार (चार) वर्ण तथा (चार) आश्रमोंकी सृष्टि करके देवाधिदेव निरञ्जन विश्वात्मा (ब्रह्माजी)-ने दक्ष आदि (प्रजापतियों)-से कहा—'अनेक प्रकारकी सृष्टि करो'। हे मुनिश्रेष्ठो! ब्रह्माजीके कहनेपर उनके दक्ष आदि (मानस) पुत्रोंने देवताओं एवं मनुष्योंके साथ ही अन्य भी सभी प्रजाओं (प्राणियों)-की सृष्टि की॥ ८६-८७॥

इत्येष भगवान् ब्रह्मा स्त्रष्टृत्वे स व्यवस्थितः।
अहं वै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत्॥ ८८॥

इस प्रकार ये भगवान् ब्रह्मा सृष्टिके कार्यमें नियत हैं। मैं इस (सृष्टि)-का पालन-पोषण करता हूँ और शूलधारी भगवान् शंकर इसका संहार करेंगे॥ ८८॥

तिस्रस्तु मूर्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रजःसत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मनः॥ ८९॥

अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः।
अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः॥ ९०॥

परात्पर परमात्माकी रज, सत्त्व एवं तमोगुणके योगसे (क्रमशः) ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नामक तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। ये तीनों विग्रह परस्पर एक-दूसरेमें अनुरक्त तथा एक-दूसरेके उपजीवी (आश्रित) हैं। ये तीनों परमेश्वर हैं और लीलावश एक-दूसरेको प्रणाम करते रहते हैं॥ ८९-९०॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना।
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सततं द्विजाः॥ ९१॥

प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या चाक्षरभावना।
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना॥ ९२॥

हे ब्राह्मणो! रुद्रमें ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा अक्षर (वैष्णवी) नामक तीन प्रकारकी भावनाएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं। मुझमें प्रथम अक्षरभावना निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। भगवान् ब्रह्माजीकी द्वितीय अक्षरभावना कही गयी है॥ ९१-९२॥

अहं चैव महादेवो न भिन्नौ परमार्थतः।
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः॥ ९३॥

त्रैलोक्यमखिलं स्त्रष्टुं सदेवासुरमानुषम्।
पुरुषः परतोऽव्यक्ताद् ब्रह्मत्वं समुपागमत्॥ ९४॥

पारमार्थिक दृष्टिसे मुझमें और महादेवमें कोई भिन्नता नहीं है। वही अन्तर्यामी ईश्वर अपनी इच्छासे अपनेको विभाजित कर (मेरे तथा महादेवके रूपमें) स्थित है। देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंके साथ ही सम्पूर्ण त्रैलोक्यकी सृष्टि करनेके लिये (इसी परम) पुरुषने अपने परात्पर अव्यक्त स्वरूपद्वारा ब्रह्मत्वको स्वीकार किया अर्थात् वे ही अव्यक्त परमात्मा सृष्टि करनेके लिये ब्रह्माके रूपमें व्यक्त हुए॥ ९३-९४॥

तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः।
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनूः कार्यवशात् प्रभोः॥ ९५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्याः प्रयत्नतः।
यदीच्छेदचिरात् स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्॥ ९६॥

वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः।
पूजयेद् भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया॥ ९७॥

अतः ब्रह्मा, महादेव एवं परात्पर विश्वेश्वर भगवान् विष्णु (ये तीनों ही) पृथक्-पृथक् कार्यकी दृष्टिसे एक ही प्रभुकी तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे विशेषतः (ये तीनों ही) वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं। मोक्ष नामसे कहे जानेवाले उस अविनाशी स्थानको यदि शीघ्र ही प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो वर्णाश्रम-धर्मके नियमोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पालन करते हुए प्रतिज्ञापूर्वक बड़े श्रद्धाभावसे जीवनपर्यन्त इन (त्रिदेवों)-का पूजन करना चाहिये॥ ९५—९७॥

चतुर्णामाश्रमाणां तु प्रोक्तोऽयं विधिवद्‌द्विजाः।
आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रयः॥ ९८॥

हे ब्राह्मणो! विधिपूर्वक इस प्रकार चारों आश्रमोंका वर्णन किया गया। (इनमें) वैष्णव, ब्राह्म तथा हर (शैव) नामक तीन आश्रम (सम्प्रदाय) होते हैं। उन (शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म आश्रमों)-का लिङ्ग (चिह्न) धारणकर उस (देवता)-के भक्तजनोंके प्रति प्रेम रखते हुए ब्रह्मविद्यापरायण व्यक्तिको चाहिये कि वह इन देवोंका निरन्तर ध्यान करे, पूजन करे॥ ९८-९९॥

तल्लिङ्गधारी सततं तद्भक्तजनवत्सलः।
ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः॥ ९९॥
सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम्।
सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्॥ १००॥

यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम्।
धारयेत् सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः॥ १०१॥

प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
तेषां ललाटे तिलकं धारणीयं तु सर्वदा॥ १०२॥

शिवके सभी भक्तोंके लिये (चिह्न-रूपमें) शिवलिङ्ग धारण करना श्रेष्ठ है। शैवोंको चाहिये कि वे श्वेत भस्मसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करें। जो परम पद (-स्वरूप) भगवान् नारायणके शरणागत (भक्त) हो उसे ललाटपर (कस्तूरी आदिके) सुगन्धित जलसे त्रिशूल (-की आकृति)-का तिलक सर्वदा धारण करना चाहिये। जो संसारके बीज परमेष्ठी ब्रह्माके भक्त हैं, उन्हें ललाटपर सर्वदा तिलक धारण करना चाहिये॥ १००—१०२॥

योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्मासौ धृतो भवेत्।
उपर्यधो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात्॥ १०३॥

यत्तत् प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
धृतं त्रिशूलधरणाद् भवत्येव न संशयः॥ १०४॥

ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवेः।
भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते॥ १०५॥

ऊपर-नीचे भावपूर्वक त्रिपुण्ड्रके धारण करनेसे अनादि (होते हुए भी) जो प्राणियोंका आदि है, कालात्मा है उसका धारण करना हो जाता है। त्रिशूल (चिह्न)-के धारण करनेसे जो वह त्रिगुणात्मक प्रधान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूप है निश्चयरूपसे उसका धारण हो जाता है। तिलक लगानेसे जो आदित्यमण्डलका प्रकाशमान ब्रह्मतेजोमय ऐश्वरयुक्त स्थान है उसका धारण हो जाता है॥ १०३—१०५॥

तस्मात् कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम्।
त्रियायुषं च भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम्॥ १०६॥

इसलिये (शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म) तीनों प्रकारके भक्तोंको विधिपूर्वक मङ्गलमय तथा दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले त्रिशूलके चिह्न तथा तिलकको धारण करना चाहिये॥ १०६॥

यजेत जुहुयादग्नौ जपेद् दद्याज्जितेन्द्रियः।
शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णाश्रमविधानवित्॥ १०७॥

एवं परिचरेद् देवान् यावज्जीवं समाहितः।
तेषां संस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति॥ १०८॥

वर्ण तथा आश्रमके विधि-विधानको जाननेवाले शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय तथा क्रोधजयीको यज्ञ, अग्निमें हवन, जप तथा दान करना चाहिये। इस प्रकार यावज्जीवन समाहित-मन होकर देवोंकी आराधना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उसे शीघ्र ही अचल स्थानकी प्राप्ति होती है॥ १०७-१०८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

आश्रमधर्मका वर्णन, संन्यास ग्रहण करनेका क्रम, ब्रह्मार्पणका लक्षण तथा निष्कामकर्मयोगकी महिमा

ऋषय ऊचुः

वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा।
इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणां वद प्रभो॥ १॥

ऋषियोंने कहा—प्रभो! आपने चारों वर्णों तथा चारों आश्रमोंका वर्णन किया। अब हमें आश्रमोंका क्रम बतलायें॥ १॥

श्रीकूर्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ताः कारणादन्यथा भवेत्॥ २॥

श्रीकूर्म बोले—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये क्रमसे आश्रम कहे गये हैं। किसी कारणसे (इस क्रममें) परिवर्तन भी होता है॥ २॥

उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः।
प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्यात् तु यदीच्छेत् परमां गतिम्॥ ३॥

दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखैः।
यजेदुत्पादयेत् पुत्रान् विरक्तो यदि संन्यसेत्॥ ४॥

जो ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न हो तथा परम वैराग्यको प्राप्त हो गया हो ऐसा ब्रह्मचारी यदि परमगतिको प्राप्त करना चाहे तो वह ब्रह्मचर्य-आश्रमसे (सीधे) संन्यास ग्रहण कर ले। इसके विपरीत (अर्थात् ब्रह्मचर्य-आश्रमसे सीधे संन्यास न ग्रहण कर) विधिपूर्वक स्त्रीसे विवाह कर विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए पुत्रोंको उत्पन्न करे और विरक्त होनेपर संन्यास ग्रहण करे॥ ३-४॥

अनिष्ट्वा विधिवद् यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजम्।
न गार्हस्थ्यं गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विजः॥ ५॥

अथ वैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे।
तत्रैव संन्यसेद् विद्वाननिष्ट्वापि द्विजोत्तमः॥ ६॥

बुद्धिमान् गृहस्थ द्विजको चाहिये कि वह विधिपूर्वक यज्ञोंका अनुष्ठान तथा पुत्रोंको उत्पन्न किये बिना गृहस्थ-आश्रमका परित्यागकर संन्यास ग्रहण न करे। श्रेष्ठ विद्वान् द्विज यदि तीव्र वैराग्यके वेगके कारण गृहस्थाश्रममें रहनेके लिये उत्सुक न हो तो यज्ञ किये बिना भी वहीं संन्यास ग्रहण कर ले॥ ५-६॥

अन्यथा विविधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयेत्।
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद् विरक्तः संन्यसेद् यदि॥ ७॥

वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत् पुनः।
न संन्यासी वनं चाथ ब्रह्मचर्यं न साधकः॥ ८॥

अन्यथा विविध यज्ञोंका सम्पादन कर वनका आश्रय लेना चाहिये एवं तपोयोगद्वारा तप करनेके बाद यदि विराग हो जाय तो संन्यास लेना चाहिये। वानप्रस्थ-आश्रम ग्रहण कर फिर गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश नहीं करना चाहिये, न संन्यासी वानप्रस्थ-आश्रममें वापस आये और न साधक गृहस्थ ब्रह्मचर्याश्रममें वापस लौटे॥ ७-८॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विजः।
प्रव्रजेत गृही विद्वान् वनाद् वा श्रुतिचोदनात्॥ ९॥

प्रकर्तुमसमर्थोऽपि जुहोतियजतिक्रियाः।
अन्धः पंगुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद् द्विजः॥ १०॥

सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासाय विधीयते।
पतत्येवाविरक्तो यः संन्यासं कर्तुमिच्छति॥ ११॥

विद्वान् गृहस्थ द्विज प्राजापत्य इष्टि अथवा आग्नेयी इष्टिका सम्पादन कर संन्यास ग्रहण करे या वैदिक विधानसे वानप्रस्थसे (संन्यास-आश्रममें) प्रवेश करे। हवन तथा यज्ञ-सम्बन्धी क्रियाओंको करनेमें असमर्थ होनेपर भी अन्धा, लँगड़ा अथवा दरिद्र द्विज वैराग्य होनेपर संन्यास ग्रहण करे। सभीके लिये संन्यासके निमित्त वैराग्यका विधान किया गया है। जो आसक्तियुक्त पुरुष संन्यास-आश्रम ग्रहण करना चाहता है वह अवश्य ही पतित हो जाता है॥ ९—११॥



श्रीशिव-पार्वतीद्वारा श्रीकृष्णको वरदान



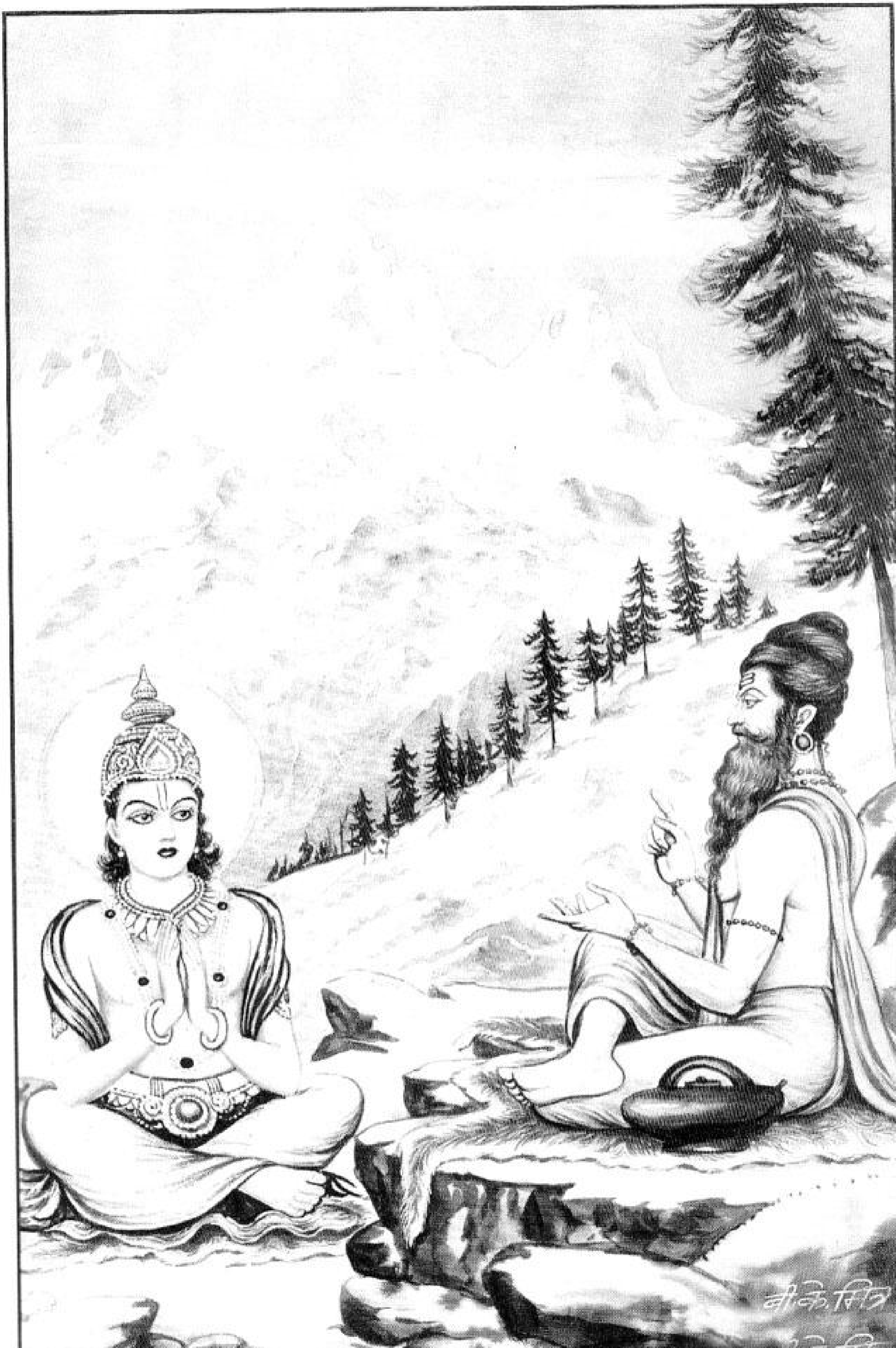
भगवान् शिव-पार्वती



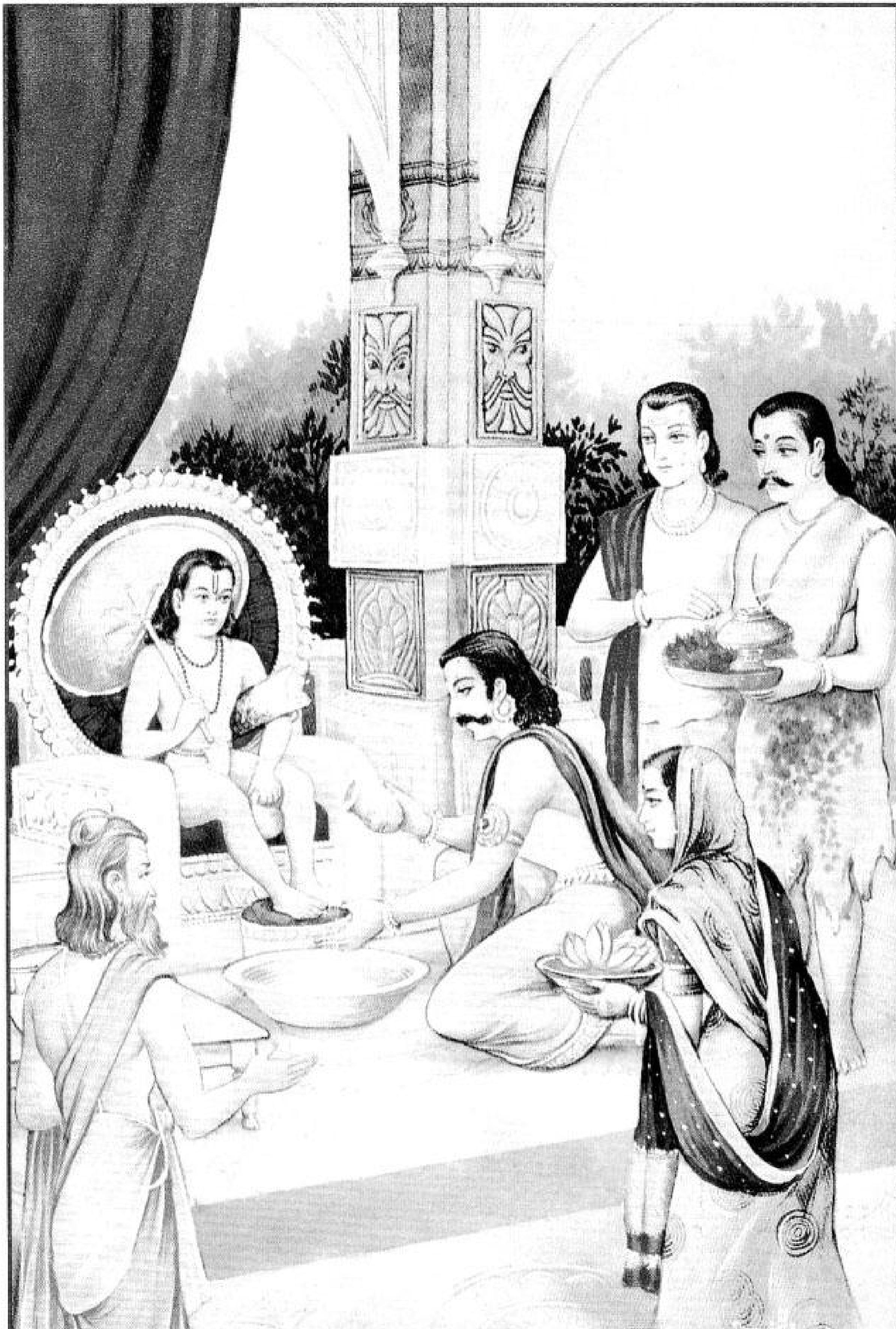
उमा हैमवतीदेवी



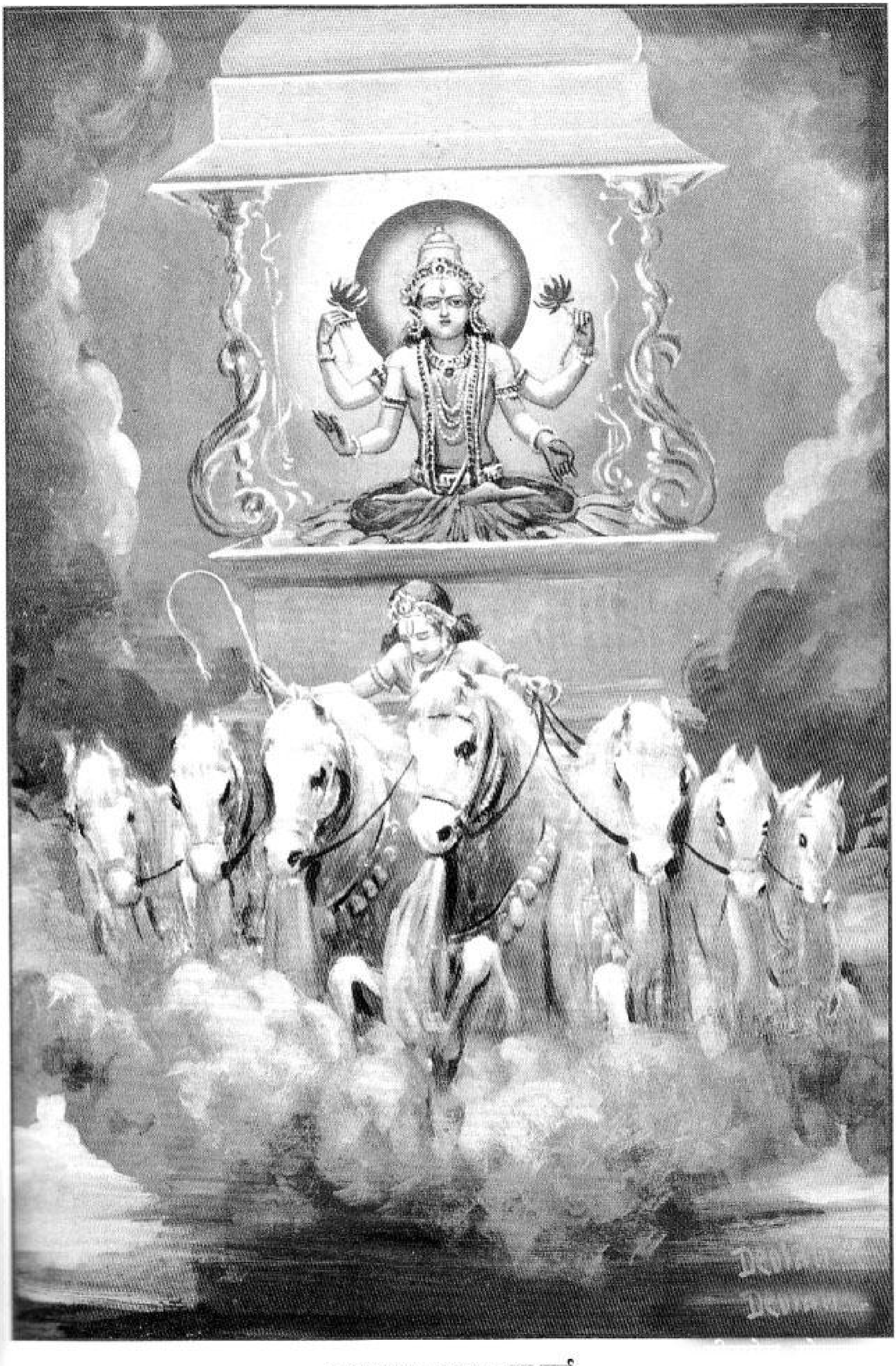
भगवान् वराहद्वारा भूदेवीका उद्धार



आचार्य उपमन्यु और भगवान् श्रीकृष्ण



भगवान् मायावामनका यज्ञवाटमें पूजन



सप्ताश्व-वाहन भगवान् सूर्य



भगवान्—कूर्मरूपमें

एकस्मिन्नथवा सम्यग् वर्तेतामरणं द्विजः।
श्रद्धावानाश्रमे युक्तः सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १२॥

न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः।
स्वधर्मपालको नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १३॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसंगः कामवर्जितः।
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम्॥ १४॥

अथवा निष्ठावान् द्विजको चाहिये कि किसी भी एक आश्रममें वह यावज्जीवन ठीक-ठीक व्यवहार करता रहे तो मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। न्यायमार्ग (ईमानदारी)-से धन प्राप्त करनेवाला, शान्त, ब्रह्म-विद्यापरायण तथा नित्य अपने धर्मका पालन करनेवाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। अपने समस्त कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पित कर आसक्तिरहित तथा निष्काम व्यक्ति प्रसन्न-मनसे कर्मोंको करते हुए उस पद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है॥ १२—१४॥

ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते।
ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥ १५॥

नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा।
एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिः तत्त्वदर्शिभिः॥ १६॥

प्रीणातु भगवानीशः कर्मणानेन शाश्वतः।
करोति सततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥ १७॥

यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे।
कर्मणामेतदप्याहुः ब्रह्मार्पणमनुत्तमम्॥ १८॥

देने योग्य पदार्थ ब्रह्मके द्वारा ही प्राप्त होता है, ब्रह्मको ही दिया जाता है और ब्रह्म ही दिया भी जाता है—यही श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण (-की भावना) है। मैं कर्ता अर्थात् करनेवाला नहीं हूँ और जो कुछ भी किया जाता है वह ब्रह्म ही करता है—इसे तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने 'ब्रह्मार्पण' नामसे कहा है। 'मेरे इस कर्मसे सनातन भगवान् ईश्वर प्रसन्न हों' इस प्रकारकी बुद्धिसे निरन्तर किया गया कर्म श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण है। अथवा परमेश्वरमें सभी कर्मोंके फलोंका संन्यास करे—यह भी श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण कहा गया है॥ १५—१८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं संगवर्जितम्।
क्रियते विदुषा कर्म तद्भवेदपि मोक्षदम्॥ १९॥

अन्यथा यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यमपि द्विजः।
अकृत्वा फलसंन्यासं बध्यते तत्फलेन तु॥ २०॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम्।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्माप्नोत्यचिरात् पदम्॥ २१॥

कर्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्विकं तथा।
मनः प्रसादमन्वेति ब्रह्म विज्ञायते ततः॥ २२॥

विद्वान् व्यक्तिके द्वारा आसक्तिरहित होकर कर्तव्य-बुद्धिसे जो कर्म नियमतः किया जाता है, उसका वह कर्म भी मोक्ष देनेवाला होता है। इसके विपरीत यदि द्विज नित्य कर्मोंको करता भी रहे तो कर्मफलका संन्यास न करनेके कारण वह उस कर्मफलके बन्धनसे बँधा रहता है। इसलिये अविद्वान् व्यक्तिको भी चाहिये कि सभी प्रकारके प्रयत्नसे कर्मके आश्रित फलका त्यागकर कर्म करता रहे, इससे उसे शीघ्र ही (परम) पद प्राप्त होता है। (निष्काम) कर्मसे व्यक्तिके इस जन्म तथा पूर्व-जन्मका पाप नष्ट हो जाता है, तदनन्तर चित्तकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और फिर (उसे) ब्रह्मका परिज्ञान हो जाता है॥ १९—२२॥

कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग् योगोऽभिजायते।
ज्ञानं च कर्मसहितं जायते दोषवर्जितम्॥ २३॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र तत्राश्रमे रतः।
कर्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात्॥ २४॥

सम्प्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यं तत्प्रसादतः।
एकाकी निर्ममः शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते॥ २५॥

कर्मयुक्त ज्ञानसे सम्यक् योगकी प्राप्ति होती है और कर्मयुक्त ज्ञान दोषरहित होता है। इसलिये किसी भी आश्रममें रहते हुए सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे भगवान्की प्रसन्नताके लिये कर्मोंको करता रहे। (इससे) नैष्कर्म्यकी प्राप्ति हो जाती है। परम ज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर उसके प्रभावसे नैष्कर्म्यकी सिद्धि कर वह एकाकी, ममताशून्य तथा शान्त (व्यक्ति) जीवनकालमें ही मुक्तिको प्राप्त कर लेता है अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २३—२५॥

वीक्षते परमात्मानं परं ब्रह्म महेश्वरम्।
नित्यानन्दं निराभासं तस्मिन्नेव लयं व्रजेत्॥ २६॥

तस्मात् सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः।
तृप्तये परमेशस्य तत् पदं याति शाश्वतम्॥ २७॥

(ऐसा व्यक्ति) नित्यानन्दस्वरूप, निराभास (स्वतः-प्रकाश), महेश्वर, परम ब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार कर उसीमें लीन हो जाता है। इसलिये प्रसन्नचित्त होकर परमेश्वरकी संतुष्टिके लिये निरन्तर कर्मयोगका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। (इससे वह परमेश्वरके) उस सनातन पदको प्राप्त करता है॥ २६-२७॥

एतद् वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
न ह्येतत् समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ २८॥

इस प्रकार आप लोगोंको यह चारों आश्रमोंका सम्पूर्ण श्रेष्ठ क्रम बतलाया। इस क्रमका अतिक्रमण करके कोई भी मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नहीं कर सकता॥ २८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

सांख्य-सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्माण्डकी सृष्टिका क्रम, पञ्चीकरण-प्रक्रिया तथा परमेश्वरके विविध नामोंका निरूपण

सूत उवाच

श्रुत्वाश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टमानसाः।
नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन्॥ १॥

सूतजीने कहा—आश्रमोंके सम्बन्धमें पूरे विधि-विधानको सुनकर प्रसन्न मनवाले ऋषियोंने भगवान् हृषीकेशको नमस्कार करके पुनः इस प्रकारका वचन कहा—॥ १॥

मुनय ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा सम्भवते जगत्॥ २॥

कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति।
नियन्ता कश्च सर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम॥ ३॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्मरूपधृक्।
प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवाप्ययौ॥ ४॥

मुनिजन बोले—(भगवन्!) आपने श्रेष्ठ चारों आश्रमोंके विषयमें सब कुछ बतलाया, अब इस समय हमें यह सुननेकी इच्छा है कि इस जगत्की सृष्टि कैसे होती है। हे पुरुषोत्तम! यह सब (संसार) कहाँसे उत्पन्न हुआ, किसमें विलीन होगा और इन सबका नियामक कौन है? यह सब आप बतलायें। ऋषियोंका वचन सुनकर कूर्मरूप धारण करनेवाले तथा सभी भूत-प्राणियोंके उत्पत्ति और विनाशके स्थान भगवान् नारायण गम्भीर वाणीमें बोले—॥ २—४॥

श्रीकूर्म उवाच

महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यूहः सनातनः।
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता विश्वतोमुखः॥ ५॥

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ६॥

श्रीकूर्मने कहा—सर्वत्र (चारों ओर) मुखवाले महेश्वर (प्रकृतिसे) पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह, सनातन, अनन्त, अप्रमेय तथा (समस्त जगत्के) नियन्ता हैं। तत्त्वचिन्तक जिसे प्रधान और प्रकृति कहते हैं और जो सत्-असत्-रूप हैं, वही अव्यक्त नित्य कारण है॥ ५-६॥

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥ ७॥

गन्ध, वर्ण और रससे हीन, शब्द-स्पर्शसे रहित, अजर, ध्रुव, अक्षय्य (कभी नाश न होनेवाला), नित्य

जगद्योनिर्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्।
विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत्॥ ८ ॥

अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम्।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत॥ ९ ॥
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते।
प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद् विश्वसमुद्भवः॥ १० ॥

ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता अहः सृष्टिरुदाहृता।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः॥ ११ ॥
निशान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान्।
सर्वभूतमयोऽव्यक्तो ह्यन्तर्यामीश्वरः परः॥ १२ ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वरः।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः॥ १३ ॥
यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान्॥ १४ ॥

स एव क्षोभको विप्राः क्षोभ्यश्च परमेश्वरः।
स संकोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः॥ १५ ॥

प्रधानात् क्षोभ्यमाणाच्च तथा पुंसः पुरातनात्।
प्रादुरासीन्महद् बीजं प्रधानपुरुषात्मकम्॥ १६ ॥

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत् स्मृतम्॥ १७ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः।
त्रिविधोऽयमहंकारो महतः सम्बभूव ह॥ १८ ॥

अहंकारोऽभिमानश्च कर्ता मन्ता च स स्मृतः।
आत्मा च पुद्गलो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ १९ ॥

पञ्चभूतान्यहंकारात् तन्मात्राणि च जज्ञिरे।
इन्द्रियाणि तथा देवाः सर्वं तस्यात्मजं जगत्॥ २० ॥

अपनी आत्मामें स्थित संसारका बीजरूप, महाभूत, सनातन, परब्रह्म, सभी प्राणियोंकी मूर्तिरूप, आत्मासे अधिष्ठित, महत्तत्त्व, अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म, त्रिगुण, उत्पत्ति और प्रलयका स्थान, शाश्वत तथा अविज्ञेय ब्रह्म ही आदिमें विद्यमान था॥ ७—९॥

उस समय गुणोंकी साम्यावस्थारूप उस पुरुषके आत्मस्वरूपमें स्थित होनेपर जबतक विश्वकी सृष्टि नहीं हो जाती, प्राकृत प्रलय (-का समय) जानना चाहिये। यह ब्रह्माकी रात्रि कही गयी है और सृष्टिको ब्रह्माका दिन कहा गया है, (वास्तवमें) उसका न दिन होता है और न रात होती है॥ १०-११॥

आदिसे रहित वह जगत्का आदि कारण, सर्वभूतमय, अव्यक्त, अन्तर्यामी परात्पर ईश्वर रात्रि व्यतीत होनेपर जाग्रत् हुआ। परमेश्वर महेश्वरने प्रकृति एवं पुरुषमें शीघ्र ही प्रविष्ट होकर परम योगके द्वारा (उनमें) क्षोभ (गति) उत्पन्न किया॥ १२-१३॥

जैसे वसन्त ऋतुकी वायु अथवा मद पुरुष एवं स्त्रियोंको (क्षुब्ध करता है) वैसे ही वह योगविग्रह (योगबलसे विविध शरीर-धारणमें समर्थ ईश्वर) प्रकृति एवं पुरुषमें अनुप्रविष्ट होकर क्षोभका कारण बनता है। हे ब्राह्मणो! वही परमेश्वर क्षोभ उत्पन्न करनेवाला है एवं स्वयं क्षुब्ध होनेवाला है, वह प्रलय एवं सृष्टि करनेके कारण प्रधान भी कहलाता है। प्रधान पुरातनपुरुषके क्षुब्ध होनेसे प्रधान (प्रकृति) पुरुषात्मक महद् बीजका आविर्भाव हुआ॥ १४—१६॥

इसी कारणसे (वह महद्बीज) महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति तथा संवित् कहलाता है॥ १७॥

महत्तत्त्वसे समस्त प्राणियोंकी सृष्टिका आदि कारण—वैकारिक, तैजस तथा तामस—यह तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ॥ १८॥

वह अहंकार अभिमान, कर्ता, मन्ता, आत्मा, पुद्गल तथा जीव (नामों)-से कहा गया है। उसी अहंकारसे सभी प्रवृत्तियाँ होती हैं। अहंकारसे पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश), पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध), सभी इन्द्रियाँ तथा उन इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए। यह सम्पूर्ण जगत् उससे ही उत्पन्न हुआ है॥ १९-२०॥

मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः।
येनासौ जायते कर्ता भूतादींश्चानुपश्यति॥ २१॥

वैकारिकादहंकारात् सर्गो वैकारिकोऽभवत्।
तैजसानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश॥ २२॥
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्।
भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवन् प्रजाः॥ २३॥

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह।
आकाशं शुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम्॥ २४॥

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह।
वायुरुत्पद्यते तस्मात् तस्य स्पर्शो गुणो मतः॥ २५॥
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते॥ २६॥

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि तु॥ २७॥

आपश्चापि विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे।
संघातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः॥ २८॥
आकाशं शब्दमात्रं यत् स्पर्शमात्रं समावृणोत्।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत्॥ २९॥

रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ।
त्रिगुणः स्यात् ततो वह्निः स शब्दस्पर्शरूपवान्॥ ३०॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशन्।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः॥ ३१॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धं समाविशन्।
तस्मात् पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शब्द्यते॥ ३२॥

शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः।
परस्परानुप्रवेशाद् धारयन्ति परस्परम्॥ ३३॥

अव्यक्तसे उत्पन्न मनको प्रथम विकार माना गया है। इस कारण यह कर्ता एवं भूतादिकोंको देखनेवाला है। वैकारिक अहंकारसे वैकारिक सृष्टि उत्पन्न हुई। इन्द्रियाँ तैजस हैं और (उन इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) दस देवता वैकारिक हैं॥ २१-२२॥

उनमें (ग्यारहवाँ) इन्द्रिय मन अपने गुणके कारण उभयात्मक[1] है। यह भूततन्मात्राओंकी सृष्टि है। भूतादिकोंसे ही प्रजा उत्पन्न हुई। विकारप्राप्त भूतोंने शब्दतन्मात्राको उत्पन्न किया। उस (शब्द तन्मात्रा)-से शब्द लक्षण-वाले तथा अवकाशस्वरूप आकाशकी उत्पत्ति हुई। वैकारिक आकाशने स्पर्श तन्मात्राको उत्पन्न किया। उससे वायु उत्पन्न हुआ और वायुका गुण स्पर्श कहा गया है॥ २३—२५॥

विकारप्राप्त वायुने रूप तन्मात्राको उत्पन्न किया, वायुसे तेज उत्पन्न हुआ और इसका 'रूप' गुण कहा जाता है। विकारको प्राप्त हुए तेजने भी रस तन्मात्राकी सृष्टि की और उससे फिर जलकी उत्पत्ति हुई, वह जल इस 'रस' गुणका आधार है। विकारको प्राप्त हो रहे जलने गन्ध तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे संघात (पृथ्वीतत्त्व) उत्पन्न हुआ और उसका गुण 'गन्ध' माना गया है॥ २६—२८॥

आकाशकी शब्द नामक तन्मात्रा है, उसने स्पर्श नामक तन्मात्राको आवृत किया है, इसलिये वायु शब्द तथा स्पर्श—इन दो गुणोंवाला है। उसी प्रकार रूप (नामक) गुण, शब्द एवं स्पर्श दो गुणोंसे आविष्ट है, अतः तेज या अग्नि—शब्द, स्पर्श तथा रूप—इन तीन गुणोंवाला है। शब्द, स्पर्श तथा रूप एवं रस तन्मात्रामें प्रविष्ट हुए, इसलिये रसात्मक जल-तत्त्वको चार गुणों (शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस)-से युक्त समझना चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये चार गुण गन्ध तन्मात्रामें प्रविष्ट हुए, इसलिये पञ्च स्थूल महाभूतसे युक्त पृथ्वी तत्त्व पाँच गुणोंवाला कहा गया है॥ २९—३२॥

इसी कारण ये शान्त, घोर, मूढ तथा विशेष कहलाते हैं। ये परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट होनेके कारण आपसमें एक दूसरेको धारण किये रहते हैं॥ ३३॥

[1] १-हस्त आदि पाँच कर्मेन्द्रिय हैं तथा चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं। 'मन' उभयात्मक है अर्थात् संकल्प-विकल्प-रूप कर्म भी करता है तथा उसे सुख-दुःखका ज्ञान भी होता हैं।

एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्त्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ ३४ ॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ ३५ ॥

ये सातों महात्मा (महत्, अहंकार आदि तत्त्व) एक-दूसरेके आश्रित होनेके कारण बिना सम्पूर्ण रूपसे मिले सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सके॥ ३४॥ पुरुषसे अधिष्ठित और अव्यक्तसे अनुगृहीत होनेके कारण महत्तत्त्वसे लेकर विशेष (पञ्चभूत)-पर्यन्त वे सभी (तत्त्व) अण्डको उत्पन्न करते हैं॥ ३४-३५॥

एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत् तदुदकेशयम्॥ ३६ ॥

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धिः परमेष्ठिनः।
प्राकृतेऽण्डे विवृत्तः स क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ३७ ॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत॥ ३८ ॥

यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात् परतः स्थितम्।
हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्तिं सनातनम्॥ ३९ ॥

विशेषों (महाभूतों)-से एक बारमें ही जलके बुल-बुलेके समान तथा जलमें स्थित वह बृहत् अण्ड उत्पन्न हुआ। उसी (बृहत् अण्ड)-में परमेष्ठीके (सृष्टिस्वरूप) कार्यका करण सिद्ध (निष्पन्न) हुआ। प्राकृत अण्डमें क्षेत्रज्ञ आविर्भूत हुआ जो ब्रह्मा नामसे कहलाया। वे प्रथम शरीर धारण करनेवाले हैं। वे पुरुष कहलाते हैं और समस्त प्राणियोंके आदिकर्ता वे ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। प्रधानसे परमें स्थित उस पुरुषको हंस, हिरण्यगर्भ, कपिल, छन्दोमूर्ति तथा सनातन कहा जाता है॥ ३६—३९॥

मेरुरुल्बमभूत् तस्य जरायुश्चापि पर्वताः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् परमात्मनः॥ ४० ॥

तस्मिन्नण्डेऽभवद् विश्वं सदेवासुरमानुषम्।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥ ४१ ॥

उस परमात्माका गर्भवेष्टन था मेरु, पर्वत थे गर्भके आवरणरूप चर्म-जरायु तथा गर्भोदक थे सभी समुद्र। उस अण्डमें देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ तथा ग्रहों, नक्षत्रोंसहित वायु, सूर्य एवं चन्द्रमा भी उत्पन्न हुए॥ ४०-४१॥

अद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः॥ ४२ ॥

तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनावृतम्।
आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्॥ ४३ ॥

भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्।
एते लोका महात्मानः सर्वतत्त्वाभिमानिनः॥ ४४ ॥

अण्ड (ब्रह्माण्ड) बाहरकी ओर अपनेसे दस गुने अधिक जलसे घिरा हुआ है और जल बाहरसे अपनेसे दस गुने अधिक तेजसे आवृत है। तेज बाहरसे अपनेसे दस गुने अधिक वायुसे आवृत है। इसी प्रकार वायु आकाशसे आवृत है और आकाश भूतादि अर्थात् अहंकारसे घिरा हुआ है। जैसे अहंकार महत्तत्त्वसे आवृत है, वैसे ही महत्तत्त्व अव्यक्तसे आवृत है। ये लोक सर्वतत्त्वाभिमानी महान् स्वरूप-वाले हैं॥ ४२—४४॥

वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः।
ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः॥ ४५ ॥

सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्॥ ४६ ॥

उन (लोकों)-में उन्हींके आत्मरूप ऐश्वर्यसम्पन्न तथा योगधर्मा (योगधर्मसे युक्त) पुरुष निवास करते हैं और अन्य भी जो तत्त्वचिन्तक हैं, वे भी निवास करते हैं। (वे सभी पुरुष) सर्वज्ञ, शान्त रजोगुणवाले अर्थात् सत्त्वसम्पन्न तथा नित्य ही अत्यन्त प्रसन्न मनवाले हैं। ब्रह्माण्ड इन्हीं प्राकृत सात आवरणोंसे आवृत है॥ ४५-४६॥

एतावच्छक्यते वक्तुं मायैषा गहना द्विजाः।
एतत् प्राधानिकं कार्यं यन्मया बीजमीरितम्।
प्रजापतेः परा मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः॥ ४७॥

ब्राह्मणो! (इस विषयमें) केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'यह माया बहुत ही गहन है'। बीजरूपसे मैंने जिसका वर्णन किया वह सब प्रधान अर्थात् प्रकृतिका कार्य (व्यापार) है। यह (प्रकृति या माया अन्य और कोई नहीं) प्रजापतिकी (ही) परा मूर्ति है—ऐसा वेदोंका अभिमत है॥ ४७॥

ब्रह्माण्डमेतत् सकलं सप्तलोकतलान्वितम्।
द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः॥ ४८॥

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः।
तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः॥ ४९॥

सात लोकोंके तलसे युक्त यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन परमेष्ठी देवका दूसरा शरीर है। वेदोंके अर्थको ठीक-ठीक जाननेवाले बतलाते हैं कि सोनेके समान वर्णवाले पीत अण्डसे प्रादुर्भूत हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा भगवान्के तीसरे रूप (शरीर) हैं॥ ४८-४९॥

रजोगुणमयं चान्यद् रूपं तस्यैव धीमतः।
चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्तते॥ ५०॥

सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम्॥ ५१॥

अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः।
तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत्॥ ५२॥

उन्हीं धीमान्का जो रजोगुणयुक्त अन्य रूप है, वे ही चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हैं तथा संसारकी सृष्टि करते हैं। स्वयं विश्वेश्वर विश्वतोमुख विश्वात्मा भगवान् विष्णु सत्त्वगुणका आश्रय ग्रहणकर उत्पन्न हुए सम्पूर्ण (संसार)-का पालन-पोषण करते हैं। अन्तकालमें स्वयं परमेश्वर सर्वात्मा रुद्रदेव तमोगुणका समाश्रयणकर संसारका संहार करते हैं॥ ५०—५२॥

एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः॥ ५३॥

योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च।
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया॥ ५४॥

एक होनेपर भी वे निर्गुण-निरञ्जन महादेव सृष्टि, पालन और संहाररूपी तीन गुणोंके कारण तीन रूपोंमें स्थित हैं। वे कभी एक, कभी दो, कभी तीन तथा कभी अनन्त रूप धारण कर लेते हैं। वे योगेश्वर (परमात्मा) अपनी लीलासे अनेक आकार, क्रिया, रूप तथा नामवाले शरीरोंका निर्माण करते हैं और फिर संहार कर डालते हैं॥ ५३-५४॥

हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैकाल्ये सम्प्रवर्तते।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः॥ ५५॥

भक्तोंके कल्याणके लिये ही वे पुनः संहार करते हैं। अपनेको तीन रूपोंमें विभक्तकर तीनों कालोंमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार (वे) विशेष रूपसे सृष्टि, संहार और पालनका कार्य करते हैं॥ ५५॥

यस्मात् सृष्ट्वानुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः।
गुणात्मकत्वात् त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते॥ ५६॥

अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः।
आदित्वादादिदेवोऽसौ अजातत्वादजः स्मृतः॥ ५७॥

चूँकि वे (स्वयं ही) प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसका पालन करते हैं और (स्वयं उसका) पुनः संहार करते हैं, इसलिये तीनों कालोंमें (सत्त्व, रज तथा तमरूप) त्रिगुणात्मक होनेसे वे (परमात्मा) एक (अद्वैत) कहलाते हैं। प्रारम्भमें वे सनातन हिरण्यगर्भ प्रादुर्भूत हुए। आदिमें उत्पन्न होनेसे वे आदिदेव तथा अजन्मा होनेसे अज कहलाते हैं॥ ५६-५७॥

पाति यस्मात् प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः।
देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः॥ ५८॥

वे समस्त प्रजाओंका पालन करते हैं, इसलिये 'प्रजापति' इस नामसे कहे जाते हैं और देवताओंमें सबसे बड़े देव हैं, इसलिये 'महादेव' कहलाते हैं॥ ५८॥

बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात् परमेश्वरः।
वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः॥ ५९॥

ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः।
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः॥ ६०॥

नराणामयनो यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः।
हरः संसारहरणाद् विभुत्वाद् विष्णुरुच्यते॥ ६१॥

बृहत् होनेसे वे ब्रह्मा तथा परम (श्रेष्ठ) होनेके कारण परमेश्वर कहे जाते हैं। सबको अपने वशमें रखनेवाले, परंतु स्वयं किसीके वशमें न रहनेके कारण वे ईश्वर (नामसे) परिभाषित किये जाते हैं। उनकी सर्वत्र गति होनेके कारण वे ऋषि और (प्रलयकालमें) सब कुछ हरण करनेके कारण हरि कहलाते हैं। किसीके द्वारा उत्पन्न न होने तथा सर्वप्रथम होनेके कारण 'स्वयम्भू' इस नामसे कहे जाते हैं। सभी मनुष्योंके वे अयन (आश्रय-स्थान) हैं, इसलिये नारायण कहे जाते हैं, संसारका संहार करनेसे हर तथा सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु कहलाते हैं॥ ५९—६१॥

भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः।
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात् सर्वः सर्वमयो यतः॥ ६२॥

शिवः स निर्मलो यस्माद् विभुः सर्वगतो यतः।
तारणात् सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते॥ ६३॥

(वे) सब कुछ जाननेके कारण भगवान् तथा रक्षा-कार्य करनेसे ॐ कहलाते हैं। सभीका विशिष्ट ज्ञान होनेसे सर्वज्ञ तथा सभीके आत्मस्वरूप होनेके कारण वे सर्व कहे जाते हैं। वे मलशून्य हैं, इसलिये शिव और सर्वत्र व्याप्त होनेसे विभु तथा सभी प्रकारके कष्टोंका निवारण करनेसे 'तारक' कहलाते हैं॥ ६२-६३॥

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत्।
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः॥ ६४॥

और अधिक कहनेसे क्या लाभ! यह सारा जगत् ब्रह्ममय ही है और वे परमेश्वर अनेक रूपोंमें विभक्त होकर अनेक क्रीड़ाएँ (लीलाएँ) करते रहते हैं॥ ६४॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात् कथितो मया।
अबुद्धिपूर्वको विप्रा ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत॥ ६५॥

हे ब्राह्मणो! मैंने संक्षेपमें इस अबुद्धिपूर्वक हुए प्राकृत सर्ग (प्राकृत सृष्टि)-का वर्णन किया है। अब आप लोग ब्रह्माकी सृष्टिके सम्बन्धमें सुनें॥ ६५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी आयुका वर्णन, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि कालकी गणना, प्राकृत प्रलय तथा कालकी महिमाका वर्णन

श्रीकूर्म उवाच

स्वयम्भुवो विवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः।
न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम्॥ १ ॥
कालसंख्या समासेन परार्धद्वयकल्पिता।
स एव स्यात् परः कालः तदन्ते प्रतिसृज्यते॥ २ ॥

श्रीकूर्मने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! स्वयम्भू-ब्रह्माके बीते हुए कालकी गणनाका वर्णन बहुत वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। संक्षेपमें कालकी गणना दो परार्ध कही गयी है। वही परम काल है और उसके बीत जानेपर प्रलय होता है॥ १-२॥

निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत् पराख्यं तदर्धं च परार्धमभिधीयते॥ ३ ॥

अपने मानसे ब्रह्माकी एक सौ वर्षकी आयु कही गयी है। उसी (ब्रह्माकी एक सौ वर्षकी आयु)-को 'पर' नामसे कहा जाता है और उस परका आधा 'परार्ध' कहलाता है॥ ३॥

काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः।
काष्ठास्त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्तिकी गतिः॥ ४ ॥

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः॥ ५ ॥

तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥ ६ ॥

द्विजोत्तमो! पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा कही गयी है। तीस काष्ठाकी एक कला और तीस कलाका समय एक मुहूर्त-काल होता है। उतनी ही संख्या अर्थात् तीस मुहूर्तोंका एक मानवीय अहोरात्र (दिन-रात) होता है, उतने ही अर्थात् तीस अहोरात्रोंका एक मास होता है जो दो पक्षवाला है। छः मासोंका एक अयन तथा उत्तर एवं दक्षिण नामसे दो अयनोंका एक वर्ष होता है। दक्षिण अयन अर्थात् दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि और उत्तर अयन अर्थात् उत्तरायण (देवताओंका) दिन होता है॥ ४—६॥

दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिः तद्विभागं निबोधत॥ ७ ॥

(श्रीकूर्मने ब्राह्मणोंसे कहा—) दिव्य बारह हजार वर्षोंका सत्य, त्रेता इत्यादि नामसे एक चतुर्युग होता है। उसके विभागोंका वर्णन सुनें॥ ७॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च कृतस्य तु॥ ८ ॥

त्रिशती द्विशती संध्या तथा चैकशती क्रमात्।
अंशकं षट्शतं तस्मात् कृतसंध्यांशकं विना॥ ९ ॥

चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग होता है। सत्ययुगकी उतने ही सौ वर्षोंकी अर्थात् चार सौ वर्षोंकी संध्या तथा संध्यांश (त्रेतायुगका संधिकाल) होता है। सत्ययुगके संध्यांशको छोड़कर क्रमशः तीन सौ, दो सौ तथा एक सौ—इस प्रकार कुल मिलाकर दिव्य छः सौ वर्षोंके द्वापर तथा कलियुगके संध्या तथा संध्यांश होते हैं॥ ८-९॥

त्रिद्व्येकसाहस्रमतो विना संध्यांशकेन तु।
त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञाने प्रकीर्तितम्॥ १०॥

एतद् द्वादशसाहस्रं साधिकं परिकल्पितम्।
तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते॥ ११॥

कालका ज्ञान करनेके लिये संध्यांशोंसे रहित त्रेता, द्वापर तथा कलियुग क्रमशः तीन, दो तथा एक हजार (दिव्य) वर्षोंके कहे गये हैं। कुछ अधिकता लिये यही (दिव्य) बारह हजार वर्षोंका कालपरिमाण कहा गया है। इसके इकहत्तर गुना कालको एक मनुका अन्तर अर्थात् एक मन्वन्तरका समय कहा गया है॥ १०-११॥

ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनवः स्युश्चतुर्दश।
स्वायम्भुवादयः सर्वे ततः सावर्णिकादयः॥ १२॥

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः॥ १३॥
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै।
व्याख्यातानि न संदेहः कल्पं कल्पेन चैव हि॥ १४॥

ब्राह्ममेकमहः कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते।
चतुर्युगसहस्रं तु कल्पमाहुर्मनीषिणः॥ १५॥
त्रीणि कल्पशतानि स्युस्तथा षष्टिर्द्विजोत्तमाः।
ब्रह्मणः कथितं वर्षं पराख्यं तच्छतं विदुः॥ १६॥

तस्यान्ते सर्वतत्त्वानां स्वहेतौ प्रकृतौ लयः।
तेनायं प्रोच्यते सद्भिः प्राकृतः प्रतिसंचरः॥ १७॥

ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लयः।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः॥ १८॥
एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः।
कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः॥ १९॥

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मासौ महेश्वरः॥ २०॥

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः।
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुतिः॥ २१॥

एकमत्र व्यतीतं तु परार्धं ब्रह्मणो द्विजाः।
साम्प्रतं वर्तते तद्वत् तस्य कल्पोऽयमष्टमः॥ २२॥

योऽतीतः सप्तमः कल्पः पाद्म इत्युच्यते बुधैः।
वाराहो वर्तते कल्पः तस्य वक्ष्यामि विस्तरम्॥ २३॥

ब्राह्मणो! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु (मन्वन्तर) होते हैं। वे सभी स्वायम्भुव (प्रथम मनु) आदि तथा सावर्णिक (अष्टम मनु) आदि मनु हैं। उन नरेश्वरों (मन्वन्तराधिपों)-के द्वारा सात द्वीपों एवं पर्वतोंवाली इस पृथ्वीका पूरे एक हजार युगोंतक पालन किया जाता है॥ १२-१३॥

एक मन्वन्तरके वर्णनसे अन्य भी—सभी मन्वन्तरोंका वर्णन कर दिया गया है (ऐसा समझना चाहिये)। इसमें संदेह नहीं करना चाहिये। प्रत्येक कल्प (पूर्व) कल्पके समान ही होता है। ब्रह्माका एक दिन एक कल्पके बराबर और रात्रि भी उतनी (अर्थात् एक कल्पके बराबर) ही होती है। विद्वानोंने एक हजार चतुर्युगीका एक कल्प कहा है॥ १४-१५॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! तीन सौ साठ कल्पोंका ब्रह्माका एक वर्ष कहा गया है, उसके सौ गुने (अर्थात् ३६०×१००= ३६,००० कल्पों या १०० वर्षोंके) कालको 'पर' इस नामसे जानना चाहिये। ('पर' नामक) उस कालके बीतनेपर सभी तत्त्वोंका अपने मूल कारण प्रकृतिमें लय हो जाता है। इसीलिये विद्वानोंने इसे प्राकृत प्रतिसञ्चर (प्राकृत प्रलय) कहा है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनोंका प्रकृतिमें लय हो जाता है। पुनः कालयोगसे उनका आविर्भाव होना कहा जाता है॥ १६—१८॥

इस प्रकार ब्रह्मा, जीव, वासुदेव तथा शंकरकी कालके द्वारा ही सर्जना होती है, पुनः वही काल इनका संहार भी करता है। यह काल भगवान् है, अनन्त है, अजर है, अमर है एवं अनादि है। सर्वव्यापी होनेसे, स्वतन्त्र होनेसे तथा सबका आत्मस्वरूप होनेसे यह महेश्वर कहलाता है॥ १९-२०॥

ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि बहुत होते हैं, किंतु भगवान् एक ही है, जो ईश, काल तथा कवि कहलाता है—ऐसा वेदका अभिमत है॥ २१॥

ब्राह्मणो! इस समय ब्रह्माजीका एक परार्ध बीत चुका है, अब उनका दूसरा परार्ध चल रहा है, उस (द्वितीय परार्ध)-का यह आठवाँ कल्प चल रहा है। ब्रह्माजीका जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो चुका है, विद्वानोंद्वारा वह 'पाद्म' (कल्प) कहा गया है। वर्तमानमें वाराह कल्प चल रहा है, इसके विस्तारका मैं वर्णन करूँगा॥ २२-२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

'नारायण' नामका निर्वचन, वराहरूपधारी नारायणद्वारा पृथ्वीका उद्धार, सनकादि ऋषियोंद्वारा वराहकी स्तुति

श्रीकूर्म उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्।
शान्तवातादिकं सर्वं न प्रज्ञायत किञ्चन॥ १ ॥

एकार्णवे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे।
तदा समभवद् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ २ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥ ३ ॥

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणम्प्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्॥ ४ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता नाम्ना पूर्वमिति श्रुतिः।
अयनं तस्य ता यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः॥ ५ ॥

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्॥ ६ ॥

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम्।
अनुमानात् तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः॥ ७ ॥

जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः।
अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम्॥ ८ ॥

पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम्।
दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः॥ ९ ॥

दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथिवीं प्रथितपौरुषम्।
अस्तुवञ्जनलोकस्थाः सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम्॥ १०॥

श्रीकूर्मने कहा—(सृष्टिके पूर्व) केवल एकमात्र समुद्र ही था अर्थात् सर्वत्र जल-ही-जल था और कुछ नहीं। कोई विभाग नहीं था, घोर अन्धकारमय था। उस समय वायु आदि सभी शान्त थे। कुछ भी जाना नहीं जाता था। स्थावर तथा जंगम (सम्पूर्ण सृष्टि)-के उस एकार्णवमें नष्ट हो जानेपर (विलीन हो जानेपर) उस समय हजार नेत्रों तथा हजार चरणोंवाले ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। हजार सिरवाले, सोनेके समान वर्णवाले, अतीन्द्रिय, ब्रह्मा जो नारायण नामवाले पुरुष कहलाते हैं, उस समय जलमें (एकार्णवमें) सोये हुए थे॥ १—३॥

सम्पूर्ण संसारके सृष्टि एवं विनाशके कारण, ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमें यह श्लोक कहा जाता है— ॥ ४॥

वेदमें 'अप्' अर्थात् 'जल' को 'नार' इस नामसे पहले कहा गया है और वह नार (जल) नरका अयन अर्थात् आश्रय-स्थान है, इस कारण वे 'नारायण' कहे जाते हैं। हजार युगोंके बराबर रात्रिका उपभोग करके वे नारायण (उस प्रलयकालीन) रात्रिके बीत जानेपर सृष्टि करनेके लिये ब्रह्मत्व ग्रहण करते हैं। तदनन्तर उस जल (एकार्णव)-में प्रलीन पृथ्वीको अनुमानद्वारा जानकर प्रजापतिने उसके उद्धारकी कामना की॥ ५—७॥

जलमें क्रीडा करते समय (वे) अत्यन्त सुन्दर वराहरूपमें अवस्थित हो गये। (भगवान्‌का वह स्वरूप) अन्य लोगोंके द्वारा मनसे भी न जाना जा सकने योग्य, वाक्स्वरूप तथा ब्रह्मसंज्ञक है। धराको धारण करनेवाले (उन) धराधर एवं आत्माधारने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमें प्रवेश करके अपनी दाढ़ (दंष्ट्रा)-द्वारा इसे (रसातलमें डूबी पृथ्वीको) ऊपर निकाला। (नारायणकी) दंष्ट्राके अग्रभागमें अवस्थित पृथ्वीको देखकर जनलोकमें रहनेवाले सिद्धों तथा ब्रह्मर्षियोंने अपने पौरुषको व्यक्त करनेवाले हरिकी (इस प्रकार) स्तुति की॥ ८—१०॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च॥ ११॥
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने॥ १२॥
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे॥ १३॥
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र शार्ङ्गचक्रासिधारिणे।
सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थाय नमो नमः॥ १४॥
नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥ १५॥

ऋषि बोले—देवाधिदेव, पुराणपुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्माको नमस्कार है। सृष्टि करनेवाले तथा सभी अर्थोंके ज्ञाता स्वयम्भू! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा परमात्माको नमस्कार है। विश्वके उत्पत्ति-स्थान, देवोंके हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णुको नमस्कार है। शार्ङ्ग (धनुष), चक्र (सुदर्शन) तथा तलवार (नन्दक) आदि धारण करनेवाले चतुर्मुख! आपको नमस्कार है। सभी प्राणियोंके आत्मरूप, कूटस्थको बार-बार नमस्कार है॥ ११—१४॥

नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः।
अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय करणाय च॥ १६॥

नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः।
नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः॥ १७॥

वेदके रहस्यरूपको नमस्कार है। वेद-योनिको नमस्कार है। शुद्ध-बुद्धको नमस्कार है। ज्ञानरूपको नमस्कार है। आनन्दस्वरूपको नमस्कार है। जगत्के साक्षी, अनन्त, अप्रमेय तथा कार्य एवं कारणरूपको नमस्कार है। पञ्चभूतरूपको नमस्कार है। पञ्चभूतात्मा (पञ्चभूतके अधिष्ठान आत्मा)-को नमस्कार है, मूलप्रकृतिको नमस्कार है। मायारूप आपको नमस्कार है॥ १५—१७॥

नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे।
नमो योगाधिगम्याय नमः संकर्षणाय ते॥ १८॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे।
नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभाविने॥ १९॥

नमोऽस्त्वादित्यवर्णाय नमस्ते पद्मयोनये।
नमोऽमूर्ताय मूर्ताय माधवाय नमो नमः॥ २०॥

हे वराह! आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारण करनेवालेको नमस्कार है। योगद्वारा जानने योग्यको नमस्कार है। संकर्षण! आपको नमस्कार है। तीन मूर्तियों एवं तीन धामों (स्थानों)-वाले दिव्य तेजःस्वरूप आपको नमस्कार है। तीन गुणोंको प्रवृत्त करनेवाले सिद्ध एवं पूज्य आपको नमस्कार है। आदित्यके समान वर्णवाले अर्थात् प्रकाशस्वरूप आपको नमस्कार है। पद्मयोनिको नमस्कार है। मूर्त एवं अमूर्तरूपको नमस्कार है। माधवको बारम्बार नमस्कार है॥ १८—२०॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव लयमेष्यति।
पालयैतज्जगत् सर्वं त्राता त्वं शरणं गतिः॥ २१॥

आपके द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि हुई है और आपमें ही (वह) विलीन भी हो जायगी। इस सम्पूर्ण जगत्का आप पालन करें। आप ही रक्षक हैं, आप ही शरण देनेवाले आश्रय-स्थान हैं॥ २१॥

इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्टुतः।
प्रसादमकरोत् तेषां वराहवपुरीश्वरः॥ २२॥

ततः संस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीपतिः।
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा प्रजापतिः॥ २३॥

सनक आदि (महर्षियों)-के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर वराह-शरीर धारण करनेवाले सर्वसमर्थ उन भगवान् विष्णुने उनपर कृपा की। इसके बाद पृथ्वीके स्वामी प्रजापतिने पृथ्वीको उसके स्थानमें प्रतिष्ठित कर दिया और मनसे उसको धारण करके अपने (वराह)-रूपको छोड़ दिया॥ २२-२३॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति सम्प्लवम्॥ २४॥

उस महान् जलराशिके ऊपर विशाल नौकाके समान स्थित पृथ्वी अपने देहके विस्तारके कारण डूबती नहीं है॥२४॥

पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन्।
प्राक्सर्गदग्धानखिलांस्ततः सर्गेऽदधन्मनः॥ २५॥

तदनन्तर पृथ्वीको समतल बनाकर उन्होंने पहली सृष्टिके दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथ्वीपर स्थापित किया और सृष्टि (करने)-में अपना मन लगाया॥ २५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें छठा अध्याय समाप्त हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

नौ प्रकारकी सृष्टि, ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंका आविर्भाव, ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चारों वेदोंकी उत्पत्ति इत्यादिका वर्णन

श्रीकूर्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥ १॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रश्चान्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥ २॥
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः।
संवृतस्तमसा चैव बीजकम्भुवनावृतः॥ ३॥

श्रीकूर्म बोले—उनके (ब्रह्माके) द्वारा सृष्टिके विषयमें सोचते रहनेपर अबुद्धिपूर्वक अन्धकाररूप वैसी ही सृष्टि हुई जैसी कि पूर्वके कल्पोंमें हुई थी। उन महात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्ध नामवाली यह पञ्चपर्वा अविद्या उत्पन्न हुई। उस अभिमानी (देव)-के द्वारा ध्यान करते समय अन्धकारसे ढकी हुई बीज-सदृश तथा लोकोंसे आवृत वह सृष्टि पाँच भागोंमें विभाजित होकर स्थित हुई॥ १—३॥

बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च।
मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः॥ ४॥
तं दृष्ट्वासाधकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः।
तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्त्रोतोऽभ्यवर्तत॥ ५॥
यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्त्रोतस्ततः स्मृतः।
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः॥ ६॥

बाहर एवं भीतरके प्रकाश (ज्ञान)-से शून्य, स्तब्ध (जड) तथा संज्ञा (चेतना)-विहीन नग (अर्थात् पर्वत, वृक्ष आदि) 'मुख्य' इस नामसे कहे जाते हैं और वही मुख्य सर्ग (मुख्य सृष्टि) कहलाता है। प्रभुने उस (मुख्य सर्ग)-को (सृष्टिके विस्तारमें) साधक (समर्थ) न देखकर दूसरी सृष्टिके लिये विचार किया। उनके ऐसा विचार करते ही 'तिर्यक्स्त्रोत' नामक (पशु-पक्षियों आदिकी) सृष्टि हुई। हे ब्राह्मणो! क्योंकि वह सृष्टि तिर्यक् (तिरछी) चलनेवाली थी, इसलिये तिर्यक्स्त्रोत सृष्टि कहलाती है। वे (मार्गका उल्लंघन करनेवाले) पशु आदि उत्पथग्राही कहे जाते हैं॥ ४—६॥

तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्ज ह।
ऊर्ध्वस्त्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः॥ ७॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः।
प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद् देवसंज्ञिताः॥ ८॥

उस तिर्यक्स्त्रोत नामक सृष्टिको भी (सृष्टि-विस्तारके लिये) निष्प्रयोजन जानकर (उन देवने) अन्य सर्गको उत्पन्न किया। वह (सर्ग) ऊर्ध्वस्त्रोत सात्त्विक सर्ग 'देवसर्ग' नामसे कहा गया। इस देवसर्गके लोगोंमें सुख और प्रीतिकी अधिकता रहती है। वे अंदर तथा बाहर आवरणसे रहित होते हैं तथा स्वभावसे ही अंदर-बाहर प्रकाशसे परिपूर्ण रहते हैं, इसलिये वे देव कहलाते हैं॥ ७-८॥

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुरासीत् तदाव्यक्तादर्वाक्स्त्रोतस्तु साधकः॥ ९ ॥

ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः।
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्तिताः॥ १० ॥

तदनन्तर निरन्तर सत्यका ध्यान करनेवाले उन देवके चिन्तन करनेपर उसी समय अव्यक्त (प्रकृति)-से (सृष्टि-विस्तारका) साधक अर्वाक्स्त्रोतवाला साधक (सर्ग) उत्पन्न हुआ। वे (अर्वाक्स्त्रोत प्राणी) प्रकाश (ज्ञान)-के बाहुल्यवाले, तमोगुण तथा रजोगुणकी अधिकतावाले, अधिक दुःखवाले और सत्त्वगुणसे सम्पन्न मनुष्य नामसे कहे जाते हैं॥ ९-१०॥

तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद् भगवानजः।
तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्॥ ११ ॥

तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः।
खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्तिताः।
इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुंगवाः॥ १२ ॥

उस (मानुष-सर्ग)-को देखकर अजन्मा भगवान्ने अन्य सर्गकी रचनाका विचार किया और उनके ऐसे सर्ग-विषयक ध्यान करते ही भूतादि सर्ग उत्पन्न हुआ। वे सभी संग्रह न करनेवाले, फिर भी बाँटनेके स्वभाववाले, उपभोग करनेवाले तथा शीलरहित 'भूतादि' इस नामसे कहे गये हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठो! इस प्रकार ये पाँच सर्ग कहे गये हैं॥ ११-१२॥

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः॥ १३ ॥

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः।
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वकः॥ १४ ॥

मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः।
तिर्यक्स्त्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः॥ १५ ॥

तथोर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः।
ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः॥ १६ ॥

अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्तितः।
नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे॥ १७ ॥

ब्रह्माका वह पहला सर्ग महत्सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओंका दूसरा सर्ग भूतसर्ग कहलाता है। तीसरा वैकारिक सर्ग ऐन्द्रियक सर्ग कहा जाता है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक हुआ। चौथा सर्ग मुख्य सर्ग है। स्थावर (जड पदार्थ) मुख्य कहलाते हैं। तिर्यक्स्त्रोतसे जिस सर्गको बतलाया है वह तिर्यग्योनिवाला पाँचवाँ सर्ग है। तदनन्तर ऊर्ध्वस्त्रोतसोंका छठा सर्ग है जो देवसर्ग कहलाता है। तदनन्तर अर्वाक्स्त्रोतसोंका सातवाँ सर्ग है जो मानुष सर्ग है। भूतादिकोंका आठवाँ सर्ग भौतिक सर्ग कहा गया है। नवाँ सर्ग कौमार सर्ग है। इस प्रकार ये नवों सर्ग प्राकृत तथा वैकृत दोनों प्रकारके हैं॥ १३—१७॥

प्राकृतास्तु त्रयः पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्या मुनिपुंगवाः॥ १८ ॥

मुनिश्रेष्ठो! पहलेके तीन सर्ग (महत्सर्ग, भूतसर्ग तथा ऐन्द्रियक सर्ग) प्राकृत सर्ग हैं, जो अबुद्धिपूर्वक होते हैं। और मुख्य आदि सर्ग (अवशिष्ट ६ सर्ग) बुद्धिपूर्वक होते हैं॥ १८॥

अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्।
सनकं सनातनं चैव तथैव च सनन्दनम्।
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः॥ १९ ॥

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमास्थिताः।
ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम्॥ २० ॥

प्रजापति ब्रह्माजीने सबसे पहले अपने ही समान सनक, सनातन, सनन्दन, ऋभु तथा सनत्कुमार नामक मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। हे ब्राह्मणो! ये पाँचों योगी थे, परम वैराग्यवान् थे और ईश्वरमें उनका मन आसक्त था। (इसलिये) उन्होंने सृष्टि (-के विस्तार)-में अपनी बुद्धि नहीं लगायी॥ १९-२०॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः।
मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः॥ २१॥

तं बोधयामास सुतं जगन्मायो महामुनिः।
नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः॥ २२॥

बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः।
स तप्यमानो भगवान् न किञ्चित् प्रत्यपद्यत॥ २३॥

लोकसृष्टिके कार्यमें उनके इस प्रकार निरपेक्ष (उदासीन) हो जानेपर प्रजापति (ब्रह्मा) मायापति परमेष्ठीकी[१] मायाके द्वारा तत्काल मोहित कर लिये गये। योगियोंके चित्तका अनुरञ्जन करनेवाले जगत्कर्ता महायोगी, महामुनि नारायणने (अपने) उस पुत्र (ब्रह्मा)-को प्रबुद्ध किया। (तब) उनके द्वारा प्रबुद्ध किये गये विश्वात्मा (ब्रह्मा)-ने परम तप किया, (किंतु) तप करनेपर भी उन भगवान् ब्रह्माको कुछ प्राप्त नहीं हुआ॥ २१—२३॥

ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥ २४॥

भ्रुकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् परमेश्वरः।
समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः॥ २५॥

स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः।
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम्॥ २६॥

तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर (प्रयोजन सिद्ध न होनेके कारण उन्हें) दुःखके कारण क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोधसे आविष्ट उन (ब्रह्मा)-के नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरीं। उनके (क्रोधके कारण) टेढ़ी भृकुटियोंवाले ललाटसे शरण देनेवाले नीललोहित परमेश्वर महादेव प्रकट हुए। वे ही तेजकी राशि सनातन भगवान् ईश हैं, जिन्हें विद्वान् लोग अपनी आत्मामें स्थित परमेश्वर (परमात्मा)-के रूपमें देखते हैं॥ २४—२६॥

ओंकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः।
तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः॥ २७॥

ओंकारका सम्यक् रूपसे स्मरणकर और प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए भगवान् ब्रह्माने उन (महादेव)-से कहा—इन अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करें॥ २७॥

निशम्य भगवान् वाक्यं शंकरो धर्मवाहनः।
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः।
कपर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान् नीललोहितान्॥ २८॥

धर्म (वृषभ)-पर आरूढ़ होनेवाले धर्मवाहन मङ्गलकारी भगवान् शिवने (ब्रह्माके) वचनको सुनकर मनसे अपने ही समान जटाधारी, आतंकरहित, तीन नेत्रवाले एवं नीललोहित रुद्रोंको उत्पन्न किया॥ २८॥

तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः।
सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः।
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वमशुभाः प्रजाः॥ २९॥

उनसे भगवान् ब्रह्माने कहा—जन्म लेनेवाली और मृत्युको प्राप्त होनेवाली प्रजाकी सृष्टि करो। वे ईश बोले—हे जगन्नाथ! मैं मृत्यु एवं वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेवाली प्रजाकी सृष्टि नहीं करूँगा। ऐसी अशुभ प्रजाओंको आप ही उत्पन्न करें॥ २९॥

निवार्य च तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भवः।
स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान् निबोधत॥ ३०॥

तब कमलसे उत्पन्न ब्रह्माने (सृष्टि-विस्तारके कार्यसे) रुद्रको रोककर (स्वयं) सभी स्थानाभिमानियोंको उत्पन्न किया, मैं उन्हें बता रहा हूँ (आपलोग) सुनें॥ ३०॥

आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा।
नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च॥ ३१॥
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः।
अर्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः॥ ३२॥

जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, आकाश, वायु और पृथ्वी इसी प्रकार नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति, लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन-रात, अर्धमास, मास, अयन, वर्ष तथा युग आदि॥ ३१-३२॥

१-छठे अध्यायमें ब्रह्मा और नारायणमें अभेद माना गया है, अतः यहाँ परमेष्ठी शब्द 'नारायण' का वाचक है।

स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत् पुनः।
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं संकल्पमेव च॥ ३३॥

स्थानाभिमानियोंकी सर्जना कर पुनः सृष्टिके सहायकों—मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, धर्म एवं संकल्पको उत्पन्न किया॥ ३३॥

प्राणाद् ब्रह्मासृजद् दक्षं चक्षुषश्च मरीचिनम्।
शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद् भृगुमेव च॥ ३४॥
श्रोत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायतः।
संकल्पं चैव संकल्पात् सर्वलोकपितामहः॥ ३५॥
पुलस्त्यं च तथोदानाद् व्यानाच्च पुलहं मुनिम्।
अपानात् क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठकम्॥ ३६॥

सभी लोकोंके पितामह ब्रह्मदेवने प्राण (वायु)-से दक्षको उत्पन्न किया, इसी प्रकार नेत्रोंसे मरीचि, सिरसे अङ्गिरा, हृदयसे भृगु, कानोंसे अत्रि नामवाले (ऋषि)-को, व्यवसायसे धर्मको और संकल्पसे संकल्पको तथा ऐसे ही उदान (वायु)-से पुलस्त्य, व्यान (वायु)-से पुलह मुनि, अपान (वायु)-से शान्त स्वभाव क्रतु और समान (वायु)-से वसिष्ठको उत्पन्न किया॥ ३४—३६॥

इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः।
आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः॥ ३७॥
ततो देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम्।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत्॥ ३८॥

ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न ये सभी गृहस्थ हैं तथा (सृष्टि-विस्तारके) सहयोगी हैं। मनुष्यका रूप धारणकर इन्होंने धर्मका प्रवर्तन किया। तदनन्तर देवता, असुर, पितर तथा मनुष्य—इन चारोंकी तथा जलकी सृष्टि करनेकी इच्छासे (ब्रह्माने) अपने-आपको नियुक्त किया॥ ३७-३८॥

युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः।
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः॥ ३९॥
उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तमः।
सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत।
सा तमोबहुला यस्मात् प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः॥ ४०॥

संयुक्त आत्मरूपवाले प्रजापतिसे तमोगुणकी मात्राका उद्रेक हुआ। तदनन्तर उनकी जंघासे पहले (तमोगुणी) असुर (योनिके) पुत्र उत्पन्न हुए। असुरोंकी सृष्टिकर पुरुषोत्तमने उस (तमोमय) शरीरका परित्याग कर दिया। उनके द्वारा छोड़ा गया वह शरीर शीघ्र ही रात्रिके रूपमें परिवर्तित हो गया। वह (रात्रि) चूँकि अन्धकारकी अधिकतावाली रहती है, अतः उसमें (रात्रिमें) प्रजाएँ सोती हैं॥ ३९-४०॥

सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यामगृह्णत।
ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यतः सम्प्रजज्ञिरे॥ ४१॥
त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद् दिनम्।
तस्मादहो धर्मयुक्ता देवताः समुपासते॥ ४२॥

(पुनः) देवने सत्त्वगुणात्मक दूसरे शरीरको धारण किया और तब उनके मुखसे दीप्तिमान् देवता प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने (प्रजापतिने) वह शरीर भी छोड़ दिया। वह सत्त्वगुणकी अधिकतावाला शरीर दिन हुआ। धर्मात्मा देवता इसीलिये दिनका सेवन करते हैं॥ ४१-४२॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्।
पितृवन्मन्यमानस्य पितरः सम्प्रजज्ञिरे॥ ४३॥
उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वसृक्।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः संध्या व्यजायत॥ ४४॥

पुनः (उन्होंने) सत्त्वगुणात्मक ही एक दूसरे शरीरको धारण किया। पिताके समान माननेवाले उनके द्वारा पितर उत्पन्न हुए। विश्वकी रचना करनेवाले उन्होंने (ब्रह्माने) पितरोंकी सृष्टिकर उस शरीरको भी छोड़ दिया। वह छोड़ा गया शरीर शीघ्र ही संध्याके रूपमें बदल गया॥ ४३-४४॥

तस्मादहर्देवतानां रात्रिः स्याद् देवविद्विषाम्।
तयोर्मध्ये पितॄणां तु मूर्तिः संध्या गरीयसी॥ ४५॥

इसीलिये देवताओंके लिये दिन, देवविद्वेषी असुरोंके लिये रात तथा दिन और रातके मध्यकी संध्या जो पितरोंकी मूर्तिरूप है, वह प्रशस्त है॥ ४५॥

तस्माद् देवासुराः सर्वे मनवो मानवास्तथा।
उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम्॥ ४६॥

इसीलिये देवता, असुर, (स्वायम्भुव आदि) सभी मनु तथा सभी मनुष्य दिन और रातके मध्यमें सदा स्थित रहनेवाले (संध्यारूपी) शरीर (मूर्ति)-की उपासना करते हैं॥ ४६॥

रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यामगृह्णत।
ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः॥ ४७॥

(तब) ब्रह्माने रजोगुणकी अधिकतावाले अन्य शरीरको धारण किया, जिससे रजोगुणसे आवृत उनके पुत्र उत्पन्न हुए, जो मनुष्य कहलाये॥ ४७॥

तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः।
ज्योत्स्ना सा चाभवद्विप्राः प्राक्संध्या याभिधीयते॥ ४८॥

ब्राह्मणो! उन प्रजापतिने शीघ्र ही उस (रजोगुणात्मक) शरीरको भी छोड़ दिया। वह (छोड़ा गया शरीर) ज्योत्स्नाके रूपमें हो गया, जिसे प्राक्संध्या कहा जाता है॥ ४८॥

ततः स भगवान् ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुंगवाः।
मूर्तिं तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्ययूयुजत्॥ ४९॥

अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे।
पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः॥ ५०॥

सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वाः सम्प्रजज्ञिरे।
रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत् प्रभुः॥ ५१॥

हे ब्राह्मणो! भगवान् ब्रह्मा फिर तम तथा रजोमयी मूर्ति (शरीर)-को धारण कर पुनः योगयुक्त हुए। इस शरीरसे अन्धकारमें भूखसे व्याकुल होनेवाले राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए। तमोगुण तथा रजोगुणकी अधिकतावाले वे महान् बलशाली पुत्र निशाचर कहलाये। ऐसे ही सर्प, यक्ष, भूत तथा गन्धर्व उत्पन्न हुए। तदनन्तर रजोगुण तथा तमोगुणसे आविष्ट अन्य प्राणियोंको भी प्रभुने उत्पन्न किया॥ ४९—५१॥

वयांसि वयसः सृष्ट्वा अवयो वक्षसोऽसृजत्।
मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद् गाश्च निर्ममे॥ ५२॥

पद्भ्यां चाश्वान् समातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान्।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्यांश्च जातयः।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥ ५३॥

वयः (अवस्था)-से पक्षियोंकी सृष्टि करनेके अनन्तर (ब्रह्माने) वक्षःस्थलसे भेड़ोंको उत्पन्न किया। मुखसे बकरोंको उत्पन्न किया और उदर-देशसे गौओंकी सृष्टि की। पैरोंसे हाथियोंसहित घोड़ों, गदहों, गायके समान ही दूसरे प्रकारकी गायों (नीलगाय आदि), मृगों, ऊँटों, खच्चरों, न्यङ्कुओं (मृग-विशेष) तथा अन्य (तिर्यक् आदि) योनियोंको उत्पन्न किया। फल-मूलवाली ओषधियाँ उनके रोमोंसे पैदा हुईं॥ ५२-५३॥

गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम्।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥ ५४॥

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा।
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥ ५५॥

सामानि जागतं छन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥ ५६॥

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥ ५७॥

(ब्रह्माजीने अपने) प्रथम (पूर्व) मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्साम, रथन्तर (साम) और यज्ञोंमें अग्निष्टोम (नामक यज्ञ)-को उत्पन्न किया। दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुभ् छन्द, पञ्चदश स्तोम (मन्त्रोंका समूह-विशेष) बृहत्साम तथा उक्थ (नामक वेदमन्त्रों)-का सृजन किया। पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम (मन्त्रोंका समूह-विशेष) और वैरूप तथा अतिरात्र नामक यज्ञोंको उत्पन्न किया। उत्तर मुखसे इक्कीस शाखाओंवाले अथर्ववेद, अनुष्टुप् छन्द और आप्तोर्याम तथा वैराज (नामक यज्ञ)-को उत्पन्न किया॥ ५४—५७॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापतेः॥ ५८॥

प्रजापति ब्रह्माके द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि करते समय उनके शरीरसे उच्च एवं निम्न (कोटिके अन्य भी) प्राणियोंकी सृष्टि हुई। देवता, ऋषि, पितर तथा मनुष्य—इन चार प्रकारकी सृष्टि करके (ब्रह्माने) चर तथा अचर (सभी) प्राणियोंकी सृष्टि की॥ ५८-५९॥

सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम्।
ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ५९॥
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसः शुभाः।
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान्।
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम्॥ ६०॥

यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों तथा शुभ अप्सराओं, नरों, किन्नरों, राक्षसों, पक्षियों, पशुओं, मृगों तथा सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य एवं अनित्य-भेदसे चर एवं अचर सृष्टि दो प्रकारकी है। पहलेकी सृष्टियोंमें उन (प्राणियों)-के जो-जो कर्म निश्चित थे अगली सृष्टियोंमें भी उत्पन्न होकर वे बार-बार उन्हीं कर्मोंको प्राप्त करते हैं॥ ६०-६१॥

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टौ प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥ ६१॥

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते॥ ६२॥

इसीलिये उसी प्रकारकी भावना (संस्कार)-से प्रेरित होकर (वे प्राणी) हिंसक, अहिंसक, कोमल, क्रूर, धर्म-अधर्म तथा सत्य एवं असत्यकी प्रवृत्तियाँ प्राप्त करते हैं और वही (कर्म) उन्हें रुचिकर भी लगता है॥ ६२॥

महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु।
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम्॥ ६३॥

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः॥ ६४॥

आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु दृष्टयः।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥ ६५॥

विधाताने स्वयं ही प्राणियोंकी इन्द्रियोंके विषयों, महाभूतों एवं मूर्तियोंमें भिन्नता और विनियोगकी व्यवस्था की है। उन महेश्वरने प्रारम्भमें वेदके शब्दोंसे ही प्राणियोंके नाम और रूप तथा कर्मोंकी विविधताका निर्माण किया। वेदोंमें जिन सिद्धान्तों और आर्ष नामोंका प्रतिपादन हुआ है, उन्हीं नामोंको ब्रह्मा (प्रलयकालीन) रात्रिके अन्तमें उत्पन्न पदार्थोंको प्रदान करते हैं॥ ६३—६५॥

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥ ६६॥

प्रलयकालसे पूर्व जो ऋतुएँ और ऋतुओंके चिह्न तथा अनेक प्रकारके रूप (आकार) दिखलायी देते थे, अगले युगोंमें वे उन्हीं-उन्हीं (नाम-रूपों तथा) भावोंमें प्रकट होकर दिखलायी देते हैं॥ ६६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

सृष्टि-वर्णनमें ब्रह्माजीसे मनु और शतरूपाका प्रादुर्भाव, स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंका वर्णन तथा उनका विवाह, धर्म तथा अधर्मकी संतानोंका विवरण

श्रीकूर्म उवाच

एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च।
यदा चास्य प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः॥ १ ॥

तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाशोचत दुःखितः।
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्॥ २ ॥
अथात्मनि समद्राक्षीत् तमोमात्रां नियामिकाम्।
रजःसत्त्वं च संवृत्य वर्तमानां स्वधर्मतः॥ ३ ॥

तमस्तद् व्यनुदत् पश्चात् रजः सत्त्वेन संयुतः।
तत् तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत॥ ४ ॥

अधर्माचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्॥ ५ ॥

द्विधाकरोत् पुनर्देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत् प्रभुः॥ ६ ॥

नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम्।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता॥ ७ ॥

योगैश्वर्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता।
योऽभवत् पुरुषात् पुत्रो विराडव्यक्तजन्मनः॥ ८ ॥

स्वायम्भुवो मनुर्देवः सोऽभवत् पुरुषो मुनिः।
सा देवी शतरूपाख्या तपः कृत्वा सुदुश्चरम्॥ ९ ॥

भर्तारं ब्रह्मणः पुत्रं मनुमेवान्वपद्यत।
तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत॥ १० ॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम्।
तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददौ पुनः॥ ११ ॥

श्रीकूर्मने कहा—इस प्रकार स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंकी सृष्टि हुई, किंतु जब उन बुद्धिमान् (ब्रह्मा)-द्वारा उत्पन्न की गयी प्रजाओंमें वृद्धि नहीं हुई, तब तमोगुणकी अधिकतासे आवृत ब्रह्मा दुःखी होकर चिन्ता करने लगे और फिर उन्होंने अर्थका निश्चय करनेवाली बुद्धिको ग्रहण किया॥ १-२॥

तदनन्तर उन्होंने स्वधर्मानुसार रजोगुण एवं सत्त्वगुणको आवृत कर स्थित रहनेवाली तथा (कर्मकी) नियामिका (तमोवृत्ति)-को अपनी आत्मामें देखा। तत्पश्चात् सत्त्वगुणसे संयुक्त रजोगुणने उस तमोगुणको दूर किया और दूर हुआ वह तम दो भागोंमें विभक्त हो गया॥ ३-४॥

हे ब्राह्मणो! (इस प्रकार दो भागोंमें विभक्त हुए तमसे) अधर्माचरण और अशुभ लक्षणोंवाली हिंसा उत्पन्न हुई। तब ब्रह्माजीने अपने उस प्रकाशमान शरीरको छोड़ दिया॥ ५॥

पुनः (पुरातन) पुरुष प्रभुने अपने शरीरको दो भागोंमें बाँटा। आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे नारी। तत्पश्चात् (उन्होंने) विराट् पुरुषको उत्पन्न किया॥ ६॥

उन्होंने 'शतरूपा' नामवाली कल्याणमयी योगिनी नारीको बनाया, वह पृथिवी-लोक तथा द्युलोकको अपनी महिमासे व्याप्तकर प्रतिष्ठित हुई॥ ७॥

(वह शतरूपा नामवाली नारी) योगके ऐश्वर्य एवं बलसे सम्पन्न तथा ज्ञान-विज्ञानसे युक्त थी। (और) जो पुरुषसे अव्यक्तजन्मा ब्रह्माका विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह देवपुरुष मुनि स्वायम्भुव मनुके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। शतरूपा नामवाली उस देवीने अत्यन्त कठोर तप करके ब्रह्माजीके पुत्र (स्वायम्भुव) मनुको ही (अपना) पति बनाया और शतरूपाने उनसे (मनुसे) दो पुत्र उत्पन्न किये॥ ८—१०॥

(ये ही) प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। (इनके अतिरिक्त) दो श्रेष्ठ कन्याएँ भी हुईं। उन दो कन्याओंमेंसे स्वायम्भुव मनुने प्रसूति नामक एक कन्या दक्ष प्रजापतिको प्रदान की॥ ११॥

प्रजापतिरथाकूतिं मानसो जगृहे रुचिः।
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्धितं जगत्॥ १२॥

यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ १३॥
प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिं तथा।
ससर्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत॥ १४॥
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी॥ १५॥
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः शुभाः।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥ १६॥

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
संततिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥ १७॥
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित्॥ १८॥
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः॥ १९॥

श्रद्धया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः।
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष उच्यते॥ २०॥

पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा।
क्रियायाश्चाभवत् पुत्रो दण्डः समय एव च॥ २१॥

बुद्ध्या बोधः सुतस्तद्वदप्रमादो व्यजायत।
लज्जाया विनयः पुत्रो वपुषो व्यवसायकः॥ २२॥

क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धिरजायत।
यशः कीर्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसूनवः॥ २३॥

कामस्य हर्षः पुत्रोऽभूद् देवानन्दो व्यजायत।
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः॥ २४॥
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद् निकृतिं चानृतं सुतम्।
निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च॥ २५॥

माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः।
भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्॥ २६॥

आकूति नामक दूसरी कन्याको (ब्रह्माजीके) मानस पुत्र रुचि प्रजापतिने ग्रहण किया। मानस पुत्र रुचि प्रजापतिने आकूतिसे दो संतानें प्राप्त कीं—यज्ञ और दक्षिणा, जिनसे संसार वृद्धिको प्राप्त हुआ॥ १२॥

यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र उत्पन्न हुए जो स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'याम' इस नामसे प्रसिद्ध देवता हुए और दक्ष प्रजापतिने प्रसूतिसे चौबीस कन्याओंको उत्पन्न किया, उनके नामोंको भलीभाँति सुनो—(वे हैं—) श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि तथा तेरहवीं कन्याका नाम है कीर्ति॥ १३—१५॥

दक्ष प्रजापतिकी इन (तेरह दाक्षायणी) मङ्गलमयी कन्याओंको धर्मने पत्नीरूपमें ग्रहण किया। उन (तेरह कन्याओं)-के अतिरिक्त इनसे सुन्दर आँखोंवाली दक्षकी ग्यारह, अवस्थामें छोटी कन्याएँ और थीं (जिनके नाम हैं—) ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संतति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा॥ १६-१७॥

श्रेष्ठ मुनियो! ख्याति, सती आदि जो (ग्यारह) कन्याएँ थीं, उन्हें क्रमशः भृगु, मरीचि, अङ्गिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, परम धर्मज्ञ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ नामक मुनियों, अग्निदेव और पितरोंने ग्रहण किया॥ १८-१९॥

श्रद्धाका पुत्र 'काम' तथा लक्ष्मीका पुत्र 'दर्प' नामसे कहा जाता है। धृतिका 'नियम' नामक पुत्र तथा तुष्टिका (पुत्र) 'संतोष' कहलाता है॥ २०॥

पुष्टिका पुत्र 'लाभ' और मेधाका पुत्र 'श्रुत' हुआ। क्रियाका पुत्र 'दण्ड' हुआ और वही 'समय' भी कहलाता है। बुद्धिसे 'बोध' नामक पुत्र और उसी प्रकार 'अप्रमाद' नामक पुत्र भी हुआ। लज्जाका 'विनय' नामक पुत्र और वपुका 'व्यवसायक' हुआ। 'क्षेम' शान्तिका पुत्र और 'सुख' सिद्धिका पुत्र हुआ। इसी प्रकार कीर्तिका 'यश' नामक पुत्र हुआ। ये सभी धर्मके पुत्र हुए। कामका 'हर्ष' नामक पुत्र हुआ, जो देवताओंको आनन्द देनेवाला हुआ। यही (इतनी) धर्मकी सुखदायक सृष्टि कहलाती है॥ २१—२४॥

अधर्मसे हिंसाने निकृति तथा अनृत नामक पुत्रको उत्पन्न किया। निकृति और अनृतसे भय तथा नरक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। माया तथा वेदना—ये दो इनकी क्रमशः भय एवं नरककी पत्नियाँ हैं। मायाने भयसे समस्त प्राणियोंको मार देनेवाले मृत्युको उत्पन्न किया॥ २५-२६॥

वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे॥ २७॥

वेदनाने भी रौरव (नरक नामक पति)-से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा तथा क्रोध उत्पन्न हुए॥ २७॥

दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः।
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥ २८॥

ये सभी उत्तरोत्तर अधिक दुःखदायी कहे गये हैं और अधर्माचरण ही इनका लक्षण है। इनकी न कोई स्त्री है और न कोई पुत्र। ये सभी ऊर्ध्वरेता हैं॥ २८॥

इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः।
संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुंगवाः॥ २९॥

श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार धर्मनियामकने तामस सर्गकी सृष्टि की। मैंने संक्षेपमें इस विशिष्ट सृष्टिका वर्णन किया॥ २९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

शेषशायी नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति तथा उसी कमलसे ब्रह्माका प्राकट्य, विष्णु-मायाद्वारा ब्रह्माका मोहित होकर विष्णुसे विवाद करना, भगवान् शंकरका प्राकट्य, विष्णुद्वारा ब्रह्माको शिवका माहात्म्य बताना, ब्रह्माद्वारा शिवकी स्तुति तथा शिव और विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः।
प्रणम्य वरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः॥ १॥

सूतजी बोले—नारद आदि महर्षियोंने यह वचन सुननेपर संशयग्रस्त होते हुए वरदाता विष्णुको प्रणामकर इस प्रकार पूछा—॥ १॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्दन।
इदानीं संशयं चेममस्माकं छेत्तुमर्हसि॥ २॥
कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक्।
पुत्रत्वमगमच्छम्भुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ३॥
कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः।
अण्डजो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

ऋषियोंने कहा—हे जनार्दन! आपने मुख्य आदिकी सृष्टिका वर्णन किया। अब इस समय जो संशय हमें हो रहा है, उसे आप दूर करें—(ब्रह्मासे) पूर्वमें उत्पन्न होनेपर भी पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले ईश भगवान् शिव किस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पुत्रत्वको प्राप्त हुए और कैसे जगत्‌के स्वामी लोकपितामह अण्डज (हिरण्यगर्भ) भगवान् ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उसे आप हमें बतलायें॥ २—४॥

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शंकरस्यामितौजसः।
पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च॥ ५॥

श्रीकूर्म बोले—ऋषियो! आप सभी सुनें— अमित तेजस्वी शंकर ब्रह्माके पुत्र-रूपमें कैसे हुए और कैसे ब्रह्मा कमलसे उत्पन्न हुए॥ ५॥

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत् त्रयम्।
आसीदेकार्णवं सर्वं न देवाद्या न चर्षयः॥ ६॥

विगत कल्पकी समाप्तिपर तीनों लोकोंमें घोर अन्धकार व्याप्त हो गया। सर्वत्र केवल जल-ही-जल था। न कोई देवता आदि थे और न कोई ऋषिजन॥ ६॥

तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे।
आश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः॥ ७॥

उस जनशून्य अत्यन्त शान्त (समुद्रमें) पुरुषोत्तम नारायणदेव शेषनागकी शय्याका आश्रय लेकर सोये हुए थे॥ ७॥

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः॥ ८॥

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः।
महाविभूतिर्योगात्मा योगिनां हृदयालयः॥ ९॥

कदाचित् तस्य सुप्तस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुतम्।
त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्बभौ॥ १०॥

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसंनिभम्।
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥ ११॥

हजारों सिर, हजारों नेत्र, हजारों चरण, हजारों बाहुवाले होकर वे विद्वानोंके चिन्तनके विषयरूप, सर्वज्ञ, पीतवस्त्रधारी, विशाल नेत्रवाले, नीले बादलके समान वर्णवाले, महाविभूतिस्वरूप, योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाले योगात्मा (नारायण) जब किसी समय शेषशय्यापर शयन कर रहे थे, तब उनकी नाभिसे लीला करनेके लिये दिव्य अद्भुत, तीनों लोकोंका साररूप, एक स्वच्छ कमल प्रकट हुआ। (वह कमल) सौ योजन विस्तारवाला, तरुण आदित्यके समान प्रकाशमान, पुण्यमय दिव्य गन्धसे सम्पन्न और कर्णिकाएँ तथा केसरसे समन्वित था॥ ८—११॥

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्तमानस्य शार्ङ्गिणः।
हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे॥ १२॥

स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम्।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः॥ १३॥

शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले शार्ङ्गधन्वा (नारायण) इसी रूपमें बहुत समयसे निवास कर रहे थे तभी एक समय भगवान् हिरण्यगर्भ उस स्थानपर गये। उनकी मायासे मुग्ध उन विश्वात्माने उन (सुप्त) सनातन (पुरुष)-को हाथसे उठाकर यह मधुर वचन कहा— ॥ १२-१३॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते।
एकाकी को भवाञ्छेते ब्रूहि मे पुरुषर्षभ॥ १४॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! अन्धकारसे आवृत इस घोर, निर्जन एकार्णवमें अकेले सोनेवाले आप कौन हैं? मुझे बतलायें॥ १४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः।
उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥ १५॥

उनके इस वचनको सुनकर मेघके समान गम्भीर स्वरवाले गरुडध्वजने हँसकर ब्रह्मदेवसे कहा— ॥ १५॥

भो भो नारायणं देवं लोकानां प्रभवाप्ययम्।
महायोगेश्वरं मां त्वं जानीहि पुरुषोत्तमम्॥ १६॥

मयि पश्य जगत् कृत्स्नं त्वां च लोकपितामहम्।
सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम्॥ १७॥

एवमाभाष्य विश्वात्मा प्रोवाच पुरुषं हरिः।
जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेधसम्॥ १८॥

(ब्रह्माजी आप) मुझे ही समस्त लोकोंकी उत्पत्ति एवं संहार करनेवाला महायोगेश्वर एवं पुरुषोत्तम नारायण-देव जानें। पर्वत और महान् द्वीपोंसे युक्त सात समुद्रोंसे घिरे हुए इस सम्पूर्ण जगत्‌के साथ ही समस्त लोकोंके पितामह (ब्रह्माजी) आप अपनेको भी मुझमें ही देखें। ऐसा कहकर विश्वात्मा महायोगी हरिने (सब कुछ) जानते हुए भी ब्रह्मारूपी पुरुषसे कहा—आप कौन हैं?॥ १६—१८॥

ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः।
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा॥ १९॥

तदनन्तर वेदनिधि प्रभु भगवान् ब्रह्माने हँसकर कमलकी आभाके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मुसकानवाले (भगवान् विष्णुको इस प्रकार) मधुर वाणीमें उत्तर दिया— ॥ १९॥

अहं धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः।
मय्येव संस्थितं विश्वं ब्रह्माहं विश्वतोमुखः॥ २०॥

मैं ही धाता (धारण करनेवाला), विधाता (विधान बनानेवाला), स्वयम्भू (स्वयं ही उत्पन्न होनेवाला) और प्रपितामह हूँ। मुझमें ही (सम्पूर्ण) विश्व स्थित है। मैं सभी ओर मुखवाला ब्रह्मा हूँ॥ २०॥

श्रुत्वा वाचं स भगवान् विष्णुः सत्यपराक्रमः।
अनुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनुम्॥ २१॥

त्रैलोक्यमेतत् सकलं सदेवासुरमानुषम्।
उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥ २२॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः।
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत्॥ २३॥

सत्यपराक्रम वे भगवान् विष्णु (ब्रह्मा)-का वचन सुनकर (उनकी) आज्ञा लेकर योगबलसे ब्रह्माके शरीरमें प्रविष्ट हुए। उन देव (ब्रह्मा)-के उदरमें देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको देखकर श्रीविष्णुको (अत्यन्त) आश्चर्य हुआ। तदनन्तर नागराजकी शय्यापर निवास करनेवाले अजातशत्रु वे भगवान् (विष्णु) उनके (ब्रह्माके) मुखसे बाहर निकलकर पितामह (ब्रह्मा)-से बोले—॥ २१—२३॥

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम्।
प्रविश्य लोकान् पश्यैतान् विचित्रान् पुरुषर्षभ॥ २४॥

पुरुषश्रेष्ठ! आप भी अब इसी प्रकार मेरे उदरमें प्रविष्ट होकर सदा इन विचित्र लोकोंको देखें॥ २४॥

ततः प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च।
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश कुशध्वजः॥ २५॥

तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत् सत्यविक्रमः।
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः॥ २६॥

तब भगवान् विष्णुकी यह आह्लाद प्रदान करनेवाली वाणी सुनकर और पुनः उनका (श्रीविष्णुका) अभिनन्दन कर कुशध्वज (ब्रह्मा)-ने लक्ष्मीपति (भगवान् विष्णु)-के उदरमें प्रवेश किया। सत्यविक्रम (ब्रह्मा)-ने उन्हीं लोकोंको (भगवान् विष्णुके) उदरमें स्थित देखा (जिन्हें श्रीविष्णुने ब्रह्माके उदरमें देखा था)। देवके (उदरमें) भ्रमण करते हुए उन्हें हरि (विष्णु)-का कोई अन्त न दिखायी दिया॥ २५-२६॥

ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना।
जनार्दनेन ब्रह्मासौ नाभ्यां द्वारमविन्दत॥ २७॥

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डजः।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः॥ २८॥

तदनन्तर महात्मा जनार्दनने (अपनी इन्द्रियोंके) सभी द्वारोंको बंद कर दिया, तब ब्रह्माने उनकी नाभिमें द्वार प्राप्त किया। सुवर्णमय अण्डसे उत्पन्न चतुर्मुख (ब्रह्मा)-ने योगबलसे उसमें (नाभिमें) प्रवेश कर (नाभिसे उत्पन्न) कमलसे अपने रूपको बाहर निकाला॥ २७-२८॥

विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् जगद्योनिः पितामहः॥ २९॥

स मन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम्।
प्रोवाच पुरुषं विष्णुं मेघगम्भीरया गिरा॥ ३०॥

पद्मगर्भके समान[1] शोभावाले स्वयम्भू, जगद्योनि, पितामह भगवान् ब्रह्मा अरविन्द (रक्त कमल)-पर बैठे हुए शोभित होने लगे। अपनेको सम्पूर्ण विश्वका स्वामी तथा परम पद (आश्रय) मानते हुए उन्होंने (ब्रह्माने) मेघके समान गम्भीर वाणीमें पुरुषोत्तम विष्णुसे कहा—॥ २९-३०॥

१-रक्त कमलके भीतर जैसी अरुणिमा होती है वैसी अरुणिमा (लालिमा-ललाई)-से सुशोभित।

किं कृतं भवतेदानीमात्मनो जयकाङ्क्षया।
एकोऽहं प्रबलो नान्यो मां वै कोऽभिभविष्यति॥ ३१॥

आपने अपनी विजयकी आकांक्षासे इस समय यह क्या किया (अपनी सभी इन्द्रियोंके द्वारोंको क्यों बंद कर दिया?)। एकमात्र मैं ही सबसे बड़ा बलशाली हूँ और कोई नहीं है, मुझे कौन पराजित कर पायेगा?॥ ३१॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यं ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यं बभाषे मधुरं हरिः॥ ३२॥

लोकनियामक ब्रह्माका वचन सुनकर नारायण हरिने सान्त्वनापूर्वक यह मधुर वाक्य कहा—॥ ३२॥

भवान् धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः।
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि मे॥ ३३॥

किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वां बाधितुमिच्छया।
को हि बाधितुमन्विच्छेद् देवदेवं पितामहम्॥ ३४॥

न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यो मे सर्वथा भवान्।
सर्वमन्वय कल्याणं यन्मयापहृतं तव॥ ३५॥

अस्माच्च कारणाद् ब्रह्मन् पुत्रो भवतु मे भवान्।
पद्मयोनिरिति ख्यातो मत्प्रियार्थं जगन्मय॥ ३६॥

आप ही धाता, विधाता और स्वयम्भू पितामह हैं। (मैंने) ईर्ष्या-द्वेषके कारण अपने (शरीरके) द्वारोंको बंद नहीं किया, अपितु लीला करनेकी इच्छासे ही मैंने ऐसा किया न कि आपको बाधा पहुँचानेकी दृष्टिसे। देवाधिदेव पितामह आपको भला कौन बाधा पहुँचाना चाहेगा। आपको कुछ अन्यथा नहीं समझना चाहिये। आप मेरे लिये सभी प्रकारसे मान्य हैं। मेरे द्वारा जो आपका अपहरण हुआ है, उसमें आप सभी प्रकारसे अपना कल्याण ही समझें। इसी कारण ब्रह्मन्! मेरी प्रीतिके लिये आप मेरे पुत्र बनें। जगन्मूर्ति! आप 'पद्मयोनि' इस नामसे विख्यात हों॥ ३३—३६॥

ततः स भगवान् देवो वरं दत्त्वा किरीटिने।
प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत॥ ३७॥

तदनन्तर भगवान् देव (ब्रह्मा)-ने किरीटी (विष्णु)-को वर देकर अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः विष्णुसे कहा—॥ ३७॥

भवान् सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः।
सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम्॥ ३८॥

अहं वै सर्वलोकानामात्मा लोकमहेश्वरः।
मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्माहं पुरुषः परः॥ ३९॥

नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः।
एका मूर्तिर्द्विधा भिन्ना नारायणपितामहौ॥ ४०॥

आप सभीके आत्मरूप हैं, अनन्त हैं और सभीके परम ईश्वर हैं। आप सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं तथा आप ही सनातन परब्रह्म हैं। मैं ही सभी लोकोंकी आत्मा एवं लोकमहेश्वर हूँ। यह सब कुछ मेरा ही स्वरूप है। मैं परम पुरुष ब्रह्मा हूँ। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका परमेश्वर दूसरा अन्य कोई नहीं है, नारायण और पितामहके रूपमें एक मूर्ति ही दो भागोंमें विभक्त हुई है॥ ३८—४०॥

तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम्।
इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति॥ ४१॥

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम्।
प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम्॥ ४२॥

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम्।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज॥ ४३॥

उनके (ब्रह्माके) द्वारा ऐसा कहे जानेपर वासुदेव ब्रह्मासे इस प्रकार बोले—यह प्रतिज्ञा[१] आपके विनाशका कारण बनेगी। क्या आप ब्रह्माधिपति योगेश्वर, अव्यय एवं प्रधान पुरुष ईशान (शंकर)-को नहीं देख रहे हैं? मैं उन परमेश्वरको जानता हूँ। योगीन्द्र तथा सांख्यशास्त्रके ज्ञाता भी जिन महेश्वरका दर्शन नहीं कर पाते, आप उन्हीं अनादिनिधन ब्रह्मकी शरण ग्रहण करें॥ ४१—४३॥

१-हम दोनोंके अतिरिक्त दूसरा परमेश्वर नहीं है—यह प्रतिज्ञा।

ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्।
भवान् न नूनमात्मानं वेत्ति तत् परमक्षरम्॥ ४४॥

ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम्।
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः॥ ४५॥

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय।
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत॥ ४६॥

मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः।
न मेऽस्त्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहं वदामि ते॥ ४७॥

किन्तु मोहयति ब्रह्मन् भवन्तं पारमेश्वरी।
मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा॥ ४८॥

तदनन्तर क्रुद्ध ब्रह्माने कमलकी आभाके समान नेत्रवाले केशवसे कहा—निश्चित ही आप अपने-आपको वह परम अक्षर, जगत्का एकमात्र आत्मरूप, ब्रह्मरूप, परम पद (शरण) नहीं जान रहे हैं। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका परमेश्वर और दूसरा कोई विद्यमान नहीं है। आप दीर्घ निद्राका परित्याग कर अपने-आपको देखें (पहचानें)। उनके (ब्रह्माके) इस क्रोधयुक्त वचनको सुनकर विष्णुने कहा—हे कल्याण! इस प्रकार न कहें, इस प्रकार न कहें, (यह उन) महात्माकी निन्दा है। ब्रह्मन्! मेरे लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है, मैं आपसे असत्य नहीं कह रहा हूँ। किंतु ब्रह्मन्! आत्मासे समुद्भूत समस्त विशेषोंकी हेतुभूत परमेश्वरकी माया ही आपको मोहित कर रही है॥ ४४—४८॥

एतावदुक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह।
ज्ञात्वा तत् परमं तत्त्वं स्वमात्मानं महेश्वरम्॥ ४९॥

इतना कहकर भगवान् विष्णु अपने आत्मरूप महेश्वरको उस सर्वोत्कृष्ट परम तत्त्वके रूपमें जानकर चुप हो गये॥ ४९॥

कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः।
प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुरासीत् ततो हरः॥ ५०॥

ललाटनयनोऽनन्तो जटामण्डलमण्डितः।
त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः॥ ५१॥

दिव्यां विशालां ग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः।
मालामत्यद्भुताकारां धारयन् पादलम्बिनीम्॥ ५२॥

तदनन्तर ब्रह्माके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये प्राणियोंके परम ईश्वर अपरिमेयात्मा (असीम सामर्थ्यसम्पन्न) हर (भगवान् शंकर) वहाँ प्रादुर्भूत हो गये। उन अनन्त (भगवान् शंकर)-के ललाटमें नेत्र था। वे जटामण्डलसे सुशोभित थे। तेजके परम निधि वे भगवान् हाथमें त्रिशूल लिये थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों तथा नक्षत्रोंसे गुँथी हुई अद्भुत आकारवाली चरणोंतक लटकती हुई लम्बी दिव्य विशाल मालाको धारण कर रखा था॥ ५०—५२॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मा लोकपितामहः।
मोहितो माययात्यर्थं पीतवाससमब्रवीत्॥ ५३॥

क एष पुरुषोऽनन्तः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन॥ ५४॥

उन ईशानदेवको देखकर मायासे अत्यन्त मोहित लोकपितामह ब्रह्माने (अपनी रक्षाके लिये) पीताम्बरधारी (विष्णु)-से कहा—हे जनार्दन! हाथमें त्रिशूल धारण किये, त्रिनेत्रधारी, तेजकी राशिरूप, अमेयात्मा यह कौन अनन्त पुरुष (यहाँ) चला आ रहा है॥ ५३-५४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्दनः।
अपश्यदीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि॥ ५५॥

ज्ञात्वा तत्परमं भावमैश्वरं ब्रह्मभावनम्।
प्रोवाचोत्थाय भगवान् देवदेवं पितामहम्॥ ५६॥

उनके (ब्रह्माके) इस वचनको सुनकर दानवोंका मर्दन करनेवाले विष्णुने निर्मल जलमें देदीप्यमान देव ईश्वरको देखा। ईश्वर-सम्बन्धी उस परम भावरूप ब्रह्मभावको जानकर (महेश्वरमें परम तत्त्वका दर्शनकर) भगवान् (विष्णु) उठकर गये और देवदेव पितामहसे कहने लगे—॥ ५५-५६॥

अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्॥ ५७॥

ये देव स्वयं प्रकाशित होनेवाले, सनातन, आदि और अन्तसे रहित, अचिन्त्य, महान्, समस्त लोकोंके ईश्वर महादेव हैं॥ ५७॥

शंकरः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः।
भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः ॥ ५८ ॥

एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः।
यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः ॥ ५९ ॥

सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः ॥ ६० ॥

ये शंकर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी, योगी, महेश, विमल एवं शिवरूप (कल्याणरूप) हैं। ये ही धाता, विधाता, प्रधान पुरुष और ईश्वर हैं। यतिजन (संन्यासी लोग) ब्रह्मकी भावनासे भावित होकर जिनका दर्शन करते हैं वे ही केवल, निष्कल, महादेव शिव काल बनकर सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार करते हैं॥ ५८—६०॥

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः।
वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शंकरः ॥ ६१ ॥

अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम्।
वासुदेवाभिधानां मामवेहि प्रपितामह ॥ ६२ ॥

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम्।
दिव्यं भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम् ॥ ६३ ॥

ये वे ही शंकर आ रहे हैं, जिन सनातन (देव)-ने पूर्वकालमें आप ब्रह्माको बनाया और आपको वेद प्रदान किया। प्रपितामह! मुझे इनकी ही विश्वयोनि, सनातन एवं वासुदेव नामवाली दूसरी मूर्ति समझो। क्या आप ब्रह्माके भी अधिपति, अव्यय योगेश्वरको नहीं देख रहे हैं? आपकी दिव्य दृष्टि हो जाय, जिससे आप उस परम (तत्त्व)-को देख सकें॥ ६१—६३॥

लब्ध्वा शैवं तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामहः।
बुबुधे परमेशानं पुरतः समवस्थितम् ॥ ६४ ॥

स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः।
प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम् ॥ ६५ ॥

ओंकारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना।
अथर्वशिरसा देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः ॥ ६६ ॥

विष्णुसे इस प्रकार शैव-नेत्र (शिव-सम्बन्धी ज्ञान) प्राप्तकर लोक-पितामह (ब्रह्मा)-ने सामने अवस्थित परम ईशानको जाना। उन प्रपितामह (ब्रह्मा)-ने ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान प्राप्तकर उन्हीं पितृरूप देव शिवकी शरण ग्रहण की। ओंकार (तत्त्व)-का अनुस्मरणकर और आत्माद्वारा मनका निरोधकर उन्होंने अथर्ववेदके मन्त्रोंसे हाथ जोड़ते हुए (उन) देवकी प्रार्थना की॥ ६४—६६॥

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः।
अवाप परमां प्रीतिं व्याजहार स्मयन्निव ॥ ६७ ॥

उन ब्रह्माके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वर (शिव)-को परम प्रीति प्राप्त हुई और वे मुसकराते हुए (इस प्रकार) बोले—॥ ६७॥

मत्समस्त्वं न संदेहो मद्भक्तश्च यतो भवान्।
मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययम् ॥ ६८ ॥

त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्भवः।
वरं वरय विश्वात्मन् वरदोऽहं तवानघ ॥ ६९ ॥

तुम मेरे भक्त हो, इसलिये निःसंदेह तुम मेरे ही समान हो। मेरे द्वारा ही पहले संसारकी सृष्टि करनेके लिये तुम अव्ययको उत्पन्न किया गया था। मेरी देहसे उत्पन्न तुम (मेरी ही) आत्मा और आदि पुरुष हो। हे अनघ! विश्वात्मन्! वर माँगो। मैं तुम्हें वर प्रदान करूँगा॥ ६८-६९॥

स देवदेववचनं निशम्य कमलोद्भवः।
निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्याह वृषध्वजम् ॥ ७० ॥

कमलसे उत्पन्न उन ब्रह्माने देवाधिदेव (शंकर)-के इस वचनको सुनकर विष्णुकी ओर देखा और उन (परम) पुरुष वृषध्वज (शंकर)-को प्रणामकर उनसे कहा—॥ ७०॥

भगवन् भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते।
त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशं सुतम् ॥ ७१ ॥

हे भगवन्! भूत एवं भविष्यके स्वामी! महादेव! अम्बिकाके पति! मैं आपको ही पुत्र-रूपमें अथवा आपके ही समान पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ॥ ७१॥

मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया।
न जाने परमं भावं याथातथ्येन ते शिव॥ ७२॥

त्वमेव देव भक्तानां भ्राता माता पिता सुहृत्।
प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणं गतः॥ ७३॥

स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः।
व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम्॥ ७४॥

यदर्थितं भगवता तत् करिष्यामि पुत्रक।
विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघ॥ ७५॥

त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः।
तथा कुरुष्व देवेश मया लोकपितामह॥ ७६॥

एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा तनुः।
भविष्यति तवेशानो योगक्षेमवहो हरिः॥ ७७॥
एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतात्मा परमेश्वरः।
संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत्॥ ७८॥
तुष्टोऽस्मि सर्वथाहं ते भक्त्या तव जगन्मय।
वरं वृणीष्व नह्यावां विभिन्नौ परमार्थतः॥ ७९॥
श्रुत्वाथ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मयः।
प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य चतुर्मुखम्॥ ८०॥

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम्।
पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि॥ ८१॥
तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम्॥ ८२॥

मन्मयं त्वन्मयं चैव सर्वमेतन्न संशयः।
भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान् रात्रिरहं दिनम्॥ ८३॥

भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च।
भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान् मायाहमीश्वरः॥ ८४॥

भवान् विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः।
योऽहं सुनिष्कलो देवः सोऽपि नारायणः परः॥ ८५॥

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति।
पालयैतज्जगत् कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्॥ ८६॥

महादेव! मैं आपकी सूक्ष्म मायाद्वारा मोहित कर लिया गया हूँ। शिव! मैं आपके परम भावको यथार्थ-रूपमें नहीं जानता हूँ। देव! आप ही भक्तोंके माता-पिता, भाई तथा मित्र हैं। आप प्रसन्न हों। मैं आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ और आपकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ७२-७३॥

तदनन्तर जगत्के स्वामी वृषध्वज (शंकर)-ने उनके वचन सुनकर पुत्र (रूप) जनार्दन (विष्णु)-की ओर देखकर (ब्रह्मासे) कहा—॥ ७४॥

हे पुत्रक! तुमने जैसी इच्छा की है मैं वैसा ही करूँगा। अनघ! तुम्हें ईश्वर-सम्बन्धी दिव्य ज्ञान प्राप्त होगा। मेरे द्वारा तुम्हीं सभी प्राणियोंके प्रथम स्रष्टाके रूपमें नियुक्त किये गये हो। अतः देवेश! लोकपितामह! तुम वैसा ही करो। ये नारायण एवं अनन्त (भगवान् विष्णु) मेरी ही श्रेष्ठ मूर्ति हैं। ये ईशान हरि तुम्हारे योग-क्षेमका वहन करनेवाले होंगे॥ ७५—७७॥

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त परमेश्वर (शिव)-ने हाथोंसे देव ब्रह्माका स्पर्शकर हरि (विष्णु)-से कहा—हे जगन्मूर्ति! तुम्हारी भक्तिसे मैं तुमपर सर्वथा प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तत्त्वतः हम दोनों भिन्न नहीं हैं॥ ७८-७९॥

इसके बाद महादेवका वचन सुनकर विश्वमय, जगन्मय विष्णुने चतुर्मुख ब्रह्माकी ओर देखकर प्रीतियुक्त वाणीमें (महादेवसे) कहा—मेरे लिये यही श्लाघनीय वर है कि मैं आप परमेश्वर परमात्माका दर्शन कर रहा हूँ। मेरी आपमें भक्ति हो॥ ८०-८१॥

'ऐसा ही हो', यह कहकर महादेवने पुनः विष्णुसे कहा—आप सभी कार्योंके कर्ता हैं और मैं अधिदेवता हूँ। यह सब कुछ मेरा और आपका ही रूप है, इसमें कोई संदेह नहीं है। आप चन्द्रमा हैं, मैं सूर्य हूँ। आप रात्रि हैं, मैं दिन हूँ। आप प्रकृति हैं और मैं ही अव्यक्त पुरुष हूँ। आप ज्ञानरूप हैं और मैं ज्ञाता हूँ,आप मायारूप हैं और मैं ईश्वर हूँ। आप विद्यात्मिका शक्ति हैं, मैं शक्तिमान् ईश्वर हूँ और निष्कल देव परस्वरूप नारायण भी मैं ही हूँ॥ ८२—८५॥

ब्रह्मवादी योगी (हम दोनोंको) एक भावसे ही देखते हैं। हे विश्वात्मन्! बिना आपका आश्रय ग्रहण किये योगी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आप देवता, असुर तथा मनुष्योंसे युक्त इस सम्पूर्ण जगत्का पालन करें॥ ८६॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः
स्वमायया मोहितभूतभेदः।
जगाम जन्मर्धिविनाशहीनं
धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः ॥ ८७ ॥

ऐसा कहकर अपनी मायासे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करनेवाले अनादि एवं अनन्तशक्तिसम्पन्न भगवान् जन्म, विकास एवं विनाशसे रहित (अपने) अव्यक्त धाम (स्थान)-को चले गये॥ ८७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें नवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा मधु तथा कैटभका वध, नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा सनकादिकी सृष्टि, ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्ति, रुद्रकी अष्टमूर्तियों, आठ नामों तथा आठ पत्नियोंका वर्णन, रुद्रके द्वारा अनेक रुद्रोंकी उत्पत्ति तथा पुनः वैराग्य ग्रहण करना, ब्रह्माद्वारा रुद्रकी स्तुति तथा माहात्म्य-वर्णन, रुद्रद्वारा ब्रह्माको ज्ञानकी प्राप्ति, महादेवका त्रिमूर्तित्व और ब्रह्माद्वारा अनेक प्रकारकी सृष्टि

श्रीकूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे स्वाधिवासं पितामहः।
तदेव सुमहत् पद्मं भेजे नाभिसमुत्थितम्॥ १॥
अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ।
महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ॥ २॥

क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ।
कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः॥ ३॥

तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः।
त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि॥ ४॥

श्रीकूर्मने कहा—महेश्वर देवके अपने निवास-स्थानपर चले जानेके बाद पितामह (ब्रह्मा), (भगवान् विष्णुकी) नाभिसे उत्पन्न उसी विशाल सुन्दर कमलपर रहने लगे॥ १॥

एक लम्बा समय व्यतीत हो जानेपर वहाँ अतुलित शक्तिवाले मधु तथा कैटभ नामक दो असुर आये, जो परस्पर भाई थे। देवोंके भी देव शार्ङ्गधारी भगवान् विष्णुके कानसे उत्पन्न तथा विशाल पर्वतके समान शरीरवाले और महान् क्रोधसे आविष्ट उन दोनों (मधु-कैटभ)-को आया हुआ देखकर अजन्मा, विभु (ब्रह्मा)-ने नारायणसे कहा—ये दोनों असुर तीनों लोकोंके लिये कण्टक हैं, आप इन्हें मारें॥ २—४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः।
आज्ञापयामास तयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ॥ ५॥

उनके इस वचनको सुनकर प्रभु नारायण हरिने उन दोनोंका वध करनेके लिये (जिष्णु तथा विष्णु नामक) दो पुरुषोंको आज्ञा दी॥ ५॥

तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद् द्विजाः।
व्यनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्च व्यनयन्मधुम्॥ ६॥

ततः पद्मासनासीनं जगन्नाथं पितामहम्।
बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः॥ ७॥

हे ब्राह्मणो! उनकी आज्ञासे उन (विष्णु तथा जिष्णु)-से उन दोनों (मधु-कैटभ) असुरोंका महान् युद्ध हुआ। विष्णुने कैटभको जीता और जिष्णुने मधुको जीता। तदनन्तर स्नेहसे आविष्ट मनवाले हरिने कमलके आसनपर आसीन तथा जगन्नाथ पितामहसे मधुर वचन कहा—॥ ६-७॥

अस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो।
नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयं गुरुम्॥ ८॥

प्रभो! मेरे कहनेसे आप अब इस कमलसे नीचे उतरें। तेजोमय, बहुत भारी आपको ढोनेमें मैं असमर्थ हूँ॥ ८॥

रुरोद सुस्वरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः।
रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत।
रोदनाद् रुद्र इत्येवं लोके ख्यातिं गमिष्यसि॥ २३॥

देवोंके भी देव स्वयं शिव उच्च स्वरमें घोर रुदन करने लगे। तब रुदन करते हुए उनसे ब्रह्माने 'मत रोओ'—इस प्रकारसे कहा। तुम रुदन करनेके कारण 'रुद्र' इस नामसे संसारमें प्रसिद्धि प्राप्त करोगे॥ २३॥

अन्यानि सप्त नामानि पत्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान्।
स्थानानि चैषामष्टानां ददौ लोकपितामहः॥ २४॥

लोकपितामहने (उन्हें रुद्रके अतिरिक्त) अन्य सात नाम, (आठ) पत्नियाँ, शाश्वत (दीर्घायु) पुत्र और आठ स्थानों[1] (मूर्तियों)-को प्रदान किया॥ २४॥

भवः शर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च।
भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै॥ २५॥
सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्तयः॥ २६॥

भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र तथा महादेव--ये सात नाम हैं। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण तथा चन्द्र—ये (रुद्रकी) आठ मूर्तियाँ हैं॥ २५-२६॥

स्थानेष्वेतेषु ये रुद्रं ध्यायन्ति प्रणमन्ति च।
तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परमं पदम्॥ २७॥

जो इन आठ स्थानों (मूर्तिरूपों)-में रुद्रका ध्यान करते हैं और उन्हें प्रणाम करते हैं, उन्हें अष्टमूर्तिरूप देव (भगवान् शिव अपना) परम पद देते हैं॥ २७॥

सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च तथा शिवा।
स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नयः॥ २८॥

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः।
स्कन्दः सर्गोऽथ संतानो बुधश्चैषां सुताः स्मृताः॥ २९॥

सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशाएँ, दीक्षा तथा रोहिणी—ये ही (रुद्रकी आठ) पत्नियाँ हैं। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग (मंगल), मनोजव (कामदेव), स्कन्द, सर्ग, संतान तथा बुध—ये (आठ उनके) पुत्र कहे गये हैं॥ २८-२९॥

एवम्प्रकारो भगवान् देवदेवो महेश्वरः।
प्रजाधर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रितः॥ ३०॥

आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः।
पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शाश्वतं परमामृतम्॥ ३१॥

इस प्रकारके देवाधिदेव भगवान् महेश्वरने प्रजाधर्म (सृष्टिकार्य) एवं काम (वासना)-का परित्यागकर वैराग्यका आश्रय ग्रहण किया। उस शाश्वत, परम अमृतरूपी अक्षर ब्रह्मका आस्वादनकर और आत्मामें आत्मतत्त्वका आधानकर वे ईश्वरभावमें स्थित हो गये॥ ३०-३१॥

प्रजाः सृजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः।
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः॥ ३२॥

ब्रह्माके द्वारा 'प्रजाकी सृष्टि करो' इस प्रकारका आदेश प्राप्तकर नीललोहित शिवने मनसे अपने ही समान रुद्रोंकी सृष्टि की॥ ३२॥

कपर्दिनो निरातङ्कान् नीलकण्ठान् पिनाकिनः।
त्रिशूलहस्तानृष्टिघ्नान् महानन्दांस्त्रिलोचनान्॥ ३३॥

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान्।
वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान् प्रभुः॥ ३४॥

प्रभुने सैकड़ों करोड़ जटाजूट धारण करनेवाले, भयरहित, नीलकण्ठ, पिनाकपाणि, हाथमें त्रिशूल धारण किये, ऋष्टिघ्न, महान् आनन्दस्वरूप, तीन नेत्रयुक्त, जरा-मरणसे रहित, विशाल वृषभोंको वाहनरूपमें स्वीकार करनेवाले सर्वज्ञ तथा वीतराग (रुद्रों)-को उत्पन्न किया॥ ३३-३४॥

तान् दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान् निर्मलान् नीललोहितान्।
जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हरं गुरुः॥ ३५॥

गुरु (ब्रह्मा)-ने जरा-मरणसे रहित, नीललोहित एवं निर्मल उन अनेक रुद्रोंको देखकर हर (शिव)-से कहा॥ ३५॥

१-ये आठ स्थान सूर्य, जल आदि आगे गिनाये गये हैं। इनमें रुद्रका निवास है। इसीलिये ये आठ रुद्रकी मूर्ति माने जाते हैं।

मा स्राक्षीरीदृशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिताः।
अन्याः सृजस्व भूतेश जन्ममृत्युसमन्विताः॥ ३६॥

हे देव! मृत्युसे रहित इस प्रकारकी सृष्टि मत करो। भूतेश! जन्म एवं मृत्युवाली दूसरी प्रकारकी सृष्टि करो॥ ३६॥

ततस्तमाह भगवान् कपर्दी कामशासनः।
नास्ति मे तादृशः सर्गः सृज त्वमशुभाः प्रजाः॥ ३७॥

ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूतेऽशुभाः प्रजाः।
स्वात्मजैरेव तै रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत।
स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद् देवदेवस्य शूलिनः॥ ३८॥

तदनन्तर कामपर शासन करनेवाले जटाजूटधारी भगवान् (शिव)-ने उनसे कहा—मेरे पास उस प्रकारकी (जन्म-मृत्युसे युक्त) सृष्टि नहीं है। (ऐसी) अशुभ प्रजाओंको आप ही उत्पन्न करें। तबसे उन देवने अशुभ प्रजाओंकी सृष्टि नहीं की। (और) अपने आत्मज उन रुद्रोंके साथ वे निवृत्तात्मा (क्रियारहित)-के रूपमें स्थित हो गये। इसी कारण देवोंमें देव उन शूलधारी (शंकर)-का स्थाणुत्व हुआ (अर्थात् वे 'स्थाणु'[1] इस नामसे प्रसिद्ध हो गये)॥ ३७-३८॥

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च॥ ३९॥

अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे।
स एव शंकरः साक्षात् पिनाकी परमेश्वरः॥ ४०॥

भगवान् शंकरमें ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व—ये दस अव्यय (शाश्वत) गुण सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। ये पिनाक धारण करनेवाले शंकर ही साक्षात् परमेश्वर हैं॥ ३९-४०॥

ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम्।
सहैव मानसैः पुत्रैः प्रीतिविस्फारिलोचनः॥ ४१॥

ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा।
तुष्टाव जगतामेकं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ ४२॥

तदनन्तर प्रीतिसे विकसित नेत्रवाले भगवान् ब्रह्माने तीन नेत्रोंवाले देव (शंकर)-को मानस पुत्रोंके साथ देखा। ब्रह्माने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे ईश्वर-सम्बन्धी परात्पर भावको जानकर जगत्के एकमात्र स्वामी (भगवान् शंकर)-की अपने मस्तकपर हाथोंकी अंजलि बाँधकर स्तुति की॥ ४१-४२॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे॥ ४३॥

नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे।
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः॥ ४४॥

नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने।
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः॥ ४५॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने॥ ४६॥

ब्रह्माने कहा—महादेव! आपको नमस्कार है। परमेश्वर! आपको नमस्कार है। शिवको नमस्कार है। ब्रह्मरूपी देवको नमस्कार है। महेश! आपको नमस्कार है। शान्तिके मूलहेतु! आपको नमस्कार है। प्रधान पुरुषेश! आपको नमस्कार है तथा योगाधिपति आपको नमस्कार है। काल, रुद्र, महाग्रास[2] तथा शूलीको नमस्कार है। हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। तीन नेत्रवालेको बार-बार नमस्कार है। त्रिमूर्तिस्वरूप आपको नमस्कार है। ब्रह्माके उत्पत्तिकर्ता आपके लिये नमस्कार है। ब्रह्मविद्याके अधिपति और ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४३—४६॥

१-स्थाणु-ठूँठ। ठूँठकी ही तरह निष्क्रिय होनेसे शिवको स्थाणु कहा गया है।

२-महाप्रलयमें भगवान् शंकर समस्त प्राणियोंको अपनी गोदमें सुला लेते हैं—इसलिये महाग्रास कहे जाते हैं।

नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः।
वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये॥ ४७॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय योगिनां गुरवे नमः।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते॥ ४८॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः।
त्रियम्बकाय देवाय नमस्ते परमेष्ठिने॥ ४९॥
नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने।
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥ ५०॥

नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे।
नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः॥ ५१॥

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः।
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने॥ ५२॥
त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्।
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय॥ ५३॥

त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः॥ ५४॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा॥ ५५॥
भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहंकार एव च।
यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम्॥ ५६॥

यस्य द्यौरभवन्मूर्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः।
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम्॥ ५७॥
संतापयति यो विश्वं स्वभाभिर्भासयन् दिशः।
ब्रह्मतेजोमयं नित्यं तस्मै सूर्यात्मने नमः॥ ५८॥

हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः।
कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः॥ ५९॥

आप्यायति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत्।
पीयते देवतासंघैस्तस्मै सोमात्मने नमः॥ ६०॥

बिभर्त्यशेषभूतानि योऽन्तश्चरति सर्वदा।
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः॥ ६१॥

वेदोंके रहस्यरूपको नमस्कार है। कालके भी काल आपको नमस्कार है। वेदान्तसारके भी सारको नमस्कार है। वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है। शुद्ध-बुद्धस्वरूपको नमस्कार है। योगियोंके गुरुको नमस्कार है। शोकोंसे रहित विविध भूतोंसे घिरे हुए आपको नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेवको नमस्कार है। ब्रह्माधिपतिके लिये नमस्कार है। त्रिलोचन परमेष्ठी देवको नमस्कार है॥ ४७—४९॥

दिगम्बर! आपको नमस्कार है। मुण्ड (की माला) एवं दण्ड धारण करनेवालेको नमस्कार है। अनादि तथा मलरहित (शुद्धरूप), ज्ञानगम्य आपको नमस्कार है। तारक एवं तीर्थरूप तथा योगविभूतियोंके मूल कारणको नमस्कार है। धर्म (धर्माचरण)-के द्वारा प्राप्य, योगगम्य आपको नमस्कार है। निष्प्रपञ्चको नमस्कार है। निराभास! आपको नमस्कार है। विश्वरूप ब्रह्म परमात्माको नमस्कार है॥ ५०—५२॥

जगन्मय! आपके द्वारा ही यह सम्पूर्ण (जगत्) रचा गया है, आपमें ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है और आप ही प्रधानादि समस्त विश्वका संहार करते हैं। आप ईश्वर, महादेव, परब्रह्म, महेश्वर, परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल तथा हर हैं। आप अक्षर, परम ज्योति हैं, आप काल तथा परमेश्वर हैं और आप ही प्रधान पुरुष, प्रकृति तथा अनन्त हैं॥ ५३—५५॥

भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश एवं अहंकार—ये जिसके रूप हैं, उन ब्रह्मसंज्ञक आपको नमस्कार करता हूँ। द्युलोक जिनका मस्तक है, पृथ्वी पैर है, दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं और आकाश जिनका उदर है, उन विराट् पुरुषको मेरा प्रणाम है। जो अपने प्रकाशसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए विश्वको अपेक्षित उष्णता प्रदान करते हैं, उन नित्य ब्रह्म तेजोमय सूर्यरूपको नमस्कार है। जो अपने रौद्र तेजोमय शरीरसे (देवताओंको) हव्य तथा पितरोंको कव्य पहुँचाते हैं, उन अग्निस्वरूप (देव)-को नमस्कार है। जो अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को नित्य संतृप्त करते हैं और देवतासमूहके द्वारा जिनका पान किया जाता है, उन सोमरूप चन्द्रदेवको नमस्कार है॥ ५६—६०॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंका भरण-पोषण करती है और जो (सभी प्राणियोंके) भीतर सदा विचरण करती है, ऐसी वायुरूपात्मक माहेश्वरीशक्ति आपको नमस्कार है॥ ६१॥

सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः।
स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः॥ ६२॥

यः शेषशयने शेते विश्वमावृत्य मायया।
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः॥ ६३॥

बिभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम्।
ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः॥ ६४॥
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिकम्।
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः॥ ६५॥

योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः।
तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये भवतस्तनुम्॥ ६६॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः समदर्शिनः।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः॥ ६७॥

यया संतरते मायां योगी संक्षीणकल्मषः।
अपारतरपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः॥ ६८॥

यस्य भासा विभातीदमद्वयं तमसः परम्।
प्रपद्ये तत् परं तत्त्वं तद्रूपं परमेश्वरम्॥ ६९॥

नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम्।
प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम्॥ ७०॥

एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभावितः।
प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम्॥ ७१॥
ततस्तस्मै महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम्।
ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः॥ ७२॥

कराभ्यां सुशुभाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतार्तिहा।
व्याजहार स्वयं देवः सोऽनुगृह्य पितामहम्॥ ७३॥

जो प्राणियोंके अपने-अपने कर्मोंके अनुसार इस सम्पूर्ण (जगत्)-की सृष्टि करते हैं, उन अपनी आत्मामें प्रतिष्ठित चतुर्मुखात्मक (ब्रह्मा)-को नमस्कार है। जो अपने आत्मामें प्रतिष्ठित अनुभूतिरूप योगसे (प्रेरित) मायाद्वारा सम्पूर्ण विश्वको आवृतकर शेष (शेषनाग)-की शय्यापर शयन करते हैं, उन विश्वात्माको नमस्कार है। जो चौदह भुवनोंवाले ब्रह्माण्डको नित्य अपने सिरपर धारण किये रहते हैं और जो सभीके आश्रय हैं, उन शेषात्माको नमस्कार है॥ ६२—६४॥

जो महाप्रलयकालमें दिव्य एवं एकमात्र साक्षीरूप परमानन्दका आस्वादन करते हुए नृत्य करते हैं, उन अनन्त महिमावाले रुद्रात्माको नमस्कार है। जो ईश्वर सभी प्राणियोंके भीतर नियन्ताके रूपमें प्रतिष्ठित रहते हैं, उन सर्वसाक्षी देव और उनके शरीररूप (देव)-को मैं नमस्कार करता हूँ। निद्रारहित, श्वासको जीतनेवाले, संतुष्ट तथा समदर्शी (योगीजन समाधिमें) जिस ज्योति या प्रकाशका दर्शन करते हैं, उन योगात्माको नमस्कार है। जिस (विद्या)-के द्वारा पुण्यात्मा योगीजन अत्यन्त कठिनतासे पार की जा सकनेवाली मायाको सरलतासे पार कर लेते हैं, उस विद्यास्वरूप (देव)-को नमस्कार है। जिसके प्रकाशसे यह (विश्व) प्रकाशित होता है, मैं (उस) अन्धकारसे सर्वथा रहित अर्थात् प्रकाशस्वरूप और अद्वितीय परम तत्त्व-स्वरूप (तद्रूप परम-तत्त्व मात्र ही जिनका स्वरूप है, उन) परमेश्वरकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं नित्यानन्दस्वरूप, निराधार, निष्कल परमात्मा, परमेश्वर आप परम शिवकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ६५—७०॥

इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर ब्रह्मा उनकी भावनासे भावित होकर सनातन ब्रह्मको सम्बोधित करते हुए विनयपूर्वक हाथ जोड़े हुए खड़े हो गये॥ ७१॥

तदनन्तर महादेव हरने उन्हें सर्वश्रेष्ठ दिव्य योग (ज्ञान), ऐश्वर्य, ब्रह्मकी सद्भावना (ब्रह्मविषयक उत्तम भाव) तथा वैराग्य प्रदान किया। शरणागतोंका कष्ट हरनेवाले उन (शंकर) देवने स्वयं अपने मनोरम एवं कल्याणकारी हाथोंके द्वारा उनका (ब्रह्माका) स्पर्श किया और उनपर अनुग्रह करके वे बोले—॥ ७२-७३॥

यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वे भवतो मम।
कृतं मया तत् सकलं सृजस्व विविधं जगत्॥ ७४॥

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥ ७५॥

स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः।
ममैव दक्षिणादङ्गाद् वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः॥ ७६॥

तस्य देवादिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः।
सम्बभूवाथ रुद्रोऽसावहं तस्यापरा तनुः॥ ७७॥

ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः॥ ७८॥

ब्रह्मन्! जो आपने 'मेरा पुत्र बनें' इस प्रकारसे मुझसे प्रार्थना की थी, मैंने उसे (रुद्ररूपमें उत्पन्न होकर) पूर्ण कर दिया। (अब आप) विविध प्रकारके जगत्‌की सृष्टि करें। ब्रह्मन्! मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय—इन तीन गुणोंसे भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन नामोंसे तीन रूपोंमें विभक्त हूँ। आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं और सृष्टिकी रचनाके लिये मेरे ही दाहिने अङ्गसे आप बनाये गये हैं। मेरे ही बायें अङ्गसे पुरुषोत्तम विष्णु उत्पन्न हैं। उन्हीं देवोंमें आदिदेव शम्भुके हृदयप्रदेशसे मैं ही रुद्ररूपमें प्रादुर्भूत हूँ और उन्हींकी अपर मूर्ति हूँ। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव (क्रमशः) सृष्टि, स्थिति तथा संहारके हेतु हैं। एक होते हुए भी वे शंकर अपनी इच्छासे अपनेको (तीन रूपोंमें) विभक्तकर स्थित रहते हैं॥ ७४—७८॥

तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि तु।
निरूपः केवलः स्वच्छो महादेवः स्वभावतः॥ ७९॥

इसी प्रकार अन्य भी जो रूप हैं, वे सब मेरी मायाद्वारा ही निर्मित हैं। स्वरूपतः महादेव स्वच्छ, रूपरहित एवं अद्वितीय हैं॥ ७९॥

एभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः।
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा॥ ८०॥

वे देव इन त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)-से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीरवाले हैं। तीन नेत्रोंवाली वह माहेश्वरी मूर्ति योगियोंको सदा शान्ति प्रदान करनेवाली है॥ ८०॥

तस्या एव परां मूर्तिं मामवेहि पितामह।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानतेजोयोगसमन्विताम्॥ ८१॥

सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्।
कालो भूत्वा न तमसा मामन्योऽभिभविष्यति॥ ८२॥

यदा यदा हि मां नित्यं विचिन्तयसि पद्मज।
तदा तदा मे सांनिध्यं भविष्यति तवानघ॥ ८३॥

पितामह! मुझे सनातन ऐश्वर्य, विज्ञान, तेज एवं योगसे समन्वित उनकी वही परा मूर्ति समझो। वही मैं कालरूप होकर तमोगुणका आश्रय लेकर समस्त विश्वको ग्रस्त कर लेता हूँ, कोई दूसरा तमद्वारा मुझे अभिभूत नहीं कर सकता। निष्पाप कमलोद्भव! जब-जब मुझ सनातनका तुम ध्यान करोगे, तब-तब तुम मेरी समीपता प्राप्त करोगे॥ ८१—८३॥

एतावदुक्त्वा ब्रह्माणं सोऽभिवन्द्य गुरुं हरः।
सहैव मानसैः पुत्रैः क्षणादन्तरधीयत॥ ८४॥

इतना कहकर गुरु (पिता) ब्रह्माकी वन्दना करके वे हर (महेश्वर) मानस पुत्रोंके साथ क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये॥ ८४॥

सोऽपि योगं समास्थाय ससर्ज विविधं जगत्।
नारायणाख्यो भगवान् यथापूर्वं प्रजापतिः॥ ८५॥

मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया॥ ८६॥

नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधका ब्रह्मवादिनः॥ ८७॥

नारायण नामवाले उन भगवान्‌ने योगका अवलम्बन कर प्रजापतिने जैसी सृष्टि पूर्वमें की थी, वैसी ही विविध प्रकारके जगत्‌की सृष्टि की। योगविद्यासे उन्होंने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठको उत्पन्न किया। पुराणोंके अनुसार यह निश्चित है कि ये नौ ब्रह्माण कहलाते हैं। ये सभी ब्रह्माके समान हैं, साधक हैं और ब्रह्मवादी हैं॥ ८५—८७॥

संकल्पं चैव धर्मं च युगधर्मांश्च शाश्वतान्।
स्थानाभिमानिनः सर्वान् यथा ते कथितं पुरा॥ ८८॥

जैसा पहले बताया गया था तदनुसार संकल्प, धर्म, सनातन युगधर्म तथा सभी स्थानाभिमानी (देवताओं)-का वर्णन तुम्हें सुनाया गया॥ ८८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सती और पार्वतीका आविर्भाव, देवी-माहात्म्य, हैमवती-माहात्म्य, देवीका अष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्र, हिमवान्द्वारा देवीकी स्तुति एवं हिमवान्को देवीद्वारा उपदेश, देवीसहस्रनामस्तोत्र-जपका माहात्म्य

श्रीकूर्म उवाच

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन् देवदेवः पितामहः।
सहैव मानसैः पुत्रैस्तताप परमं तपः॥ १॥

श्रीकूर्मने कहा—इस प्रकार मरीचि आदिकी सृष्टि करके देवोंके देव पितामह (ब्रह्मा अपने) मानस पुत्रोंके साथ परम तप करने लगे॥ १॥

तस्यैवं तपतो वक्त्राद् रुद्रः कालाग्निसंनिभः।
त्रिशूलपाणिरीशानः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः॥ २॥
अर्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योऽतिभयंकरः।
विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे भयात्॥ ३॥

इस प्रकार तप करते हुए उनके मुखसे कालाग्निके समान अति भयंकर, हाथमें त्रिशूल धारण किये, कठिनतासे देखे जाने योग्य, अर्धनारीश्वरका शरीर धारण किये हुए, त्रिलोचन ईशान रुद्र प्रकट हुए। 'अपना विभाग करो' ऐसा कहकर ब्रह्मा भयसे अन्तर्धान हो गये॥ २-३॥

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वमथाकरोत्।
बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा पुनः॥ ४॥
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः।
कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः॥ ५॥

(ब्रह्माके द्वारा) ऐसा कहे जानेपर उन्होंने स्त्री तथा पुरुषरूपसे दो भाग कर दिये। पुनः पुरुषभागको दस और एक—इस प्रकार ग्यारह भागोंमें बाँट दिया। ये ग्यारह रुद्र त्रिभुवनेश्वर कहलाते हैं। ब्राह्मणो! कपाली-ईश आदि ये सभी एकादश रुद्र देवताओंके कार्यमें नियोजित हैं॥ ४-५॥

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः।
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः॥ ६॥
ता वै विभूतयो विप्रा विश्रुताः शक्तयो भुवि।
लक्ष्म्यादयो याभिरीशा विश्वं व्याप्नोति शांकरी॥ ७॥

उन प्रभु देवने सौम्य और रौद्र, शान्त और अशान्त तथा श्वेत और कृष्णरूपोंसे स्त्रीभागको भी अनेक रूपोंमें विभक्त किया। हे विप्रो! ये ही विभूतियाँ शक्तियोंके रूपमें लक्ष्मी आदि नामोंसे संसारमें विख्यात हैं। शंकरकी शक्ति ईशा इन्हींके द्वारा विश्वमें व्याप्त है॥ ६-७॥

विभज्य पुनरीशानी स्वात्मानं शंकराद् विभोः।
महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता॥ ८॥
तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव।
सापि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत् प्रजापतेः॥ ९॥

पुनः ईशानी (ईशा) अपनेको विभु शंकरसे विभक्तकर महादेवके निर्देशसे वे पितामहके पास गयीं। भगवान् ब्रह्माने इनसे कहा—'दक्षकी पुत्री बनो।' ये भी उनके आदेशसे दक्ष प्रजापतिके यहाँ उत्पन्न हुईं (इन्हींका नाम सती है)॥ ८-९॥

नियोगाद् ब्रह्मणो देवीं ददौ रुद्राय तां सतीम्।
दक्षाद् रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत्॥ १०॥

प्रजापतिं विनिन्द्यैषा कालेन परमेश्वरी।
मेनायामभवत् पुत्री तदा हिमवतः सती॥ ११॥

स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम्।
हिताय सर्वदेवानां त्रिलोकस्यात्मनोऽपि च॥ १२॥

सैषा माहेश्वरी देवी शंकरार्धशरीरिणी।
शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता॥ १३॥

तस्याः प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः।
विदन्ति मुनयो वेत्ति शंकरो वा स्वयं हरिः॥ १४॥

एतद् वः कथितं विप्राः पुत्रत्वं परमेष्ठिनः।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शंकरस्यामितौजसः॥ १५॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम्।
विष्णुना पुनरेवैनं पप्रच्छुः प्रणता हरिम्॥ १६॥

ऋषय ऊचुः

कैषा भगवती देवी शंकरार्धशरीरिणी।
शिवा सती हैमवती यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥ १७॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा मुनीनां पुरुषोत्तमः।
प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम्॥ १८॥

श्रीकूर्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभनम्।
रहस्यमेतद् विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः॥ १९॥

सांख्यानां परमं सांख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्।
संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामेकमोचनम्॥ २०॥

या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा।
व्योमसंज्ञा परा काष्ठा सेयं हैमवती मता॥ २१॥

शिवा सर्वगतानन्ता गुणातीता सुनिष्कला।
एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपातिलालसा॥ २२॥

(दक्षने) ब्रह्माकी आज्ञासे इन सतीदेवीको रुद्रको प्रदान कर दिया। त्रिशूलधारी रुद्रने भी दक्षसे अपनी ही शक्तिको ग्रहण किया॥ १०॥

कालान्तरमें (यज्ञमें अपने आराध्य शिवका भाग न देखकर) दक्ष प्रजापतिकी निन्दा कर (तथा अपने शरीरका परित्याग कर) वे परमेश्वरी सती पुनः हिमवान्‌से मेनाकी पुत्री (पार्वती) बनीं। पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्‌ने भी पार्वतीको सभी देवताओं, तीनों लोकों तथा स्वयं अपने भी कल्याणके लिये रुद्रको समर्पित कर दिया॥ ११-१२॥

ये ही शंकरके आधे शरीरमें स्थित रहनेवाली माहेश्वरी देवी शिवा, सती तथा हैमवतीके रूपमें देवताओं एवं असुरोंद्वारा पूजित हैं। इन्द्रसहित सभी देवता, मुनि, शंकर अथवा स्वयं हरि इनके अतुल प्रभावको जानते हैं॥ १३-१४॥

हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे अमित तेजस्वी शंकरके पुत्रत्व (पुत्र होनेका) और परमेष्ठी ब्रह्माके पद्मयोनित्व (पद्मयोनि होने)-का वर्णन किया॥ १५॥

सूत बोले—कूर्मरूप धारण किये हुए विष्णुके इस कथनको सुनकर मुनियोंने पुनः हरि (कूर्मरूपधारी विष्णु)-को प्रणाम करते हुए उनसे इस प्रकार पूछा—॥ १६॥

ऋषियोंने कहा—(भगवन्!) शंकरके आधे शरीररूपसे प्रतिष्ठित शिवा, सती तथा हैमवती (इत्यादि नामवाली) ये देवी भगवती कौन हैं? हम सभी पूछनेवालोंको आप यथार्थरूपमें बतलायें। उन मुनियोंके इस वचनको सुनकर पुरुषोंमें उत्तम महायोगी (विष्णु)-ने अपने परम पदका ध्यान करके उन्हें बताया—॥ १७-१८॥

श्रीकूर्म बोले—प्राचीन कालमें अत्यन्त रमणीय मेरु गिरिके पृष्ठपर (बैठकर) पितामह (ब्रह्मा)-ने यह रहस्यपूर्ण ज्ञान कहा था। यह विशेषरूपसे गोपनीय है। सांख्यशास्त्रके तत्त्वज्ञोंके लिये यह परम सांख्य (तत्त्वज्ञान) एवं उत्तम ब्रह्मज्ञान है। यह संसार-सागरमें निमग्न प्राणियों-की मुक्तिका एकमात्र साधन है॥ १९-२०॥

(महेश्वरकी) जो ज्ञानरूप, उत्कृष्ट इच्छारूप, व्योम नामवाली तथा पराकाष्ठारूप (अन्तिम प्राप्तव्य) वह माहेश्वरी शक्ति है, ये वही हैमवती कही जाती हैं। (ये हैमवती शक्ति) कल्याण करनेवाली, सर्वत्र व्याप्त, अनन्त, गुणातीत, नितान्त भेदशून्य, अद्वितीय तथा अनेक रूपोंमें स्थित रहनेवाली, ज्ञानरूप, परम इच्छारूप।

अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा।
स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला॥ २३॥

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः।
परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य संनिधौ॥ २४॥

सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत्।
न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः॥ २५॥

अनन्य तथा उन (शिव)-के तेजसे निष्कल तत्त्वमें प्रतिष्ठित रहनेवाली, सूर्यकी प्रभाके सदृश स्वच्छ तथा उनके आश्रित एवं स्वभावतः प्रवृत्त होनेवाली हैं। वह एक ही माहेश्वरी शक्ति अनेक उपाधियों (नाम-रूपों)-के संयोगसे उत्तम तथा निम्न रूपसे उन (शिव)-के समीप क्रीडा करती रहती हैं। वे ही यह सम्पूर्ण (सृष्टि इत्यादिका) कार्य करती हैं। यह जगत् उन्हींका कार्य है। ईश्वरका न कोई कार्य है और न कोई करण (साधन) ही होता है—ऐसा विद्वानोंका मत है॥ २१—२५॥

चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः।
अधिष्ठानवशात् तस्याः शृणुध्वं मुनिपुंगवाः॥ २६॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! उन देवीकी अधिष्ठान (आश्रय)-भेदसे अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित चार शक्तियाँ हैं, उन्हें आप सुनें॥ २६॥

शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः।
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः॥ २७॥

अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते।
चतुर्ष्वपि च वेदेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः॥ २८॥

उन शक्तियोंको शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति—इस प्रकारसे कहा गया है और इसीलिये (अर्थात् इन चारों शक्तियोंसे सम्पन्न होनेके कारण) परमेश्वर देवको भी चतुर्व्यूहात्मक[1] कहा जाता है। इस पराशक्तिके द्वारा देव (महेश्वर) स्वात्मानन्दका उपभोग करते हैं। चारों ही वेदोंमें चतुर्मूर्ति महेश्वर वर्णित हैं॥ २७-२८॥

अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत्।
तत्सम्बन्धादनन्ताया रुद्रेण परमात्मना॥ २९॥
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका।
प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः॥ ३०॥

उन रुद्र परमात्माके सम्बन्धसे इस अनन्ता (शक्ति)-का महान् अतुलनीय ऐश्वर्य सिद्ध है। वे ही ये सर्वेश्वरी देवी सभी प्राणियोंको प्रवर्तित करती हैं। भगवान् काल, हरि, प्राण तथा महेश्वर कहे जाते हैं॥ २९-३०॥

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
स कालोऽग्निर्हरो रुद्रो गीयते वेदवादिभिः॥ ३१॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद् वशे॥ ३२॥

प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा त्वहंकृतिः।
कालेनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना॥ ३३॥

उनमें ही यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। वेदवादियें (वैदिकों)-के द्वारा वे ही काल, अग्नि, हर तथा रुद्र-रूपमें गाये जाते हैं। काल सभी प्राणियोंकी सृष्टि करत है, काल ही प्रजाओंका संहार करता है। सभी कालके वशीभूत हैं और काल किसीके वशमें नहीं है। (वह काल ही) प्रधान, पुरुष, तत्त्व, महान्, आत्मा तथा अहंकार है। योगी[2] कालमें ही अन्य सभी तत्त्व समाविष्ट हैं॥ ३१—३३॥

तस्य सर्वजगत्सूतिः शक्तिर्मायेति विश्रुता।
तयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः॥ ३४॥

सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी।
वैश्वरूप्यं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत्॥ ३५॥

सम्पूर्ण जगत्को उनकी (ईशकी) संतान और उनकी शक्तिको माया कहा गया है। मायावी पुरुषोत्तम ईश उस (माया)-के द्वारा ही इस (जगत्)-को भ्रमित (मोहित) करते हैं। वही यह सर्वाकारा, सनातनी मायात्मिका शक्ति महेशके विश्वरूपत्वको सदा प्रकाशित करती रहती है॥ ३४-३५॥

१-व्यूहका अर्थ शक्ति है।
२-कालमें सभी प्रकारका सामर्थ्य है, इसीलिये कालको योगी कहा गया है।

अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम्॥ ३६॥

सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः।
माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनन्तया॥ ३७॥

सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया।
मायावी सर्वशक्तीशः कालः कालकरः प्रभुः॥ ३८॥

उन देवके द्वारा निर्मित ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा प्राणशक्ति—ये तीन अन्य मुख्य शक्तियाँ हैं। विप्रेन्द्रो! अनन्त मायाके द्वारा ही सभी शक्तियोंसे युक्त शक्तिमानोंका निर्माण हुआ है, किंतु वह (माया) अनादि है। सभी शक्तियोंकी आत्मरूप वह माया बड़ी कठिनतासे निवारण करने योग्य और बड़े ही कष्टसे पार करने योग्य है। सभी शक्तियोंके स्वामी मायावी प्रभु स्वयं काल हैं और कालको भी उत्पन्न करनेवाले हैं॥ ३६—३८॥

करोति कालः सकलं संहरेत् काल एव हि।
कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत्॥ ३९॥

काल ही सब कुछ (उत्पन्न) करता है और काल ही (सबका) संहार करता है। विश्वकी स्थापना काल करता है और कालके ही अधीन यह सारा जगत् है॥ ३९॥

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य संनिधिं परमेष्ठिनः।
अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भोः कालात्मनः प्रभोः॥ ४०॥

प्रधानं पुरुषो माया माया चैवं प्रपद्यते।
एका सर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा॥ ४१॥

देवाधिदेव, परमेष्ठी, अनन्त और अखिल (विश्व)-के स्वामी कालात्मा प्रभु शम्भुका सांनिध्य प्राप्तकर वही माया शक्ति, प्रधान, पुरुष एवं माया नामकी शक्तिका रूप धारण करती है। वह शक्ति अद्वितीय सर्वत्र व्याप्त, अन्त-रहित, केवल, भेदशून्य और कल्याणकारिणी है॥ ४०-४१॥

एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः॥ ४२॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः।
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ४३॥

शक्तयो गिरिजा देवी शक्तिमन्तोऽथ शंकरः।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः॥ ४४॥

शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य सभी शक्तियाँ तथा शक्तिमान् (इसी) शक्तिसे उत्पन्न हैं। शक्ति और शक्तिमान्में भेद कहा जाता है, किंतु तत्त्वका चिन्तन करनेवाले योगीजन (उनमें) परमार्थतः अभेदका ही दर्शन करते हैं। जितनी भी शक्तियाँ हैं वे गिरिजादेवी और जितने भी शक्तिमान् हैं वे शंकर हैं। ब्रह्मवादियोंके द्वारा पुराणमें इनके विषयमें विशेष (रूपसे) कहा जाता है॥ ४२—४४॥

भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता।
प्रोच्यते भगवान् भोक्ता कपर्दी नीललोहितः॥ ४५॥

मन्ता विश्वेश्वरो देवः शंकरो मन्मथान्तकः।
प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः॥ ४६॥

महेश्वरकी पतिव्रता देवी विश्वेश्वरीको भोग्या और नीललोहित जटाधारी भगवान् (शंकर)-को भोक्ता कहा गया है। कामदेवका अन्त करनेवाले, विश्वके स्वामी देव शंकरको मनन करनेवाला मन्ता और ईशानीको मति एवं विचारद्वारा मानने योग्य (मन्तव्या) कहा गया है॥ ४५-४६॥

इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम्।
प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४७॥

एतत् प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः॥ ४८॥

ब्राह्मणो! तत्त्वद्रष्टा मुनियोंके द्वारा सभी वेदोंमें यही कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व शक्ति एवं शक्तिमान्से प्रादुर्भूत है। इस प्रकार ब्रह्मवादियोंके द्वारा समस्त वेदान्त एवं वेदोंमें निश्चित किये गये देवीके दिव्य एवं उत्तम माहात्म्यका यह वर्णन किया गया॥ ४७-४८॥

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥ ४९॥

महादेवीका जो सर्वव्यापक, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल तथा ध्रुव परम पद है, उसका योगी साक्षात्कार करते हैं॥ ४९॥

आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम्।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥ ५०॥
परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।
अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत् परमं पदम्॥ ५१॥
शुभं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत् परमं पदम्॥ ५२॥
सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम्।
संसारतापानखिलान् निहन्तीश्वरसंश्रया॥ ५३॥
तस्माद् विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम्।
आश्रयेत् सर्वभावानामात्मभूतां शिवात्मिकाम्॥ ५४॥

महादेवीका जो आनन्दमय, अविनाशी, ब्रह्मरूप, अद्वितीय एवं भेदरहित परम पद है, योगी उसका दर्शन करते हैं। देवीका वह परम पद परसे भी परतर, तत्त्वरूप, सनातन, कल्याणकारी, अच्युत तथा अनन्त प्रकृतिमें लीन है। देवीका वह परम पद शुभ निरञ्जन, शुद्ध, निर्गुण, द्वैतरहित और आत्मज्ञानका विषय है। परम आनन्द चाहनेवालोंके लिये वे ही धात्री तथा विधात्री हैं। वे ईश्वरके आश्रयसे संसारके सारे पापोंका विनाश करती हैं। इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको चाहिये कि वे सभी भावोंकी आत्मस्वरूपा शिवात्मिका परमेश्वरी पार्वतीका आश्रय ग्रहण करें॥ ५०—५४॥

लब्ध्वा च पुत्रीं शर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
सभार्यः शरणं यातः पार्वतीं परमेश्वरीम्॥ ५५॥
तां दृष्ट्वा जायमानां च स्वेच्छयैव वराननाम्।
मेना हिमवतः पत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्॥ ५६॥

अत्यन्त कठोर तप करनेके अनन्तर शर्वाणी (शंकर-प्रिया)-को पुत्रीरूपमें प्राप्तकर (हिमवान् अपनी) भार्याके साथ परमेश्वरी पार्वतीकी शरणमें गये। अपनी इच्छासे उत्पन्न उस श्रेष्ठ मुखवालीको देखकर हिमवान्‌की पत्नी मेनाने गिरिराज हिमालयसे इस प्रकार कहा—॥ ५५-५६॥

मेनोवाच

पश्य बालामिमां राजन् राजीवसदृशाननाम्।
हिताय सर्वभूतानां जाता च तपसावयोः॥ ५७॥

मेना बोलीं—राजन्! कमलके समान मुखवाली इस बालिकाको देखो। (यह) हम दोनोंकी तपस्या (-के प्रभाव)-से सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये उत्पन्न हुई है॥ ५७॥

सोऽपि दृष्ट्वा ततः पुत्रीं तरुणादित्यसंनिभाम्।
कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम्॥ ५८॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम्।
निर्गुणां सगुणां साक्षात् सदसद्व्यक्तिवर्जिताम्॥ ५९॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वलः।
भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम्॥ ६०॥

तरुण सूर्यके समान (देदीप्यमान), जटायुक्त, चतुर्मुख, तीन नेत्रोंवाली, उत्कृष्ट इच्छास्वरूप, आठ हाथों और विशाल नेत्रोंवाली, चन्द्रमाकी कलाओंके आभूषण धारण की हुई, गुणातीत एवं गुणयुक्त तथा सत्-असत्‌के भावोंसे रहित साक्षात् देवीको पुत्रीरूपमें देखकर हिमवान्‌ने भूमिपर मस्तक लगाकर प्रणाम किया और उनके तेजसे अत्यन्त विह्वल तथा भयभीत होते हुए हाथ जोड़कर उन परमेश्वरीसे कहा—॥ ५८—६०॥

हिमवानुवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते।
न जाने त्वामहं वत्से यथावद् ब्रूहि पृच्छते॥ ६१॥

हिमवान् बोले—विशाल नेत्रोंवाली तथा चन्द्रमाकी कलाओंसे सुशोभित देवि! आप कौन हैं? वत्से! मैं आपको नहीं जानता हूँ। मुझ पूछनेवालेको आप यथार्थरूपसे बतलायें॥ ६१॥

गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी।
व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा॥ ६२॥

योगियोंको अभय प्रदान करनेवाली उस परमेश्वरीने गिरिराज (हिमालय)-का वचन सुनकर महाशैलसे कहा—॥ ६२॥

देव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं परमेश्वरसमाश्रयाम्।
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः॥ ६३॥

देवी बोलीं—मोक्षकी इच्छा करनेवाले (मोक्षार्थी) जिस अनन्य, अविनाशी तथा अद्वितीय (शक्ति)-का दर्शन करते हैं, परमेश्वरके आश्रयमें रहनेवाली वही परम शक्ति मुझे समझो॥ ६३॥

अहं वै सर्वभावानामात्मा सर्वान्तरा शिवा।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका॥ ६४॥

अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम्॥ ६५॥

मैं ही सभी पदार्थोंकी आत्मा, सभीके अंदर रहनेवाली, कल्याणकारिणी, सनातन ऐश्वर्य तथा विज्ञानकी मूर्ति और सभीको प्रवृत्त करनेवाली हूँ। मैं अनन्त और अनन्त महिमावाली तथा संसारसागरसे पार उतारनेवाली हूँ। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करती हूँ, मेरे ऐश्वर्यमय रूपको देखो॥ ६४—६५॥

एतावदुक्त्वा विज्ञानं दत्त्वा हिमवते स्वयम्।
स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत् पारमेश्वरम्॥ ६६॥

इतना कहकर तथा हिमवान्‌को स्वयं विशिष्ट ज्ञान प्रदान कर (देवीने) अपना वह परमेश्वरमय दिव्य रूप दिखलाया॥ ६६॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम्।
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्॥ ६७॥
दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमण्डितम्।
त्रिशूलवरहस्तं च घोररूपं भयानकम्॥ ६८॥
प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्यसंयुतम्।
चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥ ६९॥
किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥ ७०॥
शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम्।
अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम्॥ ७१॥
सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम्।
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम्॥ ७२॥
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श परमेश्वरम्॥ ७३॥

(हिमवान्‌ने) करोड़ों सूर्यके समान (प्रकाशमान) तेजःपुञ्ज, स्थिर, हजारों ज्वालामालाओंसे युक्त, सैकड़ों कालाग्निके समान, भयंकर दाढ़ोंवाला, दुर्धर्ष, जटामण्डलोंसे मण्डित, हाथमें त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये, भयानक, घोर रूप एवं प्रशान्त, सौम्य मुखवाला, अनन्त आश्चर्योंसे युक्त, चन्द्रकलासे चिह्नित, करोड़ों चन्द्रमाओंकी आभावाला मुकुट धारण किये, हाथमें गदा लिये, नूपुरोंसे सुशोभित, दिव्य वस्त्र एवं माला धारण किये, दिव्य सुगन्धित अनुलेपन किये हुए, शङ्ख-चक्रधारी, कमनीय, तीन नेत्रवाले, चर्माम्बरधारी, ब्रह्माण्डके बाहर एवं भीतर (सर्वत्र) स्थित, बाहर तथा भीतर सर्वत्र श्रेष्ठ, सर्वशक्तिमय, शुभ्र, सभी आकारोंसे युक्त, सनातन, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और श्रेष्ठ योगियोंद्वारा वन्दित चरणकमलोंवाला, सभी ओर हाथ, पैर, आँख, सिर एवं मुखवाला और सभीको आवृत कर स्थित रहनेवाला (देवीका वह) परमेश्वर-रूप देखा॥ ६७—७३॥

दृष्ट्वा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरं परम्।
भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः॥ ७४॥

आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन्।
नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम्॥ ७५॥

देवीके इस प्रकारके उस परम माहेश्वर रूपको देखकर वे (पर्वतोंके) राजा (हिमवान्) भयसे आविष्ट[1] होते हुए भी प्रसन्न मनवाले हो गये। (और) अपनी आत्मामें आत्माको प्रतिष्ठितकर (आत्मनिष्ठ होकर) ओङ्कारका स्मरण करते हुए (वे) परमेश्वरीके एक हजार आठ नामोंसे उनकी स्तुति करने लगे—॥ ७४-७५॥

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला।
शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा॥ ७६॥
अचिन्त्या केवलानन्त्या शिवात्मा परमात्मिका।
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाचला॥ ७७॥

हिमवान्‌ने कहा—(हे देवी! आप) शिवा, उमा, परमा शक्ति, अनन्ता, निष्कला, अमला, शान्ता, माहेश्वरी, नित्या, शाश्वती, परमाक्षरा, अचिन्त्या, केवला, अनन्त्या, शिवात्मिका, परमात्मिका, अनादि, अव्यया, शुद्धा, देवात्मिका, सर्वगा, अचला॥ ७६-७७॥

१-अपनी पुत्रीमें परस्परविरोधी अनेक रूपोंको देखकर भयभीत होना स्वाभाविक है, पर ऐश्वर्यसम्पन्न देवी ही मेरी पुत्री है—यह अनुभव कर प्रसन्नचित्त होना भी स्वाभाविक ही है।

एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला।
महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना॥ ७८॥
काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा।
नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा॥ ७९॥
शान्तिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा।
व्योममूर्तिर्व्योमलया व्योमाधाराऽच्युताऽमरा॥ ८०॥
अनादिनिधनामोघा कारणात्मा कलाकला।
क्रतुः प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया॥ ८१॥
प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषघातिनी।
प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी॥ ८२॥

एका, अनेकविभागस्था (विविध रूपोंमें स्थित) मायातीता, सुनिर्मला, महामाहेश्वरी, सत्या, महादेवी निरञ्जना, काष्ठा, सर्वान्तरस्था (सभीके हृदयमें स्थित रहनेवाली), चिच्छक्ति (चैतन्यशक्तिरूपा), अतिलालस (उत्कृष्ट इच्छारूपा), नन्दा, सर्वात्मिका, विद्या, ज्योतीरूपा अमृताक्षरा, शान्ति, सभीकी प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृतप्रदा व्योममूर्ति, व्योमलया, व्योमाधारा, अच्युता, अमरा अनादिनिधना, अमोघा, कारणात्मिका, कला, अकला क्रतु, प्रथमजा, अमृतनाभि, आत्मसंश्रया, प्राणेश्वरप्रिया, माता, महामहिषघातिनी, प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधानपुरुषेश्वरी॥ ७८—८२॥

सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्स्ना द्यौर्महिमास्पदा।
सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी॥ ८३॥
अनादिरव्यक्तगुहा महानन्दा सनातनी।
आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी॥ ८४॥
महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
संसारयोनिः सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा॥ ८५॥
संसारपारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा।
प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला॥ ८६॥
महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा।
अनाद्यनन्तविभवा परार्था पुरुषारणिः॥ ८७॥
सर्गस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया।
शब्दयोनिः शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा॥ ८८॥
प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका।
पुराणी चिन्मयी पुंसामादिः पुरुषरूपिणी॥ ८९॥
भूतान्तरात्मा कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता।
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता॥ ९०॥
व्यापिनी चानवच्छिन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी।
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता॥ ९१॥
अनादिमायासम्भिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुहा।
महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी ध्रुवा॥ ९२॥

सर्वशक्तिकलाकारा, ज्योत्स्ना, द्यौः (आकाश-रूपा), महिमास्पदा, सर्वकार्यनियन्त्री, सर्वभूतेश्वरेश्वरी, अनादि, अव्यक्तगुहा, महानन्दा, सनातनी, आकाश-योनि, योगस्था, महायोगेश्वरेश्वरी, महामाया, सुदुष्पूरा, मूलप्रकृति, ईश्वरी, संसारयोनि, सकला, सर्वशक्ति-समुद्भवा, संसारपारा, दुर्वारा, दुर्निरीक्ष्या, दुरासदा (कठिन तपसे प्राप्त करने योग्य), प्राणशक्ति, प्राण-विद्या, योगिनी, परमा, कला, महाविभूति, दुर्धर्षा, मूलप्रकृतिसम्भवा, अनाद्यनन्तविभवा, परार्था, पुरुषारणि पुरुष (परब्रह्म) ही जिनकी अरणि (अग्नि-मन्थनका काष्ठ-विशेष है), सर्गस्थित्यन्तकारिणी, सुदुर्वाच्या, दुरत्यया, शब्दयोनि, शब्दमयी, नादाख्या, नाद-विग्रहा, प्रधानपुरुषातीता, प्रधानपुरुषात्मिका, पुराणी, चिन्मयी, पुरुषोंकी आदिस्वरूपा, पुरुषरूपिणी, भूतान्तरात्मा, कूटस्था, महापुरुषसंज्ञिता, जन्म-मृत्यु-जरातीता, सर्वशक्तिसमन्विता, व्यापिनी, अनवच्छिन्ना, प्रधानानुप्रवेशिनी, क्षेत्रज्ञशक्ति, अव्यक्तलक्षणा, मल-वर्जिता, अनादिमायासम्भिन्ना (अनादिमायारूपा), त्रितत्त्वा, प्रकृति, गुहा, महामायासमुत्पन्ना, तामसी, पौरुषी, ध्रुवा॥ ८३—९२॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका।
अकार्या कार्यजननी नित्यं प्रसवधर्मिणी॥ ९३॥
सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी।
ब्रह्मगर्भा चतुर्विंशा पद्मनाभाच्युतात्मिका॥ ९४॥
वैद्युती शाश्वती योनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया।
सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता॥ ९५॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका, कृष्णा, रक्ता, शुक्ला, प्रसूतिका, अकार्या, कार्यजननी, नित्यप्रसवधर्मिणी, सर्गप्रलयनिर्मुक्ता, सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी, ब्रह्मगर्भा, चतुर्विंशा (चौबीस तत्त्वोंमें अन्तिम तत्त्व), पद्मनाभा, अच्युतात्मिका, वैद्युती, शाश्वती, योनि (मूल कारण), जगन्माता, ईश्वरप्रिया, सर्वाधारा, महारूपा, सर्वैश्वर्यसमन्विता॥ ९३—९५॥

विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी।
महीयसी ब्रह्मयोनिर्महालक्ष्मीसमुद्भवा॥ ९६ ॥
महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका।
सर्वसाधारणी सूक्ष्मा ह्यविद्या पारमार्थिका॥ ९७ ॥

विश्वरूपा, महागर्भा, विश्वेशेच्छानुवर्तिनी, महीयसी, ब्रह्मयोनि, महालक्ष्मीसमुद्भवा, महाविमानमध्यस्था, महानिद्रा, आत्महेतुका, सर्वसाधारणी, सूक्ष्मा, अविद्या, पारमार्थिका॥ ९६-९७॥

अनन्तरूपानन्तस्था देवी पुरुषमोहिनी।
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता॥ ९८ ॥
ब्रह्मजन्मा हरेर्मूर्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया॥ ९९ ॥
व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी।
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता।
अपांयोनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा॥ १००॥
ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्धशरीरिणी।
भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका॥ १०१॥
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा॥ १०२॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी।
ईश्वरार्धासनगता महेश्वरपतिव्रता॥ १०३॥

अनन्तरूपा, अनन्तस्था, देवी, पुरुषमोहिनी, अनेकाकारसंस्थाना, कालत्रयविवर्जिता, ब्रह्मजन्मा, हरिमूर्ति (हरिकी मूर्ति), ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, ब्रह्मेशविष्णुजननी, ब्रह्माख्या, ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता, प्रथमजा, ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी, वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मिका, ब्रह्ममूर्ति, हृदिस्थिता, अपांयोनि (जलकी योनि), स्वयम्भूति, मानसी, तत्त्वसम्भवा, ईश्वराणी, शर्वाणी, शंकरार्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी, महालक्ष्मी, अम्बिका, महेश्वरसमुत्पन्ना, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववन्द्या, नित्यमुदितमानसा, ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता, शंकरेच्छानुवर्तिनी, ईश्वरार्धासनगता, महेश्वरपतिव्रता॥ ९८—१०३॥

सकृद्विभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी।
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी॥ १०४॥
गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकासिनी।
सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसिस्थिता॥ १०५॥
सरोजनिलया मुद्रा योगनिद्रासुरार्दिनी।
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला॥ १०६॥
वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका।
योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना॥ १०७॥
गुह्यविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता।
स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः॥ १०८॥
नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी।
अजा विभावरी सौम्या भोगिनी भोगदायिनी॥ १०९॥
शोभा वंशकरी लोला मालिनी परमेष्ठिनी।
त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी॥ ११०॥

सकृद्विभाविता, सर्वा, समुद्रपरिशोषिणी, पार्वती, हिमवत्पुत्री, परमानन्ददायिनी, गुणाढ्या, योगजा, योग्या, ज्ञानमूर्ति, विकासिनी, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, अनन्तोरसिस्थिता (विष्णुके हृदयमें रहनेवाली), सरोजनिलया, मुद्रा, योगनिद्रा, असुरार्दिनी, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा, सुमङ्गला, वाग्देवी, वरदा, वाच्या, कीर्ति, सर्वार्थसाधिका, योगीश्वरी, ब्रह्मविद्या, महाविद्या, सुशोभना, गुह्यविद्या, आत्मविद्या, धर्मविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वम्भरा, सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति, नीति, सुनीति, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, अजा, विभावरी, सौम्या, भोगिनी, भोगदायिनी, शोभा, वंशकरी, लोला (चञ्चला), मालिनी, परमेष्ठिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी, रम्या, सुन्दरी, कामचारिणी॥ १०४—११०॥

महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्दिनी।
पद्ममाला पापहरा विचित्रा मुकुटानना॥ १११॥
कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।
हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्धिनी॥ ११२॥

महानुभावा, सत्त्वस्था, महामहिषमर्दिनी, पद्ममाला, पापहरा, विचित्रा, मुकुटानना, कान्ता, चित्राम्बरधरा, दिव्याभरणभूषिता, हंसाख्या, व्योमनिलया, जगत्सृष्टिविवर्धिनी॥ १११-११२॥

निर्यन्त्रा यन्त्रवाहस्था नन्दिनी भद्रकालिका।
आदित्यवर्णा कौमारी मयूरवरवाहिनी॥ ११३॥
वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता।
अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा विवाहना॥ ११४॥
विरूपाक्षी लेलिहाना महापुरनिवासिनी।
महाफलानवद्याङ्गी कामपूरा विभावरी॥ ११५॥
विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभञ्जिनी।
कौशिकी कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्तिविनाशिनी॥ ११६॥
बहुरूपा सुरूपा च विरूपा रूपवर्जिता।
भक्तार्तिशमनी भव्या भवभावविनाशिनी॥ ११७॥

निर्यन्त्रा, यन्त्रवाहस्था, नन्दिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, कौमारी, मयूरवरवाहिनी, वृषासनगता, गौरी, महाकाली, सुरार्चिता, अदिति, नियता, रौद्री, पद्मगर्भा, विवाहना, विरूपाक्षी, लेलिहाना, महापुरनिवासिनी, महाफला, अनवद्याङ्गी, कामपूरा, विभावरी, विचित्ररत्नमुकुटा, प्रणतार्तिप्रभञ्जिनी, कौशिकी, कर्षणी, रात्रि, त्रिदशार्तिविनाशिनी, बहुरूपा, सुरूपा, विरूपा, रूपवर्जिता, भक्तार्तिशमनी, भव्या, भवभावविनाशिनी॥ ११३—११७॥

निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा।
यशस्विनी सामगीतिर्भवाङ्गनिलयालया॥ ११८॥
दीक्षा विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी।
सर्वातिशायिनी विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥ ११९॥
सर्वेश्वरप्रिया तार्क्ष्या समुद्रान्तरवासिनी।
अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धा निरामया॥ १२०॥
कामधेनुर्बृहद्गर्भा धीमती मोहनाशिनी।
निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रदा॥ १२१॥
ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोन्मनी।
महाभगवती दुर्गा वासुदेवसमुद्भवा॥ १२२॥
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा।
ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः॥ १२३॥
दक्षिणा दहना दाह्या सर्वभूतनमस्कृता।
योगमाया विभावज्ञा महामाया महीयसी॥ १२४॥

निर्गुणा, नित्यविभवा, निःसारा, निरपत्रपा, यशस्विनी, सामगीति, भवाङ्गनिलयालया, दीक्षा, विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वातिशायिनी, विद्या, सर्वसिद्धिप्रदायिनी, सर्वेश्वरप्रिया, तार्क्ष्या, समुद्रान्तरवासिनी, अकलंका, निराधारा, नित्यसिद्धा, निरामया, कामधेनु, बृहद्गर्भा, धीमती, मोहनाशिनी, निःसङ्कल्पा, निरातङ्का, विनया, विनयप्रदा, ज्वालामालासहस्राढ्या, देवदेवी, मनोन्मनी, महाभगवती, दुर्गा, वासुदेवसमुद्भवा, महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, भक्तिगम्या, परावरा, ज्ञानज्ञेया, जरातीता, वेदान्तविषया, गति, दक्षिणा, दहना, दाह्या, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया, विभावज्ञा, महामाया, महीयसी॥ ११८—१२४॥

संध्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रयानतिः।
बीजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः॥ १२५॥
ख्यातिः प्रज्ञा चितिः संवित् महाभोगीन्द्रशायिनी।
विकृतिः शांकरी शास्त्री गणगन्धर्वसेविता॥ १२६॥
वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया।
महारात्रिः शिवानन्दा शचीदुःस्वप्ननाशिनी॥ १२७॥
इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी।
गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता॥ १२८॥
हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा।
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा॥ १२९॥
बुद्धिमाता बुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी।
तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता॥ १३०॥

संध्या, सर्वसमुद्भूति, ब्रह्मवृक्षाश्रयानति, बीजाङ्कुर-समुद्भूति, महाशक्ति, महामति, ख्याति, प्रज्ञा, चिति, संवित्, महाभोगीन्द्रशायिनी, विकृति, शांकरी, शास्त्री, गणगन्धर्वसेविता, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया, महारात्रि, शिवानन्दा, शची, दुःस्वप्ननाशिनी, इज्या, पूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेया, सुरूपिणी, गुहाम्बिका, गुणोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरागादि, हव्यवाहसमुद्भवा, जगद्योनि, जगन्माता, जन्ममृत्युजरातिगा, बुद्धिमाता, बुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी, तरस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता॥ १२५—१३०॥

सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता।
संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया॥ १३१॥
ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणिः।
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका॥ १३२॥
सुमालिनी सुरूपा च भाविनी तारिणी प्रभा।
उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी॥ १३३॥
सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा।
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी॥ १३४॥
जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया।
निराश्रया निराहारा निरङ्कुरवनोद्भवा॥ १३५॥
चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी।
परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा॥ १३६॥
विद्येश्वरप्रिया विद्या विद्युज्जिह्वा जितश्रमा।
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा॥ १३७॥
सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया।
क्षालिनी सन्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका॥ १३८॥
महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा।
व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानामितप्रभा॥ १३९॥
वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी।
अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी॥ १४०॥
सदानन्दा सदाकीर्तिः सर्वभूताश्रयस्थिता।
वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणिः॥ १४१॥
ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया।
व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः परागतिः॥ १४२॥
क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता।
अभिन्नाभिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी॥ १४३॥
गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी।
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी॥ १४४॥
सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहारणिः।
प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी॥ १४५॥
कपिला कापिला कान्ता कनकाभा कलान्तरा।
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरंदरपुरस्सरा॥ १४६॥
पोषणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा॥ १४७॥
धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा।
मनोहरा मनोरक्षा तापसी वेदरूपिणी॥ १४८॥

सर्वेन्द्रियमनोमाता, सर्वभूतहृदिस्थिता, संसारतारिणी, विद्या, ब्रह्मवादिमनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भवारणि, हिरण्मयी, महारात्रि, संसारपरिवर्तिका, सुमालिनी, सुरूपा, भाविनी, तारिणी, प्रभा, उन्मीलनी, सर्वसहा, सर्वप्रत्ययसाक्षिणी, सुसौम्या, चन्द्रवदना, ताण्डवासक्तमानसा, सत्त्वशुद्धिकरी[1], शुद्धि, मलत्रयविनाशिनी, जगत्प्रिया, जगन्मूर्ति, त्रिमूर्ति, अमृताश्रया, निराश्रया, निराहारा, निरङ्कुरवनोद्भवा, चन्द्रहस्ता, विचित्राङ्गी, स्रग्विणी, पद्मधारिणी, परावरविधानज्ञा, महापुरुषपूर्वजा, विद्येश्वरप्रिया, विद्या, विद्युज्जिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी, सहस्राक्षी, सहस्रवदनात्मजा॥ १३१—१३७॥

सहस्ररश्मि, सत्त्वस्था, महेश्वरपदाश्रया, क्षालिनी, सन्मयी, व्याप्ता, तैजसी, पद्मबोधिका, महामायाश्रया, मान्या, महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकिताना, अमितप्रभा, वीरेश्वरी, विमानस्था, विशोका, शोकनाशिनी, अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मवासिनी, सदानन्दा, सदाकीर्ति, सर्वभूताश्रयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलारणि, ब्रह्मश्री, ब्रह्महृदया, ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, परागति, क्षोभिका, बन्धिका, भेद्या, भेदाभेदविवर्जिता, अभिन्ना, अभिन्नसंस्थाना, वंशिनी, वंशहारिणी, गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालकारिणी॥ १३८—१४४॥

सर्ववित्, सर्वतोभद्रा, गुह्यातीता, गुहारणि, प्रक्रिया, योगमाता, गङ्गा, विश्वेश्वरेश्वरी, कपिला, कापिला, कान्ता, कनकाभा, कलान्तरा, पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरंदरपुरस्सरा, पोषणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूषणा, पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति, परमार्थार्थविग्रहा, धर्मोदया, भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा, मनोहरा, मनोरक्षा, तापसी, वेदरूपिणी॥ १४५—१४८॥

१-सत्त्व (चित्त)।

वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी।
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी॥ १४९॥
विश्वावस्था वियन्मूर्तिर्विद्युन्माला विहायसी।
किंनरी सुरभी वन्द्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा॥ १५०॥
भारती परमानन्दा परापरविभेदिका।
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी॥ १५१॥
अचिन्त्याचिन्त्यविभवा हृल्लेखा कनकप्रभा।
कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी॥ १५२॥
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिवोदया।
सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना॥ १५३॥
शान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना।
आद्या हृत्कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया॥ १५४॥
सत्क्रिया गिरिजा शुद्धा नित्यपुष्टा निरन्तरा।
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा॥ १५५॥
हिरण्यवर्णा रजनी जगद्यन्त्रप्रवर्तिका।
मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी॥ १५६॥
रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी।
पद्मानना पद्मनिभा नित्यतुष्टामृतोद्भवा॥ १५७॥
धुन्वती दुःप्रकम्प्या च सूर्यमाता दृषद्वती।
महेन्द्रभगिनी मान्या वरेण्या वरदर्पिता॥ १५८॥
कल्याणी कमला रामा पञ्चभूता वरप्रदा।
वाच्या वरेश्वरी वन्द्या दुर्जया दुरतिक्रमा॥ १५९॥
कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता।
भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी॥ १६०॥
कराला पिङ्गलाकारा नामभेदामहामदा।
यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्तिका॥ १६१॥
शङ्खिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्तिका।
चैत्रा संवत्सरारूढा जगत्सम्पूरणीन्द्रजा॥ १६२॥
शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया।
खगध्वजा खगारूढा परार्ध्या परमालिनी॥ १६३॥
ऐश्वर्यवर्त्मनिलया विरक्ता गरुडासना।
जयन्ती हृद्गुहा रम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणीः॥ १६४॥
संकल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी।
कलिकल्मषहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा॥ १६५॥

निष्ठा दृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती।
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता॥ १६६॥

वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्याप्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी, माता, महाशक्ति, मनोमयी, विश्वावस्था, वियन्मूर्ति, विद्युन्माला, विहायसी, किंनरी, सुरभी, वन्द्या, नन्दिनी, नन्दिवल्लभा, भारती, परमानन्दा, परापरविभेदिका, सर्वप्रहरणोपेता, काम्या, कामेश्वरेश्वरी॥ १४९—१५१॥

अचिन्त्या, अचिन्त्यविभवा, हृल्लेखा, कनकप्रभा, कूष्माण्डी, धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदोद्भूता, धनुष्पाणि, शिवोदया, सुदुर्लभा, धनाध्यक्षा, धन्या, पिङ्गललोचना, शान्ति, प्रभावती, दीप्ति, पङ्कजायतलोचना, आद्या, हृत्कमलोद्भूता, गवां माता (गौओंकी माता), रणप्रिया, सत्क्रिया, गिरिजा, शुद्धा, नित्यपुष्टा, निरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चण्डी, चर्चिका, शान्तविग्रहा, हिरण्यवर्णा, रजनी, जगद्यन्त्रप्रवर्तिका, मन्दराद्रिनिवासा, शारदा, स्वर्णमालिनी, रत्नमाला, रत्नगर्भा, पृथ्वी, विश्वप्रमाथिनी, पद्मानना, पद्मनिभा, नित्यतुष्टा, अमृतोद्भवा, धुन्वती, दुःप्रकम्प्या, सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, मान्या, वरेण्या, वरदर्पिता॥ १५२—१५८॥

कल्याणी, कमला, रामा, पञ्चभूता, वरप्रदा, वाच्या, वरेश्वरी, वन्द्या, दुर्जया, दुरतिक्रमा, कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रप्रिया, हिता, भद्रकाली, जगन्माता, भक्तानां भद्रदायिनी (भक्तोंका कल्याण करनेवाली), कराला, पिङ्गलाकारा, नामभेदा, अमहामदा, यशस्विनी, यशोदा, षडध्वपरिवर्तिका, शङ्खिनी, पद्मिनी, सांख्या, सांख्ययोगप्रवर्तिका, चैत्रा, संवत्सरारूढा, जगत्सम्पूरणीन्द्रजा, शुम्भारि, खेचरी, स्वस्था, कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया, खगध्वजा, खगारूढा, परार्ध्या, परमालिनी, ऐश्वर्यवर्त्मनिलया, विरक्ता, गरुडासना, जयन्ती, हृद्गुहा, रम्या, गह्वरेष्ठा, गणाग्रणी, संकल्पसिद्धा, साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी, कलिकल्मषहन्त्री, गुह्योपनिषत्, उत्तमा॥ १५९—१६५॥

निष्ठा, दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रियावती, विश्वामरेश्वरेशाना, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता॥ १६६॥

लोहिता सर्पमाला च भीषणी वनमालिनी।
अनन्तशयनानन्या नरनारायणोद्भवा ॥ १६७ ॥
नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा।
संकर्षणसमुत्पत्तिरम्बिकापादसंश्रया ॥ १६८ ॥
महाज्वाला महामूर्तिः सुमूर्तिः सर्वकामधुक्।
सुप्रभा सुस्तना गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ १६९ ॥
भ्रूमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारणिः।
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा ॥ १७० ॥
अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदलप्रभा।
सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मार्थवर्जिता ॥ १७१ ॥
वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया।
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी ॥ १७२ ॥
स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी।
अशेषदेवतामूर्तिर्देवता वरदेवता।
गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी ॥ १७३ ॥
अवर्णा वर्णरहिता निवर्णा बीजसम्भवा।
अनन्तवर्णानन्यस्था शंकरी शान्तमानसा ॥ १७४ ॥
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणोत्तरा।
गौर्गीर्गव्यप्रिया गौणी गणेश्वरनमस्कृता ॥ १७५ ॥
सत्यमात्रा सत्यसंधा त्रिसंध्या संधिवर्जिता।
सर्ववादाश्रया संख्या सांख्ययोगसमुद्भवा ॥ १७६ ॥
असंख्येयाप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा।
बिन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुवामा शशिप्रभा ॥ १७७ ॥
विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी।
महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तमःपारेप्रतिष्ठिता ॥ १७८ ॥
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया।
शान्त्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया ॥ १७९ ॥
शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी।
दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकल्पिका ॥ १८० ॥
शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका।
नारायणी नरोद्भूतिः कौमुदी लिङ्गधारिणी ॥ १८१ ॥
कामुकी ललिता भावा परापरविभूतिदा।
परान्तजातमहिमा बडवा वामलोचना ॥ १८२ ॥
सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा।
मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा ॥ १८३ ॥
अमृत्युरमृता स्वाहा पुरुहूता पुरुष्टुता।
अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया ॥ १८४ ॥

लोहिता, सर्पमाला, भीषणी, वनमालिनी अनन्तशयना, अनन्या, नरनारायणोद्भवा, नृसिंही, दैत्यमथनी, शङ्खचक्रगदाधरा, संकर्षणसमुत्पत्ति, अम्बिकापदसंश्रया, महाज्वाला, महामूर्ति, सुमूर्ति, सर्वकामधुक्, सुप्रभा, सुस्तना, गौरी, धर्मकामार्थमोक्षदा, भ्रूमध्यनिलया, पूर्वा, पुराणपुरुषारणि, महाविभूतिदा, मध्या, सरोजनयना, समा, अष्टादशभुजा, अनाद्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्यासनारूढा, धर्माधर्मार्थवर्जिता, वैराग्यज्ञाननिरता, निरालोका, निरिन्द्रिया, विचित्रगहनाधारा, शाश्वतस्थानवासिनी, स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूलवरधारिणी, अशेषदेवतामूर्ति, देवता, वरदेवता, गणाम्बिका, गिरेः पुत्री (गिरिपुत्री), निशुम्भविनिपातिनी ॥ १६७—१७३ ॥

अवर्णा, वर्णरहिता, निवर्णा, बीजसम्भवा, अनन्तवर्णा, अनन्यस्था, शंकरी, शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोप्त्री, गुह्यरूपा, गुणोत्तरा, गौः (गौ), गीः, गव्यप्रिया, गौणी, गणेश्वरनमस्कृता, सत्यमात्रा, सत्यसंधा, त्रिसंध्या, संधिवर्जिता, सर्ववादाश्रया, संख्या, सांख्ययोगसमुद्भवा, असंख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा, बिन्दुनादसमुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, विसङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्रीः (महाश्री) श्रीसमुत्पत्ति, तमःपारेप्रतिष्ठिता, त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा, सुसूक्ष्मपदसंश्रया, शान्त्यतीता, मलातीता, निर्विकारा, निराश्रया, शिवाख्या, चित्तनिलया, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्यदानवनिर्मात्री, काश्यपी, कालकल्पिका ॥ १७४—१८० ॥

शास्त्रयोनि, क्रियामूर्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका, नारायणी, नरोद्भूति, कौमुदी, लिंगधारिणी, कामुकी, ललिता, भावा, परापरविभूतिदा, परान्तजातमहिमा, बडवा, वाम-लोचना, सुभद्रा, देवकी, सीता, वेदवेदाङ्गपारगा, मनस्विनी, मन्युमाता, महामन्युसमुद्भवा, अमृत्यु, अमृता, स्वाहा, पुरुहूता, पुरुष्टुता, अशोच्या, भिन्नविषया, हिरण्यरजतप्रिया ॥ १८१—१८४ ॥

हिरण्या राजती हैमी हेमाभरणभूषिता।
विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा॥ १८५॥
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रा सत्यदेवता।
दीर्घा ककुद्मिनी हृद्या शान्तिदा शान्तिवर्धिनी॥ १८६॥
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका।
त्रिशक्तिजननी जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता॥ १८७॥
सुधामा कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका।
संकर्षणी जगद्धात्री कामयोनिः किरीटिनी॥ १८८॥
ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी।
प्रद्युम्नदयिता दान्ता युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना॥ १८९॥

हिरण्या, राजती, हैमी, हेमाभरणभूषिता, विभ्राजमाना, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोमफलप्रदा, महानिद्रासमुद्भूति, अनिद्रा, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुद्मिनी, हृद्या, शान्तिदा, शान्तिवर्धिनी, लक्ष्म्यादिशक्तिजननी, शक्तिचक्रप्रवर्तिका, त्रिशक्ति-जननी, जन्या, षडूर्मिपरिवर्जिता, सुधामा, कर्मकरणी, युगान्तदहनात्मिका, संकर्षणी, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमेश्वरी, प्रद्युम्नदयिता, दान्ता, युग्मदृष्टि, त्रिलोचना॥ १८५—१८९॥

मदोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा चण्डविक्रमा।
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी॥ १९०॥
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी।
चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी॥ १९१॥
वेदविद्याव्रतस्नाता धर्मशीलानिलाशना।
वीरभद्रप्रिया वीरा महाकालसमुद्भवा॥ १९२॥
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः।
आप्यायनी हरन्ती च पावनी पोषणी खिला॥ १९३॥
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया।
करीषिणी सुधावाणी वीणावादनतत्परा॥ १९४॥
सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती।
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी॥ १९५॥
वसुप्रदा वसुमती वसोर्धारा वसुंधरा।
धाराधरा वरारोहा वरावरसहस्रदा॥ १९६॥

मदोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, वृषावेशा, वियन्माता, विन्ध्यपर्वतवासिनी, हिमवन्मेरुनिलया, कैलासगिरिवासिनी, चाणूरहन्तृतनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी, वेदविद्याव्रतस्नाता, धर्मशीला, अनिलाशना, वीरभद्र-प्रिया, वीरा, महाकालसमुद्भवा, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधरनिराकृति, आप्यायनी, हरन्ती, पावनी, पोषणी, खिला, मातृका, मन्मथोद्भूता, वारिजा, वाहनप्रिया, करीषिणी, सुधावाणी, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेव्या, सिनीवाली, गरुत्मती, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मृगाङ्का, मानदायिनी, वसुप्रदा, वसुमती, वसोर्धारा, वसुंधरा, धाराधरा, वरारोहा, वरावरसहस्रदा॥ १९०—१९६॥

श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया।
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्धशरीरिणी॥ १९७॥
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया।
निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना॥ १९८॥
सुषेणा चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छिन्नसंशया।
रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानामृतस्रवा॥ १९९॥
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवनी।
वज्रदण्डा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा॥ २००॥
मङ्गल्या मङ्गला माला मलिना मलहारिणी।
गान्धर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया॥ २०१॥

श्रीफला, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा, शिवप्रिया, श्रीधरा, श्रीकरी, कल्या, श्रीधरार्धशरीरिणी, अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया, दैत्यसंघानां निहन्त्री (दैत्यसंघनिहन्त्री), सिंहिका, सिंहवाहना, सुषेणा, चन्द्रनिलया, सुकीर्ति, छिन्नसंशया, रसज्ञा, रसदा, रामा, लेलिहाना, अमृतस्रवा, नित्योदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, मृतजीवनी, वज्रदण्डा, वज्रजिह्वा, वैदेही, वज्रविग्रहा, मङ्गल्या, मङ्गला, माला, मलिना, मलहारिणी, गान्धर्वी, गारुडी, चान्द्री, कम्बलाश्वतरप्रिया॥ १९७—२०१॥

सौदामिनी जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना।
कर्णिकारकरा कक्ष्या कंसप्राणापहारिणी॥ २०२॥
युगंधरा युगावर्ता त्रिसंध्या हर्षवर्धिनी।
प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा॥ २०३॥

सौदामिनी, जनानन्दा, भ्रुकुटीकुटिलानना, कर्णिकारकरा, कक्ष्या, कंसप्राणापहारिणी, युगंधरा, युगावर्ता, त्रिसंध्या, हर्षवर्धिनी, प्रत्यक्षदेवता, दिव्या, दिव्यगन्धा, दिवापरा॥ २०२-२०३॥

शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना।
इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता॥ २०४॥
शतरूपा शतावर्ता विनता सुरभिः सुरा।
सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता॥ २०५॥
समीक्ष्या सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिर्ज्ञानपारगा।
धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना॥ २०६॥

शक्रासनगता, शाक्री, साध्वी, नारी, शवासना, इष्टा, विशिष्टा, शिष्टेष्टा, शिष्टाशिष्टप्रपूजिता, शतरूपा, शतावर्ता, विनता, सुरभि, सुरा, सुरेन्द्रमाता, सुद्युम्ना, सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्ष्या, सत्प्रतिष्ठा, निवृत्ति, ज्ञानपारगा, धर्मशास्त्रार्थकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना॥ २०४—२०६॥

धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा।
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी॥ २०७॥
धर्मान्तरा धर्ममेघा धर्मपूर्वा धनावहा।
धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा॥ २०८॥
कापाली शाकला मूर्तिः कला कलितविग्रहा।
सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया॥ २०९॥
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सुसूक्ष्मा ज्ञानरूपिणी।
प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी।
सदाशिवा वियन्मूर्तिर्विश्वमूर्तिरमूर्तिका॥ २१०॥

धर्माधर्मविनिर्मात्री, धार्मिकाणां शिवप्रदा (धार्मिकोंका कल्याण करनेवाली), धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी, धर्मान्तरा, धर्ममेघा, धर्मपूर्वा, धनावहा, धर्मोपदेष्ट्री, धर्मात्मा, धर्मगम्या, धराधरा, कापाली, शाकला, मूर्ति, कला, कलितविग्रहा, सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रयाश्रया, सर्वा, सर्वेश्वरी, सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, ज्ञानरूपिणी, प्रधानपुरुषेशेशा, महादेवैकसाक्षिणी, सदाशिवा, वियन्मूर्ति, विश्वमूर्ति तथा अमूर्तिका—(के नामसे प्रसिद्ध) हैं॥ २०७—२१०॥

एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वासौ हिमवान् गिरिः।
भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः॥ २११॥

इस प्रकार हजार नामोंसे (देवीकी) स्तुति करके वे भयभीत हिमवान् पर्वत पुनः प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार बोले—॥ २११॥

यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि।
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत् प्रदर्शय॥ २१२॥
एवमुक्ताथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती।
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरं पुनः॥ २१३॥

हे परमेश्वरि! यह जो आपका घोर ऐश्वर (विराट्)-रूप है, उसे देखकर मैं इस समय भयभीत हो गया हूँ, आप अपना दूसरा (सौम्य) रूप मुझे दिखायें। उस (हिमवान्) पर्वतके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन देवी पार्वतीने अपने उस विराट् रूपको समेटकर दूसरा (सौम्य) रूप उन्हें दिखलाया॥ २१२-२१३॥

नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धिकम्।
द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम्॥ २१४॥
रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्।
श्रीमद् विशालसंवृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम्॥ २१५॥
भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम्।
दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम्॥ २१६॥
ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम्।
प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम्॥ २१७॥

(देवीका वह रूप) नीले कमलदलके समान (नीलवर्णवाला), नीलकमलके समान सुगन्धियुक्त, दो नेत्र एवं दो भुजावाला, सौम्य, नीले अलकोंसे विभूषित, रक्तकमलके समान चरणतलवाला, सुन्दर लाल पल्लवके समान हाथवाला, श्रीयुक्त (वह रूप) विशाल एवं प्रशस्त ललाटपर लगे तिलकसे प्रफुल्लित (था)। (उसके) सभी अङ्ग अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा भूषणोंसे आभूषित थे। (उन देवीने) स्वर्णनिर्मित विशाल मालाको अपने वक्षःस्थलपर धारण कर रखा था। सुन्दर बिम्बफलके समान (रक्त) ओठ मन्द मधुर मुसकानयुक्त था। (चरणोंमें धारण किये) नूपुरोंसे ध्वनि निकल रही थी। (देवीका वह रूप) प्रसन्न मुखवाला तथा दिव्य एवं अनन्त महिमामें प्रतिष्ठित था॥ २१४—२१७॥

तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः।
भीतिं संत्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम्॥ २१८॥

पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् देवीके इस प्रकारके (सौम्य) स्वरूपको देखकर भयका परित्यागकर प्रसन्न-मन होकर परमेश्वरीसे कहने लगे—॥ २१८॥

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
यन्मे साक्षात् त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा॥ २१९॥

त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम्।
त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परा गतिः॥ २२०॥

वदन्ति केचित् त्वामेव प्रकृतिं प्रकृतेः पराम्।
अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये॥ २२१॥

त्वयि प्रधानं पुरुषो महान् ब्रह्मा तथेश्वरः।
अविद्या नियतिर्माया कलाद्याः शतशोऽभवन्॥ २२२॥

हिमवान् बोले—मेरा जन्म लेना आज सफल हो गया, आज मेरा तप सफल हो गया, जो मुझे अव्यक्तस्वरूपा आप प्रसन्न होकर दृष्टिगोचर हुई हैं। देवि! आपके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि हुई है, आपमें प्रधानादि प्रतिष्ठित हैं और आपमें ही (वह सब) लीन भी हो जाता है। आप ही परम गति भी हैं। शिवके आश्रयमें रहनेवाली देवि! कुछ लोग आपको ही प्रकृति तथा प्रकृतिसे परे कहते हैं और दूसरे परमार्थको जाननेवाले आपको शिवा कहते हैं। आपमें प्रधान, पुरुष, महान्, ब्रह्मा तथा ईश्वर (प्रतिष्ठित हैं)। (आपसे) अविद्या, नियति, माया और सैकड़ों कला आदिकी उत्पत्ति हुई है॥ २१९—२२२॥

त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी।
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा॥ २२३॥

त्वामधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वरः।
प्रधानाद्यं जगत् कृत्स्नं करोति विकरोति च॥ २२४॥

त्वयैव संगतो देवः स्वमानन्दं समश्नुते।
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी॥ २२५॥

त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम्।
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम्॥ २२६॥

त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि।
वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः॥ २२७॥

आप ही वह परमा शक्ति, अनन्ता और परमेष्ठिनी हैं। आप सभी भेदोंसे विनिर्मुक्त और सभी भेदोंके आश्रय एवं स्वयं प्रतिष्ठित हैं। हे योगेश्वरी! आपमें ही अधिष्ठित होकर महादेव महेश्वर प्रधान आदि सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करते हैं और फिर (उसका) संहार करते हैं। आपके ही संयोगसे महादेव स्वात्मानन्दका उपभोग करते हैं। आप ही परमानन्द (रूपा) और आप ही आनन्द प्रदान करनेवाली हैं। आप अक्षर, परमव्योम, महान् ज्योति, निरञ्जन, कल्याणरूप, सर्वगत, सूक्ष्म एवं सनातन परम ब्रह्म हैं। देवि! आप सभी देवताओंमें इन्द्र (रूप) और ब्रह्मज्ञानियोंमें ब्रह्मा (रूप) हैं। (आप) बलवानोंमें वायु (रूप) तथा योगियोंमें कुमारक (सनत्कुमार) हैं॥ २२३—२२७॥

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि।
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शंकरः॥ २२८॥

आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनां चैव पावकः।
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामसि॥ २२९॥

अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः।
माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामसि॥ २३०॥

ओङ्कारः सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः।
आश्रमाणां च गार्हस्थ्यमीश्वराणां महेश्वरः॥ २३१॥

आप ऋषियोंमें वसिष्ठ, वेदविदोंमें व्यास हैं। सांख्यशास्त्रके जाननेवालोंमें कपिलदेव तथा रुद्रोंमें शंकर हैं। आप आदित्योंमें उपेन्द्र (विष्णु) तथा वसुओंमें पावक हैं। वेदोंमें आप सामवेद तथा छन्दोंमें गायत्री छन्द हैं। विद्याओंमें अध्यात्मविद्या तथा गतियोंमें परम गति हैं। आप सभी शक्तियोंमें माया और संहार करनेवालोंमें काल (रूप) हैं। आप सभी गुह्योंमें ओंकार और वर्णोंमें द्विजोत्तम हैं। आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम तथा ईश्वरोंमें महेश्वर हैं॥ २२८—२३१॥

पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः।
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे॥ २३२॥

ईशानश्चासि कल्पानां युगानां कृतमेव च।
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती॥ २३३॥

त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि।
अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि॥ २३४॥

सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु।
सावित्री चासि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम्॥ २३५॥

पुरुषोंमें जो (उत्तम) पुरुष है और जो सभी प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला है, वह एकमात्र आप ही हैं। देवि! आप सभी उपनिषदोंमें गुह्योपनिषत् कही जाती हैं। कल्पोंमें आप ईशानकल्प हैं और युगोंमें सत्ययुग हैं। सभी भ्रमण करनेवालों (ग्रह-नक्षत्रों आदि)-में आदित्य (सूर्य) तथा वाणियोंमें सरस्वती देवी हैं। सुन्दर रूपवालोंमें आप लक्ष्मी और मायावियोंमें विष्णु हैं। आप पतिव्रताओंमें अरुन्धती तथा पक्षियोंमें गरुड हैं। आप सूक्तोंमें पुरुषसूक्त, सामगानोंमें ज्येष्ठ साम हैं। जपने योग्य मन्त्रोंमें सावित्री मन्त्र और यजुर्वेदके मन्त्रोंमें शतरुद्रिय आप ही हैं॥ २३२—२३५॥

पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामसि।
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि॥ २३६॥
रूपं तवाशेषकलाविहीन-
मगोचरं निर्मलमेकरूपम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं
नमामि सत्यं तमसः परस्तात्॥ २३७॥
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं
तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये॥ २३८॥
अशेषभूतान्तरसंनिविष्टं
प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम्।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं
प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २३९॥

आप पर्वतोंमें महामेरु और सर्पोंमें अनन्त (नाग) हैं। सभीमें आप परब्रह्म हैं, सब कुछ आपमें ही व्याप्त है। मैं आपके तमोगुणसे परे रहनेवाले उस सत्यरूपको नमस्कार करता हूँ जो समस्त कलाओंसे रहित, अगोचर, निर्मल, अद्वितीय, आदि, मध्य तथा अन्तरहित, अनन्त और आदिस्वरूप हैं। वेदान्तरूपी विज्ञानके अर्थका निश्चय करनेवाले, जगत्‌के उत्पादक प्रणव नामवाले जिस अद्वितीय आनन्दका साक्षात्कार करते हैं, मैं उसी रूपकी शरण ग्रहण करता हूँ। (मैं) समस्त प्राणियोंके भीतर रहनेवाले, प्रधान और पुरुषके संयोग तथा वियोगके कारण, उत्पत्ति एवं विनाशसे रहित तथा तेजोमय उस प्राण नामवाले रूपको प्रणाम करता हूँ॥ २३६—२३९॥

आद्यन्तहीनं जगदात्मभूतं
विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात्।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव
नमामि रूपं पुरुषाभिधानम्॥ २४०॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं
सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं
नतोऽस्मि ते रूपमलुप्तभेदम्॥ २४१॥
आद्यं महत् ते पुरुषात्मरूपं
प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम्।
ऐश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः
समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम्॥ २४२॥

(मैं) आदि तथा अन्तसे रहित, संसारके आत्मारूप, अनेक रूपोंमें स्थित, प्रकृतिसे परे रहनेवाले, कूटस्थ एवं अव्यक्त शरीर धारण करनेवाले पुरुष नामक आपके रूपको नमस्कार करता हूँ। मैं सभीके आश्रयरूप, सम्पूर्ण संसारका विधान करनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, जन्म और मरणसे रहित, सूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुणात्मक, प्रधानस्वरूप तथा अलुप्त भेदवाले आपके रूपको प्रणाम करता हूँ। देवि! आपका जो आद्य, महान्, पुरुषात्मक रूप है, जो प्रकृतिमें अवस्थित है, त्रिगुणात्मक मूल बीजरूप है तथा ऐश्वर्य, विज्ञान और विराग-धर्मोंसे समन्वित है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ॥ २४०—२४२॥

द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं
विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम्।
अनन्तभूतैरधिवासितं ते
नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञम्॥ २४३॥
अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं
स्वतेजसा पूरितलोकभेदम्।
त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसंज्ञं
नमामि रूपं रविमण्डलस्थम्॥ २४४॥
सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं
सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमन्तःसलिले तथैव
नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २४५॥
दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं
युगान्तकालानलकल्परूपम्।
अशेषभूताण्डविनाशहेतुं
नमामि रूपं तव कालसंज्ञम्॥ २४६॥
फणासहस्रेण विराजमानं
भोगीन्द्रमुख्यैरभिपूज्यमानम्।
जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं
नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंज्ञम्॥ २४७॥

अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं
ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम्।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं
नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम्॥ २४८॥

प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं
सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्।
सुकोमलं देवि विशालशुभ्रं
नमामि ते रूपमिदं नमामि॥ २४९॥

ॐ नमस्ते महादेवि नमस्ते परमेश्वरि।
नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥ २५०॥
त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम।
त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि॥ २५१॥

मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा।
जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः॥ २५२॥

चौदह लोकात्मक, जलमें अवस्थित, विचित्र भेदवाले, परम पुरुषको ही अपना स्वामी स्वीकार करनेवाले, अनन्त प्राणियोंके निवासस्थान, उस जगदण्ड (ब्रह्माण्ड)-संज्ञक आपके रूपको मैं नमस्कार करता हूँ। (मैं) समग्र वेदरूप, अद्वितीय, आदि, अपने तेजसे सम्पूर्ण संसारको व्याप्त करनेवाले, तीनों कालोंके कारण तथा सूर्यमण्डलमें प्रतिष्ठित परमेष्ठी नामवाले रूपको नमस्कार करता हूँ। जो हजारों सिरवाले हैं, अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं, हजारों हाथवाले हैं तथा जलके मध्यमें शयन करनेवाले हैं, मैं उन 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध पुराणपुरुषके रूपको प्रणाम करता हूँ। (देवि!) आपका जो रूप भयंकर दाढ़वाला, देवताओंद्वारा सब प्रकारसे वन्दनीय, प्रलयकालीन अग्निके समान रूपवाला और सम्पूर्ण प्राणियोंके विनाशके लिये कारण-रूप है, मैं उस काल नामवाले रूपको नमस्कार करता हूँ॥ २४३—२४६॥

(देवि!) मैं आपके शेष नामवाले उस रूपको प्रणाम करता हूँ, जो हजारों फणोंसे सुशोभित है, प्रधान-प्रधान नागराजोंसे पूजित है, जनार्दन नामसे शरीर धारण किये हुए है तथा प्रगाढ़ निद्रामें है। जिसका ऐश्वर्य अव्याहत (अबाधित)है, जिसके नेत्र विषम हैं, (जो तीन नेत्रोंसे युक्त है), जो ब्रह्मके अमृतरूपी आनन्द-रसको जाननेवाला है, अद्वितीय है, प्रलयकालमें स्थित रहनेवाला है और जो द्युलोकमें नृत्य करता रहता है (देवि!) मैं आपके उस रुद्र नामवाले रूपको प्रणाम करता हूँ। देवि! (मैं) शोकसे सर्वथा शून्य, निर्मल, पवित्र, देवताओं तथा असुरोंसे पूजित चरणकमलवाले आपके अत्यन्त कोमल, विशाल एवं उज्ज्वल इस रूपको नमस्कार करता हूँ, बार-बार नमस्कार करता हूँ। महादेवि! आपको नमस्कार है, परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। भगवती ईशानीको नमस्कार है, कल्याणरूपिणी आपको बार-बार नमस्कार है॥ २४७—२५०॥

मैं आपसे व्याप्त हूँ, आप मेरे आधार हैं और आप ही मेरी गति हैं। परमेश्वरि! मैं आपकी ही शरण ग्रहण करता हूँ, आप (मुझपर) प्रसन्न हों। मेरे समान संसारमें देवता या दानव कोई भी नहीं है, क्योंकि (मेरे) तपके कारण आप जगन्माता ही मेरी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई हैं॥ २५१-२५२॥

एषा तवाम्बिका देवि किलाभूत् पितृकन्यका।
मेनाशेषजगन्मातुरहो पुण्यस्य गौरवम्॥ २५३॥

पाहि माममरेशानि मेनया सह सर्वदा।
नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवाम्॥ २५४॥

देवि! ये पितरोंकी कन्या मेना सम्पूर्ण संसारकी मातास्वरूप आपकी माता हैं, अहो! पुण्यके गौरवका क्या कहना? अमरेशानि! आप मेनाके साथ मेरी सर्वदा रक्षा करें। मैं आपके चरणकमलोंमें नमस्कार करता हूँ और आप कल्याणकारिणीकी शरणमें हूँ॥ २५३-२५४॥

अहो मे सुमहद् भाग्यं महादेवीसमागमात्।
आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि शंकरि॥ २५५॥

एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः।
सम्प्रेक्षमाणो गिरिजां प्राञ्जलिः पार्श्वतोऽभवत्॥ २५६॥

अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः।
सस्मितं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपतिं पतिम्॥ २५७॥

अहो! महादेवीके (मेरे घर) आ जानेसे मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य हुआ। महादेवि! शंकरि! आप मुझे आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ? ऐसा वचन कहकर वह गिरिराज हिमालय गिरिजाको देखते हुए एवं हाथ जोड़ते हुए उनके पास खड़े हो गये। जगत्की अरणि (मूल कारण)-रूप उस देवीने उनका (हिमवान्का) वचन सुनकर अपने पति पशुपति (शंकर)-का स्मरणकर मधुर-मधुर मुसकराते हुए पिता (हिमवान्)-से कहा— ॥ २५५—२५७॥

देव्युवाच

शृणुष्व चैतत् परमं गुह्यमीश्वरगोचरम्।
उपदेशं गिरिश्रेष्ठ सेवितं ब्रह्मवादिभिः॥ २५८॥

यन्मे साक्षात् परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम्।
सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम्॥ २५९॥

शान्तः समाहितमना दम्भाहंकारवर्जितः।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं व्रज॥ २६०॥

भक्त्या त्वनन्यया तात मद्भावं परमाश्रितः।
सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय सर्वदा॥ २६१॥

तदेव मनसा पश्य तद् ध्यायस्व जपस्व च।
ममोपदेशात् संसारं नाशयामि तवानघ॥ २६२॥

देवी बोलीं—गिरिश्रेष्ठ! ब्रह्मवादियोंद्वारा सेवित केवल ईश्वरको ज्ञात इस परम गुह्य उपदेशको सुनो। मेरे जिस सर्वशक्तिसम्पन्न, अनन्त, परम प्रेरक, अद्भुत एवं ऐश्वर्यसम्पन्न रूपको तुमने देखा है, शान्त एवं एकाग्रमन होकर, दम्भ और अहंकारका सर्वथा परित्यागकर, अत्यन्त निष्ठा रखकर, तत्परायण हो उसी (रूप)-की शरण ग्रहण करो। तात! अनन्य भक्तिपूर्वक मेरे श्रेष्ठ भावका आश्रय ग्रहणकर, सभी यज्ञ, तप, दान (आदि साधनों)-के द्वारा सदा उसी (रूप)-की अर्चना करो। मेरे उपदेशको मानकर मनसे उसी (रूप)-को देखो, उसीका ध्यान करो और उसीका जप करो। अनघ! मैं तुम्हारे संसार (भवबन्धन)-को विनष्ट कर दूँगी॥ २५८—२६२॥

अहं वै मत्परान् भक्तानैश्वरं योगमास्थितान्।
संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु॥ २६३॥

ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि।
प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभिः॥ २६४॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् कर्म वर्णाश्रमात्मकम्।
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु॥ २६५॥

धर्मात् संजायते भक्तिर्भक्त्या सम्प्राप्यते परम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः॥ २६६॥

ऐश्वर-योगमें स्थित अपने भक्तोंका मैं इस संसार-सागरसे शीघ्र ही उद्धार कर देती हूँ। गिरिश्रेष्ठ! मैं ध्यान, कर्मयोग, भक्ति तथा ज्ञानके द्वारा ही तुम्हारे लिये प्राप्य हूँ, दूसरे करोड़ों कर्मोंके द्वारा मुझे प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रुति तथा स्मृति—शास्त्रोंमें जो सम्यक् वर्णाश्रमकर्म (धर्म) बतलाया गया है, मुक्ति-प्राप्तिके लिये अध्यात्मज्ञानयुक्त उस (कर्म)-का निरन्तर आचरण करो। धर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे परम (तत्त्व) प्राप्त होता है। श्रुति एवं स्मृतिद्वारा प्रतिपादित यज्ञादि कर्मको धर्म कहा गया है॥ २६३—२६६॥

नान्यतो जायते धर्मो वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत्॥ २६७॥

ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते॥ २६८॥

धर्म किसी अन्यसे उत्पन्न नहीं होता, वेदसे ही धर्म निर्गत है। इसलिये धर्मार्थी एवं मुमुक्षुको चाहिये कि मेरे स्वरूपभूत वेदका आश्रय ग्रहण करे। मेरी ही यह 'वेद' नामवाली पुरातन परा शक्ति ऋक्, यजुष् तथा सामवेदके रूपमें सृष्टिके आदिमें प्रवर्तित होती है॥ २६७-२६८॥

तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः।
ब्राह्मणादीन् ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत्॥ २६९॥

ये न कुर्वन्ति तद् धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मितम्।
तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत॥ २७०॥

न च वेदाद् ऋते किञ्चिच्छास्त्रधर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः॥ २७१॥

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी॥ २७२॥

कापालं पञ्चरात्रं च यामलं वाममार्हतम्।
एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु॥ २७३॥

ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान्।
मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषां भवान्तरे॥ २७४॥

उन्हीं वेदोंकी रक्षाके लिये भगवान् ब्रह्माने ब्राह्मणादिको उत्पन्न कर अपने-अपने कर्मोंमें लगाया। ब्रह्माद्वारा बनाये गये उस (वेदविहित वर्णाश्रम) धर्मका जो पालन नहीं करते हैं, उनके लिये (ब्रह्माने) नीचेके लोकोंमें स्थित तामिस्र आदि नरकोंको बनाया है। धर्मका विधान करनेवाले अथवा धर्मको बतलानेवाले वेदको छोड़कर और अन्य कोई शास्त्र नहीं हैं। जो (वेदाभ्यासके अतिरिक्त) अन्यत्र मन लगाते हैं, द्विजातियोंके द्वारा वे सम्भाषण करने योग्य नहीं हैं। इस संसारमें श्रुति एवं स्मृतिके विरुद्ध जो विविध शास्त्र देखे जाते हैं, निश्चय ही उनमें निष्ठा (विश्वास) रखना तमोगुणी (निष्ठा) है। जो कुत्सित शास्त्रोंके प्रभावको बतलाकर मनुष्योंको मोहित करते हैं, इस संसारमें उन लोगोंको मोहित करनेके लिये मैंने (ऐसे) शास्त्रोंको बनाया है॥ २६९—२७४॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत् स्मृतं कर्म वैदिकम्।
तत् प्रयत्नेन कुर्वन्ति मत्प्रियास्ते हि ये नराः॥ २७५॥

वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद् विराट् स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनुर्धर्मान् मुनीनां पूर्वमुक्तवान्॥ २७६॥

श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद् धर्ममुत्तमम्।
चक्रुर्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि॥ २७७॥

तेषु चान्तर्हितेष्वेवं युगान्तेषु महर्षयः।
ब्रह्मणो वचनात् तानि करिष्यन्ति युगे युगे॥ २७८॥

वेदके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ विद्वानोंके द्वारा जिस कर्मको वेदसम्मत कहा गया है वही (कर्म) करणीय है और जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक उस कर्मको करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। प्राचीन कालमें विराट् (पुरुष) स्वायम्भुव मनुने सभी वर्णोंपर अनुग्रह करनेके लिये मेरी ही आज्ञासे (भृगु आदि) मुनियोंसे धर्म (मनुस्मृति) कहा था। उनके मुखसे श्रेष्ठ धर्मका श्रवणकर अन्य मुनियोंने भी धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये अन्य धर्मशास्त्रों (स्मृतियों)-की रचना की। प्रलयकालमें उनके (धर्मशास्त्रोंके) अन्तर्हित हो जानेपर प्रत्येक युगमें वे महर्षिगण ब्रह्माके कहनेपर पुनः उन शास्त्रोंकी रचना करते हैं॥ २७५—२७८॥

अष्टादश पुराणानि व्यासेन कथितानि तु।
नियोगाद् ब्रह्मणो राजंस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः॥ २७९॥

अन्यान्युपपुराणानि तच्छिष्यैः कथितानि तु।
युगे युगेऽत्र सर्वेषां कर्ता वै धर्मशास्त्रवित्॥ २८०॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च।
ज्योतिःशास्त्रं न्यायविद्या मीमांसा चोपबृंहणम्॥ २८१॥

राजन्! ब्रह्माके आदेशसे व्यासजीने अठारह (महा-) पुराणोंको कहा है। उन (पुराणों)-में धर्म प्रतिष्ठित है। अन्य उपपुराण उन व्यासजीके शिष्योंद्वारा कहे गये हैं। यहाँ प्रत्येक युगमें इन सभी शास्त्रोंका कर्ता ही धर्मशास्त्रका ज्ञाता होता है। सत्तम! चार वेदोंसहित शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषशास्त्र, न्यायविद्या, मीमांसा तथा उपबृंहण (इतिहास और पुराण)— ॥ २७९—२८१॥

एवं चतुर्दशैतानि विद्यास्थानानि सत्तम।
चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते॥ २८२॥

इस प्रकार ये चौदह विद्यास्थान कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्यत्र धर्म विद्यमान नहीं है॥ २८२॥

एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम्।
स्थापयन्ति ममादेशाद् यावदाभूतसम्प्लवम्॥ २८३॥

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्॥ २८४॥

इस प्रकार मनु, व्यास आदि पितामह ब्रह्माके द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ धर्मको मेरे ही आदेशसे प्रलयकालपर्यन्त स्थापित करते हैं। ब्रह्माकी आयु पूर्ण हो जानेपर प्रलय-काल उपस्थित होनेपर वे सभी पुण्यात्मा (व्यासादि) ब्रह्माके साथ ही परम पदमें प्रवेश करते हैं॥ २८३-२८४॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्॥ २८५॥

इसलिये धर्मके (परिज्ञानके) लिये सभी प्रकारके प्रयत्नसे वेदका आश्रय ग्रहण करना चाहिये, (इससे) धर्मसहित ज्ञान और परम ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है॥ २८५॥

ये तु सङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः।
उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः॥ २८६॥

सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः॥ २८७॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः।
संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः॥ २८८॥

तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वसमुत्थितम्।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन मा चिरात्॥ २८९॥

ते सुनिर्धूततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः।
सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः॥ २९०॥

जो सभी प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग कर अनन्यभावसे मेरी शरण ग्रहण कर लेते हैं, ईश्वर-सम्बन्धी योगमें स्थित होकर भक्तिपूर्वक सदा मेरी उपासना करते हैं, सभी प्राणियोंपर दया करते हैं, शान्त, जितेन्द्रिय, मात्सर्यरहित, मानरहित, बुद्धिमान् तपस्वी तथा व्रतपरायण हैं, मुझमें जिनका चित्त और प्राण लगा हुआ है, मेरे तत्त्व-वर्णनमें ही जो लगे हुए हैं ऐसे संन्यासी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा ब्रह्मचारी जो कोई भी हों, उन नित्य भक्तिमें लगे हुए भक्तोंके माया-तत्त्वसे उत्पन्न सम्पूर्ण अन्धकारका ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा मैं अविलम्ब ही विनाश कर देती हूँ। अद्वितीय ज्ञानके द्वारा जिनके अन्धकारका भलीभाँति विनाश हो गया है ऐसे ही मत्परायण (भक्त) सदा आनन्दित रहते हैं और संसारमें बार-बार जन्म नहीं लेते॥ २८६—२९०॥

तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायणः।
मामेवार्चय सर्वत्र मेनया सह संगतः॥ २९१॥

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम्।
ततो मे सकलं रूपं कालाद्यं शरणं व्रज॥ २९२॥

यद् यत् स्वरूपं मे तात मनसो गोचरं भवेत्।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव॥ २९३॥

इसलिये सब प्रकारसे मेरे भक्त और मेरे परायण रहते हुए (तुम) मेनाके साथ सर्वत्र मेरी ही अर्चना करो। यदि तुम मेरे ऐश्वर्यसम्पन्न अव्यय-स्वरूपका ध्यान करनेमें असमर्थ हो तो मेरे आदिकालस्वरूप कलात्मक रूपकी शरण ग्रहण करो। तात! मेरा जो-जो भी रूप आपके मनको अभीष्ट हो, उसीमें निष्ठा रखो और उसीके परायण होकर उसकी ही आराधनामें संलग्न रहो॥ २९१—२९३॥

यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम्॥ २९४॥

ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम्।
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते॥ २९५॥

मेरा जो कलारहित, चिन्मात्र, अद्वितीय, कल्याणकारी, सभी उपाधियोंसे सर्वथा मुक्त, अनन्त, अमर एवं परमरूप है, वह परमपद एकमात्र ज्ञानके द्वारा बड़े ही कष्टसे प्राप्त किया जाता है। ज्ञानका साक्षात्कार करनेवाले लोग मुझमें ही प्रवेश करते हैं॥ २९४-२९५॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ २९६ ॥

मामनाश्रित्य परमं निर्वाणममलं पदम्।
प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥ २९७ ॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयतोऽपि वा।
मामुपास्य महाराज ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ २९८ ॥

उसीमें (मेरे दिव्य रूपमें) बुद्धि रखनेवाले, उसीमें अपनेको लगानेवाले, उसीमें निष्ठा रखनेवाले तथा उसीके परायण और ज्ञानके द्वारा जिनके समस्त पाप विनष्ट हो गये हैं, वे सभी आवागमनके चक्रमें नहीं पड़ते अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं। राजेन्द्र! मेरी शरण ग्रहण किये बिना परम निर्वाण,निर्मल पद प्राप्त नहीं होता, इसलिये मेरी शरण ग्रहण करो। महाराज! द्वैत या अद्वैत अथवा दोनों ही रूपोंसे मेरी उपासना कर तुम्हें उस पदकी प्राप्ति हो जायगी॥ २९६—२९८ ॥

मामनाश्रित्य तत् तत्त्वं स्वभावविमलं शिवम्।
ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥ २९९ ॥

तस्मात् त्वमक्षरं रूपं नित्यं चारूपमैश्वरम्।
आराधय प्रयत्नेन ततो बन्धं प्रहास्यसि ॥ ३०० ॥

कर्मणा मनसा वाचा शिवं सर्वत्र सर्वदा।
समाराधय भावेन ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ ३०१ ॥

न वै पश्यन्ति तत् तत्त्वं मोहिता मम मायया।
अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम् ॥ ३०२ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम्।
नित्यानन्दं निराभासं निर्गुणं तमसः परम् ॥ ३०३ ॥

अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम्।
स्वसंवेद्यमवेद्यं तत् परे व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥ ३०४ ॥

हे राजेन्द्र! बिना मेरा आश्रय लिये स्वभावसे ही निर्मल, उस शिवतत्त्वको जाना नहीं जा सकता, अतः मेरी शरण ग्रहण करो। इसलिये तुम नित्य, अक्षरस्वरूप एवं रूपरहित ईश्वर (तत्त्व)-की प्रयत्नपूर्वक आराधना करो। इससे (तुम) बन्धनसे मुक्त हो जाओगे। मन, वाणी तथा कर्मसे बड़े ही भावसे सर्वत्र शिवकी आराधना करो, इससे (तुम) उस पदको प्राप्त करोगे। मेरी मायासे मोहित (प्राणी) उस अनादि, अनन्त, अजन्मा, कल्याणकारी, परम महेश्वर, सभी प्राणियोंके अन्तरमें निवास करनेवाले, सभीके आधार, निरञ्जन, नित्य आनन्दस्वरूप, निराभास, निर्गुण, अन्धकारसे परे, अद्वैत, अचल, कलारहित, निष्प्रपञ्च, स्वसंवेद्य, अज्ञेय तथा परमाकाशमें स्थित ब्रह्मसंज्ञक तत्त्वको नहीं जान पाते ॥ २९९—३०४ ॥

सूक्ष्मेण तमसा नित्यं वेष्टिता मम मायया।
संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः ॥ ३०५ ॥

भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग् ज्ञानेन चैव हि।
अन्वेष्टव्यं हि तद् ब्रह्म जन्मबन्धनिवृत्तये ॥ ३०६ ॥

अहंकारं च मात्सर्यं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
अधर्माभिनिवेशं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितः ॥ ३०७ ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
अन्वीक्ष्य चात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३०८ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः।
ऐश्वरीं परमां भक्तिं विन्देतानन्यगामिनीम् ॥ ३०९ ॥

वीक्षते तत् परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्मनिष्कलम्।
सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ३१० ॥

मेरी मायाद्वारा नित्य सूक्ष्म तमोगुणसे घिरे हुए प्राणी (इस) घोर संसारसागरमें बार-बार जन्म लेते हैं। राजन्! जन्मरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये अनन्य भक्ति एवं सम्यक् ज्ञानके द्वारा उस ब्रह्मका अन्वेषण करना चाहिये। (राजन्! जो) अहंकार, मात्सर्य, काम, क्रोध, संग्रहकी प्रवृत्ति तथा अधर्माचरणमें रुचिका सर्वथा परित्याग कर अनासक्तभावमें स्थित रहते हैं और सभी प्राणियोंमें अपनेको एवं सभी प्राणियोंको अपनी अन्तरात्मामें स्थित देखते हैं, वे आत्माद्वारा अन्तरात्माका साक्षात्कार कर ब्रह्मको प्राप्त करनेके योग्य बन जाते हैं। सभी प्राणियोंको अभय प्रदान करनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, अनन्यगामिनी परम ईश्वरभक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। वे उस ऐश्वर्ययुक्त निष्कल ब्रह्मतत्त्वका साक्षात् करते हैं और समस्त संसारसे अनासक्त होते हुए एकमात्र ब्रह्ममें ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं॥ ३०५—३१० ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठायं परस्य परमः शिवः।
अनन्तस्याव्ययस्यैकः स्वात्माधारो महेश्वरः॥ ३११॥

ज्ञानेन कर्मयोगेन भक्तियोगेन वा नृप।
सर्वसंसारमुक्त्यर्थमीश्वरं सततं श्रय॥ ३१२॥

एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर।
अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टं कर्तुमर्हसि॥ ३१३॥

ये अद्वितीय, अपनी आत्माके आश्रय महेश्वर परमशिव ही अनन्त तथा अव्यय पर ब्रह्मकी प्रतिष्ठा-रूप हैं। राजन्! ज्ञानयोग, कर्मयोग अथवा भक्तियोगके द्वारा समस्त संसारसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निरन्तर ईश्वरका आश्रय ग्रहण करो। पर्वतराज हिमालय! मैंने यह गुह्य उपदेश तुम्हें प्रदान किया है, इस सम्पूर्ण उपदेशपर विचारकर तुम जैसा चाहो वैसा करो॥ ३११—३१३॥

अहं वै याचिता देवैः संजाता परमेश्वरात्।
विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम्॥ ३१४॥

धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात्।
मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता॥ ३१५॥

स त्वं नियोगाद् देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे॥ ३१६॥

तत्सम्बन्धाच्च ते राजन् सर्वे देवाः सवासवाः।
त्वां नमस्यन्ति वै तात प्रसीदति च शंकरः॥ ३१७॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम्।
सम्पूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं व्रज॥ ३१८॥

महादेव शंकरकी निन्दा करनेवाले अपने पिता दक्षकी आलोचना कर देवताओंके द्वारा प्रार्थना करनेपर मैं परमेश्वरसे प्रादुर्भूत हुई हूँ। तुम्हारी आराधनाके कारण धर्मकी स्थापना करनेके लिये तुम्हें ही पिताके रूपमें आश्रय बनाकर मैं मेनाकी देहसे उत्पन्न हुई हूँ। आप परमात्मा ब्रह्मदेवके निर्देशसे स्वयंवरके समय मुझे रुद्रको प्रदान करेंगे। राजन्! तात! उस सम्बन्धके कारण इन्द्रसहित सभी देवता आपको नमस्कार करेंगे तथा भगवान् शंकर भी आपसे प्रसन्न होंगे। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा मुझे ही ईश्वरकी विषयस्वरूपा (ईश्वरका सर्वस्व) समझो और शरण ग्रहण करने योग्य भगवान् शंकरकी पूजाकर उनकी शरणमें जाओ॥ ३१४—३१८॥

स एवमुक्तो भगवान् देवदेव्या गिरीश्वरः।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥ ३१९॥

विस्तरेण महेशानि योगं माहेश्वरं परम्।
ज्ञानं चैवात्मनो योगं साधनानि प्रचक्ष्व मे॥ ३२०॥

भगवान् महादेवकी देवी (शंकरपत्नी)-के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे पर्वतराज हिमालय विनयपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए पुनः महेश्वरीसे कहने लगे—महेशानि! आप मुझे परम माहेश्वर योगको विस्तारसे बतलाइये और ज्ञान तथा साधनोंसहित आत्मयोगको भी विस्तारपूर्वक बतलायें॥ ३१९-३२०॥

तस्यैतत् परमं ज्ञानमात्मयोगमनुत्तमम्।
यथावद् व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात्॥ ३२१॥

निशम्य वदनाम्भोजाद् गिरीन्द्रो लोकपूजितः।
लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत् पुनः॥ ३२२॥

प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात्।
नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं देवानां चैव संनिधौ॥ ३२३॥

(इसपर) भगवती पार्वतीने उन्हें वह परम ज्ञान, श्रेष्ठ आत्मयोग और उसकी प्राप्तिके साधनोंको भी विस्तारपूर्वक भलीभाँति बतलाया। जगज्जननीके मुखकमलसे परम ज्ञान सुनकर वे लोकपूजित पर्वतराज हिमालय पुनः योगमें आसक्त हो गये। (कालान्तरमें हिमालयने) ब्रह्माजीके आदेशसे देवताओंकी संनिधिमें (अपने) सौभाग्यकी अभिवृद्धि समझते हुए साध्वी पार्वतीको महेश्वरके लिये प्रदान किया॥ ३२१—३२३॥

य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्तनम्।
शिवस्य संनिधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः॥ ३२४॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः।
उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात्॥ ३२५॥

जो व्यक्ति भगवान् शिवके सांनिध्यमें उनके भावसे भावित होकर पवित्रतापूर्वक देवीके माहात्म्यका वर्णन करनेवाले इस अध्यायका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और दिव्य योगसे समन्वित होकर ब्रह्मलोकको पारकर देवीके स्थानको प्राप्त करता है॥ ३२४-३२५॥

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः।
देव्याः समाहितमनाः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३२६॥

जो एकाग्रमनसे ब्राह्मणोंके समीपमें देवीके इस (सहस्रनाम) स्तोत्रका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है॥ ३२६॥

नाम्नामष्टसहस्रं तु देव्या यत् समुदीरितम्।
ज्ञात्वार्कमण्डलगतां सम्भाव्य परमेश्वरीम्॥ ३२७॥

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वितः।
संस्मरन् परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम्॥ ३२८॥

अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद् द्विजः।
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति॥ ३२९॥

देवीका जो एक सहस्र आठ नामवाला स्तोत्र बतलाया गया है, उसे जानकर सूर्यमण्डलमें स्थित परमेश्वरीकी भावना करते हुए गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा भक्तियोगपूर्वक उनकी अर्चना द्विजको करनी चाहिये और देवीके परम माहेश्वर श्रेष्ठ भावका अनन्य-मनसे मरणपर्यन्त स्मरण करते हुए इस उपदिष्ट एक हजार आठ नामोंका नित्य जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे द्विज अन्त-समयमें (देवीकी) स्मृति प्राप्तकर परब्रह्मको प्राप्त करता है॥ ३२७—३२९॥

अथवा जायते विप्रो ब्राह्मणानां कुले शुचौ।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्य सः॥ ३३०॥

सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत् पारमेश्वरम्।
शान्तः सर्वगतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३३१॥

प्रत्येकं चाथ नामानि जुहुयात् सवनत्रयम्।
पूतनादिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते॥ ३३२॥

अथवा वह विप्र ब्राह्मणोंके पवित्र कुलमें उत्पन्न होता है और पूर्वजन्मके संस्कारोंके प्रभावसे वह ब्रह्मविद्याको प्राप्त करता है। परमेश्वर-सम्बन्धी उस परम दिव्य योगको प्राप्तकर वह शान्त तथा सर्वत्र व्याप्त होते हुए शिवसायुज्यको प्राप्त करता है। (जो व्यक्ति प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—) तीनों समय देवीके प्रत्येक नामसे हवन करता है, वह पूतना आदिद्वारा उत्पन्न (अरिष्ट) दोषों तथा ग्रहोंके दोषोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३३०—३३२॥

जपेद् वाहरहर्नित्यं संवत्सरमतन्द्रितः।
श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानतः॥ ३३३॥

सम्पूज्य पार्श्वतः शम्भुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः।
लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः॥ ३३४॥

अथवा लक्ष्मीप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला द्विज विधिपूर्वक देवीकी पूजाकर और उनके पार्श्वभाग (समीप)-में तीन नेत्रवाले भगवान् शंकरकी पूजा करता है तथा एक वर्षतक आलस्यरहित होकर प्रतिदिन निरन्तर (देवीके सहस्रनामका) जप करता है, वह महादेव भगवान् शंकरकी कृपासे महालक्ष्मीको प्राप्त करता है॥ ३३३-३३४॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जप्तव्यं हि द्विजातिभिः।
सर्वपापापनोदार्थं देव्या नाम सहस्रकम्॥ ३३५॥

प्रसङ्गात् कथितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम्।
अतः परं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत॥ ३३६॥

इसलिये द्विजातियोंको सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये देवीके सहस्रनामका जप करना चाहिये। विप्रो! मैंने प्रसङ्गवश देवीका उत्तम माहात्म्य आप लोगोंसे कहा। अब इसके बाद आपलोग भृगु आदि महर्षियोंकी प्रजासृष्टिको सुनें॥ ३३५-३३६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

महर्षि भृगु, मरीचि, पुलस्त्य तथा अत्रि आदिद्वारा दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न संतान-परम्पराका वर्णन, उनचास अग्नियों, पितरों तथा गङ्गाके प्रादुर्भावका वर्णन

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया।
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ तथा॥ १ ॥

आयतिर्नियतिर्मेरोः कन्ये चैव महात्मनः।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ॥ २ ॥

प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः।
तथा वेदशिरा नाम प्राणस्य द्युतिमान् सुतः॥ ३ ॥
मरीचेरपि सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत।
कन्याचतुष्टयं चैव सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ४ ॥

तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टिः कृष्टिश्चापचितिस्तथा।
विरजाः पर्वतश्चैव पौर्णमासस्य तौ सुतौ॥ ५ ॥
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः।
कर्दमं च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम्॥ ६ ॥

तथैव च कनीयांसं तपोनिर्धूतकल्मषम्।
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्॥ ७ ॥

सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम्।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पुत्रीर्जज्ञे लक्षणसंयुताः॥ ८ ॥

सिनीवालीं कुहूं चैव राकामनुमतिं तथा।
प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान् दत्तात्रिमसृजत् प्रभुः॥ ९ ॥

पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
[illegible]बाहुं तथा कन्यां सन्नतिं नाम नामतः॥ १० ॥
[illegible] षष्टिसाहस्रं संततिः सुषुवे क्रतोः।
[illegible]रतसः सर्वे बालखिल्या इति स्मृताः॥ ११ ॥

सूतजी बोले—महर्षि भृगुकी 'ख्याति' नामक पत्नीसे नारायणकी पत्नी लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा धाता एवं विधाता नामक दो देवता भी उनसे उत्पन्न हुए, जो मेरुके जामाता हुए। महात्मा मेरुकी आयति तथा नियति नामकी दो कन्याएँ थीं, वे क्रमशः धाता तथा विधाताकी पत्नियाँ थीं, उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—प्राण और मृकण्डु। मृकण्डुसे मार्कण्डेय हुए तथा प्राणके कान्तिमान् वेदशिरा नामके पुत्र हुए॥ १—३॥

महर्षि मरीचिके भी सम्भूति (नामक पत्नी)-ने सभी (शुभ) लक्षणोंसे सम्पन्न पौर्णमास नामक पुत्र और चार कन्याओंको उत्पन्न किया। सबसे बड़ी (कन्याका नाम) तुष्टि तथा अन्य तीन कन्याओंका नाम वृष्टि, कृष्टि और अपचिति था। पौर्णमासके विरजा तथा पर्वत नामके दो पुत्र थे॥ ४-५॥

प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमाने कर्दम, वरीयान् और उनसे छोटे सहिष्णु नामक श्रेष्ठ मुनिको जन्म दिया जो तपके कारण पाप-रहित थे। उसी प्रकार अत्रिकी पत्नी अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय नामक पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया। महर्षि अङ्गिराकी स्मृति नामक पत्नीने सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति (नामवाली) शुभलक्षणसम्पन्न (चार) पुत्रियोंको जन्म दिया। प्रभु भगवान् पुलस्त्यने (अपनी पत्नी) प्रीतिसे दत्तात्रि (नामक पुत्र)-को उत्पन्न किया। स्वायम्भुव मन्वन्तरके (अपने) पूर्वजन्ममें वे ही अगस्त्य नामसे प्रसिद्ध थे। (पुलस्त्यको प्रीतिसे) वेदबाहु (नामक एक अन्य पुत्र) और 'सन्नति' इस नामसे प्रसिद्ध (एक) कन्या थी॥ ६—१०॥

महर्षि क्रतुकी पत्नी संततिने साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी ऊर्ध्वरेता बालखिल्य इस नामसे [illegible]

रजोहश्चोर्ध्वबाहुश्च　　सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः॥ १३॥

योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः।
स्वाहा तस्मात् सुतान् लेभे त्रीनुदारान् महौजसः॥ १४॥

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः।
निर्मथ्यः पवमानः स्याद् वैद्युतः पावकः स्मृतः॥ १५॥

यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः।
तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च॥ १६॥

पावकः पवमानश्च शुचिस्तेषां पिता च यः।
एते चैकोनपञ्चाशद् वह्नयः परिकीर्तिताः॥ १७॥

सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः।
रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः॥ १८॥

अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः स्मृताः।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः॥ १९॥

तेभ्यः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः॥ २०॥

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चं तस्यानुजं तथा।
गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैकपावनी॥ २१॥

स्वयोगाग्निबलाद् देवीं लेभे पुत्रीं महेश्वरीम्।
यथावत् कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्॥ २२॥

एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसंततिः।
व्याख्याता भवतामद्य मनोः सृष्टिं निबोधत॥ २३॥

रज, ऊह, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—(नामवाले) ये (वसिष्ठके) सात महान् ओजस्वी पुत्र थे। द्विजो! ब्रह्माका रुद्रस्वरूप जो वह वह्नि नामक पुत्र था, उससे स्वाहाने महातेजस्वी तीन उदार पुत्रोंको प्राप्त किया। वे तीनों पावक, पवमान तथा शुचि (नामवाले) अग्नि थे। मन्थनद्वारा उत्पन्न अग्निको पवमान और विद्युत्से सम्बद्ध अग्निको पावक कहा जाता है। जो यह सूर्य चमकता है वही शुचि अग्नि कहलाता है। उन (तीनों अग्नियों)-की पैंतालीस संतानें हुईं। (इस प्रकार) पावक, पवमान तथा शुचि (नामक तीन अग्नियाँ) और इन तीनोंके पिता (रुद्रात्मक अग्नि) एवं (उन तीनों अग्नियोंके पैंतालीस पुत्र) ये सभी मिलाकर उनचास अग्नियाँ कही गयी हैं। ये सभी (उनचास) तपस्वी कहे गये हैं, सभी यज्ञभागके अधिकारी हैं, रुद्रात्मक कहलाते हैं और सभी मस्तकपर त्रिपुण्ड्रके चिह्नसे अङ्कित रहते हैं॥ १३—१८॥

ब्रह्माके अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद् नामक दो पुत्र कहे गये हैं जो पितर हैं। उनमें अयज्वा (यज्ञ न करनेवाले) तथा यज्वा (यज्ञ करनेवाले)-के रूपमें दो प्रकारकी व्यवस्था है। मुनिश्रेष्ठो! स्वधाने उनके द्वारा मेना और वैतरणी नामक दो पुत्रियोंको प्राप्त किया। वे दोनों ही ब्रह्मवादिनी और योगिनी थीं। मेनाने मैनाक और उसके अनुज क्रौञ्च (नामक पर्वत)-को जन्म दिया। हिमालयसे समस्त लोकोंको पवित्र करनेमें अद्वितीय गङ्गा उत्पन्न हुई। (हिमालयने) अपनी योगाग्निके बलसे (उन) देवी महेश्वरीको पुत्री-रूपमें प्राप्त किया, जिन देवीके उत्तम माहात्म्यको भलीभाँति पहले बता दिया गया है॥ १९—२२॥

मैंने प्रजापति दक्षकी कन्याओंकी संतान-परम्पराका आप लोगोंसे वर्णन किया। अब आप (स्वायम्भुव) मनुकी सृष्टिका वर्णन सुनें॥ २३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति, महाराज पृथुका आख्यान, पृथुका वंश-वर्णन, पृथुके पौत्र 'सुशील' का रोचक आख्यान, सुशीलको हिमालयके 'धर्मपद' नामक वनमें महापाशुपत श्वेताश्वतर मुनिके दर्शन तथा उनसे पाशुपत-व्रतका ग्रहण, दक्षके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा पुनः दक्ष प्रजापतिके रूपमें आविर्भावकी कथा, दक्षद्वारा शंकरका अपमान, सतीद्वारा देह-त्याग तथा शंकरका दक्षको शाप

सूत उवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
धर्मज्ञौ सुमहावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत्॥ १ ॥

ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत्।
भक्तो नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम्॥ २ ॥

ध्रुवात् शिलष्टिं च भव्यं च भार्या शम्भुर्व्यजायत।
शिलष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥ ३ ॥

वसिष्ठवचनाद् देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम्॥ ४ ॥

रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृषतेजसम्।
नारायणपरान् शुद्धान् स्वधर्मपरिपालकान्॥ ५ ॥

रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सर्वतेजसम्।
सोऽजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः॥ ६ ॥

मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः।
कन्यायां सुमहावीर्या वैराजस्य प्रजापतेः॥ ७ ॥

ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः॥ ८ ॥

ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाबलान्।
अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम्॥ ९ ॥

अङ्गाद् वेनोऽभवत् पश्चाद् वैन्यो वेनादजायत।
योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः॥ १० ॥

येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात्।
नियोगाद् ब्रह्मणः सार्धं देवेन्द्रेण महौजसा॥ ११ ॥

सूतजी बोले—स्वायम्भुव मनुकी पत्नी शतरूपाने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामवाले दो पुत्रोंको जन्म दिया, जो धर्मको जाननेवाले तथा महान् पराक्रमी थे। कालान्तरमें उत्तानपादका ध्रुव नामक पुत्र हुआ। भगवान् विष्णुके उस भक्तने उत्तम स्थान प्राप्त किया। ध्रुवकी शम्भुनामक पत्नीने शिलष्टि तथा भव्य नामक पुत्रोंको जन्म दिया। शिलष्टिकी सुच्छाया नामक पत्नीने पाँच पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया। महर्षि वसिष्ठके कथनानुसार सुच्छाया नामक देवीने अत्यन्त कठोर तप करके शालग्राममें जनार्दन पुरुष विष्णुकी आराधना कर रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल तथा वृषतेजस् नामवाले पाँच पुत्रोंको जन्म दिया, जो नारायणमें अनन्य निष्ठा रखनेवाले, शुद्ध तथा अपने धर्मका विशेषरूपसे पालन करनेवाले थे॥ १—५॥

रिपुकी पत्नी बृहतीने सब प्रकारके तेजोंसे सम्पन्न चक्षुष् (नामक पुत्र)-को जन्म दिया। उस चक्षुष्ने महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुष्करिणी[1] नामवाली पुत्रीसे चाक्षुष मनुको जन्म दिया। अत्यन्त तेजस्वी (चाक्षुष) मनुके वैराज प्रजापतिकी कन्या नड्वलासे दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्युक (नामवाले) थे। ऊरुकी पत्नी आग्नेयीने अङ्ग, सुमनस्, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरस् एवं शिव (नामवाले) महाबलशाली छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। अङ्गसे वेन हुआ और फिर वेनसे वैन्य उत्पन्न हुए। प्रजापालक, महाबलवान् वे ही वैन्य पृथु नामसे विख्यात हुए। पूर्वकालमें उन्होंने प्रजाओंके कल्याणकी कामनासे ब्रह्माके आदेशसे महातेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ (गोरूपा) पृथ्वीका दोहन किया था॥ ६—११॥

१-यह पुष्करिणी प्रजापति वीरणकी पुत्री होनेसे वैरणी भी कही जाती है।

वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे।
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः॥ १२॥

प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुणवत्सलः।
तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम्॥ १३॥

अस्मिन् मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।
श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणं पुरुषो हरिः॥ १४॥

मदन्वये तु ये सूताः सम्भूता वेदवर्जिताः।
तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया॥ १५॥
स तु वैन्यः पृथुर्धीमान् सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
सार्वभौमो महातेजाः स्वधर्मपरिपालकः॥ १६॥

तस्य बाल्यात् प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत्।
गोवर्धनगिरिं प्राप्य तपस्तेपे जितेन्द्रियः॥ १७॥

तपसा भगवान् प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः।
आगत्य देवो राजानं प्राह दामोदरः स्वयम्॥ १८॥

धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृतां वरौ।
मत्प्रसादादसंदिग्धं पुत्रौ तव भविष्यतः।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः स्वकीयां प्रकृतिं गतः॥ १९॥

वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन्।
अपालयत् स्वकं राज्यं न्यायेन मधुसूदने॥ २०॥
अचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता।
शिखण्डिनं हविर्धानमन्तर्धाना व्यजायत॥ २१॥

शिखण्डिनोऽभवत् पुत्रः सुशील इति विश्रुतः।
धार्मिको रूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः॥ २२॥

सोऽधीत्य विधिवद् वेदान् धर्मेण तपसि स्थितः।
मतिं चक्रे भाग्ययोगात् संन्यासं प्रति धर्मवित्॥ २३॥
स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः।
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित् सिद्धसेवितम्॥ २४॥

तत्र धर्मपदं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम्।
अपश्यद् योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्॥ २५॥

प्राचीन कालमें वेनके पुत्र पृथुके पैतामह नामक यज्ञ करते समय मायारूपधारी साक्षात् विष्णु ही पौराणिक सूतके रूपमें उत्पन्न हुए। वे सभी शास्त्रोंके प्रवक्ता, धर्मको जाननेवाले तथा वात्सल्यगुणसे सम्पन्न थे। मुनिश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें आविर्भूत वही सनातन (विष्णु) मुझे जानो। इस मन्वन्तरमें स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यास नामक पुराणपुरुष विष्णुने प्रीतिपूर्वक मुझे पुराण सुनाया। मेरे वंशमें वेदवर्जित जो सूत उत्पन्न हुए, ब्रह्माकी आज्ञासे 'पुराणोंका प्रवचन करना' उनकी वृत्ति हुई॥ १२—१५॥

वेनके पुत्र वे पृथु बुद्धिमान्, सत्यसंकल्प, जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी, महान् तेजस्वी तथा अपने धर्मका पालन करनेवाले थे। उनकी बाल्यकालसे ही नारायणमें भक्ति थी। इन्द्रियजयी पृथुने गोवर्धन पर्वतपर जाकर तप किया। शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु तपस्यासे प्रसन्न हो गये। स्वयं भगवान् दामोदर (विष्णु)-ने उनके पास आकर कहा—मेरी कृपासे निश्चित ही तुम्हें सुन्दर रूपसे सम्पन्न, सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ दो धर्मात्मा पुत्र होंगे। ऐसा कहकर भगवान् हृषीकेश अपने प्राकृतिक रूपमें स्थित हो गये (अपने धाम चले गये)। वैन्य (पृथु) भी भगवान् मधुसूदनमें वैदिक विधानसे निश्चल भक्ति रखते हुए न्यायपूर्वक अपने राज्यका पालन करने लगे॥ १६—२०॥

मधुर एवं पवित्र मुसकानवाली तथा कृश शरीरवाली उनकी पत्नी अन्तर्धानाने थोड़े ही समयमें शिखण्डी तथा हविर्धान नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। शिखण्डीका पुत्र 'सुशील' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह धार्मिक, रूपसम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् था। विधिपूर्वक वेदोंका अध्ययन कर वह धर्मपूर्वक तपस्यामें स्थित हुआ। भाग्ययोगसे उस धर्मज्ञने संन्यास ग्रहण करनेका विचार किया। वह तीर्थस्थानोंका सेवन करते हुए स्वाध्याय तथा तपस्यामें स्थित रहने लगा। एक बार वह सिद्धोंके द्वारा सेवित हिमालय पर्वतपर गया। वहाँ उसने धर्म एवं सिद्धिको प्रदान करनेवाले, योगियोंके लिये प्राप्य, किंतु ब्रह्मसे द्वेष करनेवालोंके लिये अप्राप्य धर्मपद नामक एक वनको देखा॥ २१—२५॥

तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी।
पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता॥ २६॥

स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्वृतम्।
सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत् प्रीतिसंयुतः॥ २७॥

मन्दाकिनीजले स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः।
अर्चयित्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः॥ २८॥

ध्यात्वार्कसंस्थमीशानं शिरस्याधाय चाञ्जलिम्।
सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम्॥ २९॥

रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च।
अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शाम्भवैर्वेदसम्भवैः॥ ३०॥

वहाँ सिद्धोंके आश्रमसे सुशोभित तथा विभिन्न प्रकारके कमल-समूहोंसे सम्पन्न निर्मल जलवाली तथा पुण्य प्रदान करनेवाली मन्दाकिनी नामक एक नदी (प्रवाहित होती) थी। उसने प्रीतिपूर्वक उस मन्दाकिनी नदीके दक्षिण किनारेपर स्थित मुनीन्द्रों तथा योगियोंसे सेवित पुण्यदायी एक रमणीय आश्रम देखा। उसने मन्दाकिनीके जलमें स्नानकर देवस्वरूप पितरोंको (तर्पण आदिसे) संतृप्तकर विभिन्न वर्णके कमल आदि पुष्पोंके द्वारा भगवान् शंकरकी अर्चना की और सूर्यमण्डलमें स्थित भगवान् ईशानका ध्यानकर सिरसे हाथ जोड़ते हुए प्रकाशमान सूर्यका दर्शन करते हुए वह रुद्राष्टाध्यायी, रुद्रके चरित्र एवं और भी अनेक वेदवर्णित विविध प्रकारके शिव-सम्बन्धी स्तोत्रोंके द्वारा परमेश्वर गिरिशकी स्तुति करने लगा॥ २६—३०॥

अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत् समायान्तं महामुनिम्।
श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम्॥ ३१॥

भस्मसंदिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम्।
तपसा कर्षितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम्॥ ३२॥

समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दास्राविलेक्षणः।
ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ३३॥

इसी बीच उसने समस्त अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए, कौपीन वस्त्रसे समन्वित, सफेद यज्ञोपवीत धारण किये हुए, तपस्याके द्वारा क्षीण शरीरवाले उत्तम महापाशुपत श्वेताश्वतर नामवाले महामुनिको समीपमें आते हुए देखा। नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरे हुए उसने भगवान् शंकरकी स्तुति समाप्त कर उनके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया और हाथ जोड़ते हुए यह वाक्य कहा—॥ ३१—३३॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः।
योगीश्वरोऽद्य भगवान् दृष्टो योगविदां वरः॥ ३४॥

अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि मे।
किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयानघ॥ ३५॥

मैं धन्य हूँ, मैं अनुगृहीत हूँ, जो (आज) मुझे योगज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, मुनियोंके ईश्वर साक्षात् भगवान् योगीश्वरके दर्शन हुए। अहो! मेरा बड़ा ही सुन्दर भाग्य है। (आज) मेरे सभी तप सफल हो गये। अनघ! मैं क्या करूँ, आपका मैं शिष्य हूँ, आप मेरी रक्षा करें॥ ३४-३५॥

सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम्।
शिष्यत्वे परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम्॥ ३६॥

सांन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः।
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितं व्रतम्॥ ३७॥

अशेषवेदसारं तत् पशुपाशविमोचनम्।
अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्॥ ३८॥

तपस्यासे जिसका सम्पूर्ण कल्मष नष्ट हो गया है, ऐसे उस निष्पाप एवं शीलसम्पन्न 'सुशील' नामवाले राजाके ऊपर अनुग्रह करके (शंकरने अपने) शिष्यरूपमें उसे ग्रहण किया। उन बुद्धिमान् (मुनि)-ने संन्यास-सम्बन्धी सम्पूर्ण विधि करवाकर उसे ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान तथा अपनी शाखाद्वारा विहित नियम और पशुरूपी जीवके पाश अर्थात् मायारूपी बन्धनसे मुक्त करनेवाला वह सम्पूर्ण वेदका सार प्रदान किया, साथ ही ब्रह्मा आदिके द्वारा सेवित 'अन्त्याश्रम' नामवाले आश्रमको भी प्रदान किया॥ ३६—३८॥

उवाच शिष्यान् सम्प्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् ब्रह्मचर्यपरायणान्॥ ३९॥

मया प्रवर्तितां शाखामधीत्यैवेह योगिनः।
समासते महादेवं ध्यायन्तो निष्कलं शिवम्॥ ४०॥

इह देवो महादेवो रममाणः सहोमया।
अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया॥ ४१॥

उस आश्रममें रहनेवाले ब्रह्मचर्यपरायण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शिष्योंको देखकर वे (श्वेताश्वतर मुनि) बोले—मेरे द्वारा प्रवर्तित शाखाका अध्ययन करते हुए योगीजन निष्कल महादेव शिवका ध्यान करते हुए यहाँ निवास करते हैं। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेके लिये भगवान् महादेव उमाके साथ रमण करते हुए यहाँ विराजमान रहते हैं॥ ३९—४१॥

इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायणः स्वयम्।
आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया॥ ४२॥

इहैव देवमीशानं देवनामपि दैवतम्।
आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः॥ ४३॥

इहैव मुनयः पूर्वं मरीच्याद्या महेश्वरम्।
दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्॥ ४४॥

प्राचीन कालमें संसारके कल्याणकी कामनासे समस्त जगत्‌को धारण करनेवाले स्वयं नारायण महादेवकी आराधना करते हुए यहाँ रहते थे। यहींपर देवताओंके भी देवता भगवान् शिवकी आराधना कर देवता तथा दानवोंने महान् सिद्धि प्राप्त की थी और यहींपर प्राचीन कालमें मरीचि आदि ऋषियोंने अपनी तपस्याके प्रभावसे महेश्वरका दर्शनकर सभी कालोंमें उपयोगी—हितकर ज्ञान प्राप्त किया था॥ ४२—४४॥

तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वितः।
तिष्ठ नित्यं मया सार्धं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥ ४५॥

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम्।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत् स्वार्थसिद्धये॥ ४६॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम्।
अग्निरित्यादिकं पुण्यमृषिभिः सम्प्रवर्तितम्॥ ४७॥

सोऽपि तद्वचनाद् राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः।
साक्षात् पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत्॥ ४८॥

इसलिये राजेन्द्र! तुम भी तप एवं योगसे समन्वित होकर नित्य ही मेरे साथ रहो, इससे तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। ऐसा कहकर उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ (श्वेताश्वतर मुनि)-ने पिनाक (नामक धनुष) धारण करनेवाले भगवान् (शंकर)-का ध्यान करके स्वार्थ-सिद्धिके लिये सभी पापोंका शमन करनेवाले, वेदसारस्वरूप, मुक्ति प्रदान करनेवाले तथा ऋषियोंद्वारा प्रवर्तित 'अग्नि' इत्यादि पुण्यजनक महामन्त्रका उसे (सुशीलको) विधिपूर्वक उपदेश दिया। उनके कथनानुसार 'सुशील' नामक वह राजा भी बड़ी ही श्रद्धासे साक्षात् पाशुपत होकर वेदाभ्यासमें निरत हो गया॥ ४५—४८॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः।
शान्तो दान्तो जितक्रोधः संन्यासविधिमाश्रितः॥ ४९॥

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास सत्सुतम्।
प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम्॥ ५०॥

प्राचीनबर्हिर्भगवान् सर्वशस्त्रभृतां वरः।
समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत्॥ ५१॥

प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः।
अधीतवन्तः स्वं वेदं नारायणपरायणाः॥ ५२॥

दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः।
दक्षो जज्ञे महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः॥ ५३॥

अपने सभी अङ्गोंमें भस्म धारणकर कन्द, मूल एवं फलोंका आहार करते हुए शान्त, इन्द्रियजयी एवं क्रोधजयी राजाने संन्यास-विधिका आश्रय लिया। हविर्धानने आग्नेयी नामक अपनी पत्नीसे धनुर्वेदमें पारंगत प्राचीन बर्हिष् नामक श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया। सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भगवान् प्राचीनबर्हिने समुद्रकी पुत्रीसे दस पुत्रोंको उत्पन्न किया। नारायणपरायण तथा अपने तेजके लिये विख्यात प्रचेतस् नामसे प्रसिद्ध उन राजाओंने अपने वेदका अध्ययन किया। इन्हीं दस प्रचेताओंद्वारा मारिषा (नामक उनकी पत्नी)-से महाभाग प्रजापति दक्ष (पुत्ररूपमें) उत्पन्न हुए, जो पूर्व समयमें ब्रह्माके पुत्र थे॥ ४९—५३॥

स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता।
कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत्॥ ५४॥

उन दक्षने बुद्धिमान् महेश रुद्रके साथ विवाद किया था, इससे रुद्रद्वारा शाप प्राप्तकर वे प्रचेताओंके पुत्र बने॥ ५४॥

समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः।
दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम्॥ ५५॥

तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः।
पूजामनर्हामन्विच्छन् जगाम कुपितो गृहम्॥ ५६॥

कदाचित् स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः।
भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा॥ ५७॥

महादेव हरने स्वयं देवी (पार्वती)-के घर आये हुए दक्षको देखकर उनकी यथोचित पूजा की। (किंतु) उस समय तमोगुणके आवेशसे समाविष्ट ब्रह्माके पुत्र दक्ष (शंकरद्वारा की गयी अपनी) पूजाको अपर्याप्त और अयोग्य समझकर और भी अधिक पूजाकी इच्छा करनेके कारण कुपित होकर अपने घर चले गये। तदनन्तर कभी दूषित मनवाले दक्षने अपने घर आयी हुई (अपनी पुत्री) सतीकी (उनके) पति (भगवान् शंकर)-के साथ निन्दा करते हुए क्रुद्ध होकर भर्त्सना की॥ ५५—५७॥

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिनः।
त्वमप्यसत्सुतास्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम्॥ ५८॥

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शंकरप्रिया।
विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना॥ ५९॥

प्रणम्य पशुभर्तारं भर्तारं कृत्तिवाससम्।
हिमवद्दुहिता साभूत् तपसा तस्य तोषिता॥ ६०॥

(दक्ष बोले—सती!) तुम्हारे पिनाकधारी पतिसे मेरे अन्य जामाता श्रेष्ठ हैं। तुम भी अच्छी पुत्री नहीं हो, इसलिये मेरे घरसे वहीं चले जाओ जहाँसे आयी हो। शंकरप्रिया उन देवी सतीने उस (कठोर) वाक्यको सुनकर पिता दक्षकी निन्दा की और चर्माम्बरधारी अपने स्वामी पशुपतिको प्रणामकर स्वयं ही उन्होंने (योगाग्निद्वारा) अपनेको भस्म कर डाला। तदनन्तर वे ही हिमालयकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी पुत्री बनीं॥ ५८—६०॥

ज्ञात्वा तद्भगवान् रुद्रः प्रपन्नार्तिहरो हरः।
शशाप दक्षं कुपितः समागत्याथ तद्गृहम्॥ ६१॥

त्यक्त्वा देहमिमं ब्रह्मन् क्षत्रियाणां कुलोद्भवः।
स्वस्यां सुतायां मूढात्मन् पुत्रमुत्पादयिष्यसि॥ ६२॥

एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्वतम्।
स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्॥ ६३॥

उस बातको जानकर शरणागतोंका कष्ट हरनेवाले भगवान् रुद्र हर दक्षके घर आये और क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया। ब्रह्मन्! मूढात्मन्! इस शरीरको छोड़कर तुम क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न होओगे और पापवश अकार्यमें तुम्हारी प्रवृत्ति होगी। ऐसा कहकर महादेव कैलासपर्वतपर चले गये और समय आनेपर स्वायम्भुव दक्ष भी प्रचेताओंके पुत्र बने॥ ६१—६३॥

एतद् वः कथितं सर्वं मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
विसर्गं दक्षपर्यन्तं शृण्वतां पापनाशनम्॥ ६४॥

(सूतजीने इस प्रकार कहा—) आप लोगोंसे मैंने स्वायम्भुव मनुकी दक्षपर्यन्त विशेष सृष्टिका वर्णन किया। (यह वर्णन) सुननेवालोंके पापको नष्ट करनेवाला है॥ ६४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

हरिद्वारमें दक्षद्वारा यज्ञका आयोजन, यज्ञमें शंकरका भाग न देखकर महर्षि दधीचद्वारा दक्षकी भर्त्सना तथा यज्ञमें भाग लेनेवाले ब्राह्मणोंको शाप, देवी पार्वतीके कहने-पर शंकरद्वारा रुद्रों, भद्रकाली तथा वीरभद्रको प्रकट करना, वीरभद्रादिद्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस, शंकर-पार्वतीका यज्ञस्थलमें प्राकट्य, भयभीत दक्षद्वारा शंकर तथा पार्वतीकी स्तुति और वर प्राप्त करना, ब्रह्माद्वारा दक्षको उपदेश और शिव-विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन तथा दक्षद्वारा शिवकी शरण ग्रहण करना

नैमिषीया ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरात् सूत ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे॥ १॥

स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः।
किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥ २॥

नैमिषीय ऋषि बोले—सूतजी महाराज! वैवस्वत मन्वन्तरमें हुई देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों तथा राक्षसोंकी उत्पत्तिको आप विस्तारसे बतलायें। महाबुद्धिमान् सूतजी! इस समय हम यह सुनना चाहते हैं कि प्राचीन कालमें प्रचेताके पुत्र राजा दक्षने भगवान् शंकरसे शाप प्राप्तकर क्या किया था॥ १-२॥

सूत उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम्।
त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम्॥ ३॥

सूतजीने कहा—मैं पूर्वकल्पके प्रसंगमें नारायणद्वारा कहे गये (भूत, भविष्य तथा वर्तमान— इस प्रकार) तीनों कालोंसे सम्बद्ध तथा पाप हरनेवाले प्रजा-सर्गको विस्तारसे बतलाता हूँ॥ ३॥

स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः।
विनिन्द्य पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽयजद् भवम्॥ ४॥

देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह।
सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुङ्गवाः॥ ५॥

दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शंकरेण विनागतम्।
दधीचो नाम विप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत्॥ ६॥

प्राचीन कालकी बात है, भगवान् शंकरके शापसे ग्रस्त उन प्रचेतापुत्र राजा दक्षने पूर्व वैरके कारण शंकरकी निन्दा कर गङ्गाद्वार हरिद्वारमें एक यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। श्रेष्ठ मुनियो! विष्णुके साथ सभी देवता उस यज्ञमें भाग ग्रहण करनेके लिये बुलाये गये। सभी मुनियोंके साथ वे वहाँ आये। शंकरको छोड़कर आये हुए समस्त देव-समूहोंको देखकर दधीच नामक विप्रर्षिने प्राचेतस-दक्षसे (इस प्रकार) कहा— ॥ ४—६॥

दधीच उवाच

ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः।
स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किं न पूज्यते॥ ७॥

दधीच बोले—ब्रह्मा आदिसे लेकर पिशाचतक जिनकी आज्ञाका शीघ्र ही अनुपालन करते हैं, उन रुद्रदेवकी पूजा इस समय क्यों नहीं की जा रही है?॥ ७॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः।
न मन्त्रा भार्यया सार्धं शंकरस्येति नेज्यते॥ ८॥
विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम्॥ ९॥

दक्षने कहा—सभी यज्ञोंमें भार्यासहित शंकरके भाग एवं मन्त्रोंकी परिकल्पना नहीं हुई है, इसलिये उनकी पूजा नहीं की जाती। इसपर साक्षात् सर्वज्ञानमय महामुनि दधीचने कोपपूर्वक हँसते हुए सभी देवताओंको सुनाते हुए दक्षसे कहा— ॥ ८-९॥

दधीच उवाच

यतः प्रवृत्तिर्विश्वेषां यश्चास्य परमेश्वरः।
सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वा किल शंकरः॥ १०॥

दक्ष उवाच

न ह्ययं शंकरो रुद्रः संहर्ता तामसो हरः।
नग्नः कपाली विकृतो विश्वात्मा नोपपद्यते॥ ११॥

ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणः स्वराट्।
सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मसु॥ १२॥

दधीच उवाच

किं त्वया भगवानेष सहस्रांशुर्न दृश्यते।
सर्वलोकैकसंहर्ता कालात्मा परमेश्वरः॥ १३॥

यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः।
सोऽयं साक्षी तीव्ररोचिः कालात्मा शांकरी तनुः॥ १४॥

एष रुद्रो महादेवः कपर्दी च घृणी हरः।
आदित्यो भगवान् सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः॥ १५॥

संस्तूयते सहस्रांशुः सामगाध्वर्युहोतृभिः।
पश्यैनं विश्वकर्माणं रुद्रमूर्तिं त्रयीमयम्॥ १६॥

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः।
सर्वे सूर्या इति ज्ञेया न ह्यन्यो विद्यते रविः॥ १७॥

एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः।
बाढमित्यब्रुवन् वाक्यं तस्य साहाय्यकारिणः॥ १८॥

तमसाविष्टमनसो न पश्यन्ति वृषध्वजम्।
सहस्रशोऽथ शतशो भूय एव विनिन्द्यते॥ १९॥

निन्दन्तो वैदिकान् मन्त्रान् सर्वभूतपतिं हरम्।
अपूजयन् दक्षवाक्यं मोहिता विष्णुमायया॥ २०॥

देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः।
नापश्यन् देवमीशानमृते नारायणं हरिम्॥ २१॥

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत॥ २२॥

दधीच बोले—जिनसे सभीकी प्रवृत्ति होती है और जो इस (विश्व)-के परमेश्वर हैं, वे शंकर निश्चय ही सभी यज्ञोंद्वारा ज्ञानपूर्वक पूजित होते हैं॥ १०॥

दक्षने कहा—संहार करनेवाले, तमोगुणी, नग्न, कपाल धारण करनेवाले तथा विकृत (वेशवाले) रुद्र, हर, शंकर किसी भी प्रकार विश्वात्मा नहीं हो सकते। संसारकी सृष्टि करनेवाले स्वराट्, प्रभु नारायण ही ईश्वर हैं और सभी कर्मोंमें उन सत्त्वात्मक भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है॥ ११-१२॥

दधीच बोले—क्या तुम समस्त लोकोंके एकमात्र संहारकर्ता कालस्वरूप, तथा हजारों किरणवाले इन परमेश्वर भगवान् (सूर्य)-को नहीं देख रहे हो। धर्मात्मा, ब्रह्मवादी विद्वान् जिनकी स्तुति करते हैं, वही ये (सूर्य) तीव्र तेजसे सम्पन्न कालात्मक साक्षी यहाँ शंकरके शरीररूपमें ही स्थित हैं। देवी अदितिके पुत्र ये भगवान् सूर्य ही रुद्र, महादेव, कपर्दी, घृणी, हर, नीलग्रीव, विलोहित (नामवाले) हैं। सामवेदका गान करनेवाले तथा अध्वर्यु एवं होताओंके द्वारा हजारों किरणवाले सूर्यकी स्तुति की जाती है। विश्वको बनानेवाले त्रयीमय—ऋक्, यजुः तथा सामवेदस्वरूप रुद्रकी मूर्तिको देखो॥ १३—१६॥

दक्षने कहा—यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले ये जो बारह (अदिति-पुत्र) आदित्य यहाँ आये हुए हैं, ये सभी सूर्यके नामसे ही जाने जाते हैं। इनसे अतिरिक्त कोई अन्य सूर्य नहीं हैं। ऐसा कहनेपर यज्ञ देखनेकी इच्छासे आये हुए उनके (दक्षके) सहयोगी मुनियोंने (समर्थन करते हुए) दक्षसे कहा—ठीक है। तमोगुणसे आविष्ट मनवाले सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें आये हुए उन लोगोंने भगवान् वृषध्वज शंकरको न देखते हुए पुनः उनकी निन्दा करनी आरम्भ की। विष्णुकी मायासे मोहित होकर वे वैदिक मन्त्रोंकी निन्दा करते हुए सभी प्राणियोंके एकमात्र स्वामी भगवान् हरकी पूजा न करके दक्षके वचनका अनुमोदन करने लगे। यज्ञमें भाग ग्रहण करनेके लिये आये हुए इन्द्रादि सभी देवताओंने भी नारायण हरिके अतिरिक्त देव ईशान (शंकर)-को भी नहीं देखा (अर्थात् शिवके माहात्म्यको वे जान नहीं पाये)। ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा सभीके देखते-देखते क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये॥ १७—२२॥

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम्।
रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम्॥ २३॥

प्रवर्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथ निर्भय:।
रक्षते भगवान् विष्णु: शरणागतरक्षक:॥ २४॥

पुन: प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवानृषि:।
सम्प्रेक्ष्यर्षिगणान् देवान् सर्वान् वै ब्रह्मविद्विष:॥ २५॥

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने।
नर: पापमवाप्नोति महद् वै नात्र संशय:॥ २६॥

असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना।
दण्डो देवकृतस्तत्र सद्य: पतति दारुण:॥ २७॥

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षि: शशापेश्वरविद्विष:।
समागतान् ब्राह्मणांस्तान् दक्षसाहाय्यकारिण:॥ २८॥

भगवान् ब्रह्माके अन्तर्धान हो जानेपर स्वयं दक्ष संसारकी रक्षा करनेवाले देव नारायण हरिकी शरणमें गये। तदनन्तर भयसे मुक्त होकर दक्षने वह यज्ञ आरम्भ किया। शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णु (उस यज्ञकी) रक्षा करने लगे। भगवान् दधीच ऋषिने ब्रह्म (शंकर)-से द्वेष माननेवाले उन सभी ऋषिगणों तथा देवताओंकी ओर देखकर उन दक्षसे पुन: कहा—जो अपूज्य है, उसका पूजन करनेसे और जो पूज्य है, उसका पूजन न करनेसे मनुष्य निश्चित ही महान् पापको प्राप्त करता है, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है। जहाँ दुर्जनोंका आदर होता है और सत्पुरुषोंका अनादर होता है, वहाँ अति शीघ्र ही दारुण दैवी दण्ड उपस्थित होता है। ऐसा कहकर विप्रर्षि दधीचने दक्षकी सहायता करनेके लिये आये हुए उन ईश्वर (शंकर)-से विद्वेष रखनेवाले ब्राह्मणोंको शाप देते हुए कहा—॥ २३—२८॥

यस्माद् बहिष्कृता वेदा भवद्भि: परमेश्वर:।
विनिन्दितो महादेव: शंकरो लोकवन्दित:॥ २९॥

भविष्यध्वं त्रयीबाह्या: सर्वेऽपीश्वरविद्विष:।
निन्दन्तो ह्यैश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तमानसा:॥ ३०॥

मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिन:।
प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजै: किल पीडिता:॥ ३१॥

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान् पुन:।
भविष्यति हृषीकेश: स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुख:॥ ३२॥

चूँकि तुम लोगोंने वेदोंकी अवमानना की है और समस्त संसारके द्वारा वन्दित परमेश्वर महादेव शंकरकी निन्दा की है, अत: ईश्वर (शंकर)-से द्वेष रखनेवाले तुम सभी वेदत्रयीसे रहित हो जाओगे और असत्-शास्त्रोंमें मन लगाते हुए ईश्वर-मार्ग (शिव-मार्ग)-की निन्दा करोगे तथा घोर कलियुग आनेपर मिथ्या अध्ययन और मिथ्या आचारयुक्त होकर मिथ्या ज्ञानका प्रलाप करनेवाले होओगे, साथ ही कलिके द्वारा उत्पन्न कष्ट एवं दु:खों आदिसे पीड़ित रहोगे। पुन: तुम सभी अपने सम्पूर्ण तपोबलका त्याग करके नरक प्राप्त करोगे। तुम लोगोंके द्वारा हृषीकेश विष्णुके भलीभाँति आश्रय ग्रहण करनेपर भी वे तुम लोगोंसे विमुख ही रहेंगे॥ २९—३२॥

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिर्विरराम तपोनिधि:।
जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम्॥ ३३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम्।
पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत् प्राह सर्वदृक्॥ ३४॥

ऐसा कहकर तपस्याकी निधि वे विप्रर्षि (दधीच) चुप हो गये और मानसिक रूपसे सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले रुद्रकी शरणमें गये। इसी बीच यह सारी घटना जानकर सर्वदर्शी (सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाली) देवी (पार्वती)-ने (अपने) पतिदेव पशुपति महादेव महेश्वरसे कहा—॥ ३३-३४॥

देव्युवाच

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि।
विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शंकर॥ ३५॥
देवा: सहर्षिभिश्चासंस्तत्र साहाय्यकारिण:।
विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेकं वृणोम्यहम्॥ ३६॥

देवी बोलीं—शंकर! पूर्वजन्मके मेरे (सतीके) पिता दक्ष यज्ञ कर रहे हैं और आपके भाव तथा स्वरूपकी निन्दा कर रहे हैं। ऋषियोंके साथ देवता वहाँ उनकी सहायता करते हुए उपस्थित हैं। मैं आपसे एक वर माँगती हूँ कि 'आप शीघ्र ही उस यज्ञको नष्ट करें'॥ ३५-३६॥

एवं विज्ञापितो देव्या देवो देववरः प्रभुः।
ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया॥ ३७॥

सहस्रशीर्षपादं च सहस्राक्षं महाभुजम्।
सहस्रपाणिं दुर्धर्षं युगान्तानलसंनिभम्॥ ३८॥

दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रगदाधरम्।
दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम्॥ ३९॥

वीरभद्र इति ख्यातं देवदेवसमन्वितम्।
स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलिः॥ ४०॥

देवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवताओंमें श्रेष्ठ प्रभु भगवान् (शंकर)-ने दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही हजारों सिर एवं पैरवाले, हजारों आँखवाले, विशाल भुजायुक्त, हजारों हाथवाले, दुर्जेय प्रलयकालीन अग्निके समान, भयंकर दाढ़युक्त, देखनेमें भयंकर, शंख, चक्र तथा गदा धारण किये, हाथमें दण्ड धारण करनेवाले, घोर नाद करनेवाले, सींगसे बने धनुषको धारण किये, विभूतिसे सुशोभित तथा अनेक देवताओंसे घिरे हुए वीरभद्र नामवाले रुद्रको उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही वह हाथ जोड़कर देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरके सम्मुख उपस्थित हुआ॥ ३७—४०॥

तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोऽस्त्विति।
विनिन्द्य मां स यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर॥ ४१॥

ततो बन्धुप्रयुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया।
वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत् क्रतुः॥ ४२॥

मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी।
तया च सार्धं वृषभं समारुह्य ययौ गणः॥ ४३॥

अन्ये सहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता।
रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिणः॥ ४४॥

शूलशक्तिगदाहस्ताष्टङ्कोपलकरास्तथा।
कालाग्निरुद्रसंकाशा नादयन्तो दिशो दश॥ ४५॥

सर्वे वृषासनारूढाः सभार्याश्चातिभीषणाः।
समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखं प्रति॥ ४६॥

(शंकरने उससे कहा—) गणेश्वर! दक्षके यज्ञका विध्वंस करो, वह गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में मेरी निन्दा करते हुए यज्ञ कर रहा है। तुम्हारा कल्याण हो। तदनन्तर बन्धु (शिव)-के द्वारा निर्दिष्ट वीरभद्रने सिंहके समान लीला करते हुए अकेले ही दक्षके यज्ञका विध्वंस कर दिया। उमाने भी क्रोध करते हुए महेश्वरी भद्रकालीको उत्पन्न किया, उसके साथ वृषभपर आरूढ़ होकर वह गण (वीरभद्र) वहाँ (गङ्गाद्वार यज्ञमें) गया। बुद्धिमान् उन शंकरने उनकी सहायता करनेवाले हजारों दूसरे रुद्रोंको भी उत्पन्न किया। (शंकरके) रोमोंसे उत्पन्न होनेके कारण वे रुद्र 'रोमज' कहलाये। हाथोंमें त्रिशूल, शक्ति, गदा, टङ्क (पत्थर तोड़नेके हथियार—घन, हथौड़ा, छेनी आदि) तथा पत्थर लिये हुए और कालाग्नि रुद्रके समान अत्यन्त भीषण सभी अपनी-अपनी भार्याओंके साथ वृषभरूप आसनपर आरूढ होकर दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए गणोंमें सर्वश्रेष्ठ वीरभद्रको अपने समूहके बीच रखते हुए जहाँ दक्षयज्ञ हो रहा था, उस ओर चल पड़े॥ ४१—४६॥

सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमिति श्रुतम्।
ददृशुर्यज्ञदेशं तं दक्षस्यामिततेजसः॥ ४७॥

देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम्।
वीणावेणुनिनादाढ्यं वेदवादाभिनादितम्॥ ४८॥

दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवैः समासीनं प्रजापतिम्।
उवाच भद्रया रुद्रैर्वीरभद्रः स्मयन्निव॥ ४९॥

गङ्गाद्वार (हरिद्वार) नामसे प्रसिद्ध उस देशमें पहुँचकर उन सभीने अमित तेजस्वी दक्षके उस यज्ञस्थलको देखा, जो हजारों देवाङ्गनाओंसे सुशोभित था, अप्सराओंके गीतोंसे मुखरित था, वीणा तथा वेणुके निनादसे प्रतिध्वनित और वेद-मन्त्रोंसे गुञ्जित था। देवताओं तथा ऋषियोंके साथ बैठे हुए प्रजापति दक्षको देखकर भद्रकाली तथा रुद्रोंसहित वीरभद्रने हँसते हुए कहा—॥ ४७—४९॥

वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः।
भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागान् यच्छध्वमीप्सितान्॥ ५०॥

अथ चेत् कस्यचिदियमाज्ञा मुनिसुरोत्तमाः।
भागो भवद्भ्यो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम्।
तं ब्रूताज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वयं ततः॥ ५१॥

एवमुक्ता गणेशेन प्रजापतिपुरःसराः।
देवा ऊचुर्यज्ञभागे न च मन्त्रा इति प्रभुम्॥ ५२॥
मन्त्रा ऊचुः सुरान् यूयं तमोपहतचेतसः।
ये नाध्वरस्य राजानं पूजयध्वं महेश्वरम्॥ ५३॥

ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वभूततनुर्हरः।
पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः॥ ५४॥

एवमुक्ता अपीशानं मायया नष्टचेतसः।
न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवान् मुक्त्वा स्वमालयम्॥ ५५॥

ततः स रुद्रो भगवान् सभार्यः सगणेश्वरः।
स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्मर्षिं दधीचं प्राह देवताः॥ ५६॥
मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलगर्वितैः।
यस्मात् प्रसह्य तस्माद् वो नाशयाम्यद्य गर्वितम्॥ ५७॥

इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुङ्गवः।
गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः॥ ५८॥

प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्वं चैव गणेश्वराः।
गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्त्रोतसि चिक्षिपुः॥ ५९॥

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्योद्यच्छतः करम्।
व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम्॥ ६०॥

भगस्य नेत्रे चोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया।
निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत्॥ ६१॥

हम सभी अमित तेजस्वी शंकरके अनुचर हैं, यज्ञमें भाग प्राप्त करनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं, आप हमें अभीप्सित यज्ञभाग प्रदान करें। अथवा श्रेष्ठ मुनियो और देवताओ! आप हमें यह बतलायें कि किसने आपको ऐसी आज्ञा दी है कि मुझे यज्ञभाग न दें और आप लोगोंका ही सब भाग है। जो ऐसी आज्ञा देनेवाला है, उसे बतलायें, फिर हम उसे देख लेंगे। गणोंके स्वामी वीरभद्रके ऐसा कहे जानेपर प्रजापति दक्षसहित देवताओंने प्रभु (वीरभद्र)-से कहा—'आपको यज्ञभाग देने-सम्बन्धी मन्त्र नहीं हैं'॥ ५०—५२॥

(यह सुनकर वेद-) मन्त्रोंने (मूर्तिमान् स्वरूप धारणकर) देवताओंसे कहा—आपका मन तमोगुणसे आक्रान्त हो गया है, इसीलिये आप यज्ञके स्वामी महेश्वरकी पूजा नहीं कर रहे हैं। सभी प्राणियोंके एकमात्र स्वामी और सभी प्राणियोंके शरीर-रूप तथा समस्त अभ्युदय एवं सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हर (शंकर) सभी यज्ञोंमें पूजित होते हैं। ईशान अर्थात् शंकरके बारेमें ऐसा कहे जानेपर भी मायाके कारण नष्ट चेतनावाले देवोंने (जब उनकी बातको) नहीं माना, तब मन्त्र उन्हें छोड़कर अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर भार्या और गणेश्वरोंसहित उन (वीरभद्रस्वरूप) रुद्रने ब्रह्मर्षि दधीचको हाथोंसे स्पर्श करते हुए देवताओंसे कहा—॥ ५३—५६॥

तुम लोगोंने अपने बलसे गर्वित होकर मन्त्रोंको प्रमाण नहीं माना, इसलिये इसे सहन न कर मैं आज बलपूर्वक सभीके गर्वको नष्ट करूँगा। ऐसा कहकर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने उस यज्ञशालाको जला डाला और गणेश्वरोंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (यज्ञशालाके) यूपों (स्तम्भों)-को उखाड़कर फेंक दिया। भयानक सभी गणेश्वरोंने आहुति देनेवालोंसहित पाठ करनेवालों एवं घोड़ेको भी पकड़कर गङ्गाके प्रवाहमें फेंक दिया। प्रदीप्त आत्मावाले तथा दीनतारहित वीरभद्रने भी इन्द्रके उठे हुए सौ हाथों तथा अन्य देवताओंके उठे हुए हाथोंको स्तम्भित कर दिया। उन्होंने नाखूनोंके अग्रभागसे खेल-खेलमें ही भग (देवता)-के नेत्रोंको उखाड़ डाला, मुक्केसे मारकर पूषा (देवता)-के दाँतोंको तोड़ डाला॥ ५७—६१॥

तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया।
धर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः॥ ६२॥

वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया।
जघान मूर्ध्नि पादेन मुनीनपि मुनीश्वराः॥ ६३॥

तथा विष्णुं सगरुडं समायान्तं महाबलः।
विव्याध निशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम्॥ ६४॥

इसी प्रकार लीला करते हुए बलशाली गणेश्वर वीरभद्रने हँसकर पैरके अँगूठेसे चन्द्रमाको धर्षित कर (रौंद) दिया। अग्नि (देवता)-के दोनों हाथोंको काटकर लीलासे ही उनकी जीभ उखाड़ दी। मुनीश्वरो! उन्होंने पैरसे मुनियोंके मस्तकपर भी प्रहार किया। साथ ही (उस) महाबली (वीरभद्र)-ने सुदर्शनचक्रको स्तम्भित कर गरुडपर बैठकर आते हुए विष्णुको भी तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध (चोटिल) कर दिया॥ ६२—६४॥

समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडो गणम्।
जघान पक्षैः सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा॥ ६५॥

ततः सहस्रशो भद्रः ससर्ज गरुडान् स्वयम्।
वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्रुवुः॥ ६६॥

तान् दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजवः।
विसृज्य माधवं वेगात् तदद्भुतमिवाभवत्॥ ६७॥

अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः।
आगत्य वारयामास वीरभद्रं च केशवम्॥ ६८॥

महाबाहु गरुडने वहाँ आकर गण (वीरभद्र)-को देखकर अचानक उन्हें अपने पंखोंसे मारा और समुद्रके समान गर्जन किया। तदनन्तर उन वीरभद्रने भी स्वयं हजारों गरुडोंको उत्पन्न कर डाला, जो विनतापुत्र गरुडसे भी अधिक बलशाली थे, वे सभी गरुडके ऊपर टूट पड़े। उन (वीरभद्रद्वारा उत्पन्न) गरुडोंको देखकर बुद्धिमान् वे गरुड विष्णुको छोड़कर बड़े ही वेगसे भाग उठे, यह एक आश्चर्यकी बात थी। विनताके पुत्र गरुडके अन्तर्धान हो जानेपर कमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माने वहाँ उपस्थित होकर वीरभद्र तथा केशवको (युद्ध करनेसे) रोका॥ ६५—६८॥

प्रसादयामास च तं गौरवात् परमेष्ठिनः।
संस्तूय भगवानीशः साम्बस्तत्रागमत् स्वयम्॥ ६९॥

वीक्ष्य देवाधिदेवं तं साम्बं सर्वगणैर्वृतम्।
तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवौकसः॥ ७०॥

विशेषात् पार्वतीं देवीमीश्वरार्धशरीरिणीम्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः॥ ७१॥

ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्।
प्रसन्नमानसा रुद्रं वचः प्राह घृणानिधिः॥ ७२॥

परमेष्ठी ब्रह्माकी महत्ताको समझकर (वीरभद्रने उनकी) स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। (उस समय) पार्वतीसहित साक्षात् भगवान् शंकर भी वहाँ आये। सभी गणोंसे घिरे हुए पार्वतीसहित उन देवाधिदेव शंकरको देखकर भगवान् ब्रह्मा, दक्ष तथा द्युलोकमें रहनेवाले सभी देवता उनकी (भगवान् शंकरकी) स्तुति करने लगे। दक्षने विशेषरूपसे शंकरकी अर्धाङ्गिनी देवी पार्वतीको हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे प्रसन्न किया। तदनन्तर दयाकी निधि देवी भगवतीने हँसते हुए प्रसन्न-मनसे महेश्वर रुद्रसे यह वचन कहा—॥ ६९—७२॥

त्वमेव जगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षकः।
अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः॥ ७३॥

ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहितः।
उवाच प्रणतान् देवान् प्राचेतसमथो हरः॥ ७४॥

आप ही संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा आप ही शासन करनेवाले एवं रक्षक हैं। आप भगवान्‌को दक्ष तथा देवताओंपर कृपा करनी चाहिये। तदनन्तर जटा धारण करनेवाले नीललोहित भगवान् हरने हँसकर देवताओं तथा प्रचेतापुत्र दक्षसे कहा—॥ ७३-७४॥

गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम्।
सम्पूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः॥ ७५॥

देवताओ! आप सभी लोग जायँ। मैं आपपर प्रसन्न हूँ। सभी यज्ञोंमें विशेषरूपसे मेरी पूजा करनी चाहिये और मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ ७५॥

त्वं चापि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्।
त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः॥ ७६॥

भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम।
तावत् तिष्ठ ममादेशात् स्वाधिकारेषु निर्वृतः॥ ७७॥

हे दक्ष! तुम भी सभीकी रक्षा करनेमें समर्थ मेरे वचनको सुनो—तुम 'मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ' इस लोकैषणा (यशकी इच्छा)-का परित्यागकर प्रयत्नपूर्वक मेरे भक्त बनो। इस कल्पके बीत जानेपर मेरी कृपासे तुम गणोंके अधिपति बनोगे। मेरे आदेशसे उस समयतक तुम अपने अधिकारपर शान्तिसे बने रहो॥ ७६-७७॥

एवमुक्त्वा स भगवान् सपत्नीकः सहानुगः।
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः॥ ७८॥

अन्तर्हिते महादेवे शंकरे पद्मसम्भवः।
व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम्॥ ७९॥

ऐसा कहकर वे भगवान् शंकर पत्नी पार्वती तथा अपने अनुचरोंसहित अमित तेजस्वी दक्षके लिये अन्तर्धान (अदृश्य) हो गये। महादेव शंकरके अन्तर्धान हो जानेपर साक्षात् पद्मोद्भव ब्रह्माने समस्त संसारके लिये कल्याणकारी वचन कहे—॥ ७८-७९॥

ब्रह्मोवाच

किं तवापगतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे।
यदाचष्ट स्वयं देवः पालयैतदतन्द्रितः॥ ८०॥

सर्वेषामेव भूतानां हृद्येष वसतीश्वरः।
पश्यन्त्येनं ब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः॥ ८१॥

स आत्मा सर्वभूतानां स बीजं परमा गतिः।
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः॥ ८२॥

तमर्चयति यो रुद्रं स्वात्मन्येकं सनातनम्।
चेतसा भावयुक्तेन स याति परमं पदम्॥ ८३॥

तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम्।
कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्नतः॥ ८४॥

ब्रह्माजीने कहा—(दक्ष!) वृषभध्वज शंकरके प्रसन्न हो जानेपर क्या तुम्हारा मोह दूर हुआ? साक्षात् भगवान्ने जो तुमसे कहा है, आलस्यरहित होकर उसका पालन करो। ये परमेश्वर सभी प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं। वेदवादी ब्रह्मस्वरूप विद्वान् लोग इनका दर्शन करते हैं। वे सभी प्राणियोंके आत्मा, वे ही बीजरूप तथा परम गति हैं। वैदिक मन्त्रोंके द्वारा देवदेव महेश्वरकी स्तुति की जाती है। जो उस अद्वितीय सनातन रुद्रकी अपनी आत्मामें श्रद्धायुक्त मनसे आराधना करता है, वह परमपद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिये आदि, मध्य और अन्तसे रहित परमेश्वरको जानकर मन, वाणी तथा कर्मसे प्रयत्नपूर्वक उनकी आराधना करो॥ ८०—८४॥

यत्नात् परिहरेशस्य निन्दामात्मविनाशिनीम्।
भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया यतः॥ ८५॥

यस्तवैष महायोगी रक्षको विष्णुरव्ययः।
स देवदेवो भगवान् महादेवो न संशयः॥ ८६॥

मन्यन्ते ये जगद्योनिं विभिन्नं विष्णुमीश्वरात्।
मोहादवेदनिष्ठत्वात् ते यान्ति नरकं नराः॥ ८७॥

वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥ ८८॥

अपना ही विनाश कर डालनेवाली शंकरकी निन्दा करना प्रयत्नपूर्वक छोड़ दो, क्योंकि (भगवान् शंकरकी) निन्दा करनेवालेकी सारी क्रियाएँ दोषयुक्त ही होती हैं। जो आपके ये अव्यय तथा महायोगी विष्णु रक्षक हैं, वे भी देवताओंके देव भगवान् महादेव ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जो अज्ञानसे तथा वेदमें निष्ठा न रखनेके कारण संसारके मूल कारण भगवान् विष्णुको शंकरसे पृथक् मानते हैं, वे मनुष्य नरकमें जाते हैं। वेदमार्गका अनुवर्तन करनेवाले लोग रुद्रदेव तथा नारायणको एकीभावसे देखते हैं, अतः वे मुक्तिपदके भागी होते हैं॥ ८५—८८॥

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम्॥ ८९॥

जो विष्णु हैं वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं—इस प्रकार समझकर जो देवका पूजन करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है॥ ८९॥

सृजत्येतज्जगत् सर्वं विष्णुस्तत् पश्यतीश्वरः।
इत्थं जगत् सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम्॥ ९०॥

विष्णु इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं और शंकर उसकी देख-रेख करते हैं। इस प्रकार यह सारा संसार रुद्र और नारायणद्वारा ही उत्पन्न होता है॥ ९०॥

तस्मात् त्यक्त्वा हरेर्निन्दां विष्णावपि समाहितः।
समाश्रयेन्महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम्॥ ९१॥

उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चस्य प्रजापतिः।
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम्॥ ९२॥
येऽन्ये शापाग्निनिर्दग्धा दधीचस्य महर्षयः।
द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूवुः कलिष्वथ॥ ९३॥

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवाः।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मणो वचनादिह॥ ९४॥

इसलिये भगवान् शंकरकी निन्दाका परित्याग कर और विष्णुमें भी ध्यान लगाकर ब्रह्मवादियोंके एकमात्र शरण्य महादेवका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्माके वचन सुनकर प्रजापति दक्ष चर्माम्बर धारण करनेवाले देव पशुपतिकी शरणमें गये। और जो दूसरे महर्षि दधीचके शापरूपी अग्निसे दग्ध हो गये थे तथा मोहवश शंकरसे द्वेष करनेवाले थे, वे पूर्वजन्मके संस्कारोंके माहात्म्य तथा ब्रह्माके वचनसे सम्पूर्ण तपोबलका त्याग करके कलियुगमें ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न होंगे॥ ९१—९४॥

मुक्तशापास्ततः सर्वे कल्पान्ते रौरवादिषु।
निपात्यमानाः कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्चसम्।
ब्रह्माणं जगतामीशमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥ ९५॥

समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम्।
भविष्यन्ति यथा पूर्वं शंकरस्य प्रसादतः॥ ९६॥

रौरव आदि नरकोंमें डाले गये वे सभी (शंकरसे विद्वेष करनेवाले) कल्पान्तमें यथासमय स्वयम्भूकी आज्ञासे आदित्यके समान तेजोमय जगत्के स्वामी ब्रह्माको प्राप्तकर शापसे मुक्त हो जायँगे और तपोयोगद्वारा देवताओंके स्वामी शंकरकी आराधना कर और उनकी कृपासे पुनः जैसे पहले थे वैसे ही (विप्रर्षि) हो जायँगे॥ ९५-९६॥

एतद् वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम्।
शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासां चैव संततिम्॥ ९७॥

प्रसंगवश (मैंने) यह सब दक्ष-यज्ञके विध्वंसकी कथा आप लोगोंसे कही। अब आप लोग प्रजापति दक्षकी सभी कन्याओंकी संतान-परम्पराका वर्णन सुनें॥ ९७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

दक्ष-कन्याओंकी संतति, नृसिंहावतार, हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष-वधका वर्णन, पृथ्वीका उद्धार, प्रह्लाद-चरित, गौतमद्वारा दारुवननिवासी मुनियोंको शाप, अन्धकके साथ महादेवका युद्ध एवं महादेवद्वारा अपने स्वरूपका उपदेश, अन्धकद्वारा महादेवकी स्तुति तथा महादेव (शंकर)-द्वारा अन्धकको गाणपत्य-पदकी प्राप्ति, अन्धक-द्वारा देवीकी स्तुति और देवीद्वारा अन्धकको पुत्ररूपमें ग्रहण करना तथा विष्णुद्वारा उत्पन्न माताओंसे अपनी तीनों मूर्तियोंका प्रतिपादन

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
ससर्ज देवान् गन्धर्वान् ऋषींश्चैवासुरोरगान्॥ १ ॥
यदास्य सृजमानस्य न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः।
तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव धर्मतः॥ २ ॥
असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः।
सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणां तु सहस्रकम्॥ ३ ॥
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य सः।
षष्टिं दक्षोऽसृजत् कन्या वैरण्यां वै प्रजापतिः॥ ४ ॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
विंशत् सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥ ५ ॥

सूतजी बोले—पूर्वकालमें 'प्रजाकी सृष्टि करो' इस प्रकारकी स्वयम्भू—ब्रह्माकी आज्ञा प्राप्तकर दक्षने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों, असुरों तथा नागोंकी सृष्टि की। जब सृष्टि करनेवाले उन दक्षकी वे प्रजाएँ नहीं बढ़ीं, तब उन्होंने मर्यादापूर्वक मिथुन-धर्म (स्त्री-पुरुष-संयोग)-से प्राणियोंकी सृष्टि की। उन्होंने वीरण प्रजापतिकी धर्मपरायणा असिक्नी नामकी कन्यासे एक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया। देवर्षि नारदकी मायासे उन पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर पुनः उन दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्री असिक्नीसे ही साठ कन्याओंको उत्पन्न किया॥ १—४॥

द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत् तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम्॥ ६ ॥

(उन साठ कन्याओंमेंसे) उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और इसी प्रकार दो कन्याएँ अंगिराको प्रदान कीं। अब मैं उनके वंश-विस्तारका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

अरुन्धती वसुर्जामी लम्बा भानुर्मरुत्वती।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी॥ ७ ॥
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान् निबोधत।
विश्वाया विश्वदेवास्तु साध्या साध्यानजीजनत्॥ ८ ॥
मरुत्वन्तो मरुत्वत्यां वसवोऽष्टौ वसोः सुताः।
भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्ता वै मुहूर्तजाः॥ ९ ॥
लम्बायाश्चाथ घोषो वै नागवीथी तु जामिजा।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत।
संकल्पायास्तु संकल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः॥ १० ॥

अरुन्धती, वसु, जामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा भामिनी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। विश्वाके विश्वेदेव हुए और साध्याने साध्य नामवाले पुत्रोंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुद्गण हुए और वसुसे वसु नामक आठ पुत्र हुए। भानुसे भानुओं और मुहूर्तासे मुहूर्तोंकी उत्पत्ति हुई। लम्बासे घोष और जामिसे नागवीथी नामक पुत्र उत्पन्न हुए। अरुन्धतीसे सम्पूर्ण पृथ्वीसे सम्बद्ध प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई और संकल्पासे संकल्प नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार धर्मके (ये) दस पुत्र कहे गये हैं॥ ७—१०॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥ ११ ॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः श्रान्तो धुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः॥ १२ ॥

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये अष्ट वसु कहे गये हैं। आपके वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा धुनि नामक पुत्र हुए और ध्रुवके पुत्र संसारके संहारक भगवान् काल हैं॥ ११-१२॥

सोमस्य भगवान् वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः।
पुरोजवोऽनिलस्य स्यादविज्ञातगतिस्तथा॥ १३॥

कुमारो ह्यनलस्यासीत् सेनापतिरिति स्मृतः।
देवलो भगवान् योगी प्रत्यूषस्याभवत् सुतः।
विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्ता प्रजापतिः॥ १४॥

भगवान् वर्चा सोमके पुत्र हैं और धरके द्रविण नामक पुत्र हैं। अनिलके पुरोजव तथा अविज्ञातगति नाम-वाले पुत्र हैं। अतुलके पुत्र कुमार हैं जो 'सेनापति' नामसे कहे जाते हैं। प्रत्यूष (नामक वसु)-के महायोगी भगवान् देवल नामक पुत्र हुए। इसी प्रकार प्रभासके प्रजापति विश्वकर्मा नामक पुत्र हैं जो शिल्पकारी हैं॥ १३-१४॥

अदितिर्दितिर्दनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान् वै निबोधत॥ १५॥

अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु, मुनि तथा धर्मज्ञा—(दक्षकी ये तेरह कन्याएँ कश्यपकी पत्नियाँ हैं) उनके पुत्रोंके विषयमें सुनो—॥ १५॥

अंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा।
विवस्वान् सविता पूषा ह्यंशुमान् विष्णुरेव च॥ १६॥
तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
वैवस्वतेऽन्तरे प्रोक्ता आदित्याश्चादितेः सुताः॥ १७॥
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाद् बलसंयुतम्।
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथापरम्॥ १८॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः।
आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
दृष्ट्वा लेभे वरान् दिव्यान् स्तुत्वासौ विविधैः स्तवैः॥ १९॥
अथ तस्य बलाद् देवाः सर्व एव सुरर्षयः।
बाधितास्ताडिता जग्मुर्देवदेवं पितामहम्॥ २०॥
शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम्।
ब्रह्माणं लोककर्तारं त्रातारं पुरुषं परम्।
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम्॥ २१॥

अंश, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् तथा विष्णु—ये सभी पूर्वकालमें चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नामक देवता थे और वैवस्वत मन्वन्तरमें ये ही अदितिके पुत्र (बारह) आदित्य कहे गये हैं। दितिने कश्यपसे बलवान् दो पुत्रोंको प्राप्त किया। उनमें हिरण्यकशिपु बड़ा था, उसका अनुज हिरण्याक्ष था। दैत्य हिरण्यकशिपु महाबलशाली और पराक्रमी था। उसने तपस्याद्वारा परमेष्ठी ब्रह्माकी आराधनाकर उनका दर्शन किया तथा विविध स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुतिकर दिव्य वरोंको प्राप्त किया। उसके पराक्रमसे पीड़ित एवं ताडित सभी देवता एवं देवर्षिगण शरण ग्रहण करने योग्य, आश्रयस्वरूप, सर्वजगन्मय, शम्भु देवस्वरूप त्राता, लोककर्ता, परमपुरुष, कूटस्थ, जगत्के एकमात्र पुराण पुरुष पुरुषोत्तम देवोंके देव पितामह ब्रह्माकी शरणमें गये॥ १६—२१॥

स याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः।
सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः॥ २२॥

संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः॥ २३॥

दृष्ट्वा देवं जगद्योनिं विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्।
ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत॥ २४॥

मुनीश्वरो! श्रेष्ठ देवताओं तथा मुनियोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सभी देवताओंके कल्याण करनेकी इच्छासे कमलके आसनवाले ब्रह्मा क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये, जहाँ विनीत मुनीन्द्रों तथा देवताओंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए हरि ईश्वर निवास करते हैं। जगत्के मूल कारण, विश्वके गुरु, कल्याणमय, विष्णुदेवका दर्शन करके उन्होंने मस्तक झुकाकर चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर (इस प्रकार) कहा—॥ २२—२४॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः।
व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः॥ २५॥

ब्रह्माने कहा—(भगवन्!) आप सभी प्राणियोंकी गति हैं, अनन्त हैं और इस सम्पूर्ण विश्वके आत्मस्वरूप हैं। आप सर्वत्र व्याप्त, सभी देवताओंके शरीररूप, महायोगी तथा सनातन हैं॥ २५॥

त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानं प्रकृतिः परा।
वैराग्यैश्वर्यनिरतो रागातीतो निरञ्जनः॥ २६॥

त्वं कर्ता चैव भर्ता च निहन्ता सुरविद्विषाम्।
त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्राता हि परमेश्वरः॥ २७॥

आप सभी प्राणियोंकी आत्मा, प्रधान और परा प्रकृति हैं। आप वैराग्य और ऐश्वर्यमें निरत, रागातीत तथा निरञ्जन हैं। आप ही कर्ता-भर्ता तथा देवताओंसे द्वेष रखनेवालोंके संहर्ता हैं। अनन्तेश! आप ही रक्षा करनेवाले परमेश्वर हैं, आप रक्षा करें॥ २६-२७॥

इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा सम्प्रबोधितः।
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासासुरद्विषः॥ २८॥

किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः।
इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः॥ २९॥

ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार भलीभाँति प्रबुद्ध किये जानेपर विकसित कमलके समान नेत्रवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले तथा असुरोंके द्वेषी भगवान् विष्णु बोले—अत्यन्त वीर्यशाली देवताओ! आपलोग प्रजापतियोंके साथ इस स्थानपर किस कारणसे आये हैं अथवा मैं आप लोगोंका कौन-सा कार्य करूँ?॥ २८-२९॥

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः।
बाधते भगवन् दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः॥ ३०॥

अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तम।
हन्तुमर्हसि सर्वेषां त्वं त्रातासि जगन्मय॥ ३१॥

श्रुत्वा तद्दैवतैरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः।
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत् पुरुषं स्वयम्॥ ३२॥

मेरुपर्वतवर्ष्माणं घोररूपं भयानकम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः॥ ३३॥

देवता बोले—भगवन्! ब्रह्माके द्वारा प्राप्त वरदानके कारण घमंडसे भरा हुआ हिरण्यकशिपु नामका दैत्य ऋषियोंसहित सभी देवताओंको पीड़ित कर रहा है। हे पुरुषोत्तम! आपको छोड़कर अन्य सभी प्राणियोंसे वह अवध्य है। जगन्मय! आप उसे मारनेमें समर्थ हैं, आप ही सभीके रक्षक हैं। देवताओंके द्वारा कही गयी उस बातको सुनकर संसारके रक्षक विष्णुने दैत्यप्रमुख उस हिरण्यकशिपुके वधके लिये स्वयं एक पुरुषको उत्पन्न किया। सुमेरु पर्वतके समान शरीरवाले, घोर रूपवाले, भयानक एवं हाथमें शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले उस पुरुषसे गरुडध्वज (विष्णु)-ने कहा॥ ३०—३३॥

हत्वा तं दैत्यराजं त्वं हिरण्यकशिपुं पुनः।
इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात्॥ ३४॥
निशम्य वैष्णवं वाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्।
महापुरुषमव्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम्॥ ३५॥
विमुञ्चन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः।
आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः॥ ३६॥
आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम्।
समाचचक्षिरे नादं तदा दैत्यपतेर्भयात्॥ ३७॥

तुम (अपने) पराक्रमसे उस दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मारकर पुनः इस स्थानपर शीघ्र ही वापस लौट आओ। विष्णुका वचन सुनकर शंख, चक्र, गदाधारी वह दूसरे महामेरुके समान देव गरुडपर आरूढ़ होकर भीषण नाद करते हुए अव्यक्त, महापुरुष पुरुषोत्तमको प्रणामकर (हिरण्यकशिपु) दैत्यके महानगरकी ओर गया। महामेघकी गर्जनाके समान नादको सुनकर बड़े-बड़े दैत्योंने दैत्यराजसे (हिरण्यकशिपुसे) भयपूर्वक कहा—॥ ३४—३७॥

असुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवचोदितः।
विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमोऽमरार्दन॥ ३८॥

ततः सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
संनद्धैः सायुधैः पुत्रैः प्रह्लादाद्यैस्तदा ययौ॥ ३९॥

दृष्ट्वा तं गरुडासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
पुरुषं पर्वताकारं नारायणमिवापरम्॥ ४०॥

दैत्योंने कहा—देवताओंका विनाश करनेवाले दैत्यराज! देवताओंकी प्रेरणा प्राप्त कर कोई महान् पुरुष भीषण नाद करता हुआ आ रहा है, हमें उसे जानना चाहिये। तदनन्तर मुख्य-मुख्य असुरों तथा आयुधोंसे सुसज्जित प्रह्लाद आदि पुत्रोंके साथ हिरण्यकशिपु स्वयं वहाँ गया। करोड़ों सूर्यके समान प्रभावाले तथा दूसरे नारायणके समान पर्वताकार गरुडपर बैठे हुए उस

दुद्रुवुः केचिदन्योन्यमूचुः सम्भ्रान्तलोचनाः।
अयं स देवो देवानां गोप्ता नारायणो रिपुः॥ ४१॥

अस्माकमव्ययो नूनं तत्सुतो वा समागतः।
इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजुः पुरुषाय ते।
तानि चाशेषतो देवो नाशयामास लीलया॥ ४२॥

पुरुषको देखकर कोई तो भाग गये और कोई भ्रान्त-दृष्टि होकर आपसमें कहने लगे—'यह निश्चित ही हमारा शत्रु और देवताओंका रक्षक वही अव्यय नारायण देव है अथवा उसका पुत्र ही यह आया है।' ऐसा कहकर वे उस पुरुषपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, किंतु उस देवने लीलासे ही उन सभी शस्त्रोंको नष्ट कर डाला॥ ३८—४२॥

तदा हिरण्यकशिपोश्चत्वारः प्रथितौजसः।
पुत्रा नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिःस्वनाः।
प्रह्लादश्चाप्यनुह्लादः संह्लादो ह्लाद एव च॥ ४३॥

प्रह्लादः प्राहिणोद् ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम्।
संह्लादश्चापि कौमारमाग्नेयं ह्लाद एव च॥ ४४॥

तदनन्तर अतितेजस्वी तथा मेघके समान गर्जना करनेवाले प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद तथा ह्लाद नामक हिरण्यकशिपुके चार पुत्र नारायणसे उत्पन्न उस पुरुषसे युद्ध करने लगे। प्रह्लादने ब्रह्मास्त्र, अनुह्लादने वैष्णवास्त्र, संह्लादने कौमारास्त्र तथा ह्लादने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया॥ ४३-४४॥

तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम्।
न शेकुर्बाधितुं विष्णुं वासुदेवं यथा तथा॥ ४५॥

अथासौ चतुरः पुत्रान् महाबाहुर्महाबलः।
प्रगृह्य पादेषु करैः संचिक्षेप ननाद च॥ ४६॥

विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली॥ ४७॥

स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन तथाशुगः।
अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणः प्रभुः।
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तथा॥ ४८॥

वे चारों अस्त्र उस वैष्णव पुरुषके पास पहुँचकर उन वासुदेव विष्णुको किसी भी प्रकार बाँधनेमें समर्थ न हो सके। तदनन्तर महाबाहु महाबलशाली उस पुरुषने उन चारों पुत्रोंके पैरोंको अपने हाथसे पकड़कर उन्हें फेंक दिया और गर्जना की। इस प्रकार पुत्रोंके फेंक दिये जानेपर बलवान् स्वयं हिरण्यकशिपुने पैरद्वारा बड़े ही वेगसे उस (पुरुष)-की छातीपर प्रहार किया। उस प्रहारसे पीड़ित होकर वह पुरुष गरुडपर चढ़कर अदृश्य हो गया तथा शीघ्र ही वहाँ गया जहाँ प्रभु नारायण स्थित थे। वहाँ जाकर उसने सम्पूर्ण घटित वृत्तान्त उन्हें बतला दिया॥ ४५—४८॥

संचिन्त्य मनसा देवः सर्वज्ञानमयोऽमलः।
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं तथा॥ ४९॥

नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे।
आविर्बभूव सहसा मोहयन् दैत्यपुङ्गवान्॥ ५०॥

दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपमः।
समारुह्यात्मनः शक्तिं सर्वसंहारकारिकाम्।
भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यंदिने रविः॥ ५१॥

दृष्ट्वा नृसिंहवपुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम्।
वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः॥ ५२॥

तब सर्वज्ञानमय विमल देवने मनमें विचारकर आधा शरीर मनुष्यका एवं आधा शरीर सिंहका बनाया। नरसिंह-शरीर धारण करनेवाले अव्यक्त देव दैत्य-समूहोंको मोहित करते हुए अकस्मात् हिरण्यकशिपुके नगरमें प्रकट हो गये। भयंकर दाढ़ोंवाले योगात्मा तथा प्रलयाग्निके समान अनन्त नारायण अपनी सर्वसंहारकारिणी शक्तिपर आरूढ़ होकर उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे थे जैसे मध्याह्नकालीन सूर्य प्रकाशमान होता है। नरसिंहका शरीर धारण किये उन्हें देखकर उस असुरने अपने बड़े लड़के प्रह्लादको नरसिंहके वधके लिये प्रेरित किया और कहा—॥ ४९—५२॥

इमं नृसिंहवपुषं पूर्वस्माद् बहुशक्तिकम्।
सहैव त्वनुजैः सर्वैर्नाशयाशु मयेरितः॥ ५३॥

अपने सभी छोटे भाइयोंके साथ तुम पहलेसे अधिक शक्तिवाले इस नरसिंह-शरीरधारी पुरुषको मेरी प्रेरणासे शीघ्र ही मार डालो॥ ५३॥

तत्संनियोगादसुरः प्रह्लादो विष्णुमव्ययम्।
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः॥ ५४॥

ततः संचोदितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः।
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च॥ ५५॥

तस्य देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः।
न हानिमकरोदस्त्रं यथा देवस्य शूलिनः॥ ५६॥

उसकी आज्ञा पाकर असुर प्रह्लादने सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा अव्यय विष्णुके साथ युद्ध किया, किंतु वह नरसिंहद्वारा पराजित हो गया। तदनन्तर उस (हिरण्यकशिपु)-की आज्ञा प्राप्तकर उसके छोटे भाई हिरण्याक्षने पाशुपतास्त्रका ध्यान करके उसे चलाया और गर्जना की। वह अस्त्र देवाधिदेव अमित तेजस्वी उन विष्णुकी, कोई हानि न कर सका जैसे कोई अस्त्र त्रिशूलधारी देव (शंकर)-की हानि नहीं करता॥ ५४—५६॥

दृष्ट्वा पराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात्।
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम्॥ ५७॥

संत्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा।
ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम्॥ ५८॥

स्तुत्वा नारायणैः स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसम्भवैः।
निवार्य पितरं भ्रातॄन् हिरण्याक्षं तदाब्रवीत्॥ ५९॥

अस्त्रको विफल होते देखकर भाग्यशाली होनेके कारण प्रह्लादने उन देवको सर्वात्मक सनातन वासुदेव ही समझा। उसने सभी शस्त्रोंका परित्याग कर दिया और सत्त्वगुणसम्पन्न चित्तसे योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाले देवको सिरसे प्रणाम किया तथा ऋक्, यजुष् तथा सामवेदमें प्राप्त वैष्णव स्तुतियोंके द्वारा स्तुतिकर अपने पिता (हिरण्यकशिपु), भाइयों एवं हिरण्याक्षको युद्ध करनेसे रोकते हुए इस प्रकार कहा— ॥ ५७—५९॥

अयं नारायणोऽनन्तः शाश्वतो भगवानजः।
पुराणपुरुषो देवो महायोगी जगन्मयः॥ ६०॥
अयं धाता विधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः।
प्रधानपुरुषस्तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्ययः॥ ६१॥
ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः।
गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम्॥ ६२॥

ये अनन्त, सनातन, अजन्मा, महायोगी, जगन्मय पुराणपुरुष भगवान् नारायण देव हैं। ये धाता, विधाता, स्वयंज्योति, निरञ्जन, प्रधानपुरुषरूप, तत्त्व, मूलप्रकृति, अव्यय, ईश्वर, सभी प्राणियोंके अन्तर्यामी तथा गुणातीत हैं। इन अव्यक्त, अव्यय विष्णुकी आप लोग शरण ग्रहण करें॥ ६०—६२॥

एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया॥ ६३॥

अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः।
समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः॥ ६४॥

(प्रह्लादके) इस प्रकार कहनेपर विष्णुकी मायासे अत्यन्त मोहित दुर्बुद्धि हिरण्यकशिपुने स्वयं पुत्रसे कहा—यह थोड़े पराक्रमवाला नरसिंह सभी प्रकारसे वध करने योग्य है। कालके द्वारा प्रेरित होकर इस समय यह हमारे घरमें ही आ गया है॥ ६३-६४॥

विहस्य पितरं पुत्रो वचः प्राह महामतिः।
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम्॥ ६५॥

कथं देवो महादेवः शाश्वतः कालवर्जितः।
कालेन हन्यते विष्णुः कालात्मा कालरूपधृक्॥ ६६॥

ततः सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा विधिचोदितः।
निवारितोऽपि पुत्रेण युयोध हरिमव्ययम्॥ ६७॥

संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्।
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः॥ ६८॥

पिताका वचन सुनकर महामति प्रह्लादने हँसकर कहा—प्राणियोंके एकमात्र स्वामी इन अव्ययकी निन्दा मत करो। सनातन, कालवर्जित, कालात्मा, कालका रूप धारण करनेवाले, महादेव विष्णु देवको काल कैसे मार सकता है। तदनन्तर भाग्यसे प्रेरित हिरण्यकशिपु पुत्रके द्वारा रोके जानेपर भी अव्यय हरिसे लड़ने लगा। (क्रोधसे) अत्यन्त लाल नेत्रोंवाले अनन्त विष्णुने प्रह्लादके देखते-ही-देखते हिरण्य (स्वर्ण)-के समान नयन हैं जिसके, उस हिरण्यनयन (हिरण्याक्ष)-के बड़े भाई हिरण्यकशिपुको अपने नखोंद्वारा विदीर्ण कर डाला॥ ६५—६८॥

हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः।
विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः॥ ६९॥

अनुह्लादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः।
नृसिंहदेहसम्भूतैः सिंहैर्नीता यमालयम्॥ ७०॥

ततः संहृत्य तद्रूपं हरिर्नारायणः प्रभुः।
स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम्॥ ७१॥

हिरण्यकशिपुके मार दिये जानेपर भयसे विह्वल महाबली हिरण्याक्ष पुत्र प्रह्लादको छोड़कर भाग चला। नरसिंहकी देहसे उत्पन्न सिंहोंने (हिरण्यकशिपुके) अनुह्लाद आदि पुत्रों तथा अन्य सैकड़ों असुरोंको यमलोक पहुँचा दिया। तदनन्तर प्रभु नारायण हरिने उस (नरसिंह) रूपको समेटकर अपने ही नारायण नामवाले श्रेष्ठ रूपको धारण कर लिया तथा अपने धामके लिये प्रस्थान किया॥ ६९—७१॥

गते नारायणे दैत्यः प्रह्लादोऽसुरसत्तमः।
अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत्॥ ७२॥

स बाधयामास सुरान् रणे जित्वा मुनीनपि।
लब्ध्वान्धकं महापुत्रं तपसाराध्य शंकरम्॥ ७३॥

देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बध्वा च धरणीमिमाम्।
नीत्वा रसातलं चक्रे वन्दीमिन्दीवरप्रभाम्॥ ७४॥

नारायणके चले जानेपर असुरश्रेष्ठ दैत्य प्रह्लादने (अपने चाचा) हिरण्याक्षका यथोचित अभिषेक किया। उस (हिरण्याक्ष)-ने युद्धमें देवताओं और मुनियोंको जीतकर उन्हें पीड़ा पहुँचायी और तपस्याके द्वारा शंकरकी आराधना करके अन्धक नामक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया। उसने देवराज इन्द्रसहित सभी देवताओंको जीत लिया तथा कमलके समान कान्तिवाली इस पृथ्वीको बाँधकर रसातलमें ले जाकर बंदी बना लिया॥ ७२—७४॥

ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः।
गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम्॥ ७५॥

तब मुरझायी हुई मुखकी शोभावाले सभी देवता ब्रह्मासहित हरिके निवासमें गये और उन्हें (सारा वृत्तान्त) बतलाया॥ ७५॥

स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः।
सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहं वपुरादधे॥ ७६॥

गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः।
दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम्॥ ७७॥

त्यक्त्वा वराहसंस्थानं संस्थाप्य च सुरद्विजान्।
स्वामेव प्रकृतिं दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम्॥ ७८॥

अव्यय उन विश्वात्माने उस हिरण्याक्षके वधका उपाय सोचते हुए सर्वदेवमय स्वच्छ वराहके शरीरको धारण किया। हिरण्याक्षके समीप जाकर पुरुषोत्तमने उसे मार डाला और कल्पके आदिमें (हिरण्याक्षके द्वारा रसातल ले जायी गयी) इस पृथ्वीका अपने दाढ़ोंद्वारा (उठाकर) उद्धार किया। वराह-रूपका परित्याग कर तथा देवताओं और ब्राह्मणोंको यथास्थान प्रतिष्ठित कर विष्णुने अपने ही दिव्य (चतुर्भुज)-स्वरूपको धारण किया और वे अपने परम पदकी ओर चले गये॥ ७६—७८॥

तस्मिन् हतेऽमररिपौ प्रह्लादो विष्णुतत्परः।
अपालयत् स्वकं राज्यं भावं त्यक्त्वा तदासुरम्॥ ७९॥

इयाज विधिवद् देवान् विष्णोराराधने रतः।
निःसपत्नं तदा राज्यं तस्यासीद् विष्णुवैभवात्॥ ८०॥

देवताओंके शत्रु उस (हिरण्याक्ष)-के मारे जानेपर विष्णुपरायण प्रह्लाद आसुर भावका परित्याग कर अपने राज्यका पालन करने लगा। विष्णुकी आराधनामें निरत रहते हुए उसने विधिपूर्वक देवोंका यज्ञ आदिद्वारा पूजन किया। विष्णुके प्रतापसे उसका राज्य किसी प्रतिद्वन्द्वी (शत्रु) आदिसे रहित था॥ ७९-८०॥

ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम्।
तापसं नार्चयामास देवानां चैव मायया॥ ८१॥

एक बारकी बात है—देवताओंकी मायाके वशीभूत असुर प्रह्लादने घरमें आये हुए तपस्वी ब्राह्मणकी पूजा नहीं की॥ ८१॥

स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः।
शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ८२॥

यत्तद्बलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे।
सा भक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशं ते गमिष्यति॥ ८३॥

मायासे अत्यन्त मोहित उस तपस्वी प्रह्लाद
अपमानित होकर क्रोधसे रक्तनेत्रवाले उस
ब्राह्मणने असुरराज (प्रह्लाद)-को शाप दे डाल
बलका आश्रय ग्रहणकर तुम ब्राह्मणोंकी अवमा
रहे हो, तुम्हारी वह दिव्य वैष्णवी भक्ति वि
जायगी॥ ८२-८३॥

इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद् द्विजः।
मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात् ततः॥ ८४॥

बाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम्।
पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति॥ ८५॥

तयोः समभवद् युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः॥ ८६॥

कृत्वा तु सुमहद् युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात् परस्मिन् पुरुषे हरौ।
संजातं तस्य विज्ञानं शरण्यं शरणं ययौ॥ ८७॥

ततः प्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन्।
नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे॥ ८८॥

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण प्रह्लादके घरसे
निकल पड़ा और प्रह्लाद भी शापके प्रभावसे
संचालनमें लगे रहनेपर भी मोहग्रस्त हो गया। व
ब्राह्मणोंको पीड़ित करने लगा और जनार्दनको
गया। पिता (हिरण्यकशिपु)-के वधका स्मरण
हरि (विष्णु)-पर क्रुद्ध हो गया। तब उन दोनों
प्रह्लाद और नारायणदेवमें अत्यन्त घोर रोमाञ्चक
हुआ। बड़ा भारी युद्ध करनेके बाद विष्णुने उ
लिया। पहलेके संस्कारके माहात्म्यसे उसे प
हरिका वास्तविक ज्ञान उद्बुद्ध हो गया और वह
शरणमें गया। तबसे नारायण पुरुषोत्तममें अनन
रखते हुए उस दैत्येन्द्र प्रह्लादको महायोगकं
हुई॥ ८४—८८॥

हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि।
अवाप तन्महद् राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः॥ ८९॥

हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः।
मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम्॥ ९०॥

हिरण्यकशिपुके पुत्र (प्रह्लाद)-का चित्त योगमें
हो जानेपर शम्भुके देहसे[१] उत्पन्न हिरण्याक्ष
असुर श्रेष्ठ अन्धकने उस विशाल राज्यको प्रा
तथा मन्दर पर्वतपर अवस्थित पर्वत (हिमाल
पुत्री उमा देवीको प्राप्त करनेकी इच्छा की॥ ८

पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः।
ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः॥ ९१॥

ततः कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा।
अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद् भूतविनाशिनी॥ ९२॥

समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम्।
अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम्॥ ९३॥

स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः।
सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा॥ ९४॥

प्राचीन कालकी बात है, हजारों गृहस्
पुण्यदायी दारुवनमें ईश्वरकी आराधना करनेके ि
करते थे। तदनन्तर कालयोगसे किसी समय प्रा
विनाश करनेवाली अत्यन्त उग्र तथा भयंकर अ
हुई। भूखसे व्याकुल सभी मुनियोंने साथ
तपोनिधि गौतमसे प्राण धारणके निमित्त भ
याचना की। बुद्धिमान् उन गौतमने उन सभीको अ
स्वादुयुक्त अन्न प्रदान किया। उन सभी ब्र
निःशंक-मनसे भोजन किया॥ ९१—९४॥

गते तु द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शंकरी।
बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत्॥ ९५॥

बारह वर्ष व्यतीत हो जानेपर कल्पान्तमें हं
कल्याणकारिणी वृष्टिके सदृश महान् वृष्टि हुई
(पुनः) पहलेके समान हो गया॥ ९५॥

१-शम्भुकी आराधनासे ही हिरण्याक्षको अन्धक (पुत्र)-की प्राप्ति हुई थी।

ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम्।
महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः॥ ९६ ॥

निवारयामास च तान् कञ्चित् कालं यथासुखम्।
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः॥ ९७ ॥

ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृशां गां सर्व एव ते।
समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्य महात्मनः॥ ९८ ॥

सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः।
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा॥ ९९ ॥

तब सभी मुनिवरोंने आपसमें मन्त्रणा कर महर्षि गौतमसे पूछा—क्या हमलोग शीघ्र यहाँसे चले जायँ? तब गौतमने उन लोगोंको रोकते हुए कहा—पण्डितजनो! कुछ समय और यहाँ मेरे घरमें सुखपूर्वक रहें, इसके बाद आप सभी जायँ। तत्पश्चात् उन सभीने मायामयी एक कमजोर गाय बनाकर उसे महात्मा गौतमके समीप पहुँचा दिया। गायको देखकर उसकी रक्षाके लिये उत्सुक दयालु मुनिने अपनी गोशालामें उसे बाँध दिया, किंतु वह गाय छूते ही मर गयी॥ ९६—९९॥

स शोकेनाभिसंतप्तः कार्याकार्यं महामुनिः।
न पश्यति स्म सहसा तादृशं मुनयोऽब्रुवन्॥ १००॥

शोकसे अत्यन्त दुःखी वे महामुनि उस समय किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये। तब शीघ्र ही मुनियोंने ऐसे उन (गौतम मुनि)-से कहा—॥ १००॥

गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत् तव शरीरगा।
तावत् तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि॥ १०१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! जबतक यह गोहत्या आपके शरीरमें (व्याप्त) रहेगी, तबतक आपके यहाँ अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये, इसलिये हमलोग जा रहे हैं॥ १०१॥

तेन ते मुदिताः सन्तो देवदारुवनं शुभम्।
जग्मुः पापवशं नीतास्तपश्चर्तुं यथा पुरा॥ १०२॥

स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः।
केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीवकोपनः॥ १०३॥

इस प्रकार पापके वशीभूत हुए वे (मुनिजन) प्रसन्न होकर पहलेके ही समान तप करनेके लिये शुभ देवदारु वनमें चले गये। उन गौतम मुनिने उन मुनियोंकी मायाद्वारा करायी गयी गोहत्याको किसी प्रकारसे जान लिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर (इस प्रकार) शाप दिया॥ १०२-१०३॥

भविष्यन्ति त्रयीबाह्या महापातकिभिः समाः।
बभूवुस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः॥ १०४॥

सर्वे सम्प्राप्य देवेशं शंकरं विष्णुमव्ययम्।
अस्तुवन् लौकिकैः स्तोत्रैरुच्छिष्टा इव सर्वगौ॥ १०५॥

महापातकियोंके समान ये लोग वेदसे बहिष्कृत हो जायँगे और शापके कारण बार-बार जन्म लेनेवाले होंगे। भोजनसे बची हुई जूठनके समान वे सभी (शापसे भयभीत होकर) सर्वव्यापक देवेश शंकर तथा अव्यय विष्णुके पास पहुँचकर उनकी लौकिक स्तुतियोंसे स्तुति करने लगे—॥ १०४-१०५॥

देवदेवौ महादेवौ भक्तानामार्तिनाशिनौ।
कामवृत्त्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हथः॥ १०६॥

तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः।
किमेतेषां भवेत् कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति॥ १०७॥

ततः स भगवान् विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः।
गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान् हरिः॥ १०८॥

हे देवदेव (विष्णु)! हे महादेव! (शंकर) आप दोनों भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले हैं और इच्छानुसार योगका अवलम्बन करनेवाले हैं। आप हम लोगोंकी पापसे रक्षा करें। तब समीपमें स्थित विष्णुकी ओर देखकर वृषभध्वज शंकरने कहा—बताइये कि ये पुण्यकी इच्छा करनेवाले लोग क्या चाहते हैं? तब भक्तवत्सल, शरण्य हरि उन भगवान् विष्णुने विनीत श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी ओर देखकर शंकरजीसे कहा—॥ १०६—१०८॥

न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शंकर।
संगच्छते महादेव धर्मो वेदाद् विनिर्बभौ॥ १०९॥

शंकर! वेदबाह्य पुरुषमें पुण्यका लेशमात्र भी नहीं रहता। हे महादेव! वेदसे ही धर्म उत्पन्न हुआ है॥ १०९॥

तथापि भक्तवात्सल्याद् रक्षितव्या महेश्वर।
अस्माभिः सर्व एवेमे गन्तारो नरकानपि॥ ११०॥

तस्माद् वै वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्।
विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज॥ १११॥

एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा।
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः॥ ११२॥

कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्।
पञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः॥ ११३॥

सृष्ट्वा तानूचतुर्देवौ कुर्वाणाः शास्त्रचोदितम्।
पतन्तो निरये घोरे बहून् कल्पान् पुनः पुनः॥ ११४॥

जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः।
ईश्वराराधनबलाद् गच्छध्वं सुकृतां गतिम्।
वर्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः॥ ११५॥

तथापि महेश्वर! भक्तवत्सलताके कारण नरकोंमें जानेवाले इन सभीकी हमारे द्वारा रक्षा की जानी चाहिये ऐसा उचित प्रतीत होता है। इसलिये वृषभध्वज! वेदबाह्य पापियोंकी रक्षा करने एवं उन्हें मोहित करनेके लिये मैं शास्त्रोंकी रचना करूँगा। इस प्रकार मुरारि माधवसे प्रेरित किये गये रुद्रने मोहित करनेवाले शास्त्रोंको बनाया और उसी प्रकार शिवसे प्रेरणा प्राप्त केशवने भी ऐसे ही शास्त्रोंकी रचना की। कापाल, नाकुल, वाम, भैरव, पूर्वपश्चिम, पञ्चरात्र, पाशुपत तथा अन्य भी सहस्रों शास्त्रोंकी रचना करके उन देवोंने उन (वेदबाह्य)-से कहा—इन शास्त्रोंमें बताये गये कर्मोंको करनेके कारण बहुत कल्पोंतक आप सब घोर अन्धकारपूर्ण नरकोंमें गिरेंगे और फिर पाप-समूहके क्षीण हो जानेपर मनुष्यलोक प्राप्त करेंगे। पुनः ईश्वरकी आराधनाके बलपर पुण्यवानोंकी गति प्राप्त करेंगे। आप सभी मेरी प्रसन्नताके लिये ऐसा ही करें, आप लोगोंके निस्तारणका अर्थात् दोषमुक्त होनेका इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है॥ ११०—११५॥

एवमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः।
आदेशं प्रत्यपद्यन्त शिरसाऽसुरविद्विषोः॥ ११६॥

चक्रुस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः।
शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि तु॥ ११७॥

इस प्रकार शिव तथा विष्णुके द्वारा प्रेरणा प्राप्तकर उन महर्षियोंने असुरोंसे द्वेष करनेवाले उन दोनों देवोंकी आज्ञाको सिरसे स्वीकार किया। पुनः उन लोगोंने भी दूसरे शास्त्रोंकी रचना कर उनमें प्रवृत्त होनेवाले शिष्योंको पढ़ाया तथा उन शास्त्रोंके पढ़नेका फल भी बताया॥ ११६-११७॥

मोहयन्त इमं लोकमवतीर्य महीतले।
चकार शंकरो भिक्षां हितायैषां द्विजैः सह॥ ११८॥

कपालमालाभरणः प्रेतभस्मावगुण्ठितः।
विमोहयँल्लोकमिमं जटामण्डलमण्डितः॥ ११९॥

निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णावमिततेजसि।
नियोज्याङ्गभवं रुद्रं भैरवं दुष्टनिग्रहे॥ १२०॥

दत्त्वा नारायणे देवीं नन्दिनं कुलनन्दिनम्।
संस्थाप्य तत्र गणपान् देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ १२१॥

शिवने इन (ब्राह्मणों)-के कल्याणके लिये पृथ्वीपर अवतार लेकर लोगोंको मोहित करते हुए ब्राह्मणोंके साथ भिक्षावृत्ति ग्रहण की। कपालोंकी मालाका आभूषण धारणकर, चिता-भस्म लगाकर और जटामण्डलसे मण्डित हो इस लोकको मोहित किया। देवी पार्वतीको अमित तेजस्वी विष्णुके समीप रखा और दुष्टोंका निग्रह करनेके लिये अपने अङ्गसे उत्पन्न रुद्र भैरवको नियुक्त किया। देवीको नारायणके समीप रखकर कुलनन्दन नन्दीको वहाँ रखा तथा इन्द्रादि देवों एवं गणपोंको भी वहाँ स्थापित किया॥ ११८—१२१॥

प्रस्थितेऽथ महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम्।
स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम्॥ १२२॥

महादेवके जानेके पश्चात् विश्वतनु साक्षात् विष्णु स्त्री-रूप धारण करके महेश्वरी पार्वतीकी भलीभाँति सेवा करने लगे॥ १२२॥

ब्रह्मा हुताशनः शक्रो यमोऽन्ये सुरपुङ्गवाः।
सिषेविरे महादेवीं स्त्रीवेशं शोभनं गताः॥ १२३॥
नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभः।
द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत॥ १२४॥
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः।
आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम्॥ १२५॥
सम्प्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शंकरः कालभैरवः।
न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः॥ १२६॥
तयोः समभवद् युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः॥ १२७॥

सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करके ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, यम तथा अन्य भी श्रेष्ठ देवता महादेवीकी सेवा करने लगे। शम्भुके अत्यन्त प्रिय गणोंके अध्यक्ष भगवान् नन्दीश्वर पूर्वकी भाँति द्वारपर स्थित रहे। इसी बीच अन्धक नामका एक कुबुद्धि दैत्य गिरिजा पार्वतीको हरनेकी इच्छासे उस मन्दर पर्वतपर आया। अन्धकको वहाँ आया देखकर कालरूपधारी शंकर, अमेयात्मा हर कालभैरवने उसे रोका। उन दोनोंका अत्यन्त भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ—॥ १२३—१२७॥

ततः सहस्रशो दैत्यः ससर्जान्धकसंज्ञितान्।
नन्दिषेणादयो दैत्यैरन्धकैरभिनिर्जिताः॥ १२८॥

घण्टाकर्णो मेघनादश्चण्डेशश्चण्डतापनः।
विनायको मेघवाहः सोमनन्दी च वैद्युतः॥ १२९॥

सर्वेऽन्धकं दैत्यवरं सम्प्राप्यातिबलान्विताः।
युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधैः॥ १३०॥

भ्रामयित्वाथ हस्ताभ्यां गृहीतचरणद्वयाः।
दैत्येन्द्रेणातिबलिना क्षिप्तास्ते शतयोजनम्॥ १३१॥

ततोऽन्धकनिसृष्टास्ते शतशोऽथ सहस्रशः।
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवं त्वभिदुद्रुवुः॥ १३२॥

हा हेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयङ्करः।
युयोध भैरवो रुद्रः शूलमादाय भीषणम्॥ १३३॥

इसके बाद उस दैत्यने अन्धक नामवाले हजारों दैत्योंको उत्पन्न किया। उन अन्धक नामवाले दैत्योंने नन्दिषेण आदि (गणों)-को पराजित कर दिया। घण्टाकर्ण, मेघनाद, चण्डेश, चण्डतापन, विनायक, मेघवाह, सोमनन्दी तथा वैद्युत आदि ये सभी अत्यन्त बलशाली गण दैत्यश्रेष्ठ अन्धकके पास जाकर शूल, शक्ति, ऋष्टि, पर्वतशिखर तथा परशुद्वारा युद्ध करने लगे। अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्रने अपने हाथोंसे उन सभीके दोनों पैरोंको पकड़कर घुमाते हुए उन्हें सौ योजन दूर फेंक दिया। तदनन्तर अन्धकद्वारा उत्पन्न सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें प्रलयकालीन सूर्यके समान वे (दैत्य) भैरवपर टूट पड़े। अत्यन्त भयंकर हाहाकारका शब्द होने लगा। भैरव रुद्र भीषण शूल लेकर युद्ध करने लगे॥ १२८—१३३॥

दृष्ट्वाऽन्धकानां सुबलं दुर्जयं तर्जितो हरः।
जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम्॥ १३४॥

सोऽसृजद् भगवान् विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम्।
देवीपार्श्वस्थितो देवो विनाशायामरद्विषाम्॥ १३५॥

अन्धकोंकी सेनाको अजेय देखकर भयभीत हर, विभु, अजन्मा देव वासुदेवकी शरणमें गये। तब देवीके समीपमें स्थित उन देव भगवान् विष्णुने देवताओंके द्वेषियोंका विनाश करनेके लिये श्रेष्ठ सौ देवियोंको उत्पन्न किया॥ १३४-१३५॥

तदान्धकसहस्रं तु देवीभिर्यमसादनम्।
नीतं केशवमाहात्म्याल्लीलयैव रणाजिरे॥ १३६॥

दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः।
पराङ्मुखो रणात् तस्मात् पलायत महाजवः॥ १३७॥

तदनन्तर विष्णुकी महिमासे उन देवियोंने सैकड़ों अन्धकोंको उस युद्धस्थलमें खेल-खेलमें ही यमलोक भेज दिया। अपनी सेनाकी पराजय देखकर महान् असुर अन्धक भी युद्धसे विमुख होकर अत्यन्त वेगसे भाग चला॥ १३६-१३७॥

ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा द्वादशवार्षिकीम्।
हिताय लोके भक्तानामाजगामाथ मन्दरम्॥ १३८॥

तदनन्तर संसारमें भक्तोंके कल्याणार्थ बारह वर्षतक चलनेवाली लीलाको समाप्तकर महादेव मन्दराचल पर्वतपर चले आये॥ १३८॥

सम्प्राप्तमीश्वरं ज्ञात्वा सर्व एव गणेश्वराः।
समागम्योपतस्थुस्तं भानुमन्तमिव द्विजाः॥ १३९॥

प्रविश्य भवनं पुण्यमयुक्तानां दुरासदम्।
ददर्श नन्दिनं देवं भैरवं केशवं शिवः॥ १४०॥

प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम्।
आघ्राय मूर्धनीशानः केशवं परिषस्वजे॥ १४१॥

दृष्ट्वा देवी महादेवं प्रीतिविस्फारितेक्षणा।
ननाम शिरसा तस्य पादयोरीश्वरस्य सा॥ १४२॥

निवेद्य विजयं तस्मै शंकरायाथ शंकरी।
भैरवो विष्णुमाहात्म्यं प्रणतः पार्श्वगोऽवदत्॥ १४३॥

श्रुत्वा तद्विजयं शम्भुर्विक्रमं केशवस्य च।
समास्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने॥ १४४॥

ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः।
आजग्मुर्मन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम्॥ १४५॥

येन तद् विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम्।
समागतं दैत्यसैन्यमीशदर्शनवाञ्छया॥ १४६॥

दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषणम्।
प्रणेमुरादराद् देव्यो गायन्ति स्मातिलालसाः॥ १४७॥

प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपार्श्वे पिनाकिनः।
देवासनगतं देवं नारायणमनामयम्॥ १४८॥

दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्या नारायणेन च।
प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गनाः॥ १४९॥

ईश्वरको आया हुआ जानकर सभी गणेश्वर उनके पासमें आकर इस प्रकार स्थित हो गये जैसे द्विज सूर्यकी उपासनामें स्थित रहते हैं। अयोगियोंके लिये दुर्गम पुण्यशाली भवनमें प्रवेशकर शिवने नन्दी, भैरवदेव तथा केशवको देखा॥ १३९-१४०॥

उन देव शंकरने प्रणाम करनेवाले नन्दीके ऊपर कृपा करके उनका सिर सूँघा और केशवका आलिङ्गन किया। महादेवको देखकर प्रीतिसे विकसित आँखोंवाली उन देवीने उन ईश्वरके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया। तदनन्तर शंकरप्रिया पार्वतीने उन्हें विजयका समाचार कहा और (शंकरके) पार्श्वमें स्थित रहनेवाले भैरवने विनयपूर्वक विष्णुके माहात्म्यको भी (उन्हें) बताया। उस विजय (-के समाचार) तथा केशव विष्णुके पराक्रमको सुनकर शम्भु भगवान् शंकर देवी पार्वतीके साथ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए। तदनन्तर मरीचि आदि प्रमुख द्विज तथा सभी देवगण देवाधिदेव त्रिलोचनका दर्शन करनेके लिये मन्दराचलपर आये॥ १४१—१४५॥

जिन्होंने दैत्य (अन्धक)-की सेनाको पहले जीता था, वे श्रेष्ठ सौ देवियाँ भी ईशके दर्शनोंकी लालसासे वहाँ आयीं। चन्द्रमारूपी आभूषणसे विभूषित शंकरको देवी पार्वतीके साथ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखकर (उन) देवियोंने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेमसे वे गान करने लगीं। पिनाकी (शंकर)-के वामभागमें स्थित देवी गिरिजा एवं शंकरके आसनपर उनके साथ विराजमान प्रसन्नचित्त नारायणको (उन देवियोंने) प्रणाम किया। देवी पार्वती और नारायणके साथ सिंहासनपर बैठे हुए देव शंकरको प्रणामकर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंने पूछा—॥ १४६—१४९॥

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयं बालरविप्रभा।
कोऽन्वयं भाति वपुषा पङ्कजायतलोचनः॥ १५०॥

कन्याओं (देवियों)-ने कहा—अपनी कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले आप कौन हैं? बाल सूर्यके समान आभावाली यह (बाला) कौन है? और कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले एवं अपने शरीरके कारण शोभायमान यह कौन पुरुष है?॥ १५०॥

निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः।
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः॥ १५१॥

अहं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी।
विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः॥ १५२॥

उनके वचन सुनकर श्रेष्ठ वृषभपर आरूढ़ होनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी, महायोगी अव्यय (शिव)-ने कहा—मैं अपनेको नारायण तथा सनातन जगन्माता गौरी आदि अनेक रूपोंमें विभक्तकर स्थित रहनेवाला देव ईश्वर हूँ॥ १५१-१५२॥

न मे विदुः परं तत्त्वं देवाद्या न महर्षयः।
एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च॥ १५३॥

अहं हि निष्क्रियः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः।
मामेव केशवं देवमाहुर्देवीमथाम्बिकाम्॥ १५४॥

मेरे परम तत्त्वको न तो देवता आदि जानते हैं और न महर्षि। एकमात्र विश्वात्मा ये विष्णु और भवानी ही (मुझे) जानते हैं। मैं ही निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय और परिग्रहशून्य हूँ। मुझे ही केशव, देव तथा देवी अम्बिका कहा जाता है॥ १५३-१५४॥

एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च।
कर्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥ १५५॥

भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्ता कालरूपधृक्।
स्त्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः॥ १५६॥

कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणः स्वयम्।
तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम्॥ १५७॥

ये विष्णु ही स्वयं धाता, विधाता, कारण, कार्य, कर्ता, कारयिता (कार्यके लिये प्रेरित करनेवाले) और भुक्ति तथा मुक्तिस्वरूप फलको प्रदान करनेवाले हैं। (ये ही) भोक्ता, अप्रमेय पुरुष, संहर्ता, कालका रूप धारण करनेवाले, सृष्टि तथा पालन करनेवाले, विश्वात्मा, सर्वव्यापक, वासुदेव, कूटस्थ, अविनाशी, व्यापी, योगी, नारायण, तारक, पुरुष, आत्मा और अद्वितीय परम पद हैं॥ १५५—१५७॥

सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना।
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः॥ १५८॥

अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति।
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः॥ १५९॥

ये माहेश्वरी गौरी मेरी निरञ्जन शक्ति हैं। वेद इन्हें ही शान्त, सत्य, सदानन्द और परम पद बतलाते हैं। इन्हींसे यह सब उत्पन्न हुआ है और इन्हींमें लय भी हो जायगा। ये ही सभी प्राणियोंकी गतियोंमें उत्तम गति हैं॥ १५८-१५९॥

तयाहं संगतो देव्या केवलो निष्कलः परः।
पश्याम्यशेषमेवेदं यस्तद् वेद स मुच्यते॥ १६०॥

तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम्।
एकमेव विजानीध्वं ततो यास्यथ निर्वृतिम्॥ १६१॥

मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विताः।
ये भिन्नदृष्ट्यापीशानं पूजयन्तो न मे प्रियाः॥ १६२॥

द्विषन्ति ये जगत्सूतिं मोहिता रौरवादिषु।
पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि॥ १६३॥

तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः।
यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः॥ १६४॥

इन्हीं देवीके साथ अद्वितीय, निष्कल तथा परमस्वरूप मैं इस सम्पूर्ण (विश्व)-का साक्षात्कार करता हूँ। जो इस (तत्त्व)-को जानता है, वह मुक्त हो जाता है। इसलिये अनादि, अद्वैत विष्णु और आत्मस्वरूप ईश्वर (शंकर)-को एक ही समझो। इससे तुम लोगोंको शान्ति प्राप्त होगी। जो श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति अव्यक्त एवं आत्मरूप विष्णुको भिन्न मानकर शिवकी पूजा करते हैं, वे मुझे प्रिय नहीं हैं। जो लोग जगत्को उत्पन्न करनेवाले (विष्णु)-से द्वेष रखते हैं (वे सभी) मोहित व्यक्ति रौरव आदि नरकोंमें पड़े रहते हैं और सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी मुक्त नहीं होते। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके रक्षक अव्यय विष्णुको भलीभाँति समझकर समस्त आपत्तियोंमें उन प्रभुका ध्यान करना चाहिये॥ १६०—१६४॥

श्रुत्वा भगवतो वाक्यं देव्यः सर्वगणेश्वराः।
नेमुर्नारायणं देवं देवीं च हिमशैलजाम्॥ १६५॥

प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये।
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे॥ १६६॥

ततो नारायणं देवं गणेशा मातरोऽपि च।
न पश्यन्ति जगत्सूतिं तदद्भुतमिवाभवत्॥ १६७॥

सभी देवियों और गणेश्वरोंने भगवान्‌के वाक्यको सुनकर नारायण देव तथा हिमालयकी पुत्री देवी (पार्वती)-को प्रणाम किया और भक्तजनोंके प्रिय ईशान भगवान् शंकर तथा भवानीके चरणयुगल एवं नारायणके चरणकमलोंमें भक्तिकी प्रार्थना की। तदनन्तर गणेश्वरों और मातृदेवियोंने जगत्को उत्पन्न करनेवाले नारायण देवको नहीं देखा यह एक आश्चर्य-जैसा ही हुआ॥ १६५—१६७॥

तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्धको मन्मथार्दितः।
मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ॥ १६८॥

इसी बीच कामदेवके द्वारा पीड़ित महादैत्य अन्धक मोहित होता हुआ देवी गिरिजाको हरण करनेके लिये पर्वतपर आया॥ १६८॥

अथानन्तवपुः श्रीमान् योगी नारायणोऽमलः।
तत्रैवाविरभूद् दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः॥ १६९॥
कृत्वाथ पार्श्वे भगवन्तमीशो
युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः
स कालरुद्रोऽभिजगाम देवः॥ १७०॥
त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं
स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात्।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या
जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः॥ १७१॥
रराज मध्ये भगवान् सुराणां
विवाहनो वारिदवर्णवर्णः।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढ-
स्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः॥ १७२॥

इसके बाद विराट्शरीरधारी, श्रीमान्, योगी, निर्मल नारायण पुरुषोत्तम दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये वहीं प्रकट हो गये। तदनन्तर वे कालरुद्रदेव भगवान् विष्णुको अपने पार्श्वमें करके तथा मुख्य गणदेवों, शिलादपुत्र नन्दी और मातृकाओंको साथ लेकर युद्धके लिये स्वयं गये। अग्निके समान त्रिशूलको लेकर वे देवदेव (शंकर) आगे-आगे चले। उन श्रेष्ठ गणराजों तथा हजार बाहुवाले देव (विष्णु)-ने भी उनका अनुगमन किया। देवताओंके बीचमें उस समय मेघके समान वर्णवाले गरुडवाहन भगवान् विष्णु उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जिस प्रकार सुमेरु पर्वतके शिखरपर आरूढ़ तीनों लोकोंके नेत्र-स्वरूप भगवान् सूर्य सुशोभित होते हैं॥ १६९—१७२॥

जगत्यनादिर्भगवानमेयो
हरः सहस्राकृतिराविरासीत्।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोषः
पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः॥ १७३॥
समागतं वीक्ष्य गणेशराजं
समावृतं देवरिपुर्गणेशैः।
युयोध शक्रेण समातृकाभि-
र्गणैरशेषैरमरप्रधानैः॥ १७४॥
विजित्य सर्वानपि बाहुवीर्यात्
स संयुगे शम्भुमनन्तधाम।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो
विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः॥ १७५॥
दृष्ट्वान्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः।
व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम्॥ १७६॥

अनादि, अमेय त्रिशूलपाणि भगवान् हर हजारों स्वरूप धारणकर पृथ्वीपर प्रकट हुए। (उस समय) आकाशमें सुन्दर शब्द होने लगा तथा उन देवके ऊपर (आकाशसे) पुष्पवृष्टि होने लगी। गणेश्वरोंके राजा शिवको गणेश्वरोंद्वारा घिरे हुए आते देखकर देवशत्रु अन्धक, इन्द्र तथा मातृकाओं, गणों और सभी प्रधान-प्रधान देवताओंके साथ युद्ध करने लगा। अपने बाहुबलसे युद्धमें सभीको जीतकर वह सत्त्वविहीन (अन्धक) अनन्त तेजस्वी शम्भुके समीप गया, जहाँ वे कालरुद्र विमानपर बैठे हुए थे। अन्धकको आते हुए देखकर भगवान् गरुडध्वजने विभूतिसे सुशोभित भैरव महादेवसे कहा—॥ १७३—१७६॥

हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम्।
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते॥ १७७॥
त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणैः॥ १७८॥

(भगवन्!) आप संसारके कण्टकरूप दैत्यपति अन्धकको मारनेमें समर्थ हैं। आपको छोड़कर इसे मारनेमें और कोई दूसरा समर्थ नहीं है। आप सभी लोकोंका संहार करनेवाले ईश्वरके कालमय शरीर हैं। वेदोंको जाननेवाले विद्वानोंके द्वारा विविध मन्त्रोंसे आपकी स्तुति की जाती है॥ १७७-१७८॥

स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हरः।
निरीक्ष्य विष्णुं हनने दैत्येन्द्रस्य मतिं दधौ॥ १७९॥

जगाम देवतानीकं गणानां हर्षमुत्तमम्।
स्तुवन्ति भैरवं देवमन्तरिक्षचरा जनाः॥ १८०॥

वासुदेवका वचन सुनकर उन भगवान् हरने विष्णुकी ओर देखकर दैत्येन्द्र अन्धकको मारनेका विचार किया, गणोंका हर्ष बढ़ाते हुए वे देवताओंकी सेनामें गये। (तब) अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाले लोग भैरवदेवकी (इस प्रकार) स्तुति करने लगे—॥ १७९-१८०॥

जयानन्त महादेव कालमूर्ते सनातन।
त्वमग्निः सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यशः॥ १८१॥

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वं धाता हरिरव्ययः।
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम्॥ १८२॥

ओङ्कारमूर्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः।
महाविभूतिर्देवेशो जयाशेषजगत्पते॥ १८३॥

अनन्त! महादेव! आप सनातन हैं, कालकी मूर्ति हैं, आपकी जय हो। आप अग्निरूप और सभी प्राणियोंके भीतर सदैव निवास करनेवाले हैं। आप ही यज्ञ, आप ही वषट्कार और आप ही धाता अव्यय हरि हैं। आप ही ब्रह्मा, महादेव और आप ही तेजःस्वरूप परमपद हैं। (आप) प्रणवमूर्ति, योगात्मा, वेदत्रयीरूप तीन नेत्रवाले त्रिलोचन हैं। आप महाविभूतिस्वरूप, देवताओंके स्वामी हैं। हे सम्पूर्ण संसारके स्वामी! आपकी जय हो॥ १८१—१८३॥

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वान्धकमीश्वरः।
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त सतां गतिः॥ १८४॥

दृष्ट्वान्धकं देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः।
प्रणेमुरीश्वरं देवं भैरवं भवमोचकम्॥ १८५॥

तदनन्तर सज्जनोंके आश्रयस्थान एवं प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर वे ईश्वर अन्धक दैत्यको पकड़कर अपने त्रिशूलके अग्रभागमें रखकर नाचने लगे। त्रिशूलपर पिरोये हुए अन्धकको देखकर पितामह ब्रह्मा तथा देवगण, संसारसागरसे मुक्त करनेवाले भैरवदेवको प्रणाम करने लगे॥ १८४-१८५॥

अस्तुवन् मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
अन्तरिक्षेऽप्सरःसङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोरमाः॥ १८६॥

संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्बिषः।
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम्॥ १८७॥

मुनि तथा सिद्धजन स्तुति करने लगे और गन्धर्व, किन्नर गान करने लगे तथा अन्तरिक्षमें रमणीय अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे। तदनन्तर त्रिशूलके अग्रभागमें स्थापित उस अन्धकके सभी पाप दग्ध (नष्ट) हो गये, उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया और वह परमेश्वरकी स्तुति करने लगा—॥ १८६-१८७॥

अन्धक उवाच

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं
समाहिता यं विदुरीशतत्त्वम्।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं
कालं कविं योगवियोगहेतुम्॥ १८८॥

दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं
हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम्।
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं
भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम्॥ १८९॥

अन्धकने (स्तुति करते हुए) कहा—समाधिमें स्थित रहनेवाले लोग जिस पुरातन, पुण्यदायी, अनन्त-स्वरूप, कालरूप, कवि तथा संयोग एवं वियोगके कारणरूप ईश्वर-तत्त्वको जानते हैं, मैं उन अद्वितीय भगवान्को सिरसे प्रणाम करता हूँ। भयंकर दाढ़ोंवाले, आकाशमें नृत्य करते हुए, अग्निके समान मुखवाले, प्रज्वलित सूर्यके समान स्वरूपवाले, हजारों पैर, आँख तथा सिरोंसे युक्त आप अद्वितीय रुद्रको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १८८-१८९॥

जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे
विभागहीनामलतत्त्वरूप ।
त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यसे
वाय्वादिभेदैरखिलात्मरूप ॥ १९० ॥

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराण-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं
त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ॥ १९१ ॥

एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो
देहेषु देहादिविशेषहीनः।
त्वमात्मशब्दं परमात्मतत्त्वं
भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ॥ १९२ ॥
त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्र-
मानन्दरूपं प्रणवाभिधानम्।
त्वमीश्वरो वेदपदेषु सिद्धः
स्वयं प्रभोऽशेषविशेषहीनः ॥ १९३ ॥
त्वमिन्द्ररूपो वरुणाग्निरूपो
हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञः।
प्रजापतिर्भगवानेकरुद्रो
नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः ॥ १९४ ॥
नारायणस्त्वं जगतामथादिः
पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः
सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ १९५ ॥
नमः परस्तात् तमसः परस्मै
परात्मने पञ्चपदान्तराय।
त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय
सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥ १९६ ॥
त्रिमूर्तयेऽनन्तपदात्ममूर्ते
जगन्निवासाय जगन्मयाय।
नमो ललाटार्पितलोचनाय
नमो जनानां हृदि संस्थिताय ॥ १९७ ॥

फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यं
मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादयुग्म ।

हे आदिदेव! देवताओंके द्वारा आपके चरणोंकी पूजा की जाती है, आप विभागरहित, शुद्ध तत्त्वस्वरूप हैं, आपकी जय हो। अद्वितीय अग्निरूप आप वायु आदि भेदोंसे बहुत प्रकारसे पूजित होते हैं और अखिल आत्मरूप हैं। सूर्यके समान वर्णवाले पुराणपुरुष! एकमात्र आपको ही तम (मायारूप अन्धकार)-से परे कहा जाता है। आप इस (संसार)-के साक्षी हैं, निरन्तर इसका पालन करते हैं और आप ही संहार करनेवाले हैं। आप योगियोंके समूहोंद्वारा सेवित होते रहते हैं। अद्वितीय, अन्तरात्मारूप आप देह आदि विशेष पदार्थोंसे रहित होते हुए (विभिन्न) देहोंमें अनेक प्रकारसे स्थित रहते हैं। आप आत्मशब्द ('आत्मा' शब्दसे बोध्य) और परमात्मतत्त्व हैं। कुछ लोग आपको ही शिव कहते हैं॥ १९०—१९२ ॥

हे प्रभो! स्वयं आप आनन्दस्वरूप, परम पवित्र, ओंकार शब्दसे वाच्य, अविनाशी, पर ब्रह्म हैं। आप स्वयं वेदवाक्योंमें 'ईश्वर'-शब्दसे सिद्ध हैं और समस्त विशेष पदार्थोंसे शून्य हैं। आप इन्द्र, वरुण, अग्नि, हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त एवं यज्ञ हैं। वेदको जाननेवालोंके द्वारा आपके नीलकण्ठ, एकरुद्र, प्रजापति और भगवत्स्वरूपकी स्तुति की जाती है। आप संसारके आदि और नारायण हैं, आप ही पितामह और प्रपितामह हैं। वेदान्तशास्त्र तथा गुह्य उपनिषदोंमें आप ही सदाशिव और परमेश्वर इस नामसे वर्णित हैं॥ १९३—१९५ ॥

तमोगुणसे परे, परम परमात्मा, पञ्चपदान्तरस्वरूप, ब्राह्मी, वैष्णवी एवं शाक्त—तीनों शक्तियोंसे अतीत, निरञ्जन और सहस्रशक्तिरूप आसनपर विराजमान रहनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है॥ १९६ ॥

ब्रह्मा-विष्णु एवं शिव—इन त्रिमूर्तिरूप, अनन्त पदात्मक, आत्ममूर्ति, जगन्निवास और जगन्मयको नमस्कार है। ललाटमें नेत्र धारण करनेवाले तथा लोगोंके हृदयमें स्थित आपको नमस्कार है। मुनीन्द्रों तथा सिद्धोंद्वारा जिनके चरणकमलोंकी पूजा की जाती है, ऐसे नागराजोंकी माला धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ १९७ $\frac{1}{2}$ ॥

ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय
नमः परान्ताय भवोद्भवाय॥ १९८॥
सहस्रचन्द्रार्कविलोचनाय
नमोऽस्तु ते सोम सुमध्यमाय।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहो
नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय॥ १९९॥
नमोऽतिगुह्याय गुहान्तराय
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चिताय ।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने
नमो महेशाय नमः शिवाय॥ २००॥
एवं स्तुवन्तं भगवान् शूलाग्रादवरोप्य तम्।
तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाथ परमेश्वरः॥ २०१॥

प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेन साम्प्रतम्।
सम्प्राप्य गाणपत्यं मे संनिधाने वसामरः॥ २०२॥

अरोगश्छिन्नसंदेहो देवैरपि सुपूजितः।
नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः॥ २०३॥
एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः।
गणेश्वरा महादेवमन्धकं देवसंनिधौ॥ २०४॥

सहस्रसूर्यसंकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम्।
नीलकण्ठं जटामौलिं शूलासक्तमहाकरम्॥ २०५॥

दृष्ट्वा तं तुष्टुवुर्दैत्यमाश्चर्यं परमं गताः।
उवाच भगवान् विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव॥ २०६॥
स्थाने तव महादेव प्रभावः पुरुषो महान्।
नेक्षतेऽज्ञानजान् दोषान् गृह्णाति च गुणानपि॥ २०७॥
इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवैः।
सकेशवः सहान्धको जगाम शंकरान्तिकम्॥ २०८॥
निरीक्ष्य देवमागतं स शंकरः सहान्धकम्।
समाधवं समातृकं जगाम निर्वृतिं हरः॥ २०९॥
प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजम्।
जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा॥ २१०॥

ऐश्वर्यमय धर्मके आसनपर विराजमान रहनेवाले, परमोत्कृष्ट एवं संसारको उत्पन्न करनेवाले आपको नमस्कार है। हजारों चन्द्रमा और सूर्योंके समान नेत्रवाले तथा सुन्दर मध्यभागवाले सोमस्वरूप आपको नमस्कार है। हिरण्यबाहो! देव! आपको नमस्कार है। अम्बिकाके पति मृड! आपको नमस्कार है। अत्यन्त गुह्य, गुहान्तर, वेदान्तरूपी विज्ञानके द्वारा निश्चित किये गये तीनों कालोंके प्रभावसे रहित, शुद्ध तेजोमय स्थानवाले महेशको नमस्कार है, शिवको नमस्कार है॥ १९८—२००॥

इस प्रकार स्तुति कर रहे उस (अन्धक)-को प्रसन्न होकर भगवान् परमेश्वरने त्रिशूलके अग्रभागसे उतारा और हाथोंसे स्पर्श करते हुए कहा—दैत्य! इस समय तुम्हारे द्वारा की गयी इस स्तुतिसे मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम गणपति-पद प्राप्तकर अमर होकर मेरे समीपमें निवास करो तुम रोगोंसे रहित, संदेहशून्य, सभी दुःखोंसे रहित और नन्दीश्वरके अनुचर होकर देवताओंके द्वारा भलीभाँति पूजित होओगे॥ २०१—२०३॥

देवताओंके भी देव (शंकर)-के इतना कहते ही हजारों सूर्यके समान प्रकाशमान, त्रिनेत्रधारी, चन्द्रमाके चिह्नसे सुशोभित, नीलकण्ठ, जटा-मुकुटधारी, विशाल भुजामें त्रिशूल धारण किये तथा महादेवरूपमें विद्यमान उस अन्धक दैत्यको देव शंकरके समीपमें स्थित देखकर देवता तथा गणेश्वर अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गये और उसकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर भगवान् विष्णुने हँसते हुए देवाधिदेव शिवसे कहा—॥ २०४—२०६॥

महादेव! आपने उचित ही प्रभाव दिखलाया। महान् पुरुष अज्ञानसे उत्पन्न दोषोंको नहीं देखते और गुणोंको ही ग्रहण करते हैं। इतना कहे जानेके बाद गणेश्वरों, श्रेष्ठ देवों, केशव तथा अन्धकके साथ भैरव शंकरके पास गये। अन्धक, विष्णु तथा मातृकाओंके साथ देव (भैरव)-को आया देखकर उन कल्याणकारी हरको परम शान्ति प्राप्त हुई। हिरण्याक्षके पुत्र (अन्धक)-का हाथ पकड़कर ईश्वर (शंकर) वहाँ गये, जहाँ शंकरप्रिया पार्वती विमानपर बैठी हुई थीं॥ २०७—२१०॥

विलोक्य सा समागतं भवं भवार्तिहारिणम्।
अवाप सान्धकं सुखं प्रसादमन्धकं प्रति॥ २११॥

अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगाम्।
पपात दण्डवत् क्षितौ ननाम पादपद्मयोः॥ २१२॥
नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमाम्।
यतः प्रधानपूरुषौ निहन्ति याखिलं जगत्॥ २१३॥

विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया।
हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि तामिमामजाम्॥ २१४॥

यदन्तराखिलं जगज्जगन्ति यान्ति संक्षयम्।
नमामि यत्र तामुमामशेषभेदवर्जिताम्॥ २१५॥

न जायते न हीयते न वर्धते च तामुमाम्।
नमामि या गुणातिगा गिरीशपुत्रिकामिमाम्॥ २१६॥

क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहतः।
सुरासुरैर्यदर्चितं नमामि ते पदाम्बुजम्॥ २१७॥

इत्थं भगवती गौरी भक्तिनम्रेण पार्वती।
संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वे जगृहेऽन्धकम्॥ २१८॥

ततः स मातृभिः सार्धं भैरवो रुद्रसम्भवः।
जगामानुज्ञया शम्भोः पातालं परमेश्वरः॥ २१९॥
यत्र सा तामसी विष्णोर्मूर्तिः संहारकारिका।
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वरः॥ २२०॥
ततोऽनन्ताकृतिः शम्भुः शेषेणापि सुपूजितः।
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजात्मानमात्मनि॥ २२१॥
युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातरः।
बुभुक्षिता महादेवं प्रणम्याहुस्त्रिशूलिनम्॥ २२२॥

मातर ऊचुः

बुभुक्षिता महादेव अनुज्ञा दीयतां त्वया।
त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति नः॥ २२३॥
एतावदुक्त्वा वचनं मातरो विष्णुसम्भवाः।
भक्षयाञ्चक्रिरे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ २२४॥
ततः स भैरवो देवो नृसिंहवपुषं हरिम्।
दध्यौ नारायणं देवं क्षणात् प्रादुरभूद्धरिः॥ २२५॥

संसारके दुःखोंका हरण करनेवाले भव (शंकर)-को अन्धकके साथ आया देखकर उन्हें सुख प्राप्त हुआ, तब उन्होंने अन्धकपर कृपा की। अन्धक शंकरके पार्श्वभागमें स्थित महेश्वरीको देखा। वह पृथ्वीपर दण्डके समान गिर गया और देवीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया॥ २११-२१२॥

जिनसे प्रधान (प्रकृति) और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेवाली हैं, उन अनादि शंकरप्रिया अद्रितनया (पर्वतपुत्री)-को मैं प्रणाम करता हूँ। जो अति निर्मल, हिरण्मय, मंगलकारी आसनपर भगवान् शिवके साथ सुशोभित होती हैं, उन अव्यय और अजन्माको मैं नमस्कार करता हूँ। सभी भेदोंसे रहित उन उमाको मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके भीतर सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है और विनाशको प्राप्त होता रहता है। जो न उत्पन्न होती हैं, न विनाशको प्राप्त होती हैं और न बढ़ती ही हैं, उन गुणातीत हिमालयकी पुत्री उमाको मैं नमस्कार करता हूँ। देवि! शैलपुत्रि! मैंने मोहित होकर जो किया उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। देवताओं तथा असुरोंसे पूजित आपके चरणकमलोंको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २१३—२१७॥

भक्तिसे विनम्र हुए दैत्यपतिके इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवती गौरी पार्वतीने उस अन्धकको पुत्ररूपमें स्वीकार किया॥ २१८॥

तदनन्तर रुद्रसे उत्पन्न परमेश्वर भैरव शम्भुकी आज्ञासे मातृकाओंके साथ पाताल गये। जहाँ विष्णुकी संहारकारिणी तामसी मूर्तिके रूपमें नृसिंहाकृति ईश्वर अव्यक्त हरि स्थित हैं। तदनन्तर शेषसे भी पूजित कालाग्नि रुद्र अनन्ताकृति भगवान् शम्भुने स्वयंको परमात्मतत्त्वसे संयुक्त कर दिया। उन देवके (परमात्मासे) संयोग करते समय सभी बुभुक्षित मातृकाओंने त्रिशूलधारी महादेवको प्रणामकर कहा—॥ २१९—२२२॥

मातृकाओंने कहा—महादेव! हम भूखी हैं। आप आज्ञा दें, हम तीनों लोकोंका भक्षण करेंगी, हमारी और किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं होगी। इतनी बात कहकर विष्णुसे उत्पन्न वे मातृकाएँ चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीका भक्षण करने लगीं॥ २२३-२२४॥

तब उन भैरवदेवने नृसिंह-शरीरधारी नारायण-देव हरिका ध्यान किया। हरि क्षणभरमें ही प्रकट हो गये॥ २२५॥

विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः।
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवन्निति॥ २२६॥

(भैरवदेवने) उन्हें बतलाते हुए कहा—भगवन्! आपकी ये मातृकाएँ त्रिलोकीका भक्षण कर रही हैं, इन्हें आप शीघ्र ही रोकें॥ २२६॥

संस्मृता विष्णुना देव्यो नृसिंहवपुषा पुनः।
उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं च तम्॥ २२७॥

सम्प्राप्य संनिधिं विष्णोः सर्वाः संहारकारिकाः।
प्रददुः शम्भवे शक्तिं भैरवायातितेजसे॥ २२८॥

नरसिंह-शरीरधारी विष्णुके द्वारा पुनः उन देवियोंका स्मरण किये जानेपर वे उन नरसिंहरूपवाले महादेवके पास आ पहुँचीं। संहार करनेवाली उन सभी शक्तियोंने विष्णुके समीप आकर भैरवरूपधारी अति तेजस्वी शम्भुको शक्ति प्रदान कर दी॥ २२७-२२८॥

अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमथ भैरवम्।
क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिं चापि मातरः॥ २२९॥

व्याजहार हृषीकेशो ये भक्ताः शूलपाणिनः।
ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः॥ २३०॥

ममैव मूर्तिरतुला सर्वसंहारकारिका।
महेश्वरांशसम्भूता भुक्तिमुक्तिप्रदा त्वियम्॥ २३१॥

उन मातृकाओंने जगत्को उत्पन्न करनेवाले नृसिंह, भैरव तथा शेषनागको क्षणभरमें ही एक होते हुए देखा। हृषीकेशने कहा—शूलपाणि भगवान् शंकरके जो भक्त हैं और जो मेरा स्मरण करते हैं, प्रयत्न-पूर्वक उनका यहाँ पालन करना चाहिये। महेश्वरके अंशसे उत्पन्न, सबका संहार करनेवाली यह मेरी ही अतुलनीय मूर्ति है। यह भुक्ति और मुक्तिको प्रदान करनेवाली है॥ २२९—२३१॥

अनन्तो भगवान् कालो द्विधावस्था ममैव तु।
तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः॥ २३२॥

सोऽयं देवो दुराधर्षः कालो लोकप्रकालनः।
भक्षयिष्यति कल्पान्ते रुद्रात्मा निखिलं जगत्॥ २३३॥

या सा विमोहिका मूर्तिर्मम नारायणाह्वया।
सत्त्वोद्रिक्ता जगत् कृत्स्नं संस्थापयति नित्यदा॥ २३४॥

स हि विष्णुः परं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते॥ २३५॥

इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विश्वमातरः।
प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं हरिम्॥ २३६॥

भगवान् अनन्त और काल मेरी ही दो प्रकारकी तामसी अवस्थाएँ हैं। देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्मा मेरी राजसी मूर्ति हैं। वे ही ये संसारका संहार करनेवाले दुर्धर्ष कालदेव हैं। कल्पका अन्त होनेपर ये रुद्रात्मा सम्पूर्ण विश्वका भक्षण करेंगे। सबको मोहित करनेवाली सत्त्वगुणसम्पन्ना मेरी 'नारायण' इस नामवाली जो मूर्ति है, वह नित्य समस्त संसारकी स्थापना करती है। (मेरी) उस (मूर्ति)-को विष्णु, परम ब्रह्म, परमात्मा, परमगति, मूलप्रकृति, अव्यक्त और सदानन्द—इस प्रकारसे कहा जाता है। विष्णुके द्वारा इस प्रकार समझानेपर देवीरूप उन सभी मातृकाओंने उन्हीं महादेव हरिकी शरण ग्रहण की॥ २३२—२३६॥

एतद् वः कथितं सर्वं मयान्धकनिबर्हणम्।
माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः॥ २३७॥

मैंने आप लोगोंसे अन्धकके विनाश और अमित ओजस्वी देवाधिदेव भैरवके माहात्म्यका सम्पूर्ण वर्णन किया॥ २३७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

सनत्कुमारद्वारा आत्मज्ञान प्राप्तकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचनका योगमें संलग्न होना, विरोचन-पुत्र बलिद्वारा देवताओंको पराजित करना, देवमाता अदितिका दु:खी होना तथा विष्णुसे प्रार्थनाकर पुत्ररूपमें उनके उत्पन्न होनेका वर प्राप्त करना, अदितिके गर्भमें विष्णुका प्रवेश, विष्णुका वामनरूपमें आविर्भाव, बलिके यज्ञमें वामनका प्रवेश तथा तीन पग भूमिकी याचना, तीसरे पगसे नापते समय ब्रह्माण्ड-भेदन, गङ्गाकी उत्पत्ति तथा भक्तिका वर प्राप्तकर बलि आदिका पातालमें प्रवेश

श्रीकूर्म उवाच

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः।
विरोचनो नाम सुतो बभूव नृपतिः पुरा॥ १ ॥
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बहून् वर्षान् महासुरः।
पालयामास धर्मेण त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ २ ॥
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचिद् विष्णुचोदितः।
सनत्कुमारो भगवान् पुरं प्राप महामुनिः॥ ३ ॥
दृष्ट्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः।
ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ४ ॥

श्रीकूर्मने कहा—प्राचीन कालमें अन्धकके निगृहीत हो जानेपर महात्मा प्रह्लादका विरोचन नामका पुत्र राजा बना। उस महान् असुरने देवेन्द्रसहित देवताओंको जीतकर धर्मपूर्वक चराचर त्रिलोकीका बहुत वर्षोंतक पालन किया। उसके इस प्रकार रहते हुए एक बार कभी विष्णुसे प्रेरित होकर महामुनि भगवान् सनत्कुमार उसके नगरमें आये। सिंहासनपर बैठे हुए उस महान् असुरने ब्रह्माजीके पुत्र (सनत्कुमार)-को देखकर (आसनसे) उठकर सिरसे उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर यह वाक्य कहा—॥ १—४॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरातनः।
योगीश्वरोऽद्य भगवान् यतोऽसौ ब्रह्मवित् स्वयम्॥ ५ ॥
किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वयं देवः पितामहः।
ब्रूहि मे ब्रह्मणः पुत्र किं कार्यं करवाण्यहम्॥ ६ ॥

आज मैं धन्य हुआ, कृतार्थ हुआ जो ये ब्रह्मज्ञानी, पुरातन योगीश्वर भगवान् स्वयं यहाँ आ गये हैं। हे ब्रह्मन्! देवस्वरूप पितामह ब्रह्माजीके पुत्र! आप किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं, मुझे बतलायें। मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ॥ ५-६॥

सोऽब्रवीद् भगवान् देवो धर्मयुक्तं महासुरम्।
द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि॥ ७ ॥
सुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्यानां दैत्यसत्तम।
त्रिलोके धार्मिको नूनं त्वादृशोऽन्यो न विद्यते॥ ८ ॥
इत्युक्तोऽसुरराजस्तं पुनः प्राह महामुनिम्।
धर्माणां परमं धर्मं ब्रूहि मे ब्रह्मवित्तम॥ ९ ॥
सोऽब्रवीद् भगवान् योगी दैत्येन्द्राय महात्मने।
सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम्॥ १०॥

वे भगवान् देव धर्मात्मा महासुर (विरोचन)-से बोले—मैं आपको ही देखने आया हूँ, आप भाग्यशाली हैं। दैत्यश्रेष्ठ! दैत्योंके लिये यह (धार्मिक) नीति अत्यन्त दुर्लभ है। निश्चय ही तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई दूसरा धार्मिक नहीं है। ऐसा कहे जानेपर असुरराज (विरोचन)-ने उन महामुनिसे पुनः कहा—ब्रह्मज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ! आप मुझे धर्मोंमें जो श्रेष्ठ धर्म हो, उसे बतलायें। उन भगवान् योगीने महात्मा दैत्येन्द्रको आत्मज्ञानरूपी और सब प्रकारसे अत्यन्त रहस्यमय श्रेष्ठ धर्म बतलाया॥ ७—१०॥

स लब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत्॥ ११ ॥

उन्होंने (महात्मा विरोचनने) परम ज्ञान प्राप्तकर उन्हें (सनत्कुमारको) गुरुदक्षिणा प्रदान की तथा राज्य अपने पुत्र (बलि)-को सौंपकर वे योगाभ्यासमें निरत हो गये॥ ११॥

स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः।
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरंदरम्॥ १२॥

कृत्वा तेन महद् युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः।
जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम्॥ १३॥

उनका वह बलि नामक महान् असुर पुत्र बुद्धिमान्, ब्राह्मणभक्त तथा अत्यन्त धार्मिक था। महान् अभ्युदयकी प्राप्तिके लिये उसने इन्द्रको भी जीत लिया था। सभी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रने उसके साथ महान् युद्ध करते हुए पराजित होकर अच्युत विष्णुदेवकी शरण ग्रहण की॥ १२-१३॥

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता।
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम्॥ १४॥

तताप सुमहद् घोरं तपोराशिस्तपः परम्।
प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्॥ १५॥

कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलं परमं पदम्।
वासुदेवमनाद्यन्तमानन्दं व्योम केवलम्॥ १६॥

प्रसन्नो भगवान् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः।
आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः॥ १७॥

दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता।
मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम्॥ १८॥

इसी बीच अत्यन्त दुःखी होकर देवताओंकी माता तपोराशि, परम तपोरूप देवी अदितिने दैत्येन्द्रोंके वधके लिये 'स्वयं भगवान् ही मेरे पुत्र हों' इस संकल्पको लेकर अत्यन्त महान् कठोर तप किया। अपने हृदयरूपी कमलकलिकामें निष्कल, परम पद, अनादि, अनन्त, आनन्दस्वरूप, व्योममय, अद्वितीय वासुदेवका ध्यान करती हुई वे शरणागतवत्सल अव्यक्त, हरि विष्णुकी शरणमें गयीं। प्रसन्न होकर शङ्ख-चक्र तथा गदा धारण करनेवाले योगात्मा हरि भगवान् विष्णु देवमाता (अदिति)-के समक्ष प्रकट हो गये। विष्णुको सामने देखकर भक्तिपरायणा अदितिने अपनेको कृतार्थ माना और वे केशवको स्तुतिसे प्रसन्न करने लगीं॥ १४—१८॥

अदितिरुवाच

जयाशेषदुःखौघनाशैकहेतो
जयानन्तमाहात्म्ययोगाभियुक्त।
जयानादिमध्यान्तविज्ञानमूर्ते
जयाशेषकल्पामलानन्दरूप॥ १९॥

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं
नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम्।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे
नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते॥ २०॥

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं
नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम्।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं
नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते॥ २१॥

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्ते
नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य।
नमो देवदेवादिदेवादिदेव
प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते॥ २२॥

अदितिने कहा—समस्त दुःखसमूहोंके नाश करनेके लिये एकमात्र कारणरूप आपकी जय हो। अनन्त माहात्म्य-सम्पन्न तथा योगाभियुक्त! (योगमें प्रतिक्षण निरत) आपकी जय हो। आदि, मध्य और अन्तसे रहित विज्ञानमूर्ते! आपकी जय हो। अशेषकल्प (जिनमें किसी भी प्रकारके विषयका विराम नहीं है) तथा विशुद्ध आनन्दस्वरूप! आपकी जय हो। कालरूप विष्णु! आपको नमस्कार है। नरसिंहरूपधारी शेष! आपको नमस्कार है। संहार करनेवाले कालरुद्रको नमस्कार है। वासुदेव! आपको बार-बार नमस्कार है। विश्वरूपी मायाका विधान करनेवाले! आपको नमस्कार है। योगद्वारा जानने योग्य सत्यरूप! आपको नमस्कार है। धर्म एवं ज्ञाननिष्ठ! आपको नमस्कार है। हे वराहरूप! आपको बार-बार नमस्कार है। हजारों सूर्य और चन्द्रमाकी आभाके समान प्रकाशयुक्त मूर्तिवाले! आपको नमस्कार है। वेदोंमें प्रतिपादित विशिष्ट ज्ञान और धर्मद्वारा प्राप्त होनेवाले! आपको नमस्कार है। देवदेवादिदेव आदिदेव! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप विश्वके योनिरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है॥ १९—२२॥

नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं
नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम्।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं
शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥ २३ ॥

सत्यनिष्ठ शम्भो! आपको नमस्कार है। कारणरूप! विश्वरूप! आपको नमस्कार है। योगपीठके मध्यमें विराजमान रहनेवाले! आपको नमस्कार है। हे एकरूप शिव! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २३॥

एवं स भगवान् कृष्णो देवमात्रा जगन्मयः।
तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव॥ २४॥

देवमाता (अदिति)-के द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर जगन्मय उन भगवान् कृष्ण-(विष्णु)-ने किंचित् हँसते हुए वर माँगनेके लिये कहा॥ २४॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम्।
त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम्॥ २५॥
तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः।
दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत॥ २६॥

सिरसे भूमिमें प्रणाम करते हुए तथा श्रेष्ठ वर माँगते हुए उसने (अदितिने) कहा—मैं देवताओंके कल्याणके लिये आपको ही पुत्ररूपमें प्राप्त करनेका वर माँगती हूँ। शरणागतवत्सल अप्रमेय भगवान् 'ऐसा ही हो' इतना कहकर तथा वरोंको प्रदानकर वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ २५-२६॥

ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम्।
दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम्॥ २७॥
समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम्।
उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचनेः पुरे॥ २८॥
निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान् दैत्येन्द्रो भयविह्वलः।
प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम्॥ २९॥

तदनन्तर बहुत समय बीतनेके पश्चात् देवताओंकी माता (अदिति)-ने साक्षात् नारायण भगवान् जनार्दनको गर्भमें धारण किया। देवमाताके उदरमें हृषीकेशके प्रविष्ट होते ही विरोचनपुत्र बलिके नगरमें भयंकर उत्पात होने लगे। सभी उपद्रवोंको देखकर भयसे विह्वल हुआ दैत्यराज (बलि) वृद्ध पितामह असुर प्रह्लादको प्रणामकर कहने लगा—॥ २७—२९॥

बलिरुवाच

पितामह महाप्राज्ञ जायन्तेऽस्मत्पुरेऽधुना।
किमुत्पाता भवेत् कार्यमस्माकं किंनिमित्तकाः॥ ३०॥
निशम्य तस्य वचनं चिरं ध्यात्वा महासुरः।
नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्॥ ३१॥

बलिने कहा—महाप्राज्ञ पितामह! हमारे नगरमें इस समय ये उत्पात क्यों हो रहे हैं, इनका कारण क्या है? हमें क्या करना चाहिये? उसकी बात सुनकर महासुर (प्रह्लाद)-ने देरतक ध्यान किया और फिर हृषीकेशको नमस्कार करके यह वचन कहा—॥ ३०-३१॥

प्रह्लाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत्।
दधारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम्॥ ३२॥
यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि।
स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत्॥ ३३॥
न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः।
स विष्णुरदितेर्देहं स्वेच्छयाऽद्य समाविशत्॥ ३४॥

प्रह्लाद बोले—यज्ञोंद्वारा जिन विष्णुका यजन किया जाता है और यह सम्पूर्ण विश्व जिनका (स्वरूप) है, देवताओंकी माता (अदिति)-ने उन्हें ही असुरोंके विनाशके लिये (गर्भमें) धारण किया है। समस्त विश्व जिनसे अभिन्न है और जो समस्त विश्वसे भिन्न भी है, उन वासुदेवने देवताओंकी माताके शरीरमें प्रवेश किया है। देवता भी जिनके स्वरूपको यथार्थतः नहीं जानते वे विष्णु ही इस समय अपनी इच्छासे अदितिके देहमें प्रविष्ट हुए हैं॥ ३२—३४॥

यस्माद् भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम्।
सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरिः॥ ३५॥

जिनसे सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं और जहाँ नाशको प्राप्त होते हैं वे महायोगी पुराणपुरुष हरि अवतीर्ण हुए हैं॥ ३५॥

न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना।
सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेन जायते॥ ३६॥

यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी।
माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः॥ ३७॥

यस्य सा तामसी मूर्तिः शंकरो राजसी तनुः।
ब्रह्मा संजायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वभृत्॥ ३८॥

जिनमें नाम, जाति आदिकी परिकल्पना नहीं होती, सत्तामात्रसे व्याप्त रहनेवाले आत्मरूप वे ही विष्णु अपने अंशरूपसे प्रकट हो रहे हैं। जगत्की मातृरूपा और उसके (जगत्के) धर्मको धारण करनेवाली, भगवती लक्ष्मी जिनकी मायारूपी शक्ति हैं, वे जनार्दन ही अवतीर्ण हुए हैं। जिनकी तामसी मूर्ति शंकर हैं और राजसी मूर्ति ब्रह्मा हैं वे सत्त्वगुणको धारण करनेवाले विष्णु ही अपने एक अंशसे प्रकट हो रहे हैं॥ ३६—३८॥

इत्थं विचिन्त्य गोविन्दं भक्तिनम्रेण चेतसा।
तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम्॥ ३९॥

ततः प्रह्लादवचनाद् बलिर्वैरोचनिर्हरिम्।
जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मतः॥ ४०॥

गोविन्दको इस प्रकार समझकर भक्तिसे विनम्र-चित्त हो उन्हींकी शरणमें जाओ, इससे तुम शान्ति प्राप्त करोगे। तब प्रह्लादके वचनसे विरोचनपुत्र बलि हरिकी शरण ग्रहण करता हुआ धर्मपूर्वक विश्वका पालन करने लगा॥ ३९-४०॥

काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्धनम्।
असूत कश्यपाच्चैनं देवमातादितिः स्वयम्॥ ४१॥

चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम्॥ ४२॥

उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः।
उपेन्द्रमिन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृतः॥ ४३॥

कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः।
समाचारं भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन्॥ ४४॥

समय आनेपर कश्यपसे स्वयं देवमाता अदितिने देवताओंके हर्षको बढ़ानेवाले उन महाविष्णुको जन्म दिया। वे (भगवान् विष्णु) चार भुजावाले, विशाल नेत्रवाले, श्रीवत्ससे सुशोभित वक्षःस्थलवाले, नीले मेघके समान, शोभासे व्याप्त एवं प्रकाशमान थे। सभी देवता, सिद्ध, साध्य, चारण तथा प्रधान इन्द्र, उपेन्द्र और ऋषिगणोंसे आवृत ब्रह्मा उनके समीपमें गये। उपनयन (यज्ञोपवीत-संस्कार) हो जानेके बाद भगवान् हरिने तीनों लोकोंको प्रदर्शित करते हुए भरद्वाजसे वेदों और सदाचारका अध्ययन किया॥ ४१—४४॥

एवं हि लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ ४५॥

ततः कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनिः स्वयम्।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम्॥ ४६॥

ब्राह्मणान् पूजयामास दत्त्वा बहुतरं धनम्।
ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः॥ ४७॥

विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः।
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत्॥ ४८॥

इस प्रकार वे प्रभु लौकिक (लोक-कल्याणकारी) मार्ग दिखाते हैं। वे जैसा प्रमाण उपस्थित करते हैं, संसार उसीका अनुवर्तन करता है। तदनन्तर समयानुसार विरोचनके पुत्र बुद्धिमान् बलिने यज्ञोंके द्वारा सर्वव्यापी यज्ञेश्वर विष्णुकी स्वयं अर्चना की। उसने (दक्षिणारूपमें) बहुत-सा धन देकर ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस महात्माके यज्ञस्थलमें ब्रह्मर्षि आये। (यज्ञ हो रहा है ऐसा) जानकर भरद्वाजसे प्रेरणा प्राप्तकर भगवान् विष्णु वामनरूप धारणकर यज्ञदेशमें आये॥ ४५—४८॥

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजितः।
ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन् भस्ममण्डितः॥ ४९॥

सम्प्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः।
स्वपादैर्विमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः॥ ५०॥

शरीरपर कृष्णमृगका चर्म तथा उपवीत (यज्ञोपवीत-जनेऊ) धारण किये, पलाशके दण्डसे सुशोभित, जटा धारण किये तथा भस्मसे मण्डित वे ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए असुरराज बलिके समीप आये। उन भिक्षुक (वेशधारी) हरिने बलिसे अपने तीन पगोंद्वारा नापी गयी भूमिकी याचना की॥ ४९-५०॥

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः।
आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम्॥ ५१॥
दास्ये तवेदं भवते पदत्रयं
प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे
निपातयामास जलं सुशीतलम्॥ ५२॥
विचक्रमे पृथिवीमेष एता-
मथान्तरिक्षं दिवमादिदेवः।
व्यपेतरागं दितिजेश्वरं तं
प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम्॥ ५३॥
आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः
प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम।
प्रणेमुरादित्यसहस्रकल्पं
ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः॥ ५४॥
अथोपतस्थे भगवाननादिः
पितामहस्तोषयामास विष्णुम्।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं
जगाम दिव्यावरणानि भूयः॥ ५५॥
अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं
महाजलं तत् पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम्।
प्रवर्तते चापि सरिद्वरा तदा
गङ्गेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसंस्था॥ ५६॥
गत्वा महान्तं प्रकृतिं प्रधानं
ब्रह्माणमेकं पुरुषं स्वबीजम्।
अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं
दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति॥ ५७॥
आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं
महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम्।
ननाम नारायणमेकमव्ययं
स्वचेतसा यं प्रणमन्ति देवाः॥ ५८॥
तमब्रवीद् भगवानादिकर्ता
भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं
लोकत्रयं भवता भावदत्तम्॥ ५९॥
प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो
निपातयामास जलं कराग्रे।

बलिने भावपूर्वक विष्णुके दोनों चरणोंको धोकर स्वर्णनिर्मित भृङ्गार (टोटीदार पात्र) लेकर उन्हें आचमन कराया और 'मैं आपको आपके ही तीन पगवाली (भूमि) देता हूँ, इससे अव्यय आकृतिवाले देव हरि प्रसन्न हों' ऐसा संकल्पकर उन देवके कराग्रपल्लवपर सुशीतल जल गिराया। शरणमें आये हुए उस दैत्यराजको आसक्तिरहित बनानेकी इच्छासे उन आदिदेवने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें पाद-विक्षेप किया। तीनों लोकोंको आक्रान्तकर ईश्वरका चरण प्रजापतिके लोकसे ब्रह्मलोकमें पहुँचा। उस लोकमें निवास करनेवाले जो सिद्धजन थे, उन्होंने हजारों आदित्यके समान (प्रकाशमान) उस चरणको प्रणाम किया॥ ५१—५४॥

तदनन्तर अनादि भगवान् पितामहने वहाँ उपस्थित होकर विष्णुको प्रसन्न किया। उस ब्रह्माण्डके ऊपरी कपालको भेदकर पुनः वह चरण दिव्य आवरणोंमें चला गया। उस अण्डका भेदन होनेसे पुण्य करनेवालोंद्वारा सेवित वह शीतल महाजल नीचे गिरा। तभीसे आकाशमें स्थित वह नदियोंमें श्रेष्ठ नदी प्रवर्तित हुई जिसे ब्रह्माने 'गङ्गा' नामसे अभिहित किया॥ ५५-५६॥

ईश्वरका वह चरण महान्, प्रधान, प्रकृति, स्वबीज-स्वरूप अद्वितीय पुरुष ब्रह्मपर्यन्त पहुँचकर स्थित हो गया। उस अव्यय पदका दर्शनकर विभिन्न स्थानोंके देवता स्तुति करने लगे। उन संसाररूपी शरीरवाले पुरुष विष्णुको देखकर महान् बलिने उन अद्वितीय अव्यय नारायणको अपने भक्तिपूरित चित्तसे प्रणाम किया, जिन्हें सभी देवता प्रणाम करते रहते हैं॥ ५७-५८॥

आदिकर्ता भगवान् वासुदेवने पुनः वामनरूप धारणकर उस (बलि)-से कहा—दैत्याधिपते! इस समय भक्तिपूर्वक आपके द्वारा दिये गये ये तीनों लोक अब मेरे ही हैं॥ ५९॥

दैत्यने पुनः सिरेसे प्रणामकर हाथोंके अग्रभागमें जल गिराया (और कहा—) अनन्तधाम! त्रिविक्रम!

दास्ये तवात्मानमनन्तधाम्ने
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय ॥ ६० ॥
प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्तं
प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः।
जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा
पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥ ६१ ॥
समास्यतां भवता तत्र नित्यं
भुक्त्वा भोगान् देवतानामलभ्यान्।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्
प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम् ॥ ६२ ॥

अमित पराक्रमी! मैं अपने-आपको तुम्हें प्रदान करता हूँ। प्रह्लादके पुत्रके भी पुत्र अर्थात् बलिके द्वारा भलीभाँति दिया हुआ तीनों लोक ग्रहणकर संसारके अन्तरात्मा शङ्खपाणि (भगवान् विष्णु)-ने दैत्यसे पुनः कहा—(अब आप) पातालमूलमें प्रवेश करें। आप वहाँ नित्य रहते हुए देवताओंको भी प्राप्त न होनेवाले भोगोंका उपभोगकर भक्तियोगद्वारा मेरा निरन्तर ध्यान करते रहें। कल्पान्त होनेपर पुनः मुझमें ही (आप) प्रवेश करेंगे ॥ ६०—६२ ॥

उक्त्वैवं दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः।
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः ॥ ६३ ॥

संस्तुवन्ति महायोगं सिद्धा देवर्षिकिन्नराः।
ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान् रुद्रादित्यमरुद्गणाः ॥ ६४ ॥

उस दैत्यश्रेष्ठसे इस प्रकार कहकर सत्यपराक्रम तथा विशाल डगोंवाले विष्णुने तीनों लोक इन्द्रको दे दिये। सिद्ध, देवता, ऋषि, किन्नर, ब्रह्मा, इन्द्र, भगवान् रुद्र, आदित्य तथा मरुद्गण (उन) महायोगीकी स्तुति करने लगे ॥ ६३-६४ ॥

कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनरूपधृक्।
पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६५ ॥

सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान् पातालं प्राप चोदितः।
प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुना विष्णुतत्परः ॥ ६६ ॥

ऐसा अद्भुत कार्य करके वामन-रूप धारण करनेवाले विष्णु सभीके देखते-ही-देखते वहाँ अन्तर्धान हो गये। वह विष्णुपरायण श्रीसम्पन्न दैत्यश्रेष्ठ (बलि) भी विष्णुसे प्रेरित होकर प्रह्लाद एवं अन्य श्रेष्ठ असुरोंके साथ पातालमें चला गया ॥ ६५-६६ ॥

अपृच्छद् विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम्।
पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः ॥ ६७ ॥

अथ रथचरणासिशङ्खपाणिं
सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम्।
शरणमुपययौ स भावयोगात्
प्रणतगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥ ६८ ॥

उसने प्रह्लादसे विष्णुका माहात्म्य, श्रेष्ठतम भक्तियोग तथा पूजनका विधान पूछा। तब उनके द्वारा बताये जानेपर उसने वैसा ही किया। तदनन्तर भक्तिपूर्वक कर्मयोगका आचरण कर वह शरणागतोंके आश्रयस्थल, हाथोंमें चक्र, तलवार तथा शंख धारण करनेवाले, कमलके समान नेत्रवाले, अप्रमेय ईश्वरकी शरणमें गया ॥ ६७-६८ ॥

एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः।
स देवकार्याणि सदा करोति पुरुषोत्तमः ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणो! इस प्रकार यह (भगवान्) वामनके पराक्रमको मैंने बतलाया। ये पुरुषोत्तम सदा देवताओंके कार्योंको करते रहते हैं ॥ ६९ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

बलिपुत्र बाणासुरका वृत्तान्त, दक्ष प्रजापतिकी दनु, सुरसा आदि कन्याओंकी संतानोंका वर्णन

सूत उवाच

बले: पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम्।
तेषां प्रधानो द्युतिमान् बाणो नाम महाबल:॥ १ ॥

सोऽतीव शंकरे भक्तो राजा राज्यमपालयत्।
त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम्॥ २ ॥

तत: शक्रादयो देवा गत्वोचु: कृत्तिवाससम्।
त्वदीयो बाधते ह्यस्मान् बाणो नाम महासुर:॥ ३ ॥

सूतजी बोले—बलिके महान् बल और पराक्रमवाले सौ पुत्र थे, उनमें प्रधान पुत्रका नाम 'बाण' था, जो द्युतिमान् और अत्यन्त बलवान् था। भगवान् शंकरमें अत्यन्त भक्तिवाले उस राजा (बाण)-ने राज्यका पालन करते हुए त्रिलोकीको अपने वशमें करके इन्द्रको पीड़ित किया। तब इन्द्रादि देवता कृत्तिवासा[1] (शंकर)-के पास जाकर कहने लगे—(भगवन्!) आपका भक्त 'बाण' नामक महान् असुर हमें पीड़ित कर रहा है॥ १—३॥

व्याहृतो दैवतै: सर्वैर्देवदेवो महेश्वर:।
ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया॥ ४ ॥
दह्यमाने पुरे तस्मिन् बाणो रुद्रं त्रिशूलिनम्।
ययौ शरणमीशानं गोपतिं नीललोहितम्॥ ५ ॥

सभी देवताओंके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवाधिदेव महेश्वरने एक बाणसे लीलापूर्वक 'बाण' के नगरको दग्ध कर दिया। उस नगरके जलनेपर बाण त्रिशूलधारी, गोपति (वृषवाहन) नीललोहित ईशान रुद्रकी शरणमें गया॥ ४-५॥

मूर्धन्याधाय तल्लिङ्गं शाम्भवं भीतिवर्जित:।
निर्गत्य तु पुरात् तस्मात् तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ६ ॥

संस्तुतो भगवानीश: शंकरो नीललोहित:।
गाणपत्येन बाणं तं योजयामास भावत:॥ ७ ॥

शम्भुके लिंगको सिरपर धारणकर वह निर्भयतापूर्वक अपने नगरसे बाहर निकल गया और परमेश्वर (शंकर)-की स्तुति करने लगा। स्तुति करनेपर नीललोहित, शंकर भगवान् ईशने स्नेहवश उस बाणासुरको गणपतिका पद प्रदान किया॥ ६-७॥

अथाभवन् दनो: पुत्रास्ताराद्या ह्यतिभीषणा:।
तारस्तथा शम्बरश्च कपिल: शंकरस्तथा।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिता:॥ ८ ॥
सुरसाया: सहस्रं तु सर्पाणामभवद् द्विजा:।
अनेकशिरसां तद्वत् खेचराणां महात्मनाम्॥ ९ ॥
अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम्।
अनन्ताद्या महानागा: काद्रवेया: प्रकीर्तिता:॥ १० ॥

दनुके[2] तार आदि अत्यन्त भीषण पुत्र हुए। उनमें तार, शम्बर, कपिल, शंकर, स्वर्भानु तथा वृषपर्वा प्रधान कहे गये हैं। द्विजो! दक्षप्रजापतिकी कन्या सुरसाके अनेक फणोंवाले हजार सर्प पुत्ररूपमें हुए। इसी प्रकार अरिष्टाने हजारों आकाशचारी महात्मा गन्धर्वोंको उत्पन्न किया। अनन्त आदि महानाग कद्रूके पुत्र कहे गये हैं॥ ८—१०॥

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवा:।
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवां गृध्रिकां शुचिम्॥ ११ ॥
गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा।
इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वश:॥ १२ ॥

खसा वै यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।
रक्षोगणं क्रोधवशा जनयामास सत्तमा:॥ १३ ॥

द्विजश्रेष्ठो! ताम्राने छ: कन्याओंको जन्म दिया, जो शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवा, गृध्रिका तथा शुचि नामवाली हैं। सुरभिने गौओं तथा महिषियों (भैंसों)-को उत्पन्न किया। इराने सभी प्रकारके वृक्ष, लता, वल्ली तथा तृण-जातिवालोंको जन्म दिया। द्विजसत्तमो! खसाने यक्षों तथा राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको और क्रोधवशाने राक्षसोंको उत्पन्न किया॥ ११—१३॥

१-कृत्ति (व्याघ्रचर्म)-को वसन (वस्त्र)-रूपमें धारण करनेवाले।
२-'दनु' दक्षप्रजापतिकी कन्या हैं। इसका विवाह कश्यपसे हुआ था।

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ।
तयोश्च गरुडो धीमान् तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
प्रसादाच्छूलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम्॥ १४॥

आराध्य तपसा रुद्रं महादेवं तथारुणः।
सारथ्ये कल्पितः पूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना॥ १५॥

विनताके दो विख्यात पुत्र हुए—गरुड तथा अरुण। उनमेंसे बुद्धिमान् गरुडने दुस्तर तप करके भगवान् शंकरकी कृपासे साक्षात् हरिके वाहन होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। इसी प्रकार पूर्वकालमें अरुणने महादेव रुद्रकी तपस्याद्वारा आराधना की, इससे महादेवने प्रसन्न होकर उसे सूर्यका सारथी बना दिया॥ १४-१५॥

एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनाः॥ १६॥

इस वैवस्वत मन्वन्तरमें स्थावर तथा जंगम-रूप ये (महर्षि) कश्यपके वंशज कहे गये हैं। इनका वर्णन सुननेवालोंके पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १६॥

सप्तविंशत् सुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यश्च सुव्रताः।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश॥ १७॥

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः।
तद्वदङ्गिरसः पुत्रा ऋषयो ब्रह्मसत्कृताः॥ १८॥

कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः सुताः।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यैः कार्यैः स्वनामभिः॥ १९॥

शोभन व्रतवाले द्विजो! (दक्षकी) सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाकी पत्नियाँ कही गयी हैं। अरिष्टनेमिकी पत्नियोंकी सोलह संतानें हुईं। विद्वान् बहुपुत्रके चार विद्युत् नाम-वाले पुत्र कहे गये हैं। इसी प्रकार अङ्गिराके पुत्र ब्रह्मा-द्वारा सम्मान-प्राप्त श्रेष्ठ ऋषि थे। देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण अर्थात् देवोंके शस्त्र थे। हजार युगोंका अन्त होनेपर विभिन्न मन्वन्तरोंमें ये अपने नामोंके समान कार्योंके साथ निश्चितरूपसे पुनः उत्पन्न होते हैं॥ १७—१९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

महर्षि कश्यप तथा पुलस्त्य आदि ऋषियोंके वंशका वर्णन, रावण तथा कुम्भकर्ण आदिकी उत्पत्ति, वसिष्ठके वंश-वर्णनमें व्यास, शुकदेव आदिकी उत्पत्तिकी कथा, भगवान् शंकरका ही शुकदेवके रूपमें आविर्भूत होना

सूत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात्।
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार सुमहत् तपः॥ १॥
तस्य वै तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ।
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ॥ २॥
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः।
रैभ्यस्य जज्ञिरे रैभ्याः पुत्रा द्युतिमतां वराः॥ ३॥
च्यवनस्य सुता पत्नी नैध्रुवस्य महात्मनः।
सुमेधा जनयामास पुत्रान् वै कुण्डपायिनः॥ ४॥
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत।
नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः॥ ५॥

सूतजी बोले—प्रजाकी अभिवृद्धिके लिये इन पुत्रोंको उत्पन्न कर पुत्राभिलाषी कश्यप अत्यन्त महान् तप करने लगे। कठोर तप कर रहे उनके 'वत्सर' तथा 'असित' नामके दो पुत्र हुए। वे दोनों ही ब्रह्मवादी थे। वत्सरसे नैध्रुव और रैभ्य नामके महान् यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। रैभ्यके तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ रैभ्य नामक पुत्र हुआ। च्यवन ऋषिकी (सुमेधा नामवाली) पुत्री महात्मा नैध्रुवकी पत्नी थी। सुमेधाने 'कुण्डपायी' पुत्रोंको उत्पन्न किया। असितकी एकपर्णा नामक पत्नीने ब्रह्मिष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया जो देवल नामवाले थे, वे योगके आचार्य,

शाण्डिल्यानां परः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः।
प्रसादात् पार्वतीशस्य योगमुत्तममाप्तवान्॥ ६ ॥

शाण्डिल्या नैध्रुवा रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः।
नरप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः॥ ७ ॥

तृणबिन्दोः सुता विप्रा नाम्ना त्विलविला स्मृता।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्॥ ८ ॥

ऋषिस्त्वैलविलिस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत।
तस्य पत्न्यश्चतस्त्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धिकाः॥ ९ ॥

पुष्पोत्कटा च राका च कैकसी देववर्णिनी।
रूपलावण्यसम्पन्नास्तासां वै शृणुत प्रजाः॥ १० ॥
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देवरूपिणी।
कैकसी जनयत् पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्॥ ११ ॥

कुम्भकर्णं शूर्पणखां तथैव च विभीषणम्।
पुष्पोत्कटा व्यजनयत् पुत्रान् विश्रवसः शुभान्॥ १२ ॥

महोदरं प्रहस्तं च महापार्श्वं खरं तथा।
कुम्भीनसीं तथा कन्यां राकायां शृणुत प्रजाः॥ १३ ॥
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबलः।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ताः सुभीषणाः॥ १४ ॥

पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः।
भूताः पिशाचाः सर्पाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा॥ १५ ॥

अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे।
मरीचेः कश्यपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापतिः॥ १६ ॥

भृगोरप्यभवच्छुक्रो दैत्याचार्यो महातपाः।
स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युतिः॥ १७ ॥

अत्रेः पत्न्योऽभवन् बह्व्यः सोदर्यास्ताः पतिव्रताः।
कृशाश्वस्य तु विप्रेन्द्रा घृताच्यामिति मे श्रुतम्॥ १८ ॥
स तासु जनयामास स्वस्त्यात्रेयान् महौजसः।
वेदवेदाङ्गनिरतांस्तपसा हतकिल्बिषान्॥ १९ ॥

नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम्।
ऊर्ध्वरेतास्तत्र मुनिः शापाद् दक्षस्य नारदः॥ २० ॥

महान् तपस्वी शाण्डिल्योंमें श्रेष्ठ, श्रीमान्, सभी तत्त्वार्थोंको जाननेवाले तथा विद्वान् थे। पार्वतीके पति भगवान् शंकरकी कृपासे उन्होंने श्रेष्ठ योग प्राप्त किया॥ १—६॥

शाण्डिल्य, नैध्रुव तथा रैभ्य—ये तीनों शाखाएँ कश्यपवंशीय और मानव प्रकृतिवाली हैं। ब्राह्मणो! आपको अब पुलस्त्य ऋषिके वंशको बताता हूँ। विप्रो! तृणबिन्दुकी एक पुत्री थी जो इलविला नामसे प्रसिद्ध थी। उन राजर्षिने वह कन्या पुलस्त्यको प्रदान की। उस इलविलासे विश्रवा ऋषि उत्पन्न हुए। उनकी पुष्पोत्कटा, राका, कैकसी तथा देववर्णिनी नामकी चार पत्नियाँ थीं, जो पुलस्त्यके वंशको बढ़ानेवाली तथा रूप और लावण्यसे सम्पन्न थीं। अब आप उनकी संतानोंको सुनें— ॥ ७—१०॥

उनकी देवरूपिणी (देववर्णिनी) (नामक पत्नी)-ने ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर)-को जन्म दिया। कैकसीने राक्षसोंके अधिपति रावण नामक पुत्र और इसी प्रकार कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषणको जन्म दिया। पुष्पोत्कटाने भी महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व और खर नामक विश्रवाके शुभ पुत्रों और कुम्भीनसी नामक कन्याको जन्म दिया। अब आप राकाकी संतान सुनें— ॥ ११—१३॥

त्रिशिरा, दूषण तथा महाबली विद्युज्जिह्व—ये राकाके पुत्र थे। पुलस्त्यके ये सभी दस राक्षस-पुत्र क्रूर कर्म करनेवाले, अत्यन्त भयंकर, उत्कट तपोबलवाले और रुद्रके भक्त थे। मृग, व्याल, दाढ़ोंवाले (प्राणी), भूत, पिशाच, सर्प, शूकर तथा हाथी—ये सभी पुलह (ऋषि)-के पुत्र हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तरमें (महर्षि) क्रतुको संतानहीन कहा गया है। प्रजापति कश्यप मरीचिके पुत्र थे। भृगुके भी शुक्र नामक पुत्र हुए जो दैत्योंके आचार्य, महान् तपस्वी, स्वाध्याय तथा योगपरायण, अत्यन्त तेजस्वी और शंकरके भक्त थे। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अत्रिकी बहुत-सी पत्नियाँ थीं। वे पतिव्रता तथा आपसमें बहनें थीं। हमने सुना है कि वे घृताचीसे उत्पन्न कृशाश्वकी पुत्रियाँ थीं॥ १४—१८॥

उन्होंने उन पत्नियोंसे महान् ओजस्वी, वेद-वेदाङ्ग-परायण और तपस्याद्वारा अपने पापोंको नष्ट करनेवाले कल्याणकारी आत्रेयों (स्वस्त्यात्रेयों)-को उत्पन्न किया। नारदने देवी अरुन्धतीको वसिष्ठके लिये प्रदान किया। दक्षके शापसे नारद मुनि ऊर्ध्वरेता हो गये॥ १९-२०॥

हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु।
शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः॥ २१॥

नारदकी मायासे हर्यश्वोंके नष्ट हो जानेपर क्रोधसे लाल आँखोंवाले दक्षने नारदको (इस प्रकार) शाप दिया— ॥ २१॥

यस्मान्मम सुताः सर्वे भवतो मायया द्विज।
क्षयं नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यति॥ २२॥

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत् सुतम्।
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वरः॥ २३॥

आराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम्।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥ २४॥

'द्विज! चूँकि आपकी मायासे मेरे सभी पुत्र सभी प्रकारसे विनाशको प्राप्त हो गये, अतः आप भी संतानरहित होंगे।' वसिष्ठने अरुन्धतीसे शक्ति नामक पुत्र उत्पन्न किया। शक्तिके पराशर हुए जो श्रीसम्पन्न, सर्वज्ञ तथा तपस्वियोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने त्रिपुरका नाश करनेवाले देवाधिदेव शंकरकी आराधनाकर कृष्णद्वैपायन नामवाले अप्रतिम एवं शक्तिसम्पन्न पुत्रको प्राप्त किया॥ २२—२४॥

द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शंकरः।
अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम्॥ २५॥

शुकस्याप्यभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः।
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः।
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता॥ २६॥

भगवान् शंकर ही शुक नामसे द्वैपायनके पुत्र हुए। पृथ्वीपर अपने अंशांशरूपसे उत्पन्न होकर (पुनः) अपने परम पदको प्राप्त हुए। शुकके महान् तपस्वी पाँच पुत्र हुए, वे भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण तथा पाँचवें गौर नामवाले थे। साथ ही कीर्तिमती नामकी एक कन्या भी हुई, जो योगमाता और व्रतपरायणा थी॥ २५-२६॥

एतेऽत्र वंश्याः कथिता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनाम्।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं कश्यपाद्राजसंततिम्॥ २७॥

इन ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके वंशजोंका यह वर्णन किया गया, अब आगे कश्यपसे उत्पन्न क्षत्रिय संतानोंका वर्णन सुनो— ॥ २७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

सूर्यवंश-वर्णनमें वैवस्वत मनुकी संतानोंका वर्णन, युवनाश्वको गौतमका उपदेश, महातपस्वी राजा वसुमनाकी कथा, वसुमनाके अश्वमेध-यज्ञमें ऋषियों तथा देवताओंका आगमन, ऋषियोंद्वारा तपस्याकी आज्ञा प्राप्तकर वसुमनाका हिमालयमें जाकर तप करना और अन्तमें उसे शिवपदकी प्राप्ति

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात् प्रभुम्।
तस्यादित्यस्य चैवासीद् भार्याणां तु चतुष्टयम्।
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां निबोधत॥ १॥
संज्ञा त्वाष्ट्री च सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्।
यमं च यमुनां चैव राज्ञी रैवतमेव च॥ २॥
प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सावर्णमात्मजम्।
शनिं च तपतीं चैव विष्टिं चैव यथाक्रमम्॥ ३॥

सूतजी बोले—अदितिने कश्यपसे शक्तिशाली 'आदित्य' नामक पुत्रको उत्पन्न किया। उस आदित्यकी संज्ञा, राज्ञी, प्रभा तथा छाया नामवाली चार पत्नियाँ थीं। उनके पुत्रोंको सुनो—त्वष्टा (विश्वकर्मा)-की पुत्री संज्ञाने सूर्यसे श्रेष्ठ मनु, यम और यमुनाको उत्पन्न किया और राज्ञीने रैवतको उत्पन्न किया। प्रभाने आदित्यसे प्रभातको उत्पन्न किया। छायाने क्रमशः सावर्ण, शनि, तपती और विष्टि नामक संतानोंको जन्म दिया॥ १—३॥

मनोस्तु प्रथमस्यासन् नव पुत्रास्तु संयमाः।
इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च॥ ४ ॥
नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्टः कारुषकस्तथा।
पृषध्रश्च महातेजा नवैते शक्रसंनिभाः॥ ५ ॥
इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशविवृद्धये।
बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण संगता॥ ६ ॥

असूत सौम्यजं देवी पुरूरवसमुत्तमम्।
पितॄणां तृप्तिकर्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम्॥ ७ ॥

सम्प्राप्य पुंस्त्वममलं सुद्युम्न इति विश्रुतः।
इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत॥ ८ ॥

उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च।
सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम्॥ ९ ॥
इक्ष्वाकोश्चाभवद् वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिवः।
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यापि दश पञ्च च तत्सुताः॥ १० ॥

तेषां ज्येष्ठःककुत्स्थोऽभूत् काकुत्स्थो हि सुयोधनः।
सुयोधनात् पृथुः श्रीमान् विश्वकश्च पृथोः सुतः॥ ११ ॥

विश्वकादार्द्रको धीमान् युवनाश्वस्तु तत्सुतः।
स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान्॥ १२ ॥

दृष्ट्वा तु गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम्।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ पुत्रकामो महीपतिः।
अपृच्छत् कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥ १३ ॥

गौतम उवाच

आराध्य पूर्वपुरुषं नारायणमनामयम्।
अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥ १४ ॥

यस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः।
तमादिकृष्णमीशानमाराध्याप्नोति सत्सुतम्॥ १५ ॥

न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः।
तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्॥ १६ ॥
स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः।
आराधयन्महायोगं वासुदेवं सनातनम्॥ १७ ॥

प्रथम मनुके नौ पुत्र थे जो इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, कारुषक तथा पृषध्र नामवाले थे। ये नवों पुत्र इन्द्रियजयी, महान् तेजसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान थे॥ ४-५॥

(मनुकी) ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ (पुत्री) इलाने[1] सोमवंशकी अभिवृद्धिके लिये बुधके भवनमें जाकर सोमपुत्र (बुध)-के साथ संगति की और हमने सुना है कि उस देवीने बुधसे श्रेष्ठ पुरूरवाको उत्पन्न किया। वह पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला था। (पुत्र प्राप्त करनेके उपरान्त इलाको) विशुद्ध पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई जो सुद्युम्न नामसे विख्यात हुआ। (पुरुषरूपमें) इलाने उत्कल, गय तथा विनताश्व नामक तीन पुत्रोंको प्राप्त किया, तदनन्तर वह पुनः स्त्री हो गयी, वे सभी अतुलनीय कीर्तिमान् तथा ब्रह्मपरायण थे॥ ६—९॥

मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुसे विकुक्षि नामक वीर राजा हुए। विकुक्षि सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे। उनके पंद्रह पुत्र हुए। उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़े थे। ककुत्स्थका पुत्र सुयोधन था। सुयोधनसे श्रीमान् पृथु उत्पन्न हुए और विश्वक पृथुके पुत्र थे। विश्वकसे बुद्धिमान् आर्द्रक हुए और उनके पुत्र युवनाश्व हुए। प्रतापी वे युवनाश्व गोकर्ण तीर्थमें गये॥ १०—१२॥

वहाँ तप कर रहे अग्नि-सदृश विप्र गौतमका दर्शन-कर पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे युवनाश्वने भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे (गौतमसे) पूछा—(भगवन्!) किस कर्मके द्वारा धर्मात्मा पुत्रको प्राप्त किया जा सकता है—॥ १३॥

गौतमने कहा—आदि और अन्तसे रहित, अनामय, पूर्वपुरुष नारायणदेवकी आराधनासे धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति होती है। जिनके पुत्र स्वयं ब्रह्मा हैं और (जिनके) पौत्र नीललोहित शंकर हैं, उन आदिकृष्ण ईशानकी आराधनासे (मनुष्य) सत्पुत्र प्राप्त करता है। भगवान् ब्रह्मा भी जिनके प्रभावको तत्त्वतः नहीं जानते हैं, उन हृषीकेशकी आराधनासे धार्मिक पुत्रको प्राप्त करना चाहिये॥ १४—१६॥

गौतमके वचनको सुनकर उस पृथ्वीपति युवनाश्वने महायोगी सनातन वासुदेवकी आराधना प्रारम्भ की॥ १७॥

१-राजा सुद्युम्नकी कथामें 'इला' की उत्पत्तिका वर्णन है।

तस्य पुत्रोऽभवद् वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः।
निर्मिता येन श्रावस्तिर्गौडदेशे महापुरी॥ १८॥

(आराधनाके फलस्वरूप) उसका वीर पुत्र हुआ जो 'श्रावस्ति' इस नामसे विख्यात हुआ। उसने गौडदेशमें श्रावस्ति नामक महापुरीका निर्माण किया॥ १८॥

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत् तस्मात् कुवलयाश्वकः।
धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुं हत्वा महासुरम्॥ १९॥

धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः।
दृढाश्वश्चैव दण्डाश्वः कपिलाश्वस्तथैव च॥ २०॥

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात् संहताश्वकः॥ २१॥

कृशाश्वश्च रणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि॥ २२॥

उससे (श्रावस्तिसे) बृहदश्व उत्पन्न हुए और उससे कुवलयाश्वक उत्पन्न हुए। धुन्धु नामक महान् असुरको मारनेके कारण वे धुन्धुमारके नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रेष्ठ द्विजो! धुन्धुमारके तीन पुत्र कहे गये हैं—दृढाश्व, दण्डाश्व तथा कपिलाश्व। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ था और निकुम्भसे संहताश्वक उत्पन्न हुआ। संहताश्वकके कृशाश्व तथा रणाश्व—ये दो पुत्र हुए। रणाश्वका युद्धमें इन्द्रके तुल्य बलशाली युवनाश्व नामक पुत्र हुआ॥ १९—२२॥

कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम्।
मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम्॥ २३॥

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्।
मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वे शक्रसमा युधि॥ २४॥

अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः।
हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत्॥ २५॥

युवनाश्वने ऋषियोंकी कृपासे वारुणी नामक यागका (वारुणी नामकी इष्टिका) अनुष्ठान करके अप्रतिम महान् बुद्धिमान्, शस्त्रधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा उत्तम विष्णुभक्त मान्धाता नामक पुत्रको प्राप्त किया। मान्धाताके पुरुकुत्स, वीर्यवान् अम्बरीष तथा पुण्यात्मा मुचुकुन्द नामक पुत्र हुए। युद्धमें वे सभी इन्द्रके समान थे। अम्बरीषका पुत्र दूसरा युवनाश्व[1] कहलाता है। युवनाश्वका पुत्र हरित और उसका पुत्र हारित हुआ॥ २३—२५॥

पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसद्दस्युर्महायशाः।
नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तत्सुतोऽभवत्॥ २६॥

विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत् परः।
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत्॥ २७॥

सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः।
प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम्॥ २८॥

स तु सूर्यं समभ्यर्च्य राजा वसुमनाः शुभम्।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिंदमम्॥ २९॥

अयजच्चाश्वमेधेन शत्रून् जित्वा द्विजोत्तमाः।
स्वाध्यायवान् दानशीलस्तितिक्षुर्धर्मतत्परः॥ ३०॥

पुरुकुत्सका नर्मदा (नामक पत्नी)-से महायशस्वी त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र सम्भूति हुआ। उसका (सम्भूतिका) विष्णुवृद्ध तथा दूसरा अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्यका बृहदश्व और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। यही हर्यश्व अत्यन्त धार्मिक राजारूपमें विख्यात हुआ। इसने कर्दम प्रजापतिकी कृपासे धार्मिक सूर्यभक्त (वसुमना नामक) पुत्रको प्राप्त किया। इस वसुमना नामक राजाने सूर्यकी आराधनासे शत्रुओंका दमन करनेवाले अप्रतिम कल्याणकारी त्रिधन्वा नामक पुत्रको प्राप्त किया। श्रेष्ठ द्विजो! स्वाध्यायनिरत, दानशील, सहिष्णु तथा धर्मपरायण (उस) राजाने शत्रुओंको जीतकर अश्वमेध नामक यज्ञ किया॥ २६—३०॥

ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः।
वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः॥ ३१॥

तान् प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः।
समाप्य विधिवद् यज्ञं वसिष्ठादीन् द्विजोत्तमान्॥ ३२॥

उस महात्माके यज्ञस्थलमें वसिष्ठ तथा कश्यप आदि प्रमुख ऋषिगण तथा इन्द्र आदि देवता आये। विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण करके उन वसिष्ठ आदि द्विजोत्तमोंको प्रणामकर महाराज (वसुमना)-ने विनयपूर्वक उनसे पूछा—॥ ३१-३२॥

१-इस वंशवर्णनके अनुसार यह तीसरा युवनाश्व है। पहला आर्द्रकका पुत्र, दूसरा रणाश्वका पुत्र और तीसरा यह अम्बरीषका पुत्र।

वसुमना उवाच

किंस्विच्छ्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणर्षभाः।
यज्ञस्तपो वा संन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः॥ ३३॥

वसुमनाने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप सब कुछ जाननेवाले हैं। मुझे यह बतलाइये कि इस संसारमें यज्ञ, तप अथवा संन्यासमें कौन अधिक श्रेयस्कर है?॥ ३३॥

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान् विधिवत् पुत्रानुत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद् वनमथात्मवान्॥ ३४॥

वसिष्ठ बोले—आत्मवान्‌को चाहिये कि वह वेदोंका विधिवत् अध्ययन करके धर्मपूर्वक पुत्रोंको उत्पन्न करे और यज्ञोंद्वारा यज्ञेश्वरका यजनकर वनमें जाय॥ ३४॥

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनं परमेष्ठिनम्।
प्रव्रजेद् विधिवद् यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान्॥ ३५॥

पुलस्त्यने कहा—सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवोंकी यज्ञद्वारा अर्चना करके और तपस्याद्वारा योगी देव परमेश्वरकी आराधना करके विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण करना चाहिये॥ ३५॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणं परमेश्वरम्।
तमाराध्य सहस्रांशुं तपसा मोक्षमाप्नुयात्॥ ३६॥

पुलह बोले—जिन्हें अद्वितीय, पुराणपुरुष तथा परमेश्वर कहा गया है, उन सहस्रकिरण (सूर्य)-की तपस्याद्वारा आराधना करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये॥ ३६॥

जमदग्निरुवाच

अजस्य नाभावध्येकमीश्वरेण समर्पितम्।
बीजं भगवता येन स देवस्तपसेज्यते॥ ३७॥

जमदग्निने कहा—जिन भगवान् ईश्वरने अजन्मा (ब्रह्म)-की नाभिमें अद्वितीय बीज (जगत्कारण ब्रह्मा)-को स्थापित किया, उन देवकी तपस्याद्वारा आराधना की जानी चाहिये॥ ३७॥

विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः।
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः॥ ३८॥

विश्वामित्रने कहा—जो अग्निस्वरूप, सर्वात्मक, अनन्त, स्वयम्भू तथा सर्वतोमुख हैं, वे रुद्र उग्र तपस्याद्वारा पूजनीय हैं न कि अन्य किसी दूसरे यज्ञ आदि साधनोंद्वारा॥ ३८॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो जातवेदाः सनातनः।
स सर्वदैवततनुः पूज्यते तपसेश्वरः॥ ३९॥

भरद्वाज बोले—यज्ञोंद्वारा जिन सनातन अग्निदेवकी पूजा की जाती है, वे सभी देवताओंके विग्रहरूप परमेश्वर ही तपके द्वारा पूजित होते हैं॥ ३९॥

अत्रिरुवाच

यतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः।
तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः॥ ४०॥

अत्रि बोले—वे महेश्वर अत्यन्त महान् तपके द्वारा पूजे जाते हैं, जिनसे यह सब उत्पन्न हुआ है और प्रजापति जिनकी संतान हैं॥ ४०॥

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिमयं जगत्।
स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः॥ ४१॥

गौतमने कहा—जिससे प्रधान अर्थात् पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुए हैं और जिनकी शक्तिसे यह जगत् (उत्पन्न) हुआ है, वे सनातन देवाधिदेव तपस्याद्वारा पूजनीय हैं॥ ४१॥

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षी स तु प्रजापतिः।
प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा परः॥ ४२॥

कश्यपने कहा—तपद्वारा आराधना करनेसे वे हजारों नेत्रवाले, साक्षी, महायोगी, प्रजापति प्रभु प्रसन्न होते हैं॥ ४२॥

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि।
नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मः शास्त्रेषु दृश्यते॥ ४३॥

क्रतु बोले—अध्ययनरूपी यज्ञ पूर्ण कर पुत्र प्राप्त कर लेनेवाले पुरुषके लिये तपस्याके अतिरिक्त कोई और दूसरा धर्म शास्त्रोंमें दिखायी नहीं देता॥ ४३॥

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान् प्रणम्यातिहृष्टधीः।
विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत्॥ ४४॥

आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम्।
प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम्॥ ४५॥

त्वं तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्॥ ४६॥

ऐसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मनवाले उस वसुमना राजर्षिने उन द्विजश्रेष्ठोंको प्रणाम किया और पूजनकर उन्हें बिदा किया। तदनन्तर (उसने अपने पुत्र) त्रिधन्वासे (इस प्रकार) कहा—तपद्वारा मैं सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित, प्राणरूप अद्वितीय अक्षर नामक ब्रह्म पुरुषकी आराधना करूँगा। तुम धर्ममें निरत होकर चातुर्वर्ण्यसे समन्वित इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका आलस्यरहित होकर पालन करो॥ ४४—४६॥

एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निधायात्मभवे नृपः।
जगामारण्यमनघस्तपश्चर्तुमनुत्तमम्॥ ४७॥

हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवने शुभे।
कन्दमूलफलाहारो मुन्यन्नैरयजत् सुरान्॥ ४८॥

संवत्सरशतं साग्रं तपोनिर्धूतकल्मषः।
जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्॥ ४९॥

तस्यैवं जपतो देवः स्वयम्भूः परमेश्वरः।
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा तं देशमगमत् स्वयम्॥ ५०॥

दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्।
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नाम कीर्तयन्॥ ५१॥

ऐसा कहकर वह अनघ राजा वसुमना अपने पुत्र (त्रिधन्वा)-को राज्य सौंपकर सर्वोत्तम तपस्या करनेके लिये वनमें चला गया। ये वसुमना राजा हिमालयके शिखरपर स्थित रमणीय शुभ देवदारु वनमें रहते हुए कन्दमूल एवं फलोंका आहार करते हुए मुनियोंके अन्न (नीवार आदि)-से देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ (आराधना) करने लगे। तपस्याद्वारा नष्ट हुए पापोंवाले उन्होंने सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक वेदमाता देवी सावित्रीका मानसिक जप किया। उनके इस प्रकार जप करते रहनेपर ही स्वयम्भू देव परमेश्वर हिरण्यगर्भ विश्वात्मा स्वयं उस स्थानपर गये। विश्वतोमुख ब्रह्मदेवको आते हुए देखकर उन्होंने अपना नाम बोलते हुए उनके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ ४७—५१॥

नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने।
हिरण्यमूर्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे॥ ५२॥

नमो धात्रे विधात्रे च नमो वेदात्ममूर्तये।
सांख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्तये॥ ५३॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः॥ ५४॥

देवाधिदेव परमात्मा ब्रह्माको नमस्कार है। सहस्र नेत्रोंवाले हिरण्यमूर्ति आप वेधाको नमस्कार है। धाता और विधाताको नमस्कार है, वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है। सांख्य तथा योगद्वारा ज्ञात होनेवाले ज्ञान-मूर्तिको नमस्कार है। सभी अर्थोंके ज्ञाता, सृष्टिकर्ता, त्रिमूर्तिरूप आपको नमस्कार है। योगियोंके गुरु पुराणपुरुषको नमस्कार है॥ ५२—५४॥

ततः प्रसन्नो भगवान् विरिञ्चो विश्वभावनः।
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ ५५॥

तब प्रसन्न होकर विश्वभावन भगवान् ब्रह्माने कहा—'वर माँगो, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें वर दूँगा'॥ ५५॥

राजोवाच

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम्।
भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम॥ ५६॥

बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम्।
स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ५७॥

राजाने कहा—देवदेवेश! मैं पुनः सौ वर्षसे अधिक समयतक इस वेदमाता गायत्रीका जप कर सकूँ, इसके लिये उतनी ही मेरी आयु हो। राजाको देखकर विश्वात्माने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा और प्रसन्न होकर हाथोंसे (राजाका) स्पर्शकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ५६-५७॥

सोऽपि लब्धवरः श्रीमान् जजापातिप्रसन्नधीः।
शान्तस्त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः॥ ५८॥

तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः।
प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः॥ ५९॥

तं दृष्ट्वा वेदविदुषं मण्डलस्थं सनातनम्।
स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयं गतः॥ ६०॥

तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः।
क्षणादपश्यत् पुरुषं तमेव परमेश्वरम्॥ ६१॥

चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम्।
चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम्॥ ६२॥

भासयन्तं जगत् कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः।
रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥ ६३॥

वर-प्राप्त वह श्रीमान् (राजा) भी तीनों समयोंमें स्नान करते हुए तथा कन्दमूल एवं फलोंका आहार करते हुए अत्यन्त प्रसन्न-मनसे शान्तिपूर्वक जप करने लगे। उनके (जप करते हुए) सौ वर्ष पूरा होनेपर सूर्यमण्डलके मध्यसे प्रज्वलित किरणोंवाले महायोगी भगवान् प्रकट हुए। मण्डलमें स्थित उन सनातन, स्वयम्भू, अनादि, अनन्त तथा वेदज्ञ ब्रह्माको देखकर वे राजा आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने वैदिक मन्त्रों तथा विशेषरूपसे गायत्री (मन्त्र)-द्वारा उनकी स्तुति की। क्षणभरमें ही उन्होंने उन परमेश्वर पुरुषको चार मुखवाले, जटा तथा मुकुटधारी, आठ हाथ तथा तीन नेत्रवाले, चन्द्रकलाओंसे चिह्नित अर्धनारीश्वर शरीरवाले, अपनी किरणोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करते हुए, रक्तवस्त्र धारण किये, रक्तवर्णवाले तथा रक्तमाला और रक्त अनुलेपन धारण किये नीलकण्ठ हरके रूपमें देखा॥ ५८—६३॥

तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि।
ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेन चैव हि॥ ६४॥

नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने।
त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे॥ ६५॥

उन्हें देखकर उन्हींके भावसे भावित होकर परम सद्भावसे राजाने सिरसे रुद्रको प्रणाम किया और सावित्री-मन्त्र तथा इस स्तोत्रसे स्तुति की। वेदत्रयीरूप, रुद्र, कालरूप, कारणस्वरूप भासमान परमेष्ठी नीलकण्ठको नमस्कार है॥ ६४-६५॥

तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः।
इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ॥ ६६॥

सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु।
नमस्कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः॥ ६७॥

अध्यायं शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम्।
जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप॥ ६८॥

ब्रह्मचारी मिताहारो भस्मनिष्ठः समाहितः।
जपेदामरणाद् रुद्रं स याति परमं पदम्॥ ६९॥

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया।
पुनः संवत्सरशतं राज्ञे ह्यायुरकल्पयत्॥ ७०॥

तब प्रसन्न मनवाले महादेवने राजासे कहा—हे निष्पाप! मेरे इन गोपनीय नामोंको सुनो। ये सभी वेदोंमें वर्णित हैं तथा संसार (सागर)-का नाश करनेवाले हैं। राजन्! पवित्र होकर इन नामोंसे मुझे निरन्तर नमस्कार करो। राजन्! यजुर्वेदसे साररूपमें उद्धृत शतरुद्रीका अनन्यमन होकर मुझमें मन लगाकर जप करो। जो ब्रह्मचर्य धारणकर, संयमित आहार ग्रहणकर, भस्मका लेपकर एकाग्रतापूर्वक मरणपर्यन्त रुद्रका जप करता है, वह परम पद प्राप्त करता है। ऐसा कहकर भक्तपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे भगवान् रुद्रने राजाकी आयु पुनः सौ वर्षोंतक कर दी॥ ६६—७०॥

दत्त्वास्मै तत् परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः।
क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ७१॥

राजापि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः।
भस्मच्छन्नस्त्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः॥ ७२॥

जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः।
योगप्रवृत्तिरभवत् कालात् कालात्मकं परम्॥ ७३॥

राजा वसुमनाको परम ज्ञान और वैराग्य प्रदानकर परमेश्वर रुद्र क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये। यह एक आश्चर्य ही हुआ। राजाने भी तीनों कालोंमें स्नानकर, भस्म धारणकर, शान्त और एकाग्रतापूर्वक अनन्य-मनसे तपस्याद्वारा रुद्रका जप किया। जप करते हुए उन राजाके पुनः सौ वर्ष पूरे हो जानेपर उसमें योगकी प्रवृत्ति हुई और यथासमय उन्होंने श्रेष्ठ

विवेश तद् वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः।
भानोः स मण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्॥ ७४॥

कालात्मक परमेष्ठीके उस वेदसार नामक स्थानको प्राप्त किया जो सूर्यका शुभ्र मण्डल है। तदनन्तर वे महेश्वरको प्राप्त हुए॥ ७१—७४॥

यः पठेच्छृणुयाद् वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ७५॥

राजाके इस उत्तम चरितको जो पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकु-वंश-वर्णनके प्रसंगमें श्रीराम-कथाका प्रतिपादन, श्रीरामद्वारा सेतु-बन्धन और रामेश्वर-लिंगकी स्थापना, शंकर-पार्वतीका प्रकट होकर रामेश्वर-लिंगके माहात्म्यको बतलाना, श्रीरामको लव-कुश-पुत्रोंकी प्राप्ति तथा इक्ष्वाकु-वंशके अन्तिम राजाओंका वंश-वर्णन

सूत उवाच

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम्।
तस्य पुत्रोऽभवद् विद्वांस्त्रय्यारुण इति स्मृतः॥ १॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः।
भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत्॥ २॥
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद् रोहितो नाम वीर्यवान्।
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत्॥ ३॥
विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः।
विजयस्याभवत् पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान्॥ ४॥
कारुकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद् बाहुरजायत।
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः॥ ५॥
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा।
ताभ्यामाराधितः प्रादादौर्वाग्निर्वरमुत्तमम्॥ ६॥
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्।
प्रभा षष्टिसहस्रं तु पुत्राणां जगृहे शुभा॥ ७॥
असमञ्जस्य तनयो ह्यंशुमान् नाम पार्थिवः।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात् तु भगीरथः॥ ८॥
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता।
प्रसादाद् देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः॥ ९॥

सूतजी बोले—राजपुत्र त्रिधन्वाने पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। उसका एक विद्वान् पुत्र हुआ जो त्रय्यारुण नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसको (त्रय्यारुणको) सत्यव्रत नामका महान् बलवान् पुत्र हुआ। सत्यधना नामक उसकी पत्नीने हरिश्चन्द्रको जन्म दिया। हरिश्चन्द्रको रोहित नामवाला पराक्रमी पुत्र हुआ। रोहितका हरित और उसका पुत्र धुन्धु हुआ। धुन्धुके विजय और सुदेव—ये दो पुत्र हुए। विजयका कारुक नामका वीर पुत्र हुआ। कारुकका पुत्र वृक और उससे बाहु (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ। उस बाहुका पुत्र सगर हुआ जो परम धार्मिक था। सगरकी दो पत्नियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। और्वाग्निने उन दोनोंसे पूजित होकर उन्हें श्रेष्ठ वर प्रदान किया॥ १—६॥

(वरके फलस्वरूप) भानुमतीने असमञ्जस नामक पुत्रको ग्रहण किया और कल्याणी प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको प्राप्त किया। असमञ्जसके पुत्र अंशुमान् नामक राजा थे, उनके पुत्र दिलीप तथा दिलीपसे भगीरथ हुए, जिन्होंने तपस्या करके देवाधिदेव धीमान् महादेवकी कृपासे भागीरथी गङ्गाको (पृथ्वीपर) अवतारित किया॥ ७—९॥

भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः।
बभार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः॥ १०॥

भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न हुए मनवाले चन्द्रभूषण देव हरने अपने सिरपर स्थित चन्द्रमाके अग्रभागमें गङ्गाको धारण किया॥ १०॥

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह।
नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥ ११॥
अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णस्तु तत्सुतः।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिकः।
सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः॥ १२॥

भगीरथका भी श्रुत नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र हुआ नाभाग। उससे सिन्धुद्वीप हुआ। उस सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु और उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ। ऋतुपर्णका सुदास नामका धार्मिक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सौदास हुआ जो कल्माषपाद नामसे विख्यात हुआ॥ ११-१२॥

वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके।
अश्मकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम्॥ १३॥

अश्मकस्योत्कलायां तु नकुलो नाम पार्थिवः।
स हि रामभयाद् राजा वनं प्राप सुदुःखितः॥ १४॥

बिभ्रत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत्।
तस्माद् बिलिबिलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः॥ १५॥

तस्माद् विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत॥ १६॥

कल्माषपादके क्षेत्रमें महातेजस्वी वसिष्ठने इक्ष्वाकु-वंशके पताकारूप अश्मक नामक पुत्रको उत्पन्न कराया। अश्मकको उत्कला नामक पत्नीसे नकुल नामक राजा उत्पन्न हुआ। वह राजा परशुरामके भयसे अत्यन्त दुःखित होकर वन चला गया। उसने 'नारी-कवच'[1] धारण कर रखा था। उस (नकुल)-से शतरथ हुआ और उससे श्रीमान् बिलिबिलि उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र वृद्धशर्मा था। उस वृद्धशर्मासे विश्वसह और उसका पुत्र खट्वाङ्ग नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दीर्घबाहु और उससे रघु उत्पन्न हुआ॥ १३—१६॥

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः।
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः॥ १७॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।
सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः।
जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वकृत्॥ १८॥

रघुका अज उत्पन्न हुआ और उससे राजा दशरथ हुए। दशरथके पुत्र राम वीर, धर्मज्ञ और लोकमें प्रसिद्ध हुए। दशरथके ही पुत्र भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भी थे। ये सभी महान् बलशाली, युद्धमें इन्द्रके समान और विष्णुकी शक्तिसे सम्पन्न थे। रावणका विनाश करनेके लिये विश्वकर्ता विष्णु ही इन लोगोंके रूपमें अंशरूपसे प्रकट हुए थे॥ १७-१८॥

रामस्य सुभगा भार्या जनकस्यात्मजा शुभा।
सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता॥ १९॥

तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा।
प्रायच्छज्जानकीं सीतां राममेवाश्रिता पतिम्॥ २०॥

रामकी सौभाग्यशालिनी कल्याणी पत्नी जनककी पुत्री सीता थीं। वे शील एवं उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न और तीनों लोकोंमें विख्यात थीं। जनकके द्वारा तपस्यासे संतुष्ट की गयी गिरिराजपुत्री पार्वतीने उन्हें जानकी सीताको प्रदान किया। सीताने रामको ही पति बनाया॥ १९-२०॥

प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहितः।
प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भुतं धनुः॥ २१॥

स राजा जनको विद्वान् दातुकामः सुतामिमाम्।
अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन् द्विजपुंगवाः॥ २२॥

इदं धनुः समादातुं यः शक्नोति जगत्त्रये।
देवो वा दानवो वापि स सीतां लब्धुमर्हति॥ २३॥

त्रिशूल धारण करनेवाले, नीललोहित भगवान् ईश (शंकर)-ने प्रसन्न होकर शत्रुओंके विनाशके लिये जनकको अद्भुत धनुष प्रदान किया था। श्रेष्ठ द्विजो! उस विद्वान् शत्रुनाशक राजा जनकने इस कन्याका दान करनेकी इच्छासे संसारमें यह घोषणा करवायी कि देवता या दानव जो कोई भी इस धनुषको उठानेमें समर्थ होगा, वह सीताको प्राप्त कर सकता है॥ २१—२३॥

१-परशुरामद्वारा पृथ्वीके क्षत्रियशून्य किये जानेके समय स्त्रियोंके मध्य रहकर नकुलने अपनी रक्षा की थी, इसलिये उसे 'नारी-कवच' कहा जाता है।

विज्ञाय रामो बलवान् जनकस्य गृहं प्रभुः।
भञ्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैव हि॥ २४॥

उद्वाह च तां कन्यां पार्वतीमिव शंकरः।
रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः॥ २५॥

ऐसा जानकर बलवान् प्रभु रामने जनकके घर जाकर उस धनुषको उठाकर खेल-खेलमें ही तोड़ डाला। तदनन्तर परम धर्मात्मा रामने उस कन्याका उसी प्रकार पाणिग्रहण किया, जैसे शंकरने पार्वतीका और कार्तिकेयने सेना (देवसेना)-का पाणिग्रहण किया॥ २४-२५॥

ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम्।
रामं ज्येष्ठं सुतं वीरं राजानं कर्तुमारभत्॥ २६॥

तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुभाषिणी।
निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा॥ २७॥

मत्सुतं भरतं वीरं राजानं कर्तुमर्हसि।
पूर्वमेव वरो यस्माद् दत्तो मे भवता यतः॥ २८॥

तदनन्तर बहुत दिन बीत जानेपर राजा दशरथने स्वयं अपने बड़े पुत्र वीर रामको युवराज बनानेका कार्य आरम्भ किया। तब उनकी सौभाग्यशालिनी मधुरभाषिणी कैकेयी नामक पत्नीने भ्रान्तमन होकर पतिको (रामके राज्याभिषेकसे) रोका और कहा कि मेरे वीर पुत्र भरतको राजा बनायें, क्योंकि आपने पहले मुझे वर दे रखा है॥ २६—२८॥

स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः।
बाढमित्यब्रवीद् वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्॥ २९॥

प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः।
ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान्॥ ३०॥

संवत्सराणां चत्वारि दश चैव महाबलः।
उवास तत्र मतिमान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः॥ ३१॥

कदाचिद् वसतोऽरण्ये रावणो नाम राक्षसः।
परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम्॥ ३२॥

उसका वचन सुनकर उस राजाने अत्यन्त दुःखित-मनसे कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो'। तब धर्मको जाननेवाले आत्मवान् अच्युत राम भी पिताके चरणोंमें प्रणामकर (वनवासकी) प्रतिज्ञा कर लक्ष्मणके साथ सपत्नीक वनको चले गये। बुद्धिमान् तथा महाबलवान् प्रभु (श्रीराम) भी चौदह वर्षतक लक्ष्मणके साथ वहाँ (वनमें) रहे। वनमें निवास करते समय कभी रावण नामका राक्षस संन्यासीका वेष धारणकर सीताका हरण कर लिया और उन्हें अपनी पुरी (लंका)-में ले गया॥ २९—३२॥

अदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ।
दुःखशोकाभिसंतप्तौ बभूवतुररिंदमौ॥ ३३॥

शत्रुनाशक राम और लक्ष्मण सीताको न देखकर दुःख एवं शोकसे अत्यन्त संतप्त हो गये और उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं॥ ३३॥

ततः कदाचित् कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः।
वानराणामभूत् सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ३४॥

सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनुमान् नाम वानरः।
वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा॥ ३५॥

स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः।
आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचार ह॥ ३६॥

महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः।
जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम्॥ ३७॥

तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम्।
अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥ ३८॥

अश्रुपूर्णेक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम्।
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणं चात्मसंस्थितम्॥ ३९॥

द्विजोत्तमो! यथासमय अक्लिष्टकर्मा रामकी कपि सुग्रीव तथा वानरोंसे मित्रता हो गयी। वायुपुत्र महातेजस्वी वीर हनुमान् नामक वानर सुग्रीवके अनुगामी और सदा रामके प्रिय थे। वे परम धैर्य धारणकर 'उन सीताको लाऊँगा' इस प्रकार रामसे प्रतिज्ञापूर्वक कहकर सीताको देखनेके लिये तत्पर हो गये तथा सागरपर्यन्त सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगे। (इस प्रकार सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते) सागरमें बसी हुई रावणकी पुरी लंकामें गये। वहाँ उन्होंने राक्षसियोंसे घिरी हुई पवित्र, अश्रुपूर्ण आँखोंवाली, अनिन्दित, रमणीय तथा पवित्र सीताको निर्जन देशमें एक वृक्षके नीचे स्थित देखा। वहाँ भगवती सीता नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले राम तथा आत्मसंयमी लक्ष्मणका स्मरण कर रही थीं॥ ३४—३९॥

निवेदयित्वा चात्मानं सीतायै रहसि स्वयम्।
असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम्॥ ४०॥

एकान्तमें सीताको स्वयं अपना परिचय देकर उनका संदेह मिटानेके लिये उन्होंने (श्रीहनुमान्‌ने) रामकी अंगूठी उन्हें प्रदान की॥ ४०॥

दृष्ट्वाङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम्।
मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फारितेक्षणा॥ ४१॥

समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम्।
नयिष्ये त्वां महाबाहुरुक्त्वा रामं ययौ पुनः॥ ४२॥

निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान्।
तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः॥ ४३॥

पतिकी परम सुन्दर अँगूठीको देखकर प्रीतिके कारण विस्फारित नेत्रोंवाली सीताने रामको (ही) आया हुआ माना। तब सीताको देखकर उन्होंने आश्वासन दिया और कहा—'मैं आपको रामके पास ले चलूँगा।' ऐसा कहकर महाबाहु (हनुमान्) पुनः रामके पास चले आये। आत्मवान् (हनुमान्) रामसे सीता-दर्शनकी बात बताकर सामने खड़े हो गये। राम-लक्ष्मणने उनको साधुवादसे सत्कृत किया॥ ४१—४३॥

ततः स रामो बलवान् सार्धं हनुमता स्वयम्।
लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिं चक्रे हि रक्षसाम्॥ ४४॥
कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः।

सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान् प्रभुः॥ ४५॥

सपत्नीकं च ससुतं सभ्रातृकमरिंदमः।
आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान्॥ ४६॥

तदनन्तर बलवान् रामने हनुमान् तथा लक्ष्मणके साथ राक्षसोंसे स्वयं युद्ध करनेका निश्चय किया। और सैकड़ों वानरोंद्वारा महासमुद्रमें लंका जानेके लिये मार्गके रूपमें पुलका निर्माण किया गया तथा उसी पुलके सहारे महासमुद्रको पारकर शत्रुहन्ता परम धर्मात्मा प्रभु (श्रीराम)-ने वायुपुत्र हनुमान्‌की सहायतासे पत्नियों, पुत्रों तथा भाइयोंसहित रावणको मार डाला और भगवती सीताको वापस ले आये॥ ४४—४६॥

सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम्।
स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः॥ ४७॥
तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शंकरः।
प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम्॥ ४८॥

यत् त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु॥ ४९॥

अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः॥ ५०॥

यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी।
यावत् सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः॥ ५१॥

स्नानं दानं जपः श्राद्धं भविष्यत्यक्षयं कृतम्।
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति॥ ५२॥

राघवने सेतुके मध्यमें चर्माम्बर धारण करनेवाले महादेव ईशानकी लिङ्गरूपमें प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की। (इस रामेश्वर-प्रतिष्ठाके समय) पार्वतीसहित महादेव भगवान् शंकरदेवने प्रत्यक्ष रूपमें श्रेष्ठ वर प्रदान करते हुए श्रीरामसे कहा—'जो द्विजाति तुम्हारे द्वारा स्थापित इस (रामेश्वर) लिंगका दर्शन करेंगे उनके बड़े-से-बड़े पाप नष्ट हो जायँगे। महासमुद्रमें स्नान करनेवालेके अन्य जो भी पाप (अर्थात् उपपातक आदि) हैं वे इस लिंगके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो जायँगे, इसमें संदेह नहीं है। जबतक पर्वत स्थित रहेंगे, जबतक यह पृथ्वी रहेगी और जबतक यह सेतु रहेगा, तबतक मैं गुप्तरूपसे यहाँ प्रतिष्ठित रहूँगा। यहाँ किया गया स्नान, दान, जप तथा श्राद्ध अक्षय होगा। इस (रामेश्वर) लिंगके स्मरण करने मात्रसे ही दिनभरका पाप नष्ट हो जायगा॥ ४७—५२॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुः परिष्वज्य तु राघवम्।
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ५३॥

रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः।
अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः॥ ५४॥

ऐसा कहकर भगवान् शम्भुने रघुवंशी रामका आलिंगन किया और नन्दी तथा अपने गणोंके साथ वे रुद्र (शम्भु) वहीं अन्तर्धान हो गये। भरतके द्वारा अभिषिक्त होकर महाबली, महातेजस्वी तथा धर्मपरायण रामने भी राज्यका पालन किया॥ ५३-५४॥

विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम्।
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शंकरम्॥ ५५॥

विशेष रूपसे उन्होंने सभी ब्राह्मणोंकी पूजा की और अश्वमेध यज्ञके द्वारा यज्ञहन्ता[1] ईश्वर शंकरकी अर्चना की॥ ५५॥

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः।
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः॥ ५६॥

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत्।
नलस्तु निषधस्याभून्नभस्तस्मादजायत॥ ५७॥

नभसः पुण्डरीकाख्यः क्षेमधन्वा च तत्सुतः।
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान्॥ ५८॥

अहीनगुस्तस्य सुतो सहस्वांस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्तु तत्सुतः॥ ५९॥

तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत्।
श्रुतायुरभवत् तस्मादेते इक्ष्वाकुवंशजाः।
सर्वे प्राधान्यतः प्रोक्ताः समासेन द्विजोत्तमाः॥ ६०॥

रामके 'कुश' नामसे विख्यात तथा सुन्दर महान् भाग्यशाली, सभी तत्त्वार्थोंको जाननेवाले बुद्धिमान् 'लव' नामसे विख्यात दो पुत्र हुए। कुशसे अतिथि उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र निषध हुआ। निषधका पुत्र नल और उसका पुत्र नभस हुआ। नभससे पुण्डरीक नामवाला पुत्र हुआ और क्षेमधन्वा उसका पुत्र था। उस क्षेमधन्वाका देवानीक नामक वीर एवं प्रतापी पुत्र हुआ। उस (देवानीक)-का पुत्र अहीनगु और उसका पुत्र सहस्वान् हुआ। उससे चन्द्रावलोक तथा उसका पुत्र तारापीड हुआ। तारापीडसे चन्द्रगिरि तथा चन्द्रगिरिका भानुवित्त हुआ। उस (भानुवित्त)-से श्रुतायु नामक पुत्र हुआ। ये सभी इक्ष्वाकुके वंशज हैं। द्विजोत्तमो! संक्षेपमें इनमें प्रधान-प्रधान (राजाओं)-को बताया गया है॥ ५६—६०॥

य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो स्वर्गलोके महीयते॥ ६१॥

जो इस श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशके वर्णनको सुनेगा, वह सभी पापोंसे निर्मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा॥ ६१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशके राजाओंका वृत्तान्त, यदुवंश-वर्णनमें कार्तवीर्यार्जुनके पाँच पुत्रोंका आख्यान, परम विष्णुभक्त राजा जयध्वजकी कथा, विदेह दानवका पराक्रम तथा जयध्वजद्वारा विष्णुके अनुग्रहसे उसका वध, विश्वामित्रद्वारा विष्णुकी आराधनाका जयध्वजको उपदेश करना और जयध्वजको विष्णुका दर्शन

रोमहर्षण उवाच

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत्।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः॥ १॥
आयुर्मायुरमावायुर्विश्वायुश्चैव वीर्यवान्।
शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः॥ २॥

रोमहर्षणने कहा—इलाका पुत्र राजा पुरूरवा राज्यका पालन करने लगा। उसको इन्द्रके समान तेजस्वी आयु, मायु, अमावायु, वीर्यवान् विश्वायु, शतायु तथा श्रुतायु नामवाले छः पुत्र हुए। ये उर्वशीके दिव्य पुत्र थे॥ १-२॥

आयुषस्तनया वीराः पञ्चैवासन् महौजसः।
स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम्॥ ३॥
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥ ४॥

हमने सुना है कि आयुको स्वर्भानु (राहु)-की कन्या प्रभासे पाँच महान् ओजस्वी पुत्र हुए थे। उनमें नहुष प्रथम (पुत्र) था, जो धर्मज्ञ और लोकमें विख्यात था।

[1] भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञका विध्वंस कराया था इसलिये उनको यज्ञहन्ता कहा जाता है।

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः।
यतिर्ययातिः संयातिरायतिः पञ्चकोऽश्वकः॥ ५ ॥

तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः॥ ६ ॥
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत्॥ ७ ॥

सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठं यदुमनिन्दितम्।
पूरुमेव कनीयांसं पितुर्वचनपालकम्॥ ८ ॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्।
दक्षिणापरयो राजा यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्।
प्रतीच्यामुत्तरायां च द्रुह्युं चानुमकल्पयत्॥ ९ ॥

तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता।
राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशाः॥ १० ॥

यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः।
सहस्रजित् तथा ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽजितो रघुः॥ ११ ॥
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः।
सुताः शतजितोऽप्यासंस्त्रयः परमधार्मिकाः॥ १२ ॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयः परः।
हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥ १३ ॥
तस्य पुत्रोऽभवद् विप्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान्।
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु संजितस्तत्सुतोऽभवत्॥ १४ ॥

महिष्मान् संजितस्याभूद् भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः॥ १५ ॥

दुर्दमस्य सुतो धीमान् धनको नाम वीर्यवान्।
धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः॥ १६ ॥

कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कार्तवीर्योऽर्जुनोऽभवत्॥ १७ ॥

सहस्रबाहुर्द्युतिमान् धनुर्वेदविदां वरः।
तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दनः॥ १८ ॥

तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः॥ १९ ॥

पितरोंकी कन्या विरजासे नहुषको यति, ययाति, संयाति, आयाति तथा पाँचवें अश्वक नामवाले इन्द्रके समान तेजस्वी महाबलशाली पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। इन पाँचोंमेंसे ययाति महान् बलशाली और पराक्रमी था। उसने शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा वृषपर्वाकी असुर-वंशमें उत्पन्न शर्मिष्ठा नामकी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त किया॥ ३—६ ॥

देवयानीने यदु तथा तुर्वसुको जन्म दिया। इसी प्रकार शर्मिष्ठाने भी द्रुह्यु, अनु तथा पूरुको उत्पन्न किया। उस (ययाति)-ने अनिन्दित ज्येष्ठ पुत्र यदुका अतिक्रमणकर पिताके वचनका पालन करनेवाले छोटे पुत्र पूरुको ही (राजपदपर) अभिषिक्त किया॥ ७-८ ॥

राजा ययातिने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसु नामक पुत्रको, दक्षिण-पश्चिम दिशामें ज्येष्ठ पुत्र यदुको, पश्चिममें द्रुह्युको और उत्तर दिशामें अनुको (राजाके रूपमें) नियुक्त किया। उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। महायशस्वी राजा (ययाति) भी पत्नीसहित वन चले गये। यदुके भी देवपुत्रोंके समान सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अजित तथा रघु नामक पाँच पुत्र हुए, उनमें सहस्रजित् सबसे बड़ा था॥ ९—११ ॥

सहस्रजित्का उसीके समान शतजित् नामका पुत्र राजा था। शतजित्के भी हैहय, हय और वेणुहय नामक परम धार्मिक तीन पुत्र थे। हैहयका पुत्र 'धर्म' नामसे विख्यात हुआ॥ १२-१३ ॥

विप्रो! उसका (धर्मका) धर्मनेत्र नामवाला प्रतापी पुत्र हुआ। धर्मनेत्रका कीर्ति और उसका पुत्र संजित हुआ। संजितका महिष्मान् हुआ और उसका पुत्र भद्रश्रेण्य था। भद्रश्रेण्यका दुर्दम नामका पुत्र राजा था। दुर्दमका धनक नामवाला बुद्धिमान् और वीर्यवान् पुत्र था। धनकके लोकमें सम्मानित चार पुत्र हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा चौथा कृतौजा। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ। वह हजार बाहुओंवाला, द्युतिमान् तथा धनुर्वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ था। जमदग्निके पुत्र जनार्दन परशुराम उस (सहस्रार्जुन)-के लिये मृत्युरूप हुए। (अर्थात् परशुरामके द्वारा वह मारा गया)॥ १४—१८ ॥

उस (सहस्रबाहु)-के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पुत्र महारथी, अस्त्र-सम्पन्न, बली, शूर, धर्मात्मा तथा मनस्वी थे॥ १९ ॥

शूरश्च शूरसेनश्च धृष्णः कृष्णस्तथैव च।
जयध्वजश्च बलवान् नारायणपरो नृपः॥ २०॥
शूरसेनादयः सर्वे चत्वारः प्रथितौजसः।
रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्ति स्म शंकरम्॥ २१॥
जयध्वजस्तु मतिमान् देवं नारायणं हरिम्।
जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्परः॥ २२॥
तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ।
ईश्वराराधनरतः पितास्माकमभूदिति॥ २३॥
तानब्रवीन्महातेजा एष धर्मः परो मम।
विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो यन्महीतले॥ २४॥

राज्यं पालयतावश्यं भगवान् पुरुषोत्तमः।
पूजनीयो यतो विष्णुः पालको जगतो हरिः॥ २५॥

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयम्भुवः।
तिस्रस्तु मूर्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः॥ २६॥

सत्त्वात्मा भगवान् विष्णुः संस्थापयति सर्वदा।
सृजेद् ब्रह्मा रजोमूर्तिः संहरेत् तामसो हरः॥ २७॥

तस्मान्महीपतीनां तु राज्यं पालयतामयम्।
आराध्यो भगवान् विष्णुः केशवः केशिमर्दनः॥ २८॥
निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्ये मनस्विनः।
प्रोचुः संहारकृद् रुद्रः पूजनीयो मुमुक्षुभिः॥ २९॥

अयं हि भगवान् रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः।
तमोगुणं समाश्रित्य कल्पान्ते संहरेत् प्रभुः॥ ३०॥

या सा घोरतरा मूर्तिरस्य तेजोमयी परा।
संहरेद् विद्यया सर्वं संसारं शूलभृत् तया॥ ३१॥

ततस्तानब्रवीद् राजा विचिन्त्यासौ जयध्वजः।
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान् हरिः॥ ३२॥

तमूचुर्भ्रातरो रुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः।
मोचयेत् सत्त्वसंयुक्तः पूजयेशं ततो हरम्॥ ३३॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रः प्रहसन् वै जयध्वजः।
स्वधर्मो मुक्तये पन्था नान्यो मुनिभिरिष्यते॥ ३४॥

शूर, शूरसेन, धृष्ण, कृष्ण तथा पाँचवाँ पुत्र राजा जयध्वज बलवान् तथा नारायणका भक्त था। शूरसेन आदि चार पुत्र महात्मा एवं अति तेजस्वी और रुद्रके भक्त थे। वे सभी शंकरकी पूजा करते थे। धर्मपरायण एवं बुद्धिमान् जयध्वज नारायण देव हरि विष्णु देवताकी शरणमें गया। अन्य पुत्रों (उसके चार भाइयों)-ने उससे कहा—अनघ! यह तुम्हारा धर्म नहीं है। हमारे पिता शंकरकी आराधना करते थे॥ २०—२३॥

इसपर महातेजस्वी (जयध्वज)-ने उनसे कहा—यही मेरा श्रेष्ठ धर्म है। पृथ्वीपर जो भी राजा हुए हैं, वे सभी विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। राज्यका परिपालन करनेवालोंको चाहिये कि भगवान् पुरुषोत्तमकी अवश्य आराधना करें। क्योंकि हरि विष्णु संसारके पालनकर्ता हैं। स्वयम्भू (विष्णु)-की सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी—ये तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं, जो क्रमशः सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली हैं। सत्त्वगुणसम्पन्न भगवान् विष्णु नित्य पालन करते हैं। रजोमूर्ति ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और तमोगुणात्मक हर संहार करते हैं। अतएव राज्यका पालन करनेवाले राजाओंके लिये केशीका मर्दन करनेवाले केशव भगवान् विष्णु आराधनीय हैं॥ २४—२८॥

उस (जयध्वज)-का वचन सुनकर उसके दूसरे मनस्वी भाइयोंने कहा—मुक्तिप्राप्तिकी इच्छा करनेवालोंके लिये संहार करनेवाले रुद्र ही पूजनीय हैं। ये ही कल्याणकारी प्रभु भगवान् रुद्र कल्पान्तमें तमोगुणका आश्रय लेकर इस सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। इनकी जो अति घोर तेजोमयी परा मूर्ति है, वही विद्या (ज्ञान-विवेक)-स्वरूप है। शक्ति-रूपमें उसीके द्वारा त्रिशूल धारण करनेवाले शंकर सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं॥ २९—३१॥

तब वह राजा जयध्वज कुछ विचार करके उनसे बोला—सत्त्वगुणद्वारा ही प्राणी मुक्त होता है और वे भगवान् सत्त्वात्मक हैं॥ ३२॥

इसपर भाइयोंने उससे कहा—सात्त्विकजनोंके द्वारा सेवित रुद्र सत्त्वगुणसे सम्पन्न होकर मुक्त करते हैं, अतः ईश्वर हरकी पूजा करो। तब राजपुत्र जयध्वजने हँसते हुए कहा—मुक्तिके लिये स्वधर्म-पालन ही एकमात्र मार्ग है। मुनिलोग अन्य (धर्म)-की इच्छा नहीं करते॥ ३३-३४॥

तथा च वैष्णवी शक्तिर्नृपाणां देवता सदा।
आराधनं परो धर्मो मुरारेरमितौजसः॥ ३५॥

साथ ही राजाओंके लिये वैष्णवी शक्ति ही सदा देवता-रूप है। अमित तेजस्वी मुरारिकी आराधना करना परम धर्म है॥ ३५॥

तमब्रवीद् राजपुत्रः कृष्णो मतिमतां वरः।
यदर्जुनोऽस्मज्जनकः स्वधर्मं कृतवानिति॥ ३६॥

एवं विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद् वचः।
प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते यत् तथैव तत्॥ ३७॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजपुत्र कृष्ण (जयध्वजके भाई)-ने उससे (जयध्वजसे) कहा—हम लोगोंके पिता अर्जुनने (सहस्रार्जुन या कार्तवीर्यार्जुनने) जिसे स्वधर्म माना है (वही हम लोगोंको भी मान्य होना चाहिये)। इस प्रकार विवादके बढ़ जानेपर शूरसेन (जयध्वजके दूसरे भाई)-ने यह बात कही—इस विषयमें ऋषि ही प्रमाण हैं, अतः वे जैसा कहेंगे, हम लोगोंको वैसा ही करना चाहिये॥ ३६-३७॥

ततस्ते राजशार्दूलाः पप्रच्छुर्ब्रह्मवादिनः।
गत्वा सर्वे सुसंरब्धाः सप्तर्षीणां तदाश्रमम्॥ ३८॥
तानब्रुवंस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थतः।
या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता॥ ३९॥

किन्तु कार्यविशेषेण पूजिताश्चेष्टदा नृणाम्।
विशेषात् सर्वदा नायं नियमो ह्यन्यथा नृपाः॥ ४०॥

नृपाणां दैवतं विष्णुस्तथैव च पुरंदरः।
विप्राणामग्निरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक्॥ ४१॥

देवानां दैवतं विष्णुर्दानवानां त्रिशूलभृत्।
गन्धर्वाणां तथा सोमो यक्षाणामपि कथ्यते॥ ४२॥

तदनन्तर वे सभी राजश्रेष्ठ तैयार होकर सप्तर्षियोंके आश्रममें गये और (उन) ब्रह्मवादियोंसे पूछा—वसिष्ठ आदि उन मुनियोंने तत्त्वकी बात बताते हुए उनसे कहा—जिस पुरुषको जो देवता अभिमत हो, वही उसका अभीष्ट देवता है। किंतु किसी विशेष कार्यसे पूजित (तत्तद्-देवता) मनुष्योंको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। राजाओ! विशेष अर्थात् किसी उद्देश्यसे की जानेवाली पूजा सदा नहीं की जाती, क्योंकि कामनापरक आराधनाके नियम दूसरे प्रकारके होते हैं (वे सदा सब स्थितियोंमें पालनीय नहीं हो सकते)। राजाओंके देवता विष्णु और इन्द्र हैं। ब्राह्मणोंके देवता अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा तथा पिनाकधारी शिव हैं। देवताओंके देवता विष्णु और दानवोंके त्रिशूलधारी शिव हैं। गन्धर्वों और यक्षोंके देवता सोम कहे गये हैं॥ ३८—४२॥

विद्याधराणां वाग्देवी साध्यानां भगवान् रविः।
रक्षसां शंकरो रुद्रः किंनराणां च पार्वती॥ ४३॥
ऋषीणां दैवतं ब्रह्मा महादेवश्च शूलभृत्।
मनूनां स्यादुमा देवी तथा विष्णुः सभास्करः॥ ४४॥
गृहस्थानां च सर्वे स्युर्ब्रह्मा वै ब्रह्मचारिणाम्।
वैखानसानामर्कः स्याद् यतीनां च महेश्वरः॥ ४५॥
भूतानां भगवान् रुद्रः कूष्माण्डानां विनायकः।
सर्वेषां भगवान् ब्रह्मा देवदेवः प्रजापतिः॥ ४६॥

विद्याधरोंके देवता वाग्देवी तथा साध्योंके भगवान् सूर्य हैं। राक्षसोंके शंकर रुद्र और किंनरोंकी देवता पार्वती हैं। ऋषियोंके देवता ब्रह्मा और त्रिशूलधारी महादेव हैं। मनुष्योंके देवता उमा देवी, विष्णु तथा सूर्य हैं। गृहस्थोंके लिये सभी देवता (पूज्य) हैं। ब्रह्मचारियोंके देवता ब्रह्मा, वैखानसोंके सूर्य तथा संन्यासियोंके महेश्वर देवता हैं। भूतोंके भगवान् रुद्र, कूष्माण्डोंके विनायक और देवाधिदेव प्रजापति भगवान् ब्रह्मा सभीके देवता हैं॥ ४३—४६॥

इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्वयं देवोऽभ्यभाषत।
तस्माज्जयध्वजो नूनं विष्णवाराधनमर्हति॥ ४७॥

तान् प्रणम्याथ ते जग्मुः पुरीं परमशोभनाम्।
पालयाञ्चक्रिरे पृथ्वीं जित्वा सर्वरिपून् रणे॥ ४८॥

(सप्तर्षियोंने कहा) स्वयं भगवान् ब्रह्माने ही यह कहा है, इसलिये निश्चित ही जयध्वज विष्णुकी आराधना करनेके योग्य हैं। तब वे सभी उन्हें प्रणामकर परम सुन्दर अपनी पुरीको चले गये और युद्धमें सभी शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीका पालन करने लगे॥ ४७-४८॥

ततः कदाचिद् विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानवः।
भीषणः सर्वसत्त्वानां पुरीं तेषां समाययौ॥ ४९॥

दंष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपमः।
शूलमादाय सूर्याभं नादयन् वै दिशो दश॥ ५०॥

तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्र ये निवसन्ति ते।
तत्यजुर्जीवितं त्वन्ये दुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥ ५१॥
ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्तवीर्यात्मजास्तदा।
युयुधुर्दानवं शक्तिगिरिकूटासिमुद्गरैः॥ ५२॥

तान् सर्वान् दानवो विप्राः शूलेन प्रहसन्निव।
वारयामास घोरात्मा कल्पान्ते भैरवो यथा॥ ५३॥

शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः।
युद्धाय कृतसंरम्भा विदेहं त्वभिदुद्रुवुः॥ ५४॥
शूरोऽस्त्रं प्राहिणोद् रौद्रं शूरसेनस्तु वारुणम्।
प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च॥ ५५॥
जयध्वजश्च कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च।
भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः॥ ५६॥
ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम्।
स्पृष्ट्वा मन्त्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च॥ ५७॥
सम्प्राप्य सा गदाऽस्योरो विदेहस्य शिलोपमम्।
न दानवं चालयितुं शशाकान्तकसंनिभम्॥ ५८॥
दुद्रुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्ट्वा तस्यातिपौरुषम्।
जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम्॥ ५९॥

विष्णुं ग्रसिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम्।
त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपतिं पीतवाससम्॥ ६०॥

ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम्।
आदेशाद् वासुदेवस्य भक्तानुग्रहकारणात्॥ ६१॥

जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वा नारायणं नृपः।
प्राहिणोद् वै विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरिः॥ ६२॥
सम्प्राप्य तस्य घोरस्य स्कन्धदेशं सुदर्शनम्।
पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति॥ ६३॥

तस्मिन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपाः।
समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरं चाप्यपूजयन्॥ ६४॥

श्रुत्वाजगाम भगवान् जयध्वजपराक्रमम्।
कार्तवीर्यसुतं द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः॥ ६५॥

विप्रेन्द्रो! तदनन्तर किसी दिन सभी प्राणियोंके लिये भयंकर विदेह नामका दानव उनकी पुरीमें चला आया। भयंकर दाढ़ोंवाला, प्रलयकालीन अग्निके समान उद्दीप्त (वह दानव) सूर्यके समान चमकते हुए शूलको लेकर दसों दिशाओंमें गरजने लगा। उसकी (भयंकर) गर्जनाको सुनकर वहाँ रहनेवाले कुछ मनुष्योंने प्राण त्याग दिये और दूसरे भयसे विह्वल होकर भाग पड़े॥ ४९—५१॥

तब कार्तवीर्यके सभी पुत्र सावधान होकर शक्ति (सेना), पर्वतशिला, तलवार तथा मुद्गरोंसे उस दानवके साथ युद्ध करने लगे। ब्राह्मणो! उस भयंकर दानवने शूलसे उन सभीका हँसते हुए वैसे ही निवारण कर दिया जैसे प्रलयकालमें भैरव करते हैं। तब महाबली शूरसेन आदि वे पाँच राजा युद्धके लिये तैयारी कर विदेह दानवपर टूट पड़े॥ ५२—५४॥

शूरने रौद्रास्त्र, शूरसेनने वारुणास्त्र, कृष्णने प्राजापत्यास्त्र, धृष्णने वायव्यास्त्र और जयध्वजने कौबेर, ऐन्द्र तथा आग्नेयास्त्र चलाया, किंतु उस दानवने शूलसे उन सभी अस्त्रोंको तोड़ डाला। तब महावीर्यशाली कृष्णने भीषण गदा लेकर मन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित कर वेगपूर्वक फेंका और गर्जना की। वह गदा उस विदेहकी पत्थरके समान छातीपर लगकर भी यमराज-तुल्य उस दानवको विचलित करनेमें समर्थ न हो सकी॥ ५५—५८॥

उसके महान् पौरुषको देखकर भयग्रस्त हो वे सभी भागने लगे। तब बुद्धिमान् जयध्वजने अप्रमेय, अनामय, लोकादि, ग्रसिष्णु, त्राणकर्ता, पूर्वपुरुष, श्रीपति और पीताम्बरधारी जगत्पति विष्णुका स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये वासुदेवकी आज्ञासे दस हजार सूर्योंके समान प्रकाशमान चक्र प्रकट हुआ। राजा (जयध्वज)-ने जगद्योनि नारायणका ध्यानकर उस चक्रको ग्रहण किया और विदेह (दानव)-पर उसी प्रकार चलाया जैसे विष्णु दानवोंपर चलाते हैं॥ ५९—६२॥

सुदर्शनचक्र उस भयंकर दानवके कंधेपर लगा और उसने उसके पर्वत-शिखरके समान सिरको पृथ्वीपर गिरा दिया। देवताओंके शत्रु उस (विदेह दानव)-के मारे जानेपर राजा शूर आदि सभी भाई अपनी रमणीय पुरीमें चले आये और उन्होंने भाई (जयध्वज)-की पूजा की। महामुनि भगवान् विश्वामित्र जयध्वजके पराक्रमको सुनकर उस कीर्तवीर्य पुत्रको देखने आये॥ ६३—६५॥

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तमानसः।
समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः॥ ६६॥

उवाच भगवान् घोरः प्रसादाद् भवतोऽसुरः।
निपातितो मया संख्ये विदेहो दानवेश्वरः॥ ६७॥

त्वद्वाक्याच्छिन्नसंदेहो विष्णुं सत्यपराक्रमम्।
प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः॥ ६८॥

यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्।
कथं केन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः॥ ६९॥

कोऽयं नारायणो देवः किम्प्रभावश्च सुव्रत।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे॥ ७०॥

उनको (विश्वामित्रको) आया देखकर आश्चर्यचकित मनवाले राजा (जयध्वज)-ने सुन्दर आसनपर उन्हें बिठाया और भक्तिभावसे उनकी पूजा की तथा कहा— भगवन्! आपकी ही कृपासे मैंने युद्धमें भयंकर असुर दानवेश्वर विदेहको मार गिराया। आपके कहनेसे मैं संशयमुक्त होकर सत्यपराक्रमी विष्णुकी शरणमें गया और उन्होंने मेरे ऊपर शुभ अनुग्रह किया। कमलदलके समान नेत्रवाले, परम ईशान विष्णुका मैं पूजन करूँगा, उन ईश्वर हरिका किस विधानसे किस प्रकार पूजन किया जाना चाहिये। सुव्रत! ये नारायण देव कौन हैं? उनका क्या प्रभाव है? यह सब मुझे बतलाइये, मुझे (इस विषयमें) अत्यधिक कौतूहल है॥ ६६—७०॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन् सर्वमिदं जगत्।
स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते॥ ७१॥

स्ववर्णाश्रमधर्मेण पूज्योऽयं पुरुषोत्तमः।
अकामहतभावेन समाराध्यो न चान्यथा॥ ७२॥

विश्वामित्रने कहा— जिनसे सभी प्राणियोंकी प्रवृत्ति होती है और जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् (प्रतिष्ठित) है, वे विष्णु सभी प्राणियोंके आत्मरूप हैं, उनका आश्रय ग्रहण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अपने-अपने वर्ण और आश्रमधर्ममें स्थित रहते हुए केवल निष्कामभावसे उन पुरुषोत्तम (विष्णु)-का पूजन करना चाहिये अन्य किसी भावसे नहीं॥ ७१-७२॥

एतावदुक्त्वा भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः।
शूराद्यैः पूजितो विप्रा जगामाथ स्वमालयम्॥ ७३॥

अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्।
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम्॥ ७४॥

इतना कहकर महामुनि भगवान् विश्वामित्र उन शूरसेन आदिके द्वारा पूजित होकर अपने निवास-स्थानको चले गये। तदनन्तर शूरसेन आदिने यज्ञके द्वारा कामनारहित होकर यज्ञ-गम्य उन अव्यय रुद्रदेव महेश्वरका यजन किया॥ ७३-७४॥

तान् वसिष्ठस्तु भगवान् याजयामास सर्ववित्।
गौतमोऽत्रिरगस्त्यश्च सर्वे रुद्रपरायणाः॥ ७५॥

विश्वामित्रस्तु भगवान् जयध्वजमरिंदमम्।
याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम्॥ ७६॥

तस्य यज्ञे महायोगी साक्षात् देवः स्वयं हरिः।
आविरासीत् स भगवान् तदद्भुतमिवाभवत्॥ ७७॥

सर्वज्ञ भगवान् वसिष्ठ तथा रुद्रभक्त, गौतम, अत्रि तथा अगस्त्यने उन लोगोंका यज्ञ कराया। भगवान् विश्वामित्रने शत्रुओंका दमन करनेवाले जयध्वजसे प्राणियोंके आदि कारण आदिदेव जनार्दन-सम्बन्धी (विष्णु) यज्ञ कराया। उस (जयध्वज)-के यज्ञमें महायोगी देव स्वयं भगवान् हरि साक्षात् प्रकट हुए। यह एक अद्भुत बात हुई॥ ७५—७७॥

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम्।
सर्वपापविमुक्तात्मा विष्णुलोकं स गच्छति॥ ७८॥

जो जयध्वजके इस पराक्रमको नित्य सुनेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करेगा॥ ७८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

जयध्वजके वंश-वर्णनमें राजा दुर्जयका आख्यान, महामुनि कण्वद्वारा दुर्जयको वाराणसीके विश्वेश्वर-लिंगका माहात्म्य बतलाना, दुर्जयका वाराणसी जाकर पाप-मुक्त होना तथा सहस्त्रजित्-वंशका वर्णन

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत् तालजङ्घ इति स्मृतः।
शतपुत्रास्तु तस्यासन् तालजङ्घाः प्रकीर्तिताः॥ १ ॥
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः।
वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्मिणः॥ २ ॥
वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक्॥ ३ ॥
वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनन्त इत्युत।
दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः॥ ४ ॥
तस्य भार्या रूपवती गुणैः सर्वैरलंकृता।
पतिव्रतासीत् पतिना स्वधर्मपरिपालिका॥ ५ ॥

सूतजीने कहा—जयध्वजका एक पुत्र था जो तालजङ्घ नामसे प्रसिद्ध था। उसके सौ पुत्र हुए जो तालजङ्घ ही कहलाते थे। उनमें वीतिहोत्र नामका महान् बलवान् राजा सबसे बड़ा था। दूसरे वृष इत्यादि नामवाले यादव पुण्यकर्मा थे। उनमें वृष वंशको बढ़ानेवाला था, उसका मधु नामक पुत्र हुआ। मधुके सौ पुत्र हुए, किंतु उनमें वृषण ही उस (मधु)-का वंशधर हुआ। वीतिहोत्रका भी विश्रुत अथवा अनन्त नामवाला एक पुत्र हुआ। उसका पुत्र दुर्जय हुआ जो सभी शास्त्रोंका ज्ञाता था। उसकी भार्या रूपवती तथा सभी गुणोंसे अलंकृत तथा पतिव्रता थी, वह पति दुर्जयके साथ अपने धर्मका पालन करती थी॥ १—५॥

स कदाचिन्महाभागः कालिन्दीतीरसंस्थिताम्।
अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरस्वनाम्॥ ६ ॥
ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै।
प्रोवाच सुचिरं कालं देवि रन्तुं मयार्हसि॥ ७ ॥
सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम्।
रेमे तेन चिरं कालं कामदेवमिवापरम्॥ ८ ॥

किसी समय उस महाभाग्यशाली (दुर्जय)-ने कालिन्दी नदीके किनारे बैठी हुई मधुर स्वरमें गीत गाती हुई देवी उर्वशीको देखा। तब कामके द्वारा विचलित मनवाला वह उसके समीपमें गया और कहने लगा—'देवि! चिरकालतक मेरे साथ रमण करो'। रूप और लावण्यसे सम्पन्न तथा दूसरे कामदेवके समान उस राजाको देखकर उस देवीने चिरकालतक उसके साथ रमण किया॥ ६—८॥

कालात् प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम्।
गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्ती साब्रवीद् वचः॥ ९ ॥
न ह्यनेनोपभोगेन भवता राजसुन्दर।
प्रीतिः संजायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः॥ १०॥

बहुत समयके बाद ज्ञान होनेपर राजाने उस रमणीय उर्वशीसे कहा—'अब मैं अपनी सुन्दर पुरीको जाऊँगा।' इसपर वह हँसते हुए कहने लगी—राजसुन्दर! आपके साथ इतने उपभोगसे मुझे प्रसन्नता (संतुष्टि) नहीं हुई है, अतः पुनः एक वर्षतक यहाँ और ठहरें॥ ९-१०॥

तामब्रवीत् स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरं पुरीम्।
आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि॥ ११॥
तमब्रवीत् सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते।
नान्ययाप्सरसा तावद् रन्तव्यं भवता पुनः॥ १२॥
ओमित्युक्त्वा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम्।
गत्वा पतिव्रतां पत्नीं दृष्ट्वा भीतोऽभवन्नृपः॥ १३॥

इसपर बुद्धिमान् (राजा)-ने उस (उर्वशी)-से कहा—मैं अपनी पुरीमें जाकर पुनः शीघ्र ही यहाँ वापस लौटूँगा, इसलिये मुझे जानेकी आज्ञा दो। उस सुभगाने उससे कहा—राजन्! वैसा ही कीजिये, किंतु तबतक आप पुनः किसी अन्य अप्सराके साथ रमण न करें। 'अच्छा' ऐसा कहकर वह शीघ्र ही परम शोभन अपनी पुरीको चला गया। (पुरीमें) जाकर अपनी पतिव्रता पत्नीको देखकर वह राजा भयभीत हो गया॥ ११—१३॥

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता।
भीतं प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा॥ १४॥

स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रवर्तते।
तद् ब्रूहि मे यथा तत्त्वं न राज्ञां कीर्तये त्विदम्॥ १५॥

उस राजाकी पीन पयोधरोंवाली उस गुणवती तथा पतिव्रता भार्याने डरे हुए (पति)-को देखकर प्रसन्न वाणीसे कहा—स्वामिन्! आज आप डर क्यों रहे हैं, जो भी बात हो मुझे सत्य-सत्य बतलायें। इस प्रकारका भय राजाओंके लिये कीर्तिकर नहीं है॥ १४-१५॥

स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतचेतनः।
नोवाच किंचिन्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा॥ १६॥

न भेतव्यं त्वया स्वामिन् कार्यं पापविशोधनम्।
भीते त्वयि महाराज राष्ट्रं ते नाशमेष्यति॥ १७॥

उसकी बात सुनकर उस (राजा)-का मन लज्जासे झुक गया। राजा कुछ भी नहीं बोला, किंतु उस (रानी)-ने ज्ञानदृष्टिसे (सब कुछ) जान लिया। (वह बोली—) स्वामिन्! आपको डरना नहीं चाहिये। पापका प्रायश्चित्त (शोधन) करना चाहिये। हे महाराज! आपके भयभीत रहनेसे आपका राष्ट्र नष्ट हो जायगा॥ १६-१७॥

तदा स राजा द्युतिमान् निर्गत्य तु पुरात् ततः।
गत्वा कण्वाश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा तत्र महामुनिम्॥ १८॥

निशम्य कण्ववदनात् प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।
जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिश्य महाबलः॥ १९॥

सोऽपश्यत् पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम्।
भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया॥ २०॥

वीक्ष्य मालाममित्रघ्नः सस्माराप्सरसां वराम्।
उर्वशीं तां मनश्चक्रे तस्या एवेयमर्हति॥ २१॥

तब वह द्युतिमान् राजा अपने नगरसे बाहर निकलकर पवित्र कण्वके आश्रममें गया। वहाँ महामुनि (कण्व)-का दर्शनकर तथा कण्वके मुखसे प्रायश्चित्तकी कल्याणकारी विधि सुनकर प्रायश्चित्तके द्वारा आत्मशुद्धिके उद्देश्यसे वह महाबलवान् (राजा दुर्जय) हिमालय पर्वतकी ओर गया। उस राजेन्द्रने मार्गमें (जाते समय) आकाशमें अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए गन्धर्वश्रेष्ठोंमें उत्तम एक गन्धर्वको देखा, जो दिव्य मालासे विभूषित था। मालाको देखकर शत्रुओंका विनाश करनेवाले (उस राजाको) श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीका स्मरण हो आया। उसने मनमें विचार किया कि यह (माला) तो उस (उर्वशी)-के ही योग्य है॥ १८—२१॥

सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि।
चकार सुमहद् युद्धं मालामादातुमुद्यतः॥ २२॥

विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्जयो द्विजाः।
जगाम तामप्सरसं कालिन्दीं द्रष्टुमादरात्॥ २३॥

अदृष्ट्वाप्सरसं तत्र कामबाणाभिपीडितः।
बभ्राम सकलां पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम्॥ २४॥

आक्रम्य हिमवत्पार्श्वमुर्वशीदर्शनोत्सुकः।
जगाम शैलप्रवरं हेमकूटमिति श्रुतम्॥ २५॥

तब माला प्राप्त करनेको उद्यत उस अत्यन्त कामुक राजाने उस गन्धर्वके साथ महान् युद्ध किया। ब्राह्मणो! युद्धमें गन्धर्वोंको जीतकर और माला लेकर वह दुर्जय उस अप्सराको देखनेके लिये आदरपूर्वक कालिन्दीके किनारे गया। वहाँ अप्सराको न देखकर कामदेवके बाणसे अत्यन्त पीड़ित वह सात द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूमने लगा। उर्वशीके दर्शनके लिये उत्सुक वह हिमालयके पार्श्वभागको पारकर उस श्रेष्ठ पर्वतपर पहुँचा जो 'हेमकूट' नामसे विख्यात है॥ २२—२५॥

तत्र तत्राप्सरोवर्या दृष्ट्वा तं सिंहविक्रमम्।
कामं संदधिरे घोरं भूषितं चित्रमालया॥ २६॥

संस्मरन्नुर्वशीवाक्यं तस्यां संसक्तमानसः।
न पश्यति स्म ताः सर्वा गिरिशृङ्गाणि जग्मिवान्॥ २७॥

वहाँ उन-उन स्थानोंमें रहनेवाली वे श्रेष्ठ अप्सराएँ उस विचित्र मालासे विभूषित एवं सिंहके समान पराक्रमवाले राजाको देखकर अत्यन्त कामासक्त हो गयीं। उर्वशीके वाक्यका स्मरण करते हुए और उसीमें आसक्त मनवाले उस राजाने उन सभी (अप्सराओं)-को नहीं देखा और वह पर्वतोंके शिखरोंपर चला गया॥ २६-२७॥

तत्राप्यप्सरसं दिव्यामदृष्ट्वा कामपीडितः।
देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः॥ २८॥

स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम्।
भेजे शृङ्गाण्यतिक्रम्य स्वबाहुबलभावितः॥ २९॥

स तस्य तीरे सुभगां चरन्तीमतिलालसाम्।
दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालां ददौ पुनः॥ ३०॥

वहाँ भी दिव्य अप्सरा (उर्वशी)-को न देखकर देवताओंके समान पराक्रमवाला वह कामपीड़ित (राजा) देवताओंके स्थान महामेरुपर गया। अपने बाहुबलके प्रभावसे गिरिशिखरोंको पार करता हुआ वह तीनों लोकोंमें विख्यात 'मानस' नामक सरोवरपर पहुँचा। उसने उसके (मानसरोवरके) किनारेपर विचरण करती हुई सुन्दर अङ्गोंवाली अत्यन्त स्नेहमयी सुन्दरी (उर्वशी)-को देखा और वह माला उसे दे दी॥ २८—३०॥

स मालया तदा देवीं भूषितां प्रेक्ष्य मोहितः।
रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरं तया॥ ३१॥

अथोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमब्रवीत्।
किं कृतं भवता पूर्वं पुरीं गत्वा वृथा नृप॥ ३२॥

तब उस देवीको मालासे विभूषित देखकर वह मोहित हो गया तथा अपनेको कृतार्थ समझते हुए उसने चिरकालतक उसके साथ रमण किया। अनन्तर उर्वशीने श्रेष्ठ राजासे कहा—राजन्! आपने पहले पुरीमें जाकर क्या किया, व्यर्थ ही आप वहाँ गये॥ ३१-३२॥

स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत् समुदीरितम्।
कण्वस्य दर्शनं चैव मालापहरणं तथा॥ ३३॥

तब उसने पत्नीद्वारा कही गयी वह बात, कण्व ऋषिका दर्शन तथा मालाका अपहरण—सभी कुछ उसे बता दिया॥ ३३॥

श्रुत्वैतद् व्याहृतं तेन गच्छेत्याह हितैषिणी।
शापं दास्यति ते कण्वो ममापि भवतः प्रिया॥ ३४॥

तयासकृन्महाराजः प्रोक्तोऽपि मदमोहितः।
न तत्याजाथ तत्पार्श्वं तत्र संन्यस्तमानसः॥ ३५॥

उसके द्वारा कही गयी इन बातोंको सुनकर हित चाहनेवाली (उस उर्वशी)-ने 'आप चले जायँ'—ऐसा कहा। अन्यथा आपको कण्व शाप दे देंगे और आपकी प्रिया भी मुझे शाप दे देगी। बार-बार उसके कहनेपर भी (कामरूपी) मदसे मोहित हुए महाराजने उसका साथ नहीं छोड़ा, उसमें ही मन लगाये रखा॥ ३४-३५॥

तदोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम्।
सरोमशं पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा॥ ३६॥

तस्यां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम्।
धिङ्मामिति विनिश्चित्य तपः कर्तुं समारभत्॥ ३७॥

संवत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः।
भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः॥ ३८॥

तदनन्तर इच्छानुसार रूप धारण कर लेनेवाली उर्वशी राजाको रोमोंसे युक्त, पिङ्गल वर्णके नेत्रोंवाला अपना उत्कट रूप सदा दिखलाने लगी। (उसका वह वीभत्स रूप देखकर) उसके प्रति विरक्त मनवाले राजाने कण्व (मुनि)-द्वारा कही गयी बातका स्मरणकर 'मुझे धिक्कार है' ऐसा निश्चयकर तप करना प्रारम्भ किया। राजाने बारह वर्षतक कन्द-मूल और फलका आहार किया और पुनः बारह वर्षोंतक केवल वायुका ही भक्षण किया॥ ३६—३८॥

गत्वा कण्वाश्रमं भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।
वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम्॥ ३९॥

वीक्ष्य तं राजशार्दूलं प्रसन्नो भगवानृषिः।
कर्तुकामो हि निर्बीजं तस्याघमिदमब्रवीत्॥ ४०॥

कण्वके आश्रममें जाकर राजाने डरते-डरते अप्सराके साथ निवास करने और पुनः उत्तम तपस्या करनेकी सारी बातें उन्हें बता दीं। उस श्रेष्ठ राजाको देखकर प्रसन्न हुए भगवान् ऋषि (कण्व)-ने उसके पापको समूल नष्ट करनेकी इच्छासे यह कहा—॥ ३९-४०॥

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम्।
आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः॥ ४१॥

स्नात्वा संतर्प्य विधिवद् गङ्गायां देवताः पितॄन्।
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्बिषान्मोक्ष्यसेऽखिलात्॥ ४२॥

कण्व बोले—(राजन्! तुम) ईश्वर जहाँ विशेषरूपसे निवास करते हैं, उस दिव्य वाराणसीपुरीमें जाओ। संसारको मुक्त करनेके लिये महेश्वर देव वहाँ रहते हैं। गङ्गामें स्नानकर विधिपूर्वक देवताओं एवं पितरोंका तर्पणकर विश्वेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे तुम सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाओगे॥ ४१-४२॥

प्रणम्य शिरसा कण्वमनुज्ञाप्य च दुर्जयः।
वाराणस्यां हरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत् ततः॥ ४३॥

इसके बाद कण्वको सिरसे प्रणामकर और उनकी आज्ञा प्राप्तकर वह दुर्जय वाराणसीमें गया और भगवान् शंकरका दर्शनकर पापसे मुक्त हो गया॥ ४३॥

जगाम स्वपुरीं शुभ्रां पालयामास मेदिनीम्।
याजयामास तं कण्वो याचितो घृणया मुनिः॥ ४४॥

तस्य पुत्रोऽथ मतिमान् सुप्रतीक इति श्रुतः।
बभूव जातमात्रं तं राजानमुपतस्थिरे॥ ४५॥

उर्वश्यां च महावीर्याः सप्त देवसुतोपमाः।
कन्या जगृहिरे सर्वा गन्धर्वदयिता द्विजाः॥ ४६॥

(तदनन्तर वह) अपनी सुन्दर पुरीमें जाकर पृथ्वीका पालन करने लगा। प्रार्थना करनेपर कण्व मुनिने कृपा करके उसका यज्ञ कराया। उसका बुद्धिमान् पुत्र 'सुप्रतीक' इस नामसे विख्यात हुआ। उत्पन्न होते ही उसे (लोगोंने) राजा मान लिया। ब्राह्मणो! उर्वशीसे देवपुत्रोंके समान महान् वीर्यवान् सात पुत्र हुए। उन्होंने गन्धर्वोंकी कन्याओंको अपनी पत्नी बनाया॥ ४४—४६॥

एष वः कथितः सम्यक् सहस्त्रजित उत्तमः।
वंशः पापहरो नृणां क्रोष्टोरपि निबोधत॥ ४७॥

आप लोगोंसे (मैंने) यह मनुष्योंके पापको नष्ट करनेवाला सहस्त्रजित्का उत्तम वंश भलीभाँति बतलाया। अब क्रोष्टुके वंशको भी सुनें॥ ४७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

यदुवंश-वर्णनमें क्रोष्टुवंशी राजाओंका वृत्तान्त, राजा नवरथकी कथा, सात्त्वतवंश-वर्णनमें अक्रूरकी उत्पत्ति, राजा आनकदुन्दुभिका आख्यान, कंस एवं वसुदेव-देवकीकी उत्पत्ति, वसुदेवका वंश-वर्णन, देवकीके अन्य पुत्रोंकी उत्पत्ति, रोहिणीसे संकर्षण-बलराम तथा देवकीसे श्रीकृष्णका आविर्भाव,वासुदेव कृष्णका वंश-वर्णन

सूत उवाच

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवानिति श्रुतिः।
तस्य पुत्रो महान् स्वातिरुशद्गुस्तत्सुतोऽभवत्॥ १॥
उशद्गोरभवत् पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली।
अथ चैत्ररथिर्लोके शशबिन्दुरिति स्मृतः॥ २॥
तस्य पुत्रः पृथुयशा राजाभूद् धर्मतत्परः।
पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात् पृथुजयोऽभवत्॥ ३॥

सूतजीने कहा—क्रोष्टुका एक पुत्र हुआ जो वृजिनीवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका महान् पुत्र स्वाति हुआ और उसका पुत्र उशद्गु हुआ। उशद्गुका चित्ररथ नामका बलवान् पुत्र हुआ। चित्ररथका पुत्र लोकमें शशबिन्दु नामसे विख्यात हुआ। उसका पृथुयशा नामवाला पुत्र धर्मपरायण राजा हुआ। उसका पुत्र पृथुकर्मा और उससे पृथुजय हुआ॥ १—३॥

पृथुकीर्तिरभूत् तस्मात् पृथुदानस्ततोऽभवत्।
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत् पृथुसत्तमः॥ ४॥

उशना तस्य पुत्रोऽभूत् सितेषुस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्याभूद् रुक्मकवचः परावृत् तस्य सत्तमाः॥ ५॥

परावृतः सुतो जज्ञे ज्यामघो लोकविश्रुतः।
तस्माद् विदर्भः संजज्ञे विदर्भात् क्रथकैशिकौ॥ ६॥

रोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृपः।
धृतिस्तस्याभवत् पुत्रः संस्तस्तस्याप्यभूत् सुतः॥ ७॥

संस्तस्य पुत्रो बलवान् नाम्ना विश्वसहस्तु सः।
तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रजावान् कौशिकस्ततः।
अभूत् तस्य सुतो धीमान् सुमन्तुस्तत्सुतोऽनलः॥ ८॥

कैशिकस्य सुतश्चेदिश्चैद्यास्तस्याभवन् सुताः।
तेषां प्रधानो ज्योतिष्मान् वपुष्मांस्तत्सुतोऽभवत्॥ ९॥

वपुष्मतो बृहन्मेधा श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः॥ १०॥

क्रथस्याप्यभवत् कुन्तिर्वृष्णिस्तस्याभवत् सुतः।
वृष्णेर्निवृत्तिरुत्पन्नो दशार्हस्तस्य तु द्विजाः॥ ११॥

दशार्हपुत्रोऽप्यारोहो जीमूतस्तत्सुतोऽभवत्।
जैमूतिरभवद् वीरो विकृतिः परवीरहा॥ १२॥

तस्य भीमरथः पुत्रः तस्मान्नवरथोऽभवत्।
दानधर्मरतो नित्यं सम्यक्शीलपरायणः॥ १३॥

कदाचिन्मृगयां यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम्।
दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुंगवाः॥ १४॥

अन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः।
दुर्योधनोऽग्निसंकाशः शूलासक्तमहाकरः॥ १५॥

राजा नवरथो भीत्या नातिदूरादनुत्तमम्।
अपश्यत् परमं स्थानं सरस्वत्या सुगोपितम्॥ १६॥

स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान् नृपः।
ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्॥ १७॥

उससे पृथुकीर्ति और उससे पृथुदान हुआ। उसका पुत्र पृथुश्रवा और उसका पुत्र था—पृथुसत्तम॥ ४॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस (पृथुसत्तम)-का पुत्र उशना हुआ और उसका सितेषु पुत्र हुआ। फिर उसका रुक्मकवच और उस (रुक्मकवच)-का परावृत् हुआ॥ ५॥

परावृत्ने संसारमें विख्यात ज्यामघ नामक पुत्र उत्पन्न किया। उससे विदर्भ उत्पन्न हुआ और विदर्भसे क्रथ, कैशिक और तीसरा रोमपाद नामक पुत्र हुआ। उस (रोमपाद)-का पुत्र बभ्रु राजा था। धृति उसका पुत्र हुआ और उसका भी संस्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। संस्तका विश्वसह नामवाला बलवान् पुत्र था। उसका पुत्र महान् पराक्रमी प्रजावान् और उसका पुत्र कौशिक हुआ। उस (कौशिक)-का बुद्धिमान् सुमन्तु नामक पुत्र था और उसका पुत्र अनल था। कैशिकका पुत्र चेदि था और उस चेदिके पुत्र चैद्य हुए। उन चैद्योंमें ज्योतिष्मान् प्रधान था और वपुष्मान् उसका पुत्र हुआ। वपुष्मान्से बृहन्मेधा और श्रीदेव उसका पुत्र हुआ। ब्राह्मणो! उसका वीतरथ नामक पुत्र महान् बलशाली और रुद्रका भक्त था॥ ६—१०॥

ब्राह्मणो! क्रथका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र वृष्णि हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति उत्पन्न हुआ और दशार्ह उसका पुत्र हुआ। दशार्हका पुत्र आरोह था और उसका जीमूत पुत्र हुआ। जीमूतका विकृति नामक बलवान् पुत्र शत्रु-वीरोंका नाशक था। उसका भीमरथ नामक पुत्र हुआ, उससे नवरथ हुआ, जो नित्य दानधर्ममें परायण तथा पूर्णरूपसे शील-सम्पन्न था॥ ११—१३॥

श्रेष्ठ मुनियो! किसी समय आखेटके लिये जाते हुए वह (नवरथ) एक बलवान् राक्षसको देखकर अत्यन्त भयभीत होकर भागने लगा। अग्निके समान प्रज्वलित वह महाबलवान् दुर्योधन नामक राक्षस क्रुद्ध होकर अपने विशाल हाथमें शूल लेकर उसके पीछे दौड़ा॥ १४-१५॥

भयभीत राजा नवरथने समीपमें ही (देवी) सरस्वतीसे रक्षित एक परम श्रेष्ठ स्थान देखा। वह बुद्धिमान् राजा अति शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और साक्षात् देवी सरस्वतीका दर्शन करके उसने सिर झुकाकर प्रणाम किया॥ १६-१७॥

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित्।
पपात दण्डवद् भूमौ त्वामहं शरणं गतः॥ १८॥

नमस्यामि महादेवीं साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्।
वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम्॥ १९॥

नमस्ते जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम्।
हिरण्यगर्भमहिषीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्॥ २०॥

नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम्।
पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम्॥ २१॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः।
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती॥ २२॥

समुद्यम्य तदा शूलं प्रवेष्टुं बलदर्पितः।
त्रिलोकमातुस्तत्स्थानं शशाङ्कादित्यसंनिभम्॥ २३॥

तदन्तरे महद् भूतं युगान्तादित्यसंनिभम्।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥ २४॥

गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः।
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन् राक्षसो हतः॥ २५॥

ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः पराम्।
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरंदरपुरोपमाम्॥ २६॥

स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम्॥ २७॥

तस्य चासीद् दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः।
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः॥ २८॥

तस्मात् करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत् ततः।
ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः॥ २९॥

मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात् कुरुवशोऽभवत्।
पुत्रद्वयमभूत् तस्य सुत्रामा चानुरेव च॥ ३०॥

अनोस्तु पुरुकुत्सोऽभूदंशुस्तस्य च रिक्थभाक्।
अथांशोः सत्त्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः॥ ३१॥

स नारदस्य वचनाद् वासुदेवार्चनान्वितम्।
शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम्॥ ३२॥

उस शत्रुजयीने हाथ जोड़ते हुए अभीष्ट स्तुतियोंद्वारा स्तुति की, वह भूमिपर दण्डवत् गिर पड़ा और कहा—'मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप अनादि, अनन्त, ब्रह्मचारिणी, ईश्वरी, महादेवी, वाग्देवता साक्षात् देवी सरस्वतीको नमस्कार करता हूँ। जगत्की मूल कारणरूपा, परम कलास्वरूपा, तीन नेत्रवाली, मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाली एवं हिरण्यगर्भकी महिषी योगिनीको नमस्कार है॥ १८—२०॥

चित्कलारूप, परमानन्दस्वरूपा ब्रह्मरूपिणीको नमस्कार है। परमेशानि! भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो॥ २१॥

इसी बीच क्रुद्ध वह राक्षसराज राजाको मारनेके लिये उसी स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ देवी सरस्वती थीं। बलसे दर्पित वह राक्षस शूल उठाकर तीनों लोकोंकी जननीके उस सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित स्थानमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगा। इसी बीच किसी प्रलयकालीन सूर्यके समान महान् बलशालीने शूलसे उसके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर पृथ्वीपर गिरा दिया और कहा—महाराज! आप अब निर्भय होकर शीघ्र ही इस स्थानसे चले जायँ, यहाँ अब फिर रुकें नहीं, राक्षस मारा जा चुका है॥ २२—२५॥

ब्राह्मणो! तब प्रसन्न मनवाला वह नवरथ उन परादेवीको प्रणामकर इन्द्रकी नगरीके समान अपनी नगरीको चला गया। वहाँ उसने भक्तियुक्त होकर देवेश्वरी सरस्वतीकी स्थापना की और विविध यज्ञों तथा होमोंके द्वारा उन देवीका यजन किया। उसका दशरथ नामक परम धार्मिक पुत्र था। वह महातेजस्वी देवीका भक्त था। उसका पुत्र शकुनि था। उससे करम्भ हुआ, उसका देवरात हुआ, उसने अश्वमेध यज्ञ किया (जिसके फलस्वरूप) उसको देवक्षत्र नामक पुत्र हुआ। उस (देवक्षत्र)-का पुत्र मधु हुआ, उससे कुरुवश हुआ। उसके सुत्रामा तथा अनु नामक दो पुत्र हुए॥ २६—३०॥

अनुका पुरुकुत्स हुआ तथा उसका पुत्र अंशु था। अंशुका पुत्र सत्त्वत था, जो विष्णुभक्त, प्रतापी, महात्मा, दानशील और धनुर्वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ था। उसने नारदजीके कहनेपर वासुदेवकी पूजासे युक्त शास्त्रका प्रवर्तन किया, जिसे कुण्डगोलकोंने[1] सुना॥ ३१-३२॥

१-कुण्डगोलक—कुण्ड—पतिके जीवित रहते हुए परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र। गोलक—पतिके मर जानेपर परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र।

तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्त्वतं नाम शोभनम्।
प्रवर्तते महाशास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम्॥ ३३॥

सात्त्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः।
पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्तितम्॥ ३४॥

सात्त्वतः सत्त्वसम्पन्नः कौशल्यां सुषुवे सुतान्।
अन्धकं वै महाभोजं वृष्णिं देवावृधं नृपम्।
ज्येष्ठं च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदां वरम्॥ ३५॥

उसके नामसे सात्त्वत ऐसा विख्यात कुण्डादिकोंके लिये कल्याणकारी सुन्दर शास्त्र प्रवर्तित हुआ। उस (सत्त्वत)-का सभी शास्त्रोंमें पारंगत सात्त्वत नामक पुत्र हुआ, वह महाराज पुण्यश्लोक था। उसने उस सात्त्वत शास्त्रका प्रवर्तन किया। सत्त्वसम्पन्न सात्त्वतकी पत्नी कौशल्याने अन्धक, महाभोज, वृष्णि, राजा देवावृध तथा धनुर्वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ भजमान नामक ज्येष्ठ पुत्रको जन्म दिया॥ ३३—३५॥

तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः॥ ३६॥

तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोकोऽभवन्नृपः।
धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा॥ ३७॥

भजमानस्य सृञ्जय्यां भजमाना विजज्ञिरे।
तेषां प्रधानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च॥ ३८॥

महाभोजकुले जाता भोजा वैमार्तिकास्तथा।
वृष्णेः सुमित्रो बलवाननमित्रः शिनिस्तथा॥ ३९॥

अनमित्रादभून्निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः।
प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः॥ ४०॥

उनमेंसे राजा देवावृधने 'मुझे सभी गुणोंसे सम्पन्न शक्तिशाली पुत्र हो' इस आशयसे परम तप किया। उसका पुत्र बभ्रु नामसे विख्यात पुण्यश्लोक राजा हुआ। वह धर्मात्मा, रूप-सम्पन्न तथा सदा तत्त्वज्ञान-परायण रहता था। भजमानके सृञ्जयी (पत्नी)-से भजमान ही नामवाले (अनेक) पुत्र हुए। उनमेंसे निमि तथा कृकण—ये दो प्रधान तथा विख्यात थे। महाभोजके वंशमें भोज तथा वैमार्तिक उत्पन्न हुए। वृष्णिके बलवान् सुमित्र, अनमित्र तथा शिनि हुए। अनमित्रसे निघ्न हुआ और निघ्नके महाभाग्यवान् प्रसेन तथा श्रेष्ठ सत्राजित् नामवाले दो पुत्र हुए॥ ३६—४०॥

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्।
सत्यवान् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४१॥

सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत् सुतः।
कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगंधरः॥ ४२॥

माद्र्या वृष्णेः सुतो जज्ञे पृश्निर्वै यदुनन्दनः।
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकश्च ह॥ ४३॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत।
तस्यामजनयत् पुत्रमक्रूरं नाम धार्मिकम्।
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुरन्ये च बहवः सुताः॥ ४४॥

अक्रूरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः।
उपदेवश्च पुण्यात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ॥ ४५॥

कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनि उत्पन्न हुआ। उसका सत्यक नामक पुत्र हुआ जो सत्य बोलनेवाला तथा सत्यसम्पन्न था। सत्यकका पुत्र युयुधान और उसका पुत्र असङ्ग हुआ। उसका पुत्र बुद्धिमान् कुणि था और युगन्धर उसका पुत्र हुआ। वृष्णिको माद्रीसे यदुनन्दन पृश्नि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृश्निको श्वफल्क तथा चित्रक नामवाले दो पुत्र हुए। श्वफल्कने काशिराजकी पुत्रीको अपनी भार्या बनाया और उससे अक्रूर नामक धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया। उपमङ्गु तथा मङ्गु नामवाले उनके बहुतसे पुत्र थे। अक्रूरका देववान् इस नामसे प्रसिद्ध पुत्र कहा गया है। पुण्यात्मा उपदेव भी उसका पुत्र हुआ। उन दोनोंको विश्व तथा प्रमाथी नामक दो पुत्र हुए॥ ४१—४५॥

चित्रकस्याभवत् पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥ ४६॥

अन्धकात् काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान्।
कुकुरं भजमानं च शुचिं कम्बलबर्हिषम्॥ ४७॥

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत्।
कपोतरोमा विपुलस्तस्य पुत्रो विलोमकः॥ ४८॥

चित्रकके पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुपार्श्वक तथा गवेषण नामक पुत्र हुए। काश्यकी पुत्रीने अन्धकसे कुकुर, भजमान, शुचि तथा कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको प्राप्त किया। कुकुरका पुत्र वृष्णि हुआ और वृष्णिका पुत्र कपोतरोमा विपुल हुआ। उसका पुत्र विलोमक हुआ॥ ४६—४८॥

तस्यासीत् तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रो नलः किल।
ख्यायते तस्य नामानुरनोरानकदुन्दुभिः॥ ४९॥

उस (विलोमक)-का विद्वान् नल नामक पुत्र हुआ जो तुम्बुरुका मित्र था, अनु भी उसका नाम हुआ। अनुका पुत्र आनकदुन्दुभि हुआ॥ ४९॥

स गोवर्धनमासाद्य तताप विपुलं तपः।
वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वरः॥ ५०॥

वंशस्य चाक्षयां कीर्तिं गानयोगमनुत्तमम्।
गुरोरभ्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च॥ ५१॥

ब्राह्मणो! उसने गोवर्धन पर्वतपर जाकर महान् तप किया। तब लोकमहेश्वर देव ब्रह्माने उसे वर प्रदान किया और कहा—तुम्हारे वंशकी अक्षय कीर्ति होगी तथा तुम्हें गुरुसे भी अधिक श्रेष्ठ गानयोग (संगीत-कलाकी स्वाभाविक प्रतिभा) और इच्छानुसार रूप धारण करनेकी योग्यता प्राप्त होगी॥ ५०-५१॥

स लब्ध्वा वरमव्यग्रो वरेण्यं वृषवाहनम्।
पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम्॥ ५२॥

तस्य गानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः।
कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि॥ ५३॥

तया स सङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम्।
अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियां तां भ्रान्तलोचनाम्॥ ५४॥

तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नाम शोभनम्।
रूपलावण्यसम्पन्नां ह्रीमतीमपि कन्यकाम्॥ ५५॥

वर प्राप्तकर प्रशान्त (मनवाले) उसने देवताओंद्वारा पूजित, वरणीय और वृषवाहन स्थाणु (शंकर)-की गान (संगीत)-द्वारा पूजा की। गानमें रत उस (आनकदुन्दुभि)-को भगवान् देव अम्बिकापति (शंकर)-ने देवताओंके लिये भी दुर्लभ विवाह करने योग्य कन्यारूपी रत्न प्रदान किया। भार्या-रूपमें उसका साथ प्राप्तकर शत्रुनाशक राजाने उस चञ्चल आँखोंवाली अपनी प्रिया भ्रान्तलोचनाको श्रेष्ठ गानयोग सिखलाया। (राजाने) उससे सुन्दर भुजावाले शोभन नामक पुत्र तथा रूप और लावण्यसे सम्पन्न ह्रीमती नामकी कन्याको उत्पन्न किया॥ ५२—५५॥

ततस्तं जननी पुत्रं बाल्ये वयसि शोभनम्।
शिक्षयामास विधिवद् गानविद्यां च कन्यकाम्॥ ५६॥

कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद् गुरोः।
उद्ववाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणां तु मानसीम्॥ ५७॥

तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान्।
वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्॥ ५८॥

तब माता (भ्रान्तलोचना)-ने बाल्यावस्थामें ही उस शोभन नामक पुत्रको तथा कन्या (ह्रीमती)-को भी विधिवत् गानविद्याकी शिक्षा प्रदान की। उपनयन होनेके अनन्तर विधिपूर्वक गुरुसे वेदोंका अध्ययनकर (शोभनने) गन्धर्वोंकी मानसी नामक कन्यासे विवाह किया और उससे वीणा बजानेका तत्त्व जाननेवाले तथा संगीतशास्त्रमें पारंगत पाँच श्रेष्ठ पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ५६—५८॥

पुत्रैः पौत्रैः सपत्नीको राजा गानविशारदः।
पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम्॥ ५९॥

ह्रीमती चापि या कन्या श्रीरिवायतलोचना।
सुबाहुर्नाम गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम्॥ ६०॥

तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः।
सुषेणवीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः॥ ६१॥

पुत्र-पौत्र तथा पत्नीसहित गानविद्यामें पारंगत उस राजाने गायनद्वारा त्रिपुरका नाश करनेवाले देव (शंकर)-की पूजा की। लक्ष्मीके सदृश विशाल नेत्रोंवाली जो ह्रीमती नामकी कन्या थी, सुबाहु नामक गन्धर्व उसे लेकर अपनी पुरीमें चला गया। अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वको भी उस (ह्रीमती)-से सुषेण, वीर, सुग्रीव, सुभोज तथा नरवाहन नामके पुत्र हुए॥ ५९—६१॥

अथासीदभिजित् पुत्रो वीरस्त्वानकदुन्दुभेः।
पुनर्वसुश्चाभिजितः सम्बभूवाहुकः सुतः॥ ६२॥

आनकदुन्दुभिका अभिजित् नामक एक वीर पुत्र था। अभिजित्‌का पुनर्वसु और उससे आहुकका जन्म हुआ॥ ६२॥

आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥ ६३॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ॥ ६४॥
वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता।
श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता।
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत् सुमध्यमा॥ ६५॥
उग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्न्यग्रोधः कंस एव च।
सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च॥ ६६॥

भजमानादभूत् पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः।
तस्य शूरः शमिस्तस्मात् प्रतिक्षत्रस्ततोऽभवत्॥ ६७॥

स्वयम्भोजस्ततस्तस्माद् हृदिकः शत्रुतापनः।
कृतवर्माथ तत्पुत्रो देवरस्तत्सुतः स्मृतः।
स शूरस्तत्सुतो धीमान् वसुदेवोऽथ तत्सुतः॥ ६८॥
वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥ ६९॥

रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना।
असूत पत्नी संकर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम्॥ ७०॥

स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मयः।
हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः संकर्षणः प्रभुः॥ ७१॥
भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम्।
बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः॥ ७२॥
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी।
नियोगाद् वासुदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत्॥ ७३॥
ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः।
प्रागेव कंसस्तान् सर्वान् जघान मुनिपुंगवाः॥ ७४॥
सुषेणश्च तथोदायी भद्रसेनो महाबलः।
ऋजुदासो भद्रदासः कीर्तिमानपि पूर्वजः॥ ७५॥
हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः।
असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम्॥ ७६॥

जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम्।
असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ७७॥

रेवती नाम रामस्य भार्यासीत् सुगुणान्विता।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशठोल्मुकौ॥ ७८॥

द्विजोत्तमो! आहुकके दो पुत्र हुए—उग्रसेन और देवक। देवकके देवताओंके समान देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देवरक्षित नामवाले चार वीर पुत्र हुए। इनकी सात बहनें थीं—वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा, सुव्रता तथा देवकी। इनमें सुन्दर मध्यभागवाली देवकी सबसे बड़ी थी। ये सभी वसुदेवको दी गयीं॥ ६३—६५॥

उग्रसेनके न्यग्रोध, कंस, सुभूमि, राष्ट्रपाल, तुष्टिमान् तथा शङ्कु नामवाले पुत्र थे। भजमानका प्रख्यात विदूरथ नामवाला पुत्र हुआ। उसका पुत्र शूर, उससे शमि और शमिका प्रतिक्षत्र नामक पुत्र हुआ। उस (प्रतिक्षत्र)-से स्वयम्भोज और उससे शत्रुओंको ताप पहुँचानेवाला पुत्र हृदिक हुआ। उसका पुत्र कृतवर्मा और उसका पुत्र देवर कहलाया। उस शूरसे धीमान् हुआ और उसका पुत्र वसुदेव था॥ ६६—६८॥

देवताओंके प्रार्थना करनेपर महाबाहु जगद्गुरु वासुदेव विष्णु वसुदेवसे देवकी-पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। वसुदेवकी महाभाग्यशालिनी सुन्दर रोहिणी नामक पत्नीने हलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले ज्येष्ठ पुत्र संकर्षण राम (बलराम)-को जन्म दिया। वह परमात्मा (विष्णु) ही ये जगन्मय (वसुदेवपुत्र) वासुदेव हैं। हलायुध (बलराम) संकर्षण स्वयं साक्षात् प्रभु शेष हैं॥ ६९—७१॥

भृगुके शापके कारण वे माधव विष्णु भी मनुष्य-शरीर स्वीकार कर उन देवकी तथा रोहिणीसे उत्पन्न हुए। उमाकी देहसे उत्पन्न योगनिद्रारूप कौशिकीदेवी वासुदेवकी आज्ञासे यशोदाकी पुत्री हुई॥ ७२-७३॥

मुनिश्रेष्ठो! वसुदेवके अन्य जो वासुदेव नामवाले ज्येष्ठ पुत्र थे उन सबको कंसने पहले ही मार डाला। सुषेण, उदायी, भद्रसेन, महाबल, ऋजुदास, भद्रदास और पूर्वमें उत्पन्न कीर्तिमान्—इन सभी (वासुदेवके बड़े भाइयों)-के मारे जानेपर रोहिणीने वसुदेवसे संसारके स्वामी हलायुध बलभद्र राम (बलराम)-को जन्म दिया॥ ७४—७६॥

राम (बलराम)-के उत्पन्न होनेके पश्चात् देवकीने देवताओंके आदि कारण, आत्मरूप, श्रीवत्स-चिह्नसे सुशोभित वक्षःस्थलवाले अच्युत कृष्णको जन्म दिया॥ ७७॥

बलरामकी सुन्दर गुणोंसे युक्त रेवती नामकी भार्या थीं। उन्होंने उनसे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ७८॥

षोडशस्त्रीसहस्त्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः।
बभूवुरात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्त्रशः॥ ७९॥
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः।
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः शंख एव च॥ ८०॥
रुक्मिण्यां वासुदेवस्य महाबलपराक्रमाः।
विशिष्टाः सर्वपुत्राणां सम्बभूवुरिमे सुताः॥ ८१॥

(वसुदेव-देवकीसे उत्पन्न साक्षात् विष्णु) अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णकी सोलह हजार पत्नियाँ थीं और उनसे सैकड़ों हजारों पुत्र हुए। वासुदेव श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणीसे चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न तथा शङ्ख नामवाले महान् बलशाली और पराक्रम-सम्पन्न पुत्र हुए। ये पुत्र सभी पुत्रोंमें विशिष्ट हुए॥ ७९—८१॥

तान् दृष्ट्वा तनयान् वीरान् रौक्मिणेयाञ्जनार्दनम्।
जाम्बवत्यब्रवीत् कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता॥ ८२॥
मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तमम्।
सुरेशसदृशं पुत्रं देहि दानवसूदन॥ ८३॥
जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथः स्वयं हरिः।
समारेभे तपः कर्तुं तपोनिधिररिंदमः॥ ८४॥

रुक्मिणीसे उत्पन्न इन वीर पुत्रोंको देखकर पवित्र मुसकानवाली पत्नी जाम्बवतीने अपने पति जनार्दन श्रीकृष्णसे कहा—पुण्डरीकाक्ष! दानवसूदन! आप मुझे इन्द्रके समान विशिष्ट गुणवानोंमें श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करें। जाम्बवतीका कथन सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले तपोनिधि जगन्नाथ स्वयं हरिने तप करना प्रारम्भ किया॥ ८२—८४॥

तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकीसुतः।
दृष्ट्वा लेभे सुतं रुद्रं तप्त्वा तीव्रं महत् तपः॥ ८५॥

मुनिश्रेष्ठो! उन देवकीपुत्र (श्रीकृष्ण)-ने जिस प्रकार अत्यन्त तीव्र महान् तपके द्वारा रुद्रका दर्शनकर पुत्र प्राप्त किया, उस (वृत्तान्त)-को आपलोग सुनें॥ ८५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने-हेतु भगवान् श्रीकृष्णका महामुनि उपमन्युके आश्रममें जाना, महामुनि उपमन्युद्वारा उन्हें पाशुपत-योग प्रदान करना, तपस्यामें निरत कृष्णको शिव-पार्वतीका दर्शन और श्रीकृष्णद्वारा उनकी स्तुति करना, शिवद्वारा पुत्रप्राप्तिका वर देना तथा माता पार्वतीद्वारा अनेक वर देना और शिवके साथ श्रीकृष्णका कैलास-गमन

सूत उवाच

अथ देवो हृषीकेशो भगवान् पुरुषोत्तमः।
तताप घोरं पुत्रार्थं निदानं तपसस्तपः॥ १॥
स्वेच्छयाप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वधृक्।
चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन् भावमैश्वरम्॥ २॥
जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम्।
आश्रमं तूपमन्योर्वै मुनीन्द्रस्य महात्मनः॥ ३॥
पतत्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम्।
शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्सकृतलक्षणः॥ ४॥

सूतजी बोले—हृषीकेश भगवान् पुरुषोत्तम देवने पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्याके निदान[१]-रूपमें (सर्वोत्कृष्ट) घोर तपस्या की। अपनी इच्छासे ही अवतीर्ण कृतकृत्य, विश्वको धारण करनेवाले ये श्रीकृष्ण (अपने) स्वरूपके मूल ईश्वर-भावका परिज्ञान करानेके लिये (उत्तम तपः-स्थलके अन्वेषणके बहाने पक्षिराज गरुड़पर आरूढ़ होकर) विचरण करने लगे। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा लिये तथा श्रीवत्सके चिह्नसे चिह्नित (श्रीकृष्ण) योगियोंद्वारा सेवित, अनेक प्रकारके पक्षिसमूहोंसे व्याप्त मुनीन्द्र महात्मा उपमन्युके आश्रममें पहुँचे॥ १—४॥

१-जो तपस्या उत्कृष्ट तपस्याके लिये दृष्टान्त होती है, तपस्याकी सत्यताका निकष (कसौटी) होती है, उसे तपस्याका निदान कहते हैं।

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्॥ ५ ॥
सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम्।
विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम्॥ ६ ॥
आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः।
ऋषिकैर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा॥ ७ ॥
वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितं चाग्निहोत्रिभिः।
योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रगतलोचनैः ॥ ८ ॥
उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
नदीभिरभितो जुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः॥ ९ ॥
सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः।
प्रशान्तैः सत्यसंकल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः॥ १० ॥
भस्मावदातसर्वाङ्गैः रुद्रजाप्यपरायणैः।
मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः।
सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मचारिभिः॥ ११ ॥
तत्राश्रमवरे रम्ये सिद्धाश्रमविभूषिते।
गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी॥ १२ ॥

वह आश्रम विविध प्रकारके वृक्ष और लताओंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित, ऋषियोंके आश्रमोंसे युक्त तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनियोंसे निनादित था। सिंह, भालू, शरभ, व्याघ्र और हाथियोंसे व्याप्त था; स्वच्छ, स्वादयुक्त, पीने योग्य जलवाले सरोवरोंसे सुशोभित था; विविध प्रकारके उद्यानों तथा शुभ देवमन्दिरोंसे सम्पन्न था। ऋषियों, ऋषिपुत्रों, महामुनिगणों, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा अग्निहोत्र करनेवालोंसे सेवित था। नासिकाके अग्रभागमें जिनकी दृष्टि लगी हुई है, ऐसे ध्यानपरायण योगियोंसे युक्त, सभी प्रकारसे पवित्र, तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंसे सेवित और चारों ओर नदियोंसे घिरा था। वह आश्रम ब्रह्मवादी जापकों, शंकरकी आराधनामें निरत पवित्र तपस्वियोंसे सेवित, सत्यसंकल्पवाले, परम शान्त, शोक तथा उपद्रवरहित, यथाविधि सभी अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए रुद्रके जपमें परायण, मुण्डित या मात्र जटा रखे हुए तथा जटाके समान शिखावाले अन्य तपस्वियों, ज्ञानियों और ब्रह्मचारियोंसे नित्य सेवित था॥ ५—११ ॥

वहाँ सिद्धोंके आश्रमोंसे सुशोभित उस रमणीय श्रेष्ठ आश्रममें पापोंका नाश करनेवाली भगवती गङ्गा नित्य प्रवाहित रहती थीं।

स तानन्विष्य विश्वात्मा तापसान् वीतकल्मषान्।
प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः॥ १३ ॥

उन विश्वात्मा माधवने उन कल्मषरहित तपस्वियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उनके समीप जाकर उन्हें सविधि प्रणाम किया और स्तुतिपूर्वक उनकी पूजा की॥ १२-१३ ॥

तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम्॥ १४ ॥
स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम्।
प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम्॥ १५ ॥

उन शङ्ख, चक्र, गदाधारी, योगियोंके परम गुरु, जगद्योनि (श्रीकृष्ण)-को देखकर उन्होंने (तपस्वियोंने) भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अव्यक्त, आदिदेव, महामुनि तथा उन सनातन (देव)-का हृदयमें ध्यानकर वैदिक मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे और आपसमें कहने लगे—॥ १४-१५ ॥

अयं स भगवानेकः साक्षान्नारायणः परः।
आगच्छत्यधुना देवः पुराणपुरुषः स्वयम्॥ १६ ॥
अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्ता चैव रक्षकः।
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन् द्रष्टुमिहागतः॥ १७ ॥
एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः।
अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः॥ १८ ॥

ये वही अद्वितीय परम साक्षात् नारायण भगवान् हैं। स्वयं पुराणपुरुष देव ही इस समय आये हुए हैं। ये ही अव्यय हैं, सृष्टि करनेवाले, संहार करनेवाले तथा पालन करनेवाले ये ही हैं। अमूर्त होते हुए भी ये मूर्तिमान् होकर मुनियोंको देखनेके लिये यहाँ आये हुए हैं। ये धाता, विधाता और सर्वव्यापी ही आ रहे हैं। ये अनादि, अक्षय, अनन्त, महाभूत और महेश्वर हैं॥ १६—१८ ॥

श्रुत्वा श्रुत्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः।
ययौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः॥ १९ ॥

वाणीके अगोचर गोविन्द हरि उन (तपस्वियों)-के वचनोंको सुनते हुए शीघ्र ही उन महात्मा (उपमन्यु)-के स्थानपर गये॥ १९ ॥

उपस्पृश्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः।
चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम्॥ २०॥

नदीनां तीरसंस्थानि स्थापितानि मुनीश्वरैः।
लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजसः॥ २१॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनार्दनम्।
पूजयाञ्चक्रिरे पुष्पैरक्षतैस्तत्र वासिनः॥ २२॥

समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्।
तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गं तन्निवासिनः॥ २३॥

यानि तत्रारुरुक्षूणां मानसानि जनार्दनम्।
दृष्ट्वा समाहितान्यासन् निष्क्रामन्ति पुरा हरिम्॥ २४॥

अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देवादितर्पणम्।
आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम्॥ २५॥

दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्धूलितविग्रहम्।
जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम्॥ २६॥

आलोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित्।
आसने चासयामास योगिनां प्रथमातिथिम्॥ २७॥

उवाच वचसां योनिं जानीमः परमं पदम्।
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेन संस्थितम्॥ २८॥

स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः।
यत् साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः॥ २९॥

त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपि हि योगिनः।
तादृशस्याथ भवतः किमागमनकारणम्॥ ३०॥

श्रुत्वोपमन्योस्तद् वाक्यं भगवान् केशिमर्दनः।
व्याजहार महायोगी वचनं प्रणिपत्य तम्॥ ३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम्।
सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः॥ ३२॥

कथं स भगवानीशो दृश्यो योगविदां वरः।
मयाचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम्॥ ३३॥

उन यदुवंशी देवकीपुत्र श्रीकृष्णने प्रत्येक तीर्थमें श्रद्धापूर्वक आचमनकर (मार्जनकर) देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण किया और मुनीश्वरोंके द्वारा नदियोंके किनारे स्थापित अमिततेजस्वी शंकरके लिङ्गोंकी पूजा की॥ २०-२१॥

वहाँके निवासियोंने जहाँ-जहाँ भी जनार्दनको आते हुए देखा, वहाँ-वहाँ पुष्पों तथा अक्षतोंसे उनकी पूजा की। शार्ङ्गधनुष, शङ्ख तथा असि धारण करनेवाले एवं शुभ अङ्गोंवाले उन वासुदेवका दर्शनकर वहाँ रहनेवाले सभी निश्चल-से खड़े हो गये। वहाँ (योगमें) आरूढ़ होनेके इच्छुक जिन लोगोंके मन समाधिस्थ थे, वे भी जनार्दन हरिको अपने सम्मुख देखकर उनका दर्शन करनेके लिये अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख कर लिये॥ २२—२४॥

इधर श्रीकृष्णने गङ्गामें अवगाहन करनेके पश्चात् देवताओं, पितरों आदिका दर्शन, तर्पण आदि कर उत्तमोत्तम पुष्प आदि लेकर श्रेष्ठ मुनि (उपमन्यु)-के गृहमें प्रवेश किया। योगियोंमें श्रेष्ठ, भस्मसे अवलिप्त शरीरवाले, जटा और चीरधारी उन शान्त मुनिको देखकर (श्रीकृष्णने) सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया॥ २५-२६॥

कृष्णको आते हुए देखकर तत्त्वज्ञ उन मुनिने योगियोंके प्रथम पूज्य उन्हें आसनपर बिठाया और उनकी पूजा की॥ २७॥

(मुनिने कहा—)हम जानते हैं कि वाणीके उत्पत्ति-स्थान, परमपदरूप, अव्यक्त शरीरवाले विष्णु शिष्यके रूपमें उपस्थित हुए हैं। हृषीकेश! आपका स्वागत है, हमारे तप सफल हुए जो साक्षात् विश्वात्मा विष्णु ही मेरे घर आये हैं। प्रयत्न करते हुए भी योगी तथा मुनिजन आपको देख नहीं पाते, ऐसे आपके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है? उपमन्युके उस वाक्यको सुनकर केशीका मर्दन करनेवाले महायोगी भगवान्ने उन्हें प्रणामकर कहा—॥ २८—३१॥

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! भगवान् शंकरके दर्शनोंके लिये उत्सुक मैं आया हूँ। कृत्तिवासा गिरीश (भगवान् शंकर)-का दर्शन करनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। योगविदोंमें श्रेष्ठ भगवान् ईशका शीघ्र ही कैसे दर्शन कर सकता हूँ, उन उमापतिको मैं कहाँ देख पाऊँगा॥ ३२-३३॥

इत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरः।
भक्त्या चोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह यत्नतः॥ ३४॥

इहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः।
ध्यायन्तोऽत्रासते देवं जापिनस्तापसाश्च ये॥ ३५॥

इह देवः सपत्नीको भगवान् वृषभध्वजः।
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः॥ ३६॥

ऐसा कहे जानेपर भगवान् (उपमन्यु)-ने कहा— तीव्र भक्ति एवं तपस्याके द्वारा वे परमेश्वर देखे जा सकते हैं, इसलिये ऐसा ही प्रयत्न करो। ब्रह्मवादी मुनीन्द्र, जप करनेवाले तथा जो तपस्वी हैं वे, यहाँ उन देव ईश्वर देवाधिदेवका ध्यान करते हुए निवास कर रहे हैं। यहाँ भगवान् देव वृषभध्वज पत्नी (पार्वती)-सहित तथा विविध भूतों और योगियोंसे घिरे हुए सदा क्रीड़ा करते हैं॥ ३४—३६॥

इहाश्रमे पुरा रुद्रात् तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।
लेभे महेश्वराद् योगं वसिष्ठो भगवानृषिः॥ ३७॥

इहैव भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
दृष्ट्वा तं परमं ज्ञानं लब्धवानीश्वरेश्वरम्॥ ३८॥

इहाश्रमवरे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिनः।
अविन्दत् पुत्रकान् रुद्रात् सुरभिर्भक्तिसंयुता॥ ३९॥

इहैव देवताः पूर्वं कालाद् भीता महेश्वरम्।
दृष्टवन्तो हरं श्रीमन्निर्भया निर्वृतिं ययुः॥ ४०॥

इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपतां वरः।
लब्धवान् परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम्॥ ४१॥

प्रवर्तयामास शुभां कृत्वा वै संहितां द्विजः।
पौराणिकीं सुपुण्यार्थां सच्छिष्येषु द्विजातिषु॥ ४२॥

प्राचीन कालमें इस आश्रममें कठोर तप करके भगवान् वसिष्ठ ऋषिने महेश्वर रुद्रसे योग प्राप्त किया था। यहीं प्रभु कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासने उन ईश्वरोंके भी ईश्वर (भगवान् शंकर)-का दर्शनकर परम ज्ञान प्राप्त किया था। इसी रमणीय श्रेष्ठ आश्रममें सुरभिने भक्तिपूर्वक तपस्या करके जटाधारी रुद्रसे पुत्रोंको प्राप्त किया था। पूर्वकालमें कालसे भयभीत देवताओंने यहींपर श्रीमान् हर (महाकाल)-का दर्शनकर भयसे रहित होकर शान्ति प्राप्त की थी। तपस्वियोंमें श्रेष्ठ द्विज सावर्णिने यहींपर महादेवकी आराधना करके परम योग तथा उत्तम ग्रन्थरचनाकी शक्ति प्राप्त की थी। तभी उन्होंने कल्याणकारिणी सुन्दर पुण्य प्रदान करनेवाली पुराणसंहिताका निर्माणकर सत्-शिष्यों और द्विजातियोंमें उसका प्रवर्तन किया॥ ३७—४२॥

इहैव संहितां दृष्ट्वा कापेयः शांशपायनः।
महादेवं चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः।
द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानां पुरुषोत्तम॥ ४३॥

इह प्रवर्तिता पुण्या द्व्यष्टसाहस्त्रिकोत्तरा।
वायवीयोत्तरं नाम पुराणं वेदसम्मितम्।
इहैव ख्यापितं शिष्यैः शांशपायनभाषितम्॥ ४४॥

पुरुषोत्तम! इसी स्थानपर कापेय शांशपायनने महादेवका दर्शनकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके बारह हजार श्लोकोंवाली इस (कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा वर्णित) पुराणसंहिताका निर्माण किया। वेदसम्मत पुण्य वायवीयपुराणसंहिताका सोलह हजार श्लोकोंवाला उत्तरभाग यहींपर प्रवर्तित हुआ। यहींपर शांशपायनद्वारा कही गयी पुराणसंहिताका प्रचार उनके शिष्योंने किया॥ ४३-४४॥

याज्ञवल्क्यो महायोगी दृष्ट्वात्र तपसा हरम्।
चकार तन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्॥ ४५॥

इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा वै परमं तपः।
शुक्रो महेश्वरात् पुत्रो लब्धो योगविदां वरः॥ ४६॥

तस्मादिहैव देवेशं तपस्तप्त्वा महेश्वरम्।
द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्॥ ४७॥

एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः।
व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे॥ ४८॥

महायोगी याज्ञवल्क्यने यहींपर तपस्याद्वारा शंकरका दर्शन करके उनकी आज्ञासे श्रेष्ठ योगशास्त्रका निर्माण किया था। पूर्वकालमें भृगुने यहीं परम तप करके महेश्वरसे योगज्ञोंमें श्रेष्ठ शुक्र नामक पुत्रको प्राप्त किया था। इसलिये यहींपर तपस्या करके देवताओंके ईश, महेश्वर विश्वेश, उग्र, भीम कपर्दीका आप दर्शन करें। ऐसा कहकर महामुनि उपमन्युने सुन्दर कर्म करनेवाले कृष्णको पाशुपत-योग, पाशुपत-व्रत और पाशुपत-ज्ञान प्रदान किया॥ ४५—४८॥

स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः।
तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत् प्रभुः॥ ४९॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मुण्डो वल्कलसंयुतः।
जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः॥ ५०॥

ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्धभूषणः।
अदृश्यत महादेवो व्योम्नि देव्या महेश्वरः॥ ५१॥
किरीटिनं गदिनं चित्रमालं
पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम्।
शार्दूलचर्माम्बरसंवृताङ्गं
देव्या महादेवमसौ ददर्श॥ ५२॥
परश्वधासक्तकरं त्रिनेत्रं
नृसिंहचर्मावृतसर्वगात्रम्।
समुद्गिरन्तं प्रणवं बृहन्तं
सहस्रसूर्यप्रतिमं ददर्श॥ ५३॥
प्रभुं पुराणं पुरुषं पुरस्तात्
सनातनं योगिनमीशितारम्।
अणोरणीयांसमनन्तशक्तिं
प्राणेश्वरं शम्भुमसौ ददर्श॥ ५४॥
न यस्य देवा न पितामहोऽपि
नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्युः।
प्रभावमद्यापि वदन्ति रुद्रं
तमादिदेवं पुरतो ददर्श॥ ५५॥
तदान्वपश्यद् गिरिशस्य वामे
स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम्।
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः
शङ्खासिचक्रार्पितहस्तमाद्यम्॥ ५६॥
कृताञ्जलिं दक्षिणतः सुरेशं
हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श।
स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं
पितामहं लोकगुरुं दिविस्थम्॥ ५७॥
गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान्
नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान्।
त्रिलोकभर्तुः पुरतोऽन्वपश्यत्
कुमारमग्निप्रतिमं सशाखम्॥ ५८॥

उन श्रेष्ठ मुनिके कहनेसे वे प्रभु मधुसूदन वहींपर तपस्याद्वारा रुद्रकी आराधना करने लगे। सभी अङ्गोंमें यथाविधि भस्म धारण करके, मुण्डित एवं वल्कल वस्त्रधारी होकर अनन्य-मनसे शिवमें चित्तको समाहितकर निरन्तर रुद्रसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करने लगे। तदनन्तर बहुत समय बीत जानेके बाद अर्धचन्द्रमाको आभूषणरूपमें धारण किये सोमरूप महादेव महेश्वर देवी पार्वतीके साथ आकाशमें दिखलायी पड़े॥ ४९—५१॥

उन श्रीकृष्णने मुकुट, गदा, त्रिशूल, पिनाकधनुष तथा चित्र-विचित्र माला धारण किये हुए, सिंहके चर्म-रूपी वस्त्रसे समस्त अङ्गोंको आच्छादित किये हुए देवाधिदेव महादेवको देवी पार्वतीके साथ देखा। हाथमें परशु धारण किये हुए, नृसिंहके चर्मसे आच्छादित शरीरवाले, प्रणवका उच्चारण कर रहे तथा सहस्रों सूर्योंके समान श्रेष्ठ त्रिलोचन—भगवान् शंकरका श्रीकृष्णने दर्शन किया। उन्होंने (श्रीकृष्णने) अपने समक्ष पुराणपुरुष, सनातन प्रभु, योगी, ईश्वर, अणुसे भी सूक्ष्म, अनन्तशक्तियुक्त प्राणेश्वर शम्भुको देखा। जिन (रुद्र)-के प्रभावका देवता, पितामह, इन्द्र, अग्नि, वरुण तथा यम भी आजतक वर्णन नहीं कर पाये, उन आदिदेवको श्रीकृष्णने सामने देखा। उस समय उन्होंने भगवान शंकरके वामभागमें शङ्ख, तलवार तथा चक्र धारण किये आत्मरूप, अव्यक्त, अनन्त तथा अनन्तरूपवाले आदिदेव (विष्णु)-को देखा। वे भी बहुत-सी स्तुतियोंके द्वार ईश (शंकर)-की ही स्तुति कर रहे थे॥ ५२—५६।

उन (भगवान् शंकर)-के दक्षिण भागमें उन्होंने (श्रीकृष्णने) हंसपर आसीन, अत्यन्त प्रभाववाले, देवताओंवे स्वामी लोकगुरु पितामहको आकाशमें हाथ जोड़े हुए ईशकी स्तुति करते देखा। उन्होंने (श्रीकृष्णने) तीन लोकोंके स्वामी (श्रीशंकर)-के सम्मुख हजारों सूर्योंवे समान गणेश्वरों, अमित प्रभाववाले नन्दीश्वरादिकों तथ मयूरसहित अग्नि-सदृश कुमार कार्तिकेयको देखा॥ ५७-५८।

मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं
प्रचेतसं दक्षमथापि कण्वम्।
पराशरं तत्परतो वसिष्ठं
स्वायम्भुवं चापि मनुं ददर्श॥ ५९॥

उनके पीछेकी ओर मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, दक्ष, कण्व, पराशर, वसिष्ठ तथा स्वायम्भुव मनुको भी देखा॥ ५९॥

तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं
बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः।
प्रणम्य देव्या गिरिशं सभक्त्या
स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य॥ ६०॥

उन उदार बुद्धिवाले विष्णु (कृष्ण)-ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ते हुए देवी पार्वतीसहित शंकरको प्रणाम किया तथा अपने हृदयमें आत्म-स्वरूपका ध्यानकर देवताओंमें प्रधान शंकरकी मन्त्रोंद्वारा स्तुति की—॥ ६०॥

श्रीकृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥ ६१॥
त्वं ब्रह्मा हरिरथ विश्वयोनिरग्निः
संहर्ता दिनकरमण्डलाधिवासः।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेद-
स्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥ ६२॥
सांख्यास्त्वां विगुणमथाहुरेकरूपं
योगास्त्वां सततमुपासते हृदिस्थम्।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमग्निं
त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥ ६३॥

श्रीकृष्ण बोले—शाश्वत! सबके मूलकारण! आपको नमस्कार है। ऋषिलोग आपको ब्रह्माका भी अधिपति कहते हैं। संतजन तप, सत्त्व, रज एवं तमोगुण और सब कुछ आपको ही बतलाते हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु, विश्वयोनि, अग्नि, संहर्ता और सूर्यमण्डलमें निवास करनेवाले हैं। प्राण, हुतवह (अग्नि) तथा इन्द्रादि विविध देव आप ही हैं। मैं अद्वितीय देव ईशकी शरणमें आया हूँ। सांख्यशास्त्रवाले आपको एकरूप और गुणातीत कहते हैं। योगिजन हृदयमें रहनेवाले आपकी सतत उपासना करते हैं। वेद आपको रुद्र, अग्नि नामसे कहते हैं। मैं आप ईशदेवकी शरणमें आया हूँ॥ ६१—६३॥

त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं
दत्त्वासौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं
स्मृत्वा ते पदयुगलं भवत्प्रसादात्॥ ६४॥
यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं
तत्त्वं ज्योतिरनन्तमेकमचलं सत्यं परं सर्वगम्।
स्थानं प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदं जायते
नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरं तं शिवम्॥ ६५॥

मनुष्य आपके चरणमें मात्र एक पुष्प अथवा एक बिल्वपत्र ही चढ़ाकर संसार-बन्धनसे विमुक्त हो जाता है। सिद्धों तथा योगियोंद्वारा सेवित आपके चरणकमलोंका स्मरणकर आपकी कृपासे मनुष्य सभी पापोंको विनष्ट कर डालता है। तत्त्वज्ञ लोग जिन्हें सभी प्रकारके विभागसे रहित, निर्मल, अन्तर्हृदयमें अवस्थित, ज्योति, अनन्त, अद्वितीय, अचल, सत्य, पर, सर्वव्यापी तथा आदि, मध्य और अन्तसे रहित स्थानरूप कहते हैं और यह (संसार) जिनसे उत्पन्न होता है, ऐसे आप सत्यविभव, सनातन विश्वेश्वर शिवकी शरणमें मैं आया हूँ॥ ६४-६५॥

ॐ नमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे।
महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः॥ ६६॥
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने।
नमस्ते वज्रहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने॥ ६७॥

प्रणवरूप नीलकण्ठ, त्रिलोचन और शक्तिरूप आपको नमस्कार है। आप महादेव तथा नित्य ईशानको बार-बार नमस्कार है। पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले आपको नमस्कार है, मुण्ड और दण्ड धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। हाथमें वज्र धारण करनेवाले, दिशारूपी वस्त्रवाले कपर्दी (जटाधारी) आपको नमस्कार है॥ ६६-६७॥

नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे।
नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे॥ ६८॥

नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः।
नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः॥ ६९॥

नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने।
नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिणे॥ ७०॥

भयंकर नाद करनेवाले तथा दाढ़वाले कालस्वरूप आपको नमस्कार है। नागोंको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करनेवाले और अग्निस्वरूप वीर्यवाले आपको नमस्कार है। गिरीश! आपको नमस्कार है, स्वाहाकार! आपको नमस्कार है, उन्मुक्त अट्टहास करनेवाले आपको नमस्कार है और भीमरूप आपको बार-बार नमस्कार है। कामदेवका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है, कालका मन्थन करनेवाले आपको नमस्कार है, भयानक वेष धारण करनेवाले आपको नमस्कार है और निषङ्ग (तरकस)-धारी हरको नमस्कार है॥ ६८—७०॥

नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः॥ ७१॥

नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः।
नरनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्तिने॥ ७२॥

नमो दैवतनाथाय देवानुगतलिङ्गिने।
कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः॥ ७३॥

नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः॥ ७४॥

नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमो नमः।
योगिने योगगम्याय योगमायाय ते नमः॥ ७५॥

तीन आँखोंवाले आपको नमस्कार है, गजचर्म धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। अम्बिकाके स्वामीको नमस्कार है और पशुपतिको नमस्कार है। आकाशरूप आपको और आकाशके अधिपतिको नमस्कार है। नर और नारीका शरीर धारण करनेवाले अर्धनारीश्वर तथा सांख्य और योगका प्रवर्तन करनेवाले आपको नमस्कार है। देवताओंके स्वामी और देवताओंद्वारा आराधित लिङ्गवाले आपको नमस्कार है। कुमारके गुरु (कार्तिकेयके पिता) आपको तथा देवाधिदेव आपको नमस्कार है। यज्ञके अधिपतिको नमस्कार है, ब्रह्मचारीको नमस्कार है। महान् मृगव्याध तथा ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है। हंसरूपको नमस्कार है, विश्वरूप तथा मोहित करनेवालेको बार-बार नमस्कार है। योगी, योगसे प्राप्त होने योग्य तथा योग ही जिनकी माया है ऐसे आपको नमस्कार है॥ ७१—७५॥

नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च।
कपालिने नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः॥ ७६॥

नमो नमो नमस्तुभ्यं भूय एव नमो नमः।
मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर॥ ७७॥

प्राणोंका पालन करनेवाले (प्राणिमात्रके प्राणरक्षक) और घंटानादप्रियको नमस्कार है। कपाली आपको नमस्कार है, नक्षत्रोंके स्वामीको नमस्कार है। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है, पुनः आपको बार-बार नमस्कार है। परमेश्वर! आप मेरी अभीष्ट इच्छाओंको सभी प्रकारसे मुझे प्रदान करें॥ ७६-७७॥

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः।
पपात पादयोर्विप्रा देवदेव्योः स दण्डवत्॥ ७८॥

उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिषूदनम्।
बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥ ७९॥

विप्रो! इस प्रकार वे माधव भक्तिपूर्वक देवेशकी स्तुतिकर देव और देवी अर्थात् शंकर-पार्वतीके चरणोंमें दण्डवत् गिर पड़े। मेघके समान गम्भीर ध्वनिवाले भगवान् शंकरने केशीको मारनेवाले कृष्णको उठाकर मधुर वचन कहा—॥ ७८-७९॥

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष तपस्तप्तं त्वयाव्यय।
त्वमेव दाता सर्वेषां कामानां कामिनामिह॥ ८०॥

त्वं हि सा परमा मूर्तिर्मम नारायणाह्वया।
नानवाप्तं त्वया तात विद्यते पुरुषोत्तम॥ ८१॥

वेत्थ नारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम्।
महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केशव॥ ८२॥

पुण्डरीकाक्ष! अव्यय! आपने तप क्यों किया है। (क्योंकि) आप ही कामना करनेवालोंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। आप ही मेरी नारायण नामवाली परम मूर्ति हैं। पुरुषोत्तम! तात! आपके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है। केशव! अपने योगद्वारा आप अपनेको नारायण, अनन्त, परमेश्वर, महादेव और महायोगी जानें॥ ८०—८२॥

श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन् वै वृषध्वजम्।
उवाच वीक्ष्य विश्वेशं देवीं च हिमशैलजाम्॥ ८३॥

ज्ञातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शंकर।
इच्छाम्यात्मसमं पुत्रं त्वद्भक्तं देहि शंकर॥ ८४॥

तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हरः।
देवीमालोक्य गिरिजां केशवं परिषस्वजे॥ ८५॥

उनका वह वचन सुनकर हँसते हुए श्रीकृष्णने विश्वेश्वर तथा हिमालय-पुत्री देवी पार्वतीकी ओर देखकर वृषध्वज शंकरसे कहा—प्रभो शंकर! आपको अपने योगद्वारा सब कुछ ज्ञात है। मैं अपने ही समान ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो आपका भक्त हो, श्रीशंकर! आप मुझे प्रदान करें। प्रसन्न-मन होकर विश्वात्मा हरने 'तथास्तु' ऐसा कहकर और देवी पार्वतीकी ओर देखकर केशवका आलिङ्गन किया॥ ८३—८५॥

ततः सा जगतां माता शंकरार्धशरीरिणी।
व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमगिरीन्द्रजा॥ ८६॥

वत्स जाने तवानन्तां निश्चलां सर्वदाच्युत।
अनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव॥ ८७॥

त्वं हि नारायणः साक्षात् सर्वात्मा पुरुषोत्तमः।
प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं संजातो देवकीसुतः॥ ८८॥

पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मीयममलं पदम्।
नावयोर्विद्यते भेद एकं पश्यन्ति सूरयः॥ ८९॥

इमानिमान् वरानिष्टान् मत्तो गृह्णीष्व केशव।
सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञानं तत् पारमेश्वरम्।
ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपि परं बलम्॥ ९०॥

तदनन्तर शंकरके आधे शरीरमें स्थित, संसारकी माता हिमालय पर्वतकी पुत्री देवी (पार्वती) हृषीकेशसे बोलीं। अच्युत! केशव! वत्स! मैं ईश्वर (शंकर)-में तथा मुझमें भी सर्वदा रहनेवाली आपकी अनन्त, निश्चल और अनन्य भक्तिको जानती हूँ। आप ही साक्षात् नारायण और सर्वात्मा पुरुषोत्तम हैं। पूर्वकालमें देवताओंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर आप देवकीके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे। आप अपने आत्मरूपको तथा अपने निर्मल पदको स्वयं देखें। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। विद्वान् लोग (हम दोनोंको) एक रूपसे देखते हैं। केशव! आप इन अभीष्ट वरोंको मुझसे ग्रहण करें। आपको सर्वज्ञता, ऐश्वर्य, वह परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञान, शिवमें निश्चल भक्ति तथा अपनेमें श्रेष्ठ बल प्राप्त हो॥ ८६—९०॥

एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्या जनार्दनः।
आशिषं शिरसागृह्णाद् देवोऽप्याह महेश्वरः॥ ९१॥

प्रगृह्य कृष्णं भगवानथेशः
करेण देव्या सह देवदेवः।
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुरेशै-
र्जगाम कैलासगिरिं गिरीशः॥ ९२॥

उन महादेवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर जनार्दन कृष्णने उनके (वररूपी) आशीर्वादको शिरोधार्य किया। देव महेश्वरने भी कृष्णसे ऐसा ही कहा अर्थात् आशीर्वाद प्रदान किया। तब देवताओं तथा मुनियोंसे पूजित होते हुए देवाधिदेव गिरीश भगवान् शंकर कृष्णका हाथ पकड़कर देवी पार्वतीके साथ कैलास पर्वतपर चले गये॥ ९१-९२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका कैलास पर्वतपर विहार करना, श्रीकृष्णको द्वारका बुलानेके लिये गरुडका कैलासपर जाना, श्रीकृष्णका द्वारका-आगमन, द्वारकामें श्रीकृष्णका स्वागत तथा उनका दर्शन करनेके लिये देवताओं तथा मार्कण्डेय आदि मुनियोंका आना, कृष्णके द्वारा महर्षि मार्कण्डेयको शिव-तत्त्व तथा लिङ्ग-तत्त्वका माहात्म्य बतलाना तथा स्वयं शिवका पूजन करना, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा शिवके महालिङ्गका दर्शन तथा लिङ्गस्तुति, लिङ्गार्चनका प्रवर्तन

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम्।
रराम भगवान् सोमः केशवेन महेश्वरः॥ १॥

अपश्यंस्तं महात्मानं कैलासगिरिवासिनः।
पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमथाच्युतम्॥ २॥

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम्।
किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ३॥

दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम्।
दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम्॥ ४॥

भ्राजमानं श्रिया दिव्यं युवानमतिकोमलम्।
पद्माङ्घ्रिनयनं चारु सुस्मितं सुगतिप्रदम्॥ ५॥

सूतजी बोले—मेरु शिखरके स्वर्णिम कैलास पर्वतपर पहुँचकर महेश्वर भगवान् शंकर केशव (श्रीकृष्ण)-के साथ विहार करने लगे। कैलास पर्वतपर निवास करनेवालोंने उन देवाधिदेव, अच्युत, महात्मा श्रीकृष्णको देखकर उनकी पूजा की। उन्होंने चार भुजावाले, उदार अङ्गोंवाले, प्रलयकालीन मेघके समान प्रभावाले, मुकुटधारी, हाथमें धनुष धारण किये, श्रीवत्ससे सुशोभित वक्षःस्थलवाले, दीर्घ भुजावाले, विशाल नेत्रोंवाले, पीताम्बर धारण किये, वक्षःस्थलपर उत्तम वैजयन्तीकी माला धारण किये, शोभासे सुशोभित दिव्य अति कोमल, युवावस्थावाले, कमल (वर्ण)-के समान (रक्त) चरण एवं नेत्रवाले, अत्यन्त सुन्दर, मुसकराते हुए अच्छी गति प्रदान करनेवाले अच्युत (श्रीकृष्ण)-की पूजा की॥ १—५॥

कदाचित् तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्धनः।
भ्राजमानः श्रिया कृष्णश्चचार गिरिकन्दरे॥ ६॥

गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः।
सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वास्तत्र तत्र जगन्मयम्॥ ७॥

दृष्ट्वाश्चर्यं परं गत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि महात्मनः॥ ८॥

गन्धर्वकन्यका दिव्यास्तद्वदप्सरसां वराः।
दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं स्त्रस्तवस्त्रविभूषणाः॥ ९॥

काश्चिद् गायन्ति विविधां गीतिं गीतविशारदाः।
सम्प्रेक्ष्य देवकीसूनुं सुन्दर्यः काममोहिताः॥ १०॥

वहाँ किसी समय माता देवकीके आनन्दको बढ़ानेवाले शोभासम्पन्न श्रीकृष्ण लीलाके निमित्त कैलास पर्वतकी गुहामें विचरण करने लगे। सभी प्रमुख गन्धर्वों, अप्सराओं, नागकन्याओं, सिद्धों, यक्षों तथा गन्धर्वोंने वहाँ उन जगन्मय (श्रीकृष्ण)-को देखा और परम आश्चर्यचकित होकर वे आनन्दसे प्रफुल्लित नेत्रवाले हो गये तथा उन महात्माके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। दिव्य गन्धर्वोंकी कन्याएँ तथा उसी प्रकार श्रेष्ठ अप्सराएँ कृष्णको देखकर अव्यवस्थित वस्त्राभूषणवाली होकर उनकी कामना करने लगीं। गायनमें पारंगत कुछ सुन्दरियाँ काममोहित होकर देवकीपुत्रकी ओर देखकर विविध प्रकारके गीत गाने लगीं॥ ६—१०॥

काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः।
सम्प्रेक्ष्य संस्थिताः काश्चित् पपुस्तद्वदनामृतम्॥ ११॥

कुछ अत्यन्त विलासप्रिय (कन्याएँ) उनके आगे नृत्य करने लगीं और कुछ वहीं स्थित होकर उनकी ओर देखकर उनके वदनामृतका पान करने लगीं॥ ११॥

काश्चिद् भूषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम्।
भूषयाञ्चक्रिरे कृष्णं कामिन्यो लोकभूषणम्॥ १२॥

काश्चिद् भूषणवर्याणि समादाय तदङ्गतः।
स्वात्मानं भूषयामासुः स्वात्मगैरपि माधवम्॥ १३॥

काश्चिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिताः।
चुचुम्बुर्वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणाः॥ १४॥

प्रगृह्य काश्चिद् गोविन्दं करेण भवनं स्वकम्।
प्रापयामासुर्लोकादिं मायया तस्य मोहिताः॥ १५॥

तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः।
बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया॥ १६॥

एवं वै सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरिः।
रेमे नारायणः श्रीमान् मायया मोहयञ्जगत्॥ १७॥

गते बहुतिथे काले द्वारवत्यां निवासिनः।
बभूवुर्विह्वला भीता गोविन्दविरहे जनाः॥ १८॥

ततः सुपर्णो बलवान् पूर्वमेव विसर्जितः।
कृष्णेन मार्गमाणस्तं हिमवन्तं ययौ गिरिम्॥ १९॥

अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
आजगामोपमन्युं तं पुरीं द्वारवतीं पुनः॥ २०॥

तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणाः।
आजग्मुर्द्वारकां शुभ्रां भीषयन्तः सहस्रशः॥ २१॥

स तान् सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रमः।
हत्वा युद्धेन महता रक्षति स्म पुरीं शुभाम्॥ २२॥

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः।
दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः॥ २३॥

तं दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिनः।
प्रोचुर्नारायणो नाथः कुत्रास्ते भगवान् हरिः॥ २४॥

स तानुवाच भगवान् कैलासशिखरे हरिः।
रमतेऽद्य महायोगिन् तं दृष्ट्वाहमिहागतः॥ २५॥

तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततां वरः।
जगामाकाशगो विप्राः कैलासं गिरिमुत्तमम्॥ २६॥

ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते।
वरासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम्॥ २७॥

उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः।
महादेवगणैः सिद्धैर्योगिभिः परिवारितम्॥ २८॥

कुछ कामिनियाँ (कन्याएँ) अपने अङ्गोंसे श्रेष्ठ आभूषणोंको उतारकर उनसे लोकभूषण कृष्णको आदरपूर्वक आभूषित करने लगीं। कुछ उनके अङ्गोंसे श्रेष्ठ आभूषणोंको लेकर अपनेको तथा अपने आभूषणोंसे माधवको सजाने लगीं। कतिपय मुग्ध मृगके समान नयनोंवाली काम-मोहित (कन्याएँ) हरि कृष्णके समीपमें जाकर उनके मुखकमलका स्पर्श करने लगीं। उनकी मायासे मोहित कुछ अप्सराएँ लोकोंके आदि कारण गोविन्दका हाथ पकड़कर उन्हें अपने भवनमें ले गयीं॥ १२—१५॥

उन कमललोचन भगवान् श्रीकृष्णने बहुतसे रूप धारणकर लीलापूर्वक उनकी अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति की। इस प्रकार श्रीमान् नारायण हरिने संसारको (अपनी) मायासे मोहित करते हुए देवाधिदेव शंकरके नगरमें बहुत समयतक रमण किया॥ १६-१७॥

बहुत दिन व्यतीत होनेपर द्वारिकापुरीके रहनेवाले लोग गोविन्दके विरहमें भयभीत एवं विह्वल हो गये। तब पहले कृष्णद्वारा छोड़ दिये गये बलवान् गरुड उनको ढूँढ़ते हुए उस हिमालय पर्वतपर गये। वहाँ गोविन्दको न देखकर उन उपमन्युको विनयपूर्वक प्रणामकर पुनः द्वारवतीपुरीमें लौट आये। इसी बीच अत्यन्त भयंकर हजारों महादैत्य तथा राक्षस भय उत्पन्न करते हुए सुन्दर द्वारकामें आ पहुँचे। कृष्णके समान पराक्रमवाले बलवान् सुपर्ण (गरुड)-ने महान् युद्धद्वारा उन्हें मारकर उस शुभ पुरीकी रक्षा की॥ १८—२२॥

इसी समय भगवान् नारद ऋषि कैलास शिखरपर श्रीकृष्णका दर्शनकर द्वारकापुरीमें गये। उन नारद ऋषिको देखकर वहाँ (द्वारकामें) निवास करनेवाले सभीने पूछा—'नारायण, नाथ, भगवान् हरि कहाँ हैं?' उन्होंने (नारदने) उनसे कहा कि भगवान् हरि कैलास शिखरपर रमण कर रहे हैं, मैं उन महायोगीको देखकर आज यहाँ आया हूँ॥ २३—२५॥

विप्रो! उनका वचन सुनकर आकाशमें चलनेवाले पक्षियोंमें श्रेष्ठ वे गरुड श्रेष्ठ पर्वत कैलासपर गये। उन्होंने देवकीपुत्र गोविन्द हरिको देवाधिदेव (शंकर)-के समीप रत्नमण्डित भवनमें एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखा। (वहाँ) देवता, दिव्य स्त्रियाँ, महादेवके गण, सिद्ध तथा योगीजन चारों ओरसे घेरकर उनकी उपासना कर रहे थे॥ २६—२८॥

प्रणम्य दण्डवद् भूमौ सुपर्णः शंकरं शिवम्।
निवेदयामास हरेः प्रवृत्तिं द्वारके पुरे॥ २९॥
ततः प्रणम्य शिरसा शंकरं नीललोहितम्।
आजगाम पुरीं कृष्णः सोऽनुज्ञातो हरेण तु॥ ३०॥
आरुह्य कश्यपसुतं स्त्रीगणैरभिपूजितः।
वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदनः॥ ३१॥
वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वराः।
अन्वगच्छन् महायोगिन् शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ३२॥
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरिः।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम्॥ ३३॥

गरुडने कल्याणकारी शंकरको भूमिपर दण्डवत् प्रणाम किया और द्वारकापुरीका समाचार हरिसे निवेदन किया। तदनन्तर नीललोहित शंकरको विनयपूर्वक प्रणामकर और उन हरकी आज्ञा प्राप्तकर स्त्रीसमूहोंद्वारा पूजित और अमृतके समान मधुर स्वादुयुक्त वचनोंसे सत्कृत वे मधुसूदन श्रीकृष्ण कश्यपपुत्र गरुडपर आरूढ़ होकर अपनी पुरीको चले। शंख, चक्र तथा गदाधारी शत्रुहन्ता महायोगीको जाते हुए देखकर गन्धर्व तथा श्रेष्ठ अप्सराओंने उनका अनुगमन किया। विश्वात्मा गोविन्द हरि उन सभी अङ्गनाओंको विदाकर शीघ्र ही उस दिव्य पुरी द्वारवतीको गये॥ २९—३३॥

गते मुररिपौ नैव कामिन्यो मुनिपुङ्गवाः।
निशेव चन्द्ररहिता विना तेन चकाशिरे॥ ३४॥
श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम्।
मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम्॥ ३५॥
पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजै रत्नपरिष्कृतैः।
लाजादिभिः पुरीं रम्यां भूषयाञ्चक्रिरे तदा॥ ३६॥
अवादयन्त विविधान् वादित्रान् मधुरस्वनान्।
शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान् वितेनिरे॥ ३७॥
प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरीं द्वारवतीं शुभाम्।
अगायन् मधुरं गानं स्त्रियो यौवनशालिनः॥ ३८॥
दृष्ट्वा ननृतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्धसु।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि॥ ३९॥

मुनिश्रेष्ठो! उन मुरारिके चले जानेपर वे कामिनियाँ चन्द्रमारहित रात्रिके समान शोभाहीन हो गयीं। पुरवासियोंने श्रीकृष्णके आगमनके शुभ समाचारको सुनकर शीघ्र दिव्य एवं मङ्गलमयी द्वारवती पुरीको सुसज्जित किया। श्रीकृष्णके आमगनसे अति प्रसन्न द्वारकावासियोंने विशाल पताकाओं और रत्नोंसे जटित ध्वजों तथा लाजा आदि माङ्गलिक वस्तुओंसे सुन्दर पुरीको सजा दिया। मधुर स्वरवाले विविध वाद्यों, हजारों शंखों तथा वीणाओंको वे लोग बजाने लगे। गोविन्दके शुभपुरी द्वारवतीमें प्रवेश करते ही युवती स्त्रियाँ मधुर स्वरमें गान करने लगीं। उन ईशान (कृष्ण)-को देखकर वे नृत्य करने लगीं और महलोंके ऊपर स्थित स्त्रियाँ वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके ऊपर फूल बरसाने लगीं॥ ३४—३९॥

प्रविश्य भवनं कृष्ण आशीर्वादाभिवर्धितः।
वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः॥ ४०॥
सुरम्ये मण्डपे शुभ्रे शङ्खाद्यैः परिवारितः।
आत्मजैरभितो मुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्च संवृतः॥ ४१॥

भवनमें प्रवेशकर महायोगी कृष्ण आशीर्वादोंसे अभिनन्दित होते हुए अत्यन्त रमणीय शुक्लवर्णके मण्डपमें स्थित एक श्रेष्ठ आसनपर अपनी पत्नियोंके साथ सुशोभित हुए। वे चारों ओरसे शङ्ख आदि प्रमुख पुत्रों तथा हजारों स्त्रियोंसे घिरे हुए थे॥ ४०-४१॥

तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः।
भ्राजते मालया देवो यथा देव्या समन्वितः॥ ४२॥
आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम्।
महर्षयः पूर्वजाता मार्कण्डेयादयो द्विजाः॥ ४३॥
ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम्।
ननामोत्थाय शिरसा स्वासनं च ददौ हरिः॥ ४४॥

वैजयन्ती मालासे विभूषित उस रमणीय श्रेष्ठ आसनपर अच्युत श्रीकृष्ण जाम्बवतीके साथ उसी प्रकार सुशोभित हुए जैसे देवी उमाके साथ महादेव। ब्राह्मणो! उन अव्यय तथा लोकोंके आदि कारण (श्रीकृष्ण)-का दर्शन करनेके लिये देवता, गन्धर्व और पूर्वज मार्कण्डेय आदि महर्षि वहाँ आये। तब उन भगवान् श्रीकृष्ण हरिने मार्कण्डेयजीको आया देखकर आसनसे उठकर विनयपूर्वक प्रणाम किया और उन्हें आसन दिया॥ ४२—४४॥

सम्पूज्य तानृषिगणान् प्रणामेन महाभुजः।
विसर्जयामास हरिर्दत्त्वा तदभिवाञ्छितान्॥ ४५॥

लम्बी भुजाओंवाले हरिने प्रणामके द्वारा उन ऋषिगणोंकी पूजा करके और उनके मनोरथोंको प्रदान करके उन्हें विदा किया॥ ४५॥

तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयं हरिः।
स्नात्वा शुक्लाम्बरो भानुमुपातिष्ठत् कृताञ्जलिः॥ ४६॥

जजाप जाप्यं विधिवत् प्रेक्षमाणो दिवाकरम्।
तर्पयामास देवेशो देवान् मुनिगणान् पितॄन्॥ ४७॥

तदनन्तर मध्याह्नकालमें स्वयं देवाधिदेव हरिने स्नानकर शुक्ल वस्त्र धारण किये और हाथ जोड़कर सूर्यकी आराधना की। दिवाकर सूर्यकी ओर देखते हुए उन्होंने विधिपूर्वक मन्त्रोंका जप किया। उन देवेश्वरने देवताओं, मुनिगणों और पितरोंका तर्पण किया॥ ४६-४७॥

प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि।
पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशं भूतिभूषणम्॥ ४८॥

समाप्य नियमं सर्वं नियन्तासौ नृणां स्वयम्।
भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च॥ ४९॥

कृत्वात्मयोगं विप्रेन्द्रा मार्कण्डेयेन चाच्युतः।
कथाः पौराणिकीः पुण्याश्चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः॥ ५०॥

अथैतत् सर्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म महामुनिः।
मार्कण्डेयो हसन् कृष्णं बभाषे मधुरं वचः॥ ५१॥

(मुनि) मार्कण्डेयके साथ देवमन्दिरमें प्रवेशकर उन्होंने लिङ्गमें प्रतिष्ठित भस्मविभूषित भूतेश्वर (श्रीशंकर)-की पूजा की। मनुष्योंके नियामक उन्होंने स्वयं सभी नियमोंको पूर्णकर ब्राह्मणोंकी पूजा की और मुनीश्वर (मार्कण्डेय)-को भोजन कराया। विप्रेन्द्रो! तदुपरान्त पुत्रों आदिसे घिरे हुए अच्युतने आत्मनिष्ठ होकर मार्कण्डेयजीसे पुराणोंकी पुण्यदायिनी कथाको सुना। इन सारे कर्मोंको देखकर महामुनि मार्कण्डेयने श्रीकृष्णसे हँसते हुए मधुर वचन कहा—॥ ४८—५१॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः।
ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च॥ ५२॥

त्वं हि तत् परमं ब्रह्म निर्वाणममलं पदम्।
भारावतरणार्थाय जातो वृष्णिकुले प्रभुः॥ ५३॥

तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णो ब्रह्मविदां वरः।
शृण्वतामेव पुत्राणां सर्वेषां प्रहसन्निव॥ ५४॥

मार्कण्डेयजी बोले—(देव!) कर्मोंद्वारा आपकी ही पूजा की जाती है और योगियोंके ध्येय भी आप ही हैं, फिर आप शुभ कर्मोंके द्वारा किस देवताकी आराधना कर रहे हैं, यह मुझे बतलायें। आप ही वे परम ब्रह्म हैं, निर्वाणरूप हैं और निर्मल पद हैं। (पृथ्वीका) भार उतारनेके लिये आप प्रभु ही वृष्णि-कुलमें अवतरित हुए हैं। सभी पुत्रोंके सुनते हुए ही ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कृष्णने उनसे (मार्कण्डेयजीसे) हँसते हुए कहा—॥ ५२—५४॥

श्रीभगवानुवाच

भवता कथितं सर्वं तथ्यमेव न संशयः।
तथापि देवमीशानं पूजयामि सनातनम्॥ ५५॥

न मे विप्रास्ति कर्तव्यं नानवाप्तं कथञ्चन।
पूजयामि तथापीशं जानन्नेतत् परं शिवम्॥ ५६॥

न वै पश्यन्ति तं देवं मायया मोहिता जनाः।
ततोऽहं स्वात्मनो मूलं ज्ञापयन् पूजयामि तम्॥ ५७॥

न च लिङ्गार्चनात् पुण्यं लोकेऽस्मिन् भीतिनाशनम्।
तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्॥ ५८॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—आपने जो कुछ भी कहा, सब सत्य ही कहा है, इसमें संशय नहीं है तथापि मैं सनातनदेव ईशान (शंकर)-की पूजा करता हूँ। विप्र! मुझे न तो कुछ करना है और न मुझे कुछ अप्राप्त है, फिर भी यह जानते हुए भी मैं परम शिव ईशकी पूजा करता हूँ। मायासे मोहित लोग उन देव (शंकर)-का साक्षात्कार नहीं कर पाते। परंतु मैं अपने मूलका[१] परिचय देते हुए उनकी पूजा करता हूँ। इस संसारमें लिङ्गार्चनसे अधिक कोई पुण्य और भयका नाश करनेवाला (कर्म) नहीं है। अतः इन लोकों (प्राणिमात्र)-के कल्याणके लिये लिङ्गमें शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ५५—५८॥

१-मेरे भी मूल (सर्वाधिष्ठान) महादेव शंकर ही हैं—यह सबको बतानेके लिये मैं लिङ्गस्वरूप भगवान् शंकरकी पूजा करता हूँ।

योऽहं तल्लिङ्गमित्याहुर्वेदवादविदो जनाः।
ततोऽहमात्ममीशानं पूजयाम्यात्मनैव तु॥ ५९॥

तस्यैव परमा मूर्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः।
नावयोर्विद्यते भेदो वेदेष्वेवं विनिश्चयः॥ ६०॥

एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः।
ध्येयः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः॥ ६१॥

मार्कण्डेय उवाच

किं तल्लिङ्गं सुरश्रेष्ठ लिङ्गे सम्पूज्यते च कः।
ब्रूहि कृष्ण विशालाक्ष गहनं ह्येतदुत्तमम्॥ ६२॥

श्रीभगवानुवाच

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम्।
वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्॥ ६३॥

पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः॥ ६४॥

तस्मात् कालात् समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि।
पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया॥ ६५॥

मार्कण्डेय उवाच

कथं लिङ्गमभूत् पूर्वमैश्वरं परमं पदम्।
प्रबोधार्थं स्वयं कृष्ण वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ ६६॥

श्रीभगवानुवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्।
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः॥ ६७॥
सहस्त्रशीर्षा भूत्वाहं सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
सहस्त्रबाहुर्युक्तात्मा शयितोऽहं सनातनः॥ ६८॥
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम्॥ ६९॥
चतुर्वक्त्रं महायोगिन् पुरुषं काञ्चनप्रभम्।
कृष्णाजिनधरं देवमृग्यजुःसामभिः स्तुतम्॥ ७०॥

वैदिक सिद्धान्तोंको जाननेवाले लोग इस लिङ्गको मेरा ही स्वरूप कहते हैं। इसीलिये मैं स्वयमेव आत्मस्वरूप ईशानका पूजन करता हूँ। मैं उन्हीं (शंकर)-की परम मूर्ति हूँ, मैं शिवस्वरूप ही हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं। वेदोंमें ऐसा ही निश्चय किया गया है कि हम दोनोंमें कोई भेद विद्यमान नहीं है। संसारसे भयभीत लोगोंको इन देव महादेवका सदा ध्यान, पूजन और वन्दन करना चाहिये तथा लिङ्गमें महेश्वरको सदा प्रतिष्ठित समझना चाहिये॥ ५९—६१॥

श्रीमार्कण्डेयजीने पूछा—विशाल नेत्रोंवाले देवश्रेष्ठ कृष्ण! आप इस गूढ़ एवं श्रेष्ठ विषयको बतलायें कि लिङ्ग क्या है और लिङ्गमें किसकी पूजा होती है?॥ ६२॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ज्योतिःस्वरूप, अक्षर, अव्यक्त आनन्दको लिङ्ग[1] कहा गया है और वेद महेश्वरदेवको अव्यय तथा लिङ्ग धारण करनेवाला कहते हैं। प्राचीन कालमें जब सर्वत्र जल-ही-जल एकार्णव हो गया और स्थावर-जङ्गम सब नष्ट हो गया, तब ब्रह्मा तथा मुझे प्रबोधित करनेके लिये उसी एकार्णवमें शिवका प्रादुर्भाव हुआ। उसी समयसे लोकोंके कल्याणकी कामनासे ब्रह्मा तथा मैं दोनों ही सदा महादेवकी पूजा करते हैं॥ ६३—६५॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—श्रीकृष्ण! अब आप यह बतलायें कि पूर्वकालमें आप लोगोंको ज्ञान देनेके लिये वह ईश्वरका परम पदरूप लिङ्ग किस प्रकार स्वयं प्रकट हुआ॥ ६६॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—(प्रलयकालमें) विभाग-रहित, तमोमय भयंकर एकमात्र समुद्र (एकार्णव) ही था। उस एकार्णवके मध्यभागमें शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाला युक्तात्मा सनातन मैं हजारों सिर, हजारों आँख, हजारों चरण, हजारों बाहुवाला होकर शयन कर रहा था। इसी बीच मैंने दूर स्थित अमित प्रभावाले, करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, शोभासम्पन्न, कृष्णमृगका चर्म धारण किये हुए, ऋक्, यजुः तथा सामवेदद्वारा

१-लिङ्गका अर्थ है कारण। यहाँ प्रसंगानुसार लिङ्गका अर्थ मूल कारण है। मूल कारण परमेश्वर ही हैं। वे ज्योतिःस्वरूप अक्षर एवं आनन्दस्वरूप हैं, इसीलिये यहाँ लिङ्गको ज्योतिःस्वरूप, आनन्दरूप कहा है।

निमेषमात्रेण स मां प्राप्तो योगविदां वरः।
व्याजहार स्वयं ब्रह्मा स्मयमानो महाद्युतिः॥ ७१॥

स्तुत हो रहे काञ्चनके समान आभावाले महायोगी चतुर्मुख देव पुरुषको देखा। क्षणभरमें ही वे योगज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, महाद्युति ब्रह्मा मुसकराते हुए स्वयं मेरे पास आये और कहने लगे—॥ ६७—७१॥

कस्त्वं कुतो वा किं चेह तिष्ठसे वद मे प्रभो।
अहं कर्ता हि लोकानां स्वयम्भूः प्रपितामहः॥ ७२॥

एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाच ह।
अहं कर्तास्मि लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः॥ ७३॥

एवं विवादे वितते मायया परमेष्ठिनः।
प्रबोधार्थं परं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्॥ ७४॥

कालानलसमप्रख्यं ज्वालामालासमाकुलम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम्॥ ७५॥

प्रभो! मुझे बतलायें कि आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं और किस कारणसे यहाँ स्थित हैं। मैं लोकोंका निर्माण करनेवाला स्वयम्भू प्रपितामह (ब्रह्मा) हूँ। उन ब्रह्माके द्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने उनसे (ब्रह्मासे) कहा—मैं पुनः-पुनः लोकोंकी सृष्टि करनेवाला हूँ और मैं ही संहार करनेवाला हूँ। परमेष्ठीकी मायाके कारण इस प्रकारका विवाद बढ़नेपर (हम लोगोंको) यथार्थ स्थितिका ज्ञान करानेके लिये (उस समय) शिवरूप परम लिङ्ग प्रादुर्भूत हुआ। वह लिङ्ग प्रलय-कालीन अग्निके समान अनेक ज्वालामालाओंसे व्याप्त, क्षय एवं वृद्धिसे मुक्त और आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित था॥ ७२—७५॥

ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वै।
अन्तमस्य विजानीम ऊर्ध्वं गच्छेऽहमित्यजः॥ ७६॥

तदाशु समयं कृत्वा गतावूर्ध्वमधश्च द्वौ।
पितामहोऽप्यहं नान्तं ज्ञातवन्तौ समाः शतम्॥ ७७॥

ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिनः।
मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम्॥ ७८॥

प्रोच्चरन्तौ महानादमोङ्कारं परमं पदम्।
प्रह्वाञ्जलिपुटोपेतौ शम्भुं तुष्टुवतुः परम्॥ ७९॥

तब भगवान् शंकरने मुझसे कहा—तुम शीघ्र ही (इस लिङ्गके) नीचेकी ओर जाओ और इसके अन्तका पता लगाओ और ये अजन्मा ब्रह्मा (इसके) ऊपरकी ओर जायँ। तदनन्तर शीघ्र ही प्रतिज्ञा करके हम दोनों ऊपर तथा नीचेकी ओर गये, किंतु पितामह तथा मैं सैकड़ों वर्षोंमें भी उसका अन्त नहीं जान सके। तदनन्तर त्रिशूलधारी देवकी मायासे मोहित, भयभीत एवं आश्चर्यचकित हम दोनों उन विश्वरूप ईश्वरका ध्यान करने लगे और परमपद महानाद ओंकारका उच्चारण करते हुए नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर श्रेष्ठ शम्भुकी स्तुति करने लगे—॥ ७६—७९॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

अनादिमलसंसाररोगवैद्याय शम्भवे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८०॥

प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयोद्भूतिहेतवे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८१॥

ज्वालामालावृताङ्गाय ज्वलनस्तम्भरूपिणे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८२॥

आदिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदीप्तये।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८३॥

ब्रह्मा तथा विष्णुने कहा—विविध अनादि विकारोंसे मुक्त संसाररूपी रोगके अनादि वैद्यस्वरूप शम्भु, शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिवाले ब्रह्मको नमस्कार है। प्रलयकालीन समुद्रमें स्थित रहनेवाले, सृष्टि और प्रलयके कारणरूप शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिधारी ब्रह्मको नमस्कार है। ज्वालामालाओंसे घिरे हुए शरीरवाले, प्रज्वलित स्तम्भरूप शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिवाले ब्रह्मको नमस्कार है। आदि, मध्य और अन्तसे रहित स्वभावतः निर्मल तेजोरूप शिव, शान्त तथा लिङ्गरूपी मूर्तिको धारण करनेवाले ब्रह्मको नमस्कार है॥ ८०—८३॥

महादेवाय महते ज्योतिषेऽनन्ततेजसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८४॥
प्रधानपुरुषेशाय व्योमरूपाय वेधसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८५॥
निर्विकाराय सत्याय नित्यायामलतेजसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८६॥
वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय धीमते।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये॥ ८७॥

महादेव, महान्, ज्योतिःस्वरूप, अनन्त तेजस्वी लिङ्गविग्रह शिव, शान्त, ब्रह्मको नमस्कार है। प्रधान पुरुषके भी ईश, व्योमस्वरूप, वेधा (ब्रह्म) और लिङ्गविग्रह शिव, शान्त ब्रह्मको नमस्कार है। निर्विकार, सत्य, नित्य विमल तेजरूप लिङ्गविग्रह शान्त, शिव ब्रह्मको नमस्कार है। वेदान्तसार-स्वरूप, कालरूप, धीमान् लिङ्गमूर्ति शिव, शान्त ब्रह्मको नमस्कार है॥ ८४—८७॥

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महेश्वरः।
भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः॥ ८८॥

वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम्।
सहस्रहस्तचरणः सूर्यसोमाग्निलोचनः॥ ८९॥

पिनाकपाणिर्भगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलभृत्।
व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनिःस्वनः॥ ९०॥

अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ।
पश्येतं मां महादेवं भयं सर्वं प्रमुच्यताम्॥ ९१॥

युवां प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः।
वामपार्श्वे च मे विष्णुः पालको हृदये हरः॥ ९२॥

प्रीतोऽहं युवयोः सम्यक् वरं दद्मि यथेप्सितम्।
एवमुक्त्वाथ मां देवो महादेवः स्वयं शिवः।
आलिङ्ग्य देवं ब्रह्माणं प्रसादाभिमुखोऽभवत्॥ ९३॥

इस प्रकार स्तुति करते रहनेपर महायोगी महेश्वर देव प्रकट हो गये और हजारों करोड़ मुखसे आकाशको मानो ग्रास बनाते हुए करोड़ों सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। हजारों हाथ और पैरवाले, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निरूप (तीन) नयनवाले, पिनाकधनुषको हाथमें धारण करनेवाले, चर्माम्बरधारी, त्रिशूलधारी, सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले और मेघ तथा दुन्दुभिके सदृश स्वरवाले भगवान् महादेवने कहा—श्रेष्ठ देवो! मैं प्रसन्न हूँ। मुझ महादेवकी ओर देखो और समस्त भयका परित्याग करो। पूर्वकालमें तुम दोनों सनातन (देव) मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए थे। मेरे दक्षिण पार्श्वमें ये लोकपितामह ब्रह्मा, वाम पार्श्वमें पालनकर्ता विष्णु और हृदयमें हर स्थित हैं। मैं तुम दोनोंपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ, इसलिये यथेष्ट वर प्रदान करूँगा। ऐसा कहकर महादेव शिव स्वयं मुझे तथा देव ब्रह्माका आलिङ्गन कर अनुग्रह प्रदान करनेके लिये उद्यत हुए॥ ८८—९३॥

ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणिपत्य महेश्वरम्।
ऊचतुः प्रेक्ष्य तद्वक्त्रं नारायणपितामहौ॥ ९४॥

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव महेश्वरे॥ ९५॥

ततः स भगवानीशः प्रहसन् परमेश्वरः।
उवाच मां महादेवः प्रीतः प्रीतेन चेतसा॥ ९६॥

तदनन्तर प्रसन्न मनवाले नारायण तथा पितामहने महेश्वरको प्रणामकर उनके मुखकी ओर देखते हुए कहा—देव! यदि प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हम दोनोंको वर देना चाहते हैं तो (यह वर दें कि) हम दोनोंकी आप महेश्वरमें नित्य भक्ति बनी रहे। तब उन प्रसन्न हुए परम ईश्वर भगवान् ईश महादेवने प्रसन्न मनसे हँसते हुए मुझसे कहा—॥ ९४—९६॥

देव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ता त्वं धरणीपते।
वत्स वत्स हरे विश्वं पालयैतच्चराचरम्॥ ९७॥
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः॥ ९८॥
सम्मोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम्।
भविष्यत्येष भगवांस्तव पुत्रः सनातनः॥ ९९॥

देव बोले—धरणीपते! वत्स हरि! तुम सृष्टि, पालन और प्रलयके कर्ता हो। इस चराचर विश्वका पालन करो। हे विष्णो! मैं निर्गुण तथा निरञ्जन होते हुए भी सृष्टि, रक्षा तथा प्रलयके लिये अपेक्षित गुणोंके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु तथा हर नामसे तीन रूपोंमें विभक्त हूँ। विष्णो! मोहका परित्याग करो, इन पितामहका पालन करो। ये सनातन भगवान् आपके पुत्र होंगे॥ ९७—९९॥

अहं च भवतो वक्त्रात् कल्पादौ घोररूपधृक्।
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः॥ १००॥

एवमुक्त्वा महादेवो ब्रह्माणं मुनिसत्तम।
अनुगृह्य च मां देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १०१॥

ततः प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गं तल्लयनाद् ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमं वपुः॥ १०२॥
एतल्लिङ्गस्य माहात्म्यं भाषितं ते मयानघ।
एतद् बुध्यन्ति योगज्ञा न देवा न च दानवाः॥ १०३॥

एतद्धि परमं ज्ञानमव्यक्तं शिवसञ्ज्ञितम्।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यं तत् पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥ १०४॥

तस्मै भगवते नित्यं नमस्कारं प्रकुर्महे।
महादेवाय रुद्राय देवदेवाय लिङ्गिने॥ १०५॥
नमो वेदरहस्याय नीलकण्ठाय वै नमः।
विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे हेतवे नमः॥ १०६॥

ब्रह्मणे वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे।
शंकराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च॥ १०७॥

नमः कुरुष्व सततं ध्यायस्व मनसा हरम्।
संसारसागरादस्मादचिरादुत्तरिष्यसि॥ १०८॥
एवं स वासुदेवेन व्याहृतो मुनिपुङ्गवः।
जगाम मनसा देवमीशानं विश्वतोमुखम्॥ १०९॥

प्रणम्य शिरसा कृष्णमनुज्ञातो महामुनिः।
जगाम चेप्सितं देशं देवदेवस्य शूलिनः॥ ११०॥
य इमं श्रावयेन्नित्यं लिङ्गाध्यायमनुत्तमम्।
शृणुयाद् वा पठेद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १११॥
श्रुत्वा सकृदपि ह्येतत् तपश्चरणमुत्तमम्।
वासुदेवस्य विप्रेन्द्राः पापं मुञ्चति मानवः॥ ११२॥
जपेद् वाहरहर्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते।
एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायनः प्रभुः॥ ११३॥

कल्पके आदिमें मैं भी आपके मुखसे प्रकट होकर घोर रूप धारणकर हाथमें शूल धारण किये आपका क्रोधज पुत्र बनूँगा॥ १००॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार कहकर भगवान् महादेव मुझपर तथा ब्रह्मापर कृपा करके वहींपर अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मन्! तबसे लोकमें लिङ्गका पूजन प्रतिष्ठित हो गया। लीन होनेसे वह लिङ्ग कहा जाता है। लिङ्ग ब्रह्मका श्रेष्ठ शरीर है॥ १०१-१०२॥

अनघ! मैंने इस लिङ्गका माहात्म्य तुम्हें बताया। इसे न देवता जानते हैं न दानव, केवल योगज्ञ लोग ही जानते हैं। यह शिव नामवाला अव्यक्त परम ज्ञान है। ज्ञानदृष्टिवाले इसीके द्वारा उस सूक्ष्म अचिन्त्य (तत्त्व)-का दर्शन करते हैं। इस लिङ्गस्वरूप देवाधि-देव महादेव भगवान् रुद्रको हम नित्य नमस्कार करते हैं॥ १०३—१०५॥

वेदके रहस्यरूप आपको नमस्कार है, नीलकण्ठको नमस्कार है। विशेष भय[1] उत्पन्न करनेवाले, शान्त, स्थाणु तथा कारणरूपको नमस्कार है। वामदेव, त्रिलोचन, महिमावान्, ब्रह्म, शंकर, महेश, गिरीश तथा शिवको नमस्कार है। सदा इन्हें नमस्कार करो, मनसे शंकरका ध्यान करो। इससे शीघ्र ही संसारसागरसे पार हो जाओगे॥ १०६—१०८॥

इस प्रकार वासुदेवके द्वारा कहे जानेपर उन मुनिश्रेष्ठ (मार्कण्डेय)-ने विश्वतोमुख देव ईशान (शंकर)-का ध्यान किया। श्रीकृष्णको विनयपूर्वक प्रणामकर उनकी आज्ञा प्राप्तकर महामुनि (मार्कण्डेय) त्रिशूल धारण करनेवाले देवाधिदेवके अभीष्ट स्थानको चले गये॥ १०९-११०॥

जो इस श्रेष्ठ लिङ्गाध्यायको सुनेगा, सुनायेगा अथवा पढ़ेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जायगा। विप्रेन्द्रो! वासुदेवके इस श्रेष्ठ तपश्चरणको एक बार भी सुननेवाला मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है अथवा प्रतिदिन इसका निरन्तर जप करनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है—ऐसा महायोगी प्रभु कृष्णद्वैपायनने कहा है॥ १११—११३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५॥

१-प्राणीको पापसे विरत करनेके लिये अन्य उपाय न होनेपर भगवान् शंकर भय भी उत्पन्न करते हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णको महेश्वरकी कृपासे साम्ब नामक पुत्रकी प्राप्ति, कंसादिका वध, भृगु आदि महर्षियोंका द्वारकामें आना, भृगु आदि मुनियोंसे श्रीकृष्णद्वारा स्वधामगमनकी बात बताना, शिवसे द्वेष करनेवालोंको नरककी प्राप्तिका वर्णन तथा शिवकी महिमा बताना, नारायणका अपने कुलका संहारकर स्वधामगमन तथा वंश-वर्णनका उपसंहार

सूत उवाच

ततो लब्धवरः कृष्णो जाम्बवत्यां महेश्वरात्।
अजीजनन्महात्मानं साम्बमात्मजमुत्तमम्॥ १ ॥
प्रद्युम्नस्याप्यभूत् पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः।
तावुभौ गुणसम्पन्नौ कृष्णस्यैवापरे तनू॥ २ ॥
हत्वा च कंसं नरकमन्यांश्च शतशोऽसुरान्।
विजित्य लीलया शक्रं जित्वा बाणं महासुरम्॥ ३ ॥
स्थापयित्वा जगत् कृत्स्नं लोके धर्मांश्च शाश्वतान्।
चक्रे नारायणो गन्तुं स्वस्थानं बुद्धिमुत्तमाम्॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भृग्वाद्याः कृष्णमीश्वरम्।
आजग्मुर्द्वारकां द्रष्टुं कृतकार्यं सनातनम्॥ ५ ॥
स तानुवाच विश्वात्मा प्रणिपत्याभिपूज्य च।
आसनेषूपविष्टान् वै सह रामेण धीमता॥ ६ ॥
गमिष्ये तत् परं स्थानं स्वकीयं विष्णुसंज्ञितम्।
कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः॥ ७ ॥
इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तमधुनाशुभम्।
भविष्यन्ति जनाः सर्वे ह्यस्मिन् पापानुवर्तिनः॥ ८ ॥
प्रवर्तयध्वं मज्ज्ञानं ब्राह्मणानां हितावहम्।
येनेमे कलिजैः पापैर्मुच्यन्ते हि द्विजोत्तमाः॥ ९ ॥
ये मां जनाः संस्मरन्ति कलौ सकृदपि प्रभुम्।
तेषां नश्यतु तत् पापं भक्तानां पुरुषोत्तमे॥ १० ॥

येऽर्चयिष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः।
विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत् पदम्॥ ११ ॥
ये ब्राह्मणा वंशजाता युष्माकं वै सहस्रशः।
तेषां नारायणे भक्तिर्भविष्यति कलौ युगे॥ १२ ॥
परात् परतरं यान्ति नारायणपरायणाः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्॥ १३ ॥

सूतजी बोले—तदनन्तर महेश्वरसे वर प्राप्त किये हुए कृष्णने जाम्बवतीसे महात्मा साम्ब नामक श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया। प्रद्युम्नको भी महाबलवान् अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। गुणोंसे सम्पन्न वे दोनों कृष्णके ही दूसरे शरीर (-रूप) थे। कंस, नरक तथा अन्य सैकड़ों असुरोंको मारकर लीलापूर्वक इन्द्रको जीतकर तथा महान् असुर बाणको पराजितकर, सम्पूर्ण संसारको प्रतिष्ठितकर और लोकमें शाश्वत धर्मोंकी स्थापनाकर नारायणने अपने धाममें जानेका श्रेष्ठ विचार किया। ब्राह्मणो! इसी बीच भृगु आदि (महर्षि) अवतारके समस्त प्रयोजनोंसे निवृत्त सनातन ईश्वर कृष्णका दर्शन करनेके लिये द्वारकामें आये॥ १—५॥

विश्वात्मा (कृष्ण)-ने बुद्धिमान् बलरामके साथ आसनोंपर विराजमान भृगु आदि महर्षियोंको प्रणामकर और पूजनकर उनसे कहा—मुनीश्वरो! सभी कार्य किये जा चुके हैं। अब मैं विष्णुसंज्ञक अपने उस परमधामको जाऊँगा, आप लोग प्रसन्न हों। इस समय अशुभ घोर कलियुग आ गया है। इसमें सभी लोग पापाचरण करनेवाले हो जायँगे। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप लोग ब्राह्मणोंके लिये कल्याणकारी मेरा ज्ञान प्रवर्तित करें, जिससे ये लोग कलिद्वारा उत्पन्न पापोंसे मुक्त हो सकें॥ ६—९॥

कलियुगमें जो लोग एक बार भी मुझ प्रभुका स्मरण करेंगे, उन पुरुषोत्तमके भक्तोंका पाप नष्ट हो जायगा। द्विजो! जो कलियुगमें भक्तिपूर्वक वैदिक विधि-विधानसे नित्य मेरा पूजन करेंगे, वे मेरे पदको प्राप्त करेंगे॥ १०-११॥

आप लोगोंके वंशमें जो हजारों ब्राह्मण उत्पन्न होंगे, उनकी कलियुगमें नारायणमें भक्ति होगी। नारायणके भक्तजन परसे परतर स्थानको प्राप्त करते हैं, किंतु जो महेश्वरसे द्वेष रखते हैं, वे वहाँ नहीं जाते॥ १२-१३॥

ध्यानं होमं तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः।
तेषां विनश्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति पिनाकिनम्॥ १४॥

जो पिनाक धारण करनेवाले शिवकी निन्दा करते हैं, उनका ध्यान, होम, किया गया तप, ज्ञान तथा यज्ञादि सभी विधान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ १४॥

यो मां समाश्रयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्द्य देवमीशानं स याति नरकायुतम्॥ १५॥

तस्मात् सा परिहर्तव्या निन्दा पशुपतौ द्विजाः।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भक्तेष्वपि यत्नतः॥ १६॥

ये तु दक्षाध्वरे शप्ता दधीचेन द्विजोत्तमाः।
भविष्यन्ति कलौ भक्तैः परिहार्याः प्रयत्नतः॥ १७॥

द्विषन्तो देवमीशानं युष्माकं वंशसम्भवाः।
शप्ताश्च गौतमेनोर्व्यां न सम्भाष्या द्विजोत्तमैः॥ १८॥

जो ईशान (शंकर) देवकी निन्दा कर नित्य अनन्य भावसे मेरा आश्रय ग्रहण करता है, वह दस हजार वर्षोंतक नरकमें रहता है। इसलिये द्विजो! मन, वाणी तथा कर्मसे पशुपति तथा उनके भक्तोंकी भी निन्दाका प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये। द्विजोत्तमो! दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें दधीचने आपके वंशमें उत्पन्न जिन ब्राह्मणोंको देव ईशानसे द्वेष करनेके कारण शाप दिया था, वे सभी कलियुगमें पृथ्वीपर उत्पन्न होंगे। भक्तोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक उनका परित्याग करना चाहिये। महर्षि गौतमद्वारा शापप्राप्त लोगोंसे भी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बात नहीं करनी चाहिये॥ १५—१८॥

इत्येवमुक्ताः कृष्णेन सर्व एव महर्षयः।
ओमित्युक्त्वा ययुस्तूर्णं स्वानि स्थानानि सत्तमाः॥ १९॥

ततो नारायणः कृष्णो लीलयैव जगन्मयः।
संहृत्य स्वकुलं सर्वं ययौ तत् परमं पदम्॥ २०॥

कृष्णद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे सभी श्रेष्ठ महर्षि 'ठीक है' ऐसा कहकर शीघ्र ही अपने स्थानोंको चले गये। तदनन्तर जगन्मय नारायण कृष्ण लीलापूर्वक अपने सारे कुलका संहारकर अपने परमधामको पधार गये॥ १९-२०॥

इत्येष वः समासेन राज्ञां वंशोऽनुकीर्तितः।
न शक्यो विस्तराद् वक्तुं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥ २१॥

यः पठेच्छृणुयाद् वापि वंशानां कथनं शुभम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥ २२॥

(सूतजीने ऋषियोंसे कहा—) संक्षेपमें यह राजवंश आप लोगोंको बताया गया, विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं हो सकता। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं? जो इन वंशोंके शुभ वर्णनको पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा स्वर्गलोकमें आदर प्राप्त करता है॥ २१-२२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

व्यासदेवद्वारा अर्जुनको सत्ययुगादि चारों युगोंके धर्मोंका उपदेश, व्यासद्वारा एक वेद-संहिताका चतुर्धा विभाजन, चारों युगोंमें चतुष्पाद धर्मकी विभिन्न स्थितिका निदर्शन तथा कलियुगमें धर्मके ह्रासका प्रतिपादन

ऋषय ऊचुः

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
एषां स्वभावं सूताद्य कथयस्व समासतः॥ १॥

ऋषियोंने कहा—सूतजी! सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये चार युग हैं, अब (आप) इनके स्वभावका संक्षेपमें वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परमं पदम्।
पार्थः परमधर्मात्मा पाण्डवः शत्रुतापनः॥ २॥

कृत्वा चैवोत्तरविधिं शोकेन महतावृतः।
अपश्यत् पथि गच्छन्तं कृष्णद्वैपायनं मुनिम्॥ ३॥

शिष्यैः प्रशिष्यैरभितः संवृतं ब्रह्मवादिनम्।
पपात दण्डवद् भूमौ त्यक्त्वा शोकं तदार्जुनः॥ ४॥

उवाच परमप्रीतः कस्माद् देशान्महामुने।
इदानीं गच्छसि क्षिप्रं कं वा देशं प्रति प्रभो॥ ५॥

संदर्शनाद् वै भवतः शोको मे विपुलो गतः।
इदानीं मम यत् कार्यं ब्रूहि पद्मदलेक्षण॥ ६॥

तमुवाच महायोगी कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।
उपविश्य नदीतीरे शिष्यैः परिवृतो मुनिः॥ ७॥

सूतजी बोले—नारायण कृष्णके अपने परमधाम चले जानेपर शत्रुओंको पीड़ा पहुँचानेवाले परम धर्मात्मा पाण्डुपुत्र पार्थ (अर्जुन) और्ध्वदैहिक क्रिया करके महान् शोकसे आवृत हो गये। (उन्होंने) मार्गमें जाते हुए ब्रह्मवादी कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिको शिष्यों, प्रशिष्योंसे चारों ओरसे घिरे हुए देखा। तब शोकका परित्यागकर अर्जुनने भूमिपर दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया और परम प्रीतिसे कहा—महामुने! प्रभो! आप कहाँसे आ रहे हैं और किस देशकी ओर इस समय शीघ्रतापूर्वक जा रहे हैं? आपका दर्शन करनेसे ही मेरा महान् शोक दूर हो गया है। कमलपत्रके समान नेत्रवाले (व्यासजी महाराज)! इस समय मेरा जो कर्तव्य हो, उसे आप बतलायें। तब शिष्योंसे घिरे हुए महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनिने नदीके किनारे बैठकर स्वयं कहा—॥ २—७॥

व्यास उवाच

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन।
ततो गच्छामि देवस्य वाराणसीं महापुरीम्॥ ८॥

अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्तिनः।
भविष्यन्ति महापापा वर्णाश्रमविवर्जिताः॥ ९॥

नान्यत् पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम्।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे॥ १०॥

व्यासजी बोले—पाण्डुके पुत्र (अर्जुन)! यह घोर कलियुग आ गया है। इसलिये मैं भगवान् शंकरकी महापुरी वाराणसी जा रहा हूँ। इस भयंकर कलियुगमें लोग पापाचरण करनेवाले, वर्ण तथा आश्रमधर्मसे रहित महान् पापी होंगे। कलियुगमें सभी पापोंका शमन करनेके लिये वाराणसीपुरीके सेवनको छोड़कर अन्य दूसरा कोई प्रायश्चित्त मैं नहीं देखता॥ ८—१०॥

कृतं त्रेता द्वापरं च सर्वेष्वेतेषु वै नराः।
भविष्यन्ति महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः॥ ११॥

त्वं हि लोकेषु विख्यातो धृतिमाञ्जनवत्सलः।
पालयाद्य परं धर्मं स्वकीयं मुच्यसे भयात्॥ १२॥

एवमुक्तो भगवता पार्थः परपुरञ्जयः।
पृष्टवान् प्रणिपत्यासौ युगधर्मान् द्विजोत्तमाः॥ १३॥

तस्मै प्रोवाच सकलं मुनिः सत्यवतीसुतः।
प्रणम्य देवमीशानं युगधर्मान् सनातनान्॥ १४॥

सत्य, त्रेता तथा द्वापर—इन सभी (युगों)-में मनुष्य महात्मा, धार्मिक तथा सत्यवादी होते हैं। आप संसारमें प्रजावत्सल तथा धृतिमान्के रूपमें विख्यात हैं, अतः अपने परम धर्मका पालन करें, इससे आप भयसे मुक्त हो जायँगे। द्विजोत्तमो! भगवान् (व्यास)-के द्वारा ऐसा कहनेपर शत्रुके पुरको जीतनेवाले पृथा (कुन्ती)-के पुत्र पार्थ (अर्जुन)-ने इन्हें प्रणामकर युगधर्मोंको पूछा। सत्यवतीके पुत्र व्यासमुनिने भगवान् शंकरको प्रणामकर सम्पूर्ण सनातन युगधर्मोंको उन्हें बतलाया॥ ११—१४॥

व्यास उवाच

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान् नरेश्वर।
न शक्यते मया पार्थ विस्तरेणाभिभाषितुम्॥ १५॥
आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः।
तृतीयं द्वापरं पार्थ चतुर्थं कलिरुच्यते॥ १६॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे॥ १७॥
ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ रुद्रो महेश्वरः॥ १८॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलिष्वपि।
पूज्यते भगवान् रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्॥ १९॥
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः।
त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद् द्विपादो द्वापरे स्थितः।
त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण तिष्ठति॥ २०॥

व्यासजी बोले—नरेश्वर! पार्थ! संक्षेपमें युगधर्मोंको तुम्हें बतलाता हूँ, मैं विस्तारसे वर्णन नहीं कर सकता हूँ। पार्थ! विद्वानोंद्वारा पहला कृतयुग कहा गया है, तदनन्तर दूसरा त्रेतायुग, तीसरा द्वापर तथा चौथा कलियुग कहा गया है। कृतयुगमें ध्यान, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ साधन बताया गया है। कृतयुगमें ब्रह्मा देवता होते हैं, इसी प्रकार त्रेतामें भगवान् सूर्य, द्वापरमें देवता विष्णु और कलियुगमें महेश्वर रुद्र ही मुख्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य—ये सभी कलियुगमें पूजित होते हैं, किंतु पिनाकधारी भगवान् रुद्र चारों युगोंमें पूजे जाते हैं। सर्वप्रथम कृतयुगमें सनातनधर्म चार चरणोंवाला था, त्रेतामें तीन चरणोंवाला तथा द्वापरमें दो चरणोंसे स्थित हुआ, किंतु कलियुगमें तीन चरणोंसे रहित होकर केवल सत्तामात्रसे स्थित रहता है॥ १५—२०॥

कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षाद् रसोल्लसा।
प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सदानन्दाश्च भोगिनः॥ २१॥

अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां निर्विशेषाः पुरञ्जय।
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे॥ २२॥

विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा।
ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः॥ २३॥

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताः परंतप॥ २४॥

कृतयुगमें स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पत्ति होती थी और लोगोंकी आजीविका साक्षात् (आनन्द) रससे उल्लसित रहती थी। सारी प्रजाएँ सर्वदा सात्त्विक आनन्दसे तृप्त और भोगसे सम्पन्न रहती थीं। पुरञ्जय! उन प्रजाओंमें उत्तम और अधमका भेद नहीं था, सभी निर्विशेष थे। उस कृतयुगमें प्रजाकी आयु, सुख और रूप समान था। सम्पूर्ण प्रजा शोकसे रहित, सत्त्वगुणके बाहुल्यसे युक्त, एकान्तप्रेमी, ध्याननिष्ठ, तपोनिष्ठ तथा महादेव शंकरकी भक्त थी। परंतप! वे प्रजाएँ निष्कामकर्म करनेवाली, नित्य प्रसन्न मनवाली और पर्वतों एवं समुद्रके किनारे रहनेवाली थीं, उनका कोई घर नहीं होता था॥ २१—२४॥

रसोल्लासा कालयोगात् त्रेताख्ये नश्यते ततः।
तस्यां सिद्धौ प्रणष्टायामन्या सिद्धिरवर्तत॥ २५॥
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिहते तदा मेघात्मना तु वै।
मेघेभ्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्॥ २६॥
सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले।
प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षा वै गृहसंज्ञिताः॥ २७॥
सर्वप्रत्युपयोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते।
वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः॥ २८॥

तदनन्तर कालके प्रभावसे त्रेता नामक युगमें (सत्ययुगका) आनन्दोल्लास नष्ट हो जाता है, (कृतयुगकी) उस सिद्धिका लोप होनेपर अन्य सिद्धि प्रवर्तित होती है। मेघमें जलकी कमी होनेपर मेघ और विद्युत्से वृष्टि उत्पन्न हुई।[1] पृथ्वीतलपर एक बार ही उस वृष्टिका संयोग होनेसे उन प्रजाओंके लिये गृहसंज्ञक वृक्षोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन (वृक्षों)-से ही उनके सब कार्य सम्पन्न होने लगे। त्रेतायुगके प्रारम्भमें वह समस्त प्रजा उनसे ही (अपनी जीविकाका) निर्वाह करती थी॥ २५—२८॥

१-सत्ययुगमें स्वयं मेघ जलमय होते थे। उनमें इतनी जलकी प्रचुरता होती थी कि किसी अन्यके सहयोगके बिना ही वे वृष्टि करते थे। पर त्रेतायुगमें मेघोंकी जलमयता प्रतिहत हो गयी। फलतः विद्युत्के सहयोगसे ही मेघ वृष्टि कर पाते थे।

ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्।
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्॥ २९॥

तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर उन प्रजाओंके ही विपर्ययसे[1] उनमें अचानक ही राग और लोभका भाव उत्पन्न हो गया। तदनन्तर उनके उलट-फेर (दिनचर्यामें व्यत्यय)-के कारण उस समयके प्रभाववश वे गृह-संज्ञक सभी वृक्ष नष्ट हो गये॥ २९—३०॥

विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना।
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥ ३०॥
ततस्तेषु प्रणष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः।
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा॥ ३१॥

प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः।
वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च॥ ३२॥

तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम्।
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु॥ ३३॥

तेन ता वर्तयन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजाः।
हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या सर्वा वै विगतज्वराः॥ ३४॥

ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तदा।
वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु चामाक्षिकं बलात्॥ ३५॥

तब उन (वृक्षों)-के नष्ट हो जानेपर मिथुनधर्मसे उत्पन्न सत्यका ध्यान करनेवाले वे सभी प्रजाजन विभ्रान्त होकर उस पूर्व वर्णित सिद्धिका ध्यान करने लगे। उस समय (सत्यका ध्यान करनेके कारण) उन प्रजाओंके (लुप्त) वे गृह-संज्ञक वृक्ष पुनः प्रादुर्भूत हो गये। वे वस्त्रों, आभूषणों तथा फलोंको उत्पन्न करने लगे। उन प्रजाओंके लिये उन वृक्षोंके प्रत्येक पत्रपुटोंमें गन्ध, वर्ण और रससे समन्वित, बिना मधु-मक्खियोंके बना हुआ महान् शक्तिशाली मधु उत्पन्न होता था। उसी (मधु)-से त्रेतायुगके आरम्भमें वे प्रजाएँ जीवन-निर्वाह करती थीं। उस सिद्धिके कारण वे सारी प्रजाएँ हृष्ट-पुष्ट तथा ज्वरसे रहित थीं। तदनन्तर कालान्तरमें वे सभी पुनः लोभके वशीभूत हो गये। अब वे उन वृक्षों तथा उनसे उत्पन्न अमाक्षिक (मक्षिकाद्वारा न बनाये हुए) मधुको बलपूर्वक ग्रहण करने लगे॥ ३१—३५॥

तासां तेनापचारेण पुनर्लोभकृतेन वै।
प्रणष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित् क्वचित्॥ ३६॥

शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम्।
द्वन्द्वैः सम्पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च॥ ३७॥

कृत्वा द्वन्द्वप्रतीघातान् वार्तोपायमचिन्तयन्।
नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा॥ ३८॥

ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः।
वार्तायाः साधिका ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः॥ ३९॥

उनके इस प्रकार पुनः लोभ करनेके कारण उत्पन्न दुष्कर्मसे वे कल्पवृक्ष कहीं-कहीं मधुके साथ ही नष्ट हो गये। तब अत्यन्त शीत, वर्षा एवं धूपसे अत्यधिक दुःखी उन्होंने (शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वोंसे पीड़ित होते हुए आवरणोंकी रचना की। तब मधुसहित कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेपर उन्होंने द्वन्द्वोंके निराकरणका उपाय विचारकर जीविका-निर्वाहके साधनोंका चिन्तन किया तदनन्तर त्रेतायुगमें उन प्रजाओंकी जीविकाको सिद्ध करनेवाली अन्य सिद्धि पुनः प्रादुर्भूत हुई और उनकी इच्छाके अनुकूल वृष्टि हुई॥ ३६—३९॥

तासां वृष्ट्यूदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु।
अवहन् वृष्टिसंतत्या स्रोतःस्थानानि निम्नगाः॥ ४०॥

ये पुनस्तदपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले।
अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्॥ ४१॥

निरन्तर वर्षाके कारण जो जल नीचेकी ओर प्रवाहित हुआ, उससे उन (प्रजाओं)-के लिये अनेक स्रोतों तथा नदियोंकी उत्पत्ति हुई। जब पृथ्वीतलपर थोड़ा जल एकत्र हो गया तो भूमि और जलका संयोग होनेसे अनेक प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं॥ ४०-४१॥

---

[1]-कर्तव्य-पालनमें प्रमाद होनेसे विपर्यय (करने योग्य कर्मका न करना, न करने योग्य कर्मका करना) होता है। यह विपर्यय ही परम्परया दुर्दृष्टका कारण होता है। यह दुर्दृष्ट ही राग, द्वेष तथा लोभकी भावना उत्पन्न करता है।

अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश।
ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे॥ ४२॥

ततः प्रादुरभूत् तासां रागो लोभश्च सर्वशः।
अवश्यं भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन वै॥ ४३॥

ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्॥ ४४॥

विपर्ययेण तासां ता ओषध्यो विविशुर्महीम्।
पितामहनियोगेन दुदोह पृथिवीं पृथुः॥ ४५॥

बिना जोते-बोये ही विभिन्न ऋतुओंमें होनेवाले पुष्प एवं फलोंसे युक्त चौदह प्रकारके ग्राम्य एवं जंगली वृक्ष और गुल्म उत्पन्न हो गये। तदनन्तर त्रेतायुगके प्रभावसे भवितव्यतावश उन प्रजाओंमें निश्चितरूपसे सब प्रकारसे राग और लोभ[१] व्याप्त हो गया। तदुपरान्त उन लोगोंने अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार बलपूर्वक नदियों, क्षेत्रों, पर्वतों, वृक्षों, गुल्मों तथा औषधियोंपर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। उनके विपरीत आचरणके कारण वे सभी औषधियाँ पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गयीं। तब महाराज पृथुने पितामहके आदेशसे पृथ्वीका दोहन किया॥ ४२—४५॥

ततस्ता जगृहुः सर्वा अन्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः।
वसुदारधनाद्यांस्तु बलात् कालबलेन तु॥ ४६॥

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद् भगवानजः।
ससर्ज क्षत्रियान् ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय च॥ ४७॥

वर्णाश्रमव्यवस्थां च त्रेतायां कृतवान् प्रभुः।
यज्ञप्रवर्तनं चैव पशुहिंसाविवर्जितम्॥ ४८॥

द्वापरेष्वथ विद्यन्ते मतिभेदाः सदा नृणाम्।
रागो लोभस्तथा युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥ ४९॥

एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते।
वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु॥ ५०॥

तदनन्तर कालके प्रभावसे वे सभी प्रजाएँ क्रोधाभिभूत होकर एक-दूसरेकी जमीन, धन, स्त्री आदिको बलपूर्वक ग्रहण करने लगे। ऐसी अव्यवस्था देखकर भगवान् ब्रह्माने मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये और ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये क्षत्रियोंकी सृष्टि की। प्रभुने त्रेतायुगमें वर्ण तथा आश्रमकी व्यवस्था और पशुहिंसासे रहित यज्ञोंका प्रवर्तन किया। द्वापरमें लोगोंमें सदा मतभेद, राग, लोभ, युद्ध तथा तत्त्वोंके निश्चयका असामर्थ्य रहता है। एक ही वेद त्रेतामें चार पादोंमें विभक्त किया जाता है और द्वापर आदि युगोंमें वेदव्यासके द्वारा वही वेद चार भागोंमें बाँटा जाता है[२]॥ ४६—५०॥

ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदाद् भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः॥ ५१॥

संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः।
सामान्याद् वैकृताच्चैव दृष्टिभेदैः क्वचित् क्वचित्॥ ५२॥

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च।
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत॥ ५३॥

ऋषिपुत्रोंने पुनः भ्रान्तदृष्ट्या मन्त्र और ब्राह्मणोंके विन्यास तथा स्वर एवं वर्णके व्यतिक्रमसे विभक्त वेदोंके पुनः विभाग किये। वैदिक ऋषियोंने कहीं-कहीं समानता, विशेषता और दृष्टि-भेदके आधारपर ऋक्, यजुः एवं साम-संज्ञक मन्त्रोंकी संहिताओंका संकलन किया। हे सुव्रत! (उन ऋषियोंने) ब्राह्मण, कल्पसूत्र, मन्त्रों, इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्रोंका उपदेश किया है॥ ५१—५३॥

अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः।
वाङ्मनःकायजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते नृणाम्॥ ५४॥

निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा।
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम्॥ ५५॥

अवर्षण, मृत्यु, अनेक व्याधियों, उपद्रवों और मन, वाणी तथा शरीर-सम्बन्धी दुःखोंके कारण मनुष्योंको निर्वेद उत्पन्न होता है। फिर निर्वेदके कारण उनमें दुःखसे मुक्ति पानेका विचार पैदा होता है और विचारसे वैराग्य उत्पन्न होता है तथा वैराग्यसे अपने दोष दिखलायी पड़ते हैं॥ ५४-५५॥

१-सुख-सुविधाकी अधिकता भी राग आदिका कारण बनती है।

२-सत्य एवं त्रेतायुगमें वेद एक ही होता है, उसके पाद चार होते हैं। द्वापर एवं कलियुगमें एक वेद चार वेदके रूपमें विभक्त हो जाता है। इन चार वेदोंकी ११३ शाखाएँ होती हैं। अध्येताओंके सामर्थ्यकी दृष्टिसे इसे व्यास कहते हैं।

दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः।
एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता॥ ५६॥

आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥ ५७॥

दोष-दर्शनके कारण द्वापरमें ज्ञान उत्पन्न होता है। द्वापरमें यह वृत्ति रजोगुण और तमोगुणसे युक्त कही गयी है। आद्य (सर्वप्रथम) कृतयुगमें धर्म प्रतिष्ठित था, वह त्रेतामें भी रहता है, द्वापरमें व्याकुल होकर वह धर्म कलियुगमें विलुप्त हो जाता है॥ ५६-५७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

कलियुगके धर्मोंका वर्णन, कलियुगमें शिव-पूजनकी विशेष महिमाका ख्यापन, व्यासकृत शिवस्तुति, व्यासप्रेरित अर्जुनका शिवपुरीमें जाना और व्यासद्वारा शिवभक्त अर्जुनकी महिमा

व्यास उवाच

तिष्ये मायामसूयां च वधं चैव तपस्विनाम्।
साधयन्ति नरा नित्यं तमसा व्याकुलीकृताः॥ १॥

कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयं तथा।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥ २॥

अधार्मिका अनाचारा महाकोपाल्पचेतसः।
अनृतं वदन्ति ते लुब्धास्तिष्ये जाताः सुदुःप्रजाः॥ ३॥

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः।
विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम्॥ ४॥

नाधीयते कलौ वेदान् न यजन्ति द्विजातयः।
यजन्त्यन्यायतो वेदान् पठन्ते चाल्पबुद्धयः॥ ५॥

व्यासजीने कहा—कलियुगमें मनुष्य सदा तमोगुणसे आवृत रहते हैं, इसीलिये माया, असूया (गुणोंमें दोषदर्शन) तथा तपस्वियोंके वधमें ही लगे रहते हैं। कलियुगमें प्राणहन्ता रोग, निरन्तर भूखका कष्ट, अवर्षणका भयंकर भय तथा देशोंका उलट-फेर होता रहता है। कलियुगमें उत्पन्न हुए दुष्ट मनुष्य अधार्मिक, सदाचारसे रहित, अत्यन्त क्रोधी, दुर्बल चित्तवाले तथा लोभी होते हैं और झूठ बोलते हैं। ब्राह्मणोंके असत् उद्देश्य, असत् अध्ययन, दुराचार तथा दूषित शास्त्रोंके अभ्यास और बुरे कर्मके दोषसे प्रजामें भय उत्पन्न होता है। द्विजाति लोग कलियुगमें वेदोंका अध्ययन नहीं करते और न यज्ञ ही करते हैं। अल्प बुद्धिवाले (यज्ञ करनेकी योग्यतासे रहित) लोग यज्ञ करते हैं और अन्यायपूर्वक वेदोंको पढ़ते हैं॥ १—५॥

शूद्राणां मन्त्रयौनैश्च सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह।
भविष्यति कलौ तस्मिञ् शयनासनभोजनैः॥ ६॥

राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति च।
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेते नरेश्वर॥ ७॥

कलियुगमें शूद्रोंका ब्राह्मणोंके साथ मन्त्र, योनि, शयन, आसन और भोजनके द्वारा सम्बन्ध हो जायगा[१]। नरेश्वर! अधिकांश राजा शूद्र होंगे, जो वस्तुतः राजा होनेके लिये अयोग्य होंगे; वे ब्राह्मणोंको पीड़ित करेंगे। भ्रूणहत्या और वीरहत्या प्रचलित हो जायगी॥ ६-७॥

१-ब्राह्मणोंके शूद्र छोटे भाई हैं। बड़े भाईका छोटे भाईके प्रति अतिशय स्नेह होता है, अतः ब्राह्मण शूद्रोंसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करते ही हैं और यही अन्य युगोंमें था, पर कलिमें सत्त्वगुणकी कमी होनेसे ऐसे व्यवहारका प्रायः अभाव हो जाता है तथा अधिकार, योग्यता एवं मर्यादाका अतिक्रमण कर लोभ या भयवश ब्राह्मण मन्त्रदीक्षा, योनि (वैवाहिक सम्बन्ध) आदि करने लगते हैं। यह यथार्थतः अनुचित है ही।

स्नानं होमं जपं दानं देवतानां तथार्चनम्।
अन्यानि चैव कर्माणि न कुर्वन्ति द्विजातयः॥ ८ ॥

विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम्।
आम्नायधर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे॥ ९ ॥

कुर्वन्त्यवेददृष्टानि कर्माणि विविधानि तु।
स्वधर्मेऽभिरुचिर्नैव ब्राह्मणानां प्रजायते॥ १०॥

(कलियुगमें) द्विजाति लोग स्नान, होम, जप, दान, देवताओंका पूजन तथा अन्य (शुभ) कर्मोंको भी नहीं करेंगे। कलियुगमें महादेव शंकर, पुरुषोत्तम विष्णु, ब्राह्मणों, वेदों, धर्मशास्त्रों और पुराणोंकी लोग निन्दा करते हैं। (सभी लोग) वेदमें अविहित अनेक प्रकारके कर्मोंको करते हैं तथा ब्राह्मणोंकी अपने धर्ममें रुचि नहीं रहती॥ ८—१०॥

कुशीलचर्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृताः।
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम्॥ ११॥

अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे॥ १२॥

शुक्लदन्ता जिनाख्याश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥ १३॥

शस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्षिणः।
चौराश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः॥ १४॥

दुःखप्रचुरताल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता।
अधर्माभिनिवेशित्वात् तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्॥ १५॥

लोग कुत्सित आचारवाले एवं व्यर्थके पाखण्डोंसे युक्त हो जायँगे और संसार परस्परमें बहुत याचना करनेवाला हो जायगा। कलियुगमें जनपद अन्नविक्रयी, चौराहे वेदके विक्रयस्थल तथा स्त्रियाँ वेश्यावृत्तिवाली हो जायँगी। युगका अन्त आनेपर सफेद दाँतोंवाले, जिन नामवाले, मुण्डित, काषायवस्त्रधारी शूद्र पर-धर्माचरण करने लगेंगे। (लोग) अनाज और वस्त्रकी चोरी करनेवाले होंगे। चोर लोग चोरोंकी ही चोरी करेंगे और दूसरे चोर उस चोरका चुरायेंगे। दुःखकी अधिकता होगी, अल्प आयु होगी, देहमें आलस्य तथा रोग रहेगा। अधर्ममें विशेष प्रवृत्तिके कारण कलियुगमें सभी व्यवहार तामस होंगे॥ ११—१५॥

काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये।
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे॥ १६॥

आसनस्थान् द्विजान् दृष्ट्वा न चलन्त्यल्पबुद्धयः।
ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपजीविनः॥ १७॥

उच्चासनस्थाः शूद्रास्तु द्विजमध्ये परंतप।
ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालबलेन तु॥ १८॥

पुष्पैश्च हसितैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैर्द्विजाः।
शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः ॥ १९॥

न प्रेक्षन्तेऽर्चितांश्चापि शूद्रा द्विजवरान् नृप।
सेवावसरमालोक्य द्वारि तिष्ठन्ति च द्विजाः॥ २०॥

कुछ लोग काषायवस्त्र धारण करनेवाले, कुछ निर्ग्रन्थ (यज्ञोपवीत, शिखा आदिसे विहीन पंथवाले), कापालिक[1], वेदविक्रयी तथा कुछ लोग तीर्थविक्रयी[2] हो जायँगे। (कलियुगमें) राजाका संरक्षण प्राप्तकर अल्पबुद्धिवाले शूद्र आसनपर स्थित द्विजोंको देखकर नहीं चलते (द्विजोचित व्यवहार नहीं करते) तथा श्रेष्ठ द्विजोंको प्रताड़ित करते हैं। परंतप! कलियुगमें समयके प्रभावसे द्विजोंके मध्यमें शूद्र उच्च आसनपर बैठते हैं, किंतु राजा जानकर भी उन्हें दण्ड नहीं देता। अल्प ज्ञान, अल्प भाग्य तथा अल्प बलवाले द्विज लोग पुष्पोंके द्वारा, मनोविनोदके साधन 'हास' आदिसे तथा अन्य माङ्गलिक पदार्थोंसे शूद्रोंकी पूजा करते हैं[3]। राजन्! शूद्र लोग पूजित श्रेष्ठ द्विजोंकी ओर देखतेतक नहीं और द्विज सेवाके अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए उनके दरवाजेपर खड़े रहते हैं॥ १६—२०॥

१-पंथ-विशेष। २-अपने पुण्यको बेचनेवाले।
३-यदि कोई बड़ा लोभ या भयवश अपनेसे छोटेकी पूजा या अमर्यादित ढंगसे चापलूसी करे तो यह उचित नहीं है, निषिद्ध है।

वाहनस्थान् समावृत्य शूद्राञ् शूद्रोपजीविनः।
सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ॥ २१॥

अध्यापयन्ति वै वेदाञ् शूद्राञ् शूद्रोपजीविनः।
पठन्ति वैदिकान् मन्त्रान् नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः॥ २२॥

तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः।
यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः॥ २३॥

नाशयन्ति ह्यधीतानि नाधिगच्छन्ति चानघ।
गायन्ति लौकिकैर्गानैर्दैवतानि नराधिप॥ २४॥

कलियुगमें शूद्रसे जीविका पानेवाले ब्राह्मण वाहनमें स्थित शूद्रोंको घेरकर स्तुतियोंद्वारा उनकी प्रशंसा करते हैं और सेवा करते हैं। शूद्रोंसे जीविका प्राप्त करनेवाले (ब्राह्मण) शूद्रोंको वेद[1] पढ़ाते हैं। घोर नास्तिकतावादी (शूद्र) वैदिक मन्त्रोंको पढ़ते हैं। जिनकी श्रेष्ठ द्विजके रूपमें समाजमें मान्यता होती है, वे लोग (अपने) तप एवं यज्ञके फलोंका विक्रय करनेवाले होते हैं। (आलस्य या प्रतिष्ठाके लिये) सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें लोग संन्यासी हो जायँगे। हे निष्पाप राजन्! (कलियुगमें लोग) पढ़े हुएको भूल जाते हैं, अध्ययनके फल ज्ञानके लिये उत्सुक नहीं रहते। (वे) लौकिक गीतोंसे देवताओंकी स्तुति करते हैं॥ २१—२४॥

वामपाशुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिकाः।
भविष्यन्ति कलौ तस्मिन् ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥ २५॥

ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्॥ २६॥

कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै।
दधीचशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः॥ २७॥

निन्दन्ति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः।
वृथा धर्मं चरिष्यन्ति कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ २८॥

ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः।
सर्वे ते च भविष्यन्ति ब्राह्मणाद्याः स्वजातिषु॥ २९॥

कलियुगमें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वाममार्गी, पाशुपताचारी तथा पाञ्चरात्रिक हो जायँगे[2]। ज्ञान तथा कर्मका लोप हो जाने और लोगोंके निष्क्रिय हो जानेपर कीड़े, चूहे तथा सर्प लोगोंको कष्ट पहुँचायेंगे। प्राचीन कालमें दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें दधीचके शापसे दग्ध हुए द्विज ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न होंगे। कलियुगके अन्त समयमें तमोगुणसे व्याप्त मनवाले लोग महादेवकी निन्दा करेंगे और व्यर्थके धर्मों (धर्माभासों)-का आचरण करेंगे तथा जो दूसरे महात्मा गौतमके शापसे दग्ध हुए लोग थे, वे सभी ब्राह्मण आदि अपनी-अपनी जातियोंमें उत्पन्न होंगे॥ २५—२९॥

१-शूद्र चौथे वर्णका नाम है। शूद्र शब्दसे किसी हीनभावको समझना कथमपि शास्त्रसम्मत नहीं है। अपने छोटे भाईके प्रति हीनभाव अपनाना सर्वथा अनुचित है। वेदोंके अध्ययनसे विरत रहनेके लिये शूद्रोंको आदेश अवश्य दिया गया है, पर इसके मूलमें उनके प्रति कल्याणकी भावना ही निहित है। यह वास्तविकता है कि समग्र वेदोंका यथावत् अध्ययन करनेपर ही उनके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, जो अधूरा न होकर परिपूर्ण होता है तथा सही अर्थमें कल्याणका साधन बनता है। जिन मनीषियोंने समग्र वेदोंका आकलन किया है, उन लोगोंने निरपेक्ष-भावसे यह भलीभाँति समझा है तथा परीक्षापूर्वक अनुभव किया है कि समग्र वेदोंका अध्ययन तीव्रतम तप एवं कठोरतम परिश्रम (सुदीर्घकालिक)-के बिना कथमपि सम्भव नहीं है और यह सुदीर्घकालिक तीव्रतम तप एवं कठोरतम परिश्रम प्रिय अनुज (छोटे भाई) शूद्र एवं अति कोमल प्रकृतिवाली स्त्रियाँ कथमपि नहीं कर सकतीं। अतएव विशेषकर इन्हींके कल्याणके लिये महाभारत तथा अन्यान्य पुराण आदि ग्रन्थोंका आविर्भाव हुआ। इन ग्रन्थोंमें सरल एवं रोचक पद्धतिसे वे ही ज्ञान-विज्ञान वर्णित हैं, जो वेदोंमें वर्णित हैं। योग्यता, अधिकार एवं अध्ययनके विधानके अनुसार इन (महाभारत आदि)-को अपनी अपेक्षाके अनुकूल जान-समझकर करनेसे कल्याण अवश्य ही प्राप्त होता है, जो वेदोंके समग्र अध्ययनसे प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि ज्ञानरूप फलकी दृष्टिसे मानव क्या प्राणिमात्र अपनी सामर्थ्यके अनुसार समान हैं। अतः वेदोंको पढ़नेके विषयमें जो शास्त्रीय व्यवस्था है, उसके प्रति अन्यथा-दृष्टि अपनाना भूल है।

२-यहाँ वाममार्ग आदिकी निन्दामें तात्पर्य नहीं है। वैदिक मार्गकी स्तुतिमें तात्पर्य है। शुद्ध सात्त्विक भावकी प्रमुखता वैदिक मार्गमें है, अतः वैदिक मार्ग प्रशस्ततम है। वाममार्ग आदिमें तो तामस-भाव एवं राजस-भावकी प्रमुखता है। अतः ये प्रशस्त नहीं हैं।

विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः।
वेदबाह्यव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमाः॥ ३०॥

वेदोंमें निषिद्ध व्रत और आचारका पालन करनेवाले, दुराचारी तथा व्यर्थका श्रम (धर्म-मोक्षविरोधी अर्थमात्र साधक काम अथवा दुर्जनतावश लोगोंको पीड़ा देनेवाले काम) करनेवाले लोग हृषीकेश (श्रीविष्णु) तथा ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी निन्दा करेंगे॥ ३०॥

मोहयन्ति जनान् सर्वान् दर्शयित्वा फलानि च।
तमसाविष्टमनसो वैडालवृत्तिकाधमाः॥ ३१॥
कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः।
न देवता भवेन्नृणां देवतानां च दैवतम्॥ ३२॥
करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः।
श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया॥ ३३॥
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्।
सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥ ३४॥
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्॥ ३५॥

तमोगुणसे आविष्ट मनवाले तथा दिखावटी धर्माचरण करनेवाले अधम लोग अनेक प्रलोभनोंको दिखाकर सब लोगोंको मोहित करेंगे। कलियुगमें लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देव श्रेष्ठ महादेव रुद्र मनुष्योंकी दृष्टिमें देव (आराध्य) नहीं रहेंगे, पर भक्तोंके कल्याणकी कामनासे तथा श्रौत एवं स्मार्त धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये नीललोहित शंकर अनेक अवतार धारण करेंगे। वे समस्त वेदान्तके साररूप उस ब्रह्मसंज्ञक ज्ञानको और वेदमें बताये गये धर्मोंको शिष्योंको प्रदान करेंगे। जो ब्राह्मण जिस-किसी भी उपायसे उन (शंकर)-की सेवा करेंगे, वे कलिके दोषोंको जीतकर परमपदको प्राप्त करेंगे॥ ३१—३५॥

अनायासेन सुमहत् पुण्यमाप्नोति मानवः।
अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेष महान् गुणः॥ ३६॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वरं युगम्।
विशेषाद् ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत्॥ ३७॥
ये नमन्ति विरूपाक्षमीशानं कृत्तिवाससम्।
प्रसन्नचेतसो रुद्रं ते यान्ति परमं पदम्॥ ३८॥
यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवम्।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्॥ ३९॥
एवंविधे कलियुगे दोषाणामेकशोधनम्।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः॥ ४०॥

अनेक दोषोंसे दूषित कलिका यह महान् गुण है कि इसके युगमें मनुष्य अनायास महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है। इसलिये महेश्वर-सम्बन्धी युग प्राप्तकर विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे ईशान रुद्रकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। जो प्रसन्न-मनसे विरूपाक्ष, कृत्तिवासा, ईशान रुद्रको नमस्कार करते हैं, वे परमपदको प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार रुद्रको किया गया नमस्कार निश्चितरूपसे सभी कामनाओंको पूर्ण करता है, उस प्रकार अन्य देवोंको नमस्कार करनेसे वैसा फल नहीं होता। इस प्रकारके कलियुगमें दोषोंको दूर करनेका एकमात्र उपाय है महादेवको नमस्कार, उनका ध्यान और शास्त्रानुसार दान—ऐसा वेदका मत है॥ ३६—४०॥

तस्मादनीश्वरानन्यान् त्यक्त्वा देवं महेश्वरम्।
समाश्रयेद् विरूपाक्षं यदीच्छेत् परमं पदम्॥ ४१॥
नार्चयन्तीह ये रुद्रं शिवं त्रिदशवन्दितम्।
तेषां दानं तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च॥ ४२॥

इसलिये यदि परमपद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो अन्य अनीश्वरों (महेश्वरकी कृपासे ही शक्ति प्राप्त करनेवाले अन्य देवों)-को छोड़कर एकमात्र देव विरूपाक्ष महेश्वरका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। जो देवताओंके द्वारा वन्दित रुद्र शिवकी अर्चना नहीं करते हैं, उनका किया हुआ दान, तप, यज्ञ और जीवन व्यर्थ ही होता है॥ ४१-४२॥

नमो रुद्राय महते देवदेवाय शूलिने।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिनां गुरवे नमः॥ ४३॥

त्रिशूल धारण करनेवाले देवाधिदेव महान् रुद्रको नमस्कार है। त्र्यम्बक, त्रिलोचन, योगियोंके गुरुके लिये नमस्कार है॥ ४३॥

नमोऽस्तु वामदेवाय महादेवाय वेधसे।
शम्भवे स्थाणवे नित्यं शिवाय परमेष्ठिने।
नमः सोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतवे॥ ४४॥

महादेव, वेधा, वामदेव, शम्भु, स्थाणु, परमेष्ठी शिवको नित्य नमस्कार है। सोम, रुद्र, महाग्रास (महाप्रलयमें समस्त प्रपञ्चको अपनेमें लीन कर लेनेवाले) तथा कारणरूपको नमस्कार है॥ ४४॥

प्रपद्येऽहं विरूपाक्षं शरण्यं ब्रह्मचारिणम्।
महादेवं महायोगमीशानं चाम्बिकापतिम्॥ ४५॥

योगिनां योगदातारं योगमायासमावृतम्।
योगिनां गुरुमाचार्यं योगिगम्यं पिनाकिनम्॥ ४६॥

संसारतारणं रुद्रं ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽधिपम्।
शाश्वतं सर्वगं शान्तं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥ ४७॥

कपर्दिनं कालमूर्तिममूर्तिं परमेश्वरम्।
एकमूर्तिं महामूर्तिं वेदवेद्यं दिवस्पतिम्॥ ४८॥

नीलकण्ठं विश्वमूर्तिं व्यापिनं विश्वरेतसम्।
कालाग्निं कालदहनं कामदं कामनाशनम्॥ ४९॥

नमस्ये गिरिशं देवं चन्द्रावयवभूषणम्।
विलोहितं लेलिहानमादित्यं परमेष्ठिनम्।
उग्रं पशुपतिं भीमं भास्करं तमसः परम्॥ ५०॥

मैं विरूपाक्ष, शरण ग्रहण करने योग्य, ब्रह्मचारी, महायोगस्वरूप, ईशान तथा अम्बिकापति महादेवकी शरण ग्रहण करता हूँ। योगियोंको योग प्रदान करनेवाले, योगमायासे आवृत, योगियोंके गुरु, आचार्य, योगिगम्य पिनाकी, संसारसे उद्धार करनेवाले, रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्माधिपति, शाश्वत, सर्वव्यापी, शान्त, ब्राह्मणोंके रक्षक तथा ब्राह्मणप्रिय, जटाधारी, कालमूर्ति, अमूर्ति, एकमूर्ति, महामूर्ति, वेदवेद्य और द्युलोकके स्वामी परमेश्वर तथा नीलकण्ठ, विश्वमूर्ति, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, विश्वरेता (जिनके वीर्यसे ही समस्त विश्वकी उत्पत्ति हुई है), कालाग्निरूप, कालका दहन करनेवाले, कामनाओंको प्रदान करनेवाले एवं कामदेवका नाश करनेवाले, चन्द्रमाके अवयवको अर्थात् द्वितीयाके चन्द्रमाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले देव गिरिश, विशेषरूपसे रक्तवर्णवाले, ग्रास बना लेनेवाले (महाप्रलयमें सबको अपने उदरमें डाल लेनेवाले), आदित्य, उग्र, पशुपति, भीम, भास्कर तथा अन्धकारसे परे रहनेवाले परमेष्ठीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४५—५०॥

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः।
अतीतानागतानां वै यावन्मन्वन्तरक्षयः॥ ५१॥

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै।
व्याख्यातानि न संदेहः कल्पः कल्पेन चैव हि॥ ५२॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै।
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत॥ ५३॥

मन्वन्तरकी समाप्तिपर्यन्त बीते हुए तथा भविष्यमें आनेवाले युगों (कलियुगों)-का संक्षेपमें यह लक्षण बताया गया है, निःसंदेह एक मन्वन्तर (-के कथन)-से सभी मन्वन्तरों तथा एक कल्प (-के कथन)-से अन्य कल्पोंका भी कथन हो गया। बीते हुए तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंमें समान नाम एवं रूपवाले सभी अधिष्ठाता (देवता, सप्तर्षि तथा इन्द्र आदि) होते हैं॥ ५१—५३॥

एवमुक्तो भगवता किरीटी श्वेतवाहनः।
बभार परमां भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिणीम्॥ ५४॥

नमश्चकार तमृषिं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।
सर्वज्ञं सर्वकर्तारं साक्षाद् विष्णुं व्यवस्थितम्॥ ५५॥

भगवान् (व्यास)-के ऐसा कहनेपर श्वेतवाहन किरीटधारी (अर्जुन)-ने ईशान (भगवान् शंकर)-में निश्चल परम भक्ति धारण की। उन्होंने उन सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाले, साक्षात् विष्णुके रूपमें अवस्थित प्रभु कृष्णद्वैपायन ऋषिको नमस्कार किया॥ ५४-५५॥

तमुवाच पुनर्व्यासः पार्थं परपुरञ्जयम्।
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतं मुनिः॥ ५६॥

शत्रुके नगरको जीतनेवाले तथा विनीत उन पार्थ (अर्जुन)-को व्यासमुनिने अपने दोनों सुन्दर, शुभ हाथोंसे स्पर्श करते हुए पुनः कहा॥ ५६॥

धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि त्वादृशोऽन्यो न विद्यते।
त्रैलोक्ये शंकरे नूनं भक्तः परपुरञ्जय॥ ५७॥

दृष्टवानसि तं देवं विश्वाक्षं विश्वतोमुखम्।
प्रत्यक्षमेव सर्वेशं रुद्रं सर्वजगद्‌गुरुम्॥ ५८॥

ज्ञानं तदैश्वरं दिव्यं यथावद् विदितं त्वया।
स्वयमेव हृषीकेशः प्रीत्योवाच सनातनः॥ ५९॥

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं न शोकं कर्तुमर्हसि।
व्रजस्व परया भक्त्या शरण्यं शरणं शिवम्॥ ६०॥

शत्रुके नगरको जीतनेवाले (अर्जुन!) निश्चय ही तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान शंकरका भक्त कोई दूसरा नहीं है, तुम धन्य हो, अनुगृहीत (भगवान् शंकरके अनुग्रहके भाजन) हो। तुमने सभी ओर नेत्र तथा सभी ओर मुखवाले, सारे संसारके गुरु, सर्वेश, रुद्रदेवका प्रत्यक्ष ही दर्शन किया है। ईश्वर (शंकर)-सम्बन्धी दिव्य ज्ञान तुम्हें यथार्थरूपसे विदित है। स्वयं सनातन हृषीकेशने प्रीतिपूर्वक तुम्हें सब बतलाया था। शीघ्र अपने स्थानको जाओ, तुम शोक करने योग्य नहीं हो। शरणागतवत्सल शिवकी परा भक्तिकी शरण ग्रहण करो॥ ५७—६०॥

एवमुक्त्वा स भगवाननुगृह्यार्जुनं प्रभुः।
जगाम शंकरपुरीं समाराधयितुं भवम्॥ ६१॥

पाण्डवेयोऽपि तद्वाक्यात् सम्प्राप्य शरणं शिवम्।
संत्यज्य सर्वकर्माणि तद्भक्तिपरमोऽभवत्॥ ६२॥

ऐसा कहकर वे भगवान् प्रभु (व्यास) अर्जुनपर कृपा करके शंकरकी आराधना करनेके लिये शंकरकी पुरीको गये। पाण्डुपुत्र अर्जुन भी उनके कहनेसे शिवकी शरणमें पहुँचे और सभी कर्मोंका परित्यागकर उनकी भक्तिमें ही दत्तचित्त हो गये॥ ६१-६२॥

नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्त्या भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम्॥ ६३॥

तस्मै भगवते नित्यं नमः सत्याय धीमते।
पाराशर्याय मुनये व्यासायामिततेजसे॥ ६४॥

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद् विष्णुरेव सनातनः।
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम्॥ ६५॥

नमः कुरुध्वं तमृषिं कृष्णं सत्यवतीसुतम्।
पाराशर्यं महात्मानं योगिनं विष्णुमव्ययम्॥ ६६॥

एवमुक्तास्तु मुनयः सर्व एव समाहिताः।
प्रणेमुस्तं महात्मानं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥ ६७॥

सत्यवतीके पुत्र व्यास या देवकीके पुत्र कृष्णको छोड़कर अन्य कोई भी अर्जुनके समान शंकरकी भक्ति करनेवाला न तो हुआ और न होगा। उन सत्यस्वरूप, धीमान् पराशरके पुत्र अमित तेजस्वी भगवान् व्यासमुनिको नित्य नमस्कार है। कृष्णद्वैपायन (व्यास) साक्षात् सनातन विष्णु ही हैं, इनके अतिरिक्त उन परमेश्वर रुद्रको यथार्थरूपसे अन्य कौन जानता है। इन सत्यवतीनन्दन, पराशरपुत्र, महात्मा योगी, अव्यय विष्णुस्वरूप कृष्णद्वैपायन (व्यास) ऋषिको आपलोग नमस्कार करें। इस प्रकारसे कहे जानेपर सभी मुनियोंने एकाग्रचित्त होकर सत्यवतीके पुत्र उन महात्मा व्यासको नमस्कार किया॥ ६३—६७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

व्यासजीका वाराणसी-गमन, व्याससे जैमिनि आदि ऋषियोंका धर्मसम्बन्धी प्रश्न, व्यासका उन्हें शिव-पार्वती-संवाद बताना, अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य, वाराणसी-सेवनका विशेष फल

ऋषय ऊचुः

प्राप्य वाराणसीं दिव्यां कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
किमकार्षीन्महाबुद्धिः श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥ १ ॥

सूत उवाच

प्राप्य वाराणसीं दिव्यामुपस्पृश्य महामुनिः।
पूजयामास जाह्नव्यां देवं विश्वेश्वरं शिवम्॥ २ ॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै।
पूजयाञ्चक्रिरे व्यासं मुनयो मुनिपुङ्गवम्॥ ३ ॥
पप्रच्छुः प्रणताः सर्वे कथाः पापविनाशिनीः।
महादेवाश्रयाः पुण्या मोक्षधर्मान् सनातनान्॥ ४ ॥
स चापि कथयामास सर्वज्ञो भगवानृषिः।
माहात्म्यं देवदेवस्य धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥ ५ ॥
तेषां मध्ये मुनीन्द्राणां व्यासशिष्यो महामुनिः।
पृष्टवान् जैमिनिर्व्यासं गूढमर्थं सनातनम्॥ ६ ॥

जैमिनिरुवाच

भगवन् संशयं त्वेकं छेत्तुमर्हसि तत्त्वतः।
न विद्यते ह्यविदितं भवता परमर्षिणा॥ ७ ॥
केचिद् ध्यानं प्रशंसन्ति धर्ममेवापरे जनाः।
अन्ये सांख्यं तथा योगं तपस्त्वन्ये महर्षयः॥ ८ ॥
ब्रह्मचर्यमथो मौनमन्ये प्राहुर्महर्षयः।
अहिंसां सत्यमप्यन्ये संन्यासमपरे विदुः॥ ९ ॥
केचिद् दयां प्रशंसन्ति दानमध्ययनं तथा।
तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम्॥ १० ॥
किमेतेषां भवेज्ज्यायः प्रब्रूहि मुनिपुङ्गव।
यदि वा विद्यतेऽप्यन्यद् गुह्यं तद्वक्तुमर्हसि॥ ११ ॥
श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम्॥ १२ ॥

भगवानुवाच

साधु साधु महाभाग यत्पृष्टं भवता मुने।
वक्ष्ये गुह्यतमाद् गुह्यं शृण्वन्त्वन्ये महर्षयः॥ १३ ॥

ऋषियोंने कहा—(सूतजी!) महाबुद्धिमान् कृष्ण-द्वैपायन (व्यास) मुनिने दिव्य वाराणसीपुरीमें पहुँचकर क्या किया? इस विषयको सुननेके लिये हम लोगोंको कौतूहल है॥ १॥

सूतजी बोले—दिव्य वाराणसीमें पहुँचकर महामुनिने गङ्गामें आचमनकर (स्नानकर) विश्वेश्वर देव शिवका पूजन किया। उन मुनि (व्यासजी)-को आया देखकर वहाँ निवास करनेवाले मुनियोंने मुनिश्रेष्ठ व्यासकी पूजा की। उन सभीने महादेवसे सम्बद्ध पापोंका नाश करनेवाली पुण्यदायिनी कथा तथा सनातन मोक्षधर्मोंको विनयपूर्वक पूछा। सर्वज्ञ उन भगवान् (व्यास) ऋषिने भी देवाधिदेव (शिव)-का माहात्म्य तथा वेदमें निर्दिष्ट धर्मोंका वर्णन किया। उन मुनियोंके मध्य व्यासके शिष्य महामुनि जैमिनिने व्यासजीसे सनातन गूढ़ अर्थ पूछा॥ २—६॥

जैमिनिने कहा—भगवन्! एक संशयको आप यथार्थरूपसे दूर करें, क्योंकि आप परम ऋषिको कुछ भी अविदित नहीं है। कुछ लोग ध्यानकी प्रशंसा करते हैं, कुछ दूसरे धर्मकी ही प्रशंसा करते हैं। अन्य लोग सांख्य तथा योगको, कुछ महर्षि तपको, कोई ब्रह्मचर्यको और दूसरे महर्षि मौन धारणको, कुछ अहिंसा एवं सत्यको तथा कुछ विद्वान् संन्यासको श्रेष्ठ बताते हैं। कुछ लोग दयाकी प्रशंसा करते हैं तो कुछ दान तथा अध्ययनकी। इसी प्रकार कुछ तीर्थयात्राको तथा दूसरे लोग इन्द्रियनिग्रहको महत्त्व देते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इनमेंसे बतलायें कि कौन सर्वाधिक श्रेष्ठ है अथवा अन्य भी यदि कोई गुह्य साधन हो तो उसे आप बतलायें॥ ७—११॥

जैमिनिकी बात सुनकर वे कृष्णद्वैपायन मुनि वृषभध्वज (शंकर)-को प्रणाम करते हुए गम्भीर वाणीमें बोले—॥ १२॥

भगवान् (व्यास)-ने कहा—महाभाग्यशाली मुने! आप धन्य हैं, धन्य हैं। आपने जो पूछा है, मैं उस गुह्यतमसे भी गुह्य (तत्त्व)-को कहता हूँ, अन्य सभी महर्षि भी सुनें—॥ १३॥

ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत् सनातनम्।
गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभिः॥ १४॥

नाश्रद्दधाने दातव्यं नाभक्ते परमेष्ठिनः।
न वेदविद्विषि शुभं ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्॥ १५॥

मेरुशृङ्गे पुरा देवमीशानं त्रिपुरद्विषम्।
देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत॥ १६॥

अज्ञानी लोग जिससे द्वेष करते हैं और सूक्ष्मदर्शी जिसका सेवन करते हैं, वह गूढ़ सनातन ज्ञान प्राचीन कालमें ईश्वर (शंकर)-के द्वारा कहा गया है। जो श्रद्धारहित हो, परमेष्ठी (शंकर)-का भक्त न हो और वेदसे द्वेष रखता हो, ऐसे व्यक्तिको सभी ज्ञानोंमें उत्तम इस शुभ ज्ञानको नहीं प्रदान करना चाहिये। प्राचीन कालमें मेरु-शिखरपर भगवान् शंकरके साथ एक ही आसनपर स्थित देवी पार्वतीने त्रिपुरारि देव, ईशान महादेवसे पूछा— ॥ १४—१६ ॥

देव्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानामार्तिनाशन।
कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति॥ १७॥
सांख्ययोगस्तथा ध्यानं कर्मयोगोऽथ वैदिकः।
आयासबहुला लोके यानि चान्यानि शंकर॥ १८॥
येन विभ्रान्तचित्तानां योगिनां कर्मिणामपि।
दृश्यो हि भगवान् सूक्ष्मः सर्वेषामथ देहिनाम्॥ १९॥
एतद् गुह्यतमं ज्ञानं गूढं ब्रह्मादिसेवितम्।
हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन॥ २०॥

देवीने कहा—देवाधिदेव महादेव! आप भक्तोंके कष्टको दूर करनेवाले हैं। पुरुष किस प्रकार शीघ्र ही आप देवका दर्शन कर सकता है? कामदेवका विनाश करनेवाले शंकर! लोकमें सांख्ययोग, ध्यान, वैदिक कर्मयोग और अन्य भी अनेक अधिक परिश्रमसाध्य (उपाय) बतलाये गये हैं। (उनमें) जो ब्रह्मा आदिद्वारा सेवित उपाय या अत्यन्त गुह्य एवं गूढ़ ज्ञान हो, उसे आप हम सभी भक्तोंके कल्याणके लिये बतलायें, जिससे भ्रान्तचित्तवालों अथवा कर्मयोगी मनुष्यों एवं समस्त देहधारियोंको सूक्ष्म भगवान्‌का दर्शन हो सके॥ १७—२०॥

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद् विज्ञानं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम्।
वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः॥ २१॥
परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी।
सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी॥ २२॥
तत्र भक्ता महादेवि मदीयं व्रतमास्थिताः।
निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः॥ २३॥
उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च तत्।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम॥ २४॥

ईश्वर बोले—परम ऋषियोंने जिस विज्ञानको कहा है, अज्ञानियोंने जिस ज्ञानका विरोध किया है और जो अकथनीय है, उसे मैं तत्त्वतः तुमसे कहता हूँ। पुरी वाराणसी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। यह सभी प्राणियोंको संसारसागरसे पार उतारनेवाली है। महादेवि! यहाँ मेरे व्रतको धारण करनेवाले भक्त तथा श्रेष्ठ नियमका आश्रय ग्रहण करनेवाले महात्मा निवास करते हैं। यह मेरा अविमुक्त (काशीक्षेत्र) सभी तीर्थोंमें उत्तम, सभी स्थानोंमें श्रेष्ठ और सभी ज्ञानोंमें उत्तम ज्ञानरूप है॥ २१—२४॥

स्थानान्तरं पवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च।
श्मशानसंस्थितान्येव दिव्यभूमिगतानि च॥ २५॥

भूर्लोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम्।
अयुक्तास्तन्न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥ २६॥

श्मशानमेतद् विख्यातमविमुक्तमिति श्रुतम्।
कालो भूत्वा जगदिदं संहराम्यत्र सुन्दरि॥ २७॥

इस दिव्य भूमिमें महाश्मशानरूपी[1] काशीमें अन्य अनेक पवित्र स्थान, तीर्थ तथा मन्दिर प्रतिष्ठित हैं मेरा गृहस्वरूप (यह वाराणसी क्षेत्र) भूलोकसे सम्बद्ध नहीं है, अपितु अन्तरिक्षमें (अवस्थित) है, अयोगियोंको इसके दर्शन नहीं होते। जो योगी हैं वे ध्यानमें इसका दर्शन करते हैं। सुन्दरी! यह महाश्मशानके नामसे विख्यात है और इसे अविमुक्त (क्षेत्र) भी कहा जाता है। मैं कालरूप होकर यहाँ इस संसारका संहार करता हूँ॥ २५—२७॥

१-काशीमें मरण होनेपर स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण—इन तीनों शरीरोंका सदाके लिये नाश हो जाता है, इसीलिये काशीको महाश्मशान कहते हैं।

देवीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतमं मम।
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति ते॥ २८॥

दत्तं जप्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत्॥ २९॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसंचितम्।
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥ ३०॥

देवि! सभी गुह्य स्थानोंमें यह मेरा सर्वाधिक प्रिय स्थान है। मेरे भक्त यहाँ आते ही मुझमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। यहाँ किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तप, कर्म, ध्यान, अध्ययन और ज्ञानार्जन—सब कुछ अक्षय हो जाता है। अविमुक्त क्षेत्रमें प्रविष्ट होनेवालेका हजारों जन्मान्तरोंमें किया हुआ जो पूर्वसंचित पाप है, वह सब नष्ट हो जाता है॥ २८—३०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये वर्णसंकराः।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः॥ ३१॥

कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते वरानने॥ ३२॥

चन्द्रार्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहनाः।
शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः॥ ३३॥

नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी।
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्॥ ३४॥

मोक्षं सुदुर्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम्।
अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः॥ ३५॥

वरानने! अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्रमें कालवश मृत्युको प्राप्त—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्री, म्लेच्छ, अन्य संकीर्ण पाप योनिवाले सभी मानव प्राणी, कीड़े, चींटी तथा जो भी अन्य मृग-पक्षी आदि हैं—ये सभी सिरपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, त्रिनेत्र तथा महावृषभ (नन्दी)-को वाहन बनानेवाले (शिव-स्वरूप) मानव बनकर मेरे कल्याणमय पुरमें उत्पन्न होते हैं। अविमुक्त क्षेत्रमें मरा हुआ कोई पापी नरकमें नहीं जाता है, ईश्वर (शंकर)-से कृपा-प्राप्त वे सभी परम गति प्राप्त करते हैं। मोक्षको अत्यन्त दुर्लभ और संसारको अत्यन्त भीषण समझकर पत्थरद्वारा पैरोंको तोड़कर मनुष्यको वाराणसीमें निवास करना चाहिये॥ ३१—३५॥

दुर्लभा तपसा चापि पूतस्य परमेश्वरि।
यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षिणी॥ ३६॥

प्रसादाज्जायते ह्येतन्मम शैलेन्द्रनन्दिनि।
अप्रबुद्धा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः॥ ३७॥

अविमुक्तं न सेवन्ते मूढा ये तमसावृताः।
विण्मूत्ररेतसां मध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः॥ ३८॥

हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद् विघ्नशतैरपि।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ ३९॥

परमेश्वरी! तपस्याद्वारा पवित्र हुए प्राणीके लिये भी जहाँ-कहीं मरनेपर संसारसे मुक्त करनेवाली गति दुर्लभ होती है। शैलपुत्री! मेरे अनुग्रहसे (वह गति) यहाँ प्राप्त हो जाती है। मेरी मायासे विमोहित अज्ञानी लोग इस तत्त्वको नहीं समझते हैं। अज्ञानसे आवृत मूढ़ लोग अविमुक्त क्षेत्रका सेवन नहीं करते, वे मल-मूत्र और रजोवीर्य (-से युक्त नरक)-के बीच बार-बार निवास करते हैं। सैकड़ों विघ्नोंसे आहत होनेपर भी जो विद्वान् (वाराणसीमें) निवास करते हैं, वे उस परम स्थानको प्राप्त करते हैं, जहाँ जानेपर शोक नहीं करना पड़ता॥ ३६—३९॥

जन्ममृत्युजरामुक्तं परं यान्ति शिवालयम्।
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्यन्ति पण्डिताः॥ ४०॥

न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया।
प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याविमुक्ते तु लभ्यते॥ ४१॥

(वे) जन्म, मृत्यु और जरारहित होकर शिवके श्रेष्ठ निवासस्थानको प्राप्त करते हैं। पुनः मरणको न प्राप्त करनेवाले मोक्षार्थियोंकी वह सद्गति होती है, जिसे प्राप्तकर पण्डित लोग (स्वयंको) कृतकृत्य मानते हैं। अविमुक्त क्षेत्रमें जो उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है, वह न दानोंसे, न विविध तपोंसे, न यज्ञोंसे और न विद्याद्वारा ही प्राप्त की जा सकती है॥ ४०-४१॥

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डालाद्या जुगुप्सिताः।
किल्बिषैः पूर्णदेहा ये विशिष्टैः पातकैस्तथा।
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः॥ ४२॥

अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तं परं पदम्।
अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम्॥ ४३॥

कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्ते वसन्ति ये।
तेषां तत्परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम्॥ ४४॥

विद्वानोंका यह कहना है कि अनेक (ब्राह्मणादि) वर्णवाले मनुष्यों, वर्णरहित चण्डालादिकों, घृणित व्यक्तियों तथा जो पापों तथा विशिष्ट पापों (महापापों)-से युक्त देहवाले हैं, उनके लिये अविमुक्त क्षेत्र (वाराणसीका सेवन ही) परम ओषधि है। अविमुक्त (क्षेत्र) परम ज्ञान है। अविमुक्त (क्षेत्र) परम पद है। अविमुक्त (क्षेत्र) परम तत्त्व है और अविमुक्त (क्षेत्र) परम कल्याण है। नैष्ठिकी दीक्षा ग्रहण कर जो अविमुक्त (क्षेत्र)-में निवास करते हैं, उन्हें मैं श्रेष्ठ ज्ञान और अन्तमें परम पद प्रदान करता हूँ॥ ४२—४४॥

प्रयागं नैमिषं पुण्यं श्रीशैलोऽथ महालयः।
केदारं भद्रकर्णं च गया पुष्करमेव च॥ ४५॥

कुरुक्षेत्रं रुद्रकोटिर्नर्मदाम्रातकेश्वरम्।
शालिग्रामं च कुब्जाम्रं कोकामुखमनुत्तमम्।
प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं भद्रकर्णकम्॥ ४६॥

एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि ह।
न यास्यन्ति परं मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः॥ ४७॥

वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी।
प्रविष्टा नाशयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्॥ ४८॥

प्रयाग, पुण्यदायी नैमिषारण्य, महालय श्रीशैल, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा, आम्रातकेश्वर, शालिग्राम, कुब्जाम्र, श्रेष्ठ कोकामुख, प्रभास, विजयेशान, गोकर्ण तथा भद्रकर्ण—ये सभी पवित्र तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात हैं, किंतु जिस प्रकार वाराणसीमें मरे हुए व्यक्तियोंको परम मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। वाराणसीमें प्रविष्ट त्रिपथगामिनी (स्वर्ग, पाताल एवं भूलोक इस प्रकार तीन पथोंमें प्रवाहित होनेवाली) गङ्गा सैकड़ों जन्मोंमें किये हुए पापोंको नष्ट करनेमें अपना विशिष्ट स्थान रखती है॥ ४५—४८॥

अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तपो जपः।
व्रतानि सर्वमेवैतद् वाराणस्यां सुदुर्लभम्॥ ४९॥

यजेत जुहुयान्नित्यं ददात्यर्चयतेऽमरान्।
वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो नरः॥ ५०॥

यदि पापो यदि शठो यदि वाऽधार्मिको नरः।
वाराणसीं समासाद्य पुनाति सकलं नरः॥ ५१॥

वाराणस्यां महादेवं येऽर्चयन्ति स्तुवन्ति वै।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वराः॥ ५२॥

गङ्गा, श्राद्ध, दान, तप, जप तथा व्रत वाराणसीमें सभी सुलभ हैं, परंतु अन्यत्र दुर्लभ हैं। वाराणसीमें स्थित मनुष्य ऐसा ज्ञान अत्यल्प परिश्रमसे प्राप्त कर लेता है, जिसके सहारे वायुभक्षी होकर नित्य हवन करता है, यज्ञ करता है, दान देता है तथा देवताओंकी पूजा करता है। मनुष्य पापी हो, शठ हो अथवा अधार्मिक हो, तब भी वाराणसीमें पहुँचकर अपने संसर्गमें रहनेवाले सबको पवित्र कर देता है। वाराणसीमें जो महादेवकी स्तुति करते हैं, अर्चना करते हैं, उन्हें सभी पापोंसे मुक्त (शंकरके) गणेश्वर समझना चाहिये॥ ४९—५२॥

अन्यत्र योगज्ञानाभ्यां संन्यासादथवान्यतः।
प्राप्यते तत् परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना॥ ५३॥

ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै।
ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना॥ ५४॥

यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना।
अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम्॥ ५५॥

दूसरे स्थानमें योग, ज्ञान, संन्यास अथवा अन्य उपायोंसे हजारों जन्मोंमें वह परमपद—मोक्ष प्राप्त होता है, किंतु देवदेवेश शंकरके जो भक्त वाराणसीमें निवास करते हैं, वे एक ही जन्ममें परमपद—मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ एक ही जन्ममें योग, ज्ञान अथवा मुक्ति मिल जाती है, उस अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्रमें पहुँचकर फिर किसी दूसरे तपोवनमें नहीं जाना चाहिये॥ ५३—५५॥

यतो मया न मुक्तं तदविमुक्तं ततः स्मृतम्।
तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद् विज्ञाय मुच्यते॥ ५६॥

ज्ञानाज्ञानाभिनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्।
या गतिर्विहिता सुभ्रु साविमुक्ते मृतस्य तु॥ ५७॥

यानि चैवाविमुक्तस्य देहे तूक्तानि कृत्स्नशः।
पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्यो ह्यधिका शुभा॥ ५८॥

यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तकम्॥ ५९॥

यत् तत् परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति श्रुतम्।
एकेन जन्मना देवि वाराणस्यां तदाप्नुयात्॥ ६०॥

भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदये चैव मूर्धनि।
यथाविमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम्॥ ६१॥

वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी।
तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवाविमुक्तकम्॥ ६२॥

वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति।
यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवेश्वरः॥ ६३॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
उपासते मां सततं देवदेवं पितामहम्॥ ६४॥

महापातकिनो ये च ये तेभ्यः पापकृत्तमाः।
वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम्॥ ६५॥

तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद् वै मरणान्तिकम्।
वाराणस्यां महादेवाज्ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते॥ ६६॥

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसः।
ततो नैव चरेत् पापं कायेन मनसा गिरा॥ ६७॥

एतद् रहस्यं वेदानां पुराणानां च सुव्रताः।
अविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न कश्चिद् वेत्ति तत्त्वतः॥ ६८॥

देवतानामृषीणां च शृण्वतां परमेष्ठिनाम्।
देव्यै देवेन कथितं सर्वपापविनाशनम्॥ ६९॥

चूँकि मैं वाराणसी क्षेत्र कभी नहीं छोड़ता, इसलिये वह अविमुक्त (क्षेत्र) कहलाता है, यही गुह्योंमें अत्यन्त गुह्य (ज्ञान) है। इसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। हे सुभ्रु (सुन्दर भौंहोंवाली)! ज्ञान[१] (ब्रह्मज्ञान) और अज्ञान (ब्रह्मज्ञानका साधनरूप ज्ञान)-में निरत तथा परमानन्दकी इच्छा करनेवालोंकी जो गति बतलायी गयी है, वह अविमुक्त (क्षेत्र)-में मरनेवालोंको प्राप्त होती है। अविमुक्तरूप देह (विराट्)-में जिन क्षेत्रोंका वर्णन हुआ है, उन सभी क्षेत्रोंमें वाराणसीपुरी अधिक शुभ है॥ ५६—५८॥

यह अविमुक्त क्षेत्र ऐसा है, जहाँ साक्षात् महादेव ईश्वर देहान्त होनेके समय तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं। देवि! जो वह परतर तत्त्व 'अविमुक्त' नामसे कहा जाता है, वह वाराणसीमें एक जन्ममें ही प्राप्त हो जाता है। (विराट्के) भौंहोंके मध्य, नाभिके मध्य, हृदयमें, मूर्धामें तथा आदित्यमें जिस प्रकार अविमुक्त स्थित है, उसी प्रकार वाराणसीमें अविमुक्त क्षेत्र प्रतिष्ठित है॥ ५९—६१॥

वरुणा और असीके मध्य वाराणसीपुरी है। वहाँ अविमुक्त नामक नित्य तत्त्व स्थित है। जहाँ नारायण देव और महादेव दिवेश्वर (सुरलोकके अधिपति) स्थित हैं, उस वाराणसीसे श्रेष्ठ स्थान न कोई हुआ है और न कोई होगा। वहाँ गन्धर्वों, यक्षों, नागों तथा राक्षसोंसहित सभी देवता मुझ देवाधिदेव पितामहकी सतत उपासना करते हैं॥ ६२—६४॥

जो महापापी हैं और उनसे भी जो अधिक पाप करनेवाले (अतिपातकी) हैं, वे वाराणसी पहुँचकर परम गतिको प्राप्त करते हैं। इसलिये मोक्षार्थीको मरणपर्यन्त वाराणसीमें निश्चितरूपसे निवास करना चाहिये। वाराणसीमें महादेवसे ज्ञान प्राप्तकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। किंतु पापसे आक्रान्त चित्तवालोंको विघ्न होते हैं। इसलिये शरीर, मन और वाणीसे पाप नहीं करना चाहिये। सुव्रतो! (उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले) यह वेदों और पुराणोंका रहस्य है। अविमुक्तसे सम्बद्ध ज्ञानको कोई तत्त्वतः जानता नहीं है॥ ६५—६८॥

महादेवने देवताओं, ऋषियों तथा परमेष्ठियोंके समक्ष देवी पार्वतीसे सभी पापोंको विनष्ट करनेवाले इस ज्ञानको कहा था॥ ६९॥

१-यहाँ मूलमें 'ज्ञान' का अर्थ है विज्ञान (ब्रह्मज्ञान) तथा अज्ञानका अर्थ है किंचित् न्यून ज्ञान (ब्रह्मज्ञानका साधन ज्ञान)।

यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः।
यथेश्वराणां गिरिशः स्थानानां चैतदुत्तमम्॥ ७०॥

यैः समाराधितो रुद्रः पूर्वस्मिन्नेव जन्मनि।
ते विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम्॥ ७१॥

कलिकल्मषसम्भूता येषामुपहता मतिः।
न तेषां वेदितुं शक्यं स्थानं तत् परमेष्ठिनः॥ ७२॥

जिस प्रकार देवताओंमें पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार ईश्वरोंमें गिरिश (महादेव) श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सभी स्थानोंमें यह (अविमुक्त क्षेत्र) श्रेष्ठ है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें रुद्रकी उपासना की है, वे ही परम अविमुक्त क्षेत्र नामक शिवके निवासस्थानको प्राप्त करते हैं। कलिके दोषोंके कारण जिनकी बुद्धि उपहत हो गयी है, वह परमेष्ठीके उस स्थानको जान नहीं सकते॥ ७०—७२॥

ये स्मरन्ति सदा कालं विन्दन्ति च पुरीमिमाम्।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥ ७३॥

यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः।
नाशयेत् तानि सर्वाणि देवः कालतनुः शिवः॥ ७४॥

जो सर्वदा कालरूप शिवका और इस पुरी (वाराणसी)-का स्मरण करते रहते हैं, उनका इस लोक और अन्य लोकका पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। यहाँ निवास करनेवाले जो पाप करते हैं, कालस्वरूप देव शिव उन सबको नष्ट कर देते हैं॥ ७३-७४॥

आगच्छतामिदं स्थानं सेवितुं मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
मृतानां च पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे॥ ७५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः।
योगी वाप्यथवाऽयोगी पापी वा पुण्यकृत्तमः॥ ७६॥

न वेदवचनात् पित्रोर्न चैव गुरुवादतः।
मतिरुत्क्रमणीया स्यादविमुक्तगतिं प्रति॥ ७७॥

मोक्षकी इच्छासे इस स्थानका सेवन करनेके लिये जो यहाँ आते हैं, उन्हें मृत्युके अनन्तर पुनः भवसागरमें जन्म नहीं लेना पड़ता। इसीलिये चाहे योगी हो, अयोगी हो अथवा पापी हो या श्रेष्ठ पुण्यकर्मा हो, जैसा भी हो, उसे सभी प्रयत्नोंसे वाराणसीमें ही निवास करना चाहिये। वेदके वचनसे, माता-पिताके कहनेसे अथवा गुरुके वचनसे भी अविमुक्त क्षेत्र—वाराणसीमें आनेके विचारका परित्याग नहीं करना चाहिये[1]॥ ७५—७७॥

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वा भगवान् व्यासो वेदविदां वरः।
सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्यां चचार ह॥ ७८॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वेदविदोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यास प्रधान शिष्योंके साथ वाराणसीमें विचरण करने लगे॥ ७८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २९॥

१-वाराणसीकी स्तुतिमें तात्पर्य है न कि वेदवाक्यों, माता-पिता एवं गुरुके वचनोंके उल्लङ्घनमें तात्पर्य है।

तीसवाँ अध्याय

वाराणसीके ओंकारेश्वर और कृत्तिवासेश्वर लिङ्गोंका माहात्म्य, शंकरके कृत्तिवासा नाम पड़नेका वृत्तान्त

सूत उवाच

स शिष्यैः संवृतो धीमान् गुरुर्द्वैपायनो मुनिः।
जगाम विपुलं लिङ्गमोंकारं मुक्तिदायकम्॥ १ ॥
तत्राभ्यर्च्य महादेवं शिष्यैः सह महामुनिः।
प्रोवाच तस्य माहात्म्यं मुनीनां भावितात्मनाम्॥ २ ॥
इदं तद् विमलं लिङ्गमोंकारं नाम शोभनम्।
अस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः॥ ३ ॥

एतत् परतरं ज्ञानं पञ्चायतनमुत्तमम्।
सेवितं सूरिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षदम्॥ ४ ॥

अत्र साक्षान्महादेवः पञ्चायतनविग्रहः।
रमते भगवान् रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः॥ ५ ॥
यत् तत् पाशुपतं ज्ञानं पञ्चार्थमिति शब्द्यते।
तदेतद् विमलं लिङ्गमोङ्कारे समवस्थितम्॥ ६ ॥

शान्त्यतीता तथा शान्तिर्विद्या चैव परा कला।
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चार्थं लिङ्गमैश्वरम्॥ ७ ॥

पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मादीनां सदाश्रयम्।
ओंकारबोधकं लिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते॥ ८ ॥

संस्मरेदैश्वरं लिङ्गं पञ्चायतनमव्ययम्।
देहान्ते तत्परं ज्योतिरानन्दं विशते बुधः॥ ९ ॥

अत्र देवर्षयः पूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा।
उपास्य देवमीशानं प्राप्तवन्तः परं पदम्॥ १० ॥

मत्स्योदर्यास्तटे पुण्यं स्थानं गुह्यतमं शुभम्।
गोचर्ममात्रं विप्रेन्द्रा ओङ्कारेश्वरमुत्तमम्॥ ११ ॥
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम्।
विश्वेश्वरं तथोंकारं कपर्दीश्वरमेव च॥ १२ ॥
एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः।
न कश्चिदिह जानाति विना शम्भोरनुग्रहात्॥ १३ ॥
एवमुक्त्वा ययौ कृष्णः पाराशर्यो महामुनिः।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं द्रष्टुं देवस्य शूलिनः॥ १४ ॥

सूतजी बोले—शिष्योंसे घिरे हुए बुद्धिमान् वे गुरु द्वैपायन मुनि मुक्ति प्रदान करनेवाले विशाल ओङ्कार लिङ्गकी संनिधिमें गये। शिष्योंके साथ महामुनिने वहाँ महादेवकी भलीभाँति पूजा करके पवित्र आत्मावाले मुनियोंको उस ओङ्कार लिङ्गका माहात्म्य बताया॥ १-२॥

ओङ्कार नामवाला यह लिङ्ग पवित्र एवं सुन्दर है, इसके स्मरणमात्रसे सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। वाराणसीमें विद्वानोंके द्वारा मुक्ति प्रदान करनेवाले इस अतिश्रेष्ठ ज्ञानरूप उत्तम पञ्चायतनकी नित्य पूजा की जाती है। यहाँ प्राणियोंको मोक्ष देनेवाले साक्षात् महादेव भगवान् रुद्र पञ्चायतन-शरीर धारणकर रमण करते रहते हैं॥ ३—५॥

जो वह पाशुपत ज्ञान 'पञ्चार्थ' शब्दसे कहा जाता है, वही ज्ञान इस पवित्र लिङ्गके रूपमें ओङ्कारमें अवस्थित है। अतीता शान्ति, शान्ति, उत्कृष्ट कलावाली विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति—इन्हीं पाँच अर्थोंके लिये इनके प्रतिनिधि-रूपमें महादेवका (ओङ्कार) लिङ्ग प्रतिष्ठित है। ब्रह्मा आदि पाँच देवोंका भी नित्य आश्रयरूप यही ओङ्कारबोधक लिङ्ग पञ्चायतन कहलाता है। अविनाशी पञ्चायतनरूप ईश्वरीय लिङ्गका स्मरण करना चाहिये, ऐसा करनेसे मनुष्य देहान्त होनेपर आनन्दस्वरूप परम ज्योतिमें प्रवेश करता है। पूर्वकालमें देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा सिद्धोंने यहींपर भगवान् ईशानकी उपासना कर परमपद प्राप्त किया था। विप्रेन्द्रो! मत्स्योदरीके किनारे गोचर्म[1] के बराबर गुह्यतम शुभ पुण्य स्थान है, वही ओङ्कारेश्वरका उत्तम क्षेत्र है॥ ६—११॥

द्विजोत्तमो! कृत्तिवासेश्वर, श्रेष्ठ मध्यमेश्वर, विश्वेश्वर, ओङ्कारेश्वर तथा कपर्दीश्वर—ये वाराणसीके गुह्य लिङ्ग हैं, बिना शंकरकी कृपाके कोई इन्हें यहाँ जान नहीं सकता। ऐसा कहकर पराशरके पुत्र महामुनि कृष्णद्वैपायन शूलधारी महादेवके कृत्तिवासेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करने गये॥ १२—१४॥

१-भूमिकी एक विशिष्ट माप।

समभ्यर्च्य तथा शिष्यैर्माहात्म्यं कृत्तिवाससः।
कथयामास शिष्येभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तमः॥ १५॥

ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यासने शिष्योंके साथ लिङ्गका पूजनकर शिष्योंको कृत्तिवासेश्वरका माहात्म्य बतलाया॥ १५॥

अस्मिन् स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्।
ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते॥ १६॥

तेषां लिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः।
रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्तानां भक्तवत्सलः॥ १७॥

हत्वा गजाकृतिं दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः।
वासस्तस्याकरोत् कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः॥ १८॥

प्राचीन कालमें एक दैत्य हाथीका रूप धारणकर यहाँ शंकरके समीप नित्य उपासना करनेवाले ब्राह्मणोंको मारनेके लिये आया। द्विजश्रेष्ठो! उन भक्तोंकी रक्षाके लिये इस लिङ्गसे भक्तवत्सल महादेव त्रिलोचन प्रकट हुए। हाथीकी आकृतिवाले उस दैत्यको अवज्ञापूर्वक शूलसे मारकर शंकरने उसके चर्मका वस्त्र धारण किया। उसी समयसे वे कृत्तिवासेश्वर[1] हो गये॥ १६—१८॥

अत्र सिद्धिं परां प्राप्ता मुनयो मुनिपुंगवाः।
तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत् परमं पदम्॥ १९॥

विद्या विद्येश्वरा रुद्राः शिवा ये च प्रकीर्तिताः।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं नित्यमावृत्य संस्थिताः॥ २०॥

ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलं जनाः।
कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते न संशयः॥ २१॥

जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा।
एकेन जन्मना मोक्षः कृत्तिवासे तु लभ्यते॥ २२॥

श्रेष्ठ मुनियो! यहाँ मुनियोंने परम सिद्धि प्राप्त की और उसी शरीरसे परम पद अर्थात् मोक्ष भी प्राप्त किया। विद्या, विद्येश्वर, रुद्र एवं शिव नामसे कहे जानेवाले कृत्तिवासेश्वर लिङ्गको सभी देवता नित्य आवृतकर स्थित रहते हैं। घोर कलियुग और अधार्मिक लोगोंकी बहुलताको समझकर जो लोग कृत्तिवासेश्वरका परित्याग नहीं करते वे निःसंदेह कृतार्थ हो जाते हैं। हजारों जन्मान्तरोंमें भी दूसरे स्थानपर मोक्ष प्राप्त होता हो अथवा नहीं, किंतु कृत्तिवास-क्षेत्रमें एक जन्ममें ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है॥ १९—२२॥

आलयः सर्वसिद्धानामेतत् स्थानं वदन्ति हि।
गोपितं देवदेवेन महादेवेन शम्भुना॥ २३॥

युगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपासते महादेवं जपन्ति शतरुद्रियम्॥ २४॥

स्तुवन्ति सततं देवं त्र्यम्बकं कृत्तिवाससम्।
ध्यायन्ति हृदये देवं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम्॥ २५॥

लोगोंका कहना है कि सभी सिद्धोंका आश्रयरूप यह स्थान देवाधिदेव महादेव शम्भुके द्वारा सुरक्षित है। प्रत्येक युगमें वेदमें पारंगत इन्द्रियनिग्रही ब्राह्मण यहाँ महादेवकी उपासना करते हैं और शतरुद्रियका जप करते हैं। हृदयमें सर्वान्तरात्मा स्थाणुदेव शिवका ध्यान करते हुए कृत्तिवासा त्र्यम्बक देव (त्रिलोचन महादेव)-की निरन्तर स्तुति करते हैं॥ २३—२५॥

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि
ये वाराणस्यां निवसन्ति विप्राः।
तेषामथैकेन भवेन्मुक्ति-
र्ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः॥ २६॥

सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं
सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म।
ध्याने समाधाय जपन्ति रुद्रं
ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम्॥ २७॥

विप्रो! सिद्धजन यह गीत गाते हैं कि जो लोग वाराणसीमें निवास करते हैं और कृत्तिवासा भगवान् शिवकी शरण ग्रहण करते हैं, उनकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है। इस लोकमें संसारको अभीष्ट अत्यन्त दुर्लभ विप्रकुलमें जन्म प्राप्तकर संयमी लोग ध्यानमें समाधिस्थ होकर रुद्रका जप करते हैं और चित्तमें महेश्वरका ध्यान करते रहते हैं॥ २६-२७॥

१-कृत्ति चर्मको कहते हैं।

आराधयन्ति प्रभुमीशितारं
वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः।
यजन्ति यज्ञैरभिसंधिहीनाः
स्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शम्भुम्॥ २८॥

वाराणसीमें निवास करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजन प्रभु शंकरकी आराधना करते हैं, फलकी आकांक्षा किये बिना यज्ञोंद्वारा (उनका) यजन करते हैं, रुद्र-रूपमें उनकी स्तुति करते हैं और शम्भु-रूपमें उन्हें प्रणाम करते हैं॥ २८॥

नमो भवायामलयोगधाम्ने
स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं
जाने महादेवमनेकरूपम्॥ २९॥

विशुद्ध योगके आश्रयरूप भवको नमस्कार है, मैं स्थाणु पुराण गिरिशकी शरण ग्रहण करता हूँ, हृदयमें अवस्थित रुद्रका स्मरण करता हूँ और महादेवको अनेक रूपोंमें स्थित मानता हूँ॥ २९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

वाराणसीके कपर्दीश्वर लिङ्गका माहात्म्य, पिशाचमोचन-कुण्डमें स्नान करनेकी महिमा, वहाँ स्नान करनेसे पिशाचयोनिसे मुक्ति प्राप्त करनेका आख्यान, शंकुकर्णकी कथा तथा शंकुकर्णकृत ब्रह्मपार-स्तव

सूत उवाच

समाभाष्य मुनीन् धीमान् देवदेवस्य शूलिनः।
जगाम लिङ्गं तद् द्रष्टुं कपर्दीश्वरमव्ययम्॥ १॥

स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन् द्विजाः।
पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम्॥ २॥
तत्राश्चर्यमपश्यंस्ते मुनयो गुरुणा सह।
मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्यं प्रणेमुर्गिरिशं हरम्॥ ३॥

कश्चिदभ्याजगामेदं शार्दूलो घोररूपधृक्।
मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥ ४॥

तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम्।
धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता॥ ५॥
तां विदार्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः सुमहाबलः।
जगाम चान्यं विजनं देशं दृष्ट्वा मुनीश्वरान्॥ ६॥

मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी।
अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा॥ ७॥

सूतजी बोले—मुनियोंसे इस प्रकार कहकर बुद्धिमान् (व्यासजी) देवाधिदेव त्रिशूली (भगवान् शंकर)-के कपर्दीश्वर नामक अव्यय लिङ्गका दर्शन करने गये। ब्राह्मणो! वहाँ पिशाचमोचन तीर्थमें स्नानकर विधिपूर्वक पितरोंका तर्पणकर उन्होंने त्रिशूल धारण करनेवाले शंकरकी पूजा की॥ १-२॥

वहाँ गुरुदेव (व्यास)-के साथ उन मुनियोंने एक आश्चर्य देखा। उन्होंने इसे क्षेत्रका माहात्म्य समझा और गिरिश हरको प्रणाम किया। कोई भयंकर रूपवाला व्याघ्र एक मृगीका भक्षण करनेके लिये वहाँ श्रेष्ठ कपर्दीश्वरके समीपमें आया। भयभीत मनवाली वह मृगी वहाँ प्रदक्षिणा करते-करते दौड़ती हुई अत्यन्त व्याकुल हो जानेसे व्याघ्रके वशीभूत हो गयी॥ ३—५॥

अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसे विदीर्णकर वह महान् बलशाली व्याघ्र उन मुनियोंको देखकर दूसरे जनशून्य स्थानकी ओर चला गया। कपर्दीशके समक्ष ही मृत्युको प्राप्त वह बाल-अवस्थावाली मृगी आकाशमें चमकते हुए सूर्यके समान प्रभावाली, महाज्वालारूपा,

त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितमूर्धजा।
वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संवृता॥ ८ ॥

पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तस्य मूर्धनि।
गणेश्वरः स्वयं भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात् ततः॥ ९ ॥

दृष्ट्वैतदाश्चर्यवरं जैमिनिप्रमुखा द्विजाः।
कपर्दीश्वरमाहात्म्यं पप्रच्छुर्गुरुमच्युतम्॥ १० ॥

तीन नेत्रोंवाली, नीलकण्ठवाली, चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाली और वृषभपर आरूढ़ तथा शिवके समान ही पुरुषोंसे समन्वित दिखलायी पड़ी। उसके मस्तकपर आकाशचारी (गन्धर्व आदि) फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। तदनन्तर वह स्वयं गणेश्वर होकर तत्क्षण ही अदृश्य हो गयी। जैमिनि आदि प्रमुख द्विजोंने ऐसा महान् आश्चर्य देखकर अच्युतस्वरूप गुरु (व्यास)-से कपर्दीश्वरका माहात्म्य पूछा॥ ८—१०॥

तेषां प्रोवाच भगवान् देवाग्रे चोपविश्य सः।
कपर्दीशस्य माहात्म्यं प्रणम्य वृषभध्वजम्॥ ११ ॥

इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम्।
स्मृत्वैवाशेषपापौघं क्षिप्रमस्य विमुञ्चति॥ १२ ॥

उन भगवान् व्यासने (कपर्दीश्वर) देवके समीपमें बैठकर वृषभध्वजको प्रणाम करके कपर्दीशका माहात्म्य उन्हें बतलाया। यह देवका वही श्रेष्ठ कपर्दीश्वर नामक लिङ्ग है, जिसका स्मरणमात्र करनेसे ही स्मरण करनेवालेका अशेष पापसमूह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ ११-१२॥

कामक्रोधादयो दोषा वाराणसीनिवासिनाम्।
विघ्नाः सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात्॥ १३ ॥

तस्मात् सदैव द्रष्टव्यं कपर्दीश्वरमुत्तमम्।
पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैः स्तवैः॥ १४ ॥

ध्यायतामत्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम्।
जायते योगसंसिद्धिः सा षण्मासे न संशयः॥ १५ ॥

वाराणसीमें निवास करनेवाले लोगोंके काम, क्रोध आदि दोष और सभी विघ्न कपर्दीश्वरका पूजन करनेसे विनष्ट हो जाते हैं। इसलिये श्रेष्ठ कपर्दीश्वरका सदा ही दर्शन करना चाहिये, प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये और वैदिक स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करनी चाहिये। शान्त चित्तवाले योगियोंको यहाँ नियमित ध्यान करते हुए छः महीनेमें ही उत्कृष्ट योगसिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ १३—१५॥

ब्रह्महत्यादयः पापा विनश्यन्त्यस्य पूजनात्।
पिशाचमोचने कुण्डे स्नातस्यात्र समीपतः॥ १६ ॥

अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्वी शंसितव्रतः।
शंकुकर्ण इति ख्यातः पूजयामास शंकरम्।
जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं ब्रह्मरूपिणम्॥ १७ ॥

पुष्पधूपादिभिः स्तोत्रैर्नमस्कारैः प्रदक्षिणैः।
उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षां तु नैष्ठिकीम्॥ १८ ॥

कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम्।
अस्थिचर्मपिनद्धाङ्गं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः॥ १९ ॥

तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपया परया युतः।
प्रोवाच को भवान् कस्माद् देशाद् देशमिमं श्रितः॥ २० ॥

यहाँ समीपमें स्थित पिशाचमोचन कुण्डमें स्नानकर इस लिङ्गका पूजन करनेसे ब्रह्महत्या आदि सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मणो! प्राचीन कालमें शंकुकर्ण नामसे प्रसिद्ध कठोर व्रतवाले तपस्वीने इस क्षेत्रमें शंकरकी पूजा की थी। वह रात-दिन प्रणव एवं ब्रह्मस्वरूप रुद्रका जप करता था। निष्ठापूर्वक दीक्षा ग्रहण कर वह योगात्मा पुष्प, धूप आदिसे तथा स्तोत्र, नमस्कार एवं प्रदक्षिणाके द्वारा (पूजा करता हुआ) वहाँ रहने लगा। किसी दिन उसने भूखसे व्याकुल अस्थि एवं चर्मसे व्याप्त शरीरवाले और बार-बार साँस ले रहे एक आते हुए प्रेतको देखा। उसे देखकर उस श्रेष्ठ मुनिने अत्यन्त कृपासे युक्त होकर उससे कहा—आप कौन हैं? कहाँसे इस देशमें आये हैं?॥ १६—२०॥

तस्मै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद् वचः।
पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वितः।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः कुटुम्बभरणोत्सुकः॥ २१ ॥

क्षुधासे पीड़ित पिशाचने उससे कहा—पूर्वजन्ममें मैं धनधान्यसे सम्पन्न, पुत्र-पौत्रादिकोंसे युक्त, परिवारके भरण-पोषणमें उत्सुक रहनेवाला एक ब्राह्मण था,

न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा।
न कदाचित् कृतं पुण्यमल्पं वा स्वल्पमेव वा॥ २२॥

एकदा भगवान् देवो गोवृषेश्वरवाहनः।
विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः॥ २३॥

तदाचिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागतः।
न दृष्टं तन्मया घोरं यमस्य वदनं मुने॥ २४॥

ईदृशीं योनिमापन्नः पैशाचीं क्षुधयान्वितः।
पिपासयाधुनाक्रान्तो न जानामि हिताहितम्॥ २५॥

यदि कंचित् समुद्धर्तुमुपायं पश्यसि प्रभो।
कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणं गतः॥ २६॥

किंतु मैंने न तो कभी देवताओंकी पूजा की न गायोंकी और न तो अतिथियोंकी, मैंने कभी छोटे-से भी छोटा पुण्य नहीं किया। एक बारकी बात है कि वाराणसीमें मैंने वृषभवाहन भगवान् विश्वेश्वरदेवका दर्शन किया, स्पर्श किया और उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर बहुत थोड़े ही समयके बाद मेरी मृत्यु हो गयी। हे मुने! (इसी पुण्यके कारण) मुझे यमके भयानक मुखको तो नहीं देखना पड़ा, पर इस प्रकारकी पिशाचयोनि प्राप्तकर भूख और प्याससे व्याकुल मैं वाराणसीमें ही भटक रहा हूँ। इस समय मुझे हित और अहितका कुछ भी ज्ञान नहीं है। प्रभो! मेरे उद्धारका यदि कोई उपाय आप देखते हों तो उसे करें, आपको नमस्कार है, मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ २१—२६॥

इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत्।
त्वादृशो न हि लोकेऽस्मिन् विद्यते पुण्यकृत्तमः॥ २७॥

यत् त्वया भगवान् पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वरः शिवः।
संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि॥ २८॥

तेन कर्मविपाकेन देशमेतं समागतः।
स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन् कुण्डे समाहितः।
येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि॥ २९॥

ऐसा कहे जानेपर शंकुकर्णने पिशाचसे कहा— तुम्हारे समान इस संसारमें श्रेष्ठ पुण्य कर्म करनेवाला और कोई नहीं है, जो कि तुमने पूर्वकालमें विश्वेश्वर भगवान् शिवका दर्शन किया, उनका स्पर्श किया और वन्दना की, फिर संसारमें तुम्हारे समान और कौन हो सकता है? उस कर्मके परिणामस्वरूप ही तुम इस स्थानपर पहुँचे हो। अब तुम एकाग्रमन होकर इस कुण्डमें शीघ्र ही स्नान करो। जिससे इस कुत्सित (पिशाचकी) योनिसे तुम शीघ्र ही छुटकारा प्राप्त कर सको॥ २७—२९॥

स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो
दयालुना देववरं त्रिनेत्रम्।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितारं
चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम्॥ ३०॥

दयालु मुनिके ऐसा कहनेपर उस पिशाचने देवश्रेष्ठ त्रिलोचन, अनुशास्ता भगवान् कपर्दीश्वरका स्मरण कर मनको एकाग्र करते हुए (कुण्डमें) स्नान किया॥ ३०॥

तदावगाढो मुनिसंनिधाने
ममार दिव्याभरणोपपन्नः।
अदृश्यतार्कप्रतिमे विमाने
शशाङ्कचिह्नाङ्कितचारुमौलिः॥ ३१॥

विभाति रुद्रैरभितो दिविस्थैः
समावृतो योगिभिरप्रमेयैः।
सबालखिल्यादिभिरेष देवो
यथोदये भानुरशेषदेवः॥ ३२॥

तदनन्तर स्नान किया हुआ वह मुनिके समीप ही मृत्युको प्राप्त हो गया और पुनः सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें स्थित हो वह दिव्य आभूषणोंको धारण किये तथा चन्द्रमाके चिह्नसे सुशोभित सुन्दर मस्तकसे युक्त (पुरुषके रूपमें) दिखायी पड़ा। वह आकाशमें स्थित रहनेवाले रुद्रों, अप्रमेय योगियों तथा बालखिल्य आदि ऋषियोंसे चारों ओरसे आवृत होते हुए उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार सभी देवताओंके भी देवता सूर्यदेवता उदयकालमें दिखलायी पड़ते हैं॥ ३१-३२॥

स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा
नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमाम्बुमिश्रां
गन्धर्वविद्याधरकिंनराद्याः ॥ ३३ ॥

आकाशमें सिद्ध तथा देवताओंके समूह (उसकी) स्तुति कर रहे थे। दिव्य सुन्दर अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और गन्धर्व, विद्याधर तथा किंनर आदि जलसे स्निग्ध पुष्पोंकी वृष्टि कर रहे थे॥ ३३॥

संस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घै-
रवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात्।
समाविशन्मण्डलमेतदग्र्यं
त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः॥ ३४॥
दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं
मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम्।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्निं
प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिने तम्॥ ३५॥

मुनियोंके समूहोंसे स्तुति किये जाते हुए उसने भगवान्‌की कृपासे ज्ञान प्राप्त किया और वह उस त्रयीमय श्रेष्ठ मण्डलमें प्रविष्ट हो गया जहाँ रुद्र प्रकाशित होते हैं। पिशाचयोनिको प्राप्त उस (पुरुष)-को मुक्त हुआ देखकर वह मुनि अत्यन्त प्रसन्न-मनसे महेशका ध्यानकर और कवि अद्वितीय रुद्राग्निको प्रणामकर उन जटाधारी (शिव)-की स्तुति करने लगे— ॥ ३४-३५ ॥

शङ्कुकर्ण उवाच

कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद्
गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम्।
व्रजामि योगेश्वरमीशितार-
मादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम्॥ ३६ ॥

शंकुकर्णने कहा—मैं परात्पर, अद्वितीय, सबके रक्षक, पुराणपुरुष, योगेश्वर, नियामक, आदित्य, अग्निरूप एवं कपिल (वृषभ)-पर अधिष्ठित आप कपर्दीकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ३६॥

त्वां ब्रह्मपारं हृदि संनिविष्टं
हिरण्मयं योगिनमादिमन्तम्।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविस्थं
महामुनिं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥ ३७॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं
सहस्रबाहुं तमसः परस्तात्।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं
हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम्॥ ३८ ॥
यतः प्रसूतिर्जगतो विनाशो
येनावृतं सर्वमिदं शिवेन।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं
प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये॥ ३९ ॥
अलिङ्गमालोकविहीनरूपं
स्वयम्प्रभं चित्पतिमेकरुद्रम्।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां
नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥ ४० ॥

मैं हृदयमें संनिविष्ट, हिरण्मय, योगी, आदि एवं अन्तरूप, द्युलोकमें स्थित, महामुनि, पवित्र और ब्रह्मस्वरूप आप ब्रह्मपार रुद्रकी शरणमें जाता हूँ। मैं हजारों चरण, नेत्र और सिरोंसे युक्त, हजारों बाहुवाले, अन्धकारसे परे रहनेवाले, हिरण्यगर्भके अधिपति और तीन नेत्रवाले आप ज्ञानातीत शम्भुको प्रणाम करता हूँ। जिनसे संसारकी उत्पत्ति तथा विनाश होता है और जिन शिवने इस सम्पूर्ण (विश्व)-को आवृत कर रखा है, उन्हीं ज्ञानातीत भगवान् ईशको प्रणाम कर मैं उनकी नित्य शरण ग्रहण करता हूँ। मैं अलिङ्ग-(निराकार) और आलोकरहित[१] रूपवाले, स्वयं प्रभावान्, चित्-शक्तिके स्वामी, अद्वितीय रुद्ररूप, ज्ञानसे अतीत आप परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ, क्योंकि आपसे भिन्न अन्य कुछ है ही नहीं॥ ३७—४० ॥

१-महेश्वरका रूप किसी भी आलोक (प्रकाश)-से आलोकित (प्रकाशित) नहीं होता, अपितु स्वयं प्रकाशमान है और उसीके प्रकाशसे समस्त प्रपञ्च सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशित हैं।

यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा
लब्ध्वा समाधिं परमार्थभूताः।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं
तं ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम्॥ ४१॥
न यत्र नामादिविशेषक्लृप्ति-
र्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम्।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं
स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये॥ ४२॥
यद् वेदवादाभिरता विदेहं
सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम् ।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥ ४३॥
यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो
विवर्तते यं प्रणमन्ति देवाः।
नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं
कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम्॥ ४४॥
व्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं
स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुरारिम्।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं
पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि॥ ४५॥

सबीज योग (सविकल्पक समाधि)-का त्याग करनेवाले परमार्थभूत योगिजन निर्विकल्पक समाधि लगाकर आपके जिस रूपका दर्शन करते हैं, मैं आपके उसी ज्ञानातीत स्वरूपको नित्य प्रणाम करता हूँ। जिनमें न तो किसी नाम (तथा रूप) आदि विशेष (गुणों)-की कोई कल्पना है और जिनका न कोई स्वरूप दिखलायी पड़ता है, प्रणामपूर्वक उन ब्रह्मपार स्वयम्भूकी शरणमें मैं जाता हूँ। वैदिक सिद्धान्तोंके अनुगामी आपके जिस स्वरूपको विदेह, ब्रह्मविज्ञानमय, अभेदरूप (अद्वितीय)—इन अनेक प्रकारोंसे जानते हैं, आपके उस ब्रह्मपार स्वरूपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिसके प्रधान (प्रकृति) और पुराण पुरुष विवर्त (परिणाम) हैं तथा देवता जिसे प्रणाम करते हैं, उस ज्योतिमें संनिविष्ट ज्योतिर्मय आपके बृहत् काल-स्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं सनातन गुहेशकी[२] शरणमें जाता हूँ। मैं स्थाणु, गिरिश पुरारिके शरणागत हूँ, मैं चन्द्रमौलि हर, शिवकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं पिनाक धारण करनेवाले आपकी शरणमें जाता हूँ॥ ४१—४५॥

स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽसौ भगवन्तं कपर्दिनम्।
पपात दण्डवद् भूमौ प्रोच्चरन् प्रणवं परम्॥ ४६॥

तत्क्षणात् परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्।
ज्ञानमानन्दमद्वैतं कोटिकालाग्निसंनिभम्॥ ४७॥

शङ्कुकर्णोऽथ मुक्तात्मा तदात्मा सर्वगोऽमलः।
निलिल्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४८॥

इस प्रकार भगवान् कपर्दीकी स्तुति कर श्रेष्ठ ओंकारका उच्चारण करता हुआ वह शंकुकर्ण दण्डवत् भूमिपर गिर पड़ा। उसी क्षण ज्ञान और आनन्दस्वरूप, अद्वितीय, करोड़ों प्रलयकालीन अग्निके समान, शिवात्मक श्रेष्ठ लिङ्ग प्रादुर्भूत हुआ। तब मुक्त आत्मावाला, तादात्म्यस्वरूपवाला, सर्वव्यापी, विशुद्ध हुआ वह शंकुकर्ण निर्मल लिङ्गमें विलीन हो गया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ ४६—४८॥

एतद् रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं वः कपर्दिनः।
न कश्चिद् वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति॥ ४९॥

य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम्।
भक्तः पापविशुद्धात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ५०॥

यह मैंने आप लोगोंको कपर्दीका रहस्य एवं माहात्म्य बतलाया। इसे कोई नहीं जानता। विद्वान् भी इस विषयमें अज्ञानसे मोहित हो जाते हैं। जो भक्त पापका नाश करनेवाली इस कथाको नित्य सुनता है, वह पापसे विमुक्त शुद्धात्मा होकर रुद्रकी समीपताको प्राप्त कर लेता है—॥ ४९-५०॥

पठेच्च सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम्।
प्रातर्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयात् परम्॥ ५१॥

और जो मनुष्य नित्य प्रातः एवं मध्याह्नकालमें शुद्धतापूर्वक इस ब्रह्मपार नामक महान् स्तवका पाठ करेगा, वह परम योगको प्राप्त कर लेगा॥ ५१॥

२-गुहा (बुद्धि)-के ईश।

इहैव नित्यं वत्स्यामो देवदेवं कपर्दिनम्।
द्रक्ष्यामः सततं देवं पूजयामोऽथ शूलिनम्॥ ५२॥

इत्युक्त्वा भगवान् व्यासः शिष्यैः सह महामुनिः।
उवास तत्र युक्तात्मा पूजयन् वै कपर्दिनम्॥ ५३॥

'मैं यहीं नित्य निवास करूँगा, देवदेव कपर्दीका दर्शन करूँगा और त्रिशूल धारण करनेवाले देवकी निरन्तर पूजा करता रहूँगा।' ऐसा कहकर शिष्योंके साथ युक्तात्मा महामुनि व्यासने कपर्दीकी पूजा करते हुए वहीं निवास किया॥ ५२-५३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें एकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

व्यासजीद्वारा वाराणसीके मध्यमेश्वर महादेव तथा मन्दाकिनीकी महिमाका वर्णन

सूत उवाच

उषित्वा तत्र भगवान् कपर्दीशान्तिके पुनः।
द्रष्टुं ययौ मध्यमेशं बहुवर्षगणान् प्रभुः॥ १॥

तत्र मन्दाकिनीं पुण्यामृषिसङ्घनिषेविताम्।
नदीं विमलपानीयां दृष्ट्वा हृष्टोऽभवन्मुनिः॥ २॥

सूतजी बोले—वहाँ कपर्दीश (कपर्दीश्वर)-के समीपमें बहुत वर्षोंतक निवास कर भगवान् प्रभु (वेदव्यास) पुनः मध्यमेश्वर (लिङ्ग)-का दर्शन करने गये। वहाँ ऋषि-समूहोंसे सेवित स्वच्छ जलवाली पवित्र मन्दाकिनी नामक नदीका दर्शन कर मुनि (व्यास) प्रसन्न हो गये॥ १-२॥

स तामन्वीक्ष्य मुनिभिः सह द्वैपायनः प्रभुः।
चकार भावपूतात्मा स्नानं स्नानविधानवित्॥ ३॥

संतर्प्य विधिवद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
पूजयामास लोकादिं पुष्पैर्नानाविधैर्भवम्॥ ४॥

प्रविश्य शिष्यप्रवरैः सार्धं सत्यवतीसुतः।
मध्यमेश्वरमीशानमर्चयामास शूलिनम्॥ ५॥

ततः पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
द्रष्टुं समागता रुद्रं मध्यमेश्वरमीश्वरम्॥ ६॥

उसे देखकर पवित्र आत्मभाववाले तथा स्नानके विधानको जाननेवाले उन द्वैपायन प्रभुने मुनियोंके साथ स्नान किया। विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया और नाना प्रकारके पुष्पोंद्वारा लोकके आदि कारण भवकी पूजा की। प्रमुख शिष्योंके साथ सत्यवतीके पुत्र व्यासने (उस क्षेत्रमें) प्रवेशकर त्रिशूलधारी ईशान मध्यमेश्वरका पूजन किया। तदनन्तर सारे शरीरमें भस्म धारण किये हुए शान्त पाशुपत लोग अर्थात् पशुपतिके भक्तगण पाशुपत ईश्वर मध्यमेश्वर रुद्रका दर्शन करने आये॥ ३—६॥

ओंकारासक्तमनसो वेदाध्ययनतत्पराः।
जटिला मुण्डिताश्चापि शुक्लयज्ञोपवीतिनः॥ ७॥

कौपीनवसनाः केचिदपरे चाप्यवाससः।
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता वेदान्तज्ञानतत्पराः॥ ८॥

दृष्ट्वा द्वैपायनं विप्राः शिष्यैः परिवृतं मुनिम्।
पूजयित्वा यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्॥ ९॥

उनका मन ओंकारके जपमें लगा था, वे सभी वेदोंके अध्ययनमें तत्पर थे। वे शुक्ल यज्ञोपवीत धारण किये थे, कोई जटा रखाये थे और कोई मुण्डित थे। कुछ कौपीन वस्त्र धारण किये थे, तो दूसरे वस्त्ररहित थे। वे ब्रह्मचर्यपरायण, शान्त और वेदान्तके ज्ञानमें तत्पर थे। विप्रो! शिष्योंसे घिरे हुए द्वैपायन मुनिको देखकर यथोक्त विधिसे उनका पूजनकर उन्होंने (पाशुपत भक्तोंने) यह वचन कहा—॥ ७—९॥

को भवान् कुत आयातः सह शिष्यैर्महामुने।
प्रोचुः पैलादयः शिष्यास्तानृषीन् ब्रह्मभावितान्॥ १०॥
अयं सत्यवतीसूनुः कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
व्यासः स्वयं हृषीकेशो येन वेदाः पृथक् कृताः॥ ११॥
यस्य देवो महादेवः साक्षादेव पिनाकधृक्।
अंशांशेनाभवत् पुत्रो नाम्ना शुक इति प्रभुः॥ १२॥
यः स साक्षान्महादेवं सर्वभावेन शंकरम्।
प्रपन्नः परया भक्त्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम्॥ १३॥

महामुने! आप कौन हैं? शिष्योंके साथ कहाँसे आये हैं। तब पैल आदि व्यास-शिष्योंने उन ब्रह्मभावको प्राप्त ऋषियोंसे कहा—ये सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि हैं। ये स्वयं हृषीकेश हैं, जिन्होंने वेदोंका विभाजन किया। पिनाकको धारण करनेवाले साक्षात् प्रभु महादेव ही अपने अंशांशसे इनके शुक नामक पुत्र हुए। वे सभी भावोंसे, परम भक्तिके द्वारा साक्षात् महादेव शंकरके शरणागत हुए हैं और जिन्हें ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान उपलब्ध है॥ १०—१३॥

ततः पाशुपताः सर्वे हृष्टसर्वतनूरुहाः।
नेमुरव्यग्रमनसः प्रोचुः सत्यवतीसुतम्॥ १४॥
भगवन् भवता ज्ञातं विज्ञानं परमेष्ठिनः।
प्रसादाद् देवदेवस्य यत् तन्माहेश्वरं परम्॥ १५॥
तद्वदास्माकमव्यक्तं रहस्यं गुह्यमुत्तमम्।
क्षिप्रं पश्येम तं देवं श्रुत्वा भगवतो मुखात्॥ १६॥

तब वे सभी पशुपतिके भक्त प्रसन्न हो गये, उन्हें रोमाञ्च हो आया। एकाग्रमनसे उन्होंने सत्यवतीके पुत्र व्यासको प्रणाम किया और कहा—भगवन्! देवदेवकी कृपासे जो परमेष्ठीका श्रेष्ठ माहेश्वर विज्ञान है, वह आपको ज्ञात है। अतः आप हमें वह श्रेष्ठ अव्यक्त, गोपनीय रहस्य बतलायें, ताकि आपके मुखसे उसे सुनकर हम शीघ्र ही उन देवका दर्शन कर सकें॥ १४—१६॥

विसर्जयित्वा ताञ्छिष्यान् सुमन्तुप्रमुखांस्ततः।
प्रोवाच तत्परं ज्ञानं योगिभ्यो योगवित्तमः॥ १७॥
तत्क्षणादेव विमलं सम्भूतं ज्योतिरुत्तमम्।
लीनास्तत्रैव ते विप्राः क्षणादन्तरधीयत॥ १८॥

तदनन्तर सुमन्तु आदि उन प्रमुख शिष्योंको विदाकर योगविदोंमें श्रेष्ठ व्यासने उन योगियोंको श्रेष्ठ ज्ञान बतलाया। विप्रो! उसी क्षण एक निर्मल उत्तम ज्योति प्रकट हुई और क्षणभरमें ही वे पाशुपत भक्तगण उसीमें लीन हो गये और अन्तर्धान हो गये॥ १७-१८॥

ततः शिष्यान् समाहूय भगवान् ब्रह्मवित्तमः।
प्रोवाच मध्यमेशस्य माहात्म्यं पैलपूर्वकान्॥ १९॥
अस्मिन् स्थाने स्वयं देवो देव्या सह महेश्वरः।
रमते भगवान् नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः॥ २०॥

तदनन्तर पैल आदि प्रमुख शिष्योंको बुलाकर श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् (व्यास)-ने मध्यमेशका माहात्म्य उन्हें बतलाया। स्वयं भगवान् महेश्वर देव देवीके साथ तथा रुद्रगणोंसे घिरे नित्य इस स्थानपर रमण करते हैं॥ १९-२०॥

अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः।
उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्वृतः॥ २१॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राध्ययनतत्परः।
आराधयन् हरिः शम्भुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम्॥ २२॥
तस्य ते बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः।
लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥ २३॥
तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः।
ददौ कृष्णस्य भगवान् वरदो वरमुत्तमम्॥ २४॥
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं मद्भक्ता विधिपूर्वकम्।
तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मय॥ २५॥

यहींपर पूर्वकालमें देवकीके पुत्र विश्वात्मा हृषीकेश कृष्ण हरि पाशुपतोंसे आवृत रहते हुए, समस्त शरीरमें भस्म धारणकर रुद्र-तत्त्वके अनुसंधानमें तत्पर हुए थे तथा पाशुपत व्रत धारणकर शम्भुकी आराधना करते हुए एक वर्षतक निवास किये थे। उनके (व्यासके) ब्रह्मचर्य-परायण बहुतसे विज्ञ शिष्योंने उनके वचनसे ज्ञान प्राप्तकर महेश्वरका दर्शन किया। वर प्रदान करनेवाले नीललोहित देव साक्षात् भगवान् 'महादेवने' उन कृष्णको उत्तम वर प्रदान किया। जगन्मय! जो मेरे भक्त विधिपूर्वक आप गोविन्दकी अर्चना करेंगे, उन्हें ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान प्राप्त होगा॥ २१—२५॥

नमस्योऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः।
भविष्यसि न संदेहो मत्प्रसादाद् द्विजातिभिः॥ २६॥

येऽत्र द्रक्ष्यन्ति देवेशं स्नात्वा रुद्रं पिनाकिनम्।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति॥ २७॥

प्राणांस्त्यजन्ति ये मर्त्याः पापकर्मरता अपि।
ते यान्ति तत् परं स्थानं नात्र कार्या विचारणा॥ २८॥

निस्संदेह मेरी कृपासे आप मेरे भक्त द्विजातियोंके प्रणम्य, आराध्य और ध्येय होंगे। जो यहाँ स्नानकर पिनाकी रुद्र देवेश्वरका दर्शन करेंगे, उनके ब्रह्महत्या आदि सभी पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। जो पापकर्मपरायण भी मनुष्य यहाँ प्राणोंका त्याग करेंगे, वे परम स्थानको प्राप्त करेंगे, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ २६—२८॥

धन्यास्तु खलु ते विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः।
अर्चयन्ति महादेवं मध्यमेश्वरमीश्वरम्॥ २९॥

स्नानं दानं तपः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणं त्विह।
एकैकशः कृतं विप्राः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ ३०॥

विप्रो! वे निश्चय ही धन्य हैं जो मन्दाकिनीमें स्नानकर ईश्वर महादेव मध्यमेश्वरकी पूजा करते हैं। ब्राह्मणो! यहाँपर एक बार भी किया गया स्नान, दान, तप, श्राद्ध तथा पिण्डदान सात पीढ़ियोंतक कुलको पवित्र कर देता है॥ २९-३०॥

संनिहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे।
यत् फलं लभते मर्त्यस्तस्माद् दशगुणं त्विह॥ ३१॥

एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिके प्रभुः।
उवास सुचिरं कालं पूजयन् वै महेश्वरम्॥ ३२॥

सूर्यके राहुसे ग्रस्त किये जानेपर अर्थात् ग्रहणकालमें संनिहती (कुरुक्षेत्र तीर्थ)-में स्नान करनेसे जो फल मनुष्यको प्राप्त होता है, उससे दस गुना अधिक फल यहाँ मन्दाकिनीमें स्नानसे प्राप्त होता है। ऐसा कहकर महायोगी प्रभु (व्यास)-ने महेश्वरकी पूजा करते हुए मध्यमेश्वरके समीपमें ही बहुत समयतक निवास किया॥ ३१-३२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

वाराणसी-माहात्म्यके प्रसंगमें व्यासजीका शिष्योंके साथ विभिन्न तीर्थोंमें गमन, ब्रह्मतीर्थका आख्यान, व्यासजीद्वारा विश्वेश्वर लिङ्गका पूजन तथा वहाँ रहते हुए शिवाराधना, एक दिन भिक्षा न मिलनेपर क्रोधाविष्ट व्यासजीका वाराणसीके निवासियोंको शाप देनेके लिये उद्यत होना, उसी समय देवी पार्वतीका प्रकट होना, देवीका व्यासको वाराणसी त्यागनेकी आज्ञा, पुनः स्तुतिसे प्रसन्न देवीके द्वारा चतुर्दशी तथा अष्टमीको वहाँ (वाराणसीमें) रहनेकी अनुमति देना

सूत उवाच

ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम भगवान् व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्वृतः॥ १॥
प्रयागं परमं तीर्थं प्रयागादधिकं शुभम्।
विश्वरूपं तथा तीर्थं तालतीर्थमनुत्तमम्॥ २॥
आकाशाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैवार्षभं परम्।
स्वर्नीलं च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥ ३॥

सूतजी बोले—तदनन्तर जैमिनि आदि प्रमुख शिष्योंसे आवृत भगवान् व्यास सभी गुह्य तीर्थों और देवमन्दिरोंमें गये। द्विजश्रेष्ठो! वे परम तीर्थ प्रयाग, प्रयागसे भी अधिक शुभ तीर्थ विश्वरूप, श्रेष्ठ तालतीर्थ, आकाश नामक महातीर्थ, श्रेष्ठ आर्षभ तीर्थ, स्वर्नील नामक महातीर्थ, श्रेष्ठ गौरीतीर्थ,

प्राजापत्यं तथा तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च।
जम्बुकेश्वरमित्युक्तं धर्माख्यं तीर्थमुत्तमम्॥ ४॥
गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थं चैव महानदी।
नारायणं परं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम्॥ ५॥
ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं वाराहं तीर्थमुत्तमम्।
यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं संवर्तकं शुभम्॥ ६॥
अग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठाः कलशेश्वरमुत्तमम्।
नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च॥ ७॥
पर्वताख्यं महागुह्यं मणिकर्णमनुत्तमम्।
घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थं च पितामहम्॥ ८॥
गङ्गातीर्थं तु देवेशं ययातेस्तीर्थमुत्तमम्।
कापिलं चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्॥ ९॥

प्राजापत्य तीर्थ, स्वर्गद्वार, जम्बुकेश्वर, धर्म (धर्मारण्य) नामवाले उत्तम तीर्थ, गया तीर्थ, महातीर्थ, महानदीतीर्थ, परम नारायण तीर्थ, श्रेष्ठ वायु तीर्थ, परम गुह्य ज्ञानतीर्थ, श्रेष्ठ वाराह तीर्थ, महान् पवित्र यमतीर्थ, शुभ संवर्तक तीर्थ, अग्नितीर्थ, उत्तम कलशेश्वर, नागतीर्थ, सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, महागुह्य पर्वत नामक तीर्थ, अनुत्तम मणिकर्ण, तीर्थश्रेष्ठ घटोत्कच तीर्थ, श्रीतीर्थ, पितामह तीर्थ, गङ्गातीर्थ, देवेश तीर्थ, उत्तम ययातितीर्थ, कपिल तीर्थ, सोमेश तीर्थ तथा अनुत्तम ब्रह्मतीर्थमें गये॥ १—९॥

अत्र लिङ्गं पुरानीय ब्रह्मा स्नातुं यदा गतः।
तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम्॥ १०॥
ततः स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम्।
मयानीतमिदं लिङ्गं कस्मात् स्थापितवानसि॥ ११॥
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा मम।
तस्मात् प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति॥ १२॥

प्राचीन कालमें जब ब्रह्मा यहाँ (ब्रह्मतीर्थमें) लिङ्ग लाकर स्नान करने चले गये, तब विष्णुने उस ईश्वरके लिङ्गको यहाँ स्थापित कर दिया। जब स्नान करके ब्रह्मा आये तो उन्होंने विष्णुसे पूछा—मेरे द्वारा लाये गये इस लिङ्गको आपने क्यों स्थापित कर दिया। इसपर विष्णुने उनसे कहा—मेरी रुद्रमें आपसे भी अधिक दृढ़ भक्ति है, इसलिये मैंने लिङ्गको यहाँ प्रतिष्ठित कर दिया, यह आपके नामसे ही प्रसिद्ध होगा॥ १०—१२॥

भूतेश्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम्।
गन्धर्वतीर्थं परमं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम्॥ १३॥
दौर्वासिकं व्योमतीर्थं चन्द्रतीर्थं द्विजोत्तमाः।
चित्राङ्गदेश्वरं पुण्यं पुण्यं विद्याधरेश्वरम्॥ १४॥
केदारतीर्थमुग्राख्यं कालञ्जरमनुत्तमम्।
सारस्वतं प्रभासं च भद्रकर्णं ह्रदं शुभम्॥ १५॥
लौकिकाख्यं महीतीर्थं तीर्थं चैव महालयम्।
हिरण्यगर्भं गोप्रेक्ष्यं तीर्थं चैव वृषध्वजम्॥ १६॥
उपशान्तं शिवं चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम्।
त्रिलोचनं महातीर्थं लोलार्कं चोत्तराह्वयम्॥ १७॥
कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशकम्।
शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम्॥ १८॥
एवमादीनि तीर्थानि प्राधान्यात् कथितानि तु।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं तीर्थसंख्या द्विजोत्तमाः॥ १९॥
तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य पिनाकिनम्।
उपोष्य तत्र तत्रासौ पाराशर्यो महामुनिः॥ २०॥

द्विजोत्तमो! (व्यासजी पुनः आगे कहे जानेवाले तीर्थोंमें गये) भूतेश्वर तीर्थ, धर्मसमुद्भव तीर्थ, परम गन्धर्वतीर्थ, उत्तम वाह्नेयतीर्थ, दौर्वासिक तीर्थ, व्योमतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, पवित्र चित्राङ्गदेश्वरतीर्थ, पवित्र विद्याधरेश्वर तीर्थ, केदारतीर्थ, उग्र नामक तीर्थ, अनुत्तम कालञ्जर तीर्थ, सारस्वत तीर्थ, प्रभासतीर्थ, भद्रकर्णह्रद नामक शुभ तीर्थ, लौकिक नामक महातीर्थ, महालयतीर्थ, हिरण्यगर्भ तीर्थ, गोप्रेक्ष्य तीर्थ, वृषध्वजतीर्थ, उपशान्त तीर्थ, शिवतीर्थ, अनुत्तम व्याघ्रेश्वरतीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, महातीर्थ, लोलार्क तीर्थ, उत्तर नामक तीर्थ, ब्रह्महत्या-विनाशक कपालमोचन तीर्थ, महापवित्र शुक्रेश्वर तीर्थ और उत्तम आनन्दपुर तीर्थ आदि मुख्य-मुख्य तीर्थोंका वर्णन किया गया है, तीर्थोंकी संख्याका विस्तार नहीं बताया जा सकता। पराशरके पुत्र महामुनि (व्यास) इन सभी तीर्थोंमें स्नानकर पिनाकी (भगवान् शंकर)-की पूजाकर, वहाँ-वहाँ उपवासकर

तर्पयित्वा पितॄन् देवान् कृत्वा पिण्डप्रदानकम्।
जगाम पुनरेवापि यत्र विश्वेश्वरः शिवः॥ २१॥

स्नात्वाभ्यर्च्य परं लिङ्गं शिष्यैः सह महामुनिः।
उवाच शिष्यान् धर्मात्मा स्वान् देशान् गन्तुमर्हथ॥ २२॥

ते प्रणम्य महात्मानं जग्मुः पैलादयो द्विजाः।
वासं च तत्र नियतो वाराणस्यां चकार सः॥ २३॥

शान्तो दान्तस्त्रिषवणं स्नात्वाभ्यर्च्य पिनाकिनम्।
भैक्षाहारो विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायणः॥ २४॥
कदाचिद् वसता तत्र व्यासेनामिततेजसा।
भ्रममाणेन भिक्षा तु नैव लब्धा द्विजोत्तमाः॥ २५॥

ततः क्रोधावृततनुर्नराणामिह वासिनाम्।
विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्विहीयते॥ २६॥

तत्क्षणे सा महादेवी शंकरार्धशरीरिणी।
प्रादुरासीत् स्वयं प्रीत्या वेषं कृत्वा तु मानुषम्॥ २७॥

भो भो व्यास महाबुद्धे शप्तव्या भवता न हि।
गृहाण भिक्षां मत्तस्त्वमुक्त्वैवं प्रददौ शिवा॥ २८॥

उवाच च महादेवी क्रोधनस्त्वं भवान् यतः।
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं कृतघ्नोऽसि त्वया सदा॥ २९॥

एवमुक्तः स भगवान् ध्यानाज्ज्ञात्वा परां शिवाम्।
उवाच प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा च प्रवरैः स्तवैः॥ ३०॥

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं देहि शांकरि।
एवमस्त्वित्यनुज्ञाय देवी चान्तरधीयत॥ ३१॥
एवं स भगवान् व्यासो महायोगी पुरातनः।
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्श्वतः॥ ३२॥

एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं सेवन्ति पण्डिताः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः॥ ३३॥

देवताओं तथा पितरोंका तर्पणकर और उन्हें पिण्ड-दान कर पुनः वहीं गये, जहाँ विश्वेश्वर शिव स्थित हैं॥ १३—२१॥

शिष्योंके साथ धर्मात्मा महामुनिने स्नानकर उस परम (विश्वेश्वर) लिङ्गकी पूजा की और शिष्योंसे कहा—अब आप अपने-अपने स्थानोंको जा सकते हैं। द्विजो! महात्मा (व्यास)-को प्रणाम कर वे पैल आदि (शिष्य) चले गये और उन व्यासजीने नियमित-रूपसे वाराणसीमें वास किया। वे शान्त, जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा एवं ब्रह्मचर्य-परायण होकर तीनों संध्याओंमें स्नान करते थे तथा भिक्षाद्वारा प्राप्त आहार करते हुए पिनाकीकी आराधनामें लगे रहते थे॥ २२—२४॥

द्विजोत्तमो! वहाँ रहते हुए एक दिन अमित तेजस्वी व्यासजीको भ्रमण करते रहनेपर भी भिक्षा नहीं प्राप्त हुई। तब उनका शरीर क्रोधाविष्ट हो गया, (उन्होंने विचार किया कि) यहाँ रहनेवाले मनुष्योंके लिये ऐसे विघ्नकी सृष्टि करूँ, जिससे उनकी सिद्धि नष्ट हो जाय, पर तत्क्षण ही शंकरकी अर्धाङ्गिनी साक्षात् महादेवी (पार्वती) मानुष-वेष धारणकर प्रसन्न-मुद्रामें प्रकट हो गयीं। (और बोलीं—)॥ २५—२७॥

हे महाबुद्धिमान् व्यास! आप शाप न दें। आप मुझसे भिक्षा ग्रहण करें। ऐसा कहकर पार्वतीने (उन्हें) भिक्षा दी॥ २८॥

महादेवीने कहा—मुने! आप क्रोधी तथा कृतघ्न हैं, अतः आपको सदा इस क्षेत्रमें नहीं रहना चाहिये। ऐसा कहे जानेपर व्यासजीने ध्यानद्वारा 'ये श्रेष्ठ पार्वती हैं'—ऐसा समझकर प्रणाम किया और श्रेष्ठ स्तुतियोंसे स्तुति कर उनसे कहा—हे शंकरवल्लभे! चतुर्दशी तथा अष्टमीको यहाँ (वाराणसीमें) प्रवेश करने दें। 'ऐसा ही हो' ऐसी आज्ञा देकर देवी अन्तर्धान हो गयीं॥ २९—३१॥

इस प्रकार महायोगी भगवान् व्यासजी क्षेत्र (वाराणसी)-के सभी गुणों (विशेषताओं)-को समझते हुए उस (वाराणसी)-के पार्श्वभागमें रहने लगे। इस प्रकार व्यासजीको स्थित हुआ जानकर विद्वान् लोग (उस) क्षेत्रका सेवन करते हैं। अतः मनुष्यको सभी प्रयत्नकर वाराणसीमें निवास करना चाहिये॥ ३२-३३॥

सूत उवाच

यः पठेदविमुक्तस्य माहात्म्यं शृणुयादपि।
श्रावयेद् वा द्विजान् शान्तान् सोऽपि याति परां गतिम्॥ ३४॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहनि वा द्विजाः।
नदीनां चैव तीरेषु देवतायतनेषु च॥ ३५॥

स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जितः।
जपेदीशं नमस्कृत्य स याति परमां गतिम्॥ ३६॥

सूतजी बोले—जो अविमुक्त (क्षेत्र वाराणसी)-का माहात्म्य पढ़ता है, सुनता है अथवा शान्त द्विजोंको सुनाता है, वह भी परम गतिको प्राप्त करता है। द्विजो! जो स्नान करनेके अनन्तर श्राद्धमें, देवकार्यमें, रात अथवा दिनमें, नदियोंके किनारोंपर अथवा देवमन्दिरोंमें मनको एकाग्र कर दम्भ तथा मात्सर्यसे रहित होकर नमस्कारपूर्वक ईश (शिव)-का जप करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है॥ ३४—३६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

प्रयागका माहात्म्य, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-संवाद, प्रयागमें संगम स्नानका फल

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् तदुदीरितम्।
इदानीं तु प्रयागस्य माहात्म्यं ब्रूहि सुव्रत॥ १॥
यानि तीर्थानि तत्रैव विश्रुतानि महान्ति वै।
इदानीं कथयास्माकं सूत सर्वार्थविद् भवान्॥ २॥

ऋषियोंने कहा—सुव्रत! अविमुक्त (क्षेत्र वाराणसी)-के माहात्म्यका आपने भलीभाँति वर्णन किया। अब इस समय प्रयागका माहात्म्य बतलायें। सूतजी! आप समस्त अर्थोंको जाननेवाले हैं, अब आप वहाँ (प्रयाग)-के जो महान् प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उन्हें हमें बताइये॥ १-२॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे विस्तरेण ब्रवीमि वः।
प्रयागस्य च माहात्म्यं यत्र देवः पितामहः॥ ३॥
मार्कण्डेयेन कथितं कौन्तेयाय महात्मने।
यथा युधिष्ठिरायैतत् तद्वक्ष्ये भवतामहम्॥ ४॥

सूतजी बोले—ऋषियो! आप सभी सुनें। मैं विस्तारसे आप लोगोंको प्रयागका माहात्म्य बतलाता हूँ, जहाँ पितामह देव स्थित हैं। (महर्षि) मार्कण्डेयने कुन्तीके पुत्र महात्मा युधिष्ठिरसे जो कुछ कहा था, वही मैं आप लोगोंको बताता हूँ॥ ३-४॥

निहत्य कौरवान् सर्वान् भ्रातृभिः सह पार्थिवः।
शोकेन महताविष्टो मुमोह स युधिष्ठिरः॥ ५॥

अचिरेणाथ कालेन मार्कण्डेयो महातपाः।
सम्प्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे स तिष्ठति॥ ६॥

भाइयोंके साथ सभी कौरवोंको मारनेके उपरान्त राजा युधिष्ठिर महान् शोकसे आविष्ट होकर मोहसे ग्रस्त हो गये। तदनन्तर थोड़े ही समय बाद महान् तपस्वी मार्कण्डेय मुनि हस्तिनापुरमें आये और राजमहलके द्वारपर खड़े हो गये॥ ५-६॥

द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम्।
मार्कण्डेयो द्रष्टुमिच्छंस्त्वामास्ते द्वार्यसौ मुनिः॥ ७॥

त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमेत्याह तत्परम्।
स्वागतं ते महाप्राज्ञ स्वागतं ते महामुने॥ ८॥

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्।
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि तुष्टे महामुने॥ ९॥

उन्हें देखकर द्वारपालने भी शीघ्र जाकर राजा (युधिष्ठिर)-से कहा—आपके दर्शनकी इच्छासे मुनि मार्कण्डेय द्वारपर खड़े हैं। धर्मपुत्र युधिष्ठिर शीघ्र ही तत्परतापूर्वक द्वारपर गये और कहने लगे—महाप्राज्ञ! महामुने! आपका स्वागत है, स्वागत है। आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा कुल तर गया। महामुने! आपके प्रसन्न होनेपर आज मेरे पितृगण संतुष्ट हो गये॥ ७—९॥

सिंहासनमुपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः।
युधिष्ठिरो महात्मेति पूजयामास तं मुनिम्॥ १०॥

महात्मा युधिष्ठिरने उन मुनिको सिंहासनपर बैठाकर पादप्रक्षालन, पूजन इत्यादिके द्वारा उनका सम्मान किया॥ १०॥

मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टः प्रोवाच स युधिष्ठिरम्।
किमर्थं मुह्यसे विद्वन् सर्वं ज्ञात्वाहमागतः॥ ११॥

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्याह महामुनिम्।
कथय त्वं समासेन येन मुच्येत किल्बिषैः॥ १२॥

तब प्रसन्न होकर मार्कण्डेयने युधिष्ठिरसे कहा—विद्वन्! आप मोह क्यों कर रहे हैं? सभी कुछ जानकर ही मैं यहाँ आया हूँ। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने प्रणामकर महामुनिसे कहा—आप संक्षेपमें (कोई उपाय) बतलायें, जिससे मैं पापोंसे मुक्त हो सकूँ॥ ११-१२॥

निहता बहवो युद्धे पुंसो निरपराधिनः।
अस्माभिः कौरवैः सार्धं प्रसङ्गान्मुनिपुंगव॥ १३॥

येन हिंसासमुद्भूताज्जन्मान्तरकृतादपि।
मुच्यते पातकादस्मात् तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हमने (युद्धके) प्रसंगवश कौरवोंके साथ अनेक निरपराध मनुष्योंको युद्धमें मारा है, अतः आप वह (कोई उपाय) बतलायें, जिससे हिंसाजनित दोष एवं जन्मान्तरमें किये गये पापों तथा इस पापसे भी मुक्ति मिले॥ १३-१४॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणु राजन् महाभाग यन्मां पृच्छसि भारत।
प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पापनाशनम्॥ १५॥

तत्र देवो महादेवो रुद्रो विश्वामरेश्वरः।
समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भूरपि दैवतैः॥ १६॥

मार्कण्डेयने कहा—हे राजन्! भारत! महाभाग! आप जो मुझसे पूछते हैं उसे सुनें—मनुष्योंके लिये पापको नष्ट करने-हेतु प्रयागकी यात्रा करना श्रेष्ठ (उपाय) है। वहाँ सभी देवताओंके ईश्वर महादेव रुद्रदेव और स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा देवताओंके साथ विराजमान हैं॥ १५-१६॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम्।
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानामपि किं फलम्॥ १७॥

ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां तु किं फलम्।
भवता विदितं ह्येतत् तन्मे ब्रूहि नमोऽस्तु ते॥ १८॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! मैं सुनना चाहता हूँ कि प्रयाग जानेका क्या फल है? वहाँ मरनेवालोंकी कौन गति होती है और वहाँ स्नान करनेवालोंको क्या फल मिलता है? जो प्रयागमें निवास करते हैं, उन्हें क्या फल मिलता है, आपको यह सब कुछ ज्ञात है, अतः मुझे वह सब बतायें, आपको नमस्कार है॥ १७-१८॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स या चेष्टा यच्च तत्फलम्।
पुरा महर्षिभिः सम्यक् कथ्यमानं मया श्रुतम्॥ १९॥

एतत् प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ २०॥

तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः।
बहून्यन्यानि तीर्थानि सर्वपापापहानि तु॥ २१॥

कथितुं नेह शक्नोमि बहुवर्षशतैरपि।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्तनम्॥ २२॥

मार्कण्डेयने कहा—वत्स! प्राचीन कालमें महर्षियोंद्वारा कही गयी (प्रयागकी महिमा) एवं प्रयाग-निवासका फल आदि जो कुछ मैंने सुना है, उसे मैं भलीभाँति आपको बतलाऊँगा। यह प्रजापति-क्षेत्र तीनों लोकोंमें विख्यात है। यहाँपर स्नान करनेवाले स्वर्गलोकमें जाते हैं और जो यहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। यहाँ ब्रह्मा आदि देवता मिलकर (प्रयाग-निवासियोंकी) रक्षा करते हैं और सभी पापोंको दूर करनेवाले अन्य भी अनेक तीर्थ यहाँ हैं। मैं सैकड़ों वर्षोंमें भी उनका वर्णन नहीं कर सकता तथापि संक्षेपमें ही प्रयाग (-की महिमा)-का कीर्तन करता हूँ॥ १९—२२॥

षष्टिर्धनुःसहस्त्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्।
यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥ २३॥
प्रयागे तु विशेषेण स्वयं वसति वासवः।
मण्डलं रक्षति हरिः सर्वदेवैश्च सम्मितम्॥ २४॥
न्यग्रोधं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्॥ २५॥
स्वकर्मणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम्।
स्वल्पं स्वल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम्॥ २६॥
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥ २७॥
पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागं विशतः पुंसः पापं नश्यति तत्क्षणात्॥ २८॥
योजनानां सहस्त्रेषु गङ्गां यः स्मरते नरः।
अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्॥ २९॥
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
तथोपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोके महीयते॥ ३०॥
व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः।
गङ्गायमुनमासाद्य त्यजेत् प्राणान् प्रयत्नतः॥ ३१॥
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैर्भानुवर्णिभिः।
ईप्सितांल्लभते कामान् वदन्ति मुनिपुंगवाः॥ ३२॥
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः।
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणः॥ ३३॥
गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते।
यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते॥ ३४॥

साठ हजार धनुष जाह्नवी (गङ्गा)-की रक्षा करते हैं और सात अश्वोंको वाहन बनानेवाले सवितादेव सदा यमुनाकी रक्षा करते हैं। प्रयागमें विशेषरूपसे इन्द्र स्वयं निवास करते हैं। समस्त देवोंसे युक्त विष्णु प्रयागमण्डलकी रक्षा करते हैं॥ २३-२४॥

(प्रयागके विशाल) वटवृक्षकी रक्षा हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले महेश्वर नित्य करते हैं और सभी पापोंको हरनेवाले इस शुभ स्थानकी रक्षा सभी देवता करते हैं। हे नराधिप! जो लोग अपने कर्मोंसे घिरे हैं तथा जिनका छोटेसे भी छोटा पाप बचा रहता है, वे लोग उस मोक्ष-पदको प्राप्त नहीं करते, किंतु प्रयागका स्मरण करनेवालेका यह सभी कुछ (पाप एवं कर्म) नष्ट हो जाता है॥ २५-२६॥

इस (प्रयाग) तीर्थके दर्शन करनेसे, नामका संकीर्तन करनेसे अथवा यहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे भी मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! यहाँ (प्रयागमें) पाँच कुण्ड हैं, जिनके बीचमें जाह्नवी (गङ्गा) स्थित है। प्रयागमें प्रवेश करनेवालेका पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है। सहस्त्रों योजन दूरसे भी जो मनुष्य गङ्गाका स्मरण करता है, वह दुष्कृत करनेवाला होनेपर भी परम गतिको प्राप्त करता है॥ २७—२९॥

हे राजेन्द्र! (प्रयागका नाम-) कीर्तन करनेसे (मनुष्य) पापसे मुक्त हो जाता है और इसका दर्शन करनेसे (उसे सर्वत्र) मङ्गल-ही-मङ्गल दिखलायी पड़ता है तथा यहाँ आचमन (इसके जलसे स्नान) करनेसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है॥ ३०॥

कोई मनुष्य व्याधिग्रस्त हो, दीन हो अथवा क्रुद्ध हो, यदि वह प्रयत्नपूर्वक गङ्गा-यमुनाके समीप पहुँचकर प्राण-त्याग करता है तो वह सूर्यके समान उद्दीप्त, स्वर्णिम आभावाले विमानोंसे युक्त होकर अभीष्ट पदार्थोंको प्राप्त करता है—ऐसा श्रेष्ठ मुनिजनोंका कहना है॥ ३१-३२॥

वह शुभ लक्षणोंवाला (मनुष्य) सभी रत्नोंसे युक्त अनेक प्रकारकी दिव्य ध्वजाओंसे परिपूर्ण और वराङ्गनाओंसे समन्वित होकर आनन्दित होता है। शयन करनेपर वह गीत और वाद्यकी ध्वनिसे जगाया जाता है, जबतक वह जन्मका स्मरण नहीं करता, तबतक स्वर्गमें प्रतिष्ठित रहता है॥ ३३-३४॥

तस्मात् स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा नरोत्तम।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले॥ ३५॥

तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति।
देशस्थो यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे॥ ३६॥

प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुंगवाः॥ ३७॥

सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी।
ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति॥ ३८॥
स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे।
मोदते मुनिभिः सार्धं स्वकृतेनेह कर्मणा॥ ३९॥

सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्॥ ४०॥

ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः।
गुणवान् वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः।
कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः॥ ४१॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्रामं प्रतीच्छति।
सुवर्णमथ मुक्तां वा तथैवान्यान् प्रतिग्रहान्॥ ४२॥

स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं यावत् तत्फलमश्नुते॥ ४३॥

अतस्तीर्थे न गृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च।
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो द्विजो भवेत्॥ ४४॥
कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलकण्ठां पयस्विनीम्॥ ४५॥

यावद्रोमाणि तस्या वै सन्ति गात्रेषु सत्तम।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ ४६॥

नरोत्तम! (पुण्य) कर्मोंके क्षीण होनेपर स्वर्गसे च्युत होकर वह स्वर्ण तथा रत्नोंसे परिपूर्ण समृद्ध कुलमें जन्म लेता है और इसी तीर्थ (प्रयाग)-का स्मरण करता है। स्मरण होनेपर पुनः वहाँ जाता है। अपने देश, विदेश, अरण्य अथवा घरमें जो प्रयागका स्मरण करते हुए प्राणोंका परित्याग करता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है, ऐसा श्रेष्ठ मुनि कहते हैं। वह उस लोकमें जाता है, जहाँके सभी वृक्ष इच्छानुसार फल देते हैं, जहाँकी भूमि स्वर्णमयी है और जहाँ ऋषि, मुनि तथा सिद्धजन रहते हैं॥ ३५—३८॥

अपने किये कर्मोंके कारण वह सहस्रों स्त्रियोंसे रमणीय मन्दाकिनीके शुभ तटपर मुनियोंके साथ आनन्द प्राप्त करता है। वह स्वर्गमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा देवताओंसे पूजित होता है, तदनन्तर स्वर्गसे च्युत होनेपर वह (पुरुष) जम्बूद्वीपका स्वामी होता है। तदुपरान्त वह बार-बार शुभ कर्मोंका चिन्तन करता हुआ गुणवान् तथा धनसम्पन्न हो जाता है और मन, वाणी तथा कर्मसे सत्यधर्मपर प्रतिष्ठित रहता है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३९—४१॥

जो व्यक्ति स्वकार्य, पितृकार्य अथवा देवताकी पूजा करते समय गङ्गा और यमुनाके मध्यमें ग्राम, सुवर्ण, मोती या अन्य कोई पदार्थ प्रतिग्रह (दान)-में लेता है, उसे तीर्थका पुण्य उस समयतक नहीं मिलता है, जबतक वह दानमें लिये हुए पदार्थका भोग करता रहता है[1]। अतः तीर्थों तथा पवित्र मन्दिरोंमें दान नहीं लेना चाहिये। द्विजको सभी प्रकारके प्रयोजनोंमें सावधान रहना चाहिये॥ ४२—४४॥

श्रेष्ठ (युधिष्ठिर)! जो व्यक्ति (प्रयागमें) कपिल अथवा पाटलवर्णकी, सुवर्णमण्डित सींगवाली, रजतमण्डित खुरोंवाली, वस्त्रसे आच्छादित कण्ठवाली पयस्विनी गायका दान करता है, वह उतने हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें पूजित होता है, जितने उस गायके शरीरमें रोम होते हैं॥ ४५-४६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३४॥

१-इसका तात्पर्य यह है कि तीर्थमें निवास अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ही होता है, अतः लोभरहित होकर अनासक्त-भावसे तीर्थमें निवास करना चाहिये। इसीलिये तीर्थमें यदि कोई लोभवश या आसक्तिवश दान लेता है तो यह प्रतिग्रह लोभको बढ़ायेगा तथा अन्तःकरणकी शुद्धिमें बाधक होगा। अतः दाताके कल्याणमात्रके लिये भले ही दान लिया जाय, पर लोभवश दान नहीं लेना चाहिये। साथ ही जप-तप आदि प्रायश्चित्तद्वारा इसका निराकरण भी करना चाहिये।

पैंतीसवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य, प्रयागके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा, त्रिपथगा गङ्गाका माहात्म्य, गङ्गास्नानका फल

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिक्रमम्।
आर्षेण तु विधानेन यथा दृष्टं यथा श्रुतम्॥ १ ॥
प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्।
बलीवर्दं समारूढः शृणु तस्यापि यत्फलम्॥ २ ॥

नरके वसते घोरे समाः कल्पशतायुतम्।
ततो निवर्तते घोरो गवां क्रोधो हि दारुणः।
सलिलं च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः॥ ३ ॥

यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा।
यथात्मना तथा सर्वान् दानं विप्रेषु दापयेत्॥ ४ ॥

ऐश्वर्याल्लोभमोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत्॥ ५ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति।
आर्षेण तु विवाहेन यथाविभवविस्तरम्॥ ६ ॥

न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।
उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्॥ ७ ॥
वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ ८ ॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः।
लोकपालाश्च सिद्धाश्च पितरो लोकसम्मताः॥ ९ ॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे।
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च तथा नित्यं समासते।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः॥ १० ॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ११ ॥

मार्कण्डेयने कहा—वत्स! ऋषियोंके द्वारा प्रतिपादित विधानके अनुसार तीर्थयात्राकी विधिके क्रमको मैंने जैसे देखा और सुना, वह तुमसे कहता हूँ॥ १॥

प्रयागतीर्थकी यात्रा करनेवाला कोई मनुष्य यदि कहीं बैलपर आरूढ़ होकर गमन करता है तो उसका भी फल सुनो— वह व्यक्ति दस हजार कल्पोंतक घोर नरकमें वास करता है, क्योंकि गौका भयंकर दारुण क्रोध इसके बाद ही दूर होता है। बैलको सवारी बनानेवाले मनुष्यके पितर उसका (तर्पण आदिमें दिया) जल ग्रहण नहीं करते हैं। जो अपने सभी पुत्रों एवं बालकोंको अपने ही समान यहाँ (प्रयागमें) स्नान कराता है तथा उन्हें (गङ्गा-यमुनाका) जल पिलाता है और उनके हाथों ब्राह्मणोंको दान कराता है (उसे उत्तम गति प्राप्त होती है)। जो मनुष्य ऐश्वर्य, लोभ या मोहवश यानद्वारा (तीर्थमें) जाता है, उसकी वह तीर्थयात्रा निष्फल होती है, इसलिये (तीर्थयात्रामें) यानका परित्याग करना चाहिये॥ २—५॥

जो व्यक्ति गङ्गा-यमुनाके मध्य आर्ष विवाहपद्धतिसे अपने ऐश्वर्यके अनुकूल धनका व्ययकर कन्याका दान करता है, वह उस कर्मके कारण घोर नरकका दर्शन नहीं करता और उत्तर कुरुमें जाकर अनन्त कालतक आनन्दोपभोग करता है॥ ६-७॥

(प्रयागमें अक्षय) वटवृक्षके नीचे जाकर जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी लोकोंका अतिक्रमण कर रुद्रलोकको जाता है। वहाँ ब्रह्मा आदि देवता दिक्पालोंसहित दिशाएँ, लोकपाल, सिद्ध, लोकमें मान्य पितर, सनत्कुमार आदि प्रमुख तथा दूसरे ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण एवं सिद्धगण तथा भगवान् हरि और प्रजापति प्रभृति नित्य निवास करते हैं॥ ८—१०॥

गङ्गा-यमुनाके मध्यको पृथ्वीका जघन[1] कहा गया है। हे राजशार्दूल! प्रयाग तीनों लोकोंमें विख्यात है॥ ११॥

१-नाभिके नीचेका स्त्रियोंका कोमल भाग जघन है।

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे संशितव्रतः।
तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥ १२॥

वहाँ (गङ्गा-यमुनाके) संगमपर जो कठोर व्रत धारणकर अभिषेक—स्नान करता है, वह अश्वमेध तथा राजसूय-यज्ञोंके समान फल प्राप्त करता है॥ १२॥

न मातृवचनात् तात न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति॥ १३॥

दश तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापरे।
तेषां सांनिध्यमत्रैव तीर्थानां कुरुनन्दन॥ १४॥

या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे॥ १५॥

न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन् यत्र तत्र युधिष्ठिर।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १६॥

हे तात! माताके कहने अथवा अन्य लोगोंके कहनेपर भी प्रयाग जानेकी बुद्धिका उत्क्रमण (परित्याग) नहीं करना चाहिये[1]। हे कुरुनन्दन! यहाँपर प्रमुख दस हजार तीर्थ तथा साठ करोड़ दूसरे तीर्थोंका सांनिध्य है। योगयुक्त सत्त्वगुणी मनीषीकी जो गति होती है, वही गति गङ्गा-यमुनाके संगमपर प्राण त्याग करनेवालेकी होती है। हे युधिष्ठिर! तीनों लोकोंमें विख्यात प्रयागमें जो नहीं पहुँचते, जहाँ-कहीं भी निवास करनेवाले वे लोग इस संसारमें जीवित रहते हुए भी मृतकके तुल्य हैं॥ १३—१६॥

एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा॥ १७॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः॥ १८॥

इस प्रकार परम पदरूप इस प्रयागतीर्थका दर्शनकर मनुष्य सभी पापोंसे उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे चन्द्रमा राहुसे मुक्त हो जाता है। यमुनाके दक्षिण किनारेपर कम्बल और अश्वतर नामक दो नाग स्थित हैं। वहाँ स्नान करने और जल पीनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है॥ १७-१८॥

तत्र गत्वा नरः स्थानं महादेवस्य धीमतः।
आत्मानं तारयेत् पूर्वं दशातीतान् दशापरान्॥ १९॥

कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाहूतसम्प्लवम्॥ २०॥

धीमान् महादेवके उस स्थानपर जाकर मनुष्य अपनेको तथा दस पूर्वकी और दस बादकी सभी पीढ़ियोंको तार देता है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेधका फल प्राप्त करता है तथा महाप्रलयपर्यन्त स्वर्गलोक प्राप्त करता है॥ १९-२०॥

पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रैलोक्ये ख्यातिमान् नृप।
अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानं च विश्रुतम्॥ २१॥

ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ २२॥

उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यतः।
हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ २३॥

अश्वमेधफलं तत्र स्मृतमात्रात् तु जायते।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते॥ २४॥

हे राजन्! गङ्गाके पूर्वी तटपर तीनों लोकोंमें विख्यात सर्वसामुद्र नामक गह्वर तथा प्रतिष्ठान प्रसिद्ध है। वहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक तथा क्रोधजयी होकर तीन रात्रि निवास करनेवाला (मनुष्य) सभी पापोंसे निर्मुक्त होकर अश्वमेधका फल प्राप्त करता है। प्रतिष्ठान नामक स्थानके उत्तर तथा भागीरथीकी बायीं ओर तीनों लोकोंमें विख्यात हंसप्रपतन नामक तीर्थ है। उसके स्मरणमात्रसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है और (वहाँ जानेवाला व्यक्ति) जबतक सूर्य एवं चन्द्रमा हैं, तबतक स्वर्गमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २१—२४॥

१-इसका तात्पर्य प्रयागमें निवास करनेसे है न कि माता आदि गुरुजनोंके वचनका उल्लंघन करनेमें।

उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे।
परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ २५॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
आस्ते स पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप॥ २६॥

अथ संध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
नरः शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ २७॥

कोटितीर्थं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ २८॥

यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोवना।
सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा॥ २९॥

क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः।
दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता॥ ३०॥

जो व्यक्ति उर्वशीके[1] हंसके समान अति धवल रम्य, विस्तृत तटपर प्राणोंका परित्याग करता है, उसका भी जो फल है, वह सुनो—हे नराधिप! वह व्यक्ति साठ हजार साठ सौ वर्षोंतक पितरोंके साथ स्वर्गलोकमें निवास करता है। रमणीय संध्यावट (प्रयागके वट-विशेष)-के नीचे जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक पवित्रतासे उपासना करता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। जो कोटितीर्थ (प्रयागमें स्थित तीर्थ)-में पहुँचकर प्राणोंका परित्याग करता है, वह हजार करोड़ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जहाँ बहुतसे तीर्थों एवं तपोवनोंसे युक्त महाभागा गङ्गा विद्यमान हैं, उस क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र जानना चाहिये, इसमें किसी भी प्रकारका विचार (संशय) करना उचित नहीं है। गङ्गा पृथ्वीपर मनुष्योंको तारती हैं, नीचे पाताल लोकमें नागोंको तारती है और द्युलोकमें देवताओंको तारती है, इसलिये यह त्रिपथगा कही जाती है॥ २५—३०॥

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ३१॥

तीर्थानां परमं तीर्थं नदीनां परमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥ ३२॥

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे॥ ३३॥

सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्।
गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः॥ ३४॥

जितने वर्षतक पुरुषकी अस्थियाँ गङ्गामें रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। (गङ्गा) सभी तीर्थोंमें परम तीर्थ और नदियोंमें श्रेष्ठ नदी है, वह सभी प्राणियों, यहाँतक कि महापातकियोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाली है। गङ्गा (स्नान) सर्वत्र सुलभ होनेपर भी गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग एवं गङ्गासागर—इन तीन स्थानोंमें दुर्लभ होती है। (उत्तम) गतिकी इच्छा करनेवाले तथा पापसे उपहत चित्तवाले सभी प्राणियोंके लिये गङ्गाके समान और कोई दूसरी गति नहीं है॥ ३१—३४॥

पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्।
माहेश्वरात् परिभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥ ३५॥

कृते युगे तु तीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥ ३६॥

गङ्गामेव निषेवेत प्रयागे तु विशेषतः।
नान्यत् कलियुगोद्भूतं मलं हन्तुं सुदुष्कृतम्॥ ३७॥

यह सभी पवित्र वस्तुओंसे अधिक पवित्र और सभी मङ्गलकारी पदार्थोंसे अधिक माङ्गलिक है। महेश्वर (-के मस्तक)-से होकर इस लोकमें आनेके कारण यह सभी पापोंका हरण करनेवाली और शुभ है। सत्ययुगमें अनेक तीर्थ होते हैं, त्रेताका श्रेष्ठ तीर्थ पुष्कर है, द्वापरका कुरुक्षेत्र है और कलियुगमें गङ्गाकी ही विशेषता है। गङ्गाकी ही सेवा करनी चाहिये, विशेष-रूपसे प्रयागमें गङ्गाकी सेवा करनी चाहिये। कलियुगमें उत्पन्न अत्यन्त कठिन पापको दूर करनेमें कोई अन्य तीर्थ समर्थ नहीं है॥ ३५—३७॥

१-प्रयाग-संगमके समीप कोई तट-विशेष।

अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते।
स मृतो जायते स्वर्गे नरकं च न पश्यति॥ ३८॥

इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक जो गङ्गामें मृत्यु प्राप्त करता है, वह मृत व्यक्ति स्वर्ग जाता है और नरकका दर्शन नहीं करता॥ ३८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य, माघमासमें संगमस्नानका फल, त्रिमाघीकी महिमा, प्रयागमें प्राण-त्याग करनेका फल

मार्कण्डेय उवाच

षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च।
माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमम्॥ १॥
गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम्।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य तत् फलम्॥ २॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कार्षाग्निं यस्तु साधयेत्।
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥ ३॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु मानद।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ४॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ ५॥

मार्कण्डेयने कहा—(युधिष्ठिर!) गङ्गा और यमुनाके संगमपर माघ महीनेमें साठ हजार साठ सौ तीर्थ जाते हैं। सौ हजार गौओंका भलीभाँति दान करनेका जो फल होता है, वही फल प्रयागमें माघमासमें तीन दिन स्नान करनेका होता है। गङ्गा और यमुनाके संगमपर जो करीषाग्निका[1] सेवन करता है, वह अहीनाङ्ग (हीन अङ्गसे रहित) अर्थात् सम्पूर्ण अवयवोंसे सम्पन्न, रोगरहित तथा पाँचों इन्द्रियोंसे युक्त होता है॥ १—३॥

मान देनेवाले (युधिष्ठिर)! उस मनुष्यके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। तदनन्तर स्वर्गसे भ्रष्ट होनेपर वह जम्बूद्वीपका स्वामी होता है और विपुल भोगोंका उपभोग करनेके अनन्तर वह पुनः इस तीर्थ (प्रयाग)-को प्राप्त करता है॥ ४-५॥

जलप्रवेशं यः कुर्यात् संगमे लोकविश्रुते।
राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तः सर्वपातकैः॥ ६॥
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते।
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च॥ ७॥
स्वर्गतः शक्रलोकेऽसौ मुनिगन्धर्वसेवितः।
ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले॥ ८॥
अधःशिरास्त्वयोधारामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः।
शतं वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ९॥

(गङ्गा-यमुनाके) लोक-प्रसिद्ध संगमपर जो जलमें प्रवेश करता है, वह जिस प्रकार राहुसे ग्रस्त चन्द्रमा मुक्त हो जाता है, वैसे ही सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह चन्द्रलोकमें जाता है और साठ हजार साठ सौ वर्षोंतक चन्द्रमाके साथ आनन्दोपभोग करता है। हे राजेन्द्र! तदुपरान्त मुनियों एवं गन्धर्वोंसे सेवित वह स्वर्गलोकसे इन्द्रलोकमें जाता है और वहाँसे भ्रष्ट होनेपर इस लोकमें आकर धनवानोंके कुलमें जन्म लेता है। जो मनुष्य (यहाँ प्रयागमें) पैर ऊपर और सिर नीचे करके लोहेकी धाराका पान (तपस्या- विशेष) करता है, वह सौ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है॥ ६—९॥

[1] १-करीष—सूखा गोमय। इससे अग्नि बनाकर उसके मध्य तपस्या करना।

तस्माद् भ्रष्टस्तु राजेन्द्र अग्निहोत्री भवेन्नरः।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १०॥

य: स्वदेहं विकर्तेद् वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति।
विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम्॥ ११॥

राजेन्द्र! वहाँसे भ्रष्ट होनेपर वह मनुष्य अग्निहोत्री होता है और विपुल भोगोंका उपभोग करके पुनः इस (प्रयाग) तीर्थका सेवन करता है। जो अपना शरीर काटता[1] है अथवा पक्षियोंको देता है, ऐसे पक्षियोंद्वारा खाये गये (मांसवाले) उस पुरुषको भी जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो—॥ १०-११॥

शतं वर्षसहस्राणि सोमलोके महीयते।
ततस्तस्मात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥ १२॥

गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वान् सुप्रियवाक्यवान्।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १३॥

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य तु दक्षिणे।
ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं तु परमं स्मृतम्॥ १४॥

एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैस्तत्र प्रमुच्यते।
सूर्यलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत्॥ १५॥

वह सौ हजार वर्षोंतक चन्द्रलोकमें पूजित होता है, तदनन्तर वहाँसे च्युत होनेपर धार्मिक, गुणवान्, रूपसम्पन्न, विद्वान् और सुन्दर तथा प्रिय वचन बोलनेवाला राजा होता है एवं विपुल भोगोंको भोगकर पुनः इस तीर्थका सेवन करता है। प्रयागके दक्षिणमें यमुनाके उत्तरी तटपर ऋणप्रमोचन नामका एक श्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है। वहाँ स्नानकर एकरात्रिपर्यन्त निवास करनेवाला पुरुष ऋणोंसे मुक्त हो जाता है, सूर्यलोक प्राप्त करता है तथा सदाके लिये ऋणमुक्त हो जाता है॥ १२—१५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य, यमुनाकी महिमा, यमुनाके तटवर्ती तीर्थोंका वर्णन, गङ्गामें सभी तीर्थोंकी स्थिति, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-संवादकी समाप्ति

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा॥ १॥

येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुना गता।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥ २॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्॥ ३॥

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं त्वनरकं स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ४॥

मार्कण्डेयने कहा—(राजन् युधिष्ठिर!) सूर्यकी तीनों लोकोंमें विख्यात पुत्री महाभागा देवी यमुना नदी यहाँपर मिली हैं। जिस मार्गसे गङ्गा प्रवाहित हुई हैं, उस मार्गसे यमुना भी गयी हैं। सहस्रों योजन दूरपर भी (यमुना) नाम लेनेसे पापोंको नष्ट कर देनेवाली है। युधिष्ठिर! इस यमुनामें स्नान करने तथा इसका जल पीनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर अपने सात पीढ़ियोंके कुलोंको पवित्र कर देता है। जो यहाँ प्राणोंका परित्याग करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। यमुनाके दक्षिणी तटपर अग्नितीर्थ नामका एक विख्यात तीर्थ है। यमुनाके पश्चिमी भागमें धर्मराजका 'अनरक'[2] नामक तीर्थ कहा गया है। यहाँ स्नान करनेवाले स्वर्ग जाते हैं और जो यहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता॥ १—४॥

१-ज्ञानकी पराकाष्ठामें शरीरके प्रति ममताका सर्वथा अभाव हो जाता है। ऐसी स्थितिमें शरीरका काटना या अपने शरीरका मांस पक्षियोंको समर्पित करना (प्राणि-कल्याण-बुद्धिमात्रसे) विशेष तप है। दधीचि, शिवि, जीमूतवाहन आदिके दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं।

२-न नरक=अनरक इस तीर्थमें स्नान आदि करनेसे नरकमें नहीं जाना पड़ता, इसलिये इसका नाम 'अनरक' है।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नात्वा संतर्पयेच्छुचिः।
धर्मराजं महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ५॥

दश तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः।
प्रयागे संस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिणः॥ ६॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥ ७॥

यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत् तपोवनम्।
सिद्धिक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम्॥ ८॥

यत्र देवो महादेवो देव्या सह महेश्वरः।
आस्ते वटेश्वरो नित्यं तत् तीर्थं तत् तपोवनम्॥ ९॥

इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च।
सुहृदां च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य तु॥ १०॥
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं सुखम्।
इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम्॥ ११॥

महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम्।
अत्राधीत्य द्विजोऽध्यायं निर्मलत्वमवाप्नुयात्॥ १२॥

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः।
जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते॥ १३॥

प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव॥ १४॥
एवमुक्त्वा स भगवान् मार्कण्डेयो महामुनिः।
तीर्थानि कथयामास पृथिव्यां यानि कानिचित्॥ १५॥

भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणं ज्योतिषां स्थितम्।
पृष्टः प्रोवाच सकलमुक्त्वाथ प्रययौ मुनिः॥ १६॥

य इदं कल्यमुत्थाय पठतेऽथ शृणोति वा।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥ १७॥

यहाँ (अनरक तीर्थमें) कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको स्नान करके पवित्रतापूर्वक जो धर्मराजका तर्पण करता है, वह निस्संदेह महापापोंसे मुक्त हो जाता है। मनीषी लोगोंका यह कहना है कि प्रयागमें दस हजार (प्रधान) तीर्थ और तीस करोड़ दूसरे (अप्रधान) तीर्थ स्थित हैं॥ ५-६॥

वायुने कहा है कि द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं और जाह्नवी उन सभी तीर्थोंसे युक्त कही गयी है। जहाँ महाभागा गङ्गा होती हैं, वही (पवित्र) देश है और वही तपोवन होता है। गङ्गाके तटपर स्थित उस स्थानको सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिये। जहाँ देवीके साथ महादेव महेश्वरदेव वटेश्वर[1] स्थित हैं, वह स्थान नित्य तीर्थ है और वह तपोवन है। इस सत्यको द्विजातियों, साधुओं, मित्रों, अपने पुत्र तथा अनुगामी शिष्यके कानमें कहना चाहिये॥ ७—१०॥

यह (प्रयाग) धन्य है, स्वर्गफलप्रद (स्वर्गरूप फलको देनेवाला) है, यह पवित्र, सुख, पुण्य, रमणीय, पावन और उत्तम धर्मयुक्त है। यह महर्षियोंके लिये गोपनीय रहस्य है। सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है। यहाँ द्विज वेदका स्वाध्याय कर निर्मल हो जाता है। जो व्यक्ति नित्य पवित्रतापूर्वक इस पुण्यप्रद तीर्थका वर्णन सुनता है, वह जन्मान्तरकी बातोंको स्मरण करनेवाला हो जाता है और स्वर्गलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। शिष्ट मार्गका अनुसरण करनेवाले सज्जन पुरुष ऐसे तीर्थोंमें जाते हैं। कुरुके वंशधर (युधिष्ठिर)! तीर्थोंमें स्नान करो। इस विषयमें विपरीत बुद्धिवाले मत होओ॥ ११—१४॥

ऐसा कहकर उन भगवान् मार्कण्डेय महामुनिने (युधिष्ठिरके द्वारा) पूछे जानेपर पृथ्वीमें जो कोई भी तीर्थ थे उन्हें बतलाया और पृथ्वी तथा समुद्र आदिकी स्थिति एवं नक्षत्रोंकी स्थितिका सम्पूर्ण वर्णन कर वे मुनि चले गये॥ १५-१६॥

प्रात:काल उठकर जो इस (प्रयाग-माहात्म्य)-का पाठ करता है अथवा इसे सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमें जाता है॥ १७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७॥

१-प्रयागमें स्थित विशाल वटवृक्षके नीचे प्रतिष्ठित लिङ्ग वटेश्वर लिङ्ग है।

अड़तीसवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णनमें राजा प्रियव्रतके वंशका वर्णन, प्रियव्रतके पुत्र राजा अग्नीध्रके वंशका वर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपोंका तथा वर्षोंका वर्णन, जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमें राजा अग्नीध्रके नाभि, किंपुरुष आदि नौ पुत्रोंका आधिपत्य

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामतिम्।
पप्रच्छुरुत्तरं सूतं पृथिव्यादिविनिर्णयम्॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सूत सर्गः स्वायम्भुवः शुभः।
इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्रिलोकस्यास्य मण्डलम्॥ २ ॥

यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः।
वनानि सरितः सूर्यग्रहाणां स्थितिरेव च॥ ३ ॥

यदाधारमिदं कृत्स्नं येषां पृथ्वी पुरा त्वियम्।
नृपाणां तत्समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥ ४ ॥

सूत उवाच

वक्ष्ये देवादिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
नमस्कृत्वाप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता॥ ५ ॥

स्वायम्भुवस्य तु मनोः प्रागुक्तो यः प्रियव्रतः।
पुत्रस्तस्याभवन् पुत्राः प्रजापतिसमा दश॥ ६ ॥

अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमांस्तथा।
मेधा मेधातिथिर्हव्यः सवनः पुत्र एव च॥ ७ ॥

ज्योतिष्मान् दशमस्तेषां महाबलपराक्रमः।
धार्मिको दाननिरतः सर्वभूतानुकम्पकः॥ ८ ॥

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः।
जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दधिरे मतिम्॥ ९ ॥

प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद् वै सप्तद्वीपेषु सप्त तान्।
जम्बूद्वीपेश्वरं पुत्रमग्नीध्रमकरोन्नृपः॥ १०॥

प्लक्षद्वीपेश्वरश्चैव तेन मेधातिथिः कृतः।
शाल्मलेशं वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान्॥ ११॥

ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः।
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्॥ १२॥

शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः।
पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं च प्रजापतिः॥ १३॥

श्रीकूर्मने कहा—ऐसा कहे जानेपर नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले मुनियोंने महाबुद्धिमान् सूतजीसे पृथ्वी आदिके सम्बन्धमें निर्णय पूछा—॥ १॥

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी! आपने स्वायम्भुव मन्वन्तरकी शुभ सृष्टिको बतलाया, अब इस समय हम लोग त्रैलोक्य-मण्डलका वर्णन सुनना चाहते हैं। जितने सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन तथा नदियाँ हैं और सूर्य आदि ग्रहोंकी जो स्थिति है, इन सभीका वर्णन करें। हे सूतजी! यह सब कुछ जिसके आधारपर टिका है और प्राचीन कालमें यह पृथ्वी जिन राजाओंके अधिकारमें रही है, उन सभी विषयोंका संक्षेपमें आप वर्णन करें॥ २—४॥

सूतजीने कहा—देवोंके आदिदेव, अप्रमेय, प्रभविष्णु विष्णुको नमस्कार कर मैं उन धीमान्‌द्वारा जो कुछ कहा गया है, उसे बताता हूँ—॥ ५॥

पूर्वमें स्वायम्भुव मनुके जिस प्रियव्रत नामक पुत्रका वर्णन किया गया है उस (प्रियव्रत)-को प्रजापतिके समान दस पुत्र हुए। अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, हव्य, सवन और पुत्र तथा महान् बलशाली एवं पराक्रमी, धार्मिक, दानपरायण और सभी प्राणियोंपर दया करनेवाला ज्योतिष्मान् नामक दसवाँ पुत्र था। मेधा, अग्निबाहु तथा पुत्र—ये तीनों योगपरायण थे। पूर्वजन्मोंका स्मरण करनेवाले इन महाभाग्यशालियों (विरक्तों)-का मन राज्यकार्यमें नहीं लगा। (अतः) प्रियव्रतने (अपने अन्य) उन सात पुत्रोंको सात द्वीपोंमें अभिषिक्त कर दिया। राजाने अग्नीध्र नामक पुत्रको जम्बूद्वीपका स्वामी बनाया। उन्होंने मेधा-तिथिको प्लक्षद्वीपका राजा बनाया और वपुष्मान्‌को शाल्मलि-द्वीपमें राजाके रूपमें अभिषिक्त किया॥ ६—११॥

प्रभु (प्रियव्रत)-ने ज्योतिष्मान्‌को कुशद्वीपका राजा बनाया और द्युतिमान्‌को क्रौञ्चद्वीपका राजा बननेका आदेश दिया। प्रजापति प्रियव्रतने हव्यको शाकद्वीपका स्वामी बनाया और सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति बनाया॥ १२-१३॥

पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत्।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ॥ १४॥
महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्डमुच्यते॥ १५॥
शाकद्वीपेश्वरस्याथ हव्यस्याप्यभवन् सुताः।
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः।
कुसुमोत्तरोऽथ मोदाकिः सप्तमः स्यान्महाद्रुमः॥ १६॥
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते।
कुमारस्य तु कौमारं तृतीयं सुकुमारकम्॥ १७॥

मणीचकं चतुर्थं तु पञ्चमं कुसुमोत्तरम्।
मोदाकं षष्ठमित्युक्तं सप्तमं तु महाद्रुमम्॥ १८॥

क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि सुता द्युतिमतोऽभवन्।
कुशलः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु मनोहरः॥ १९॥

उष्णस्तृतीयः सम्प्रोक्तश्चतुर्थः प्रवरः स्मृतः।
अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिश्चैव सप्तमः।
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः॥ २०॥

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैवासन् महौजसः।
उद्भेदो वेणुमांश्चैवाश्वरथो लम्बनो धृतिः।
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः॥ २१॥
स्वनामचिह्नितान् यत्र तथा वर्षाणि सुव्रताः।
ज्ञेयानि सप्त तान्येषु द्वीपेष्वेवं नयो मतः॥ २२॥
शाल्मलद्वीपनाथस्य सुताश्चासन् वपुष्मतः।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सप्तमः सुप्रभो मतः॥ २३॥
प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्त मेधातिथेः सुताः।
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां शिशिरश्च सुखोदयः।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा॥ २४॥
प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः शाकद्वीपान्तिकेषु वै।
वर्णाश्रमविभागेन स्वधर्मो मुक्तये द्विजाः॥ २५॥
जम्बूद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रास्त्वासन् महाबलाः।
अग्नीध्रस्य द्विजश्रेष्ठास्तन्नामानि निबोधत॥ २६॥
नाभिः किंपुरुषश्चैव तथा हरिरिलावृतः।
रम्यो हिरण्वांश्च कुरुर्भद्राश्वः केतुमालकः॥ २७॥

जम्बूद्वीपेश्वरो राजा स चाग्नीध्रो महामतिः।
विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्यायं ददौ पुनः॥ २८॥

पुष्करमें सवनको भी महावीत तथा धातकि नामक दो पुत्र हुए। पुत्रवानोंके पुत्रोंमें ये दोनों ही पुत्र श्रेष्ठ थे। उन महात्मा (महावीत)-के नामसे उस वर्षको महावीतवर्ष कहा गया है और धातकिके भी नामसे धातकिखण्ड कहा जाता है। शाकद्वीपके राजा हव्यको जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुसुमोत्तर तथा मोदाकि एवं सातवाँ महाद्रुम नामक पुत्र हुआ॥ १४—१६॥

(इन सातों पुत्रोंके राज्यक्षेत्र इनके नामसे एक-एक वर्ष कहलाये—इसीलिये) जलदका जलद नामक प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमारका कौमार नामक वर्ष, इसी प्रकार तीसरा सुकुमारक (वर्ष), चौथा मणीचक, पाँचवाँ कुसुमोत्तर, छठा मोदाक और सातवाँ महाद्रुम नामक वर्ष है। क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान्‌को भी पुत्र हुए। उनमें कुशल पहला, मनोहर दूसरा, उष्ण तीसरा पुत्र कहा गया है और चौथा पुत्र प्रवर नामसे जाना जाता है। इसी प्रकार अन्धकार (पाँचवाँ), मुनि (छठा) तथा दुन्दुभि सातवाँ पुत्र था। उनके (अपने ही) नामसे प्रसिद्ध सुन्दर देश क्रौञ्चद्वीपमें स्थित हैं। कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान्‌को महान् ओजस्वी सात पुत्र हुए। उद्भेद, वेणुमान्, अश्वरथ, लम्बन, धृति तथा छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल कहा गया है॥ १७—२१॥

हे सुव्रतो! इस (कुशद्वीप)-में उनके नामसे युक्त वर्ष हैं। इसी प्रकार उन अन्य द्वीपोंमें भी स्थिति समझनी चाहिये। शाल्मलद्वीपके स्वामी वपुष्मान्‌के श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत और मानस तथा सातवें सुप्रभ नामक पुत्र थे। प्लक्षद्वीपके राजा मेधातिथिके भी सात पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्र शान्तभय था। इसके अतिरिक्त शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव नामक पुत्र थे॥ २२—२४॥

द्विजो! प्लक्षद्वीप आदिसे लेकर शाकद्वीपतक वर्ण और आश्रमके भेदसे स्वधर्म (पालन)-को मुक्तिका साधन समझना चाहिये। हे श्रेष्ठ द्विजो! जम्बूद्वीपके अधिपति अग्नीध्रके भी महान् बलशाली पुत्र थे, उनके नाम सुनो—नाभि, किंपुरुष, हरि, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व तथा केतुमालक नामक नौ पुत्र थे॥ २५—२७॥

जम्बूद्वीपेश्वर महामति उन राजा अग्नीध्रने (जम्बूद्वीपको) नौ भागोंमें बाँटकर न्यायानुसार उन (पुत्रों)-को दे दिया॥ २८॥

नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं प्रददौ पुनः।
हेमकूटं ततो वर्षं ददौ किंपुरुषाय तु॥ २९॥

तृतीयं नैषधं वर्षं हरये दत्तवान् पिता।
इलावृताय प्रददौ मेरुमध्यमिलावृतम्॥ ३०॥

नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता।
श्वेतं यदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते॥ ३१॥

यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरुवे ददौ।
मेरोः पूर्वेण यद् वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत्।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान्॥ ३२॥

(अग्नीध्रने) नाभिको दक्षिण दिशामें स्थित हिम नामक वर्ष प्रदान किया। तदनन्तर किंपुरुषको हेमकूट नामक वर्ष दिया। पिता (अग्नीध्र)-ने हरिको तृतीय नैषध नामक वर्ष प्रदान किया और इलावृतको मेरुके मध्यमें स्थित इलावृत (नामक वर्ष) दिया। पिताने रम्यको नीलाचलयुक्त वर्ष प्रदान किया और जो उत्तरमें स्थित श्वेतवर्ष है, उसे हिरण्वान्‌को दिया। शृंगवान् पर्वतके उत्तरमें स्थित (उत्तरकुरु नामक) वर्ष कुरुको दिया और मेरुके पूर्वमें स्थित (भद्राश्व नामक) वर्ष भद्राश्वको दिया तथा गन्धमादन नामक वर्ष केतुमालको प्रदान किया॥ २९—३२॥

वर्षेष्वेतेषु तान् पुत्रानभिषिच्य नराधिपः।
संसारकष्टतां ज्ञात्वा तपस्तेपे वनं गतः॥ ३३॥

हिमाह्वयं तु यस्यैतन्नाभेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्षभोऽभवत् पुत्रो मरुदेव्यां महाद्युतिः॥ ३४॥

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः।
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा तपस्तेपे यथाविधि॥ ३५॥

तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसंततः।
ज्ञानयोगरतो भूत्वा महापाशुपतोऽभवत्॥ ३६॥

इन वर्षोंमें अपने पुत्रोंको अभिषिक्त कर राजा (अग्नीध्र) संसारके कष्टको जानकर तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। जिन महात्मा नाभिके पास हिम नामक वर्ष था, उन्हें मरुदेवीसे महान् द्युतिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभको सौ पुत्रोंमें सबसे ज्येष्ठ भरत नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। भरत नामक पुत्रको पृथ्वीके अधिपतिके रूपमें अभिषिक्त कर राजा ऋषभ वानप्रस्थाश्रमका आश्रय लेकर यथाविधि तप करने लगे। तपस्यासे अत्यन्त क्षीण होनेके कारण वे इतने कृश हो गये कि उनके शरीरकी नाड़ियाँ दीखती थीं। (तपःपूत वे) ज्ञानयोगपरायण होकर महापाशुपत[१] हो गये॥ ३३—३६॥

सुमतिर्भरतस्याभूत् पुत्रः परमधार्मिकः।
सुमतेस्तैजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत॥ ३७॥

परमेष्ठी सुतस्तस्मात् प्रतीहारस्तदन्वयः।
प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः॥ ३८॥

भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्तावस्तत्सुतोऽभवत्।
पृथुस्ततस्ततो रक्तो रक्तस्यापि गयः सुतः॥ ३९॥

नरो गयस्य तनयस्तस्य पुत्रो विराडभूत्।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत॥ ४०॥

(उन) भरतको भी सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। सुमतिका पुत्र तैजस और उस (तैजस)-से इन्द्रद्युम्न उत्पन्न हुआ। उस इन्द्रद्युम्नका पुत्र परमेष्ठी हुआ और उस (परमेष्ठी)-का पुत्र प्रतीहार हुआ। उस प्रतीहारका जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह प्रतिहर्ताके नामसे विख्यात हुआ। उससे भव, भवसे उद्गीथ तथा उस (उद्गीथ)-से प्रस्ताव नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस (प्रस्ताव)-से पृथु एवं पृथुसे रक्त उत्पन्न हुआ और रक्तको भी गय नामक पुत्र हुआ। गयका पुत्र नर और उसका पुत्र विराट् हुआ। उस (विराट्)-का पुत्र महावीर्य और उससे धीमान् (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ॥ ३७—४०॥

महान्तोऽपि ततश्चाभूद् भौवनस्तत्सुतोऽभवत्।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूत् सुतः॥ ४१॥

उस (धीमान्)-से महान्त नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र भौवन हुआ। उस (भौवन)-का त्वष्टा हुआ उस (त्वष्टा)-से विरज तथा विरजसे रज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ४१॥

१-पाशुपत (पशुपति—महादेवको परम ध्येय माननेवाला) व्रत है। इसमें पूर्ण परिनिष्ठित परम विरक्त मनुष्य महापाशुपत कहा जाता है।

शतजिद् रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं द्विजाः।
तेषां प्रधानो बलवान् विश्वज्योतिरिति स्मृतः॥ ४२॥

आराध्य देवं ब्रह्माणं क्षेमकं नाम पार्थिवम्।
असूत पुत्रं धर्मज्ञं महाबाहुमरिंदमम्॥ ४३॥

द्विजो! उस रजसूको शतजित् नामक पुत्र हुआ और उसके सौ पुत्र हुए। उनमें जो प्रधान और बलवान् था, वह विश्वज्योति नामसे प्रसिद्ध हुआ। देव ब्रह्माकी आराधना कर (विश्वज्योतिने) क्षेमक नामके महाबाहु और शत्रुमर्दन तथा धर्मज्ञ राजाको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ ४२-४३॥

एते पुरस्ताद् राजानो महासत्त्वा महौजसः।
एषां वंशप्रसूतैश्च भुक्तेयं पृथिवी पुरा॥ ४४॥

पूर्वकालमें ये महासत्त्वसम्पन्न और महान् ओजस्वी राजा थे। इनके वंशमें उत्पन्न लोगोंने प्राचीन कालमें इस पृथ्वीका उपभोग किया॥ ४४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

'भू' आदि सात लोकोंका वर्णन, ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिका वर्णन तथा उनका परिमाप, सूर्यरथका वर्णन, पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित इन्द्रादि देवोंकी अमरावती आदि पुरियोंका नाम-निर्देश, सूर्यकी महिमा

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः।
त्रैलोक्यस्यास्य मानं वो न शक्यं विस्तरेण तु॥ १॥

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्ततः।
जनस्तपश्च सत्यं च लोकास्त्वण्डोद्भवा मताः॥ २॥

सूतजीने कहा—हे द्विजोत्तमो! अब मैं आप लोगोंसे संक्षेपमें इस त्रैलोक्यके परिमाणका वर्णन करूँगा, क्योंकि इसका विस्तारसे वर्णन नहीं किया जा सकता। (सृष्टिके आदिमें) भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक—ये (सातों) लोक अण्डसे उत्पन्न बताये गये हैं॥ १-२॥

सूर्याचन्द्रमसोर्यावत् किरणैरवभासते।
तावद् भूर्लोक आख्यातः पुराणे द्विजपुंगवाः॥ ३॥
यावत्प्रमाणो भूर्लोको विस्तरात् परिमण्डलात्।
भुवर्लोकोऽपि तावान् स्यान्मण्डलाद् भास्करस्य तु॥ ४॥
ऊर्ध्वं यन्मण्डलाद् व्योम ध्रुवो यावद् व्यवस्थितः।
स्वर्लोकः स समाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः॥ ५॥
आवहः प्रवहश्चैव तथैवानुवहः परः।
संवहो विवहश्चाथ तदूर्ध्वं स्यात् परावहः॥ ६॥
तथा परिवहश्चोर्ध्वं वायोर्वै सप्त नेमयः।
भूमेर्योजनलक्षे तु भानोर्वै मण्डलं स्थितम्॥ ७॥

द्विजश्रेष्ठो! सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंसे जहाँतकका भाग प्रकाशित होता है, उतने भागको पुराणमें भूलोक कहा गया है। सूर्यके परिमण्डलसे भूलोकका जितना परिमाण है, उतना ही विस्तार भुवर्लोकका भी सूर्यके मण्डलसे है। आकाशमें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव (तारा) स्थित है, वहाँतकके मण्डलको स्वर्लोक कहा जाता है। वहाँ वायुकी नेमियाँ[1] हैं। आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह तथा उसके ऊपर परावह और उसके ऊपर परिवह नामक वायुकी सात नेमियाँ हैं। भूमिसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यका मण्डल स्थित है॥ ३—७॥

१-चक्र (रथके पहिया)-के ऊपर लोहेकी गोलाकार हाल (परिधि) लगी होती है, इसीके कारण चक्र बिखरता नहीं है। इसी गोलाकार हाल (परिधि)-को नेमि कहते हैं।

लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम्।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते॥ ८ ॥

द्वे लक्षे ह्युत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः॥ ९ ॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणो व्यवस्थितः।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥ १० ॥

सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर्ग्रहाणामथ मण्डलम्।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमात्रे प्रकाशते॥ ११ ॥

ऋषीणां मण्डलादूर्ध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रुवः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।
तत्र धर्मः स भगवान् विष्णुर्नारायणः स्थितः॥ १२ ॥
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः॥ १३ ॥
द्विगुणस्तस्य विस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति॥ १४ ॥
उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत् तमोमयम्॥ १५ ॥
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
भार्गवात् पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः॥ १६ ॥
बृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरावुभौ स्मृतौ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः॥ १७ ॥
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै।
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलात् तथा॥ १८ ॥
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परात्।
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥ १९ ॥

सर्वावरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु।
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते॥ २० ॥

उपरिष्टात् त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः।
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः॥ २१ ॥

तेभ्योऽधस्ताच्च चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः॥ २२ ॥

सूर्यसे भी एक लाख (योजन) ऊपरके भागमें चन्द्रमाका मण्डल कहा गया है। उससे एक लाख योजनपर स्थित सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है॥ ८॥

हे विप्रो! नक्षत्रमण्डलसे उत्तर दो लाख योजनकी दूरीपर बुध है। बुधसे उतने प्रमाणकी दूरीपर शुक्र स्थित है। शुक्रसे उतने ही प्रमाणपर मंगलकी स्थिति है। मंगलसे दो लाख योजनकी दूरीपर देवताओंके पुरोहित बृहस्पति स्थित हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन दूर सूर्यपुत्र शनैश्चर स्थित है। यह ग्रहोंका मण्डल है। ग्रहोंके उस मण्डलसे लाख योजनकी दूरीपर सप्तर्षि-मण्डल प्रकाशित होता है। ऋषियोंके मण्डल (सप्तर्षि-मण्डल)-से एक लाख योजन ऊपर ध्रुव स्थित हैं। ध्रुव सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्रका केन्द्र-रूप है। वहाँ धर्मरूप नारायण भगवान् विष्णु स्थित हैं॥ ९—१२॥

सूर्यका व्यास नौ हजार योजन कहा गया है। उसका तीन गुना सूर्यमण्डलका विस्तार है। सूर्यके विस्तारका दो गुना चन्द्रमाका विस्तार कहा गया है। उन दोनोंके तुल्य राहु उन दोनोंके नीचे भ्रमण करता है। पृथ्वीकी छायाको लेकर मण्डलाकारनिर्मित राहुका जो तीसरा बृहत् स्थान है, वह तमोमय है। चन्द्रमाका सोलहवाँ भाग शुक्रका है। शुक्रसे चतुर्थांश कम बृहस्पति (-का विस्तार) जानना चाहिये। बृहस्पतिसे चतुर्थांश कम मंगल एवं शनि—इन दोनोंका मण्डल कहा गया है। इन दोनोंके मण्डल तथा विस्तारसे चतुर्थांश कम बुधका मण्डल है। तारा और नक्षत्ररूपी[1] जो शरीरधारी हैं, वे सभी मण्डल एवं विस्तारसे बुधके तुल्य हैं॥ १३—१८॥

जो तारा एवं नक्षत्र-रूप हैं, वे एक-दूसरेसे पाँच, चार, तीन या दो सौ योजन कम विस्तारवाले हैं। सभी छोटे-बड़े ताराओंका मण्डल (ग्रह-पिण्डोंसे छोटे और एक) योजन या आधे योजन परिमाणवाले हैं, उनसे छोटा कोई विद्यमान नहीं है। उनसे ऊपर दूरगामी जो शनि, बृहस्पति तथा मंगल हैं, उन्हें मन्दगतिसे विचरण करनेवाला समझना चाहिये। उनसे नीचे जो दूसरे सूर्य, चन्द्रमा, बुध तथा शुक्र—चार महाग्रह हैं, ये शीघ्र गतिवाले हैं॥ १९—२२॥

१-ज्योतिषमें अश्विनी आदि २७ अथवा 'अभिजत्' नामके नक्षत्रको लेकर २८ नक्षत्र प्रसिद्ध हैं—ये ही आकाशमें नक्षत्र नामसे विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त आकाशमें अगणित ज्योतिष्पिण्ड हैं, वे ही 'तारा' कहे जाते हैं।

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिमान्।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति॥ २३॥

विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति॥ २४॥

जब सूर्य दक्षिणायनके मार्गमें विचरण करता है, तब वह (सूर्य) सभी ग्रहोंके निम्न भागोंमें भ्रमण करता है। उसके ऊपर विस्तृत मण्डल बनाकर चन्द्रमा विचरण करता है। सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल चन्द्रमासे ऊपर भ्रमण करता है॥ २३-२४॥

नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः।
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः॥ २५॥
तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूर्ध्वं तस्मात् सप्तर्षिमण्डलम्।
ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः॥ २६॥

नक्षत्रोंसे ऊपर बुध, बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल और मंगलसे ऊपर बृहस्पति है। उस बृहस्पतिसे भी ऊपर शनैश्चर, उससे ऊपर सप्तर्षि-मण्डल तथा सप्तर्षि-मण्डलके ऊपर ध्रुव स्थित है॥ २५-२६॥

योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव।
ईषादण्डस्तथैव स्याद् द्विगुणो द्विजसत्तमाः॥ २७॥
सार्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु।
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्॥ २८॥
त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥ २९॥
चत्वारिंशत् सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः।
पञ्चान्यानि तु सार्धानि स्यन्दनस्य द्विजोत्तमाः॥ ३०॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! भास्करका रथ नौ हजार योजनका है। उसका ईषादण्ड[1] उसी प्रकार दो गुना (अर्थात् अठारह हजार योजनका) है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सत्तर लाख योजनका है और उसीमें चक्र (रथका पहिया) प्रतिष्ठित है। तीन नाभि,[2] पाँच अरे[3] और छः नेमियोंवाले[4] संवत्सरमय उस अक्षय चक्रमें यह सम्पूर्ण कालचक्र प्रतिष्ठित है। द्विजोत्तमो! सूर्यके रथका दूसरा अक्ष (चक्र या धुरा) चालीस तथा साढ़े पाँच हजार योजनका है॥ २७—३०॥

अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद् युगार्धयोः।
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्धेन ध्रुवाधारे रथस्य तु॥ ३१॥
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले।
हयाश्च सप्त छन्दांसि तन्नामानि निबोधत॥ ३२॥

दोनों ओरके युगार्ध (जूआ)-का प्रमाण उस अक्ष (धुरे)-के परिमाणके बराबर है। धुरेके आधारमें स्थित ह्रस्व अक्ष उस युगार्ध (जूआ)-के बराबर है। द्वितीय अक्षमें स्थित उस (रथ)-का चक्र मानसाचलपर स्थित है। सात छन्द (उस रथके) अश्व हैं। उनके नाम सुनो—॥ ३१-३२॥

गायत्री च बृहत्युष्णिक् जगती पङ्क्तिरेव च।
अनुष्टुप् त्रिष्टुबित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो हरेः॥ ३३॥
मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां दिशि महापुरी।
दक्षिणेन यमस्याथ वरुणस्य तु पश्चिमे॥ ३४॥
उत्तरेण तु सोमस्य तन्नामानि निबोधत।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात्॥ ३५॥
काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति।
ज्योतिषां चक्रमादाय देवदेवः प्रजापतिः॥ ३६॥

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, पंक्ति, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप्—ये (सात) छन्द सूर्यके (सात) अश्व कहे गये हैं। मानसाचलपर पूर्व दिशामें महेन्द्रकी महापुरी है। दक्षिणमें यमकी, पश्चिममें वरुणकी, उत्तरमें सोमकी नगरी है, उनके (भी)नाम सुनो—अमरावती, संयमनी, सुखा तथा विभा—ये क्रमसे इन्द्रादिकी महापुरियाँ हैं। दक्षिण दिशामें स्थित देवोंके भी देव प्रजापति (सूर्य) ज्योतिश्चक्रको ग्रहणकर प्रक्षिप्त बाणके समान भ्रमण करते हैं॥ ३३—३६॥

१-ईषादण्ड—यह रथका अवयव-विशेष है। यह अवयव-विशेष उन दो लम्बे दण्डोंको समझना चाहिये जो रथके आगे होते हैं। इन्हींके मध्य एक या अपेक्षानुसार एकसे अधिक अश्व जोड़े जाते हैं।

२-नाभि—रथके चक्रके बीचका भाग, जिसमें चारों ओरसे काष्ठ जुड़े रहते हैं।

३-नाभिके चारों ओर जो काष्ठ जुड़े रहते हैं, वे ही 'अर' या 'आर' कहे जाते हैं।

४-नेमि—रथके चक्रके ऊपरवाली लोहेकी परिधि (हाल)।

दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः।
सप्तद्वीपेषु विप्रेन्द्रा निशामध्यस्य सम्मुखम्॥ ३७॥
उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु सम्मुखे।
अशेषासु दिशास्वेव तथैव विदिशासु च॥ ३८॥
कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष यथेश्वरः।
करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन् मेदिनीं द्विजाः॥ ३९॥
दिवाकरकरैरेतत् पूरितं भुवनत्रयम्।
त्रैलोक्यं कथितं सद्भिर्लोकानां मुनिपुंगवाः॥ ४०॥

विप्रेन्द्रो! सात द्वीपोंमें दिनके मध्य एवं रात्रिके अर्धभागमें सूर्य सदा सम्मुख रहता है, उदय और अस्तके समय भी सदा सम्मुख रहता है। ये ईश्वर (सूर्य) कुम्हारके चक्रके समान सभी दिशाओं तथा विदिशाओंमें भ्रमण करते हैं। हे द्विजो! पृथ्वीका त्याग करते हुए ये दिन और रात्रिका निर्माण करते हैं। ये तीनों भुवन सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त हैं। हे मुनिश्रेष्ठो! विद्वानोंने (समस्त) लोकोंको त्रैलोक्यके नामसे कहा है॥ ३७—४०॥

आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः।
भवत्यस्मात् जगत् कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्॥ ४१॥
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राणां दिवौकसाम्।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्॥ ४२॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्॥ ४३॥
द्वादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः।
निर्वहन्ति पदं तस्य तदंशा विष्णुमूर्तयः॥ ४४॥

सम्पूर्ण त्रिलोकीके मूल सूर्य ही हैं, इसमें संशय नहीं। देवता, असुर तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण जगत् इन्हींसे उत्पन्न होता है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, चन्द्रमा एवं श्रेष्ठ विप्रों तथा समस्त देवताओंका जो तेज है, द्युतिमानोंका जो प्रकाश है और समस्त लोकोंका जो सम्पूर्ण तेज है, (वह सूर्यका ही तेज है)। सूर्य ही सभी लोकोंके स्वामी, सर्वात्मा, प्रजापति, महान् देव, तीनों लोकोंके मूल और परम देवता हैं। इसी प्रकार अधिकारी-रूपमें जो अन्य बारह आदित्य देवता हैं, वे उन्हीं सूर्यके अंश हैं और विष्णुके मूर्तिरूप हैं। वे उन्हींके पद (कार्य)-को सम्पन्न करते हैं॥ ४१—४४॥

सर्वे नमस्यन्ति सहस्रभानुं
गन्धर्वदेवोरगकिन्नराद्याः।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्द्विजेन्द्रा-
श्छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम्॥ ४५॥

गन्धर्व, देवता, नाग तथा किन्नर आदि सभी हजारों किरणोंवाले सूर्यको नमस्कार करते हैं। श्रेष्ठ द्विज विविध यज्ञोंके द्वारा छन्दोमय एवं ब्रह्मस्वरूप पुरातन सूर्यदेवका यजन करते हैं॥ ४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

सूर्य-रथ तथा द्वादश आदित्योंके नाम, सूर्य-रथके अधिष्ठातृ देवता आदिका वर्णन, सूर्यकी महिमा

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्वसुभिस्तथा।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः॥ १ ॥
धातार्यमाथ मित्रश्च वरुणः शक्र एव च।
विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च॥ २ ॥
भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च द्वादशैते दिवाकराः।
आप्याययन्ति वै भानुं वसन्तादिषु वै क्रमात्॥ ३ ॥
पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः।
भरद्वाजो गौतमश्च कश्यपः क्रतुरेव च॥ ४ ॥
जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः।
स्तुवन्ति देवं विविधैश्छन्दोभिस्ते यथाक्रमम्॥ ५ ॥
रथकृच्च रथौजाश्च रथचित्रः सुबाहुकः।
रथस्वनोऽथ वरुणः सुषेणः सेनजित् तथा॥ ६ ॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च रथजित् सत्यजित् तथा।
ग्रामण्यो देवदेवस्य कुर्वतेऽभीशुसंग्रहम्॥ ७ ॥
अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा।
सर्पो व्याघ्रस्तथापश्च वातो विद्युद् दिवाकरः॥ ८ ॥
ब्रह्मोपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च।
राक्षसप्रवरा ह्येते प्रयान्ति पुरतः क्रमात्॥ ९ ॥
वासुकिः कङ्कनीरश्च तक्षकः सर्पपुंगवः।
एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः॥ १० ॥
धनंजयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजाः।
कम्बलाश्वतरश्चैव वहन्त्येनं यथाक्रमम्॥ ११ ॥
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूर्विश्वावसुस्तथा।
उग्रसेनो वसुरुचिरर्वावसुरथापरः॥ १२ ॥

चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः।
सूर्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वा गायतां वराः।
गायन्ति विविधैर्गानैर्भानुं षड्जादिभिः क्रमात्॥ १३ ॥

क्रतुस्थलाप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला।
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमाः॥ १४ ॥

सूतजीने कहा—वे (सूर्यदेव) (सभी) देवों, (द्वादश) आदित्यों, (अष्ट) वसुओं, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणी[1], सर्पों तथा राक्षसोंसहित उस रथपर अधिष्ठित रहते हैं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। ये क्रमशः वसन्त आदि ऋतुओंमें भानुको आप्यायित करते हैं। पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अंगिरा, भृगु, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि तथा कौशिक—ये ब्रह्मवादी मुनि अनेक प्रकारके छन्दों (वैदिक मन्त्रों)-के द्वारा क्रमशः सूर्यदेवकी स्तुति करते हैं॥ १—५॥

रथकृत्, रथौजा, रथचित्र, सुबाहुक, रथस्वन, वरुण, सुषेण, सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, रथजित् और सत्यजित्—ये (बारह) ग्रामणी देवोंके देव सूर्यकी रश्मियोंका संग्रह करते हैं। हे विप्रेन्द्रो! हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, आप, वात, विद्युत्, दिवाकर, ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत—ये (बारह) श्रेष्ठ राक्षस क्रमसे सूर्यके आगे-आगे चलते हैं। हे द्विजो! वासुकि, कङ्कनीर, तक्षक, सर्पपुङ्गव, एलापत्र, शंखपाल, ऐरावत, धनंजय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल तथा अश्वतर—ये (बारह) नाग क्रमशः इन सूर्यदेवको वहन करते हैं॥ ६—११॥

द्विजोत्तमो! तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, वसुरुचि, अर्वावसु, चित्रसेन, उर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा—ये (बारह) श्रेष्ठ गायन करनेवाले गन्धर्व क्रमशः षड्ज आदि स्वरोंके द्वारा विविध प्रकारके गीतोंसे सूर्यके समीप गान करते रहते हैं। हे द्विजोत्तमो! अप्सराओंमें श्रेष्ठ अप्सरा—क्रतुस्थला, पुञ्जिक-स्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचा,

[1]-अग्रणी (नेता)।

अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा।
अन्या च पूर्वचित्तिः स्यादन्या चैव तिलोत्तमा॥ १५॥

ताण्डवैर्विविधैरेनं वसन्तादिषु वै क्रमात्।
तोषयन्ति महादेवं भानुमात्मानमव्ययम्॥ १६॥

अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ति, अन्या और तिलोत्तमा—ये (बारह) अप्सराएँ क्रमशः वसन्त आदि ऋतुओंमें विविध ताण्डव आदि (नृत्यों)-के द्वारा इन अव्यय, आत्मस्वरूप महान् देवता भानुको संतुष्ट करती हैं॥ १२—१६॥

एवं देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेजसां निधिम्॥ १७॥

ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्।
गन्धर्वाप्सरसश्चैनं नृत्यगेयैरुपासते॥ १८॥

इस प्रकार ये देवता क्रमशः दो-दो महीनोंमें (वसन्त आदि ६ ऋतुओंमें) सूर्यमें प्रतिष्ठित रहते हुए तेजोनिधि सूर्यको अपने तेजसे आप्यायित करते हैं। मुनिगण स्वयंरचित स्तुतियोंसे सूर्यकी स्तुति करते रहते हैं और अप्सराएँ एवं गन्धर्व नृत्य तथा गीतोंके द्वारा इनकी उपासना करते हैं॥ १७-१८॥

ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्।
सर्पा वहन्ति देवेशं यातुधानाः प्रयान्ति च॥ १९॥

बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद् रविम्।
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः॥ २०॥

एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवि सानुगाः।
विमाने च स्थिता नित्यं कामगे वातरंहसि॥ २१॥

वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः।
गोपयन्तीह भूतानि सर्वाणीहायुगक्षयात्॥ २२॥

एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः।
यथायोगं यथासत्त्वं स एष तपति प्रभुः॥ २३॥

ग्रामणी, यक्ष और भूतगण (सूर्यदेवसे) रश्मियोंका संग्रह करते हैं, सर्प देवताओंके ईश (सूर्य)-को वहन करते हैं और राक्षस (उनके आगे-आगे) चलते हैं। बालखिल्य नामक मुनिगण सूर्यको आवृतकर उदयाचलसे अस्ताचलतक ले जाते हैं। (पूर्वमें कहे गये) ये (द्वादश आदित्य) तपते, बरसते, प्रकाश करते, बहते एवं सृष्टि करते हैं। इनका कीर्तन करनेपर ये प्राणियोंके अशुभ कर्मोंको दूर करते हैं। ये नित्य कामचारी तथा वायुके समान गतिवाले विमानपर सूर्यके साथ अपने अनुचरोंसहित आकाशमें भ्रमण करते हैं। ये क्रमशः वर्षा, ताप एवं प्रजाको आनन्द प्रदान करते हुए प्रलयपर्यन्त सभी प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। ये प्रभु सूर्य इन्हीं देवोंके वीर्य, तप, योग और सत्त्वके अनुसार (प्राणिमात्रको) ताप देते हैं॥ १९—२३॥

अहोरात्रव्यवस्थानकारणं स प्रजापतिः।
पितृदेवमनुष्यादीन् स सदाप्याययेद् रविः॥ २४॥

तत्र देवो महादेवो भास्वान् साक्षान्महेश्वरः।
भासते वेदविदुषां नीलग्रीवः सनातनः॥ २५॥

स एष देवो भगवान् परमेष्ठी प्रजापतिः।
स्थानं तद् विदुरादित्यं वेदज्ञा वेदविग्रहम्॥ २६॥

वे प्रजापति (सूर्य) दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं। ये सूर्य पितरों, देवों तथा मनुष्य आदि सभीको सदा आप्यायित करते हैं। वेदज्ञोंके (आराध्य) सनातन, नीलग्रीव, महादेव साक्षात् देव महादेव महेश्वर ही सूर्यके रूपमें प्रकाशित होते हैं। वेदज्ञ लोग आदित्य (सूर्य)-को वेदका विग्रह (शरीर ही) मानते हैं और यही वेदविग्रह आदित्य, देव भगवान् परमेष्ठी प्रजापति हैं॥ २४—२६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

सूर्यकी प्रधान सात रश्मियोंके नाम, इनके द्वारा ग्रहोंका आप्यायन, सूर्यकी अन्य हजारों नाडियोंका वर्णन तथा उनका कार्य, बारह महीनोंके बारह सूर्योंके नाम तथा छः ऋतुओंमें उनका वर्ण, आठ ग्रहोंका वर्णन, सोमके रथका वर्णन, देवोंद्वारा चन्द्रकलाओंका पान करना, पितरोंद्वारा अमावस्याको चन्द्रमाकी कलाका पान, बुध आदि ग्रहोंके रथका वर्णन

सूत उवाच

एवमेष महादेवो देवदेवः पितामहः।
करोति नियतं कालं कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः॥ १ ॥
तस्य ये रश्मयो विप्राः सर्वलोकप्रदीपकाः।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः॥ २ ॥
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वव्यचाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः॥ ३ ॥
अर्वावसुरिति ख्यातः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम्॥ ४ ॥
तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्नः परिपठ्यते।
हरिकेशस्तु यः प्रोक्तो रश्मिर्नक्षत्रपोषकः॥ ५ ॥
विश्वकर्मा तथा रश्मिर्बुधं पुष्णाति सर्वदा।
विश्वव्यचास्तु यो रश्मिः शुक्रं पुष्णाति नित्यदा॥ ६ ॥
संयद्वसुरिति ख्यातः स पुष्णाति च लोहितम्।
बृहस्पतिं प्रपुष्णाति रश्मिरर्वावसुः प्रभोः।
शनैश्चरं प्रपुष्णाति सप्तमस्तु सुराट् तथा॥ ७ ॥
एवं सूर्यप्रभावेण सर्वा नक्षत्रतारकाः।
वर्धन्ते वर्धिता नित्यं नित्यमाप्याययन्ति च॥ ८ ॥

दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः।
आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसां प्रभुः॥ ९ ॥

आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समंततः।
नादेयांश्चैव सामुद्रान् कूप्यांश्चैव सहस्रदृक्।
स्थावराञ्जङ्गमांश्चैव यच्च कुल्यादिकं पयः॥ १० ॥

तस्य रश्मिसहस्रं तच्छीतवर्षोष्णनिस्रवम्।
तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः॥ ११ ॥
वन्दनाश्चैव याज्याश्च केतना भूतनास्तथा।
अमृता नाम ताः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः॥ १२ ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार ये महादेव कालात्मा ऐश्वर्यमय विग्रहवाले देवाधिदेव पितामह (सूर्य) कालका नियमन करते हैं। विप्रो! सभी लोकोंको प्रकाशित करनेवाली उनकी जो रश्मियाँ हैं, उनमें भी ग्रहोंकी योनिरूप सात रश्मियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं॥ १-२॥

सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, अर्वावसु तथा स्वराड्—ये सात रश्मियाँ कही गयी हैं। सुषुम्न नामक सूर्यकी रश्मि चन्द्रमाकी चाँदनीको पुष्ट करती है। यह सुषुम्न रश्मि तिरछे रूपसे ऊपरको जानेवाली कही गयी है। हरिकेश नामक जो रश्मि कही गयी है, वह नक्षत्रोंका पोषण करनेवाली है। विश्वकर्मा नामक रश्मि सदा बुध (ग्रह)-का पोषण करती है। विश्वव्यचा नामकी जो रश्मि है, वह नित्य शुक्र (ग्रह)-का पोषण करती है। संयद्वसु नामसे प्रसिद्ध रश्मि मंगलका पोषण करती है और प्रभु सूर्यकी अर्वावसु नामक रश्मि बृहस्पतिका पोषण करती है तथा सातवीं सुराट् (स्वराड्) नामक रश्मि शनैश्चरका पोषण करती है॥ ३—७॥

इस प्रकार सूर्यके प्रभावसे सभी नक्षत्र एवं तारे नित्य बढ़ते हैं तथा वृद्धि प्राप्तकर नित्य दूसरोंको आप्यायित करते हैं। द्युलोक एवं पृथ्वीसे सम्बद्ध समस्त तेज-समूह और निशा-सम्बन्धी तम—अन्धकारका नित्य आदान अर्थात् ग्रहण करनेके कारण प्रभु (सूर्य)-को आदित्य कहा जाता है। हजारों नेत्रवाले वे अपनी हजारों नाडियों (किरणों)-द्वारा चारों ओरके नदियों, समुद्रों, कूपों, स्थावर तथा जङ्गम और नहरों आदिके जलका ग्रहण करते हैं। उनकी हजारों रश्मियाँ शीत, वर्षा एवं उष्णताकी सृष्टि करनेवाली हैं और उनमें चार सौ विचित्र मूर्तिस्वरूपा रश्मियाँ वर्षा करती हैं वन्दना, याज्या, केतना और भूतना—ये अमृता नामवाली सभी रश्मियाँ वर्षा करनेवाली हैं॥ ८—१२॥

हिमोद्वाहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशतं पुनः।
रश्म्यो मेष्यश्च पौष्यश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः।
चन्द्रास्ता नामतः सर्वा पीताभाः स्युर्गभस्तयः॥ १३॥

शुक्राश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा।
शुक्रास्ता नामतः सर्वास्त्रिविधा घर्मसर्जनाः॥ १४॥

समं बिभर्ति ताभिः स मनुष्यपितृदेवताः।
मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्त्रींस्तर्पयत्यसौ॥ १५॥

वसन्ते ग्रैष्मिके चैव शतैः स तपति त्रिभिः।
शरद्यपि च वर्षासु चतुर्भिः सम्प्रवर्षति।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभिः॥ १६॥

वरुणो माघमासे तु सूर्यः पूषा तु फाल्गुने।
चैत्रे मासि भवेदंशो धाता वैशाखतापनः॥ १७॥

ज्येष्ठामूले भवेदिन्द्रः आषाढे सविता रविः।
विवस्वान् श्रावणे मासि प्रौष्ठपद्यां भगः स्मृतः॥ १८॥

पर्जन्योऽश्वयुजि त्वष्टा कार्तिके मासि भास्करः।
मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः॥ १९॥

पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि।
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंऽशः सप्तभिस्तथा॥ २०॥

धाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः।
विवस्वान् दशभिः पाति पात्येकादशभिर्भगः॥ २१॥

सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत्।
अर्यमा दशभिः पाति पर्जन्यो नवभिस्तपेत्।
षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति विश्वसृक्॥ २२॥

वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुरः शरदि प्रभुः।
हेमन्ते ताम्रवर्णः स्याच्छिशिरे लोहितो रविः॥ २३॥

ओषधीषु बलं धत्ते स्वधामपि पितृष्वथ।
सूर्योऽमरत्वममृते त्रयं त्रिषु नियच्छति॥ २४॥

नाडीस्वरूपिणी तीन सौ रश्मियाँ हिमकी सृष्टि करती हैं। मेषी, पौषी तथा ह्लादिनी नामकी रश्मियाँ हिमकी सृष्टि करनेवाली हैं। ये सभी रश्मियाँ पीत वर्णकी और चन्द्रा नामवाली हैं। शुक्रा, ककुभ् और विश्वभृत् नामक सभी रश्मियोंका नाम शुक्रा है। ये तीनों प्रकारकी रश्मियाँ धूपकी सृष्टि करनेवाली हैं॥ १३-१४॥

उनके द्वारा वे (सूर्य) समान-रूपसे मनुष्यों, पितरों तथा देवताओंका पोषण करते हैं। वे (इन किरणोंके माध्यमसे) मनुष्योंको औषधके द्वारा, पितरोंको स्वधाके द्वारा और देवताओंको अमृतके द्वारा—इस प्रकार तीनोंको तीन पदार्थोंद्वारा संतृप्त करते हैं॥ १५॥

वे (सूर्य) वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतुमें तीन सौ किरणोंसे तपते हैं। शरद् और वर्षा ऋतुमें चार सौ रश्मियोंके द्वारा वर्षा करते हैं तथा हेमन्त एवं शिशिर ऋतुमें तीन सौ रश्मियोंसे हिम प्रदान करते हैं। माघमासमें सूर्यका नाम वरुण होता है, फाल्गुनमें वे पूषा कहलाते हैं। सूर्य चैत्रमासमें अंश, वैशाखमें धाता, ज्येष्ठा-मूल अर्थात् ज्येष्ठमासमें इन्द्र, आषाढ़में सविता, श्रावणमें विवस्वान् तथा भाद्रपदमासमें भग कहे जाते हैं। (ये ही) सूर्य आश्विनमें पर्जन्य, कार्तिकमें त्वष्टा, मार्गशीर्षमें मित्र और पौषमें सनातन विष्णु कहलाते हैं॥ १६—१९॥

वरुण (नामक सूर्य)-की पाँच हजार रश्मियाँ सूर्यका कार्य सम्पादित करती हैं। इसी प्रकार पूषा छः हजार, अंश देव सात हजार, धाता आठ हजार, शतक्रतु इन्द्र नौ हजार, विवस्वान् दस हजार और भग ग्यारह हजार रश्मियोंसे पालन करते हैं। मित्र नामक सूर्य सात हजार और त्वष्टा आठ हजार रश्मियोंसे तपते हैं। अर्यमा दस हजार रश्मियोंसे पालन करते हैं और पर्जन्य नौ हजार रश्मियोंसे ताप प्रदान करते हैं। विश्वकी सृष्टि करनेवाले विष्णु (नामक सूर्य) छः हजार रश्मियोंसे तपते हैं॥ २०—२२॥

प्रभु सूर्य वसन्त ऋतुमें कपिल (भूरे) वर्णके, ग्रीष्ममें स्वर्णके समान, वर्षामें श्वेत, शरद्में पाण्डुर (सफेद-मिश्रित पीले) रंगके, हेमन्तमें ताँबेके समान वर्णवाले और शिशिरमें सूर्य लोहित (लाल) वर्णके होते हैं। सूर्य ओषधियोंमें बलका आधान करते हैं, पितरोंको स्वधा और देवताओंको अमरत्व—इस प्रकार तीनोंको तीन पदार्थ प्रदान करते हैं॥ २३-२४॥

अन्ये चाष्टौ ग्रहा ज्ञेयाः सूर्येणाधिष्ठिता द्विजाः।
चन्द्रमाः सोमपुत्रश्च शुक्रश्चैव बृहस्पतिः।
भौमो मन्दस्तथा राहुः केतुमानपि चाष्टमः॥ २५॥

सर्वे ध्रुवे निबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः।
भ्राम्यमाणा यथायोगं भ्रमन्त्यनुदिवाकरम्॥ २६॥

अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरिता द्विजाः।
यस्माद् वहति तान् वायुः प्रवहस्तेन स स्मृतः॥ २७॥

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन निशाकरः॥ २८॥

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि रविर्यथा।
ह्रासवृद्धी च विप्रेन्द्रा ध्रुवाधाराणि सर्वदा॥ २९॥

स सोमः शुक्लपक्षे तु भास्करे परतः स्थिते।
आपूर्यते परस्यान्तः सततं दिवसक्रमात्॥ ३०॥
क्षीणायितं सुरैः सोममाप्याययति नित्यदा।
एकेन रश्मिना विप्राः सुषुम्नाख्येन भास्करः॥ ३१॥

एषा सूर्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनुः।
पौर्णमास्यां स दृश्येत सम्पूर्णो दिवसक्रमात्॥ ३२॥

सम्पूर्णमर्धमासेन तं सोमममृतात्मकम्।
पिबन्ति देवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजनाः॥ ३३॥

ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके।
अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते॥ ३४॥

पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य कला तु या।
सुधामृतमयीं पुण्यां तामिन्दोरमृतात्मिकाम्॥ ३५॥
निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्।
मासतृप्तिमवाप्याग्र्यां पितरः सन्ति निर्वृताः॥ ३६॥

न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते।
एवं सूर्यनिमित्तस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः॥ ३७॥

सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर्वाजिभिर्वायुवेगिभिः।
वारिजैः स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वतः॥ ३८॥

हे द्विजो! अन्य आठ ग्रहोंको सूर्यसे अधिष्ठित जानना चाहिये। चन्द्रमा, चन्द्रमाका पुत्र बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, राहु तथा केतु नामक आठवाँ ग्रह है। वातरश्मियोंके द्वारा ध्रुवमें आबद्ध वे सभी ग्रह (अपनी कक्षामें) भ्रमण करते हुए यथास्थान सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। द्विजो! वायुचक्रसे प्रेरित (ग्रहगण) अलातचक्रके समान भ्रमण करते हैं। चूँकि वायु उनका वहन करती है, इसलिये उसे 'प्रवह' कहा जाता है। सोमका रथ तीन चक्रोंवाला है। उसके वाम और दक्षिण भागमें कुन्द पुष्पके समान वर्णवाले दस अश्व जुते हैं, इसी रथसे निशाकर चन्द्रमा सूर्यके समान (अपनी) कक्षामें स्थित होकर नक्षत्रोंके मध्य परिभ्रमण करता है। हे विप्रेन्द्रो! चन्द्रमाकी रश्मियोंकी क्रमशः ह्रास और वृद्धि होती रहती है। दिनके क्रमानुसार शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके परभागमें स्थित सूर्य सोम (चन्द्र)-को निरन्तर आपूरित करता है॥ २५—३०॥

हे विप्रो! देवताओंद्वारा (अमृत) पान किये जानेके कारण क्षीण हुए चन्द्रमाको सूर्य सुषुम्न नामक एक रश्मि (किरण)-से नित्य आप्यायित करते हैं। सूर्यके तेजसे चन्द्रमाका यह (क्षीण) शरीर पुष्ट होता है, अतएव दिनके क्रमानुसार पूर्णिमाको वह चन्द्रमा सम्पूर्ण रूपसे दिखायी देता है। हे विप्रो! देवता उस अमृतस्वरूप सम्पूर्ण सोमका आधे महीनेतक पान करते हैं, क्योंकि वे (देवता) अमृतका भोजन करनेवाले होते हैं। तदनन्तर पंद्रहवें भागके किंचित् कलात्मक भाग शेष बचनेपर अपराह्णमें पितृगण उस अन्तिम भागका सेवन करते हैं। पितृगण चन्द्रमाकी अवशिष्ट अमृतस्वरूपिणी अमृतमयी तथा पवित्र सुधा नामक कलाका दो लव (कालविशेष)-तक पान करते हैं॥ ३१—३५॥

अमावस्याके दिन (चन्द्रमाकी) किरणोंसे निकलनेवाले स्वधा नामक अमृतका पान करनेसे पितर महीनेभरके लिये तृप्ति प्राप्त कर स्वस्थ हो जाते हैं। देवताओंके द्वारा (चन्द्रमाके) अमृतका पान किये जानेपर सोमका विनाश नहीं होता। श्रेष्ठ जनो! इस प्रकार सूर्यके कारण चन्द्रमाके क्षय एवं वृद्धिका क्रम चलता है। सोमके पुत्र (बुध)-के रथमें वायुके समान वेगवाले जलसे उत्पन्न आठ घोड़े जुते रहते हैं। वह बुध उसी रथसे सर्वत्र गमन करता है॥ ३६—३८॥

शुक्रस्य भूमिजैरश्वैः स्यन्दनो दशभिर्वृतः।
अष्टाभिश्चाथ भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः॥ ३९॥

बृहस्पतेरथाष्टाश्वः स्यन्दनो हेमनिर्मितः।
रथस्तमोमयोऽष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मितः।
स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा षड्भिर्हयैर्वृतः॥ ४०॥

शुक्रका रथ भूमिसे उत्पन्न दस घोड़ोंसे और मंगलका स्वर्णमय अत्यन्त सुन्दर रथ आठ घोड़ोंसे युक्त रहता है। बृहस्पतिका भी आठ घोड़ोंवाला रथ स्वर्णसे निर्मित है। शनिका लोहेसे बना हुआ रथ तमोमय है और आठ घोड़ोंवाला है। सूर्यके शत्रु राहु और केतुके रथ छः-छः अश्वोंसे युक्त हैं॥ ३९-४०॥

एते महाग्रहाणां वै समाख्याता रथा नव।
सर्वे ध्रुवे महाभागा निबद्धा वातरश्मिभिः॥ ४१॥

ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः।
भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येनं सर्वाण्यनिलरश्मिभिः॥ ४२॥

इस प्रकार महाग्रहोंके नौ रथोंका वर्णन किया गया। ये सभी महाभाग (ग्रह) वायुकी रश्मियोंके द्वारा ध्रुवमें आबद्ध हैं। सभी ग्रह, नक्षत्र और तारागण भी ध्रुवमें पूर्णतः निबद्ध हैं। वायुकी रश्मियोंद्वारा परिचालित होकर ये सभी परिभ्रमण करते रहते हैं॥ ४१-४२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

महः आदि सात लोकों तथा सात पातालोंका और वहाँके निवासियोंका वर्णन, वैष्णवी तथा शाम्भवी शक्तियोंका वर्णन

सूत उवाच

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तृतः।
कल्पाधिकारिणस्तत्र संस्थिता द्विजपुंगवाः॥ १॥
जनलोको महर्लोकात् तथा कोटिद्वयात्मकः।
सनन्दनादयस्तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुताः॥ २॥
जनलोकात् तपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः।
वैराजास्तत्र वै देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः॥ ३॥
प्राजापत्यात् सत्यलोकः कोटिषट्केन संयुतः।
अपुनर्मारकास्तत्र ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः॥ ४॥
अत्र लोकगुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
आस्ते स योगिभिर्नित्यं पीत्वा योगामृतं परम्॥ ५॥

सूतजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठो! ध्रुवके ऊपर एक करोड़ योजन विस्तारवाला महर्लोक है। वहाँ कल्पके अधिकारीगण निवास करते हैं। इसी प्रकार महर्लोकसे ऊपर दो करोड़ योजनवाला जनलोक है। वहाँ ब्रह्माके (मानस) पुत्र सनन्दन आदि रहते हैं। जनलोकसे ऊपर तपोलोक तीन करोड़ योजनका है। वहाँ दाहरहित[1] वैराज नामक देवता रहते हैं। प्राजापत्यलोक अर्थात् तपोलोकके ऊपर छः करोड़ योजनका सत्यलोक है। वहाँ अपुनर्मारक (जन्म-मरणसे रहित जन) रहते हैं। वह ब्रह्मलोक कहा गया है। यहाँ परम योगामृतका पान कर विश्वतोमुख विश्वात्मा लोकगुरु ब्रह्मा योगियोंके साथ नित्य निवास करते हैं॥ १—५॥

विशन्ति यतयः शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिणः।
योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनम्॥ ६॥

द्वारं तद्योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम्।
तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शंकरः॥ ७॥

शान्त स्वभाववाले यतिगण, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी, सिद्ध तथा परमेष्ठीका जप करनेवाले यहाँ प्रवेश करते हैं। परमपदको प्राप्त करनेवाले योगियोंका वह एकमात्र द्वार है। वहाँ पहुँचकर (लोग) शोक नहीं करते। वही (यहाँ निवास करनेवाला) विष्णु है, शंकर है॥ ६-७॥

१-दाह-तापसे रहित (दैहिक, दैविक, भौतिक तापोंसे सर्वथा मुक्त)।

सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम्।
न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम्॥ ८ ॥
तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे।
शेते तत्र हरिः श्रीमान् मायी मायामयः परः॥ ९ ॥
स विष्णुलोकः कथितः पुनरावृत्तिवर्जितः।
यान्ति तत्र महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम्॥ १० ॥
ऊर्ध्वं तद् ब्रह्मसदनात् पुरं ज्योतिर्मयं शुभम्।
वह्निना च परिक्षिप्तं तत्रास्ते भगवान् भवः॥ ११ ॥
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः।
योगिभिः शतसाहस्रैर्भूतै रुद्रैश्च संवृतः॥ १२ ॥
तत्र ते यान्ति नियता द्विजा वै ब्रह्मचारिणः।
महादेवपराः शान्तास्तापसा ब्रह्मवादिनः॥ १३ ॥

निर्ममा निरहंकाराः कामक्रोधविवर्जिताः।
द्रक्ष्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोकः स वै स्मृतः॥ १४ ॥
एते सप्त महालोकाः पृथिव्याः परिकीर्तिताः।
महातलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः॥ १५ ॥
महातलं च पातालं सर्वरत्नोपशोभितम्।
प्रासादैर्विविधैः शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम्॥ १६ ॥
अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता।
नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना॥ १७ ॥
शैलं रसातलं विप्राः शार्करं हि तलातलम्।
पीतं सुतलमित्युक्तं नितलं विद्रुमप्रभम्।
सितं हि वितलं प्रोक्तं तलं चैव सितेतरम्॥ १८ ॥
सुपर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम्।
रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम्॥ १९ ॥
विरोचनहिरण्याक्षतक्षकाद्यैश्च सेवितम्।
तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम्॥ २० ॥
वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः।
पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलं च तथापरैः॥ २१ ॥
नितलं यवनाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा।
महान्तकाद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनासुरेण च॥ २२ ॥
वितलं चैव विख्यातं कम्बलाहीन्द्रसेवितम्।
महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण वै तथा॥ २३ ॥
शंकुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः।
तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलं चैव सुशोभनम्॥ २४ ॥

करोड़ों सूर्यके समान उन (ब्रह्मा)-का वह पुर अत्यन्त दुर्गम है। अग्निशिखाकी मालाओंसे समन्वित उस पुरका मैं वर्णन नहीं कर सकता। ब्रह्माके उस पुरमें नारायणका भी भवन है। वहाँ मायामय परम मायावान् श्रीमान् हरि शयन करते हैं। पुनरागमनसे रहित वह विष्णुलोक कहा गया है। जो जनार्दनके शरणागत हैं, वे महात्मा वहाँ जाते हैं। उस ब्रह्म-सदनसे ऊपर ज्योतिर्मय, अग्निसे व्याप्त कल्याणकारी पुर है। वहाँ सैकड़ों-हजारों योगियों, भूतों तथा रुद्रोंसे परिवृत, मनीषियोंके द्वारा ध्यान किये जाते हुए वे भगवान् भव महादेव देवी पार्वतीके साथ निवास करते हैं॥ ८—१२॥

वहाँ वे ही जाते हैं जो संयमी ब्राह्मण हैं, ब्रह्मचारी हैं, महादेवपरायण हैं, शान्त, तपस्वी और ब्रह्मवादी हैं, ममत्वरहित, अहंकारशून्य तथा काम-क्रोधसे रहित हैं। ब्रह्मज्ञानसम्पन्न ये (व्यक्ति इस लोकका) दर्शन करते हैं। उस लोकको रुद्रलोक कहा गया है॥ १३-१४॥

हे द्विजो! पृथ्वीके ये सात महालोक कहे गये हैं। (पृथ्वीके) अधोभागमें महातल आदि (सात) पाताल हैं। महातल नामक पाताल सभी रत्नोंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके महलों और शुभ्र देवमन्दिरोंसे सम्पन्न है। वह (महातल) अनन्त (नाग), धीमान् मुचुकुन्द एवं पाताल-स्वर्गवासी राजा बलिसे युक्त है। हे विप्रो! रसातल शैलमय है, तलातल शर्करामय है। सुतल पीत वर्णका कहा गया है। नितल विद्रुम (मूँगे)-के समान वर्णवाला, वितल श्वेत वर्णका और तल कृष्ण वर्णका कहा गया है॥ १५—१८॥

हे मुनिश्रेष्ठो! शुभ रसातल गरुड, वासुकि (नाग) तथा अन्य (महात्माओं)-से सेवित कहा गया है। सभी शोभाओंसे युक्त तलातल विरोचन, हिरण्याक्ष तथा तक्षक आदिके द्वारा सेवित कहा गया है। सुतल वैनतेय आदि पक्षी, कालनेमि प्रभृति दूसरे श्रेष्ठ असुरोंसे समाकीर्ण है। तारक, अग्निमुख आदि यवन और महान् अन्तक आदि नागों तथा असुर प्रह्लादसे नितल नामक पाताल सेवित है। वितल नामक प्रसिद्ध पाताल कम्बल नामक नागराज, महाजम्भ और वीर हयग्रीवसे सेवित है। तल नामक पाताल शंकुकर्णसे युक्त तथा प्रधान नमुचि आदि दैत्यों और अन्य विविध प्रकारके नागोंसे सुशोभित है॥ १९—२४॥

तेषामधस्तान्नरका मायाद्याः परिकीर्तिताः।
पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयितुं क्षमाः॥ २५॥

पातालानामधश्चास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः।
कालाग्निरुद्रो योगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः॥ २६॥

योऽनन्तः पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः।
तदाधारमिदं सर्वं स कालाग्निमपाश्रितः॥ २७॥

तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनोत्थितः।
विषज्वालामयोऽन्तेऽसौ जगत् संहरति स्वयम्॥ २८॥

उन (पातालों)-के नीचे माया आदि नरक कहे गये हैं, उनमें पापी लोग यातना पाते हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। पाताललोकके नीचे शेष नामवाली वैष्णवी मूर्ति विद्यमान है। जिसे कालाग्नि रुद्र, योगात्मा, नारसिंह, माधव, अनन्त, देव और नागरूपी जनार्दन भी कहा जाता है। यह सब उन्हींके आधारपर (टिका) है और वे कालाग्निके आश्रित हैं। उनमें प्रविष्ट होकर और उनके मुखसे प्रकट हुई विषकी ज्वालारूप होकर महायोगी काल स्वयं अन्तमें जगत्‌का संहार करते हैं॥ २५—२८॥

सहस्रमायोऽप्रतिमः संहर्ता शंकरोद्भवः।
तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालो लोकप्रकालनः॥ २९॥

हजारों मायावाला एवं शंकरसे उत्पन्न अद्वितीय (काल) संहार करनेवाला है। वह शम्भुकी तामसी मूर्ति है। काल ही लोकोंका संहार करता है॥ २९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

सात महाद्वीपों और सात महासागरोंका परिमाण, जम्बूद्वीप तथा मेरुपर्वतकी स्थिति, भारत तथा किंपुरुष आदि वर्षोंका वर्णन, वर्षपर्वतोंकी स्थिति, जम्बूद्वीपके नाम पड़नेका कारण, जम्बूद्वीपके नदी एवं पर्वतोंका और वहाँके निवासियोंका वर्णन

सूत उवाच

एतद् ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्दशविधं महत्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्य निर्णयम्॥ १॥

जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मल एव च।
कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः॥ २॥

एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः।
द्वीपाद् द्वीपो महानुक्तः सागरादपि सागरः॥ ३॥

क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः।
दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः॥ ४॥

पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता।
द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समासतः॥ ५॥

जम्बूद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः शुभः।
तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः॥ ६॥

सूतजी बोले—इस चौदह (सात पाताल तथा सात ऊर्ध्वलोक) प्रकारके महान् ब्रह्माण्डका वर्णन किया गया। इसके बाद इस भूलोकके निर्णयको कहूँगा। (भूलोकमें) जम्बूद्वीप प्रधान है। (इसके अतिरिक्त) प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा सातवाँ पुष्कर द्वीप है। ये सातों महाद्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हैं, एक द्वीपसे दूसरा द्वीप तथा एक सागरसे दूसरा सागर महान् कहा गया है। क्षारोदक, इक्षुरसोदक, सुरोदक, घृतोदक, दध्योदक, क्षीरोदक तथा स्वादूदक—ये (सात) महासागर हैं। संक्षेपमें समुद्रसहित यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तारवाली कही जाती है। यह सात द्वीपोंसे परिवेष्टित है समस्त द्वीपोंके मध्यमें शुभ जम्बूद्वीप स्थित है। उसके बीचमें स्वर्णके समान आभावाला महामेरु कहा गया है॥ १—६॥

चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥ ७॥
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः॥ ८॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥ ९॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथा परे।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥ १०॥
भारतं दक्षिणं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः॥ ११॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानुहिरण्मयम्।
उत्तराः कुरवश्चैव यथैते भरतास्तथा॥ १२॥
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः।
इलावृतं च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः॥ १३॥
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतम्।
इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वताः।
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः॥ १४॥
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः।
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः॥ १५॥
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महर्षयः॥ १६॥
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि च।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः॥ १७॥
रसेन तस्याः प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति वै।
सरित् प्रवर्तते चापि पीयते तत्र वासिभिः॥ १८॥
न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः।
तत्पानात् सुस्थमनसां नराणां तत्र जायते॥ १९॥
तीरमृत् तत्र सम्प्राप्य वायुना सुविशोषिता।
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥ २०॥

उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। नीचेकी ओर यह सोलह योजनतक प्रविष्ट है और ऊपरकी ओर बत्तीस योजन विस्तृत है। उस पर्वतके मूलमें सभी ओर सोलह हजार योजनका विस्तार है। यह पर्वत इस पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिकाके रूपमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट तथा निषध और उत्तरमें नील, श्वेत एवं शृंगी नामक वर्षपर्वत हैं। इनमें दो (हिमवान् एवं हेमकूट वर्षपर्वत) एक लाख योजन परिमाणवाले हैं और अन्य (वर्षपर्वत) दस योजन कम विस्तारवाले हैं। इनकी ऊँचाई दो हजार योजनकी है और उनका विस्तार भी उतना ही है॥ ७—१०॥

हे द्विजो! मेरुके दक्षिण भागमें प्रथम भारतवर्ष, तदनन्तर किंपुरुषवर्ष और फिर हरिवर्ष तथा अन्य भी वैसे ही स्थित हैं। उसके उत्तरमें रम्यक, हिरण्मय एवं उत्तरकुरुवर्ष स्थित है। ये सभी भारतवर्षके समान हैं॥ ११-१२॥

द्विजश्रेष्ठो! इनमेंसे प्रत्येक नौ हजार योजनका है। इनके मध्यमें इलावृतवर्ष है और इसके मध्यमें उन्नत मेरु पर्वत है। हे महाभागो! वहाँ मेरुके चारों ओर नौ हजार योजनका इलावृत नामक वर्ष है। वहाँ चार पर्वत हैं। मेरुके व्यासके रूपमें विरचित इनकी ऊँचाई दस हजार योजन है। इसके पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिम पार्श्वमें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व नामक पर्वत कहा गया है॥ १३—१५॥

उसमें (सुपार्श्व पर्वतमें) कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट वृक्ष हैं। हे महर्षियो! यही जम्बूवृक्ष जम्बूद्वीप नाम पड़नेका कारण है। उस जम्बूवृक्षके फल महान् हाथीके प्रमाणवाले होते हैं। पर्वतके पृष्ठपर गिरनेसे वे विशीर्ण हो जाते हैं। वहाँ उनके रससे प्रवाहित होनेवाली नदी जम्बूनदीके नामसे विख्यात है। वहाँके निवासी उस रसका पान किया करते हैं। वहाँ उस रस (जल)-का पान करनेसे स्वस्थ मनवाले मनुष्योंको न स्वेद (पसीना) होता है, न उनमें दुर्गन्धि होती है, न वृद्धावस्था आती है और न ही उनकी इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं। उस (जम्बू नदी)-के तटपर स्थित मिट्टीके रसका वायु शोषण कर लेता है, जिससे जाम्बूनद नामक सुवर्ण होता है, सिद्धगण उसीका आभूषण धारण करते हैं॥ १६—२०॥

भद्राश्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम्॥ २१॥
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम्।
वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम्॥ २२॥
अरुणोदं महाभद्रमसितोदं च मानसम्।
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा॥ २३॥
सितान्तश्च कुमुद्वांश्च कुररी माल्यवांस्तथा।
वैकङ्को मणिशैलश्च ऋक्षवांश्चाचलोत्तमाः॥ २४॥
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा।
वेणुमांश्चैव मेघश्च निषधो देवपर्वतः।
इत्येते देवरचिताः सिद्धावासाः प्रकीर्तिताः॥ २५॥
अरुणोदस्य सरसः पूर्वतः केसराचलः।
त्रिकूटशिखरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा॥ २६॥
निषधो वसुधारश्च कलिङ्गस्त्रिशिखः शुभः।
समूलो वसुधारश्च कुरवश्चैव सानुमान्॥ २७॥
ताम्रातश्च विशालश्च कुमुदो वेणुपर्वतः।
एकशृङ्गो महाशैलो गजशैलः पिशाचकः॥ २८॥
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः।
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः॥ २९॥
महाभद्रस्य सरसो दक्षिणे केसराचलः।
शिखिवासश्च वैदूर्यः कपिलो गन्धमादनः॥ ३०॥
जारुधिश्च सुगन्धिश्च श्रीशृङ्गश्चाचलोत्तमः।
सुपार्श्वश्च सुपक्षश्च कङ्कः कपिल एव च॥ ३१॥
पिञ्जरो भद्रशैलश्च सुरसश्च महाबलः।
अञ्जनो मधुमांस्तद्वत् कुमुदो मुकुटस्तथा॥ ३२॥
सहस्रशिखरश्चैव पाण्डुरः कृष्ण एव च।
पारिजातो महाशैलस्तथैव कपिलोदकः॥ ३३॥
सुषेणः पुण्डरीकश्च महामेघस्तथैव च।
एते पर्वतराजानः सिद्धगन्धर्वसेविताः॥ ३४॥
असितोदस्य सरसः पश्चिमे केसराचलः।
शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसो नागस्तथा परः॥ ३५॥
कालाञ्जनः शुक्रशैलो नीलः कमल एव च।
पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा।
मयूरः कपिलश्चैव महाकपिल एव च॥ ३६॥
इत्येते देवगन्धर्वसिद्धसङ्घनिषेविताः।
सरसो मानसस्येह उत्तरे केसराचलः॥ ३७॥

मेरुके पूर्वमें भद्राश्व, पश्चिममें केतुमाल नामक दो वर्ष हैं। मुनिश्रेष्ठो! उन दोनोंके मध्य इलावृत वर्ष है। पूर्वमें चैत्ररथ नामक वन, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें सवितृवन स्थित है। उन (वनों)-में अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक—ये चार सरोवर हैं। ये सदा देवताओंद्वारा उपभोग किये जाने योग्य हैं। सितान्त, कुमुद्वान्, कुररी, माल्यवान्, वैकङ्क, मणिशैल, ऋक्षवान्, महानील, रुचक, सबिन्दु, मन्दर, वेणुमान्, मेघ, निषध एवं देवपर्वत—इन सभी श्रेष्ठ पर्वतोंकी रचना देवताओंद्वारा हुई है और इन्हें सिद्धोंका आवास कहा जाता है॥ २१—२५॥

अरुणोद सरोवरके पूर्वमें केसराचल, त्रिकूट-शिखर, पतङ्ग, रुचक, निषध, वसुधार, कलिंग, शुभ त्रिशिख, समूल, वसुधार, कुरव, सानुमान्, ताम्रात, विशाल, कुमुद, वेणुपर्वत, एकशृंग, महाशैल, गजशैल, पिशाचक, पञ्चशैल, कैलास और पर्वतोंमें उत्तम हिमवान्—ये सभी देवताओंद्वारा सेवित अत्यन्त श्रेष्ठ पर्वत हैं॥ २६—२९॥

महाभद्र सरोवरके दक्षिणमें—केसराचल, शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन, जारुधि, सुगन्धि, उत्तम पर्वत श्रीशृंग, सुपार्श्व, सुपक्ष, कङ्क, कपिल, पिञ्जर, भद्रशैल, सुरस, महाबल, अञ्जन, मधुमान्, कुमुद, मुकुट, सहस्रशिखर, पाण्डुर, कृष्ण, पारिजात, महाशैल, कपिलोदक, सुषेण, पुण्डरीक और महामेघ—ये सभी पर्वतराज सिद्धों और गन्धर्वोंसे सेवित हैं॥ ३०—३४॥

असितोद सरोवरके पश्चिममें केसराचल, शंखकूट, वृषभ, हंस, नाग, कालाञ्जन, शुक्रशैल, नील, कमल, पुष्पक, सुमेघ, वाराह, विरजा, मयूर, कपिल तथा महाकपिल—ये सभी (पर्वत) देव, गन्धर्व और सिद्धोंके समूहोंद्वारा सेवित हैं। मानसरोवरके उत्तरमें केसराचल नामक पर्वत है॥ ३५—३७॥

एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांसि च वनानि च॥ ३८॥
वसन्ति तत्र मुनयः सिद्धाश्च ब्रह्मभाविताः।
प्रसन्नाः शान्तरजसः सर्वदुःखविवर्जिताः॥ ३९॥

इन प्रधान शैलोंके मध्य क्रमानुसार घाटियाँ, सरोवर और अनेक वन हैं। वहाँ प्रसन्न, रजोगुणरहित और सभी दुःखोंसे विनिर्मुक्त ब्रह्मवादी मुनि और सिद्ध निवास करते हैं॥ ३८-३९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओंकी पुरियोंका तथा वहाँके निवासियोंका वर्णन, गङ्गाकी चार धाराओं और आठ मर्यादापर्वतोंका वर्णन

सूत उवाच

चतुर्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी।
मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः॥ १॥
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः।
उपास्यमानो योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशंकरैः॥ २॥
तत्र देवेश्वरेशानं विश्वात्मानं प्रजापतिम्।
सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि॥ ३॥
स सिद्धैर्ऋषिगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरैरपि।
समास्ते योगयुक्तात्मा पीत्वा तत्परमामृतम्॥ ४॥

सूतजी बोले—देवाधिदेव ब्रह्माकी मेरु पर्वतके ऊपर चौदह हजार योजन विस्तारवाली महापुरी विख्यात है। वहाँ विश्वभावन विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा रहते हैं। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और शंकर उनकी उपासना करते रहते हैं। वहाँ भगवान् सनत्कुमार नित्य ही ईशान देवेश्वर विश्वात्मा प्रजापतिकी उपासना करते हैं। वे (सनत्कुमार) योगात्मा सिद्ध, ऋषि, गन्धर्व तथा देवताओंसे पूजित होते हुए परम अमृतका पान करते हैं और वहाँ निवास करते हैं॥ १—४॥

तत्र देवादिदेवस्य शम्भोरमिततेजसः।
दीप्तमायतनं शुभ्रं पुरस्ताद् ब्रह्मणः स्थितम्॥ ५॥

दिव्यकान्तिसमायुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम्।
महर्षिगणसंकीर्णं ब्रह्मविद्भिर्निषेवितम्॥ ६॥

देव्या सह महादेवः शशाङ्कार्काग्निलोचनः।
रमते तत्र विश्वेशः प्रमथैः प्रमथेश्वरः॥ ७॥

वहाँ देवोंके आदिदेव अमित तेजस्वी शंकरका शुभ्र एवं दीप्तियुक्त मन्दिर है, जो ब्रह्माके (आयतनके) सामने स्थित है। (यह मन्दिर) दिव्य कान्तिसे सुसम्पन्न, चार द्वारोंसे युक्त, अत्यन्त सुन्दर, महर्षियोंसे पूर्ण और ब्रह्मज्ञानियोंद्वारा सेवित है। चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्निस्वरूप (तीन) नेत्रोंवाले प्रमथेश्वर विश्वेश महादेव देवी (पार्वती) एवं प्रमथगणोंके साथ वहाँ रमण करते हैं॥ ५—७॥

तत्र वेदविदः शान्ता मुनयो ब्रह्मचारिणः।
पूजयन्ति महादेवं तापसाः सत्यवादिनः॥ ८॥
तेषां साक्षान्महादेवो मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्।
गृह्णाति पूजां शिरसा पार्वत्या परमेश्वरः॥ ९॥
तत्रैव पर्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी।
नाम्नाऽमरावती पूर्वे सर्वशोभासमन्विता॥ १०॥

वहाँ वेदज्ञ शान्तचित्त मुनि, ब्रह्मचारी, तपस्वी और सत्यवादी लोग महादेवकी पूजा करते हैं। इन ब्रह्मवादी मुनियोंकी पूजाको पार्वतीके साथ साक्षात् परमेश्वर महादेव सिरसे आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं। वहीं श्रेष्ठ पर्वत (मेरु)-पर पूर्वकी ओर इन्द्रकी सभी शोभाओंसे समन्वित अमरावती नामकी श्रेष्ठ पुरी है॥ ८—१०॥

तमिन्द्रमप्सरःसङ्घा गन्धर्वा गीततत्पराः।
उपासते सहस्राक्षं देवास्तत्र सहस्रशः॥ ११॥
ये धार्मिका वेदविदो यागहोमपरायणाः।
तेषां तत् परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्॥ १२॥

अप्सराओंका समूह, गान-परायण गन्धर्व तथा हजारों देवता हजार नेत्रोंवाले इन्द्रकी वहाँ उपासना करते हैं। जो धार्मिक हैं, वेदज्ञ हैं, यज्ञ एवं होमपरायण हैं, उनका वह परम स्थान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ १२॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे वह्नेरमिततेजसः।
तेजोवती नाम पुरी दिव्याश्चर्यसमन्विता॥ १३॥

तत्रास्ते भगवान् वह्निर्भ्राजमानः स्वतेजसा।
जपिनां होमिनां स्थानं दानवानां दुरासदम्॥ १४॥

उसके दक्षिण दिशामें अमित तेजस्वी अग्निकी दिव्य आश्चर्योंसे युक्त तेजोवती नामकी पुरी स्थित है। भगवान् वह्नि अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए वहाँ रहते हैं। जप करनेवालों तथा होम करनेवालोंका वह स्थान दानवोंके लिये दुष्प्राप्य है॥ १३—१४॥

दक्षिणे पर्वतवरे यमस्यापि महापुरी।
नाम्ना संयमनी दिव्या सिद्धगन्धर्वसेविता॥ १५॥

तत्र वैवस्वतं देवं देवाद्याः पर्युपासते।
स्थानं तत् सत्यसंधानां लोके पुण्यकृतां नृणाम्॥ १६॥

तस्यास्तु पश्चिमे भागे निर्ऋतेस्तु महात्मनः।
रक्षोवती नाम पुरी राक्षसैः सर्वतो वृता॥ १७॥

तत्र तं निर्ऋतिं देवं राक्षसाः पर्युपासते।
गच्छन्ति तां धर्मरता ये वै तामसवृत्तयः॥ १८॥

पश्चिमे पर्वतवरे वरुणस्य महापुरी।
नाम्ना शुद्धवती पुण्या सर्वकामर्द्धिसंयुता॥ १९॥

श्रेष्ठ (मेरु) पर्वतपर दक्षिण भागमें यमराजकी भी सिद्धों तथा गन्धर्वोंसे सेवित संयमनी नामक दिव्य महापुरी है। वहाँ देवादिगण विवस्वान्[1] (सूर्य) देवकी उपासना करते रहते हैं। वह स्थान संसारमें पुण्य करनेवाले सत्यव्रती मनुष्योंका है। उसके पश्चिम भागमें महात्मा निर्ऋतिकी रक्षोवती नामक पुरी है, जो चारों ओरसे राक्षसोंसे घिरी है। वहाँ राक्षस निर्ऋतिदेवकी उपासना करते हैं तथा जो तमोगुणी जीविकावाले होते हुए भी धार्मिक होते हैं, वे उसी पुरीमें जाते हैं। पश्चिममें इस श्रेष्ठ पर्वतपर सभी प्रकारकी कामनाओंकी समृद्धिसे समन्वित वरुणकी शुद्धवती नामकी पुण्य महापुरी है॥ १५—१९॥

तत्राप्सरोगणैः सिद्धैः सेव्यमानोऽमराधिपः।
आस्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति येऽम्बुदाः।
तीर्थयात्रापरा नित्यं ये च लोकेऽघमर्षिणः॥ २०॥

यहाँ अप्सराओं तथा सिद्धोंसे सेवित अमराधिप राजा वरुण रहते हैं। यहाँ वे ही मनुष्य जाते हैं, जो संसारमें नित्य जलदान करते हैं, तीर्थयात्रा-परायण रहते हैं और जो अघमर्षण किया करते हैं॥ २०॥

तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरपि महापुरी।
नाम्ना गन्धवती पुण्या तत्रास्तेऽसौ प्रभञ्जनः॥ २१॥

अप्सरोगणगन्धर्वैः सेव्यमानोऽमरप्रभुः।
प्राणायामपरा मर्त्या स्थानं तद् यान्ति शाश्वतम्॥ २२॥

उस (शुद्धवती पुरी)-के उत्तरभागमें वायु देवताकी भी गन्धवती नामवाली पवित्र महापुरी स्थित है। वहाँ प्रभञ्जन (वायुदेवता) निवास करते हैं। देवोंके स्वामी इन वायुदेवताकी अप्सराओंके समूह और गन्धर्व सेवा करते रहते हैं। जो प्राणायाम-परायण मनुष्य हैं, वे इस शाश्वत स्थानमें जाते हैं॥ २१-२२॥

तस्याः पूर्वेण दिग्भागे सोमस्य परमा पुरी।
नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तत्र सोमो विराजते॥ २३॥
तत्र ये भोगनिरता स्वधर्मं पर्युपासते।
तेषां तद् रचितं स्थानं नानाभोगसमन्वितम्॥ २४॥
तस्याश्च पूर्वदिग्भागे शंकरस्य महापुरी।
नाम्ना यशोवती पुण्या सर्वेषां सुदुरासदा॥ २५॥
तत्रेशानस्य भवनं रुद्रविष्णुतनोः शुभम्।
गणेश्वरस्य विपुलं तत्रास्ते स गणैर्वृतः॥ २६॥

उसके पूर्व दिशामें सोम (चन्द्रमा)-की कान्तिमती नामवाली शुभ श्रेष्ठ पुरी है, वहाँ चन्द्रमा विराजमान रहते हैं, जो भोगपरायण रहते हुए अपने धर्मका पालन करते हैं उन्हींके लिये वहाँपर अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त स्थान बना[2] है। उसके पूर्वकी ओर (भगवान् शंकरकी यशोवती नामक पवित्र महापुरी है, जो सभीके लिये दुर्लभ है, वहाँ रुद्र एवं विष्णुमय शरीरवाले गणाधिपति ईशान (शंकर)-का विशाल भवन है

१-विवस्वान्—विव-रश्मि-किरणसे युक्त सूर्य।

२-कुछ लोग ऐसे होते हैं जो धर्मनिष्ठ होते हैं, पर जन्म-जन्मान्तरके संस्कारवश उनमें मृत्युके समय भोगवासना शेष रह जाती है, ऐसे लोग चन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं।

तत्र भोगाभिलिप्सूनां भक्तानां परमेष्ठिनः।
निवासः कल्पितः पूर्वं देवदेवेन शूलिना ॥ २७ ॥

विष्णुपादाद् विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम्।
समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवः ॥ २८ ॥
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा ह्यभवद् द्विजाः।
सीता चालकनन्दा च सुचक्षुर्भद्रनामिका ॥ २९ ॥

पूर्वेण सीता शैलात् तु शैलं यात्यन्तरिक्षतः।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति चार्णवम् ॥ ३० ॥
तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम्।
प्रयाति सागरं भित्त्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः ॥ ३१ ॥

सुचक्षुः पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्तथा।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति चार्णवम् ॥ ३२ ॥

भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून्।
अतीत्य चोत्तराम्भोधिं समभ्येति महर्षयः ॥ ३३ ॥

आनीलनिषधायामौ माल्यवान् गन्धमादनः।
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ३४ ॥

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ॥ ३५ ॥
जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ।
दक्षिणोत्तरमायामावानीलनिषधायतौ ॥ ३६ ॥
गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ३७ ॥
निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वताविमौ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथापूर्वौ तथा स्थितौ ॥ ३८ ॥
त्रिशृङ्गो जारुधिस्तद्वदुत्तरे वर्षपर्वतौ।
पूर्वपश्चायतावेतौ अर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ३९ ॥
मर्यादापर्वताः प्रोक्ता अष्टाविह मया द्विजाः।
जठराद्याः स्थिता मेरोश्चतुर्दिक्षु महर्षयः ॥ ४० ॥

गणोंसे आवृत (शंकरदेव) उसमें रहते हैं। पूर्वकालमें देवोंके देव शूल धारण करनेवाले शंकरने वहाँपर परमेष्ठीके भोगाभिलाषी भक्तोंका निवास-स्थान बनाया था। विष्णुके चरणसे निकली हुई गङ्गा चन्द्रमण्डलको आप्लावित कर स्वर्गसे ब्रह्मपुरीके चारों ओर गिरती हैं॥ २३—२८॥

द्विजो! वे वहाँ गिरकर सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु एवं भद्रा नामसे चार भागोंमें (दिशाओंमें) विभक्त हो गयी हैं। अन्तरिक्षसे निकलकर सीता नामक गङ्गा एक शैलसे दूसरे शैलपर जाती हुई पूर्व दिशामें भद्राश्ववर्षमें प्रवाहित होती हुई समुद्रमें जाती हैं॥ २९-३०॥

हे द्विजोत्तमो! इसी प्रकार अलकनन्दा नामक गङ्गा दक्षिण दिशासे भारतवर्षमें आनेके बाद सात भागोंमें विभक्त होकर सागरमें जाती हैं। ऐसे ही सुचक्षु नामक गङ्गा पश्चिम दिशाके सभी पर्वतोंका अतिक्रमण करके पश्चिम दिशाके केतुमाल नामक वर्षमें प्रवाहित होकर समुद्रमें जाती हैं। महर्षियो! भद्रा नामक गङ्गा उत्तर दिशाके पर्वतों और उत्तरकुरुवर्षका अतिक्रमण कर उत्तर समुद्रमें मिलती हैं। माल्यवान् तथा गन्धमादन पर्वत नील तथा निषध पर्वतोंके समान विस्तारवाले हैं। उन दोनोंके मध्यमें कर्णिकाके आकारके समान मेरु (पर्वत) स्थित है। इन मर्यादापर्वतोंके बाहरकी ओर संसाररूपी कमलके पत्रोंके रूपमें भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष स्थित हैं॥ ३१—३५॥

जठर एवं देवकूट नामक दो मर्यादापर्वत नील और निषध पर्वतोंतक दक्षिणोत्तर-दिशामें फैले हुए हैं। गन्धमादन और कैलास नामक दोनों पर्वत पूर्व-पश्चिममें फैले हुए हैं, (ये) अस्सी योजन विस्तारवाले हैं और समुद्रके अंदरतक स्थित हैं। निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत मेरुकी पश्चिम दिशामें पूर्वके पर्वतोंके समान स्थित हैं। इसी प्रकार उत्तरमें त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक दो वर्षपर्वत हैं। ये पूर्व-पश्चिममें फैले हुए हैं तथा समुद्रके भीतरतक स्थित हैं॥ ३६—३९॥

हे द्विजो! मैंने यहाँ इन आठ मर्यादापर्वतोंको बतलाया। हे महर्षियो! मेरुके चारों दिशाओंमें जठर आदि (वर्षपर्वत) स्थित हैं॥ ४०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

केतुमाल, भद्राश्व, रम्यकवर्ष तथा वहाँके निवासियोंका वर्णन, हरिवर्षमें स्थित विष्णुके विमानका वर्णन, जम्बूद्वीपके वर्णनमें भारतवर्षके कुलपर्वतों, महानदियों, जनपदों और वहाँके निवासियोंका वर्णन, भारतवर्षमें चार युगोंकी स्थितिका प्रतिपादन

सूत उवाच

केतुमाले नराः कालाः सर्वे पनसभोजनाः।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभा जीवन्ति च वर्षायुतम्॥ १ ॥

भद्राश्वे पुरुषाः शुक्लाः स्त्रियश्चन्द्रांशुसंनिभाः।
दश वर्षसहस्राणि जीवन्ते आम्रभोजनाः॥ २ ॥

रम्यके पुरुषा नार्यो रमन्ते रजतप्रभाः।
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजनाः॥ ३ ॥

हिरण्मये हिरण्याभाः सर्वे च लकुचाशनाः।
एकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति पुरुषा नार्यो देवलोकस्थिता इव॥ ४ ॥
त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति कुरुवर्षे तु श्यामाङ्गाः क्षीरभोजनाः॥ ५ ॥

सर्वे ते मैथुनाज्जाताः नित्यं सुखनिषेविनः।
चन्द्रद्वीपे महादेवं यजन्ति सततं शिवम्॥ ६ ॥

तथा किम्पुरुषे विप्रा मानवा हेमसंनिभाः।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजनाः॥ ७ ॥

यजन्ति सततं देवं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम्।
ध्याने मनः समाधाय सादरं भक्तिसंयुताः॥ ८ ॥

तथा च हरिवर्षे तु महारजतसंनिभाः।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिनः॥ ९ ॥

तत्र नारायणं देवं विश्वयोनिं सनातनम्।
उपासते सदा विष्णुं मानवा विष्णुभाविताः॥ १०॥

सूतजीने कहा—केतुमालवर्षके पुरुष कृष्णवर्णके होते हैं और सभी पनस (कटहल)-का भोजन करनेवाले होते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ कमलपत्रके समान वर्णवाली होती हैं। ये सभी दस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। भद्राश्ववर्षके पुरुष शुक्ल वर्णके होते हैं और स्त्रियाँ चन्द्रमाकी किरणों (चाँदनी)-के समान वर्णवाली होती हैं। ये सब आमका आहार करते हैं तथा दस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। रम्यकवर्षके पुरुष और स्त्रियाँ—सभी चाँदीकी प्रभाके समान दिखायी देते हैं। ये सत्त्वभावमें स्थित रहनेवाले होते हैं तथा बटवृक्षके फलका भोजन करते हैं और ग्यारह हजार पाँच सौ वर्षोंतक जीवित रहते हैं। हिरण्मयवर्षमें सोनेकी आभावाले निवास करते हैं, सभी लकुच (बड़हरके फल)-का भोजन करते हैं और बारह हजार पाँच सौ वर्षतक सभी स्त्री-पुरुष उसी प्रकार जीवित रहते हैं, जैसे कि देवलोकमें स्थित हों॥ १—४॥

कुरुवर्षमें दुग्धाहार करनेवाले श्यामवर्णके (स्त्री-पुरुष) चौदह हजार पाँच सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। वे सभी मैथुनसे उत्पन्न होते हैं, नित्य सुखोपभोगी होते हैं और चन्द्रद्वीपमें महादेव शिवकी निरन्तर उपासना करते हैं। हे विप्रो! इसी प्रकार किंपुरुषवर्षके मनुष्य स्वर्ण-वर्णके समान होते हैं। पाकड़ वृक्षके फलोंका भोजन करनेवाले ये दस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। ये भक्तियुक्त होकर आदरसहित मनको ध्यानमें समाधिस्थकर चतुर्मूर्ति चतुर्मुख देव (ब्रह्मा)-की निरन्तर उपासना करते रहते हैं। इसी प्रकार हरिवर्षमें रहनेवाले महारजत[1] (स्वर्ण)-के समान आभावाले होते हैं। वे दस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। ईखके रसका भोजन करते हैं। यहाँ ये मनुष्य विष्णुकी भावनासे भावित होकर विश्वयोनि नारायणदेव विष्णुकी सदा उपासना करते हैं॥ ५—१०॥

१-महारजत शब्द स्वर्णका पर्याय है। (अमरकोश २। ९। ९५)

तत्र चन्द्रप्रभं शुभ्रं शुद्धस्फटिकनिर्मितम्।
विमानं वासुदेवस्य पारिजातवनाश्रितम्॥ ११॥

चतुर्द्वारमनौपम्यं चतुस्तोरणसंयुतम्।
प्राकारैर्दशभिर्युक्तं दुराधर्षं सुदुर्गमम्॥ १२॥

स्फाटिकैर्मण्डपैर्युक्तं देवराजगृहोपमम्।
स्वर्णस्तम्भसहस्रैश्च सर्वतः समलंकृतम्॥ १३॥

हेमसोपानसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम्।
दिव्यसिंहासनोपेतं सर्वशोभासमन्वितम्॥ १४॥

सरोभिः स्वादुपानीयैर्नदीभिश्चोपशोभितम्।
नारायणपरैः शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परैः॥ १५॥

योगिभिश्च समाकीर्णं ध्यायद्भिः पुरुषं हरिम्।
स्तुवद्भिः सततं मन्त्रैर्नमस्यद्भिश्च माधवम्॥ १६॥
तत्र देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः।
राजानः सर्वकालं तु महिमानं प्रकुर्वते॥ १७॥

गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोरमाः।
स्त्रियो यौवनशालिन्यः सदा मण्डनतत्पराः॥ १८॥

इलावृते पद्मवर्णा जम्बूफलरसाशिनः।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां वै स्थिरायुषः॥ १९॥

भारते तु स्त्रियः पुंसो नानावर्णाः प्रकीर्तिताः।
नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्माणि कुर्वते।
परमायुः स्मृतं तेषां शतं वर्षाणि सुव्रताः॥ २०॥

नानाहाराश्च जीवन्ति पुण्यपापनिमित्ततः।
नवयोजनसाहस्रं वर्षमेतत् प्रकीर्तितम्।
कर्मभूमिरियं विप्रा नराणामधिकारिणाम्॥ २१॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः॥ २२॥
इन्द्रद्युम्नः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः॥ २३॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥ २४॥
पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्रास्तथैव च॥ २५॥

वहाँ पारिजातके वनमें शुद्ध स्फटिकका बना हुआ चन्द्रमाकी शुभ्र कान्तिके समान कान्तिवाला वासुदेवका एक विमान है। चार द्वारों, चार तोरणोंसे समन्वित तथा दस प्राकारोंसे युक्त (वह विमान) अनुपम, दुराधर्ष और दुर्गम है। यह स्फटिकके मण्डपोंसे युक्त देवराजके भवनके समान है तथा सभी ओरसे हजारों स्वर्ण-स्तम्भोंसे अलंकृत है। इसमें सोनेकी सीढ़ियाँ हैं। यह दिव्य सिंहासनोंसे समन्वित, सभी प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित है। स्वादिष्ट जलवाले सरोवरों और नदियोंसे शोभित है। वह स्थान नारायण-परायण, पवित्र, वेदाध्ययनमें तत्पर, पुरुष हरिका ध्यान करनेवाले लोगों तथा निरन्तर मन्त्रोंद्वारा माधवकी स्तुति करनेवाले और उन्हें नमस्कार करनेवाले योगियोंसे व्याप्त रहता है॥ ११—१६॥

वहाँ राजा लोग देवोंके आदिदेव अमित तेजस्वी विष्णुकी महिमाका सभी कालोंमें कीर्तन करते रहते हैं[१]। शृंगार करनेमें तत्पर युवावस्थावाली एवं विलासिनी मनोरम स्त्रियाँ यहाँ सदा नृत्य एवं गान करती रहती हैं। इलावृतवर्षमें कमलके समान वर्णवाले जामुनके फलके रसका सेवन करनेवाले तथा तेरह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले व्यक्ति निवास करते हैं। भारतवर्षके स्त्री और पुरुष अनेक वर्णके बताये गये हैं। ये विविध प्रकारके देवताओंकी आराधनामें निरत रहते हैं और अनेक प्रकारके कर्मोंको करते हैं। हे सुव्रतो! इनकी परम आयु सौ वर्षकी कही गयी है। अनेक प्रकारका आहार करनेवाले वे अपने पुण्य-पापके निमित्तसे जीवित रहते हैं। यह वर्ष नौ हजार योजन विस्तारवाला कहा गया है। हे विप्रो! यह अधिकारी पुरुषोंकी कर्मभूमि है॥ १७—२१॥

महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य तथा पारियात्र—ये सात कुलपर्वत यहाँ हैं। इन्द्रद्युम्न, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वारुण—(इन आठ द्वीपोंके अतिरिक्त) यह नवाँ द्वीप सागरसे घिरा हुआ है। यह द्वीप दक्षिणोत्तरमें एक हजार योजनमें फैला हुआ है। उसके पूर्वमें किरात, पश्चिममें यवन और मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रहते हैं॥ २२—२५॥

१ देवताओंके विमान एक अति श्रेष्ठ प्रासादके समान ही सभी सुविधाओंसे युक्त होते हैं—जैसे पुष्पक विमान, कपिलके द्वारा देवहूतिको दिया गया कामग विमान आदि।

इज्यायुद्धवाणिज्याभिर्वर्तयन्त्यत्र मानवाः।
स्त्रवन्ते पावना नद्यः पर्वतेभ्यो विनिःसृताः॥ २६॥
शतद्रुश्चन्द्रभागा च सरयूर्यमुना तथा।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः॥ २७॥
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती।
कौशिकी लोहिता चैव हिमवत्पादनिःसृताः॥ २८॥
वेदस्मृतिर्वेदवती व्रतघ्नी त्रिदिवा तथा।
पर्णाशा वन्दना चैव सदानीरा मनोरमा॥ २९॥
चर्मण्वती तथा दूर्या विदिशा वेत्रवत्यपि।
शिग्रुः स्वशिल्पापि तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः॥ ३०॥
नर्मदा सुरसा शोणा दशार्णा च महानदी।
मन्दाकिनी चित्रकूटा तामसी च पिशाचिका॥ ३१॥
चित्रोत्पला विपाशा च मञ्जुला वालुवाहिनी।
ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वपापहरा नृणाम्॥ ३२॥
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा च महानदी।
वेण्या वैतरणी चैव बलाका च कुमुद्वती॥ ३३॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥ ३४॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वर्णा च मत्सरी।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च द्विजोत्तमाः।
दक्षिणापथगा नद्यः सह्यपादविनिःसृताः॥ ३५॥
ऋतुमाला ताम्रपर्णी पुष्पवत्युत्पलावती।
मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः स्मृताः॥ ३६॥

ऋषिकुल्या त्रिसामा च मन्दगा मन्दगामिनी।
रूपा पालासिनी चैव ऋषिका वंशकारिणी।
शुक्तिमत्पादसंजाताः सर्वपापहरा नृणाम्॥ ३७॥
आसां नद्युपनद्यश्च शतशो द्विजपुंगवाः।
सर्वपापहराः पुण्याः स्नानदानादिकर्मसु॥ ३८॥
तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः॥ ३९॥
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्नशः।
तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथार्बुदाः॥ ४०॥
मालका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः।
सौवीराः सैन्धवा हूणा शाल्वाः कल्पनिवासिनः॥ ४१॥

यहाँके मनुष्य यज्ञ, युद्ध और वाणिज्यद्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं। (यहाँ) पर्वतोंसे निकली हुई पवित्र नदियाँ प्रवाहित होती हैं। शतद्रु, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी तथा लोहिता—ये सभी नदियाँ हिमालयकी तलहटीसे निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, व्रतघ्नी, त्रिदिवा, पर्णाशा, वन्दना, सदानीरा, मनोरमा, चर्मण्वती, दूर्या, विदिशा, वेत्रवती, शिग्रु तथा स्वशिल्पा—ये नदियाँ पारियात्र पर्वतका आश्रय लेनेवाली कही गयी हैं॥ २६—३०॥

नर्मदा, सुरसा, शोणा, दशार्णा, महानदी, मन्दाकिनी, चित्रकूटा, तामसी, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विपाशा, मञ्जुला तथा वालुवाहिनी नामक ये ऋक्षवान् पर्वतके नीचेके भागसे निकली हुई नदियाँ मनुष्योंके सभी पापोंका हरण करनेवाली हैं। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, शीघ्रोदा, महानदी, वेण्या, वैतरणी, बलाका, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिला नामकी ये नदियाँ विन्ध्यके निचले भागसे निकली हैं और शुभ हैं तथा पवित्र जलवाली हैं। हे द्विजोत्तमो! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वर्णा, मत्सरी, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा कावेरी—ये नदियाँ दक्षिणकी ओर जानेवाली तथा सह्यपर्वतके पादमूलसे निकली हैं॥ ३१—३५॥

ऋतुमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पवती और उत्पलावती—मलय पर्वतसे निकली ये सभी नदियाँ शीतल जलवाली कही गयी हैं। ऋषिकुल्या, त्रिसामा, मन्दगा, मन्दगामिनी, रूपा, पालासिनी, ऋषिका तथा वंशकारिणी—ये नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतके निम्न भागसे उत्पन्न हैं और मनुष्योंके सभी पापोंको हरण करनेवाली हैं॥ ३६-३७॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इन सभी (महानदियों)-की सैकड़ों नदियाँ और उपनदियाँ हैं, जो सभी पापोंको हरनेवाली तथा स्नान, दान आदि कर्मोंमें पवित्र हैं। उनमें ये कुरु, पाञ्चाल, मध्यदेश आदिके लोग, पूर्वके देशोंमें रहनेवाले, कामरूपके निवासी, पुण्ड्र, कलिङ्ग तथा मगध देशके लोग, समस्त दाक्षिणात्य तथा (इनके अतिरिक्त) सौराष्ट्रवासी, शूद्र, आभीर, अर्बुद (पर्वतीय जाति-विशेषके लोग), मालक, मालव, पारियात्रमें रहनेवाले, सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व, कल्पनिवासी,

मद्रा रामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकास्तथैव च।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा॥ ४२॥

मद्र, राम, अम्बष्ठ तथा पारसी लोग इन नदियोंके किनारे रहते हैं और इन (नदियों)-का जल पीते हैं॥ ३८—४२॥

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन्।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्॥ ४३॥

कवियों (मनीषियों)-ने भारतवर्षमें—कृत (सत्य), त्रेता, द्वापर तथा कलि—इन चार युगोंको बताया है। ये (युग) अन्यत्र कहीं नहीं होते॥ ४३॥

यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ महर्षयः।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयं न च॥ ४४॥

स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः।
रमन्ति विविधैर्भावैः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः॥ ४५॥

हे महर्षियो! किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें न शोक है, न परिश्रम है, न उद्वेग है और न भूखका भय है। (वहाँ) सारी प्रजा स्वस्थ, आतङ्करहित तथा सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त रहती है। सभी स्थिर यौवनवाले होते हैं और अनेक प्रकारके भावोंसे रमण करते रहते हैं॥ ४४-४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

विभिन्न पर्वतोंपर स्थित देवताओंके पुरोंका वर्णन तथा वहाँके निवासियों, नदियों, सरोवरों और भवनोंका वर्णन, जम्बूद्वीपके वर्णनका उपसंहार

सूत उवाच

हेमकूटगिरेः शृङ्गे महाकूटैः सुशोभनम्।
स्फाटिकं देवदेवस्य विमानं परमेष्ठिनः॥ १॥
अथ देवादिदेवस्य भूतेशस्य त्रिशूलिनः।
देवाः सिद्धगणा यक्षाः पूजां नित्यं प्रकुर्वते॥ २॥
स देवो गिरिशः सार्धं महादेव्या महेश्वरः।
भूतैः परिवृतो नित्यं भाति तत्र पिनाकधृक्॥ ३॥

सूतजी बोले—हेमकूट पर्वतके शिखरपर बड़े-बड़े गुंबदोंसे सुशोभित स्फटिकसे बना हुआ देवाधिदेव परमेष्ठी (शिव)-का एक विमान है। वहाँ देवता, सिद्धगण तथा यक्ष देवोंके आदिदेव भूतेश त्रिशूलीकी नित्य पूजा करते हैं। वे पिनाक धारण करनेवाले गिरिश महेश्वर महादेवीके साथ भूतगणोंसे आवृत होते हुए नित्य वहाँ सुशोभित होते हैं॥ १—३॥

विभक्तचारुशिखरः कैलासो यत्र पर्वतः।
निवासः कोटियक्षाणां कुबेरस्य च धीमतः।
तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतनं महत्॥ ४॥

मन्दाकिनी तत्र दिव्या रम्या सुविमलोदका।
नदी नानाविधैः पद्मैरनेकैः समलंकृता॥ ५॥

देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिंनरैः।
उपस्पृष्टजला नित्यं सुपुण्या सुमनोरमा॥ ६॥

जहाँ अलग-अलग सुन्दर शिखरोंवाला कैलास पर्वत है तथा जहाँ करोड़ों यक्षों तथा बुद्धिमान् कुबेरका निवास है, वहींपर देवाधिदेव शंकरका विशाल मन्दिर है। वहाँ नाना प्रकारके अनेक कमलोंसे अलंकृत अत्यन्त स्वच्छ जलवाली दिव्य एवं रमणीय मन्दाकिनी नदी है। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किंनर उस अत्यन्त पवित्र तथा मनोरम नदीके जलका नित्य स्पर्श (स्नान, आचमन आदि) करते हैं॥ ४—६॥

अन्याश्च नद्यः शतशः स्वर्णपद्मैरलंकृताः।
तासां कूलेषु देवस्य स्थानानि परमेष्ठिनः।
देवर्षिगणजुष्टानि तथा नारायणस्य च॥ ७॥

अन्य भी स्वर्णकमलोंसे सुशोभित वहाँ सैकड़ों नदियाँ हैं। इनके तटोंपर देवताओं तथा ऋषिगणोंसे सेवित परमेष्ठी देव और नारायणके मन्दिर हैं॥ ७॥

सितान्तशिखरे चापि पारिजातवनं शुभम्।
तत्र शक्रस्य विपुलं भवनं रत्नमण्डितम्।
स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं हेमगोपुरसंयुतम्॥ ८ ॥

तत्राथ देवदेवस्य विष्णोर्विश्वामरेशितुः।
सुपुण्यं भवनं रम्यं सर्वरत्नोपशोभितम्॥ ९ ॥

तत्र नारायणः श्रीमान् लक्ष्म्या सह जगत्पतिः।
आस्ते सर्वामरश्रेष्ठः पूज्यमानः सनातनः॥ १० ॥
तथा च वसुधारे तु वसूनां रत्नमण्डितम्।
स्थानानामष्टकं पुण्यं दुराधर्षं सुरद्विषाम्॥ ११ ॥

रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्।
सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि तु॥ १२ ॥

तत्र हैमं चतुर्द्वारं वज्रनीलादिमण्डितम्।
सुपुण्यं सुमहत् स्थानं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ १३ ॥
तत्र देवर्षयो विप्राः सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपरे।
उपासते सदा देवं पितामहमजं परम्॥ १४ ॥

स तैः सम्पूजितो नित्यं देव्या सह चतुर्मुखः।
आस्ते हिताय लोकानां शान्तानां परमा गतिः॥ १५ ॥
अथैकशृङ्गशिखरे महापद्मैरलंकृतम्।
स्वच्छामृतजलं पुण्यं सुगन्धं सुमहत् सरः॥ १६ ॥

जैगीषव्याश्रमं तत्र योगीन्द्रैरुपशोभितम्।
तत्रासौ भगवान् नित्यमास्ते शिष्यैः समावृतः।
प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्ब्रह्मविद्भिर्महात्मभिः॥ १७ ॥
शङ्खो मनोहरश्चैव कौशिकः कृष्ण एव च।
सुमना वेदनादश्च शिष्यास्तस्य प्रधानतः॥ १८ ॥
सर्वे योगरताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
उपासते महावीर्या ब्रह्मविद्यापरायणाः॥ १९ ॥
तेषामनुग्रहार्थाय यतीनां शान्तचेतसाम्।
सांनिध्यं कुरुते भूयो देव्या सह महेश्वरः॥ २० ॥
अन्यानि चाश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे।
मुनीनां युक्तमनसां सरांसि सरितस्तथा॥ २१ ॥
तेषु योगरता विप्रा जापकाः संयतेन्द्रियाः।
ब्रह्मण्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्पराः॥ २२ ॥

(हेमकूटके) अन्तिम शुभ्र शिखरपर पारिजात वृक्षोंका सुन्दर वन है। वहाँ स्फटिकोंसे बने हुए खम्भोंसे युक्त, स्वर्णसे बना गोपुरवाला इन्द्रका रत्नमण्डित एक विशाल भवन है। वहाँपर समस्त देवताओंके नियामक देवाधिदेव विष्णुका एक अत्यन्त पवित्र और रमणीय भवन है, जो सभी रत्नोंसे सुशोभित है। वहाँ संसारके स्वामी, सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, पूज्यमान, सनातन श्रीमान् नारायण लक्ष्मीके साथ निवास करते हैं॥ ८—१०॥

इसी प्रकार वसुधार नामक पर्वतपर (आठ) वसुओंके रत्नोंसे मण्डित, देवताओंसे द्वेष करनेवाले असुरोंके लिये अपराजेय पवित्र आठ स्थान हैं। रत्नधार नामक श्रेष्ठ पर्वतपर सिद्धोंके आवाससे युक्त महात्मा सप्तर्षियोंके पवित्र सात आश्रम हैं। वहाँ अव्यक्तजन्मा ब्रह्माका सोनेसे बना हुआ चार द्वारोंवाला, हीरे एवं नील मणि आदिसे मण्डित अत्यन्त पवित्र विशाल स्थान है॥ ११—१३॥

हे विप्रो! वहाँ देवर्षि, ब्रह्मर्षि, सिद्ध तथा दूसरे लोग अजन्मा परम पितामह देवकी सदा उपासना करते हैं। उनके द्वारा नित्य भलीभाँति पूजित शान्तचित्तवालोंके परम गतिरूप वे चतुर्मुख ब्रह्मा देवीके साथ लोकोंके कल्याणके लिये वहाँ रहते हैं॥ १४-१५॥

(उस हेमकूटके) एक ऊँचे शिखरपर महापद्मोंसे अलंकृत, सुगन्धित, स्वच्छ एवं अमृतके समान जलवाला एक पवित्र विशाल तालाब है। वहाँपर (महर्षि) जैगीषव्यका योगीन्द्रोंसे सुशोभित एक आश्रम है। शान्त दोषोंवाले महान् ब्रह्मविज्ञानी एवं महात्मास्वरूप शिष्योंसे आवृत भगवान् (जैगीषव्य) वहाँ नित्य निवास करते हैं॥ १६-१७॥

शङ्ख, मनोहर, कौशिक, कृष्ण, सुमना तथा वेदनाद उनके प्रधान शिष्य हैं। योगपरायण, शान्त, भस्मसे उपलिप्त शरीरवाले, महावीर्य (उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न) तथा ब्रह्मविद्या-परायण वे सभी (भगवान्‌की) उपासना करते हैं। उन शान्तचित्त यतियोंपर अनुग्रह करनेके लिये महेश्वर देवीके साथ (उस स्थानपर) निवास करते हैं॥ १८—२०॥

उस उत्तम गिरिश्रेष्ठपर योगयुक्त मनवाले मुनियोंके अन्य कई आश्रम तथा सरोवर और नदियाँ हैं। उनमें योग-परायण, जप करनेवाले, संयत इन्द्रियोंवाले एवं ब्रह्मनिष्ठ मनवाले, ज्ञानतत्पर विप्रगण रमण करते हैं

आत्मन्यात्मानमाधाय शिखान्तान्तरमास्थितम्।
ध्यायन्ति देवमीशानं येन सर्वमिदं ततम्॥ २३॥

सुमेघे वासवस्थानं सहस्रादित्यसंनिभम्।
तत्रास्ते भगवानिन्द्रः शच्या सह सुरेश्वरः॥ २४॥

गजशैले तु दुर्गाया भवनं मणितोरणम्।
आस्ते भगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी॥ २५॥

उपास्यमाना विविधैः शक्तिभेदैरितस्ततः।
पीत्वा योगामृतं लब्ध्वा साक्षादानन्दमैश्वरम्॥ २६॥

(समाधिस्थ रहते हैं)। (वे) स्वयंमें आत्मनिष्ठ होकर शिखाके अन्तिम मूलभाग(ब्रह्मरन्ध्र)-में स्थित ईशान देवका ध्यान करते हैं, जिनसे इस सम्पूर्ण (जगत्)-का विस्तार हुआ है। सुमेघ (नामक पर्वत)-पर हजारों सूर्योंके समान प्रकाशमान इन्द्रका एक स्थान है। देवताओंके राजा भगवान् इन्द्र शचीके साथ वहाँ निवास करते हैं। गजशैलपर दुर्गाका मणियोंसे बने तोरणवाला एक भवन है। साक्षात् महेश्वरी भगवती दुर्गा वहाँ निवास करती हैं। योगामृतका पान करके अर्थात् योगको आत्मसात् कर लेनेके कारण साक्षात् योगेश्वरी और (ईश्वर अर्धनारीश्वर महेश्वरकी अर्धाङ्गिनी होनेके कारण) ईश्वरका साक्षात् आनन्द प्राप्तकर विविध प्रकारकी शक्तियोंके रूपमें इतस्ततः उपासित होती रहती हैं॥ २१—२६॥

सुनीलस्य गिरेः शृङ्गे नानाधातुसमुज्ज्वले।
राक्षसानां पुराणि स्युः सरांसि शतशो द्विजाः॥ २७॥

तथा पुरशतं विप्रा शतशृङ्गे महाचले।
स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं यक्षाणाममितौजसाम्॥ २८॥

श्वेतोदरगिरेः शृङ्गे सुपर्णस्य महात्मनः।
प्राकारगोपुरोपेतं मणितोरणमण्डितम्॥ २९॥

स तत्र गरुडः श्रीमान् साक्षाद् विष्णुरिवापरः।
ध्यात्वास्ते तत् परं ज्योतिरात्मानं विष्णुमव्ययम्॥ ३०॥

हे द्विजो! विविध धातुओंसे देदीप्यमान सुनील पर्वतके शिखरपर राक्षसोंके नगर तथा सैकड़ों सरोवर हैं। विप्रो! इसी प्रकार शतशृंग नामक महान् पर्वतपर स्फटिक स्तम्भोंसे बने हुए अमित तेजस्वी यक्षोंके सौ नगर हैं। श्वेतोदर पर्वतके शिखरपर महात्मा सुपर्ण (गरुड)-का अनेक प्राकार और गोपुरोंसे युक्त तथा मणियोंसे बने तोरणोंसे मण्डित पुर है। वहाँ साक्षात् दूसरे विष्णुके समान वे श्रीमान् गरुड उन परम ज्योतिःस्वरूप आत्मरूप अव्यय विष्णुका ध्यान करते रहते हैं॥ २७—३०॥

अन्यच्च भवनं पुण्यं श्रीशृङ्गे मुनिपुंगवाः।
श्रीदेव्याः सर्वरत्नाढ्यं हैमं सुमणितोरणम्॥ ३१॥

तत्र सा परमा शक्तिर्विष्णोरतिमनोरमा।
अनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्सम्मोहनोत्सुका॥ ३२॥

अध्यास्ते देवगन्धर्वसिद्धचारणवन्दिता।
विचिन्त्य जगतो योनिं स्वशक्तिकिरणोज्ज्वला॥ ३३॥

तत्रैव देवदेवस्य विष्णोरायतनं महत्।
सरांसि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाश्रया॥ ३४॥

तथा सहस्रशिखरे विद्याधरपुराष्टकम्।
रत्नसोपानसंयुक्तं सरोभिश्चोपशोभितम्॥ ३५॥

मुनिश्रेष्ठो! श्रीशृंगपर श्रीदेवीका दूसरा भी एक पवित्र भवन है, जो सभी रत्नोंसे पूर्ण तथा स्वर्णसे बना हुआ है और सुन्दर मणियोंसे बने तोरणवाला है। वहाँ विष्णुकी अति मनोरम परम शक्ति (वे लक्ष्मी) संसारके मूल कारण (विष्णु)-का चिन्तन करती हुई विशेषरूपसे निवास करती हैं। वे लक्ष्मी अनन्त ऐश्वर्यवाली, संसारको मोहित करनेमें उत्सुक, देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे वन्दित हैं और अपनी शक्तिकी किरणोंसे प्रकाशित हैं। वहीं देवाधिदेव विष्णुका विशाल भवन है तथा वहींपर विचित्र कमलोंवाले चार सरोवर हैं। इसी प्रकार सहस्रशिखर (पर्वत)-पर रत्नोंकी सीढ़ियोंसे बने हुए और सरोवरोंसे सुशोभित विद्याधरोंके आठ पुर हैं॥ ३१—३५॥

नद्यो विमलपानीयाश्चित्रनीलोत्पलाकराः।
कर्णिकारवनं दिव्यं तत्रास्ते शंकरोमया॥ ३६॥

पारियात्रे महाशैले महालक्ष्म्याः पुरं शुभम्।
रम्यप्रासादसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम्॥ ३७॥

नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैरितश्चेतश्च शोभितम्।
मृदङ्गमुरजोद्घुष्टं वीणावेणुनिनादितम्॥ ३८॥

गन्धर्वकिंनराकीर्णं संवृतं सिद्धपुंगवैः।
भास्वद्भित्तिसमाकीर्णं महाप्रासादसंकुलम्॥ ३९॥

गणेश्वराङ्गनाजुष्टं धार्मिकाणां सुदर्शनम्।
तत्र सा वसते देवी नित्यं योगपरायणा॥ ४०॥

महालक्ष्मीर्महादेवी त्रिशूलवरधारिणी।
त्रिनेत्रा सर्वशक्तीभिः संवृता सदसन्मया।
पश्यन्ति तत्र मुनयः सिद्धा ये ब्रह्मवादिनः॥ ४१॥

सुपार्श्वस्योत्तरे भागे सरस्वत्याः पुरोत्तमम्।
सरांसि सिद्धजुष्टानि देवभोग्यानि सत्तमाः॥ ४२॥

पाण्डुरस्य गिरेः शृङ्गे विचित्रद्रुमसंकुले।
गन्धर्वाणां पुरशतं दिव्यस्त्रीभिः समावृतम्॥ ४३॥

तेषु नित्यं मदोत्सिक्ता वरनार्यस्तथैव च।
क्रीडन्ति मुदिता नित्यं विलासैर्भोगतत्पराः॥ ४४॥

अञ्जनस्य गिरेः शृङ्गे नारीणां पुरमुत्तमम्।
वसन्ति तत्राप्सरसो रम्भाद्या रतिलालसाः॥ ४५॥

चित्रसेनादयो यत्र समायान्त्यर्थिनः सदा।
सा पुरी सर्वरत्नाढ्या नैकप्रस्त्रवणैर्युता॥ ४६॥

अनेकानि पुराणि स्युः कौमुदे चापि सुव्रताः।
रुद्राणां शान्तरजसामीश्वरार्पितचेतसाम्॥ ४७॥

तेषु रुद्रा महायोगा महेशान्तरचारिणः।
समासते परं ज्योतिरारूढाः स्थानमुत्तमम्॥ ४८॥

वहाँ स्वच्छ जलवाली नदियाँ तथा अनेक प्रकारके प्रफुल्लित नीलकमल हैं और कर्णिकारका[1] एक दिव्य वन है, उमाके साथ शंकर वहाँ विराजमान रहते हैं। पारियात्र नामक महाशैलपर महालक्ष्मीका सुन्दर पुर है, जो रमणीय प्रासादोंसे युक्त, घण्टा एवं चामरसे अलंकृत, इतस्ततः नृत्य करती हुई अप्सराओंके समूहसे सुशोभित, मृदंग एवं मुरजकी ध्वनिसे गुञ्जित, वीणा तथा वेणुकी झंकारसे निनादित, गन्धर्व तथा किंनरोंसे आकीर्ण, श्रेष्ठ सिद्धोंसे आवृत, चमकते हुए दीवालोंसे पूर्ण, बड़े-बड़े महलोंसे घनीभूत, गणेश्वरोंकी अङ्गनाओंसे सेवित और धार्मिक जनोंके द्वारा सरलतापूर्वक प्रत्यक्ष करने योग्य है। वहाँ योगपरायण, श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाली, तीन नेत्रवाली, सभी शक्तियोंसे आवृत और सदसन्मयी देवी महालक्ष्मी महादेवी नित्य निवास करती हैं। वहाँ जो ब्रह्मवादी मुनि और सिद्ध हैं—वे उनका दर्शन करते हैं॥ ३६—४१॥

सुपार्श्वके उत्तरभागमें सरस्वतीका उत्तम पुर है। श्रेष्ठ जनो! वहाँ देवताओंके उपभोग करने योग्य तथा सिद्धोंसे सेवित अनेक सरोवर हैं। पाण्डुर पर्वतके शिखरपर अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए और दिव्य स्त्रियोंसे परिपूर्ण गन्धर्वोंके सौ पुर हैं। उनमें अनेक प्रकारके भोगोंमें तत्पर और काम-मदसे उन्मत्त श्रेष्ठ स्त्रियाँ तथा पुरुष अनेक प्रकारके विलासोंद्वारा भोगमें तत्पर रहते हैं और प्रसन्नतापूर्वक सदा क्रीडा (मनोविनोद) करते रहते हैं॥ ४२—४४॥

अञ्जनगिरिके शिखरपर स्त्रियोंका श्रेष्ठ पुर है, जिसमें रतिकी इच्छा करनेवाली रम्भा आदि अप्सराएँ निवास करती हैं। चित्रसेन आदि (गन्धर्व) जहाँ सदा अभिलाषीके रूपमें आया करते हैं, वह पुरी सभी रत्नोंसे परिपूर्ण तथा अनेक झरनोंसे सम्पन्न है॥ ४५-४६॥

हे सुव्रतो! कौमुद (पर्वत)-पर भी शान्त रजोगुणवाले (रजोगुणके कारण होनेवाली चंचलतासे रहित) तथा शंकरमें अर्पित चित्तवाले रुद्रोंके अनेक पुर हैं, उनमें परम ज्योति अर्थात् परब्रह्मका प्रत्यक्ष करनेवाले तथा महेशके अन्तरमें विचरण करनेवाले महायोगी रुद्रगण रहते हैं, यह स्थान बहुत उत्तम है॥ ४७-४८॥

१-कर्णिकार—वृक्षविशेष, कठचम्पा या कर्णियार नामसे कई जगहोंमें प्रसिद्ध।

पिञ्जरस्य गिरेः शृङ्गे गणेशानां पुरत्रयम्।
नन्दीश्वरस्य कपिले तत्रास्ते सुयशा यतिः॥ ४९॥

तथा च जारुधेः शृङ्गे देवदेवस्य धीमतः।
दीप्तमायतनं पुण्यं भास्करस्यामितौजसः॥ ५०॥

तस्यैवोत्तरदिग्भागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम्।
रमते तत्र रम्योऽसौ भगवान् शीतदीधितिः॥ ५१॥

पिञ्जर गिरिके शिखरपर गणेशोंके तीन पुर तथा (वहीं) कपिल(शिखर)-पर नन्दीश्वरकी पुरी है, वहाँ उत्तम यशवाले यतिगण निवास करते हैं। इसी प्रकार जारुधि पर्वतके शिखरपर अमित तेजस्वी बुद्धिमान् देवाधिदेव भास्करका दीप्तियुक्त पवित्र भवन है। उसीके उत्तर दिग्भागमें चन्द्रमाका उत्तम स्थान है, वहाँ शीत किरणोंवाले ये रम्य भगवान् (चन्द्रमा) रहते हैं॥ ४९—५१॥

अन्यच्च भवनं दिव्यं हंसशैले महर्षयः।
सहस्रयोजनायामं सुवर्णमणितोरणम्॥ ५२॥

तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसङ्घैरभिष्टुतः।
सावित्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युतः॥ ५३॥

तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धानां पुरमुत्तमम्।
सनन्दनादयो यत्र वसन्ति मुनिपुंगवाः॥ ५४॥

हे महर्षियो! हंसशैलपर एक दूसरा दिव्य भवन है, जो एक हजार योजन विस्तारवाला है और सुवर्ण तथा मणिसे निर्मित तोरणवाला है। वहाँ सिद्धोंके समूहसे सेवित और वासुदेव आदिसे युक्त विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा सावित्रीके साथ रहते हैं। उसके दक्षिण दिग्विभागमें सिद्धोंका श्रेष्ठ पुर है, जहाँ सनन्दन आदि श्रेष्ठ मुनि रहते हैं॥ ५२—५४॥

पञ्चशैलस्य शिखरे दानवानां पुरत्रयम्।
नातिदूरेण तस्याथ दैत्याचार्यस्य धीमतः॥ ५५॥
सुगन्धशैलशिखरे सरिद्भिरुपशोभितम्।
कर्दमस्याश्रमं पुण्यं तत्रास्ते भगवानृषिः॥ ५६॥

पञ्चशैलके शिखरपर दानवोंके तीन पुर हैं। उसके समीप ही सुगन्ध शैलके शिखरपर दैत्योंके आचार्य बुद्धिमान् भगवान् कर्दम ऋषिका नदियोंसे सुशोभित एक पवित्र आश्रम है॥ ५५-५६॥

तस्यैव पूर्वदिग्भागे किञ्चिद् वै दक्षिणाश्रिते।
सनत्कुमारो भगवांस्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तमः॥ ५७॥

सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः।
सरांसि विमला नद्यो देवानामालयानि च॥ ५८॥

सिद्धलिङ्गानि पुण्यानि मुनिभिः स्थापितानि तु।
वन्यान्याश्रमवर्याणि संख्यातुं नैव शक्नुयाम्॥ ५९॥

एष संक्षेपतः प्रोक्तो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं मया वर्षशतैरपि॥ ६०॥

उसीके पूर्व दिग्भागमें कुछ दक्षिण दिशाकी ओर ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार रहते हैं। हे मुनीश्वरो! इन सभी शैलों तथा अन्य शैलोंमें भी अनेक सरोवर, स्वच्छ जलवाली नदियाँ और देवताओंके भवन हैं। वहाँ जो मुनियोंद्वारा स्थापित पवित्र सिद्ध लिङ्ग, वन तथा श्रेष्ठ आश्रम हैं, उनकी गणना मैं नहीं कर सकता। यह संक्षेपमें जम्बूद्वीपका विस्तार बतलाया गया, सैकड़ों वर्षोंमें भी मैं इसके विस्तारका वर्णन नहीं कर सकता॥ ५७—६०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

प्लक्ष आदि महाद्वीपों, वहाँके पर्वतों, नदियों तथा निवासियोंका वर्णन, श्वेतद्वीपमें स्थित नारायणपुरका वर्णन, वहाँ वैकुण्ठमें रहनेवाले लक्ष्मीपति शेषशायी नारायणकी महिमाका ख्यापन

सूत उवाच

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
संवेष्टयित्वा क्षारोदं प्लक्षद्वीपो व्यवस्थितः॥ १॥
प्लक्षद्वीपे च विप्रेन्द्राः सप्तासन् कुलपर्वताः।
ऋज्वायताः सुपर्वाणः सिद्धसङ्घनिषेविताः॥ २॥
गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्र उच्यते।
नारदो दुन्दुभिश्चैव सोमश्च ऋषभस्तथा।
वैभ्राजः सप्तमः प्रोक्तो ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभः॥ ३॥
तत्र देवर्षिगन्धर्वैः सिद्धैश्च भगवानजः।
उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वसृक्॥ ४॥
तेषु पुण्या जनपदा नाधयो व्याधयो न च।
न तत्र पापकर्तारः पुरुषा वा कथञ्चन॥ ५॥

सूतजी बोले—जम्बूद्वीपके विस्तारसे दुगुने विस्तारमें चारों ओरसे क्षार सागरको आवृतकर प्लक्षद्वीप स्थित है। श्रेष्ठ विप्रो! प्लक्षद्वीपमें सीधे विस्तारवाले, सुन्दर पर्वोंवाले तथा सिद्धोंके समूहोंसे सेवित सात कुलपर्वत हैं। उनमें गोमेद पहला है, दूसरा चन्द्र पर्वत कहलाता है। इसी प्रकार नारद, दुन्दुभि, सोम, ऋषभ तथा सातवाँ वैभ्राज नामक पर्वत कहा गया है, जो ब्रह्माको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ देवर्षियों, गन्धर्वों तथा सिद्धोंके द्वारा सबके साक्षी, विश्वकी सृष्टि करनेवाले विश्वात्मा भगवान् अज (ब्रह्मा)-की उपासना की जाती है॥ १—४॥

तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणां तु समुद्रगाः।
तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते॥ ६॥
अनुतप्ता शिखी चैव विपापा त्रिदिवा कृता।
अमृता सुकृता चैव नामतः परिकीर्तिताः॥ ७॥
क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याताः सरांसि सुबहून्यपि।
न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः॥ ८॥

उन (पर्वतों)-में पवित्र जनपद हैं। वहाँ न कोई आधि है, न कोई व्याधि। वहाँ रहनेवाले पुरुष किसी भी प्रकारका पाप नहीं करते हैं। समुद्रकी ओर जानेवाली उन वर्षपर्वतोंकी सात नदियाँ हैं, उनमें ब्रह्मर्षि नित्य पितामहकी उपासना करते हैं। (वे नदियाँ) अनुतप्ता, शिखी, विपापा, त्रिदिवा, कृता, अमृता और सुकृता नामवाली कही गयी हैं॥ ५—७॥

आर्यकाः कुरवाश्चैव विदशा भाविनस्तथा।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन् द्वीपे प्रकीर्तिताः॥ ९॥
इज्यते भगवान् सोमो वर्णैस्तत्र निवासिभिः।
तेषां च सोमसायुज्यं सारूप्यं मुनिपुंगवाः॥ १०॥

इनके अतिरिक्त असंख्य छोटी-छोटी नदियाँ तथा बहुतसे सरोवर भी वहाँपर हैं। यहाँ (सत्य, त्रेता आदि रूपमें) युगोंकी व्यवस्था नहीं है और सभी पुरुष दीर्घायु होते हैं। इस द्वीपमें आर्यक, कुरव, विदश तथा भावी नामक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कहे गये हैं॥ ८-९॥

सर्वे धर्मपरा नित्यं नित्यं मुदितमानसाः।
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः॥ ११॥

प्लक्षद्वीपप्रमाणं तु द्विगुणेन समन्ततः।
संवेष्ट्येक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः॥ १२॥
सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तैव कुलपर्वताः।
ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुव्रताः॥ १३॥

हे मुनिश्रेष्ठो! यहाँ रहनेवाले विभिन्न वर्णवालोंके द्वारा भगवान् सोमकी पूजा की जाती है, उन्हें सोमका सायुज्य और सारूप्य (नामक मोक्ष) प्राप्त होता है। वहाँके सभी लोग नित्य धर्मपरायण और नित्य प्रसन्नचित्त रहते हैं तथा रोगरहित होकर पाँच हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। प्लक्षद्वीपके दुगुने प्रमाणमें चारों ओर इक्षुरसके समुद्रको आवेष्टितकर शाल्मलि नामक द्वीप स्थित है। वहाँ भी सात वर्ष और सात ही कुलपर्वत हैं, (वे पर्वत) सीधे फैले हुए और सुन्दर पर्वोंवाले हैं। हे सुव्रतो! (वहाँ) सात नदियाँ भी हैं॥ १०—१३॥

कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः।
द्रोणः कङ्कस्तु महिषः ककुद्मान् सप्त पर्वताः॥ १४॥

योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचिनी।
निवृत्तिश्चेति ता नद्यः स्मृता पापहरा नृणाम्॥ १५॥

न तेषु विद्यते लोभः क्रोधो वा द्विजसत्तमाः।
न चैवास्ति युगावस्था जना जीवन्त्यनामयाः॥ १६॥

यजन्ति सततं तत्र वर्णा वायुं सनातनम्।
तेषां तस्याथ सायुज्यं सारूप्यं च सलोकता॥ १७॥
कपिला ब्राह्मणाः प्रोक्ता राजानश्चारुणास्तथा।
पीता वैश्याः स्मृताः कृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजाः॥ १८॥
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धिं कुशद्वीपो व्यवस्थितः॥ १९॥
विद्रुमश्चैव हेमश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा।
कुशेशयो हरिश्चाथ मन्दरः सप्त पर्वताः॥ २०॥
धुतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मता तथा।
विद्युदम्भा मही चेति नद्यस्तत्र जलावहाः॥ २१॥
अन्याश्च शतशो विप्रा नद्यो मणिजलाः शुभाः।
तासु ब्रह्माणमीशानं देवाद्याः पर्युपासते॥ २२॥

ब्राह्मणा द्रविणो विप्राः क्षत्रियाः शुष्मिणस्तथा।
वैश्याः स्नेहास्तु मन्देहाः शूद्रास्तत्र प्रकीर्तिताः॥ २३॥

सर्वे विज्ञानसम्पन्ना मैत्रादिगुणसंयुताः।
यथोक्तकारिणः सर्वे सर्वे भूतहिते रताः॥ २४॥

यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
तेषां च ब्रह्मसायुज्यं सारूप्यं च सलोकता॥ २५॥

कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
क्रौञ्चद्वीपस्ततो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम्॥ २६॥
क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः।
देवावृच्च विविन्दश्च पुण्डरीकस्तथैव च।
नाम्ना च सप्तमः प्रोक्तः पर्वतो दुन्दुभिस्वनः॥ २७॥
गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः॥ २८॥

पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्यास्तस्य क्रमेण वै।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तमाः॥ २९॥

कुमुद, उन्नत, तीसरा बलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष तथा ककुद्मान्—ये सात (कुल) पर्वत हैं। योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचिनी तथा निवृत्ति—ये सात नदियाँ मनुष्योंका पाप हरण करनेवाली कही गयी हैं। हे द्विजश्रेष्ठो! उनमें (यहाँके निवासियोंमें) न लोभ है, न क्रोध है और न (यहाँ) युगकी व्यवस्था ही है। यहाँके सभी लोग रोगरहित होकर जीवित रहते हैं। यहाँके सभी वर्णोंके लोग निरन्तर सनातन वायुदेवका यजन करते हैं, इन्हें उन (वायुदेव)-का सायुज्य, सारूप्य तथा सालोक्य (नामक मोक्ष) प्राप्त होता है॥ १४—१७॥

हे द्विजो! इस (शाल्मलि) द्वीपमें ब्राह्मण कपिल वर्णके और क्षत्रिय अरुण वर्णके कहे गये हैं। वैश्य पीतवर्णके तथा वृषल (शूद्र) कृष्ण वर्णके बतलाये गये हैं। शाल्मलद्वीपके दुगुने विस्तारमें चारों ओरसे सुरोदसागरको आवेष्टित कर कुशद्वीप स्थित है। विद्रुम, हेम, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि तथा मन्दर—ये सात (कुल) पर्वत हैं। यहाँ धुतपापा, शिवा, पवित्रा, संमता, विद्युदम्भा और मही (नामक) जलसे पूर्ण नदियाँ हैं॥ १८—२१॥

हे विप्रो! यहाँ मणिके समान स्वच्छ जलवाली अन्य भी सैकड़ों नदियाँ हैं। इनमें देवता आदि ईशान ब्रह्माकी उपासना करते हैं। विप्रो! वहाँके ब्राह्मण द्रविण, क्षत्रिय शुष्मिण, वैश्य स्नेह तथा शूद्र मन्देह कहे गये हैं। यहाँके सभी लोग विशिष्ट ज्ञानसे सम्पन्न, मैत्री आदि गुणोंसे समन्वित, विहित कर्मोंको करनेवाले तथा सभी प्राणियोंके हित-चिन्तनमें लगे रहते हैं। ये विविध यज्ञोंद्वारा परमेष्ठी ब्रह्माका यजन करते हैं और उन्हें ब्रह्माका सायुज्य, सारूप्य तथा सालोक्य (मोक्ष) प्राप्त होता है॥ २२—२५॥

हे विप्रो! कुशद्वीपके दुगुने विस्तारमें चारों ओर घृतसमुद्रको आवेष्टित करके क्रौञ्चद्वीप स्थित है। क्रौञ्च, वामनक, अन्धकारक, देवावृत्, विविन्द, पुण्डरीक तथा दुन्दुभिस्वन नामक सात पर्वत यहाँ कहे गये हैं। गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति तथा पुण्डरीक—ये प्रधान नदियाँ यहाँ कही गयी हैं। हे द्विजोत्तमो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—ये क्रमशः पुष्कर, पुष्कल, धन्य तथा तिष्य नामसे यहाँ कहे जाते हैं॥ २६—२९॥

अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानसमाधिभिः।
व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैः स्वाध्यायतर्पणैः॥ ३०॥

तेषां वै रुद्रसायुज्यं सारूप्यं चातिदुर्लभम्।
सलोकता च सामीप्यं जायते तत्प्रसादतः॥ ३१॥

ये यज्ञ, दान, समाधि, व्रत, उपवास, विविध होम, स्वाध्याय एवं तर्पणद्वारा महादेवकी अर्चना करते हैं। इन्हें महादेवकी कृपासे उनका (रुद्रका) अति दुर्लभ सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य तथा सामीप्य (मोक्ष) प्राप्त होता है॥ ३०-३१॥

क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
शाकद्वीपः स्थितो विप्रा आवेष्ट्य दधिसागरम्॥ ३२॥
उदयो रैवतश्चैव श्यामाकोऽस्तगिरिस्तथा।
आम्बिकेयस्तथा रम्यः केशरी चेति पर्वताः॥ ३३॥
सुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका तथा।
इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिश्चेति निम्नगाः॥ ३४॥
आसां पिबन्तः सलिलं जीवन्ते तत्र मानवाः।
अनामया ह्यशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः॥ ३५॥

हे विप्रो! क्रौञ्चद्वीपके दुगुने विस्तारमें चारों ओरसे दधिसमुद्रको आवृतकर शाकद्वीप स्थित है। (यहाँ) उदय, रैवत, श्यामाक, अस्तगिरि, आम्बिकेय, रम्य तथा केशरी—ये पर्वत हैं। यहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षुका, धेनुका और गभस्ति—ये नदियाँ हैं। इनका जल पीकर यहाँके मनुष्य (सुखमय) जीवन व्यतीत करते हैं। ये रोगरहित, शोकविहीन और राग-द्वेषसे मुक्त रहते हैं॥ ३२—३५॥

मगाश्च मगधाश्चैव मानवा मन्दगास्तथा।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चात्र क्रमेण तु॥ ३६॥
यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम्।
व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम्॥ ३७॥
तेषां सूर्येण सायुज्यं सामीप्यं च सरूपता।
सलोकता च विप्रेन्द्रा जायते तत्प्रसादतः॥ ३८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये क्रमशः मग, मगध, मानव तथा मन्दग कहलाते हैं। ये सभी लोकोंके एकमात्र साक्षी देवाधिदेव सूर्यदेवका विविध व्रत एवं उपवासोंद्वारा निरन्तर यजन करते हैं। हे विप्रेन्द्रो! सूर्यके अनुग्रहसे इन्हें उनकी सायुज्यता, सामीप्यता, सारूप्यता और सालोक्यता प्राप्त होती है॥ ३६—३८॥

शाकद्वीपं समावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः।
श्वेतद्वीपश्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः॥ ३९॥

तत्र पुण्या जनपदा नानाश्चर्यसमन्विताः।
श्वेतास्तत्र नरा नित्यं जायन्ते विष्णुतत्पराः॥ ४०॥

शाकद्वीपको आवृत करके क्षीरोद सागर स्थित है, उसके मध्यमें श्वेतद्वीप है। वहाँ नारायण-परायण लोग रहते हैं। वहाँ नाना आश्चर्योंसे समन्वित अनेक पवित्र जनपद हैं। वहाँके मनुष्य श्वेतवर्णके और नित्य विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं॥ ३९-४०॥

नाधयो व्याधयस्तत्र जरामृत्युभयं न च।
क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्जिताः॥ ४१॥

नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः।
नारायणपराः सर्वे नारायणपरायणाः॥ ४२॥

केचिद् ध्यानपरा नित्यं योगिनः संयतेन्द्रियाः।
केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद् विज्ञानिनोऽपरे॥ ४३॥

अन्ये निर्बीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविताः।
ध्यायन्ति तत् परं व्योम वासुदेवं परं पदम्॥ ४४॥

एकान्तिनो निरालम्बा महाभागवताः परे।
पश्यन्ति परमं ब्रह्म विष्ण्वाख्यं तमसः परम्॥ ४५॥

वहाँ न कोई आधि-व्याधि है, न वृद्धावस्था है तथा न मृत्युका भय ही है। सभी लोग नारायणके भक्त तथा क्रोध-लोभसे रहित, माया एवं मात्सर्यसे मुक्त, नित्य पुष्ट, आतङ्करहित, नित्य आनन्दयुक्त, भोग करनेवाले तथा नारायण-परायण रहते हैं। वहाँके कुछ निवासी जितेन्द्रिय एवं नित्य ध्यानपरायण योगी हैं, कोई जप करते हैं, कोई तप करते हैं और कुछ लोग विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न हैं। दूसरे निर्बीज योगके द्वारा ब्रह्मभावसे भावित होकर उन परम व्योमरूप, परमपद वासुदेवका ध्यान करते हैं। कुछ दूसरे अनन्यचेता, अन्य आश्रयरहित महाभागवत लोग तम (अज्ञान)-से परे विष्णु नामक परम ब्रह्मका दर्शन करते हैं॥ ४१—४५॥

सर्वे चतुर्भुजाकाराः शङ्खचक्रगदाधराः।
सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः॥ ४६॥

ये सभी चार भुजाओंवाले, शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले, सुन्दर पीताम्बर धारण करनेवाले एवं श्रीवत्ससे अङ्कित वक्षःस्थलवाले हैं॥ ४६॥

अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः।
स्वयोगोद्भूतकिरणा महागरुडवाहनाः॥ ४७॥
सर्वशक्तिसमायुक्ता नित्यानन्दाश्च निर्मलाः।
वसन्ति तत्र पुरुषा विष्णोरन्तरचारिणः॥ ४८॥

अन्य (कुछ) लोग महेश्वरके भक्त हैं। वे मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं। वे अपने योगसे उत्पन्न रश्मियोंसे लोकको प्रकाशित करते हैं और महागरुड उनके वाहन हैं। सभी शक्तियोंसे सम्पन्न, नित्य आनन्दसे पूर्ण, शुद्धान्तःकरण तथा विष्णुके अन्तरमें विचरण करनेवाले पुरुष वहाँ रहते हैं॥ ४७-४८॥

तत्र नारायणस्यान्यद् दुर्गमं दुरतिक्रमम्।
नारायणं नाम पुरं व्यासाद्यैरुपशोभितम्॥ ४९॥
हेमप्राकारसंयुक्तं स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम्।
प्रभासहस्रकलिलं दुराधर्षं सुशोभनम्।
हर्म्यप्राकारसंयुक्तमट्टालकसमाकुलम् ॥ ५०॥
हेमगोपुरसाहस्रैर्नानारत्नोपशोभितैः।
शुभ्रास्तरणसंयुक्तं विचित्रैः समलंकृतम्॥ ५१॥
नन्दनैर्विविधाकारैः स्रवन्तीभिश्च शोभितम्।
सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणावेणुनिनादितम्॥ ५२॥
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम्।
वीथीभिः सर्वतो युक्तं सोपानै रत्नभूषितैः॥ ५३॥

वहाँ व्यास आदिसे सुशोभित नारायणका दूसरा दुर्गम तथा दुर्लङ्घ्य नारायण नामक एक पुर है। वह पुर सोनेके परकोटेसे युक्त, स्फटिकके मण्डपोंसे समन्वित, हजारों प्रकारकी प्रभाओंसे अलंकृत, अत्यन्त सुन्दर और दुराधर्ष है तथा सोनेके प्रासादोंसे युक्त एवं अनेक बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंसे व्याप्त है। वह पुर स्वर्णसे बने हजारों विचित्र गोपुरों[१] और नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित है, साथ ही वह स्वच्छ आसनोंसे युक्त एवं विविध प्रकारसे अलंकृत है। वह पुर विविध प्रकारके उद्यानों और नदियोंसे शोभित है। सब ओरसे सरोवरोंसे युक्त और वीणा तथा वेणुकी ध्वनिसे निनादित है। विचित्र प्रकारकी अनेक पताकाओंसे शोभित है। सब ओरसे वीथियों और रत्नसे विभूषित सीढ़ियोंसे युक्त है॥ ४९—५३॥

नारीशतसहस्राढ्यं दिव्यगेयसमन्वितम्।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
चतुर्द्वारमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम्॥ ५४॥
तत्र तत्राप्सरःसङ्घैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम्।
नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभैः॥ ५५॥
नानाविलाससम्पन्नैः कामुकैरतिकोमलैः।
प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसंयुतैः ॥ ५६॥
ईषत्स्मितैः सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणैः।
अशेषविभवोपेतैर्भूषितैस्तनुमध्यमैः ॥ ५७॥
सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरस्वनैः।
संलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितैः ॥ ५८॥

सैकड़ों, हजारों स्त्रियोंसे सम्पन्न तथा दिव्य गानसे समन्वित है। हंस एवं सारस पक्षियोंसे व्याप्त है, चक्रवाकोंसे सुशोभित है। उसमें अनुपमेय चार द्वार हैं तथा वह सुरद्वेषी असुरोंके लिये अगम्य है। (वह पुर) विविध प्रकारके गीतोंको जाननेवाले देवताओंके लिये भी दुर्लभ, नाना विलासोंसे सम्पन्न, कामके अभिलाषी, अतिकोमल, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले, नूपुरकी ध्वनिसे युक्त, मन्द मुसकानवाले, सुन्दर बिम्बके समान ओठवाले, मुग्ध मृगशावकके समान नेत्रवाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, अलंकृत, क्षीण कटिभागवाले, राजहंसके समान सुन्दर चालवाले, अच्छे वेषवाले, मधुर स्वरवाले, बोल-चालमें प्रवीण, दिव्य अलङ्कारोंसे

१-गोपुर—नगरका बड़ा फाटक अथवा फाटक मात्र।

स्तनभारविनम्रैश्च मदघूर्णितलोचनैः।
नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः ॥ ५९ ॥

विभूषित, स्तनके भारसे कुछ झुके हुए, मदके कारण चञ्चल नेत्रोंवाले, अनेक वर्णोंके अङ्गरागसे सुशोभित अङ्गोंवाले, नाना प्रकारके भोग और रतिमें अनुराग रखनेवालों और जहाँ-तहाँ नृत्य करते हुए अप्सरा-समूहोंसे सुशोभित हैं॥ ५४—५९॥

प्रफुल्लकुसुमोद्यानैरितश्चेतश्च शोभितम्।
असंख्येयगुणं शुद्धमगम्यं त्रिदशैरपि॥ ६०॥

श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः।
तस्य मध्येऽतितेजस्कमुच्चप्राकारतोरणम्॥ ६१॥

स्थानं तद् वैष्णवं दिव्यं योगिनामपि दुर्लभम्।
तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः।
शेतेऽशेषजगत्सूतिः शेषाहिशयने हरिः॥ ६२॥

प्रफुल्लित फूलोंवाले इधर-उधर विद्यमान सुन्दर उद्यानोंसे सुशोभित असंख्य गुणोंवाला वह पवित्र पुर देवताओंके लिये भी अगम्य है। अमित तेजस्वी लक्ष्मीपति (विष्णु) देवका वह पुर श्रीसे सम्पन्न और पवित्र है। उसके मध्यमें अत्यन्त तेजसे सम्पन्न, ऊँचे प्राकार तथा तोरणोंसे युक्त और योगियोंके लिये भी दुर्लभ विष्णुका दिव्य स्थान है। उसके मध्यमें कमलदलके समान द्युतिवाले, सम्पूर्ण जगत्‌के उत्पादक, भगवान् हरि शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं॥ ६०—६२॥

विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः।
स्वात्मानन्दामृतं पीत्वा परं तत् तमसः परम्॥ ६३॥

सुपीतवसनोऽनन्तो महामायो महाभुजः।
क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः॥ ६४॥

सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया।
समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम्॥ ६५॥

स्वात्मानन्दरूपी अमृतका पान करते हुए सनन्दन आदि योगीन्द्रोंद्वारा तमोगुणसे अतीत श्रेष्ठ उन (श्रीहरि)-का चिन्तन किया जाता है। क्षीरसागरकी कन्या लक्ष्मी सुन्दर पीताम्बर धारण करनेवाले, अनन्त, महामायाके अधिपति तथा महान् भुजाओंवाले विष्णुके दोनों चरण नित्य पकड़े रहती हैं। जगत्‌की वन्दनीया हरिप्रिया वे देवी नारायणामृतका पानकर उन्हींमें मन लगाकर उनके चरणमूलमें नित्य विराजमान रहती हैं॥ ६३—६५॥

न तत्राधार्मिका यान्ति न च देवान्तराश्रयाः।
वैकुण्ठं नाम तत् स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम्॥ ६६॥

न मेऽत्र भवति प्रज्ञा कृत्स्नशस्तन्निरूपणे।
एतावच्छक्यते वक्तुं नारायणपुरं हि तत्॥ ६७॥

स एव परमं ब्रह्म वासुदेवः सनातनः।
शेते नारायणः श्रीमान् मायया मोहयञ्जगत्॥ ६८॥

नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेव व्यवस्थितम्।
तमेवाभ्येति कल्पान्ते स एव परमा गतिः॥ ६९॥

वहाँ (श्वेतद्वीपके नारायणपुरमें) न अधार्मिक जा पाते हैं और न दूसरे देवका आश्रय ग्रहण करनेवाले। देवताओंसे भी वन्दित वह स्थान वैकुण्ठ नामसे प्रसिद्ध है। उसका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करनेमें मेरी बुद्धि समर्थ नहीं है। उस नारायणपुरका मैं इतना ही वर्णन कर सकता हूँ। परम ब्रह्म सनातन वासुदेव श्रीमान् नारायण अपनी मायाद्वारा संसारको मोहित करते हुए वहाँ शयन करते हैं। यह सब कुछ नारायणसे ही उत्पन्न है, उन्हींमें स्थित है और कल्पान्तमें उन्हींको प्राप्त होता है। वे ही परम गति हैं॥ ६६—६९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

पुष्करद्वीपकी स्थिति तथा विस्तारका वर्णन, संक्षेपमें अव्यक्तसे सृष्टिका प्रतिपादन

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थितः।
क्षीरार्णवं समाश्रित्य द्वीपः पुष्करसंवृतः॥ १॥
एक एवात्र विप्रेन्द्राः पर्वतो मानसोत्तरः।
योजनानां सहस्राणि सार्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः॥ २॥
स एव द्वीपः पश्चार्धे मानसोत्तरसंज्ञितः।
एक एव महासानुः संनिवेशाद् द्विधा कृतः॥ ३॥
तस्मिन् द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ।
अपरौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ।
महावीतं स्मृतं वर्षं धातकीखण्डमेव च॥ ४॥
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः।
तस्मिन् द्वीपे महावृक्षो न्यग्रोधोऽमरपूजितः॥ ५॥

सूतजी बोले—शाकद्वीपके दुगुने विस्तारमें क्षीरसागरके आश्रित पुष्कर नामक द्वीप स्थित है। हे विप्रेन्द्रो! यहाँ मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यह साढ़े पचास हजार योजन ऊँचा है और चारों ओर विस्तारमें इसका परिमण्डल अर्थात् घेरा भी उतने ही परिमाणका है। इस द्वीपके ही पश्चिमकी ओर आधे भागमें मानसोत्तर नामसे एक ही महापर्वत अपनी विशेष स्थितिके कारण दो भागोंमें बँटा है। इस द्वीपमें दो शुभ एवं पवित्र जनपद कहे गये हैं। वे दोनों मानस पर्वतके अनु-मण्डल हैं। (ये) महावीत तथा धातकी खण्ड नामक वर्ष कहे गये हैं। पुष्करद्वीप (स्वादूदक समुद्र) स्वादिष्ट जलवाले समुद्रसे चारों ओरसे घिरा है। उस द्वीपमें देवताओंद्वारा पूजित न्यग्रोध (वट)-का एक महान् वृक्ष है॥ १—५॥

तस्मिन् निवसति ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः।
तत्रैव मुनिशार्दूलाः शिवनारायणालयः॥ ६॥

वसत्यत्र महादेवो हरोऽर्धहरिरव्ययः।
सम्पूज्यमानो ब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभिः।
गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैरीश्वरः कृष्णपिङ्गलः॥ ७॥

स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्वा ब्रह्मणा सदृशत्विषः।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः॥ ८॥

सत्यानृते न तत्रास्तां नोत्तमाधममध्यमाः।
न वर्णाश्रमधर्माश्च न नद्यो न च पर्वताः॥ ९॥

परेण पुष्करस्याथ समावृत्य स्थितो महान्।
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमाः॥ १०॥

उसी (द्वीप)-में विश्वभावन विश्वात्मा ब्रह्मा रहते हैं। मुनिश्रेष्ठो! वहींपर शिवनारायणका मन्दिर है। यहाँ आधे भागमें हर (एवं आधेमें) अव्यय हरिके रूपमें (अर्थात् हरिहरात्मक रूपमें) महादेव निवास करते हैं। यहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं, कुमार (सनत्कुमार) आदि योगियों, गन्धर्वों तथा किंनरों एवं यक्षोंद्वारा ईश्वर कृष्णपिङ्गल पूजित होते हैं। यहाँकी सारी प्रजा स्वस्थ है, ब्रह्माके समान प्रभावान् है और रोग, शोक, राग तथा द्वेषसे रहित है। वहाँ सत्य, असत्य, उत्तम, मध्यम, अधम (-का विभेद) नहीं है। न वर्णाश्रम धर्म है, न नदियाँ हैं और न पर्वत हैं। हे द्विजसत्तमो! पुष्कर द्वीपके परे उसे चारों ओरसे घेरते हुए महान् स्वादूदक सागर स्थित है॥ ६—१०॥

परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः।
काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैव शिलोपमा॥ ११॥

तस्याः परेण शैलस्तु मर्यादात्मात्ममण्डलः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते॥ १२॥

योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः।
तावानेव च विस्तारो लोकालोको महागिरिः॥ १३॥

उसके अनन्तर महती लोकस्थिति दिखलायी पड़ती है। वहाँकी द्विगुणित समस्त भूमि स्वर्णमयी और शिलाके समान है। उसके आगे सूर्यमण्डलकी मर्यादास्वरूप एक मर्यादा पर्वत है। (इसका एक भाग) प्रकाशित (तथा दूसरा) अप्रकाशित रहता है। इसीलिये वह लोकालोक (पर्वत) कहलाता है, लोकालोक नामक इस महान् पर्वतकी ऊँचाई दस हजार योजन कही गयी है और उतना ही इसका विस्तार (फैलाव) भी है॥ ११—१३॥

समावृत्य तु तं शैलं सर्वतो वै तमः स्थितम्।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम्॥ १४॥

एते सप्त महालोकाः पाताला: सप्त कीर्तिताः।
ब्रह्माण्डस्यैष विस्तारः संक्षेपेण मयोदितः॥ १५॥

अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः।
सर्वगत्वात् प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः॥ १६॥
अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश।
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रा नारायणादयः॥ १७॥

दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम्।
समन्तात् संस्थितं विप्रा यत्र यान्ति मनीषिणः॥ १८॥

अनन्तमेकमव्यक्तमनादिनिधनं महत्।
अतीत्य वर्तते सर्वं जगत् प्रकृतिरक्षरम्॥ १९॥

अनन्तत्वमनन्तस्य यतः संख्या न विद्यते।
तदव्यक्तमिति ज्ञेयं तद् ब्रह्म परमं पदम्॥ २०॥
अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते।
तस्य पूर्वं मयाप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमव्ययम्॥ २१॥
गतः स एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु वर्तते।
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः॥ २२॥
तथा तमसि सत्त्वे च एष एव महाद्युतिः।
अनेकधा विभक्ताङ्गः क्रीडते पुरुषोत्तमः॥ २३॥
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत्॥ २४॥

इस पर्वतको सभी ओरसे आवृतकर अन्धकार स्थित है और यह अन्धकार अण्डकटाह (चारों ओर विद्यमान ब्रह्माण्डरूपी कटाह)-के द्वारा चारों ओरसे परिवेष्टित है। यह अण्डकटाह ही सात महालोक और सात पातालके रूपमें प्रसिद्ध है। मैंने संक्षेपमें ब्रह्माण्डका यह विस्तार बतलाया। प्रधान, कारणरूप और अव्ययात्माके सर्वव्यापी होनेके कारण इस प्रकारके हजारों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं, ऐसा समझना चाहिये॥ १४—१६॥

इन सभी ब्रह्माण्डोंमें चौदह भुवन होते हैं, इन सभीमें चतुर्मुख ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि होते हैं। हे विप्रो! (ब्रह्माण्डके) चारों ओर सात आवरण हैं, वे परिमाणमें क्रमशः एक दूसरेसे दस गुना अधिक हैं। यहाँ मनीषी लोग जाते हैं। अनन्त, अद्वितीय, अव्यक्त, अनादिनिधन, महत् और जगत्के प्रकृतिस्वरूप अक्षर (ब्रह्म) इन सभी (आवरणों)- का अतिक्रमण-कर विद्यमान रहते हैं। इनकी कोई संख्या नहीं होती, इसीलिये इन्हें अनन्त कहा जाता है। इन्हें ही अव्यक्त समझना चाहिये। ये ही ब्रह्म परम पद (अन्तिम प्राप्तव्य) हैं॥ १७—२०॥

ये अनन्त सर्वत्र सभी स्थानोंमें हैं, ऐसा कहा गया है। इनका जो अव्यय माहात्म्य है, मैंने भी पूर्वमें उसका वर्णन किया है। वही ये (परमात्मा) ही भूमि, रसातल, आकाश, वायु, अग्नि, सभी समुद्रों तथा स्वर्ग— सर्वत्र, सभी स्थानोंमें विद्यमान हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। ये ही महाद्युतिमान् पुरुषोत्तम अन्धकार तथा (प्रकाशात्मा) सत्त्वमें विद्यमान होते हुए अपने अङ्गोंको अनेक रूपोंमें विभक्तकर क्रीडा करते हैं। महेश्वर अव्यक्तसे परे हैं। अण्ड अव्यक्तसे उत्पन्न होता है। अण्डसे ब्रह्मा उत्पन्न हैं और उन्होंने इस संसारकी सृष्टि की है॥ २१—२४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

स्वारोचिषसे वैवस्वत मन्वन्तरतकके देवता, सप्तर्षि, इन्द्र आदिका वर्णन, नारायणद्वारा ही विभिन्न मन्वन्तरोंमें सृष्टि आदिका प्रतिपादन, भगवान् विष्णुकी चार मूर्तियोंका विवेचन, विष्णुका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि तु।
तानि त्वं कथयास्माकं व्यासांश्च द्वापरे युगे॥ १ ॥
वेदशाखाप्रणयनं देवदेवस्य धीमतः।
तथावतारान् धर्मार्थमीशानस्य कलौ युगे॥ २ ॥
कियन्तो देवदेवस्य शिष्याः कलियुगेषु वै।
एतत् सर्वं समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥ ३ ॥

सूत उवाच

मनुः स्वायम्भुवः पूर्वं ततः स्वारोचिषो मनुः।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ ४ ॥
षडेते मनवोऽतीता साम्प्रतं तु रवेः सुतः।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत् सप्तमं वर्ततेऽन्तरम्॥ ५ ॥
स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु॥ ६ ॥
पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे।
विपश्चिन्नाम देवेन्द्रो बभूवासुरसूदनः॥ ७ ॥
ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोऽथ वृषभस्तथा।
तिमिरश्चार्वरीवांश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ ८ ॥
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुताः स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं शृणु चोत्तरम्॥ ९ ॥
तृतीयेऽप्यन्तरे विप्रा उत्तमो नाम वै मनुः।
सुशान्तिस्तत्र देवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः॥ १०॥
सुधामानस्तथा सत्याः शिवाश्चाथ प्रतर्दनाः।
वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकाः स्मृताः॥ ११॥
रजोर्ध्वश्चोर्ध्वबाहुश्च सबलश्चानयस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ १२॥
तामसस्यान्तरे देवाः सुरा वाहरयस्तथा।
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः॥ १३॥
शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः।
बभूव शंकरे भक्तो महादेवार्चने रतः॥ १४॥

ऋषियोंने कहा—(सूतजी!) आप हमें बीते हुए तथा आनेवाले जो मन्वन्तर हैं, उन्हें (बतलाइये) और द्वापर युगके व्यासोंको भी बतलायें। सूतजी! वेदकी शाखाओंका प्रणयन कैसे हुआ, धर्म (-की स्थापना)-के लिये कलियुगमें हुए देवाधिदेव बुद्धिमान् ईशान (व्यास)-के कितने अवतार हुए और कलियुगोंमें देवाधिदेव (व्यास)-के कितने शिष्य हुए—यह सब भी आप संक्षेपमें बतलायें॥ १—३॥

सूतजी बोले—पहले स्वायम्भुव मनु थे। तदनन्तर स्वारोचिष मनु हुए। पुनः उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष मनु हुए। ये छः बीते हुए मनु हैं। इस समय सूर्यके पुत्र वैवस्वतका यह सातवाँ मन्वन्तर प्रवृत्त है। कल्पके आदिमें होनेवाले स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन मैंने किया। इसके अनन्तर स्वारोचिष मनुका वर्णन सुनो॥ ४—६॥

स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत तथा तुषित नामके देवता और असुरोंका विनाश करनेवाले विपश्चित् नामके देवेन्द्र हुए। ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, दान्त, वृषभ, तिमिर और अर्वरीवान्—ये सात सप्तर्षि हुए॥ ७-८॥

स्वारोचिषके चैत्र और किंपुरुष आदि पुत्र थे। इस प्रकार दूसरे मन्वन्तरको मैंने बतलाया, अब इसके परवर्ती (मन्वन्तर)-का वर्णन सुनिये। हे विप्रो! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामके मनु और शत्रुनाशक सुशान्ति नामवाले देवेन्द्र हुए। सुधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वशवर्ती—बारह-बारह देवताओंवाले—ये पाँच गण कहे गये हैं। रज, ऊर्ध्व, ऊर्ध्वबाहु, सबल, अनय, सुतपा और शुक्र—ये सात सप्तर्षि हुए॥ ९—१२॥

तामस मन्वन्तरमें सुर, वाहरि, सत्य तथा सुधी—ये सत्ताईस-सत्ताईसकी संख्यावाले गणदेवता थे। इसी प्रकार सौ यज्ञोंको करनेवाले शिबि नामक इन्द्र थे। वे शंकरके भक्त और महादेवकी आराधनामें रत रहते थे॥ १३-१४॥

ज्योतिर्धर्मा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा।
पीवरस्त्वृषयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे॥ १५॥
पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः।
मनुर्वसुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः॥ १६॥
अमिताभा भूतरया वैकुण्ठाः स्वच्छमेधसः।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश॥ १७॥
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथैव च।
वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः।
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन् रैवतेऽन्तरे॥ १८॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः॥ १९॥

उस मन्वन्तरमें भी ज्योतिर्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर नामक—ये सात ऋषि हुए। विप्रेन्द्रो! पाँचवें मन्वन्तरमें रैवत नामवाले मनु और असुरोंका मर्दन करनेवाले वसु नामवाले इन्द्र हुए। अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और स्वच्छमेधा—ये चौदह-चौदहकी संख्यावाले (चार) गणदेवता थे। हे विप्रो! रैवत मन्वन्तरमें हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—ये सप्तर्षि हुए। स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत—ये चार मनु प्रियव्रतके वंशज कहे जाते हैं॥ १५—१९॥

षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषस्तु मनुर्द्विजाः।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोधत॥ २०॥
आद्याः प्रसूता भाव्याश्च पृथुगाश्च दिवौकसः।
महानुभावा लेख्याश्च पञ्चैते ह्यष्टका गणाः॥ २१॥
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधुः।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्नृषयः शुभाः॥ २२॥

हे द्विजो! छठे मन्वन्तरके मनु चाक्षुष हैं। इस मन्वन्तरके इन्द्रका नाम मनोजव है। (अब) देवताओंको सुनो—आद्य, प्रसूत, भाव्य, पृथुग और लेख्य—ये पाँच महानुभाव आठ-आठकी संख्यावाले देवताओंके गण हैं। सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनाम और सहिष्णु—ये सात कल्याणकारी ऋषि हैं॥ २०—२२॥

विवस्वतः सुतो विप्राः श्राद्धदेवो महाद्युतिः।
मनुः स वर्तते धीमान् साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे॥ २३॥

आदित्या वसवो रुद्रा देवास्तत्र मरुद्गणाः।
पुरंदरस्तथैवेन्द्रो बभूव परवीरहा॥ २४॥

वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतमः।
विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ २५॥

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ।
तदंशभूता राजानः सर्वे च त्रिदिवौकसः॥ २६॥

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाकूत्यां मानसः सुतः।
रुचेः प्रजापतेर्यज्ञस्तदंशेनाभवद् द्विजाः॥ २७॥

ततः पुनरसौ देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे।
तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैः सह दैवतैः॥ २८॥

विप्रो! विवस्वान्‌के पुत्र बुद्धिमान् एवं महान् तेजस्वी श्राद्धदेव इस समय सातवें मन्वन्तरके मनु हैं। आदित्य, वसुगण, रुद्र तथा मरुद्गण इसमें देवता हैं। इसी प्रकार वीर शत्रुओंका नाश करनेवाले पुरन्दर नामवाले (इस मन्वन्तरके) इन्द्र हैं। वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं। (इस मन्वन्तरमें) विष्णुकी अनुपम सत्त्वगुणमयी शक्ति (सृष्टि)-की रक्षाके लिये स्थित है। सभी राजा और सभी देवगण इसी (विष्णुशक्ति)-के अंशसे उत्पन्न हैं। द्विजो! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सर्वप्रथम प्रजापति रुचिका आकूति (नामक पत्नी)-से यज्ञ नामक मानस पुत्र हुआ, यह विष्णुका अंश था। तदनन्तर पुनः वे ही देव (विष्णु) स्वारोचिष मन्वन्तरके आनेपर तुषितासे तुषित नामके देवताओंके साथ उत्पन्न हुए॥ २३—२८॥

औत्तमेऽप्यन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमैः।
सत्यायामभवत् सत्यः सत्यरूपो जनार्दनः॥ २९॥

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि।
हर्यायां हरिभिर्देवैर्हरिरेवाभवद्धरिः॥ ३०॥

औत्तम मन्वन्तरमें सत्यरूप जनार्दन विष्णु सत्य नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ सत्य नामधारी सत्यासे उत्पन्न हुए और तामस नामक मन्वन्तर आनेपर साक्षात् ये हरि ही हरि नामक देवताओंके साथ हर्यासे हरि इस नामसे उत्पन्न हुए॥ २९-३०॥

रैवतेऽप्यन्तरे चैव सम्भूत्यां मानसोऽभवत्।
सम्भूतो मानसैः सार्धं देवैः सह महाद्युतिः॥ ३१॥

चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैव वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैः सह॥ ३२॥

मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे।
वामनः कश्यपाद् विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह॥ ३३॥

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम्॥ ३४॥

इत्येतास्तनवस्तस्य सप्त मन्वन्तरेषु वै।
सप्त चैवाभवन् विप्रा याभिः संरक्षिताः प्रजाः॥ ३५॥

यस्माद् विष्टमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना।
तस्मात् स वै स्मृतो विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्॥ ३६॥

एष सर्वं सृजत्यादौ पाति हन्ति च केशवः।
भूतान्तरात्मा भगवान् नारायण इति श्रुतिः॥ ३७॥

एकांशेन जगत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।
चतुर्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च॥ ३८॥

एका भगवतो मूर्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला।
वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला॥ ३९॥

द्वितीया कालसंज्ञान्या तामसी शेषसंज्ञिता।
निहन्ति सकलं चान्ते वैष्णवी परमा तनुः॥ ४०॥

सत्त्वोद्रिक्ता तथैवान्या प्रद्युम्नेति च संज्ञिता।
जगत् स्थापयते सर्वं स विष्णुः प्रकृतिर्ध्रुवा॥ ४१॥

चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्तिर्ब्राह्मीति संज्ञिता।
राजसी चानिरुद्धाख्या प्रद्युम्नः सृष्टिकारिका॥ ४२॥

यः स्वपित्यखिलं भूत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभुः।
नारायणाख्यो ब्रह्माऽसौ प्रजासर्गं करोति सः॥ ४३॥

या सा नारायणतनुः प्रद्युम्नाख्या मुनीश्वराः।
तया सम्मोहयेद् विश्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ४४॥

रैवत मन्वन्तरमें भी मानस नामक देवताओंके साथ महान् द्युतिमान् हरि सम्भूतिसे मानस नामसे उत्पन्न हुए। चाक्षुष मन्वन्तरमें भी वे पुरुषोत्तम वैकुण्ठ नामक देवताओंके साथ विकुण्ठासे वैकुण्ठ नामसे उत्पन्न हुए और वैवस्वत नामक मन्वन्तर आनेपर वे विष्णु कश्यप और अदितिसे वामन नामसे उत्पन्न हुए। इन्हीं महात्माने अपने तीन पगोंसे समस्त लोकोंको जीतकर पुरन्दर इन्द्रको निष्कण्टक त्रैलोक्य (-का राज्य) प्रदान किया॥ ३१—३४॥

हे विप्रो! सात मन्वन्तरोंमें ये ही सात उन (विष्णु)-के विग्रह हुए, जिनसे प्रजाओंकी रक्षा हुई। महात्मा वामनने इस सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त किया था, इसीलिये 'विश्' धातुका प्रवेश अर्थ होनेके कारण वे (वामन) विष्णु कहलाये। ये केशव प्रारम्भमें समस्त प्रपञ्चकी सृष्टि करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं और (अन्तमें) उसका संहार करते हैं। भगवान् नारायण सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं—ऐसा वेदका कथन है॥ ३५—३७॥

ये नारायण अपने एक अंशसे सम्पूर्ण संसारको व्याप्तकर प्रतिष्ठित रहते हैं। ये निर्गुण होते हुए भी सगुण रूपसे चार भागोंमें विभक्त होकर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हैं। (ये ही चार भाग भगवान् नारायणकी चार मूर्तियाँ हैं। इनमें) भगवान्‌की वासुदेव नामवाली पहली मूर्ति ज्ञानरूप, कल्याणकारिणी, निर्मल, गुणातीत और कलारहित है। दूसरी काल और शेष नामवाली वह तामसी मूर्ति विष्णुकी परम विग्रहरूपा मूर्ति है। यही अन्तमें सबका संहार करती है। इसी प्रकार सत्त्वगुणमयी प्रद्युम्न नामवाली अन्य (तीसरी) मूर्ति सम्पूर्ण जगत्‌की स्थापना (पालन) करती है, यही विष्णुकी ध्रुवा प्रकृति है। इन तीनों मूर्तियोंके अतिरिक्त वासुदेवकी ब्राह्मी तथा अनिरुद्ध नामवाली चौथी राजसी मूर्ति है, यह प्रद्युम्न नामक मूर्ति सृष्टि करनेवाली है॥ ३८—४२॥

जो प्रभु सम्पूर्ण (सृष्टि)-के रूपमें होकर प्रद्युम्नके साथ शयन करते हैं, नारायण नामवाले वे ही ब्रह्मा प्रजाकी सृष्टि करते हैं। मुनीश्वरो! वह जो प्रद्युम्न नामवाली नारायणकी मूर्ति है, उसके द्वारा वे (नारायण) देवता, असुर तथा मनुष्योंसे युक्त विश्वको मोहित करते हैं॥ ४३-४४॥

सैव सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिः परिकीर्तिता।
वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणो हरिः॥ ४५॥

प्रधानं पुरुषं कालस्तत्त्वत्रयमनुत्तमम्।
वासुदेवात्मकं नित्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते॥ ४६॥

वही सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न करनेवाली प्रकृति कहे गये हैं। अनन्तात्मा वासुदेव हरि अद्वितीय एवं निर्गुण हैं। प्रधान, पुरुष और काल—ये श्रेष्ठ तीन तत्त्व नित्य वासुदेवमय हैं। इनको जान लेनेपर मुक्ति हो जाती है॥ ४५-४६॥

एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्धा पुनरच्युतः।
बिभेद वासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो हरिरव्ययः॥ ४७॥
कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम्।
अपान्तरतमाः पूर्वं स्वेच्छया ह्यभवद्धरिः॥ ४८॥

अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः।
एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः॥ ४९॥

उन अच्युत वासुदेव नामक प्रद्युम्न अव्यय हरिने चतुष्पादात्मक एक वेदको चार भागोंमें विभक्त किया। पूर्वकालमें स्वयं अपान्तरतमा[1] नारायण हरि विष्णु ही स्वेच्छासे कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। आदि और अन्तरहित परम ब्रह्मको न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही, एकमात्र प्रभु नारायणरूप ये भगवान् व्यास ही उन्हें जानते हैं॥ ४७—४९॥

इत्येतद् विष्णुमाहात्म्यमुक्तं वो मुनिपुंगवाः।
एतत् सत्यं पुनः सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति॥ ५०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने आप लोगोंको यह विष्णुका माहात्म्य बतलाया, यह सत्य है, पुनः सत्य है, ऐसा जाननेसे मोह नहीं होता॥ ५०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

अट्ठाईस व्यासोंका वर्णन, अट्ठाईसवें कृष्णद्वैपायनद्वारा वेदसंहिताका विभाजन तथा पुराणेतिहासकी रचना, वेदकी शाखाओंका विस्तार तथा विष्णुके माहात्म्यका कथन

सूत उवाच

अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं वर्तमाने महान् विभुः।
द्वापरे प्रथमे व्यासो मनुः स्वायम्भुवो मतः॥ १॥
बिभेद बहुधा वेदं नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः॥ २॥
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे स्याद् बृहस्पतिः।
सविता पञ्चमे व्यासः षष्ठे मृत्युः प्रकीर्तितः॥ ३॥
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः॥ ४॥
एकादशे तु त्रिवृषः शततेजास्ततः परः।
त्रयोदशे तथा धर्मस्तरक्षुस्तु चतुर्दशे॥ ५॥

सूतजी बोले—इस वर्तमान मन्वन्तरके प्रारम्भिक प्रथम द्वापरमें महान् विभु स्वायम्भुव मनुको व्यास माना गया है। प्रभु ब्रह्माकी आज्ञासे उन्होंने वेदका अनेक प्रकारसे विभाजन किया। दूसरे द्वापरमें प्रजापति वेदव्यास हुए। तीसरेमें शुक्राचार्य व्यास हुए और चौथेमें बृहस्पति (व्यास) हुए। पाँचवेंमें सूर्य व्यास हुए और छठेमें मृत्युको व्यास कहा गया है। इसी प्रकार सातवेंमें इन्द्र और आठवेंमें वसिष्ठ (व्यास) माने गये हैं। नवेंमें सारस्वत तथा दसवेंमें त्रिधामा (व्यास) माने गये हैं। ग्यारहवेंमें त्रिवृष तदनन्तर (बारहवेंमें) शततेजा, तेरहवेंमें धर्म और चौदहवेंमें तरक्षु (व्यास) कहे गये हैं॥ १—५॥

१-अपान्तरतमा—यह आर्षप्रयोग 'अप्=जलके अन्तरतम अर्थात् जलके अन्तस्तलमें शयन करनेवालेके' अर्थमें हो सकता है। यदि 'अपारान्ततमा' पाठ हो तो जिनका अन्ततम=सर्वान्तिम शेष अपार है—अगम्य है—यह अर्थ मानकर प्रस्तुत प्रसंग समञ्जस हो सकता है।

त्र्यारुणिर्वै पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः।
कृतञ्जयः सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जयः॥ ६ ॥

ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वं तु गौतमः।
राजश्रवाश्चैकविंशस्तस्माच्छुष्मायणः परः॥ ७ ॥

तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृतः।
पञ्चविंशे तथा शक्तिः षड्विंशे तु पराशरः॥ ८ ॥
सप्तविंशे तथा व्यासो जातूकर्णो महामुनिः।
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः।
पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत्॥ ९ ॥
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः।
पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरिः॥ १० ॥
आराध्य देवमीशानं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम्।
तत्प्रसादादसौ व्यासं वेदानामकरोत् प्रभुः॥ ११ ॥
अथ शिष्यान् प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान्।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च।
पैलं तेषां चतुर्थं च पञ्चमं मां महामुनिः॥ १२ ॥
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च॥ १३ ॥

जैमिनिं सामवेदस्य श्रावकं सोऽन्वपद्यत।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत्॥ १४ ॥
एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूद् यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥ १५ ॥

आध्वर्यवं यजुर्भिः स्यादृग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः॥ १६ ॥

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः॥ १७ ॥

एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखानां तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत्॥ १८ ॥

पंद्रहवेंमें त्र्यारुणि, सोलहवेंमें धनंजय, सत्रहवेंमें कृतंजय और अठारहवेंमें ऋतंजयको व्यास कहा गया है। तदनन्तर (उन्नीसवेंमें) भरद्वाज व्यास हुए। उससे आगे (बीसवेंमें) गौतम हुए। राजश्रवा इक्कीसवें (द्वापर)-में और फिर (बाईसवेंमें) श्रेष्ठ शुष्मायण व्यास हुए। तेईसवेंमें तृणबिन्दु और उसके बाद (चौबीसवेंमें) वाल्मीकिको व्यास कहा गया है। पच्चीसवेंमें शक्ति और छब्बीसवेंमें पराशर ही व्यास हुए॥ ६—८॥

हे द्विजो! सत्ताईसवेंमें महामुनि जातूकर्ण व्यास हुए और फिर इस अट्ठाईसवें द्वापर युगमें पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। वे ही सभी वेदों और पुराणोंके प्रदर्शक हैं। पराशरके पुत्र महायोगी कृष्णद्वैपायन हरिने पार्वतीके साथ त्रिलोचन शंकरकी आराधना करके उनका दर्शन किया और उन्हींके अनुग्रहसे उन प्रभु व्यासने वेदोंका विभाग किया। तदनन्तर उन महामुनिने वेदके पारंगत चार शिष्योंको ग्रहण किया। (ये चार शिष्य) जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन और चौथे पैल हैं। मुझे अपना पाँचवाँ शिष्य बनाया॥ ९—१२॥

उन महामुनिने ऋग्वेदके श्रोता पैलको ऋग्वेद और यजुर्वेदके प्रवक्ता वैशम्पायनको यजुर्वेद ग्रहण कराया। इसी तरह उन्होंने सामवेदके श्रोता जैमिनिको सामवेद तथा अथर्ववेदके श्रोता ऋषिश्रेष्ठ सुमन्तुको अथर्ववेदका ग्रहण कराया। ऐसे ही इतिहास तथा पुराणोंके प्रवचनमें मुझे श्रीकृष्णद्वैपायनने नियुक्त किया॥ १३-१४॥

(प्रारम्भमें) यजुर्वेद एक ही था। उसका चार भाग हुआ। उसीसे चातुर्होत्रकी उत्पत्ति हुई और उससे (श्रीव्यासने) यज्ञ किया। द्विजोत्तमो! (उस यज्ञमें) यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा अध्वर्युसे सम्बद्ध कर्म, ऋक्-मन्त्रोंसे होताका कर्म, साममन्त्रोंसे उद्गाताका कर्म और अथर्वमन्त्रोंके द्वारा ब्रह्माका कर्म सम्पन्न हुआ। तदनन्तर उन प्रभुने ऋचाओंको अलग कर ऋग्वेदका प्रणयन किया। इसी प्रकार यजुर्मन्त्रोंके समूहको यजुर्वेद[1] और साममन्त्रोंके समूहको सामवेदसंहिता बनायी। पहले उन्होंने ऋग्वेदको इक्कीस भागों (शाखाओं)-में और यजुर्वेदको सौ शाखाओंमें विभक्त किया॥ १५—१८॥

१-यहाँ यजुर्वेद एवं सामवेदसे यजुःसंहिता एवं सामसंहिता समझनी चाहिये। वेदका दूसरा भाग 'ब्राह्मण' होता है। वह केवल मन्त्रोंका संग्रह नहीं है। 'वेद' शब्द मन्त्र एवं ब्राह्मण—दोनोंका बोधक होता है।

सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रबिभेद सः।
अथर्वाणमथो वेदं बिभेद नवकेन तु॥ १९॥

इसी प्रकार उन्होंने सामवेदको हजार शाखाओंमें विभक्त किया तथा अथर्ववेदको नौ भागों (शाखाओं)-में बाँटा॥ १९॥

भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः।
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनात्॥ २०॥

ओङ्कारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः।
वेदवेद्यो हि भगवान् वासुदेवः सनातनः॥ २१॥

स गीयते परो वेदे यो वेदैनं स वेदवित्।
एतत् परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम्॥ २२॥

वेदवाक्योदितं तत्त्वं वासुदेवः परं पदम्।
वेदवेद्यमिमं वेत्ति वेदं वेदपरो मुनिः॥ २३॥

प्रभु व्यासने पुराणसंहिताके अठारह भेद किये। पूर्वकालमें सभी दोषोंको दूर करनेवाला पुरातन वही चतुष्पाद प्रणवरूप एक वेद ब्रह्मासे आविर्भूत हुआ। सनातन भगवान् वासुदेव वेदोंद्वारा जानने योग्य हैं। वेदोंद्वारा उन्हीं परम (पुरुष)-का गान किया जाता है। जो इन्हें (परम पुरुषको) जानता है, वही वेदको जाननेवाला है। ये ही परात्पर ब्रह्म, ज्योतिरूप और श्रेष्ठ आनन्द हैं। वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित तत्त्व वासुदेव ही परमपद हैं। वेदपरायण मुनि वेदोंद्वारा जानने योग्य इन्हीं (वासुदेवरूप) वेदको जानते हैं॥ २०—२३॥

अवेदं परमं वेत्ति वेदनिष्ठः सदेश्वरः।
स वेदवेद्यो भगवान् वेदमूर्तिर्महेश्वरः।
स एव वेदो वेद्यश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते॥ २४॥

इत्येदक्षरं वेद्यमोङ्कारं वेदमव्ययम्।
अवेद्यं च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः॥ २५॥

जो परम अवेद्यको जानते हैं तथा वेदनिष्ठ, सदेश्वर, वेदमूर्ति, महेश्वर हैं, वे भगवान् वेदोंद्वारा ज्ञात होने योग्य हैं। वे ही भगवान् वेद हैं, वे ही (वेदसे) जानने योग्य हैं और उन्हींका आश्रय ग्रहण करनेसे मुक्ति मिलती है। पराशरके पुत्र महामुनि वेदव्यास (ही) इस अविनाशी, जानने योग्य, प्रणवस्वरूप अव्यय वेद और अवेद अर्थात् ज्ञात न हो सकने योग्य (परमतत्त्व)-को भी जानते हैं॥ २४-२५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चाशोऽध्यायः॥ ५०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

कलियुगमें महादेवके अवतारों तथा उनके शिष्योंका वर्णन, भविष्यमें होनेवाले सात मन्वन्तरोंका नाम-परिगणन, कूर्मपुराणके पूर्वविभागका उपसंहार

सूत उवाच

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु।
महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रताः॥ १॥
आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः।
नाम्ना हिताय विप्राणामभूद् वैवस्वतेऽन्तरे॥ २॥
हिमवच्छिखरे रम्ये छगले पर्वतोत्तमे।
तस्य शिष्याः शिखायुक्ता बभूवुरमितप्रभाः॥ ३॥
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ ४॥

सूतजी बोले—सुव्रतो! द्वापरमें (होनेवाले) वेदव्यासके अवतारोंको कहा गया, अब (आपलोग) कलियुगमें होनेवाले महादेवके अवतारोंको सुनें—वैवस्वत मन्वन्तरके पहले कलियुगमें विप्रोंके हितार्थ अतितेजस्वी देवाधिदेव (शंकर) श्वेत नामसे पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयके रमणीय छगल नामक शिखरपर अवतरित हुए। उनके शिष्य शिखायुक्त और अमित प्रभावाले हुए। श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य तथा श्वेतलोहित—ये चार वेदके पारंगत महात्मा ब्राह्मण (प्रथम कलियुगमें) थे॥ १—४॥

सुभानो दमनश्चाथ सुहोत्रः कङ्कणस्तथा।
लोकाक्षिरथ योगीन्द्रो जैगीषव्यस्तु सप्तमे॥ ५॥
अष्टमे दधिवाहः स्यान्नवमे वृषभः प्रभुः।
भृगुस्तु दशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः परः स्मृतः॥ ६॥
द्वादशेऽत्रिः समाख्यातो बली चाथ त्रयोदशे।
चतुर्दशे गौतमस्तु वेदशीर्षा ततः परम्॥ ७॥

सुभान, दमन, सुहोत्र, कङ्कण और योगीन्द्र लोकाक्षिके रूपमें क्रमशः दूसरेसे छठे कलियुगतक महादेवका अवतार हुआ तथा सातवें (कलियुग)-में जैगीषव्य नामसे महादेवका अवतार हुआ। आठवेंमें दधिवाह, नवेंमें प्रभु वृषभ, दसवेंमें भृगु और उसके आगे (ग्यारहवें कलियुगमें) उग्रके रूपमें महादेवका अवतार हुआ। बारहवेंमें अत्रि, तेरहवेंमें बली, चौदहवेंमें गौतम और उसके बाद (पंद्रहवें कलियुगमें) वेदशीर्षाके रूपमें महादेव अवतरित हुए॥ ५—७॥

गोकर्णश्चाभवत् तस्माद् गुहावासः शिखण्ड्यथ।
जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली क्रमात्॥ ८॥
श्वेतस्तथा परः शूली डिण्डी मुण्डी च वै क्रमात्।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीशोऽन्तिमे प्रभुः॥ ९॥

तदनन्तर क्रमशः गोकर्ण, गुहावास, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लाङ्गली और इनके बाद श्वेत, शूली, डिण्डी, मुण्डी, सहिष्णु, सोमशर्मा तथा अन्तिम प्रभु नकुलीशके रूपमें महादेवका अवतार हुआ॥ ८-९॥

वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिनः।
अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः।
तीर्थे कायावतारे स्याद् देवेशो नकुलीश्वरः॥ १०॥
तत्र देवादिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः।
शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येकं मुनिपुंगवाः॥ ११॥
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमाश्रिताः।
क्रमेण तान् प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान्॥ १२॥

वैवस्वत मन्वन्तरमें त्रिशूल धारण करनेवाले प्रभु शम्भुके अट्ठाईस अवतार कहे गये हैं। अन्तिम कलियुगमें कायावतार नामक तीर्थमें देवेश्वर नकुलीश्वरके रूपमें महादेवका अवतार होगा। मुनिपुंगवो! उस समय देवोंके आदिदेव (महादेव)-के तीव्र तपस्याके धनी चार शिष्य हुए। अन्य अवतारोंमें भी प्रत्येकके (चार) शिष्य हुए। वे सभी प्रसन्न मनवाले, इन्द्रियनिग्रही और ईश्वरकी भक्ति करनेवाले थे। उन श्रेष्ठ योग जाननेवाले योगियोंका मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ—॥ १०—१२॥

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा।
विकेशश्च विशोकश्च विशापः शापनाशनः॥ १३॥

सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः।
सनः सनातनश्चैव कुमारश्च सनन्दनः॥ १४॥
दालभ्यश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः।
सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपात्रज एव च॥ १५॥
सारस्वतस्तथा मेघो घनवाहः सुवाहनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखो मुनिः॥ १६॥
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥ १७॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सत्यस्तथैव च॥ १८॥
सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिरुग्रस्तथा चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः॥ १९॥
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः।
कश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः॥ २०॥
उतथ्यो वामदेवश्च महाकायो महानिलः।
वाचश्रवाः सुपीकश्च श्यावाश्वः सपथीश्वरः॥ २१॥
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा।
सुमन्तुर्वर्चरी विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः॥ २२॥
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
भल्लापी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोनिधिः॥ २३॥
उशिजो बृहदुक्थश्च देवलः कपिरेव च।
शालिहोत्रोऽग्निवेश्यश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥ २४॥
छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहकः।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्वलो ह्याश्वलायनः॥ २५॥
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रको ऋष्य एव च॥ २६॥
शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्तेषु योगिनाम्।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः॥ २७॥

कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय हि।
योगेश्वराणामादेशाद् वेदसंस्थापनाय वै॥ २८॥

श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विकेश, विशोक, विशाप, शापनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, सनक, सनातन, सनत्कुमार, सनन्दन, महायोगी दालभ्य, सुधामा, विरजा और शङ्खपात्रज—ये धर्मात्मा और महान् ओजस्वी थे॥ १३—१५॥

(ऐसे ही) सारस्वत, मेघ, घनवाह, सुवाहन, कपिल, आसुरि, वोढु, मुनि, पञ्चशिख, पराशर, गर्ग, भार्गव, अङ्गिरा, बलबन्धु, निरामित्र, तपोधन, केतुशृंग, लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य, सत्य, सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अत्रि, उग्र, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाय, महानिल, वाचश्रवा, सुपीक, श्यावाश्व और सपथीश्वर (नामक शिष्य महादेवके अवतारोंके थे)॥ १६—२१॥

(इनके अतिरिक्त) हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, वर्चरी, विद्वान् कबन्ध, कुशिकन्धर, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान्, गौतम, भल्लापी, मधुपिङ्ग, तपोनिधि श्वेतकेतु, उशिज, बृहदुक्थ, देवल, कपि, शालिहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भ, प्रवाहक, उलूक, विद्युत, शाद्वल, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और ऋष्य (नामक शिष्य थे)॥ २२—२६॥

योगियोंके[1] समस्त अवतारोंकी आवृत्तिमें ये ही महात्मा शिष्य होते हैं। ये सभी शुद्ध, ब्रह्मभूयिष्ठ और ज्ञान-योगपरायण हैं। ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये तथा वेदोंकी स्थापनाके लिये योगेश्वर(परब्रह्म)-के आदेशसे (ये महात्मा) अवतार धारण करते हैं॥ २७-२८॥

१-योगी-महादेव-विष्णु आदि। ये लोग परम योगी हैं।

ये ब्राह्मणाः संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा।
तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयुः॥ २९॥

इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु।
भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च॥ ३०॥

दशमो ब्रह्मसावर्णो धर्मसावर्ण एव च।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रोचमानस्त्रयोदशः।
भौत्यश्चतुर्दशः प्रोक्तो भविष्या मनवः क्रमात्॥ ३१॥

जो ब्राह्मण सर्वदा इनका स्मरण करते हैं, इन्हें नमस्कार करते हैं, इनका तर्पण करते हैं और इनकी पूजा करते हैं, वे ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरका विस्तारसे वर्णन किया। सावर्ण (आठवाँ) तथा (नवाँ) दक्षसावर्ण मन्वन्तर भविष्यमें होंगे। दसवाँ ब्रह्मसावर्ण, ग्यारहवाँ धर्मसावर्ण, बारहवाँ रुद्रसावर्ण तथा तेरहवाँ रोचमान मन्वन्तर है। चौदहवाँ भौत्य मन्वन्तर कहा गया है। ये मनु क्रमसे भविष्यमें होंगे॥ २९—३१॥

अयं वः कथितो ह्यंशः पूर्वो नारायणेरितः।
भूतभव्यैर्वर्तमानैराख्यानैरुपबृंहितः॥ ३२॥

यः पठेच्छृणुयाद् वापि श्रावयेद् वा द्विजोत्तमान्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मणा सह मोदते॥ ३३॥

पठेद् देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि।
नारायणं नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम्॥ ३४॥

नमो देवादिदेवाय देवानां परमात्मने।
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥ ३५॥

मैंने नारायणद्वारा कहे गये भूत, भविष्य तथा वर्तमानके आख्यानोंसे उपबृंहित इस पूर्वभागको आप लोगोंसे कहा। जो (ब्राह्मण) इसे पढ़ेगा, सुनेगा अथवा श्रेष्ठ द्विजोंको[1] सुनायेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्माके साथ आनन्द प्राप्त करेगा। स्नान करनेके अनन्तर नदियोंके किनारोंपर अथवा देवमन्दिरमें भक्तिभावसे पुरुषोत्तम नारायणको नमस्कार कर इसका पाठ करना चाहिये। देवोंके आदिदेव, देवोंके परमात्मा, पुराण पुरुष कूर्मरूपी विष्णुको नमस्कार है॥ ३२—३५॥

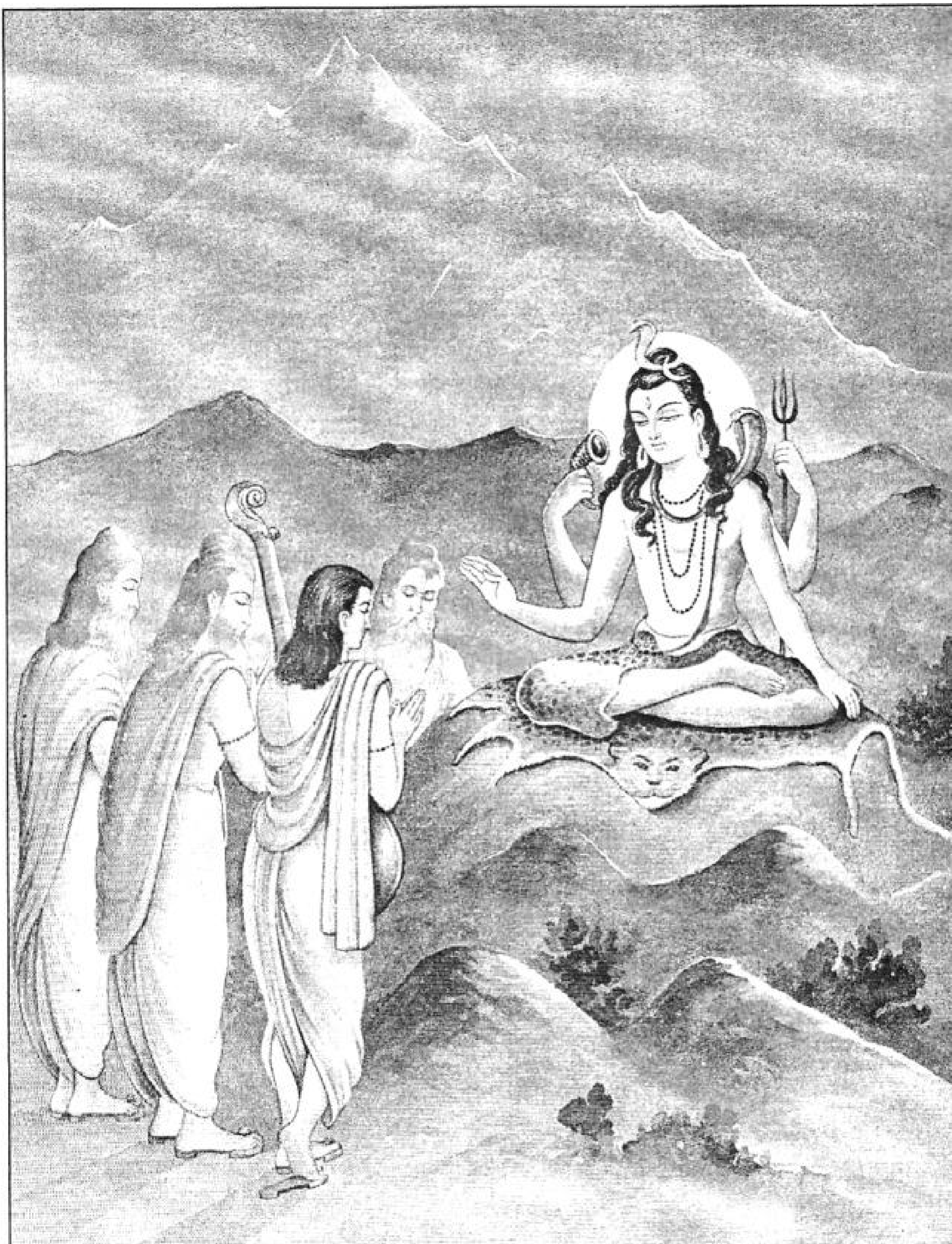
इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ पूर्वविभागः समाप्तः॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५१॥

॥ पूर्वविभाग समाप्त॥

१-द्विजोंको आगे करके पुराण-श्रवण करानेकी विधि है। पुराण-श्रवणका अधिकार अन्य वर्णोंको भी है। द्विज मुख्यरूपसे सात्त्विक वृत्तिके होते हैं तथा प्राणिमात्रका कल्याण ही इनका लक्ष्य होता है, इसीलिये इसकी प्रमुखता है।



[उपरिविभाग]

पहला अध्याय

ईश्वर (शिव) तथा ऋषियोंके संवादमें ईश्वरगीताका उपक्रम

(ईश्वरगीता प्रारम्भ)

ऋषय ऊचुः

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवस्ततः।
ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः॥ १॥

तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्मतत्परैः।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया॥ २॥

तद्वदाशेषसंसारदुःखनाशमनुत्तमम्।
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं येन पश्येम तत्परम्॥ ३॥

त्वं हि नारायणात् साक्षात् कृष्णद्वैपायनात् प्रभो।
अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः॥ ४॥
श्रुत्वा मुनीनां तद् वाक्यं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।
सूतः पौराणिकः स्मृत्वा भाषितुं ह्युपचक्रमे॥ ५॥

अथास्मिन्नन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।
आजगाम मुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रं समासते॥ ६॥

तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसं कालमेघसमद्युतिम्।
व्यासं कमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुंगवाः॥ ७॥
पपात दण्डवद् भूमौ दृष्ट्वासौ रोमहर्षणः।
प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं प्राञ्जलिः पार्श्वगोऽभवत्॥ ८॥

पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम्।
समाश्वास्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन्॥ ९॥

अथैतानब्रवीद् वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः।
कच्चिन्न तपसो हानिः स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च॥ १०॥

ऋषियोंने कहा—(सूतजी!) आपने स्वायम्भुव मन्वन्तरकी सृष्टि तदुपरान्त इस ब्रह्माण्डका विस्तार और (अन्य विभिन्न) मन्वन्तरोंके विषयमें भलीभाँति बतलाया तथा उन (मन्वन्तरों)-में धर्मपरायण ज्ञानयोगी वर्णधर्मके अनुयायियोंके नित्य आराध्य ईश्वरोंके ईश्वर देवका भी वर्णन आपने किया। इसीके साथ ही आपने सम्पूर्ण संसारके दुःखोंको नष्ट करनेवाले एकमात्र ब्रह्मविषयक उस उत्तम ज्ञानका भी वर्णन किया, जिसके द्वारा हम उस परम तत्त्वको देख सकते हैं। प्रभो! आपने साक्षात् नारायण कृष्णद्वैपायन (व्यासजी)-से सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, इसलिये हम आपसे पुनः पूछते हैं॥ १—४॥

मुनियोंके उस वाक्यको सुनकर पौराणिक सूतजीने प्रभु कृष्ण-द्वैपायनका स्मरणकर कहना प्रारम्भ किया। इसी बीच कृष्ण-द्वैपायन व्यास स्वयं वहाँ पहुँच गये जहाँ श्रेष्ठ मुनिजन यज्ञ कर रहे थे। कृष्ण मेघके समान द्युतिवाले तथा कमलपत्रके समान नेत्रवाले उन वेदके विद्वान् व्यासजीको देखकर श्रेष्ठ द्विजोंने उन्हें प्रणाम किया॥ ५—७॥

रोमहर्षण सूतजीने भी उन्हें देखकर भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और गुरुकी प्रदक्षिणाकर हाथ जोड़ते हुए उनके पार्श्वभागमें खड़े हो गये। महामुनि (व्यास)-के द्वारा आरोग्यके विषयमें प्रश्न पूछे जानेपर उसका यथोचित उत्तर देकर शौनक आदि महामुनियोंने व्यासजीको आश्वस्त किया तथा उनके योग्य आसन उन्हें प्रदान किया॥ ८-९॥

तदनन्तर पराशरजीके पुत्र प्रभु (व्यास)-ने उनसे पूछा—क्या आप लोगोंके तप, स्वाध्याय तथा श्रवण किये गये वेदादिकी हानि तो नहीं हो रही है?

ततः स सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम्।
ज्ञानं तद् ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि॥ ११॥

इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्मतत्पराः।
शुश्रूषा जायते चैषां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ १२॥

ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात् त्वयोदितम्।
मुनीनां व्याहृतं पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा॥ १३॥

श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीसुतः।
प्रणम्य शिरसा रुद्रं वचः प्राह सुखावहम्॥ १४॥

तब उन सूतने अपने गुरु महामुनि (व्यास)-को प्रणामकर कहा—आप ब्रह्मविषयक ज्ञान मुनियोंको बतलायें। ये मुनि शान्त, तपस्वी तथा धर्मपरायण हैं। इन्हें सुननेकी इच्छा है, आप (कृपया) यथार्थरूपसे ब्रह्मविषयक सर्वोच्च ज्ञानका उपदेश करें। मोक्ष प्रदान करनेवाले जिस दिव्य ज्ञानको आपने मुझे तथा पूर्वकालमें कूर्मरूप धारणकर विष्णुने मुनियोंको बतलाया था (इस समय आप उसी ज्ञानका उपदेश दें)। सूतके वचन सुनकर सत्यवतीके पुत्र मुनि (व्यास)-ने रुद्रको मस्तकद्वारा प्रणामकर सुखदायक वचन कहा—॥ १०—१४॥

व्यास उवाच

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैः पुरा।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्वयं यत् समभाषत॥ १५॥
सनत्कुमारः सनकस्तथैव च सनन्दनः।
अङ्गिरा रुद्रसहितो भृगुः परमधर्मवित्॥ १६॥
कणादः कपिलो योगी वामदेवो महामुनिः।
शुक्रो वसिष्ठो भगवान् सर्वे संयतमानसाः॥ १७॥
परस्परं विचार्यैते संशयाविष्टचेतसः।
तप्तवन्तस्तपो घोरं पुण्ये बदरिकाश्रमे॥ १८॥
अपश्यंस्ते महायोगमृषिं धर्मसुतं शुचिम्।
नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा॥ १९॥
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः सर्वे वेदसमुद्भवैः।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनो योगवित्तमम्॥ २०॥
विज्ञाय वाञ्छितं तेषां भगवानपि सर्ववित्।
प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तपः॥ २१॥

व्यासजी बोले—प्राचीन कालमें सनत्कुमार आदि प्रमुख योगीश्वरोंद्वारा पूछनेपर स्वयं प्रभु महादेवने जो कहा था, उसीको मैं कहता हूँ। सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, अंगिरा, रुद्रसहित परम धर्मज्ञ भृगु, कणाद, कपिल, योगी महामुनि वामदेव, शुक्र तथा भगवान् वसिष्ठ—इन सभी संयमित चित्तवाले मुनियोंने संशयान्वित होनेपर परस्पर परामर्श करके पवित्र बदरिकाश्रममें घोर तप किया। तब उन लोगोंने आदि और अन्तसे रहित धर्मपुत्र महायोगी पवित्र नारायण नामक ऋषिका नरके साथ दर्शन किया। उन भक्तिसम्पन्न योगियोंने वेदोंमें वर्णित विविध स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करके उन श्रेष्ठ योगीको प्रणाम किया सर्वज्ञ भगवान् (नारायण)-ने उनके अभीष्टको जानकर पुनः गम्भीर वाणीमें उनसे पूछा कि आपलोग किस प्रयोजनसे तपस्या कर रहे हैं?॥ १५—२१॥

अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानं सनातनम्।
साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम्॥ २२॥

प्रसन्न मनवाले ऋषियोंने जिनका शुभ आगमन अभीष्ट-सिद्धिकी निश्चित सूचना देता है (ऐसे) उन विश्वात्मा, सनातन साक्षात् नारायणदेवसे कहा—॥ २२॥

वयं संशयमापन्नाः सर्वे वै ब्रह्मवादिनः।
भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नाः पुरुषोत्तमम्॥ २३॥

त्वं हि तद् वेत्थ परमं सर्वज्ञो भगवानृषिः।
नारायणः स्वयं साक्षात् पुराणोऽव्यक्तपूरुषः॥ २४॥

नह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वर।
शुश्रूषास्माकमखिलं संशयं छेत्तुमर्हसि॥ २५॥

किं कारणमिदं कृत्स्नं कोऽनुसंसरते सदा।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किंनिमित्तकः॥ २६॥

(भगवन्!) हम सभी ब्रह्मवादी संशयमें पड़ गये हैं। आप पुरुषोत्तम हैं, हम एकमात्र आपकी शरणमें आये हैं। आप उस परम तत्त्वको जाननेवाले हैं, सर्वज्ञ, भगवान्, ऋषि तथा स्वयं साक्षात् नारायण अव्यक्त पुराणपुरुष हैं। परमेश्वर! आपको छोड़कर अन्य कोई दूसरा जाननेवाला नहीं है, हमें सुननेकी इच्छा है, आप सम्पूर्ण संशयको दूर करनेमें समर्थ हैं। इस सम्पूर्ण (कार्यरूप जगत्)-का कारण क्या है? कौन नित्य गतिशील रहता है? आत्मा कौन है? मुक्ति क्या है और संसार (-की रचना)-का क्या प्रयोजन है? इस संसारका चलानेवाला शासक कौन है?

कः संसारयतीशानः को वा सर्वं प्रपश्यति।
किं तत् परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि॥ २७॥
एवमुक्ते तु मुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम्।
विहाय तापसं रूपं संस्थितं स्वेन तेजसा॥ २८॥

विभ्राजमानं विमलं प्रभामण्डलमण्डितम्।
श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम्॥ २९॥

शङ्खचक्रगदापाणिं शार्ङ्गहस्तं श्रियावृतम्।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा॥ ३०॥
तदन्तरे महादेवः शशाङ्काङ्कितशेखरः।
प्रसादाभिमुखो रुद्रः प्रादुरासीन्महेश्वरः॥ ३१॥
निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम्॥ ३२॥
जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव।
जयाशेषमुनीशान तपसाभिप्रपूजित॥ ३३॥

सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्तक।
जयानन्त जगज्जन्मत्राणसंहारकारण॥ ३४॥

सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर॥ ३५॥
संस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः।
समालिङ्ग्य हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा॥ ३६॥
किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः।
इमं समागता देशं किं वा कार्यं मयाच्युत॥ ३७॥
आकर्ण्य भगवद्वाक्यं देवदेवो जनार्दनः।
प्राह देवो महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम्॥ ३८॥
इमे हि मुनयो देव तापसाः क्षीणकल्मषाः।
अभ्यागता मां शरणं सम्यग् दर्शनकाङ्क्षिणः॥ ३९॥
यदि प्रसन्नो भगवान् मुनीनां भावितात्मनाम्।
संनिधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि॥ ४०॥
त्वं हि वेत्थ स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव।
ततस्त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय॥ ४१॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाच मुनिपुङ्गवान्।
प्रदर्शयन् योगसिद्धिं निरीक्ष्य वृषभध्वजम्॥ ४२॥

संदर्शनान्महेशस्य शंकरस्याथ शूलिनः।
कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वतः॥ ४३॥

अथवा सबका द्रष्टा कौन है? परात्पर ब्रह्म क्या है? यह सब आप हमें बतलायें॥ २३—२७॥

ऐसा कहे जानेपर मुनियोंने तपस्वी-रूपका परित्याग किये हुए, अपने तेजद्वारा प्रतिष्ठित, प्रकाशमण्डलसे मण्डित, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स धारण किये हुए, तप्त स्वर्णके समान आभावाले और हाथोंमें शंख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग नामका धनुष धारण किये हुए लक्ष्मीसहित विमल एवं द्युतिमान् पुरुषोत्तम देवका दर्शन किया। उस समय उन्हींके तेजके कारण नर (ऋषि) नहीं दिखलायी पड़े॥ २८—३०॥

उसी समय चन्द्रमासे अंकित मस्तकवाले महादेव महेश्वर रुद्र प्रसन्नतापूर्वक प्रकट हुए। चन्द्रभूषण जगन्नाथ त्रिलोचनका दर्शनकर प्रसन्न मनवाले वे सभी (मुनि) भक्तिपूर्वक उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे—॥ ३१-३२॥

ईश्वरकी जय हो। भूतपति महादेव शिवकी जय हो। सभी मुनियोंके स्वामी तथा तपस्याद्वारा भलीभाँति प्रपूजित होनेवाले आपकी जय हो। सहस्रमूर्ति! विश्वात्मन्! संसाररूपी यन्त्रके प्रवर्तक और संसारके जन्म, रक्षा और संहारके कारण हे अनन्त! आपकी जय हो। हजारों चरणवाले, ईशान, शम्भु, योगीन्द्रोंद्वारा वन्दित अम्बिकापति! आपकी जय हो। परमेश्वरदेव! आपको नमस्कार है॥ ३३—३५॥

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भक्तवत्सल भगवान् त्र्यम्बक ईशने हृषीकेशका आलिंगनकर गम्भीर वाणीमें कहा—हे अच्युत! पुण्डरीकाक्ष! ये ब्रह्मवादी मुनीन्द्र किस कारणसे इस स्थानपर आये हैं अथवा मुझे क्या करना है? भगवान्‌के वाक्यको सुनकर देवाधिदेव जनार्दनदेवने कृपा करनेके लिये उद्यत सामने स्थित महादेवसे कहा—देव! ये सभी मुनिगण तपस्वी और निष्पाप हैं, ये लोग भलीभाँति तत्त्वदर्शनकी इच्छासे मेरी शरणमें आये हैं। हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे समीप इन भावनामय मुनियोंको वह दिव्य ज्ञान प्रदान करें॥ ३६—४०॥

शिव! केवल आप ही अपने-आपको जानते हैं दूसरा कोई आपको जाननेवाला नहीं है। अतः आप स्वयं इन मुनीन्द्रोंको अपना स्वरूप दिखलायें। ऐसा कहकर हृषीकेशने योगसिद्धियोंको दिखाते हुए वृषभध्वजकी ओर देखकर श्रेष्ठ मुनियोंसे कहा—(हे मुनिगणो!) त्रिशूल धारण करनेवाले शंकर महेशके दर्शनसे आपलोग अपने-आपको कृतार्थ समझें। आपलोग यथार्थरूपसे

प्रष्टुमर्हथ विश्वेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम्।
ममैव संनिधावेष यथावद् वक्तुमीश्वरः॥ ४४॥

निशम्य विष्णुवचनं प्रणम्य वृषभध्वजम्।
सनत्कुमारप्रमुखाः पृच्छन्ति स्म महेश्वरम्॥ ४५॥

ज्ञान प्राप्त करने योग्य हैं, सामने प्रत्यक्ष स्थित विश्वेशसे (उस तत्त्वज्ञानके विषयमें) पूछें। मेरी संनिधिमें ये यथार्थरूपसे वर्णन करनेमें समर्थ हैं। विष्णुका (यह) वचन सुनकर तथा वृषभध्वजको प्रणामकर सनत्कुमार आदि (ऋषियों)-ने महेश्वरसे पूछा—॥ ४१—४५॥

अथास्मिन्नन्तरे दिव्यमासनं विमलं शिवम्।
किमप्यचिन्त्यं गगनादीश्वरार्हं समुद्बभौ॥ ४६॥

तत्राससाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत्।
तेजसा पूरयन् विश्वं भाति देवो महेश्वरः॥ ४७॥

तं ते देवादिदेवेशं शंकरं ब्रह्मवादिनः।
विभ्राजमानं विमले तस्मिन् ददृशुरासने॥ ४८॥

यं प्रपश्यन्ति योगस्थाः स्वात्मन्यात्मानमीश्वरम्।
अनन्यतेजसं शान्तं शिवं ददृशिरे किल॥ ४९॥

यतः प्रसूतिर्भूतानां यत्रैतत् प्रविलीयते।
तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरे किल॥ ५०॥

यदन्तरा सर्वमेतद् यतोऽभिन्नमिदं जगत्।
स वासुदेवमासीनं तमीशं ददृशुः किल॥ ५१॥

इसी बीच आकाशसे ईश्वरके योग्य एक अचिन्त्य दिव्य निर्मल आसन प्रकट हुआ। विश्वकर्ता वे योगात्मा (महेश्वर) विष्णुसहित उस आसनपर बैठ गये। अपने तेजसे विश्वको पूरित करते हुए महेश्वर देव वहाँ सुशोभित हो रहे थे। उन ब्रह्मवादियोंने उन प्रकाशमान देवाधिदेव शंकरका उस निर्मल आसनपर सुशोभित होते हुए दर्शन किया। योगमें स्थित लोग अपनी आत्मामें जिन आत्मस्वरूप ईश्वरका दर्शन करते हैं, उन्हीं अनन्य तेजस्वी शान्तस्वरूप शिवको उन ब्रह्मवादियोंने देखा, जिनसे समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और जिनमें यह सब विलीन हो जाता है, उन प्राणियोंके ईशको ब्रह्मवादियोंने आसनपर विराजमान देखा। जिनके भीतर यह सम्पूर्ण संसार है और यह जगत् जिनसे अभिन्न है, उन परमेश्वरको वासुदेवके साथ आसनपर विराजमान देखा॥ ४६—५१॥

प्रोवाच पृष्टो भगवान् मुनीनां परमेश्वरः।
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम्॥ ५२॥

तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयानघाः।
प्रशान्तमानसाः सर्वे ज्ञानमीश्वरभाषितम्॥ ५३॥

मुनियोंके पूछनेपर परमेश्वर (महेश्वर) भगवान् पुण्डरीकाक्ष (विष्णु)-की ओर देखकर अपने श्रेष्ठ योगका वर्णन करने लगे। शान्त मनवाले अनघ मुनियो! आप सभी लोग सुनें—मैं ईश्वरद्वारा कहे गये ज्ञानका वर्णन यथोचितरूपसे कर रहा हूँ॥ ५२-५३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) प्रथम अध्याय समाप्त हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

आत्मतत्त्वके स्वरूपका निरूपण, सांख्य एवं योगके ज्ञानका अभेद, आत्मसाक्षात्कारके साधनोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद् विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम्।
यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः॥ १॥

इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूता द्विजोत्तमाः।
न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः॥ २॥

ईश्वरने कहा—द्विजो! देवता लोग प्रयत्न करनेपर भी जिसे नहीं जान पाते हैं, मेरा यह विज्ञान अत्यन्त गुह्य है, सनातन है एवं बतलाने योग्य (भी) नहीं है। इस ज्ञानका आश्रय ग्रहणकर श्रेष्ठ द्विजगणोंने ब्रह्मभावको प्राप्त किया है। (इस ज्ञानके कारण) पूर्वकालमें भी ब्रह्मवादियोंको पुनः संसारमें आना नहीं पड़ा (अर्थात् इस ज्ञानसे ब्रह्मभाव अवश्य प्राप्त होता है और ब्रह्मभाव

गुह्याद् गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम्॥ ३॥

प्राप्त करनेके अनन्तर पुनः संसारमें आगमन नहीं होता)। यह ज्ञान गुह्यसे भी गुह्यतम है, इस साक्षात् ज्ञानको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये। आप भक्तिसम्पन्न ब्रह्मवादियोंको आज मैं यह ज्ञान बतलाऊँगा॥ १—३॥

आत्मा यः केवलः स्वस्थः शान्तः सूक्ष्मः सनातनः।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः॥ ४॥

सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः।
स कालोऽग्निस्तदव्यक्तं स एवेदमिति श्रुतिः॥ ५॥

जो आत्मा अद्वितीय, स्वस्थ, शान्त, सूक्ष्म, सनातन, सभीका अन्तरतम साक्षात् चिन्मात्र और तमोगुणसे परे है, वही (आत्मा) अन्तर्यामी है, पुरुष है, वही प्राण है, वही महेश्वर है, वही काल तथा अग्नि है और वही अव्यक्त है—ऐसा श्रुतिका कथन है॥ ४-५॥

अस्माद् विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते।
स मायी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः॥ ६॥

न चाप्ययं संसरति न च संसारयेत् प्रभुः।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः॥ ७॥

इसीसे संसार उत्पन्न होता है और इसीमें विलीन हो जाता है। वह मायाका नियामक मायासे आबद्ध होकर अपनी इच्छासे मायाको अङ्गीकार कर विविध शरीरोंको उत्पन्न करता है। यह प्रभु आत्मा न तो गतिशील है और न गतिप्रेरक है। न यह पृथ्वी है, न जल है, न तेज है, न वायु है और न आकाश ही है॥ ६-७॥

न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्ता न वागपि॥ ८॥

न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः।
न कर्ता न च भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थतः॥ ९॥

यह न प्राण है, न मन है, न अव्यक्त है, न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप, न रस और न गन्ध ही है। न अभिमानी[1] है, न वाणी ही है। द्विजोत्तमो! यह न हाथ, न पैर, न पायु (शौचेन्द्रिय) और न उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), न कर्ता, न भोक्ता तथा प्रकृति-पुरुष भी नहीं है। माया भी नहीं है, प्राण भी नहीं है, अपितु परमार्थतः चैतन्यमात्र है॥ ८-९॥

यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते।
तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः॥ १०॥

जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकारका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार (सांसारिक) प्रपञ्च और परमात्माका भी कोई ऐक्य (अभेद्य आदि) सम्बन्ध नहीं हो सकता॥ १०॥

छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ।
तद्वत् प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः॥ ११॥

यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात् स्वभावतः।
नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि॥ १२॥

पश्यन्ति मुनयो युक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः।
विकारहीनं निर्दुःखमानन्दात्मानमव्ययम्॥ १३॥

जिस प्रकार संसारमें धूप और छाया एक-दूसरेसे विलक्षण हैं, वैसे ही पुरुष तथा प्रपञ्च भी तत्त्वतः एक-दूसरेसे भिन्न हैं। यदि आत्मा स्वभावसे मलिन, अस्वस्थ तथा विकारयुक्त होता तो उसकी मुक्ति सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं होती। योगयुक्त मुनिजन परमार्थतः अपने विकाररहित, दुःखशून्य, आनन्दस्वरूप, अव्यय आत्माका दर्शन करते हैं॥ ११—१३॥

अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः।
सा चाहंकारकर्तृत्वादात्मन्यारोप्यते जनैः॥ १४॥

वदन्ति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम्।
भोक्तारमक्षरं शुद्धं सर्वत्र समवस्थितम्॥ १५॥

मैं कर्ता हूँ, सुखी, दुःखी, कृश एवं स्थूल हूँ—इस प्रकारकी जो बुद्धि है, वह मनुष्योंके द्वारा अहंकारके कारण ही अपनी आत्मामें आरोपित है। वेदके विद्वान् लोग (आत्माको) साक्षी, प्रकृतिसे परे, भोक्ता, अक्षर, शुद्ध तथा सर्वत्र सम रूपसे व्याप्त बतलाते हैं। अतएव

१-'अहम्' इस शब्दका प्रयोक्ता नहीं है, न 'अहम्' यह शब्द ही है।

तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम्।
अज्ञानादन्यथा ज्ञानं तच्च प्रकृतिसङ्गतम्॥ १६॥

नित्योदितः स्वयं ज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः।
अहंकाराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते॥ १७॥

पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः॥ १८॥

तेनायं संगतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः।
स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वतः॥ १९॥
अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद् दुःखं तथेतरम्।
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः॥ २०॥

कर्मण्यस्य भवेद् दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थितिः।
तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः॥ २१॥

नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।
एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः॥ २२॥
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः।
भेदो व्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया॥ २३॥

यथा हि धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत्।
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते॥ २४॥

यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोऽमलः।
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते॥ २५॥

ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद् विचक्षणाः।
अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः॥ २६॥

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रान्तदृष्टिभिः॥ २७॥

यह संसार सभी प्राणियोंके अज्ञानके कारण ही है। अज्ञानसे अन्यथा (विपरीत) ज्ञान होता है अर्थात् अज्ञानका नाश ज्ञानसे ही होता है और यह प्रकृतिसंगत (प्राणियोंके मूल स्वभावके सर्वथा अनुकूल शाश्वत शान्तिरूप) होता है॥ १४—१६॥

अहंकारसे उत्पन्न अविवेकके कारण स्वयं ज्योतिरूप, नित्य प्रकाशयुक्त सर्वव्यापी परम पुरुष अपनेको 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है। ब्रह्मवादी ऋषिगण प्रधान, प्रकृति और कारणको समझकर सत् एवं असत्-स्वरूप, अव्यक्त नित्यतत्त्वका साक्षात्कार करते हैं। कूटस्थ एवं निरञ्जन होते हुए भी यह आत्मा उस (प्रधान, प्रकृति आदि)-से संगत होकर स्वात्मस्वरूप अक्षर ब्रह्मका यथार्थरूपसे ज्ञान नहीं कर पाता॥ १७—१९॥

अनात्मतत्त्वमें आत्मविषयक विज्ञानसे ही दुःख होता है तथा इसी प्रकारकी भ्रान्तिके कारण ही राग, द्वेष आदि सभी दोष उत्पन्न होते हैं। इसके (भ्रान्त पुरुषके) कर्ममें ही दोष होता है, इसी कारण पाप-पुण्यकी स्थिति बनती है और उन कर्मोंके अनुसार ही सभी प्रकारके देहकी उत्पत्ति होती है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ और दोषोंसे रहित है। यह अद्वितीय आत्मा मायारूप शक्तिके कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, स्वभावतः इसमें भेद नहीं है॥ २०—२२॥

इसी कारण मुनिजन आत्माको परमार्थतः अद्वैत ही कहते हैं। व्यक्त (महत्तत्त्व, अहंतत्त्व आदि)-के स्वभावसे जो भेद दिखलायी पड़ता है और यह भेद मूलतः माया (प्रकृति)-के कारण ही है तथा यह आत्मा (पुरुष)-के आश्रित होकर ही सब कुछ करती है। जैसे धुएँके सम्पर्कसे आकाश मलिन नहीं होता, वैसे ही अन्तःकरणसे उत्पन्न होनेवाले भावोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता। जैसे अद्वितीय शुद्ध स्फटिक अपनी आभासे प्रकाशित होता है, वैसे ही उपाधियोंसे रहित निर्मल आत्मा (अपने ही प्रकाशसे) प्रकाशित होता है। विद्वान् लोग इस संसारको ज्ञानस्वरूप ही कहते हैं, परंतु दूसरे कुत्सित दृष्टि रखनेवाले अज्ञानी लोग इसे अर्थस्वरूप (विषयस्वरूप) मानते हैं॥ २३—२६॥

भ्रान्त दृष्टिवाले पुरुषोंके द्वारा स्वभावतः कूटस्थ, निर्गुण, सर्वव्यापी और चैतन्य आत्मा अर्थरूपसे ही देखा जाता है। जिस प्रकार शुद्ध स्फटिक गुञ्जा आदि

यथा संलक्ष्यते रक्तः केवलः स्फटिको जनैः।
रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत् परमपूरुषः॥ २८॥

तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः।
उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः॥ २९॥

यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम्॥ ३०॥
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३१॥

यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः॥ ३२॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पण्डितः॥ ३३॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३४॥

यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः।
मायामात्रं जगत् कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतः॥ ३५॥
यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम्।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः॥ ३६॥

यथा नदीनदा लोके सागरेणैकतां ययुः।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत्॥ ३७॥
तस्माद् विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः।
अज्ञानेनावृतं लोको विज्ञानं तेन मुह्यति॥ ३८॥
तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
अज्ञानमितरत् सर्वं विज्ञानमिति मे मतम्॥ ३९॥
एतद् वः परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैकचित्तता॥ ४०॥

उपाधिके कारण लोगोंको लाल वर्णका-सा दिखलायी पड़ता है, वैसे ही परम पुरुष भी (मायाके द्वारा नाम-रूपात्मक उपाधियुक्त प्रतीत होनेके कारण अनेक रूपोंमें दिखलायी पड़ता) है। इस कारण मोक्षके अभिलाषियोंको अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी तथा अव्यय उस आत्माका श्रवण, मनन तथा उपासना करनी चाहिये। (जिससे माया (अज्ञान)-की निवृत्ति हो तथा शुद्ध आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो) योगीके मनमें जब सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला चैतन्य सदा प्रकाशित होता है, तब वह योगी बिना किसी व्यवधानके आत्मभाव प्राप्त कर लेता है॥ २७—३०॥

(योगी) जब सभी प्राणियोंको अपनी आत्मामें अच्छी प्रकार स्थित देख लेता है और सभी प्राणियोंमें अपनेको स्थित देखता है, तब उसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति हो जाती है। जब (योगी) समाधिकी अवस्थामें किसी भी प्राणीको (अपनेसे भिन्न) नहीं देखता (अर्थात् समस्त प्रपञ्चमें आत्मदर्शन करता है), तब वह उस परतत्त्वसे एकात्मभाव प्राप्त कर लेता है और अद्वितीय हो जाता है। उसके हृदयमें स्थित सभी कामनाएँ जब समाप्त हो जाती हैं तब वह पण्डित अमृतस्वरूप होकर (परम) कल्याण प्राप्त कर लेता है।(योगी) जब प्राणियोंके पार्थक्यको एक तत्त्वमें स्थित देखता है और उसी (तत्त्व)-से उनका विस्तार होना समझता है, तब उसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। जब वह परमार्थतः (सर्वत्र) केवल अद्वितीय आत्माको ही देखता है और सम्पूर्ण जगत्को मायामात्र समझता है, तब वह मुक्त हो जाता है॥ ३१—३५॥

जब योगीको जन्म, जरा, दुःख और समस्त व्याधियोंके एकमात्र औषध अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान हो जाता है, तब वह शिवरूप हो जाता है। जिस प्रकार संसारमें नद एवं नदियाँ सागरके साथ एकरूपताको प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार यह आत्मा (जीवात्मा) निष्कल अक्षर (ब्रह्म)-के साथ एकत्व प्राप्त करता है॥ ३६-३७॥

इसलिये विज्ञानका ही अस्तित्व है, प्रपञ्च और संसरणशील संसारका अस्तित्व नहीं है। विज्ञान अज्ञानसे आवृत रहता है, इसीसे संसार (जीव) मोहमें पड़ता है। ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्पक और अव्यय है, अज्ञानके अतिरिक्त जो कुछ है, वह विज्ञान है—ऐसा मेरा मत है। यह आप लोगोंको सांख्य नामक परमोत्तम ज्ञान बतलाया। यह सम्पूर्ण वेदान्तका सार है। इसमें चित्तकी एकाग्रता ही योग है॥ ३८—४०॥

योगात् सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित्॥ ४१॥

यदेव योगिनो यान्ति सांख्यैस्तदधिगम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित्॥ ४२॥

योगसे ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञानसे योग प्रवर्तित (स्थिर) होता है। योग तथा ज्ञानसम्पन्न (पुरुष)-के लिये कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। योगी जिसे प्राप्त करते हैं, सांख्यवेत्ताओंके द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। जो सांख्य और योगको एक ही समझता है, वह तत्त्वज्ञानी होता है॥ ४१-४२॥

अन्ये च योगिनो विप्रा ऐश्वर्यासक्तचेतसः।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव न त्वात्मैषामिति श्रुतिः॥ ४३॥

यत्तत् सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यमचलं महत्।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात्॥ ४४॥

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः।
कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥ ४५॥

विप्रो! ऐश्वर्य (आठ प्रकारकी सिद्धियों एवं अन्य वैभव आदि)-में आसक्तचित्त अन्य योगीजन उसीमें डूबे रहते हैं, अतएव उन्हें आत्मतत्त्व प्राप्त नहीं होता—ऐसा श्रुतिवचन है। जो सर्वव्यापी, दिव्य ऐश्वर्यरूप, अचल और महत् (सर्वश्रेष्ठ) है, उसे ज्ञान और योगसम्पन्न पुरुष देहान्त होनेपर प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण वेदोंमें सर्वात्मा, सर्वतोमुखके रूपमें प्रतिपादित, अव्यक्त, मायावी (मायाका अधिष्ठाता) तथा परमेश्वरस्वरूप मैं ही यह आत्मा हूँ॥ ४३—४५॥

सर्वकामः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः।
सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः॥ ४६॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाकर्णः शृणोम्यहम्॥ ४७॥

वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः॥ ४८॥

पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मनः सूक्ष्मदर्शिनः।
निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम्॥ ४९॥

यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया।
वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः॥ ५०॥

मैं अन्तर्यामी, सनातन, सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर और सभी ओर हाथ-पैरवाला हूँ। हाथ और पैरके बिना भी मैं गति करने एवं ग्रहण करनेवाला हूँ। (सभी प्राणियोंके) हृदयमें स्थित हूँ। बिना नेत्रोंके भी देखता हूँ और बिना कानोंके भी मैं सुनता हूँ। मैं इस समस्त प्रपञ्चको जानता हूँ, परंतु मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी लोग मुझे अद्वितीय महान् पुरुष कहते हैं। सूक्ष्मदर्शी ऋषि गुणरहित और विशुद्धरूप आत्माके हेतुस्वरूप उस श्रेष्ठ ऐश्वर्य (सर्वोत्कृष्ट ज्ञान)-का दर्शन (साक्षात्कार) करते हैं। ब्रह्मवादियो! मेरी मायासे मोहित होनेके कारण देवता भी जिस (तत्त्व)-को नहीं जानते उसे मैं कहता हूँ, आप लोग ध्यान लगाकर सुनें—॥ ४६—५०॥

नाहं प्रशास्ता सर्वस्य मायातीतः स्वभावतः।
प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदुः॥ ५१॥

यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम्॥ ५२॥

तेषां हि वशमापन्ना माया मे विश्वरूपिणी।
लभन्ते परमां शुद्धिं निर्वाणं ते मया सह॥ ५३॥

मायातीत मैं स्वभावतः सबका अनुशास्ता नहीं हूँ, तथापि इस जगत्‌को मैं प्रेरित करता हूँ, विद्वान् लोग इसका कारण जानते हैं (वह कारण अहैतुकी कृपा ही है।)। मेरा जो अत्यन्त गुह्यतम तथा सर्वव्यापी देह है, तत्त्वदर्शी योगीजन उसमें प्रविष्ट होते हैं और मेरे अविनाशी सायुज्य (नामक मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। मेरी विश्वरूपिणी माया उनके वशमें रहती है। वे मेरे साथ (मेरा सायुज्य प्राप्तकर) परम शुद्धि और निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद् वेदानुशासनम्॥ ५४॥

मेरी कृपासे सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। योगीन्द्रो! यह वेदोंका अनुशासन है॥ ५१—५४॥

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं ब्रह्मवादिभिः।
मदुक्तमेतद् विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम्॥ ५५॥

ब्रह्मवादियोंको चाहिये कि वे मेरे द्वारा कहे गये इस सांख्य-योग-समन्वित विज्ञानको (अपने) पुत्र[1], शिष्य एवं योगियोंके अतिरिक्त और किसी दूसरेको प्रदान न करें॥ ५५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) दूसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

अव्यक्त शिवतत्त्वसे सृष्टिका कथन, परमात्माके स्वरूपका वर्णन तथा प्रधान, पुरुष एवं महदादि तत्त्वोंसे सृष्टिका क्रम-वर्णन, शिवस्वरूपका निरूपण

ईश्वर उवाच

अव्यक्तादभवत् कालः प्रधानं पुरुषः परः।
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्॥ १॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ २॥

ईश्वरने कहा—अव्यक्त (तत्त्व)-से काल, प्रधान तथा परम पुरुष उत्पन्न हुए। उन (कालादि)-से यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, इसलिये यह जगत् ब्रह्ममय है। जिसके हाथ और पैरका प्रसार सर्वत्र है, जिसके नेत्र, मस्तक, मुख एवं कर्ण सर्वत्र वर्तमान हैं एवं जो समस्त (विश्व)-को आवृतकर स्थित है, वही (ब्रह्म) है॥ १-२॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम्॥ ३॥

सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम्।
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम्॥ ४॥

अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः॥ ५॥

वह सभी इन्द्रियोंके गुणोंके आभासवाला है, अर्थात् सभी इन्द्रियोंके गुण उसमें प्रतीत होते हैं; किंतु सभी इन्द्रियोंसे रहित है। वह सभीका आधार है, सदा आनन्दस्वरूप, अव्यक्त और द्वैतसे रहित (अद्वैत तत्त्व) है। वह सभी उपमानोंसे रहित (निरुपमेय) इन्द्रियोंद्वारा प्रमाणोंसे ज्ञात न होने योग्य, निर्विकल्प, निराभास, सभीका आश्रय, परम अमृतस्वरूप, अभिन्न, भिन्नरूपसे स्थित (प्रतीत), शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्गुण और परम व्योमरूप है, उसे विद्वान् लोग जानते हैं॥ ३—५॥

स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरः परः।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः॥ ६॥

मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ ७॥

प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम्।
तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोजकः परः॥ ८॥

वह सभी प्राणियोंका आत्मा है, वह बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला परम तत्त्व है। मैं (भी) वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ। मुझ अव्यक्त स्वरूपवालेके द्वारा ही इस विश्वका विस्तार हुआ है। सभी प्राणी मुझमें ही अवस्थित हैं, जो उसे जानता है, वह वेदज्ञ है प्रधान और पुरुष—ये ही दो तत्त्व कहे गये हैं। अनादि उत्कृष्ट कालको ही उन दोनोंका परम संयोजक कहा गया है॥ ६—८॥

१-ब्रह्मवादीका पुत्र अनुशासित ही होगा, इसलिये पुत्रको ज्ञानका अधिकारी माना गया है।

त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम्।
तदात्मकं तदन्यत् स्यात् तद्रूपं मामकं विदुः॥ ९॥

महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत्।
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ १०॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते यः प्राकृतान् गुणान्।
अहंकारविमुक्तत्वात् प्रोच्यते पञ्चविंशकः॥ ११॥

(प्रधान, पुरुष और काल—)ये तीनों तत्त्व अनादि, अन्तरहित, अव्यक्त (परम तत्त्व)-में स्थित हैं। वह (परम तत्त्व) तदात्मक (प्रधान आदिका प्रेरक होते हुए भी) तद्भिन्न (उनसे सर्वथा असंस्पृष्ट) है, वह (परम तत्त्व) मेरा ही रूप है, यह विद्वान् लोग ही जानते हैं। जो महत् (तत्त्व)-से लेकर विशेषपर्यन्त समस्त संसारको उत्पन्न करती है, वह सभी देहधारियोंको मोहित करनेवाली प्रकृति कही गयी है। जो प्रकृतिस्थ होकर प्रकृतिके गुणोंका उपभोग करता है, वह पुरुष है। अहंकार (अहं-तत्त्व)-से विमुक्त होनेके कारण वह पुरुष पचीसवाँ तत्त्व कहा गया है॥ ९—११॥

आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानात्मेति कथ्यते।
विज्ञानशक्तिर्विज्ञाता ह्यहंकारस्तदुत्थितः॥ १२॥

एक एव महानात्मा सोऽहंकारोऽभिधीयते।
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः॥ १३॥

प्रकृतिके प्रथम विकारको महान् आत्मा (महत्तत्त्व) कहते हैं। उस विज्ञानशक्तिसे सम्पन्न विज्ञाता ('अहम्' अर्थात् अभिमानका मूल कारण) अहंकार उत्पन्न होता है। वही एक महान्[1] आत्मा 'अहंकार' कहलाता है। तत्त्वचिन्तकोंके द्वारा वह 'जीव' तथा 'अन्तरात्मा' इस नामसे कहा गया है॥ १२-१३॥

तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम्॥ १४॥

तेनाविवेकतस्तस्मात् संसारः पुरुषस्य तु।
स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात् कालेन सोऽभवत्॥ १५॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद् वशे॥ १६॥

जीवनमें उसीके द्वारा सुख एवं दुःख आदि सभीका अनुभव होता है। वह विज्ञानस्वरूप (विविध सांसारिक ज्ञानका मूल) है। उस (अहंकार)-का उपकारक मन है। उससे अविवेक उत्पन्न होता है और फिर उस अविवेकसे पुरुषका संसार बनता है। 'प्रकृति'से कालका सम्पर्क होनेसे वह अविवेक उत्पन्न होता है। काल ही प्राणियोंकी सृष्टि करता है और काल ही प्रजाओंका संहार करता है। सभी कालके वशीभूत हैं, काल किसीके वशमें नहीं है॥ १४—१६॥

सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः।
प्रोच्यते भगवान् प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः॥ १७॥

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः।
मनसश्चाप्यहंकारमहंकारान्महान् परः॥ १८॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषाद् भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥ १९॥

प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते॥ २०॥

वह सनातन (काल) अन्तःप्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण (विश्व)-का नियमन करता है। इस कालको भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ तथा पुरुषोत्तम कहा जाता है। मनीषियोंने मनको सभी इन्द्रियोंसे उत्कृष्ट एवं मनसे अधिक उत्कृष्ट अहंकारको और अहंकारसे उत्कृष्ट महान्‌को (महत्तत्त्व) बतलाया है। महत्‌से उत्कृष्ट अव्यक्त, अव्यक्तसे उत्कृष्ट पुरुष तथा पुरुषसे उत्कृष्ट भगवान् प्राण हैं। यह सम्पूर्ण संसार उसीसे है। प्राणसे परतर व्योम है और व्योमसे अतीत अग्नि ईश्वर है। मैं वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हूँ। मुझसे उत्कृष्ट और कोई तत्त्व नहीं है। मुझे जान लेनेसे मुक्ति हो जाती है॥ १७—२०॥

१-सृष्टिमें अहंकारका महत्त्वपूर्ण स्थान होनेसे उसके लिये 'महान् आत्मा' यह लाक्षणिक प्रयोग है।

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्॥ २१॥

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्।
मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः॥ २२॥

मत्संनिधावेष कालः करोति सकलं जगत्।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद् वेदानुशासनम्॥ २३॥

इस संसारमें एकमात्र मुझ अव्यक्त, व्योमरूप महेश्वरको छोड़कर कोई भी स्थावर-जंगमात्मक तत्त्व नित्य नहीं है अर्थात् महेश्वरको छोड़कर सब कुछ अनित्य है। वही मैं मायावी तथा मायामय देव कालके संसर्गसे सम्पूर्ण (संसार)-की सदा सृष्टि करता हूँ और (फिर) संहार करता हूँ। मेरे सांनिध्यमें ही यह काल (तत्त्व) सम्पूर्ण जगत्‌की (सृष्टि) करता है। वेदका यह कथन है कि अनन्तात्मा ही उस (काल)-को (इस कार्यमें) नियोजित करता है॥ २१—२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

शिव-भक्तिका माहात्म्य, शिवोपासनाकी सुगमता, ज्ञानरूप शिवस्वरूपका वर्णन, शिवकी तीन प्रकारकी शक्तियोंका प्रतिपादन, शिवके परम तत्त्वका निरूपण

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः।
माहात्म्यं देवदेवस्य येनेदं सम्प्रवर्तते॥ १॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मवादियो! आपलोग ध्यान लगाकर सुनें। जिससे यह सभी प्रवर्तित होता है, उस देवाधिदेवके माहात्म्यको मैं बताता हूँ॥ १॥

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्॥ २॥

अहं हि सर्वभावानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः।
मां सर्वसाक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः॥ ३॥

यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तरः परः।
सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः॥ ४॥

न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः।
ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः॥ ५॥

मैं न तो विविध प्रकारके तपसे, न दानसे और न यज्ञोंसे ही जानने योग्य हूँ। बिना उत्तम भक्तिके मनुष्य मुझे जान नहीं सकता। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला मैं सभी भावोंके अन्तःमें प्रविष्ट रहता हूँ। परंतु मुनीश्वरो! मुझ सर्वसाक्षीको संसार जान नहीं पाता। जिसके भीतर यह सब प्रतिष्ठित है और जो परम तत्त्व सभीके अन्तःमें स्थित है, मैं वही धाता, विधाता, काल, अग्नि तथा सभी ओर मुखवाला हूँ। सभी मुनि, देवता, ब्रह्मा, मनु, इन्द्र और जो अत्यन्त तेजस्वी हैं, वे भी मुझे नहीं देख पाते॥ २—५॥

गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम्।
यजन्ति विविधैरग्निं ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः॥ ६॥

सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम्॥ ७॥

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः॥ ८॥

वेद मुझ अद्वितीय परमेश्वरकी निरन्तर स्तुति किया करते हैं। ब्राह्मण अनेक प्रकारके वैदिक यज्ञोंके द्वारा अग्निस्वरूप मेरा यजन करते हैं। सभी लोक तथा लोकपितामह ब्रह्मा मुझे नमस्कार करते हैं। योगी जन सभी प्राणियोंके अधिपति (मुझ) ईश्वर देवका ध्यान करते हैं। सबकी आत्मा और सर्वव्यापी मैं ही सभी देवोंके शरीरोंको धारण कर सम्पूर्ण हवियोंका भोक्ता एवं सभी फलोंका प्रदाता हूँ॥ ६—८॥

मां पश्यन्तीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः।
तेषां संनिहितो नित्यं ये भक्त्या मामुपासते॥ ९ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते।
तेषां ददामि तत् स्थानमानन्दं परमं पदम्॥ १० ॥
अन्येऽपि ये विकर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेन मयि संगताः॥ ११ ॥

न मद्भक्ता विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
आदावेतत् प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति॥ १२ ॥

यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति।
यो हि तं पूजयेद् भक्त्या स पूजयति मां सदा॥ १३ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः॥ १४ ॥
अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
विधाय दत्तवान् वेदानशेषानात्मनिःसृतान्॥ १५ ॥

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम्॥ १६ ॥
अहं वै सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः॥ १७ ॥

अहमेव हि संहर्ता स्त्रष्टाहं परिपालकः।
मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी॥ १८ ॥
ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते।
नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः॥ १९ ॥

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च॥ २० ॥

एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत्।
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता॥ २१ ॥

अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत्।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः॥ २२ ॥

धार्मिक वेदनिष्ठ विद्वान् मेरा दर्शन करते हैं। जो भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, मैं नित्य उनके समीपमें रहता हूँ। धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य मेरी उपासना करते हैं। मैं उन्हें आनन्दस्वरूप परमपद नामक स्थान प्रदान करता हूँ॥ ९-१० ॥

अन्य भी जो विपरीत कर्म करनेके कारण शूद्र आदि निम्न जातियोंमें हैं, भक्तिपरायण होनेपर वे भी मुक्त हो जाते हैं और यथासमय मुझमें लीन हो जाते हैं। मेरे भक्त विनाशको प्राप्त नहीं होते, मेरे भक्त पापोंसे रहित हो जाते हैं। मैंने प्रारम्भमें ही यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि मेरे भक्तका विनाश नहीं होता। जो उस (भक्त)-की निन्दा करता है, वह मूढ देवाधिदेव (शंकर)-की ही निन्दा करता है और जो उस (भक्त)-की भक्तिपूर्वक पूजा करता है, (समझो कि) वह सदा मेरी ही पूजा करता है। मेरी आराधनाके लिये जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल तथा जल मुझे प्रदान करता है, वह मेरा प्रिय भक्त है, ऐसा समझना चाहिये॥ ११—१४ ॥

मैंने ही संसारकी सृष्टिके प्रारम्भमें परमेष्ठी ब्रह्माकी सृष्टिकर अपनेसे प्रादुर्भूत सम्पूर्ण वेदोंको उन्हें प्रदान किया। मैं ही सभी योगियोंका अव्यय गुरु, धार्मिक जनोंका रक्षक तथा वेदसे द्वेष रखनेवालोंको विनष्ट करनेवाला हूँ॥ १५-१६ ॥

मैं ही योगियोंको समस्त संसारसे मुक्त करनेवाला हूँ। मैं ही संसारका कारण और सम्पूर्ण संसारसे विवर्जित (असंसृष्ट) हूँ। मैं ही संहार करनेवाला और मैं ही सृष्टि तथा पालन करनेवाला मायावी हूँ। मेरी शक्ति माया है, वह संसारको मोहित करनेवाली है॥ १७-१८ ॥

मेरी ही जो पराशक्ति है, वह 'विद्या' इस नामसे कही जाती है। योगियोंके हृदयमें रहते हुए मैं उस मायाको नष्ट कर देता हूँ। सभी शक्तियोंका प्रवर्तन करनेवाला तथा निवर्तन करनेवाला मैं ही हूँ। मैं सभीका आधार और अमृतका आश्रय-स्थान हूँ। मुझमें अधिष्ठित और मेरी स्वरूपभूता जो सबके अन्तरमें स्थित अद्वितीय शक्ति है, वह ब्रह्माका रूप धारणकर विविध प्रकारके संसारकी सृष्टि करती है और जो मेरी दूसरी विपुल शक्ति है, वह अनन्त, जगन्नाथ, जगन्मय और नारायणका रूप धारणकर संसारकी स्थापना (पालन आदि कार्य) करती है॥ १९—२२ ॥

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत्।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी॥ २३॥
ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे॥ २४॥

सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा॥ २५॥

अन्ये च ये त्रयो भक्ता मदाराधनकाङ्क्षिणः।
तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्तन्ते च वै पुनः॥ २६॥

मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम्।
मय्येव संस्थितं विश्वं मया सम्प्रेर्यते जगत्॥ २७॥

मेरी तीसरी जो रुद्ररूपिणी काल नामक महती तामसी शक्ति है, वह समस्त जगत्का संहार करती है कुछ लोग ध्यानद्वारा, कुछ दूसरे लोग ज्ञानद्वारा, कुछ भक्तियोगके द्वारा और कुछ कर्मयोगके द्वारा मेरा दर्शन करते हैं। जो किसी अन्य प्रकारसे नहीं, अपितु केवल ज्ञानद्वारा नित्य मेरी आराधना करता है, वह सभी भक्तोंमें मुझे प्रिय है, प्रियतर है अर्थात् अत्यन्त प्रिय है। अन्य भी जो मेरी आराधना करनेके अभिलाषी तीन (प्रकारके) भक्त हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। मेरे द्वारा ही यह सम्पूर्ण प्रधान और पुरुषरूप संसार व्याप्त है। यह विश्व मुझमें ही स्थित है और मेरे द्वारा ही संसार प्रेरित किया जाता है॥ २३—२७॥

नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रितः।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः॥ २८॥

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः।
करोति कालो भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम्॥ २९॥

योगः सम्प्रोच्यते योगी माया शास्त्रेषु सूरिभिः।
योगेश्वरोऽसौ भगवान् महादेवो महान् प्रभुः॥ ३०॥

हे विप्रो! परम योगमें ही सदा निरत रहनेवाला मैं प्रेरक नहीं हूँ, तथापि सम्पूर्ण जगत्को मैं प्रेरित करता हूँ, इस (रहस्य)-को जो जानता है, वह अमर हो जाता[1] है। अपने स्वभाववश प्रवर्तमान समस्त जगत्का मैं साक्षीमात्र हूँ। महायोगेश्वर भगवान् काल स्वयं ही (जगत्की सृष्टि) करते हैं। विद्वानोंने शास्त्रोंमें जिसे योग, योगी और माया कहा है, वह सब प्रभु महादेव भगवान् महायोगेश्वर ही हैं अर्थात् योगेश्वर महादेवमें ही यह सब कल्पित है॥ २८—३०॥

महत्त्वं सर्वतत्त्वानां परत्वात् परमेष्ठिनः।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महान् ब्रह्ममयोऽमलः॥ ३१॥

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम्।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥ ३२॥

सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रितः।
नृत्यामि योगी सततं यस्तद् वेद स वेदवित्॥ ३३॥

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निष्ठितम्।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये॥ ३४॥

परमेष्ठी सभी तत्त्वोंसे परे हैं अतः सभी तत्त्वोंका महत्त्व ही भगवान् ब्रह्माके रूपमें प्रसिद्ध है और ये भगवान् ब्रह्मा ब्रह्ममय एवं अमल हैं। जो मुझे ही महायोगेश्वरोंका भी ईश्वर समझता है, वह निर्विकल्प (समाधि)-योगसे युक्त होता है, इसमें संदेह नहीं। परमानन्दका आश्रयण करनेवाला वही मैं प्रेरित करनेवाला देवता हूँ। मैं योगी निरन्तर नृत्य करता (प्राणिमात्रके हृदयमें सदा विद्यमान) रहता हूँ, जो ऐसा जानता है वह वेदज्ञ है यह अत्यन्त गुह्य ज्ञान सभी वेदोंमें प्रतिष्ठित है। इसे प्रसन्नचित्त, धार्मिक तथा अग्निहोत्रीको प्रदान करना चाहिये॥ ३१—३४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥ ४॥

१-इसका आशय यह है कि महेश्वर प्रेरक होते हुए भी प्रेरणाकी आसक्तिसे सर्वथा रहित हैं। अहैतुकी कृपावश ही प्रेरक बनते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

ऋषियोंको दिव्य नृत्य करते हुए भगवान् शंकरका आकाशमें दर्शन, मुनियोंद्वारा महेश्वरकी भावपूर्ण स्तुति करना

व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् योगिनां परमेश्वरः।
ननर्त परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन्॥ १ ॥
तं ते ददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम्।
नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले॥ २ ॥
यं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः।
तमीशं सर्वभूतानामाकाशे ददृशुः किल॥ ३ ॥
यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत्।
नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशः खलु दृश्यते॥ ४ ॥
यत्पादपङ्कजं स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञानजं भयम्।
जहाति नृत्यमानं तं भूतेशं ददृशुः किल॥ ५ ॥
यं विनिद्रा जितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः।
ज्योतिर्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल॥ ६ ॥

योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः।
तमेव मोचकं रुद्रमाकाशे ददृशुः परम्॥ ७ ॥

सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम्।
सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥ ८ ॥

वसानं चर्म वैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम्।
दण्डपाणिं त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम्॥ ९ ॥

ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य च स्थितम्।
दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १० ॥

अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमभ्यन्तरं परम्।
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलं जगत्।
नृत्यन्तं ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम्॥ ११ ॥
महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम्।
पशूनां पतिमीशानं ज्योतिषां ज्योतिरव्ययम्॥ १२ ॥
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजं भवरोगिणाम्।
कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम्॥ १३ ॥

व्यासजी बोले—इतना कहकर योगियोंके परमेश्वर भगवान् (शिव) परम ऐश्वर्यमय भाव प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे। उन मुनियोंने परम तेजोनिधि ईशान महादेवको विष्णुके साथ नृत्य करते हुए स्वच्छ आकाशमें देखा। योगके तत्त्वको जाननेवाले संयतचित्त योगी ही जिन्हें जान पाते हैं, उन सभी प्राणियोंके ईशको आकाशमें मुनियोंने देखा। यह (सम्पूर्ण जगत्) जिनकी मायासे निर्मित है और जिनके द्वारा यह जगत् प्रेरित होता है, उन साक्षात् विश्वेशको विप्रोंने नृत्य करते हुए देखा। जिनके चरण-कमलका स्मरण करके पुरुष अज्ञानसे उत्पन्न भयसे छुटकारा पा लेता है, उन्हीं भूतेशको मुनियोंने नृत्य करते हुए देखा॥ १—५॥

निद्रारहित, श्वासजयी, शान्त और भक्तिपरायण लोग जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका दर्शन करते हैं, (विप्रजनोंको) वे ही योगी दिखलायी पड़े। जो भक्तवत्सल (देव) प्रसन्न होनेपर शीघ्र ही अज्ञानसे मुक्त कर देते हैं, उन्हीं मुक्त करनेवाले परम रुद्रको (उन्होंने) आकाशमें देखा। (ब्राह्मणोंने) हजारों सिरवाले, हजारों चरणोंकी आकृतिसे युक्त, हजारों बाहुवाले, जटायुक्त, अर्धचन्द्रको मस्तकपर धारण करनेवाले, व्याघ्रके चर्मको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, महान् भुजामें त्रिशूल धारण करनेवाले, हाथमें दण्ड धारण किये, वेदत्रयीरूप तीन नेत्रवाले, सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप नेत्रधारी, अपने तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको आवृतकर स्थित हुए, भयंकर दाढ़ोंवाले, दुर्धर्ष, करोड़ों सूर्योंके समान आभावाले, अण्डके अंदर स्थित और अण्डके बाहर स्थित, परम (सर्वोत्कृष्ट), बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त, अग्निज्वाला उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण जगत्को जलानेवाले विश्वकर्मा (समस्त कर्मोंके अधिष्ठाता) देवको नृत्य करते हुए देखा॥ ६—११॥

ब्रह्मवादी मुनियोंने महादेव, महायोगस्वरूप, देवोंके भी देव, पशुपति ईशान, ज्योतियोंके भी अविनश्वर ज्योति:स्वरूप, पिनाकी, विशालाक्ष, भव-रोगियोंके औषध, कालात्मा, कालके भी काल, देवाधिदेव, महेश्वर,

उमापतिं विरूपाक्षं योगानन्दमयं परम्।
ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम्॥ १४॥
शाश्वतैश्वर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम्।
महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम्॥ १५॥
आधारं सर्वशक्तीनां महायोगेश्वरेश्वरम्।
योगिनां परमं ब्रह्म योगिनां योगवन्दितम्।
योगिनां हृदि तिष्ठन्तं योगमायासमावृतम्॥ १६॥
क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम्।
ईश्वरेणैकतापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः॥ १७॥
दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रनारायणात्मकम्।
कृतार्थं मेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः॥ १८॥
सनत्कुमारः सनको भृगुश्च
सनातनश्चैव सनन्दनश्च।
रुद्रोऽङ्गिरा वामदेवोऽथ शुक्रो
महर्षिरत्रिः कपिलो मरीचिः॥ १९॥
दृष्ट्वाथ रुद्रं जगदीशितारं
तं पद्मनाभाश्रितवामभागम्।
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
बद्ध्वाञ्जलिं स्वेषु शिरःसु भूयः॥ २०॥
ओङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देव-
मन्तःशरीरे निहितं गुहायाम्।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभि-
रानन्दपूर्णायतमानसास्ते॥ २१॥

उमापति, विरूपाक्ष, परम योगानन्दमय, ज्ञान-वैराग्यके निधान, सनातन ज्ञानयोग, शाश्वत ऐश्वर्य एवं विभवरूप, धर्मके आधार, दुरासद (दुष्प्राप्य), महेन्द्र तथा उपेन्द्र (विष्णु)-द्वारा नमस्कृत, महर्षिगणोंद्वारा वन्दित, सभी शक्तियोंके आधार, महायोगेश्वरोंके भी ईश्वर, योगियोंके परम ब्रह्म, योगियोंके योगद्वारा वन्दित, योगियोंके हृदयमें स्थित, योगमायासे समावृत, जगत्के योनिरूप तथा अनामय नारायणको क्षणमात्रमें ईश्वर अर्थात् शंकरके साथ एकाकार होते हुए देखा॥ १२—१७॥

रुद्रके उस ऐश्वर्यमय नारायणात्मक रूपको देखकर ब्रह्मवादी संतोंने अपने-आपको कृतार्थ माना। सनत्कुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन, रुद्र, अंगिरा, वामदेव, शुक्र, महर्षि अत्रि, कपिल तथा मरीचि—इन ऋषियोंने पद्मनाभ विष्णुको वामभागमें विराजित किये हुए उन जगत्के नियामक रुद्रका दर्शन किया और हृदयमें स्थित उनका ध्यान करके सिरसे विनयपूर्वक प्रणामकर पुनः अपने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया॥ १८—२०॥

ओंकारका उच्चारण करनेके उपरान्त अपने शरीरके भीतर (हृदयरूपी) गुहामें निहित उन देवका दर्शन करके आनन्दसे परिपूर्ण विस्तृत आत्मावाले वे (मुनिगण) वैदिक मन्त्रोंके द्वारा (उन देवकी) स्तुति करने लगे॥ २१॥

मुनय ऊचुः

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं
प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम्।
नमाम सर्वे हृदि संनिविष्टं
प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥ २२॥
त्वां पश्यन्ति मुनयो ब्रह्मयोनिं
दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम्।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे
कविं परेभ्यः परमं तत्परं च॥ २३॥
त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः
सर्वात्मभूस्त्वं परमाणुभूतः।
अणोरणीयान् महतो महीयां-
स्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥ २४॥

मुनियोंने कहा—आप एकमात्र ईश्वर, पुराणपुरुष, प्राणेश्वर, अनन्त योगरूप, हृदयमें संनिविष्ट, प्रचेता, पवित्र एवं ब्रह्ममय रुद्रको हम सभी प्रणाम करते हैं। इन्द्रियोंका दमन करनेवाले तथा शान्त मुनिगण ध्यानके द्वारा अपने ही शरीरमें अचल, निर्मल, स्वर्णके समान वर्णवाले, ब्रह्मयोनि, उत्कृष्टसे भी अत्यन्त उत्कृष्ट (प्राणिमात्रके हृदयमें विद्यमान) आप कविका दर्शन करते हैं। संसारकी सृष्टि आपसे ही हुई है। आप सभीके आत्मरूप और परम अणुरूप हैं। महापुरुष आपको ही सब कुछ और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा महान्से भी महान् कहते हैं॥ २२—२४॥

हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा
त्वत्तोऽधिजातः पुरुषः पुराणः।
संजायमानो भवता विसृष्टो
यथाविधानं सकलं ससर्ज॥ २५॥
त्वत्तो वेदाः सकलाः सम्प्रसूता-
स्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते।
पश्यामस्त्वां जगतो हेतुभूतं
नृत्यन्तं स्वे हृदये संनिविष्टम्॥ २६॥
त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं
मायावी त्वं जगतामेकनाथः।
नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्ना
योगात्मानं चित्पतिं दिव्यनृत्यम्॥ २७॥
पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये
नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामः।
सर्वात्मानं बहुधा संनिविष्टं
ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय ॥ २८॥
ॐकारस्ते वाचको मुक्तिबीजं
त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम्।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः
स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रकाशम्॥ २९॥
स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा
नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः।
शान्तात्मानः सत्यसंधा वरिष्ठं
विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः॥ ३०॥
एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्त-
स्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम्।
वेद्यं त्वां शरणं ये प्रपन्ना-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ ३१॥
भवानीशोऽनादिमांस्तेजोराशि-
र्ब्रह्मा विश्वं परमेष्ठी वरिष्ठः।
स्वात्मानन्दमनुभूयाधिशेते
स्वयं ज्योतिरचलो नित्यमुक्तः॥ ३२॥
एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं
त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः।
त्वामेवान्ते निलयं विन्दतीदं
नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्नाः॥ ३३॥

जगत्के अन्तरात्मा-स्वरूप हिरण्यगर्भ पुराणपुरुष आपसे उत्पन्न हुए हैं। आपद्वारा उत्पन्न किये गये उस (पुराणपुरुष)-ने उत्पन्न होते ही यथाविधि सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि की। आपसे ही सभी वेद उत्पन्न हुए हैं और अन्तमें आपमें ही वे स्थिति पाते हैं। हम अपने हृदयमें स्थित जगत्के कारणरूप आपको नृत्य करते हुए देख रहे हैं। आपके द्वारा ही इस ब्रह्मचक्रको चलाया जाता है, आप मायावी और जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। हम दिव्य नृत्य करनेवाले आप योगात्मा चित्पतिकी शरणमें आये हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। परम आकाशके मध्यमें नृत्य कर रहे आपका हम दर्शन करते हैं और आपकी महिमाका स्मरण करते हैं। अनेक रूपोंमें स्थित सर्वात्मा ब्रह्मानन्दका हम बार-बार अनुभव कर रहे हैं॥ २५—२८॥

आपका वाचक ओङ्कार मुक्तिका बीज है, आप अक्षर तथा प्रकृतिमें गूढरूपसे स्थित हैं। इसीलिये संतजन आपको सत्यस्वरूप और आपके प्रकाशको स्वयं प्रकाशित बताते हैं। सभी वेद सतत आपकी स्तुति करते हैं। दोषरहित ऋषिगण आपको नमस्कार करते हैं तथा शान्त-चित्त, सत्यसंध ब्रह्मनिष्ठ यतिजन आप सर्वश्रेष्ठमें प्रवेश करते हैं॥ २९-३०॥

बहुत शाखाओंवाला एक अनन्त वेद आपके अद्वितीय एवं एकरूपका बोध कराता है। जो लोग जानने योग्य आपकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हींको शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, अन्य किसीको नहीं। आप ईश, अनादि, तेजोराशि, ब्रह्मा, विश्वरूप, परमेष्ठी और वरिष्ठ हैं। नित्य मुक्त और स्वयं ज्योतिरूप अचल (योगी) स्वात्मानन्दका अनुभव कर (आपमें) प्रविष्ट होते हैं॥ ३१-३२॥

आप अद्वितीय रुद्र ही इस विश्वकी सृष्टि करते हैं। विश्वरूप आप सबका पालन करते हैं और यह (विश्व) अन्तमें आपमें ही विलीन हो जाता है। हम आपको नमस्कार करते हैं और आपके शरणागत हैं॥ ३३॥

त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं
प्राणं बृहन्तं हरिमग्निमीशम्।
इन्द्रं मृत्युमनिलं चेकितानं
धातारमादित्यमनेकरूपम् ॥ ३४ ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ॥ ३५ ॥
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं
त्वमेव रुद्रो भगवानधीशः।
त्वं विश्वनाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा
सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ ३६ ॥

आपको अद्वितीय, कवि, एक रुद्र, प्राण, बृहत्, हरि, अग्नि, ईश, इन्द्र, मृत्यु, अनिल, चेकितान, धाता, आदित्य, और अनेकरूप कहा जाता है। आप अविनाशी और परम जानने योग्य हैं। आप ही इस विश्वके परम आश्रय हैं। आप अव्यय, शाश्वत धर्मरक्षक, सनातन और पुरुषोत्तम हैं। आप ही विष्णु और आप ही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। आप ही प्रधान स्वामी भगवान् रुद्र हैं। आप विश्वकी नाभि, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर और परम ईश्वर हैं॥ ३४—३६ ॥

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराण-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च ॥ ३७ ॥
यदन्तरा सर्वमिदं विभाति
यदव्ययं निर्मलमेकरूपम्।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमेतत्
तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ॥ ३८ ॥

आपको अद्वितीय, पुराणपुरुष, आदित्यके समान वर्णवाला, तमोगुणसे अतीत, चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, आकाश, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति और निर्गुण कहते हैं। जिसके भीतर यह सम्पूर्ण (जगत्) प्रकाशित होता है तथा जो विकाररहित निर्मल और अद्वितीय रूप है, वह आपका रूप अचिन्त्य है और उसके भीतर समस्त तत्त्व प्रतीत होते हैं॥ ३७-३८ ॥

योगेश्वरं रुद्रमनन्तशक्तिं
परायणं ब्रह्मतनुं पवित्रम्।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां
प्रसीद भूताधिपते महेश ॥ ३९ ॥
त्वत्पादपद्मस्मरणादशेष-
संसारबीजं विलयं प्रयाति।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादयामो वयमेकमीशम् ॥ ४० ॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय
कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते
नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ॥ ४१ ॥

ततः स भगवान् देवः कपर्दी वृषवाहनः।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद् भवः ॥ ४२ ॥

हम सभी योगेश्वर, अनन्तशक्ति रुद्र, उत्कृष्ट आश्रयस्वरूप पवित्र ब्रह्ममूर्ति (आप)-को नमस्कार करते हैं। भूतोंके अधिपति महेश! प्रसन्न होइये, हम आपकी शरणमें हैं। आपके चरणकमलका स्मरण करनेसे सम्पूर्ण संसारका बीज (अर्थात् कर्म) नष्ट हो जाता है। मनका नियमन कर, शरीरको संयमित कर हम सभी अद्वितीय ईश्वर आपको प्रसन्न करते हैं। भव, भवोद्भव, काल, सर्व तथा हर आपको नमस्कार है। जटाधारी आप रुद्रको नमस्कार है। अग्निरूप देव शिव! आपको नमस्कार है, इस प्रकार स्तुति करनेपर उन भगवान् कपर्दी वृषवाहन देव भवने (अपने उस) उत्कृष्ट (विराट्)-रूपको समेट लिया और वे अपनी प्रकृतिमें स्थित हो गये॥ ३९—४२ ॥

ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत् समवस्थितम्।
दृष्ट्वा नारायणं देवं विस्मिता वाक्यमब्रुवन्॥ ४३॥

मुनियोंने पहलेके समान स्थित भूतभव्येश भव और नारायणदेवको देखकर आश्चर्यचकित होकर यह वाक्य कहा— ॥ ४३॥

भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन।
दृष्ट्वा ते परमं रूपं निर्वृताः स्म सनातन॥ ४४॥

भवत्प्रसादादमले परस्मिन् परमेश्वरे।
अस्माकं जायते भक्तिस्त्वय्येवाव्यभिचारिणी॥ ४५॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शंकर।
भूयोऽपि तव यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः॥ ४६॥

भगवन्! भूतभव्येश! गोवृषाङ्कितशासन! सनातन! आपके परम रूपका दर्शन कर हमलोग संतुष्टचित्त हो गये हैं। आपकी कृपासे हम सभीको निर्मल, परात्पर, परमेश्वरस्वरूप आपकी अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न हुई है। शंकर! इस समय हमलोग आप परमेष्ठीके उस माहात्म्यको एवं जो नित्य यथार्थस्वरूप है (उसे) पुनः सुनना चाहते हैं॥ ४४—४६॥

स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः।
प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम्॥ ४७॥

योगसिद्धियोंको प्रदान करनेवाले उन्होंने (महेश्वरने) उन योगियोंका वचन सुनकर तथा विष्णुकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें कहा— ॥ ४७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

ईश्वर (शंकर)-द्वारा ऋषिगणोंको अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाना तथा अपनी भगवत्ताका और इस ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्तिका निरूपण करना

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत् परमेष्ठिनः।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यं यत्तद्वेदविदो विदुः॥ १॥

ईश्वरने कहा—हे ऋषिगणो! आप सभी सुनें। मैं परमेष्ठी ईशके उस माहात्म्यका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, जिसे वेदज्ञ लोग जानते हैं॥ १॥

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः॥ २॥

सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी पिता ह्यहम्।
मध्ये चान्तः स्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः॥ ३॥

मैं सनातन सर्वात्मा सभी लोकोंका एकमात्र निर्माण करनेवाला, सभी लोकोंका एक अद्वितीय रक्षक और सभी लोकोंका एकमात्र संहार करनेवाला हूँ। सभी वस्तुओंका अन्तर्यामी पिता मैं ही हूँ। मध्य तथा अन्त सब कुछ मुझमें स्थित है, किंतु मैं सर्वत्र स्थित नहीं हूँ अर्थात् मेरी कोई सीमा नहीं है॥ २-३॥

भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम्।
ममैषा ह्युपमा विप्रा मायया दर्शिता मया॥ ४॥

सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थितः।
प्रेरयामि जगत् कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम॥ ५॥

यथेदं चेष्टते विश्वं तत्स्वभावानुवर्ति च।
सोऽहं कालो जगत् कृत्स्नं प्रेरयामि कलात्मकम्॥ ६॥

विप्रो! आप लोगोंने मेरे जिस अद्भुत रूपको देखा है, वह केवल मेरी उपमा (प्रतीक) है, जिसे मैंने (अपनी) मायाद्वारा दिखलाया। मैं सभी पदार्थोंके भीतर स्थित (व्याप्त) रहते हुए सम्पूर्ण जगत्को प्रेरित करता हूँ। यह मेरी क्रियाशक्ति है। यह विश्व जिसके द्वारा चेष्टा करता है और जिसके स्वभावका अनुसरण करता है, कालरूप वही मैं सम्पूर्ण कलात्मक (अपने अंशरूप) जगत्को प्रेरित करता हूँ॥ ४—६॥

य: स्वभासा जगत् कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा।
सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयम्भुव:॥ २१॥

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्र: सर्वामरेश्वर:।
यज्वनां फलदो देवो वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥ २२॥

य: प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगत:॥ २३॥

योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायक:।
सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा॥ २४॥

य: सर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रद:।
मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋति: सदा॥ २५॥
वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रद:।
ईशान: किल भक्तानां सोऽपि तिष्ठन्ममाज्ञया॥ २६॥

यो वामदेवोऽङ्गिरस: शिष्यो रुद्रगणाग्रणी:।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥ २७॥

यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्नकारक:।
विनायको धर्मनेता सोऽपि मद्वचनात् किल॥ २८॥

योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापति: प्रभु:।
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिचोदित:॥ २९॥

ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षय:।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगत:॥ ३०॥
या च श्री: सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम्।
पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात्॥ ३१॥

वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती।
सापीश्वरनियोगेन चोदिता सम्प्रवर्तते॥ ३२॥

याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात् तारयिष्यति।
सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायिनी॥ ३३॥

पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी।
यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा॥ ३४॥

योऽनन्तमहिमानन्त: शेषोऽशेषामरप्रभु:।
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगत:॥ ३५॥

जो अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण संसारको सदा प्रकाशित करते हैं, वे सूर्यदेव भी स्वयम्भू (ईश्वर)-की आज्ञासे वृष्टिका विस्तार करते हैं। जो सारे संसारके शासक, सभी देवताओंके ईश्वर तथा यज्ञ करनेवालोंको फल प्रदान करनेवाले इन्द्रदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञासे प्रवृत्त होते हैं। जो दुष्टोंके शासक हैं और नियमके अनुसार व्यवहार करनेवाले विवस्वान्‌के पुत्र यमदेव हैं, वे भी देवाधिदेव (शंकर)-के निर्देशसे व्यवहार करते हैं। जो सभी प्रकारके सम्पत्तियोंके स्वामी और धन प्रदान करनेवाले कुबेर हैं, वे भी ईश्वरके नियोगसे ही सदा प्रवृत्त होते हैं। जो सभी राक्षसोंके स्वामी हैं तथा तमोगुणियोंको (अपने कर्मका) फल प्रदान करनेवाले हैं, वे निर्ऋतिदेव मेरे ही निर्देशसे सदा प्रवर्तित होते हैं॥ २१—२५॥

जो बेतालगणों और भूतोंके स्वामी और भक्तोंको भोगरूपी फल प्रदान करनेवाले ईशानदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञामें स्थित रहते हैं। जो अङ्गिराके शिष्य, रुद्रदेवके गणोंमें अग्रगण्य और योगियोंके रक्षक हैं, वे वामदेव भी मेरी ही आज्ञाद्वारा नित्य व्यवहार करते हैं। जो सम्पूर्ण संसारके पूज्य, विघ्नकारक धर्मनेता विनायक हैं, वे भी मेरे आदेशसे चलते हैं। जो ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, देवोंके सेनापति स्वयम्भू प्रभु स्कन्द हैं, वे भी नित्य विधिकी प्रेरणासे प्रेरित होते हैं। जो प्रजाओंके पति मरीचि आदि महर्षि हैं, वे भी परात्पर (परमेश्वर)-की आज्ञासे ही विविध लोकोंकी सृष्टि करते हैं॥ २६—३०॥

जो सभी प्राणियोंकी श्री (शोभा) हैं और विपुल ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, वे नारायणकी पत्नी (लक्ष्मी) मेरे ही अनुग्रहसे व्यवहार करती हैं। जो सरस्वतीदेवी विपुल वाणी प्रदान करती हैं, वे भी ईश्वरके नियोगसे प्रेरित होकर प्रवर्तित होती हैं। जो सभी पुरुषोंको घोर नरकोंसे तारनेवाली सावित्रीदेवी कही गयी हैं, वे भी देवकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाली हैं। ध्यान करनेपर ब्रह्मविद्याको प्रदान करनेवाली जो श्रेष्ठ पार्वती-देवी हैं, वे भी विशेषरूपसे मेरे ही वचनोंका पालन करती हैं॥ ३१—३४॥

अनन्त महिमावाले और सभी देवताओंके स्वामी जो अनन्त शेष हैं, वे भी देव (शंकर)-के निर्देशसे ही संसारको सिरपर धारण करते हैं॥ ३५॥

योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः।
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः॥ ३६॥
ये चतुर्दश लोकेऽस्मिन् मनवः प्रथितौजसः।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः॥ ३७॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ।
अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छास्त्रेणैव धिष्ठिताः॥ ३८॥
गन्धर्वा गरुडा ऋक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणाः।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयम्भुवः॥ ३९॥
कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः।
ऋतवः पक्षमासाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः॥ ४०॥

जो संवर्तक अग्नि नित्य वडवाके रूपमें स्थित हैं, वे भी ईश्वरकी आज्ञासे ही सम्पूर्ण समुद्रको पीते रहते हैं। इस संसारमें अत्यन्त तेजस्वी जो चौदह मनु हैं, वे सभी मुझ (ईश्वर)-के आदेशसे सभी प्रजाओंका पालन करते हैं। आदित्य, वसुगण, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार तथा अन्य सभी देवता मेरी ही आज्ञामें प्रतिष्ठित हैं। गन्धर्व, गरुड, ऋक्ष, सिद्ध, साध्य, चारण, यक्ष, राक्षस तथा पिशाच—ये सभी स्वयम्भूकी आज्ञामें ही स्थित हैं। कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिन, रात, ऋतुएँ, पक्ष तथा मास—ये मुझ प्रजापति (शिव)-के शासनमें स्थित हैं॥ ३६—४०॥

युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने।
पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथा परे॥ ४१॥
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नियोगादेव वर्तन्ते देवस्य परमात्मनः॥ ४२॥
पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात्।
ब्रह्माण्डानि च वर्तन्ते सर्वाण्येव स्वयम्भुवः॥ ४३॥
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः॥ ४४॥
ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगैः।
वहिष्यन्ति सदैवाज्ञां परस्य परमात्मनः॥ ४५॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्तते॥ ४६॥

युग, मन्वन्तर, पर तथा परार्ध—ये सभी तथा अन्य कालके सभी भेद मेरे ही शासनमें स्थित रहते हैं। (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—ये) चार प्रकारके प्राणी और स्थावर-जंगमात्मक जगत् मुझ परमात्मा देवके निर्देशसे ही प्रवर्तित होते हैं। सभी पाताल और भुवन, सभी ब्रह्माण्ड स्वयम्भू परमेश्वरकी आज्ञासे प्रवर्तित हैं। बीते हुए भी जो पदार्थोंके समूहोंसहित असंख्य ब्रह्माण्ड थे, वे मेरी ही आज्ञासे सर्वत्र प्रवृत्त थे। आगे भी जो ब्रह्माण्ड होंगे, वे भी सदैव परात्पर परमात्माकी आज्ञाका आत्मगत (अपने अधीन) वस्तुओंके[1] द्वारा पालन करेंगे। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, भूतादि[2] (तामस अहंकार) और आदि प्रकृति—ये सभी मेरी आज्ञासे कार्य करते हैं॥ ४१—४६॥

याशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम्।
माया विवर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः॥ ४७॥
यो वै देहभृतां देवः पुरुषः पठ्यते परः।
आत्मासौ वर्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः॥ ४८॥

जो सम्पूर्ण संसारकी योनि और सभी देहधारियोंको मोहित करनेवाली माया है, वह भी ईश्वरके निर्देशसे ही नित्य (विभिन्न रूपोंमें) विवर्तित होती रहती है। जो देहधारियोंके आत्मस्वरूप परात्पर पुरुष देव कहे जाते हैं, वे भी नित्य ईश्वरके नियोगसे ही कार्य करते हैं॥ ४७-४८॥

विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत् पदम्।
सापि विद्या महेशस्य नियोगवशवर्तिनी॥ ४९॥
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत्।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत्॥ ५०॥

जिसके द्वारा मोहरूपी कल्मषको धोकर उस परमपदका दर्शन होता है, वह विद्या भी महेशकी आज्ञाके वशमें रहनेवाली है। इस विषयमें और अधिक क्या कहा जाय, यह संसार मेरी ही शक्तिसे शक्तिमान् है। मेरे द्वारा ही सम्पूर्ण (जगत्) प्रेरित किया जाता है और मुझमें ही उसका लय भी हो जाता है॥ ४९-५०॥

१-अपने अधीन जो भी सामग्री होगी, उसमें पूर्ण समर्पणभावसे आज्ञापालन करना यहाँ अभिप्रेत है।
२-तामस अहंकारकी भूतादि संज्ञा सांख्यशास्त्रमें प्रसिद्ध है—भूतादेस्तन्मात्र.......' । (सांख्यकारिका २५)

अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥ ५१॥

मैं ही भगवान्, ईश, स्वयं प्रकाश, सनातन और परमात्मा परम ब्रह्म हूँ, मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है॥ ५१॥

इत्येतत् परमं ज्ञानं युष्माकं कथितं मया।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥ ५२॥

इस प्रकार यह परम ज्ञान मैंने आप लोगोंसे कहा, इसे जान लेनेसे प्राणी जन्म तथा संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ५२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) छठा अध्याय समाप्त हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

ईश्वर (शंकर)-द्वारा अपनी विभूतियोंका वर्णन तथा प्रकृति, महत् आदि चौबीस तत्त्वों, तीन गुणों एवं पशु, पाश और पशुपति आदिका विवेचन

ईश्वर उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः।
यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत् पुनः॥ १॥

ईश्वर बोले—ऋषियो! आप सभी परमेष्ठीके प्रभावको सुनें, जिसे जानकर पुरुष मुक्त हो जाता है और फिर संसारमें नहीं गिरता॥ १॥

परात् परतरं ब्रह्म शाश्वतं निष्कलं ध्रुवम्।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम॥ २॥
अहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः।
मायाविनामहं देवः पुराणो हरिरव्ययः॥ ३॥
योगिनामस्म्यहं शम्भुः स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा।
आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावकः॥ ४॥
रुद्राणां शंकरश्चाहं गरुडः पततामहम्।
ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम्॥ ५॥

जो परसे परतर, शाश्वत, निष्कल, ध्रुव, नित्यानन्द, निर्विकल्प ब्रह्म है, वह मेरा परम धाम है। मैं ब्रह्मज्ञानियोंमें सर्वतोमुख स्वयम्भू ब्रह्मा हूँ। मायावियोंमें मैं अव्यय पुराण देव हरि हूँ। योगियोंमें मैं शम्भु और स्त्रियोंमें गिरिराज पुत्री पार्वती हूँ। मैं (द्वादश) आदित्योंमें विष्णु तथा (अष्ट) वसुओंमें पावक हूँ। मैं रुद्रोंमें शंकर, उड़नेवाले पक्षियोंमें गरुड, गजेन्द्रोंमें ऐरावत तथा शस्त्रधारियोंमें परशुराम हूँ॥ २—५॥

ऋषीणां च वसिष्ठोऽहं देवानां च शतक्रतुः।
शिल्पिनां विश्वकर्माहं प्रह्लादोऽस्म्यमरद्विषाम्॥ ६॥
मुनीनामप्यहं व्यासो गणानां च विनायकः।
वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः॥ ७॥
पर्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः।
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमस्म्यहम्॥ ८॥
अनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनां च पावकिः।
आश्रमाणां च गार्हस्थमीश्वराणां महेश्वरः॥ ९॥
महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम्।
कुबेरः सर्वयक्षाणां गणेशानां च वीरकः॥ १०॥

ऋषियोंमें मैं वसिष्ठ, देवताओंमें इन्द्र, शिल्पियोंमें विश्वकर्मा और सुरद्वेषी राक्षसोंमें प्रह्लाद हूँ। मैं मुनियोंमें व्यास, गणोंमें विनायक, वीरोंमें वीरभद्र और सिद्धोंमें कपिल मुनि हूँ। मैं पर्वतोंमें सुमेरु, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, प्रहार करनेवाले शस्त्रोंमें वज्र और व्रतोंमें सत्य व्रत हूँ। मैं सर्पोंमें अनन्तदेव, सेनानियोंमें कार्तिकेय, आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम और ईश्वरोंमें महेश्वर हूँ। मैं कल्पोंमें महाकल्प, युगोंमें सत्ययुग, सभी यक्षोंमें कुबेर और गणेश्वरोंमें वीरक हूँ॥ ६—१०॥

प्रजापतीनां दक्षोऽहं निर्ऋतिः सर्वरक्षसाम्।
वायुर्बलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम्॥ ११॥

मैं प्रजापतियोंमें दक्ष, सभी राक्षसोंमें निर्ऋति, बलवानोंमें वायु और द्वीपोंमें पुष्कर द्वीप हूँ॥ ११॥

मृगेन्द्राणां च सिंहोऽहं यन्त्राणां धनुरेव च।
वेदानां सामवेदोऽहं यजुषां शतरुद्रियम्॥ १२॥
सावित्री सर्वजप्यानां गुह्यानां प्रणवोऽस्म्यहम्।
सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु॥ १३॥

सर्ववेदार्थविदुषां मनुः स्वायम्भुवोऽस्म्यहम्।
ब्रह्मावर्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम्॥ १४॥

विद्यानामात्मविद्याहं ज्ञानानामैश्वरं परम्।
भूतानामस्म्यहं व्योम सत्त्वानां मृत्युरेव च॥ १५॥

मैं मृगेन्द्रोंमें सिंह, यन्त्रोंमें धनुष, वेदोंमें सामवेद और यजुर्मन्त्रोंमें शतरुद्रिय हूँ, मैं जपनीय सभी मन्त्रोंमें सावित्री मन्त्र, गोपनीयोंमें प्रणव, (वैदिक) सूक्तोंमें पुरुषसूक्त, साममन्त्रोंमें ज्येष्ठसाम हूँ। मैं सभी वेदके अर्थको जाननेवाले विद्वानोंमें स्वायम्भुव मनु, देशोंमें ब्रह्मावर्त और क्षेत्रोंमें अविमुक्त (वाराणसी) क्षेत्र हूँ। मैं विद्याओंमें आत्मविद्या, ज्ञानोंमें परम ईश्वरीय ज्ञान, (पञ्च) भूतोंमें आकाश और सत्त्वोंमें मृत्यु[1] हूँ॥ १२—१५॥

पाशानामस्म्यहं माया कालः कलयतामहम्।
गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वरः॥ १६॥

यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम्।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम्॥ १७॥

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्तिनः।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः॥ १८॥

मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः॥ १९॥

मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्॥ २०॥

मैं (बन्धनकारक) पाशोंमें माया, संहार करनेवालोंमें काल, गतियोंमें मुक्ति और उत्कृष्टोंमें परमेश्वर हूँ। इस संसारमें अन्य जो कुछ भी अधिक तेज और बलसे सम्पन्न सत्त्व पदार्थ हैं, उन सबको मेरे ही तेजसे सम्पन्न जानना चाहिये। संसारमें रहनेवाले सभी जीवोंको पशु[2] कहा गया है, मैं देव उनका पति (स्वामी) हूँ, इसलिये विद्वानोंद्वारा 'पशुपति' कहा जाता हूँ। मैं मायारूपी पाशके द्वारा अपनी लीलासे इन पशुओं (जीवों)-को बन्धनमें डालता हूँ। वेदज्ञ लोग मुझे ही पशुओंको मुक्त करनेवाला मोचक कहते हैं। मायाके पाशसे आबद्ध जीवोंको मुक्त करनेवाला मुझ भूतोंके अधिपति अव्यय परमात्माको छोड़कर अन्य कोई नहीं है॥ १६—२०॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्म गुणा इति।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च पशुबन्धनाः॥ २१॥

मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाग्निजलानि भूः।
एता प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे॥ २२॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैव तु पञ्चमम्।
पायूपस्थं करौ पादौ वाक् चैव दशमी मता॥ २३॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।
त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि तु॥ २४॥

(प्रकृति-महत्-अहंकार आदि) चौबीस तत्त्व, माया, कर्म तथा गुण—ये पशुपतिके पाश और पशुओं (जीवों)-को बन्धनमें डालनेवाले क्लेश हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये आठ प्रकृति हैं और दूसरे सभी पदार्थ विकार या विकृति हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ तथा पाँचवीं नासिका, गुदा, जननेन्द्रिय, हाथ, पैर तथा दसवीं इन्द्रिय वाणी और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये तेईस तत्त्व प्राकृत अर्थात् प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले हैं॥ २१—२४॥

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम्।
अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम्॥ २५॥

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तं प्रकृतिं विदुः॥ २६॥

चौबीसवाँ तत्त्व अव्यक्त किंवा प्रधान है, वह गुणोंसे लक्षित होनेवाला आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित और जगत्का परम कारण है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण कहे गये हैं। इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको अव्यक्त प्रकृति जानना चाहिये॥ २५-२६॥

१-यहाँ मृत्युसे यमराज या धर्मराजको समझना चाहिये, जो प्राणिमात्रकी अन्तिम गतिके कारण एवं निर्णायक हैं।
२-अज्ञानसे आवृत होनेके कारण जीव पशु हैं।

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रजो मिश्रमुदाहृतम्।
गुणानां बुद्धिवैषम्याद् वैषम्यं कवयो विदुः॥ २७॥

सत्त्वगुणको ज्ञानस्वरूप, तमोगुणको अज्ञानस्वरूप और रजोगुणको मिश्ररूप अर्थात् ज्ञान और अज्ञान दोनोंका मिश्रित रूप कहा गया है। बुद्धिकी विषमतासे गुणोंका भी वैषम्य होता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥ २७॥

धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ बन्धसंज्ञितौ।
मय्यर्पितानि कर्माणि निबन्धाय विमुक्तये॥ २८॥

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशकम्।
क्लेशाख्यानचलान् प्राहुः पाशानात्मनिबन्धनान्॥ २९॥

एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति॥ ३०॥

बन्ध नामवाले दो पाशोंको धर्म और अधर्म कहा गया है। मुझे अर्पित किये गये कर्म बन्धनसे मुक्तिके लिये होते हैं। आत्माका बन्धन करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश—इन क्लेश नामवाले पाँच अचल (दीर्घकालतक स्थायी-सा रहनेवाले) तत्त्वोंको पाश कहा गया है। मायाको इन (पाँचों) पाशोंका कारण कहा जाता है। अव्यक्त मूलप्रकृतिरूप शक्ति मुझमें प्रतिष्ठित रहती है॥ २८—३०॥

स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः॥ ३१॥
स एव बन्धः स च बन्धकर्ता
　　स एव पाशः पशवः स एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता
　　तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३२॥

यह मूल प्रकृति, प्रधान, पुरुष, महत्, अहंकार आदि विकारयुक्त तत्त्व—ये सब देवाधिदेव सनातनके ही रूप हैं। यही (सनातन पुरुष) बन्धन है, यही बन्धनमें डालनेवाला है। यही पाश और यही पशु है। यही सब कुछ जानता है, परंतु इसे जाननेवाला कोई नहीं है। इसे ही आदि पुराणपुरुष कहा जाता है[1]॥ ३१-३२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

महेश्वरका अद्वितीय परमेश्वरके रूपमें निरूपण, सांख्य-सिद्धान्तसे तत्त्वोंका सृष्टिक्रम, महेश्वरके छः अङ्ग, महेश्वरके स्वरूपके ज्ञानसे परमपदकी प्राप्ति

ईश्वर उवाच

अन्यद् गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुंगवाः।
येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम्॥ १॥

ईश्वर बोले—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैं दूसरे गुह्यतम ज्ञानको बताता हूँ, जिससे यह प्राणी घोर संसार-सागरको पार कर लेता है॥ १॥

अहं ब्रह्ममयः शान्तः शाश्वतो निर्मलोऽव्ययः।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः॥ २॥

मम योनिर्महद् ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहम्।
मूलं मायाभिधानं तु ततो जातमिदं जगत्॥ ३॥

प्रधानं पुरुषो ह्यात्मा महान् भूतादिरेव च।
तन्मात्राणि महाभूतानीन्द्रियाणि च जज्ञिरे॥ ४॥

मैं ब्रह्ममय, शान्त, शाश्वत, निर्मल, अव्यय, एकाकी, अद्वितीय परमेश्वर तथा भगवान् कहलाता हूँ। महद्ब्रह्म मेरी योनिरूप है, मैं उसमें मूल माया नामक गर्भ धारण करता हूँ और उससे यह संसार उत्पन्न हुआ है। (उसीसे) प्रधान, पुरुष, आत्मा, महत्तत्त्व, भूतादि (तामस अहंकार), तन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत तथा इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं॥ २—४॥

१-यहाँ बन्धन आदिको सनातनपुरुषमें कल्पितमात्र बताकर अद्वैतभावकी प्रतिष्ठा की गयी है।

ततोऽण्डमभवद्धैमं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्या चोपबृंहितः॥ ५ ॥

ये चान्ये बहवो जीवा मन्मयाः सर्व एव ते।
न मां पश्यन्ति पितरं मायया मम मोहिताः॥ ६ ॥

याश्च योनिषु सर्वासु सम्भवन्ति हि मूर्तयः।
तासां माया परा योनिर्मामेव पितरं विदुः॥ ७ ॥

यो मामेवं विजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम्।
स धीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति॥ ८ ॥

तदनन्तर करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डमें मेरी शक्तिसे उपबृंहित महाब्रह्मा उत्पन्न हुए। अन्य भी जो बहुतसे प्राणी हैं, वे सभी मेरे ही स्वरूप हैं। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे पितामह-स्वरूपको नहीं देख पाते। सभी योनियोंमें जो मूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उनकी योनि परा माया है और मुझे ही पितृस्वरूप विद्वान् लोग जानते हैं। इस प्रकार जो मुझे ही बीजरूप पितृस्वरूप प्रभु जानता है, वह सभी लोकोंमें धीर होता है और मोहको प्राप्त नहीं होता॥ ५—८॥

ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः।
ओङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ९ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ १०॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥ ११॥

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम्।
प्रधानविनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ १२॥

मैं ही सभी विद्याओंका स्वामी, प्राणियोंका परम ईश्वर, ओङ्कारमूर्ति, प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूँ। जो पुरुष विनष्ट होनेवाले सभी (चराचर) भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे देखता है, वही यथार्थ देखता है। जो पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समानरूपसे देखता है, वह स्वयंद्वारा स्वयंको नष्ट नहीं करता; इस कारण वह परम गति प्राप्त करता है। सात सूक्ष्म तत्त्वों एवं छः अङ्गोंवाले महेश्वरको जानकर प्रधान तथा विनियोगको जाननेवाला परम ब्रह्मको प्राप्त करता है॥ ९—१२॥

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥ १३॥

तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि
सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं
बन्धः प्रोक्तो विनियोगोऽपि तेन॥ १४॥

या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा
वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः।
तस्या एकः परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः॥ १५॥

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि ज्ञान, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त-शक्ति तथा अनन्तशक्ति—ये विभु महेश्वरके छः अङ्ग कहे गये हैं। पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध), मन और आत्मा—ये सात सूक्ष्म तत्त्व कहे गये हैं। जो हेतुरूपा प्रकृति है, वह प्रधान है और उससे होनेवाले बन्धनको ही विनियोग कहा जाता है। प्रकृतिमें लीन रहनेवाली जो शक्ति है, उसे वेदोंमें ब्रह्मयोनि और कारणरूप कहा गया है। अद्वितीय, परमेष्ठी, परात्पर, सत्यरूप महेश्वर उसके पुरुष हैं॥ १३—१५॥

ब्रह्मा योगी परमात्मा महीयान्
व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः।
एको रुद्रो मृत्युरव्यक्तमेकं
बीजं विश्वं देव एकः स एव॥ १६॥

वे ही अद्वितीय देव ब्रह्मा, योगी, परमात्मा, महीयान्, व्योमव्यापी, वेदोंद्वारा ज्ञात होने योग्य, पुराण, पुरुष अद्वितीय रुद्र, मृत्यु, अव्यक्त, एक बीज और विश्वरूप हैं॥ १६॥

तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं
त्वेकात्मानं केचिदन्यत्तथाहुः।
अणोरणीयान् महतोऽसौ महीयान्
महादेवः प्रोच्यते वेदविद्भिः॥ १७॥
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं
प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥ १८॥

उन्हें ही कोई एक और कोई अनेक कहते हैं। दूसरे कुछ लोग उन्हें ही अद्वितीय आत्मा कहते हैं। वेदज्ञ लोग उन्हें अणुसे अणुतर और महान्से भी महत्तर महादेव कहते हैं। हृदयरूप गुहामें स्थित, परात्पर, पुराणपुरुष, विश्वरूप, हिरण्मय और बुद्धिमानोंकी परमगति प्रभुको जो इस प्रकार जानता है, वह बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिको पार कर जाता है अर्थात् परमपद प्राप्त करता है॥ १७-१८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

महादेवके विश्वरूपत्वका वर्णन तथा ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका प्रतिपादन

ऋषय ऊचुः

निष्कलो निर्मलो नित्यो निष्क्रियः परमेश्वरः।
तन्नो वद महादेव विश्वरूपः कथं भवान्॥ १॥

ऋषियोंने पूछा—महादेव! आप परमेश्वर निष्कल, निर्मल, नित्य तथा निष्क्रिय होनेपर भी विश्वरूप कैसे हैं, इसे हम लोगोंको बतलायें॥ १॥

ईश्वर उवाच

नाहं विश्वो न विश्वं च मामृते विद्यते द्विजाः।
मायानिमित्तमत्रास्ति सा चात्मानमपाश्रिता॥ २॥

अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्तसमाश्रया।
तन्निमित्तः प्रपञ्चोऽयमव्यक्तादभवत् खलु॥ ३॥

अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम्।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥ ४॥

तस्मान्मे विश्वरूपत्वं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः।
एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥ ५॥

अहं तत् परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः।
अकारणं द्विजाः प्रोक्तो न दोषो ह्यात्मनस्तथा॥ ६॥

ईश्वर बोले—द्विजो! मैं विश्व नहीं हूँ और मुझसे अतिरिक्त विश्व भी नहीं है। यह सब मायाके निमित्तसे है और वह माया भी आत्माको आश्रित कर रहती है। आदि और अन्तसे रहित शक्तिरूप माया अव्यक्त (परमात्मा)-के आश्रित है, उसी (माया)-के कारण अव्यक्तसे यह प्रपञ्चरूप संसार उत्पन्न हुआ है। (मुझ) अव्यक्तको कारण कहा जाता है। मैं ही आनन्दस्वरूप, प्रकाशरूप, अक्षर परम ब्रह्म हूँ। मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण ब्रह्मवादियोंने मेरा विश्वरूपत्व निश्चित किया है। एक रूप तथा भिन्नरूपके विषयमें इस उदाहरणका[1] वर्णन किया गया है। द्विजो! मैं कारणरहित, सनातन, परम ब्रह्म परमात्मा हूँ, अतः मुझमें कोई दोष नहीं है। तात्पर्य यह है कि जगत्‌में विषमता, क्रूरता आदि दोषोंका असाधारण कारण मनुष्यकृत कर्म है, ईश्वर नहीं। ईश्वर तो सामान्य कारण है, अतः वह दोषरहित है॥ २—६॥

१-विवर्त विश्वकी दृष्टिसे महादेव अनेक रूप हैं तथा परमार्थतः एक होनेसे एक रूप हैं।

अनन्ता शक्तयोऽव्यक्ते मायाद्याः संस्थिता ध्रुवाः।
तस्मिन् दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम्॥ ७ ॥

याभिस्तल्लक्ष्यते भिन्नमभिन्नं तु स्वभावतः।
एकया मम सायुज्यमनादिनिधनं ध्रुवम्॥ ८ ॥

पुंसोऽभूदन्यया भूतिरन्यया तत्तिरोहितम्।
अनादिमध्यं तिष्ठन्तं युज्यतेऽविद्यया किल॥ ९ ॥

तदेतत् परमं व्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद् विष्णोः परमं पदम्॥ १० ॥

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
तदेव च जगत् कृत्स्नं तद् विज्ञाय विमुच्यते॥ ११ ॥

अव्यक्तमें ही माया आदि अनन्त ध्रुव शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं और वह अव्यक्त अकेले ही विशुद्ध शब्दतन्मात्रारूप आकाशतत्त्वमें स्थित रहते हुए सदा प्रकाशित रहता है। स्वभावतः वह अभिन्न (अव्यक्त) तत्त्व जिनके द्वारा अनेक रूपोंमें प्रतिभासित होता है, उनकी मूल एक (परम) शक्तिसे आदि और अन्तरहित मेरा ध्रुव सायुज्य प्राप्त होता है। पुरुषकी दूसरी शक्तिसे भूति (ऐश्वर्य)-की उत्पत्ति तथा अन्य शक्तिसे उसका (भूतिका) लोप होता है। आदि एवं मध्यरहित सर्वत्र विद्यमान (पुरुष) ही अविद्यासे (स्वेच्छया) युक्त होता है। प्रभामण्डलसे मण्डित वह परम व्यक्त, अक्षर, परम ज्योतिरूप है और वह विष्णुका परमपद है। उसमें ही यह सारा जगत् ओतप्रोत है। वही सम्पूर्ण जगत् है। उसे जान लेनेसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ७—११ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति न कुतश्चन॥ १२ ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तद् विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्
नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः॥ १३ ॥

मनके साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है, उस आनन्दस्वरूप ब्रह्माको जाननेवाला कहीं भयभीत नहीं होता। मैं इस तमोगुणसे परे आदित्यके समान वर्णवाले अर्थात् प्रकाशयुक्त महान् पुरुषको जानता हूँ, इसे जानकर विद्वान् मुक्त हो जाता है और नित्य आनन्दस्वरूप तथा ब्रह्ममय हो जाता है॥ १२-१३ ॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्
यज्ज्योतिषां ज्योतिरेकं दिविस्थम्।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वा-
नात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः॥ १४ ॥
तदव्ययं कलिलं गूढदेहं
ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधाम।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा
यत्र गत्वा न निवर्तेत भूयः॥ १५ ॥

जिससे परे और भिन्न कुछ भी नहीं है और जो द्युलोकमें स्थित सभी ज्योतियोंका एकमात्र प्रकाशक है, उसीको आत्मा माननेवाला विद्वान् नित्य आनन्द-स्वरूप ब्रह्ममय हो जाता है। ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण उसे अविनाशी, कलिल, गूढदेह, ब्रह्मानन्द, अमृत तथा विश्वधाम कहते हैं। वहाँ पहुँचनेपर फिर लौटना नहीं पड़ता॥ १४-१५ ॥

हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे
यदर्चिषि प्रविभातीव तेजः।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा
विभ्राजमानं विमलं व्योम धाम॥ १६ ॥

ततः परं परिपश्यन्ति धीरा
आत्मन्यात्मानमनुभूयानुभूय ।
स्वयम्प्रभः परमेष्ठी महीयान्
ब्रह्मानन्दी भगवानीश एषः॥ १७ ॥

हिरण्मय प्रकाशयुक्त परम आकाशतत्त्वमें जो तेजके समान प्रतिभासित होता है, धीर जन (आत्मस्थ) विज्ञानमें उस प्रकाशमान निर्मल व्योम (ब्रह्म) एवं धाम (परम प्राप्तव्य)-का दर्शन करते हैं। तदनन्तर अपने आत्मामें आत्माका बार-बार अनुभव करके धीर पुरुष परम तत्त्वका दर्शन करते हैं और उन्हें यह ज्ञान होता है—यही (आत्मतत्त्व) स्वयं प्रकाशमान, परमेष्ठी, महान् ब्रह्मानन्दस्वरूप भगवान् ईशके रूपमें है॥ १६-१७ ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ १८॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवान् न तस्मादन्यदिष्यते॥ १९॥

सभी प्राणियोंके अन्तरात्मा, सर्वव्यापी एक देव ही सभी प्राणियोंमें छिपे हुए हैं। जो धीर पुरुष उन एक अद्वितीयका दर्शन करते हैं, उन्हें ही शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं। वे भगवान् सभी ओर मुख, सिर तथा ग्रीवावाले, सभी प्राणियोंके (हृदयरूपी) गुहामें स्थित और सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हैं। उनसे भिन्न कुछ नहीं है॥ १८-१९॥

इत्येतदैश्वरं ज्ञानमुक्तं वो मुनिपुंगवाः।
गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम्॥ २०॥

मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार यह आपको ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान बतलाया। यह विशेषरूपसे गोपनीय है और योगियोंके लिये भी दुर्लभ है॥ २०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) नवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

ईश्वरद्वारा परम तत्त्व तथा परम ज्ञानके स्वरूपका निरूपण और उसकी प्राप्तिके साधनका वर्णन

ईश्वर उवाच

अलिङ्गमेकमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम्।
स्वयंज्योतिः परं तत्त्वं परे व्योम्नि व्यवस्थितम्॥ १॥

अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम्।
निर्गुणं शुद्धविज्ञानं तद् वै पश्यन्ति सूरयः॥ २॥

तन्निष्ठाः शान्तसंकल्पा नित्यं तद्भावभाविताः।
पश्यन्ति तत् परं ब्रह्म यत्तल्लिङ्गमिति श्रुतिः॥ ३॥

ईश्वरने कहा—अलिङ्ग (चिह्नरहित), अद्वितीय, अव्यक्त, लिङ्गको ब्रह्म कहा गया है। वह स्वयं प्रकाशरूप परम तत्त्व परम व्योममें अवस्थित है। जो निर्गुण, विशुद्ध विज्ञानरूप, अक्षर और अव्यक्त कारण-रूप है, उस परमपदका विद्वान् लोग साक्षात्कार करते हैं। जिसे वेदमें तल्लिङ्ग अर्थात् हेतुरूप कहा गया है, उस परम ब्रह्मका शान्तसंकल्पवाले, तत्परायण और नित्य उनके भावसे भावित लोग साक्षात्कार करते हैं॥ १—३॥

अन्यथा नहि मां द्रष्टुं शक्यं वै मुनिपुंगवाः।
नहि तद् विद्यते ज्ञानं यतस्तज्ज्ञायते परम्॥ ४॥

एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं कवयो विदुः।
अज्ञानमितरत् सर्वं यस्मान्मायामयं जगत्॥ ५॥

मुनिश्रेष्ठो! अन्य किसी प्रकार मेरा दर्शन नहीं हो सकता। ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है, जिससे उस परम तत्त्वको जाना जा सके। इस परम ज्ञानको केवल विद्वान् ही जानते हैं। इसके अतिरिक्त सभी कुछ अज्ञानस्वरूप है, जिससे यह मायामय जगत् (उत्पन्न) है॥ ४-५॥

यज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
ममात्मासौ तदेवेदमिति प्राहुर्विपश्चितः॥ ६॥

येऽप्यनेकं प्रपश्यन्ति तेऽपि पश्यन्ति तत्परम्।
आश्रिताः परमां निष्ठां बुद्ध्वैकं तत्त्वमव्ययम्॥ ७॥

जो निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प तथा अव्यय ज्ञान है, वही मेरा आत्मरूप है—ऐसा विद्वानोंका कहना है। जो उसे (उस परम तत्त्वको) अनेक रूपसे देखते हैं, वे भी परम निष्ठा (भक्ति)-का आश्रय ग्रहणकर अद्वितीय अविनाशी तत्त्वका ज्ञान प्राप्तकर उसी परम तत्त्वको देखते हैं॥ ६-७॥

ये पुनः परमं तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम्।
भक्त्या मां सम्प्रपश्यन्ति विज्ञेयास्ते तदात्मकाः॥ ८ ॥

और जो दूसरे लोग पुनः एक या अनेक रूपोंमें परम तत्त्वरूप ईश्वरका भक्तिद्वारा साक्षात्कार करते हैं, उन्हें तदात्मक अर्थात् उस ब्रह्मका स्वरूप ही जानना चाहिये॥ ८॥

साक्षादेव प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम्।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः॥ ९ ॥

भजन्ते परमानन्दं सर्वगं यत्तदात्मकम्।
स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताः परेऽव्यक्ते परस्य तु॥ १०॥

एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम्।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः॥ ११॥

तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम्।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय विमुच्यते॥ १२॥

वे वस्तुतः नित्यानन्दस्वरूप, निर्विकल्प तथा सत्यस्वरूप साक्षात् परमेश्वरको अपनी आत्मामें देखते हैं यह वस्तुस्थिति है। अपने अव्यक्त परम आत्मामें अवस्थित शान्त (योगीजन), श्रेष्ठ परम तत्त्वके परमानन्द-स्वरूप, सर्वव्यापी तदात्मक तत्त्वकी उपासना करते हैं। यही परम मुक्ति है, विद्वान् इसे मेरा उत्तम सायुज्य (नामक मोक्ष), निर्वाण ब्रह्मके साथ ऐक्य और कैवल्यरूपसे जानते हैं। ये परम शिव आदि, मध्य और अन्तसे रहित अद्वितीय तत्त्व हैं। ये ही महादेव हैं, ईश्वर हैं, इसलिये इन्हें जाननेसे मुक्ति मिल जाती है॥ ९—१२॥

न तत्र सूर्यः प्रविभातीह चन्द्रो
न नक्षत्राणि तपनो नोत विद्युत्।
तद्भासेदमखिलं भाति नित्यं
तन्नित्यभासमचलं सद्विभाति॥ १३॥

नित्योदितं संविदा निर्विकल्पं
शुद्धं बृहन्तं परमं यद्विभाति।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदोऽथ नित्यं
पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत् स ईशः॥ १४॥

वहाँ (परम तत्त्व परमेश्वरमें) न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न नक्षत्र, न अग्नि और न ही विद्युत्। उसीके प्रकाशसे सम्पूर्ण (विश्व) प्रकाशित होता है। वह नित्य प्रकाश अचल एवं सद्रूपसे प्रकाशित होता है। जो परम बृहत् विशुद्ध तत्त्व निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप और नित्य उदित हुआ ज्ञानसे ही प्रकाशित होता है, उसीमें ब्रह्मज्ञानी लोग जिस नित्य अचल तत्त्वका दर्शन करते हैं, वही ईश हैं॥ १३-१४॥

नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं
शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदाः।
तमोमिति प्रणवेनेशितारं
ध्यायन्ति वेदार्थविनिश्चितार्थाः॥ १५॥

न भूमिरापो न मनो न वह्निः
प्राणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः।
न चेतनोऽन्यत् परमाकाशमध्ये
विभाति देवः शिव एव केवलः॥ १६॥

सभी वेद पुरुषको नित्य आनन्दरूप, अमृतरूप और विशुद्ध सत्यस्वरूप कहते हैं। वेदार्थका निश्चय किये हुए लोग 'ॐ' इस प्रणवके द्वारा उस नियामकका ध्यान करते हैं। परम आकाशके मध्यमें एकमात्र अद्वितीय देव शिव ही प्रकाशित होते हैं; वहाँ न भूमि है, न जल है, न मन है और न अग्नि ही है। इसी प्रकार प्राण, वायु, आकाश, बुद्धि तथा अन्य कोई चेतन-तत्त्व वहाँ नहीं है॥ १५-१६॥

इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं
ज्ञानामृतं सर्ववेदेषु गूढम्।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे
युञ्जीत योगं प्रयतो ह्यजस्रम्॥ १७॥

यह मैंने सभी वेदोंमें निहित परम रहस्यमय ज्ञानरूपी अमृतका वर्णन किया। किसी निर्जन प्रदेशमें निरन्तर प्रयत्नपूर्वक साधना करनेवाला योगी ही इस ज्ञानको जानता है॥ १७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

योगकी महिमा, अष्टाङ्गयोग, यम, नियम आदि योगसाधनोंका लक्षण, प्राणायामका विशेष प्रतिपादन, ध्यानके विविध प्रकार, पाशुपत-योगका वर्णन, वाराणसीमें प्राणत्यागकी महिमा, शिव-आराधनकी विधि, शिव और विष्णुके अभेदका प्रतिपादन, शिवज्ञान-योगकी परम्पराका वर्णन, ईश्वरगीताकी फलश्रुति तथा उपसंहार

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम्।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम्॥ १ ॥
योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्॥ २ ॥

योगात् संजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः॥ ३ ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा।
ये युञ्जन्तीह मद्योगं ते विज्ञेया महेश्वराः॥ ४ ॥
योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो ह्यभावः प्रथमो मतः।
अपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः॥ ५ ॥

शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते।
अभावयोगः स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति॥ ६ ॥

यत्र पश्यति चात्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम्।
मयैक्यं स महायोगो भाषितः परमेश्वरः॥ ७ ॥
ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ८ ॥

यत्र साक्षात् प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम्।
सर्वेषामेव योगानां स योगः परमो मतः॥ ९ ॥

सहस्रशोऽथ शतशो ये चेश्वरबहिष्कृताः।
न ते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसाः॥ १० ॥

ईश्वरने कहा—इसके अनन्तर उस परम दुर्लभ योगको कहता हूँ, जिससे सूर्यके समान ईश्वररूप आत्माका दर्शन होता है अर्थात् सूर्यका जैसे प्रत्यक्ष हो रहा है, वैसे ही ईश्वरका प्रत्यक्ष होता है॥ १॥

योगरूपी अग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण पापपञ्जरको भस्म कर देता है और (उसके बाद) साक्षात् मुक्तिरूप सिद्धि प्रदान करनेवाला प्रसन्न (निर्मल) ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। योगसे ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञानसे योग प्रवर्तित होता है। योग तथा ज्ञानसे सम्पन्न व्यक्तिपर महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो नित्य एक समय, दो समय या तीनों समय मेरे योगका साधन करते हैं, उन्हें महेश्वर समझना चाहिये॥ २—४॥

योग दो प्रकारका समझना चाहिये, पहला अभावयोग है और दूसरा सभी योगोंमें उत्तमोत्तम महायोग कहलाता है। जिसमें सभी आभासोंसे रहित शून्यमय (निर्विकल्पक) स्वरूपका चिन्तन होता है और जिसके द्वारा आत्माका साक्षात्कार होता है, वह अभावयोग कहा गया है। जिसमें नित्यानन्दस्वरूप निरञ्जन आत्माका दर्शन होता है और मेरे साथ एकता होती है, वह परमेश्वररूप महायोग कहा गया है॥ ५—७॥

अन्य जिन योगियोंके योगोंका ग्रन्थोंमें विस्तार हुआ है, वे सभी ब्रह्मयोगकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। जिस योगमें मुक्त पुरुष विश्वको साक्षात् ईश्वरके रूपमें देखते हैं, वह सभी योगोंमें श्रेष्ठ योग माना जाता है। जो सैकड़ों, हजारों अन्य प्रकारके मनको संयमित करनेवाले ईश्वरबहिष्कृत (वेदबाह्य) योगी हैं, वे मुझ अद्वितीयका दर्शन नहीं करते॥ ८—१०॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठा यमो नियम आसनम्॥ ११॥
मय्येकचित्ततायोगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः।
तत्साधनान्यष्टधा तु युष्माकं कथितानि तु॥ १२॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ
यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम्॥ १३॥

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्तं त्वहिंसा परमर्षिभिः॥ १४॥

अहिंसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसा परं सुखम्।
विधिना या भवेद्धिंसा त्वहिंसैव प्रकीर्तिता॥ १५॥

सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिभिः॥ १६॥

परद्रव्यापहरणं चौर्याद् वाथ बलेन वा।
स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम्॥ १७॥

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥ १८॥
द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि यथेच्छया।
अपरिग्रह इत्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत्॥ १९॥

तपःस्वाध्यायसंतोषाः शौचमीश्वरपूजनम्।
समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनः॥ २०॥

उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्॥ २१॥
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः।
सत्त्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते॥ २२॥

स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपांशुमानसाः।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः॥ २३॥

यः शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम्।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम्॥ २४॥

मुनिश्रेष्ठो! अन्य वृत्तियोंका निरोधकर मेरेमें एकचित्तता ही योग है और इस योगके जो आठ साधन मैंने आप लोगोंको बताये हैं वे ये हैं—प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, यम, नियम तथा आसन[1]॥ ११-१२॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—संक्षेपमें इन्हें यम कहा गया है। ये मनुष्योंके चित्तकी शुद्धि करनेवाले हैं। मन, वाणी तथा कर्मसे सभी प्राणियोंको सर्वदा किसी भी प्रकारका क्लेश प्रदान न करना—इसे श्रेष्ठ ऋषियोंने अहिंसा कहा है। अहिंसासे श्रेष्ठ (कोई) धर्म नहीं है और अहिंसासे बढ़कर कोई सुख नहीं है। वेदविहित हिंसाको अहिंसा ही कहा गया है। सत्यके द्वारा सब कुछ प्राप्त हो जाता है, सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। द्विजातियोंके द्वारा यथार्थ कथनके आचारको सत्य कहा गया है। चोरीसे अथवा बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है, उसका (स्तेयका) आचरण न करना अस्तेय है, यह धर्मका साधन है। मन, वाणी तथा कर्मद्वारा सभी अवस्थाओंमें सर्वदा सर्वत्र मैथुनका त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है॥ १३—१८॥

आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक द्रव्योंका ग्रहण न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। प्रयत्नपूर्वक उस अपरिग्रहका पालन करना चाहिये। तप, स्वाध्याय, संतोष, शौच तथा ईश्वरका पूजन—संक्षेपमें नियम बतलाये गये हैं, ये योगसिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। तपस्वियोंने पराक आदि उपवासों तथा कृच्छ्रचान्द्रायणादि (व्रतों)-के द्वारा शरीरके शोषणको उत्तम तप कहा है॥ १९—२१॥

विद्वान् लोगोंने वेदान्तशास्त्र, शतरुद्रिय और प्रणव आदिके जपको पुरुषोंके लिये सत्त्वकी शुद्धि करनेवाला 'स्वाध्याय' कहा है। स्वाध्यायके तीन भेद हैं—वाचिक, उपांशु और मानस। वेदार्थ जाननेवालोंने इन तीनोंमें उत्तरोत्तरका वैशिष्ट्य कहा है अर्थात् वाचिक स्वाध्यायसे उपांशु स्वाध्याय श्रेष्ठ और उपांशु स्वाध्यायसे मानस स्वाध्याय श्रेष्ठ है। दूसरे सुननेवालेको स्पष्टरूपसे शब्दका ज्ञान उत्पन्न करानेवाला स्वाध्याय 'वाचिक' कहलाता है। (अर्थात् वह स्वाध्याय वाचिक है जो दूसरोंको स्पष्ट सुनायी पड़े।) अब उपांशुका लक्षण बतलाया जाता है॥ २२—२४॥

१ यद्यपि अष्टाङ्गयोगके साधन ऊपर निर्दिष्ट क्रमसे ही मूलमें वर्णित हैं, पर यह वर्णन छन्दकी दृष्टिसे है। वास्तवमें साधनोंका क्रम इस प्रकार है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

ओष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याशब्दबोधकः।
उपांशुरेष निर्दिष्टः साहस्रो वाचिकाज्जपः॥ २५॥

यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्जितम्।
चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तं जपं विदुः॥ २६॥

यदृच्छालाभतो नित्यमलं पुंसो भवेदिति।
या धीस्तामृषयः प्राहुः संतोषं सुखलक्षणम्॥ २७॥

ओठोंमें केवल स्पन्दन होनेके कारण दूसरेको शब्दका बोध न करानेवाला स्वाध्याय 'उपांशु' कहा गया है। यह वाचिक जपसे हजार गुना श्रेष्ठ है। (अर्थात् वही स्वाध्याय उपांशु है जिसमें ओठोंमें मात्र स्पन्दन हो, शब्दोंका उच्चारण न हो।) स्पन्दनरहित अक्षर एवं उस पदकी संगतिके अनुसार सभी शब्दोंके चिन्तनको विद्वान् मानस जप कहते हैं (अर्थात् मानस जप (स्वाध्याय) वही है जिसमें स्वाध्यायके शब्दोंपर केवल मन केन्द्रित हो बाकी सर्वथा व्यापारशून्य हो)। पुरुषको जो यदृच्छापूर्वक मिल जाता है, उसे ही पर्याप्त समझने-वाली बुद्धिको ऋषिलोग नित्य सुख लक्षणवाला संतोष कहते हैं॥ २५—२७॥

बाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनःशुद्धिरथान्तरम्॥ २८॥

स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनःकायकर्मभिः।
सुनिश्चला शिवे भक्तिरेतदीश्वरपूजनम्॥ २९॥

यमाः सनियमाः प्रोक्ताः प्राणायामं निबोधत।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥ ३०॥

उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधायं प्रतिपादितः।
स एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भ एव च॥ ३१॥

मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रिकः।
मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोत्तमः॥ ३२॥

द्विजश्रेष्ठो! बाह्य और आभ्यन्तर-भेदसे शौच दो प्रकारका कहा गया है। मिट्टी और जलसे होनेवाला शौच बाह्य शौच और मनकी शुद्धि आभ्यन्तर शौच है। मन, वाणी तथा कर्मद्वारा स्तुति, स्मरण तथा पूजा करते हुए शिवमें अचल भक्ति रखना—यह ईश्वरका पूजन है। नियमोंके साथ यमोंको बतलाया गया, अब प्राणायामके विषयमें सुनो—अपनी देहसे उत्पन्न वायुको प्राण कहते हैं और उस वायुका निरोध करना आयाम है। उत्तम, मध्यम तथा अधमके भेदसे यह तीन प्रकारका कहा गया है। वही सगर्भ और अगर्भ-भेदसे दो प्रकारका है। द्वादश मात्रा (अर्थात् प्रणवका बारह बार जप करनेतक)-के कालको मन्द प्राणायाम, चौबीस मात्रा (-के प्राणनिरोध)-को मध्यम और छत्तीस मात्रातकके कालतक प्राणनिरोधको उत्तम प्राणायाम कहा जाता है॥ २८—३२॥

प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकत्वं यथाक्रमम्।
मन्दमध्यममुख्यानामानन्दादुत्तमोत्तमः॥ ३३॥

सगर्भमाहुः सजपमगर्भं विजपं बुधाः।
एतद् वै योगिनामुक्तं प्राणायामस्य लक्षणम्॥ ३४॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥ ३५॥

रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः॥ ३६॥

मन्द, मध्यम तथा मुख्य अर्थात् उत्तम नामके प्राणायामोंमें क्रमसे प्रस्वेद (पसीना) कम्पन तथा उत्थान होता है। इनसे तत्त्व-प्राप्तिमें क्रमशः आनन्दातिशयकी अनुभूति होती है। विद्वान् जपयुक्त प्राणायामको सगर्भ और जप-रहितको अगर्भ कहते हैं। योगियोंके प्राणायामका यही लक्षण कहा गया है। प्राणधारणपूर्वक व्याहृति (भूः, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्), प्रणव और शीर्षमन्त्रसहित गायत्रीका तीन बार जप (सगर्भ) प्राणायाम कहा जाता है। मनको संयत करनेवाले योगियोंने सभी शास्त्रोंमें रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायामका वर्णन किया है॥ ३३—३६॥

रेचकोऽजस्त्रनिःश्वासात् पूरकस्तन्निरोधतः।
साम्येन संस्थितिर्या सा कुम्भकः परिगीयते॥ ३७॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।
निग्रहः प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु सत्तमाः॥ ३८॥

हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्नि पर्वतमस्तके।
एवमादिषु देशेषु धारणा चित्तबन्धनम्॥ ३९॥

देशावस्थितिमालम्ब्य बुद्धेर्या वृत्तिसंततिः।
वृत्त्यन्तरैरसंसृष्टा तद्ध्यानं सूरयो विदुः॥ ४०॥

एकाकारः समाधिः स्याद् देशालम्बनवर्जितः।
प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगसाधनमुत्तमम्॥ ४१॥

धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणाः।
ध्यानं द्वादशकं यावत् समाधिरभिधीयते॥ ४२॥

आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्धासनं तथा।
साधनानां च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम्॥ ४३॥

ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे।
समासीतात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम्॥ ४४॥

एकं पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि सत्तमाः।
आसीतार्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम्॥ ४५॥

उभे कृत्वा पादतले जानूर्वोरन्तरेण हि।
समासीतात्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम्॥ ४६॥

अदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते।
अग्न्यभ्याशे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा॥ ४७॥

जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे।
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसंचये॥ ४८॥

अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते।
नाचरेद् देहबाधे वा दौर्मनस्यादिसम्भवे॥ ४९॥

सुगुप्ते सुशुभे देशे गुहायां पर्वतस्य तु।
नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा॥ ५०॥

गृहे वा सुशुभे रम्ये विजने जन्तुवर्जिते।
युञ्जीत योगी सततमात्मानं मत्परायणः॥ ५१॥

नमस्कृत्य तु योगीन्द्रान् सशिष्यांश्च विनायकम्।
गुरुं चैवाथ मां योगी युञ्जीत सुसमाहितः॥ ५२॥

वायुके सतत बाहर निकालनेको रेचक और उसके रोकनेको पूरक तथा बादकी सम अवस्थाकी जो स्थिति है, उसे कुम्भक कहा गया है। श्रेष्ठ मुनियो! सज्जनोंने स्वभावतः विषयोंमें विचरण करनेवाली इन्द्रियोंके निग्रहको प्रत्याहार कहा है। हृदयकमल, नाभिदेश, मूर्धा तथा पर्वतशिखर आदि स्थानोंमें चित्तके बन्धनको धारणा कहा जाता है। किसी देश (स्थान)-विशेषका अवलम्बनकर उसमें बुद्धिकी जो एकतान वृत्ति बनी रहती है और दूसरी वृत्तियोंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है, उसे विद्वानोंने ध्यान कहा है। किसी देश या अन्य आलम्बनसे रहित चित्तकी एकाकारता समाधि है। इसमें ध्येयमात्रका भान होता है। यह योगका उत्तम साधन है। बारह प्राणायामपर्यन्त धारणा, बारह धारणापर्यन्त ध्यान और बारह ध्यानपर्यन्त समाधि कही जाती है॥ ३७—४२॥

स्वस्तिकासन, पद्मासन तथा अर्धासन-भेदसे आसन (तीन प्रकारका) कहा गया है। सभी साधनोंमें यह साधन उत्तम है। विप्रेन्द्रो! अपने दोनों ऊरुओंके ऊपर दोनों पादतलोंको रखकर बैठनेको उत्तम पद्म नामक आसन कहा गया है। श्रेष्ठ मुनियो! एक पैरको दूसरे जाँघके ऊपर रखकर बैठनेको अर्धासन कहा जाता है। यह योगका उत्तम साधन है। दोनों पैरोंको जानुओं एवं ऊरुओंके भीतर करके बैठनेको श्रेष्ठ स्वस्तिक नामक आसन कहा जाता है॥ ४३—४६॥

विपरीत देश (स्थान) और विपरीत कालमें योगतत्त्वका दर्शन भी नहीं होता। अग्निके समीप, जलमें, सूखे पत्तोंके ढेरके मध्य, जन्तुओंसे भरे स्थानमें, श्मशानमें, पुराने गोष्ठमें, चौराहेमें, कोलाहल और भययुक्त स्थानमें, चैत्यके समीप, दीमकोंसे पूर्ण स्थान, अशुभ स्थान, दुर्जनोंसे व्याप्त और मच्छर आदिसे भरे स्थान तथा देह-सम्बन्धी कष्ट और मनकी अस्वस्थताकी दशामें योग-साधन नहीं करना चाहिये। अच्छी प्रकार रक्षित, शुभ स्थान, पर्वतकी गुफा, नदीके किनारे, पुण्यदेश, देवमन्दिर, घर, शुभ, रमणीय, जनशून्य, जन्तुओंसे रहित स्थानोंमें योगीको सतत अपनेको मेरे परायण रखते हुए योग-साधना करनी चाहिये। योगीको चाहिये कि वह शिष्योंसहित श्रेष्ठ योगियों, विनायक, गुरु तथा मुझे प्रणाम करके समाहित-मन होकर योग-साधना करे॥ ४७—५२॥

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्धमथापि वा।
नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः॥ ५३॥

कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत्।
स्वात्मन्यवस्थितं देवं चिन्तयेत् परमेश्वरम्॥ ५४॥

स्वस्तिक, पद्म अथवा अर्धासन बाँधकर नासिकाके अग्रभागमें कुछ-कुछ खुली हुई आँखोंसे दृष्टिको स्थिर करके निर्भय तथा शान्त होकर मायामय संसार (-के चिन्तन)-का परित्यागकर अपने आत्मामें स्थित परमेश्वर देवका चिन्तन करना चाहिये॥ ५३-५४॥

शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम्।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्॥ ५५॥

ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम्।
चिन्तयेत् परमं कोशं कर्णिकायां हिरण्मयम्॥ ५६॥

सर्वशक्तिमयं साक्षाद् यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम्।
ओंकारवाच्यमव्यक्तं रश्मिजालसमाकुलम्॥ ५७॥

चिन्तयेत् तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम्।
तस्मिन् ज्योतिषि विन्यस्य स्वात्मानं तदभेदतः॥ ५८॥

ध्यायीताकाशमध्यस्थमीशं परमकारणम्।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥ ५९॥

शिखाके अग्रभागमें बारह अंगुलके प्रदेशमें धर्मस्वरूप कन्दसे प्रादुर्भूत, ज्ञानरूप नालवाले, ऐश्वर्यरूप आठ दलोंवाले, वैराग्यरूपी कर्णिकासे युक्त अत्यन्त श्वेत एवं सुन्दर कमलकी कल्पना करे और उस कमलकी कर्णिकामें हिरण्मय श्रेष्ठ कोशका ध्यान करे। उस (कोश)-में विशुद्ध अविनाशी साक्षात् परम ज्योतिका ध्यान करे, जिसे सर्वशक्तिसम्पन्न, दिव्य, अव्यय, ओंकारसे वाच्य, अव्यक्त और प्रकाशकी किरण-मालाओंसे व्याप्त कहा गया है। उस ज्योतिमें अपने आत्माकी अभेदभावना कर आकाशके मध्यमें स्थित परम कारणस्वरूप परमेश्वरका ध्यान करे और परमेश्वररूप एवं सर्वव्यापी होकर किसी भी अन्य वस्तुका चिन्तन न करे॥ ५५—५९॥

एतद् गुह्यतमं ध्यानं ध्यानान्तरमथोच्यते।
चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम्॥ ६०॥

आत्मानमथ कर्तारं तत्रानलसमत्विषम्।
मध्ये वह्निशिखाकारं पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ ६१॥

चिन्तयेत् परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम्।
ओंकारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्॥ ६२॥

यह अत्यन्त गुह्य ध्यान है। अब दूसरा ध्यान कहा जाता है। अपने हृदयदेशमें पूर्वमें कहे गये उत्तम कमलका चिन्तनकर उस कमलमें अग्निके समान तेजस्वी, कर्तारूप, पचीसवें तत्त्व पुरुषात्मक परमात्मरूप आत्माका चिन्तन करना चाहिये। उस परमात्माके भीतर परम आकाश (अवकाश) है (क्योंकि परमेश्वर विभु विराट् हैं)। ओंकारसे बोधित सनातन तत्त्व अच्युत शिव कहलाता है॥ ६०—६२॥

अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम्।
तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारं निरञ्जनम्॥ ६३॥

ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम्।
विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः॥ ६४॥

संस्थाप्य मयि चात्मानं निर्मले परमे पदे।
प्लावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा॥ ६५॥

मदात्मा मन्मयो भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम्।
तेनोद्धृत्य तु सर्वाङ्गमग्निरित्यादिमन्त्रतः।
चिन्तयेत् स्वात्मनीशानं परं ज्योतिःस्वरूपिणम्॥ ६६॥

उसके भीतर अव्यक्त, प्रकृतिमें लीन, उत्तम परम ज्योति, परम तत्त्व, आत्माधार, निरञ्जन, नित्य, एकरूप महेश्वरका तन्मय होकर ध्यान करना चाहिये। अथवा प्रणवके द्वारा पुनः सभी तत्त्वोंका शोधनकर विशुद्ध परमपदरूप मुझमें अपने आत्माको स्थापित करे और उसी ज्ञानरूपी जलसे अपनी देहको आप्लावित करके मुझमें चित्त आसक्त करे तथा मेरे परायण होकर अग्निहोत्रका भस्म ग्रहण करे और '**अग्नि०**' इत्यादि मन्त्रके द्वारा भस्मसे अपने सम्पूर्ण शरीरको उपलिप्त कर अपने आत्मामें परम ज्योतिस्वरूप ईशानका चिन्तन करे॥ ६३—६६॥

एष पाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये।
सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रममिति श्रुतिः॥ ६७॥

एतत् परतरं गुह्यं मत्सायुज्योपपादकम्।
द्विजातीनां तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम्॥ ६८॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च क्षमा शौचं तपो दमः।
संतोषः सत्यमास्तिक्यं व्रताङ्गानि विशेषतः॥ ६९॥

एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य तु लुप्यते।
तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति॥ ७०॥

जीवको बन्धनरूप पाशसे मुक्त करनेके लिये यह पाशुपत नामक योग कहा गया है। यह सम्पूर्ण वेदान्तका सार है और श्रुतिमें इस योगकी अवस्थाको सभी आश्रमोंकी अवस्थासे अतीत अवस्था (उत्कृष्ट अवस्था) बतलाया गया है। इसे अत्यन्त गुह्य और द्विजातियों, भक्तों एवं ब्रह्मचारियोंके लिये मेरा सायुज्य प्रदान करनेवाला कहा गया है। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम, संतोष, सत्य तथा आस्तिकता—ये सभी (इस पाशुपत) व्रतके विशेष अङ्ग हैं। इनमेंसे एक (अङ्ग)-के भी न होनेसे इस (योग)-का व्रत लुप्त हो जाता है। इसलिये इन आत्मगुणों (ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि नौ व्रतके अङ्गों)-से युक्त साधक ही मेरा (पाशुपत) व्रत धारण कर सकता है॥ ६७—७०॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः॥ ७१॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
ज्ञानयोगेन मां तस्माद् यजेत परमेश्वरम्॥ ७२॥

अथवा भक्तियोगेन वैराग्येण परेण तु।
चेतसा बोधयुक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचिः॥ ७३॥

सर्वकर्माणि संन्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रहः।
प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम्॥ ७४॥

राग, भय और क्रोधसे रहित, मत्परायण और मेरे आश्रित अनेक लोग इस (पाशुपत) योगके द्वारा मेरा भाव प्राप्तकर पवित्र हो गये हैं। जो जिस प्रकार मेरे पास आते हैं, मैं भी उसी प्रकार उन्हें स्वीकार करता हूँ। इसलिये ज्ञानयोगके द्वारा मुझ परमेश्वरकी आराधना करनी चाहिये। अथवा भक्तियोग, परम वैराग्य एवं ज्ञानयुक्त चित्तके द्वारा पवित्रतापूर्वक सदा मेरा पूजन करना चाहिये। सभी कर्मोका परित्यागकर, भिक्षाका अन्न ग्रहण करते हुए अन्य कुछ भी संग्रह न करते हुए (साधना करनेवाला) साधक मेरा सायुज्य (नामक मोक्ष) प्राप्त करता है। यह मैंने गुह्य बात बतलायी॥ ७१—७४॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ ७५॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ ७६॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स हि मे प्रियः॥ ७७॥

जो सभी प्राणियोंसे द्वेष न करनेवाला, मित्रता करनेवाला, करुणायुक्त, ममतारहित और अहंकारसे रहित है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जो संतुष्ट रहनेवाला, निरन्तर योग-साधना करनेवाला, संयमित-चित्त, दृढ़निश्चयी और मुझमें मन तथा बुद्धि अर्पण करनेवाला है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जिससे किसी भी प्राणीको उद्वेग प्राप्त नहीं होता और किसी भी प्राणीसे जो उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष और भयसे होनेवाले उद्वेगोंसे रहित है, वह मुझे प्रिय है॥ ७५—७७॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥ ७८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तो मामुपैष्यति॥ ७९॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मत्परायणः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं परमं पदम्॥ ८०॥

जो किसी भी प्रकारकी अपेक्षा न रखनेवाला, पवित्र, कुशल (वेदशास्त्र-निषिद्धके त्यागमें सावधान) पक्षपातसे (शत्रु-मित्रभावसे) रहित, दुःखसे आक्रान्त होनेपर भी व्यथाका अनुभव न करनेवाला और सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग करनेवाला है, वह भक्तियुक्त पुरुष मेरा प्रिय है। जो निन्दा एवं स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील, जिस किसी भी पदार्थसे संतुष्ट रहनेवाला, गृहसे (गृहासक्तिसे) रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझे प्राप्त करता है। मुझमें परायण रहनेवाला सभी कर्मोंको सदा करते हुए भी मेरी कृपासे शाश्वत परमपद प्राप्त करता है॥ ७८—८०॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा मामेकं शरणं व्रजेत्॥ ८१॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव तेन निबध्यते॥ ८२॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम्॥ ८३॥

चित्तसे सभी कर्मोंको मुझमें अर्पितकर मत्परायण होते हुए आशा एवं ममताकी आसक्तिसे रहित होकर एकमात्र मेरी ही शरण ग्रहण करना चाहिये। कर्मफलकी आसक्तिका सर्वथा परित्यागकर नित्य संतृप्त और (अन्य) आश्रयरहित (एकमात्र परमेश्वरको ही आश्रय समझनेवाला) व्यक्ति कर्मोंमें प्रवृत्त होते हुए भी उन कर्मोंके द्वारा बन्धनमें नहीं पड़ता। आशारहित, संयमित चित्तवाला, सब प्रकारके परिग्रहों (संचयों)-का परित्याग-कर केवल शरीर (रक्षा)-के निमित्त कर्म करते हुए भी (व्यक्ति) उस पद (मोक्ष)-को प्राप्त कर लेता है॥ ८१—८३॥

यदृच्छालाभतुष्टस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि।
कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम्॥ ८४॥

मन्मना मन्नमस्कारो मद्याजी मत्परायणः।
मामुपैष्यति योगीशं ज्ञात्वा मां परमेश्वरम्॥ ८५॥

मद्बुद्धयो मां सततं बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयुः॥ ८६॥

एवं नित्याभियुक्तानां मायेयं कर्मसान्वगम्।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भास्वता॥ ८७॥

अनायास जो उपलब्ध हो उसीमें संतुष्ट रहनेवाले और सभी प्रकारके सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित रहनेवाले पुरुषके द्वारा केवल मेरी प्रसन्नताके लिये किये गये कर्म संसार (रूपी बन्धन)-का विनाश करनेवाले हैं। मुझमें मन लगानेवाला, मुझे नमस्कार करनेवाला, मेरा पूजन करनेवाला और मुझे ही अपना परम अयन (आश्रय) समझनेवाला (योगी) मुझ योगके ईश परमेश्वरको जानकर मुझे प्राप्त कर लेता है। मुझमें बुद्धि रखनेवाले (साधक) सतत परस्पर मेरा बोध कराते हुए और नित्य मेरा वर्णन करते हुए मेरा सायुज्य प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नित्य योगयुक्त पुरुषके माया (अज्ञान)-से उत्पन्न तथा उनसे भी उत्पन्न कर्मरूप समस्त अन्धकारका प्रकाशमान ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा मैं नाश कर देता हूँ॥ ८४—८७॥

मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ ८८॥

येऽन्ये च कामभोगार्थं यजन्ते ह्यन्यदेवताः।
तेषां तदन्तं विज्ञेयं देवतानुगतं फलम्॥ ८९॥

ये चान्यदेवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः।
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि भावतः॥ ९०॥

तस्मादनीश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः।
मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम्॥ ९१॥

मुझमें बुद्धि लगानेवाले जो मनुष्य सतत मेरी पूजा करते हैं, उन नित्य योगयुक्त पुरुषोंके योग-क्षेमका मैं निर्वाह करता हूँ और जो दूसरे लोग अभिलषित विषयोंके उपभोगके लिये ही भिन्न-भिन्न देवताओंका पूजन करते हैं, उनका अन्त विषयभोगतक ही समझना चाहिये, क्योंकि देवताके अनुसार ही फल भी होता है[१]। जो दूसरे देवोंके भक्त हैं, वे यदि मेरी भावनासे युक्त होकर (दूसरे)देवताओंकी पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवोंमें मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी (मुझमें) भावना करनेके कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर[२] देवताओंका परित्यागकर जो मुझ ईशका ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपदको प्राप्त करता है॥ ८८—९१॥

त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निःशोको निष्परिग्रहः।
यजेच्चामरणाल्लिङ्गे विरक्तः परमेश्वरम्॥ ९२॥

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषतः।
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमैश्वरम्॥ ९३॥

परानन्दात्मकं लिङ्गं केवलं सन्निरञ्जनम्।
ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदि संस्थितम्॥ ९४॥

पुत्र (स्त्री, गृह) आदिमें आसक्तिका परित्यागकर और शोकरहित होकर तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुषको मृत्युपर्यन्त (शिव-) लिङ्गमें परमेश्वरकी आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगोंका परित्यागकर सर्वदा लिङ्गका पूजन करते रहते हैं, उन्हें मैं एक जन्ममें ही परम ऐश्वर-पद (मोक्ष) प्रदान करता हूँ। परम आनन्दस्वरूप, अद्वितीय, सद्रूप, निरञ्जन, ज्ञानात्मक और सर्वत्र व्याप्त (शिव-) लिङ्ग योगियोंके हृदय-प्रदेशमें अवस्थित रहता है॥ ९२—९४॥

ये चान्ये नियता भक्तो भावयित्वा विधानतः।
यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्चयन्ति महेश्वरम्॥ ९५॥

जले वा वह्निमध्ये वा व्योम्नि सूर्येऽथ वान्यतः।
रत्नादौ भावयित्वेशमर्चयेल्लिङ्गमैश्वरम्॥ ९६॥

सर्वं लिङ्गमयं ह्येतत् सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।
तस्माल्लिङ्गेऽर्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम्॥ ९७॥

नियमपूर्वक भक्ति करनेवाले दूसरे लोग विधि-पूर्वक जहाँ-कहीं भी (शिवलिङ्गकी) भावना करते हुए उस महेश्वर-लिङ्गकी अर्चना करते हैं। जलमें, अग्निके मध्यमें, आकाशमें, सूर्यमें, रत्न आदिमें अथवा अन्यत्र कहीं भी ईशकी भावना करके लिङ्गरूप ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये। यह सब कुछ लिङ्गमय है और सब कुछ लिङ्गमें प्रतिष्ठित है, अतएव जहाँ-कहीं भी लिङ्गरूपमें शाश्वत ईशका अर्चन करना चाहिये॥ ९५—९७॥

१-देवताके अनुसार फलका तात्पर्य यह है कि जैसी भावनासे देवताकी आराधना की जाती है, वैसी भावनाके अनुसार ही देवता फल देते हैं, जिस रूपमें हम देवताको समझेंगे, उसी रूपमें देवता हमें लाभ देंगे। तत्-तत् फलोंके अधिष्ठाता रूपमें ही देवताकी आराधना करनेपर फलमात्र देकर देवता विरत हो जाते हैं।

२-एक ही देवता पूजककी दृष्टिमें तबतक अनीश्वर है, जबतक पूजक उसे किसी तुच्छ फलका अधिष्ठाता मात्र समझता है। यदि उसी देवताको परमेश्वरके भावसे निष्काम होकर पूर्ण समर्पण-भावके साथ पूजा जाय तो वह देवता अनीश्वर नहीं है, सर्वथा सेवनीय है।

अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम्।
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम्॥ ९८ ॥

यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः।
यावज्जीवं जपेद् युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः॥ ९९ ॥

अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः।
एकाकी यतचित्तात्मा स याति परमं पदम्॥ १००॥

वसेद् वामरणाद् विप्रो वाराणस्यां समाहितः।
सोऽपीश्वरप्रसादेन याति तत् परमं पदम्॥ १०१॥

तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम्।
ददाति तत् परं ज्ञानं येन मुच्येत बन्धनात्॥ १०२॥
वर्णाश्रमविधिं कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः।
तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवं पदम्॥ १०३॥

येऽपि तत्र वसन्तीह नीचा वा पापयोनयः।
सर्वे तरन्ति संसारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजाः॥ १०४॥

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम्।
धर्मं समाश्रयेत् तस्मान्मुक्तये नियतं द्विजाः॥ १०५॥

एतद् रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्यचित्।
धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे॥ १०६॥

व्यास उवाच

इत्येतदुक्त्वा भगवानात्मयोगमनुत्तमम्।
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम्॥ १०७॥

क्रियाशीलोंका[1] (लिङ्ग) अग्निमें, मनीषियोंका[2] जल, आकाश और सूर्यमें, अज्ञानियोंका[3] काष्ठ आदिमें और योगियोंका[4] लिङ्ग हृदयमें स्थित रहता है। यदि (ब्रह्म) विज्ञान उत्पन्न न हुआ हो तो विरक्त होकर (द्विजको) अत्यन्त प्रीतिसे ब्रह्मके प्रणवरूपी शरीरका यावज्जीवन जप करते हुए रहना चाहिये। अथवा एकाकी एवं संयत-चित्तवाले द्विजको मरणपर्यन्त शतरुद्रियका जप करना चाहिये, इससे उसे परम पद प्राप्त होता है। अथवा विप्रको[5] चाहिये कि मरणपर्यन्त समाहितचित्त होकर वाराणसीमें निवास करे। वह भी ईश्वर (शंकर)-के अनुग्रहसे उत्कृष्ट परमपदको प्राप्त करता है। वहाँ (वाराणसीमें) सभी प्राणियोंको उनके प्राण निकलते समय (भगवान् शंकर) उस परम ज्ञानको प्रदान करते हैं, जिससे वे (पुनर्जन्मके) बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं॥ ९८—१०२॥

सम्पूर्ण वर्णाश्रम-विधिका पालन करते हुए मेरे परायण रहनेवाला अपने उसी जन्ममें (जिस जन्ममें वर्णाश्रम-धर्मका पालन कर रहा है) ज्ञान प्राप्तकर शिवपदको प्राप्त करता है। द्विजो! नीच अथवा पापयोनिवाले भी जो प्राणी वहाँ (वाराणसीमें) निवास करते हैं, वे सभी ईश्वर (शंकर)-के अनुग्रहसे संसारको पार कर लेते हैं, किंतु जो पापाक्रान्त चित्तवाले हैं, उन्हें बहुत विघ्न होते हैं। इसलिये द्विजो! मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निरन्तर धर्मका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। यह वेदोंका रहस्य है, इसे जिस किसीको नहीं देना चाहिये। धार्मिक तथा ब्रह्मचारी भक्तको ही प्रदान करना चाहिये॥ १०३—१०६॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उत्तम आत्मयोगका वर्णन करके भगवान् (शंकर)-ने वहीं बैठे हुए प्रसन्नचित्त नारायणसे कहा—॥ १०७॥

१-'क्रियाशील'से उन द्विजोंको समझना चाहिये जो श्रौत-स्मार्त क्रियाओंमें दत्तचित्त हैं। इनका प्रमुख आराध्य अग्नि होता है।

२-'मनीषी'से उन्हें समझना चाहिये जो यथाविधि श्रौत-स्मार्त क्रियाओंके अनुष्ठानसे शुद्धान्तःकरण होकर ब्रह्मनिष्ठाकी ओर अग्रसर हैं।

३-'अज्ञानी' शब्दसे उन्हें समझना चाहिये जो वेद-शास्त्रके प्रति निष्ठावान् हैं, पर ऐहलौकिक विविध ऐश्वर्योंके प्रति आसक्त हैं, इन्हें प्राप्त करनेके लिये उत्कण्ठित हैं।

४-'योगी' शब्दसे ब्रह्मनिष्ठको समझना चाहिये। ब्रह्मनिष्ठ होनेके पूर्व संयत एवं एकाग्रचित्त अनासक्त साधककी एक भूमिका होती है। इस भूमिकाके लोग भी यहाँ 'योगी' समझे जा सकते हैं।

५-सर्वप्रमुख होनेसे यहाँ 'विप्र' मात्रका उल्लेख है। यह 'विप्र' शब्द प्राणिमात्रका उपलक्षक है।

मयैतद् भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम्।
दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम्॥ १०८॥

उक्त्वैवमथ योगीन्द्रानब्रवीद् भगवानजः।
हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः॥ १०९॥

भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम्।
उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम॥ ११०॥

अयं नारायणो योऽहमीश्वरो नात्र संशयः।
नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम्॥ १११॥

ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया।
सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंज्ञिता॥ ११२॥

ये त्वन्यथा प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः।
न ते मां सम्प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः॥ ११३॥

ये त्विमं विष्णुमव्यक्तं मां वा देवं महेश्वरम्।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः॥ ११४॥

तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि॥ ११५॥

येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति मत्वेमं देवतान्तरम्।
ते यान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः॥ ११६॥

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्॥ ११७॥

तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि॥ ११८॥

एवमुक्त्वा समालिङ्ग्य वासुदेवं पिनाकधृक्।
अन्तर्हितोऽभवत् तेषां सर्वेषामेव पश्यताम्॥ ११९॥

नारायणोऽपि भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम्।
जग्राह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः॥ १२०॥

ज्ञातं भवद्भिरमलं प्रसादात् परमेष्ठिनः।
साक्षादेव महेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम्॥ १२१॥

गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः।
प्रवर्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वराः॥ १२२॥

मैंने ब्रह्मवादियोंके कल्याणार्थ इस ज्ञानको कहा है। आप इस कल्याणकारी ज्ञानको शान्तचित्त शिष्योंको प्रदान करें। अजन्मा भगवान् (शंकर)-ने ऐसा कहनेके उपरान्त श्रेष्ठ योगियोंसे कहा—द्विजोत्तमो! सभी द्विजाति भक्तोंके कल्याणके लिये आप लोग भी मेरे कहनेसे सभी भक्त शिष्योंको मेरे ज्ञानका विधिपूर्वक उपदेश करें॥ १०८—११०॥

जो ये नारायण हैं, वह मैं ईश्वर ही हूँ। इसमें संदेह नहीं है। जो (हम दोनोंमें) कोई भेद नहीं देखता, उसीको यह परम (ज्ञान) देना चाहिये। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह परम मूर्ति सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। लोकमें जो भेददृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं करते हैं और बार-बार (संसारमें) जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वरको एकीभावसे देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये अनादिनिधन (आदि और अन्तसे रहित) आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो॥ १११—११५॥

जो लोग इन (विष्णु)-को दूसरा देवता मानकर मुझे दूसरा देवता समझकर देखते हैं, वे घोर नरकोंमें जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो, पण्डित हो, ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहनेवाले (प्रत्येक)-को मैं मुक्त कर देता हूँ, किंतु जो नारायणकी निन्दा करनेवाला है, उसे मैं मुक्त नहीं करता। इसीलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करनेके लिये इन महायोगी पुरुषोत्तमकी अर्चना अवश्य करें और इन्हें नमस्कार अवश्य करें॥ ११६—११८॥

ऐसा कहकर पिनाक धारण करनेवाले भगवान् शंकर वासुदेवका आलिंगन करके उन सभीके देखते-देखते अन्तर्हित हो गये। भगवान् नारायणने भी अपने पारमार्थिक विग्रहका त्यागकर उत्तम तपस्वीका वेष धारण किया और सभी योगियोंसे कहा—॥ ११९-१२०॥

आप लोगोंने परमेष्ठी (महेश्वर)-की कृपासे संसार (बन्धन)-को नष्ट करनेवाला उन्हीं साक्षात् महेशका निर्मल ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिये मुनीश्वरो! विगतज्वर होकर आप सभी जायँ और धार्मिक शिष्योंमें परमेष्ठीके ज्ञानको प्रवर्तित करें॥ १२१-१२२॥

इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये।
विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः॥ १२३॥
एवमुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः।
नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम्॥ १२४॥
तेऽपि देवादिदेवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम्।
नारायणं च भूतादिं स्वानि स्थानानि भेजिरे॥ १२५॥

इस ईश्वर-सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञानको विशेष रूपसे शान्त भक्त, धार्मिक तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको देना चाहिये। ऐसा कहकर योगियोंमें परम श्रेष्ठ वे महायोगी विश्वात्मा नारायण स्वयं अन्तर्हित हो गये॥ १२३-१२४॥

सनत्कुमारो भगवान् संवर्ताय महामुनिः।
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रताय तु॥ १२६॥

सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये।
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः॥ १२७॥

अङ्गिरा वेदविदुषे भरद्वाजाय दत्तवान्।
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च॥ १२८॥

पराशरोऽपि सनकात् पिता मे सर्वतत्त्वदृक्।
लेभे तत्परमं ज्ञानं तस्माद् वाल्मीकिराप्तवान्॥ १२९॥

मामुवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः।
वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक्॥ १३०॥

वे (मुनिगण) भी देवोंके आदिदेवेश्वर महेश्वरको और भूतादि (समस्त प्रपञ्चके मूलकारण) नारायणको नमस्कार कर अपने स्थानोंकी ओर चले गये। महामुनि भगवान् सनत्कुमारने संवर्तको ईश्वरीय ज्ञान (शिवज्ञानका उपदेश) प्रदान किया। उन्होंने भी (वह ज्ञान) सत्यव्रतको दिया। योगीन्द्र सनन्दनने महर्षि पुलहको और प्रजापति पुलहने गौतमको ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया। अङ्गिराने वेदोंके ज्ञाता भरद्वाजको और कपिलने जैगीषव्य तथा पञ्चशिखको (वह ज्ञान) दिया। सभी तत्त्वोंके द्रष्टा मेरे पिता पराशरने भी वह परम ज्ञान सनकसे प्राप्त किया और उनसे वाल्मीकिने प्राप्त किया। प्राचीन कालमें अर्धनारीश्वर भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न महायोगी वामदेवजीने मुझसे कहा, जो साक्षात् पिनाकधारी रुद्रस्वरूप हैं॥ १२५—१३०॥

नारायणोऽपि भगवान् देवकीतनयो हरिः।
अर्जुनाय स्वयं साक्षात् दत्तवानिदमुत्तमम्॥ १३१॥
यदहं लब्धवान् रुद्राद् वामदेवादनुत्तमम्।
विशेषाद् गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत्॥ १३२॥

शरण्यं शरणं रुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषतः।
भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम्॥ १३३॥
भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम्।
प्रपद्यध्वं सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम्॥ १३४॥
वर्तध्वं तत्प्रसादेन कर्मयोगेन शंकरम्।
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं भूतिभूषणम्॥ १३५॥

देवकीके पुत्र हरि भगवान् नारायणने भी स्वयं साक्षात् अर्जुनको यह उत्तम ज्ञान प्रदान किया। जब मैंने वामदेव रुद्रसे इस श्रेष्ठ ज्ञानको प्राप्त किया, तभीसे मेरी गिरिशमें विशेष भक्ति हो गयी। मैंने शरणागतोंके रक्षक, शरण (प्राणिमात्रके आश्रय), भूतोंके ईश, गिरिश, स्थाणु, देवाधिदेव त्रिशूली रुद्रकी विशेषरूपसे शरण ग्रहण की है। पत्नी तथा पुत्रोंके साथ आप सब लोग भी उन गोवृषवाहन[1], कल्याणकारी भगवान् शम्भुकी शरणमें जायँ। उनकी कृपासे कर्मयोगके द्वारा व्यवहार[2] करें और विभूतिभूषण गोपति (इन्द्रियोंके पति) महादेव शंकरकी पूजा करें॥ १३१—१३५॥

एवमुक्तेऽथ मुनयः शौनकाद्या महेश्वरम्।
प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥ १३६॥

अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।
साक्षादेव हृषीकेशं सर्वलोकमहेश्वरम्॥ १३७॥

ऐसा कहे जानेपर उन शौनक आदि (महर्षियों)-ने पुनः शाश्वत स्थाणु सनातन महेश्वर एवं सत्यवतीके पुत्र व्यासको प्रणाम किया और प्रसन्नमन होकर वे सभी लोकोंके महेश्वर, साक्षात् हृषीकेश, प्रभु कृष्णद्वैपायन (व्यास)-से कहने लगे—॥ १३६-१३७॥

१ 'गोवृषवाहन'—धर्मस्वरूप, गोजातिके वृषको महेश्वरने अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया है। इसलिये महेश्वरको 'गोवृषवाहन' कहा गया है।

२-'कर्मयोगके द्वारा व्यवहार'का तात्पर्य है—अनासक्त-भावसे (कर्मफलकी कामनाके बिना) कर्तव्यबुद्धिसे अधिकारानुसार वेदादि शास्त्रोक्त कर्मोंका पालन करना।

भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे।
इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरपि दुर्लभा॥ १३८॥

कथयस्व मुनिश्रेष्ठ कर्मयोगमनुत्तमम्।
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः॥ १३९॥

त्वत्संनिधावेष सूतः शृणोतु भगवद्वचः।
तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्मसंग्रहम्॥ १४०॥

यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं शक्रेणामृतमन्थने॥ १४१॥

(भगवन्!) आपकी ही कृपासे शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले गोवृषध्वज (भगवान् शंकर)-की वह अविचल भक्ति हमें प्राप्त हो गयी है, जो देवताओंको भी दुर्लभ है। मुनिश्रेष्ठ! आप श्रेष्ठ कर्मयोग हमें बतलायें, जिसके द्वारा मोक्षार्थी लोग इन भगवान् ईशकी आराधना करते हैं[1]। आप (वेदव्यास)-की संनिधिमें ही श्रीसूतजी भगवान् (महेश्वर)-के वचनोंको सुन लें, जो वचन समस्त लोकोंके रक्षक हैं और जिनमें समस्त धर्मोंका संग्रह हुआ है। अतः इनका वर्णन करें। इसके अतिरिक्त आप वह भी बतायें, जो पूर्वकालमें अमृतमन्थनके समय इन्द्रके द्वारा तथा मुनियोंके द्वारा पूछे जानेपर कूर्मरूपी देवाधिदेव श्रीविष्णुने कहा था (आप उसी कर्मयोगका वर्णन करें)॥१३८—१४१॥

श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम्।
मुनीनां भाषितं कृष्णः प्रोवाच सुसमाहितः॥ १४२॥

इस प्रकार मुनियोंने जो कहा उसे सुनकर सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यासजीने समाहित होकर (मुनियोंको) सनातन कर्मयोग बतलाया॥ १४२॥

य इमं पठते नित्यं संवादं कृत्तिवाससः।
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १४३॥

श्रावयेद् वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान्।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम्॥ १४४॥

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ १४५॥

श्रीसनत्कुमार आदि प्रमुख मुनियों एवं भगवान् कृत्तिवासा (शंकर)-के मध्य सम्पन्न इस संवादको जो नित्य पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। अथवा जो ब्रह्मचर्यपरायण विशुद्ध द्विजोंको इस (संवाद)-को सुनाता है, या जो इस संवादके अर्थका अनुसंधान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है। जो दृढ़व्रती भक्ति-सम्पन्न होकर इस (संवाद)-को नित्य सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होते हुए ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १४३—१४५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः।
श्रोतव्यश्चाथ मन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा॥ १४६॥

इसलिये विद्वानोंको सभी प्रयत्नोंके द्वारा नित्य इसका पठन, श्रवण एवं विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको इसका सदा मनन करना चाहिये॥ १४६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

(ईश्वरगीता समाप्ता)

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें (ईश्वरगीताका) ग्यारहवाँ अध्याय समाप्तहुआ॥ ११॥

(ईश्वरगीता समाप्त)

१-इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि वेद-शास्त्र-प्रतिपादित अपने कर्मोंका फलासक्तिरहित होकर सविधि अनुष्ठान ईशकी आराधनाका प्रमुख अङ्ग है।

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मचारीका धर्म, यज्ञोपवीत आदिके सम्बन्धमें विविध विवरण, अभिवादनकी विधि, माता-पिता एवं गुरुकी महिमा, ब्रह्मचारीके सदाचारका वर्णन

व्यास उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम्।
कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम्॥ १ ॥
आम्नायसिद्धमखिलं ब्रह्मणानुप्रदर्शितम्।
ऋषीणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः॥ २ ॥

सर्वपापहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम्।
समाहितधियो यूयं श्रृणुध्वं गदतो मम॥ ३ ॥

कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमाः।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः॥ ४ ॥

दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः।
भिक्षाहारो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥ ५ ॥
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा।
ब्राह्मणानां त्रिवृत् सूत्रं कौशं वा वास्त्रमेव वा॥ ६ ॥

सदोपवीती चैव स्यात् सदा बद्धशिखो द्विजः।
अन्यथा यत् कृतं कर्म तद् भवत्ययथाकृतम्॥ ७ ॥
वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम्।
तदेव परिधानीयं शुक्लमच्छिद्रमुत्तमम्॥ ८ ॥

उत्तरं तु समाख्यातं वासः कृष्णाजिनं शुभम्।
अभावे दिव्यमजिनं रौरवं वा विधीयते॥ ९ ॥
उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्ये बाहौ समर्पितम्।
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने॥ १० ॥

सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि योजयेत्॥ ११ ॥

व्यासजी बोले—ऋषियो! आप लोग ब्राह्मणोंको आत्यन्तिक (शाश्वत) फल प्रदान करनेवाले, अभी कहे जा रहे सनातन कर्मयोगको सुनें॥ १॥

पूर्वकालमें प्रजापति मनुने सुननेकी इच्छा रखनेवाले ऋषियोंको समस्त वेदोंमें प्रसिद्ध, ब्रह्माद्वारा बतलाये गये, सभी पापोंको दूर करनेवाले तथा पवित्र ऋषि-समूहोंद्वारा सेवित इस सम्पूर्ण कर्मयोगको बतलाया था। मेरे द्वारा कहे जानेवाले इस कर्मयोगको समाहितबुद्धि होकर आप लोग भी सुनें द्विजोत्तमो! गर्भसे आठवें अथवा (जन्मसे) आठवें वर्षकी अवस्थामें अपने-अपने गृह्यसूत्रोक्त विधानके अनुसार यज्ञोपवीत-संस्कारसे युक्त होकर दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत तथा कृष्णमृगचर्म धारणकर मुनिवृत्तिवाले (ब्राह्मण-बालक)-को चाहिये कि वह भिक्षान्न ग्रहण करते हुए, गुरुके हितमें तत्पर रहकर गुरुके समीपमें उनकी ओर देखते हुए वेदोंका अध्ययन करे॥ २—५॥

प्राचीन कालमें ब्रह्माने यज्ञोपवीतके लिये कपासका निर्माण किया। ब्राह्मणोंका यज्ञोपवीत तिहरा होना चाहिये, वह कुशका हो अथवा वस्त्रका हो। द्विजको सदा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये तथा शिखा बाँधे रखना चाहिये। अन्यथा (वह) जो कर्म करता है, वह न किये हुएके ही समान है अर्थात् निष्फल है॥ ६-७॥

कपास या रेशमका बना हुआ विकाररहित (जला-कटा न हो) वस्त्र पहनना चाहिये। ऐसे ही स्वच्छ, छिद्ररहित तथा उत्तम (शास्त्रविधिके अनुसार) वस्त्रको धारण करना चाहिये। उत्तरीय वस्त्रके रूपमें कृष्णमृगचर्म शुभ कहा गया है। इसके अभावमें दिव्य चर्म अथवा रुरु मृगके चर्मका विधान किया गया है॥ ८-९॥

दाहिना हाथ उठाकर बायें हाथके ऊपर (बायें कंधेपर) स्थापित यज्ञसूत्रको 'उपवीत' कहा जाता है। नित्य ऐसे रहना चाहिये। कण्ठमें (मालाकी तरह) लटके रहनेपर (यज्ञसूत्र) 'निवीत' कहा जाता है। द्विजो! बायाँ हाथ बाहर निकालकर दाहिने बाहुके ऊपर (दाहिने कंधेके ऊपर) रखे हुए यज्ञसूत्रको 'प्राचीनावीत' (अपसव्य) कहा जाता है इसका प्रयोग पितृकर्ममें करना चाहिये॥ १०-११॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च संनिधौ॥ १२॥

उपासने गुरूणां च संध्ययोः साधुसंगमे।
उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः॥ १३॥

मौञ्जी त्रिवृत् समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
मुञ्जाभावे कुशेनाहुर्ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः॥ १४॥

धारयेद् बैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तकौ द्विजः।
यज्ञार्हवृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेव च॥ १५॥
सायं प्रातर्द्विजः संध्यामुपासीत समाहितः।
कामाल्लोभाद् भयान्मोहात् त्यक्तेन पतितो भवेत्॥ १६॥

अग्निकार्यं ततः कुर्यात् सायं प्रातः प्रसन्नधीः।
स्नात्वा संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा॥ १७॥

देवताभ्यर्चनं कुर्यात् पुष्पैः पत्रेण वाम्बुभिः।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः॥ १८॥

असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम्।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः॥ १९॥

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः॥ २०॥
न कुर्याद् योऽभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥ २१॥

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः॥ २२॥

लौकिकं वैदिकं चापि तथाध्यात्मिकमेव वा।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्॥ २३॥

नोदकं धारयेद् भैक्षं पुष्पाणि समिधस्तथा।
एवंविधानि चान्यानि न दैवाद्येषु कर्मसु॥ २४॥

यज्ञशाला, गोशाला, होम, जप, स्वाध्याय, भोजन, ब्राह्मणोंकी संनिधि, गुरुओंकी उपासना, दोनों संध्याओं और साधुओंके समागम (सत्संग)-के समय नित्य उपवीती रहना चाहिये यह सनातन विधि है। विप्र (वटु)-की मेखला मूँजसे बनी हुई, तिहरी, बराबर तथा चिकनी बनानी चाहिये। मूँजके अभावमें कुशकी एक या तीन ग्रन्थियोंसे युक्त मेखला बनानी चाहिये। द्विजको केशान्तपर्यन्त बिल्व अथवा पलाशका चाहे किसी यज्ञीय वृक्षका सुन्दर (चिकना) तथा छिद्र आदिसे रहित दण्ड धारण करना चाहिये॥ १२—१५॥

द्विजको सायं तथा प्रातः समाहित होकर संध्या करनी चाहिये। काम, लोभ, भय अथवा मोहसे संध्याका त्याग करनेसे वह (द्विज) पतित हो जाता है। तदनन्तर प्रसन्न-मनसे सायं और प्रातः हवन करना चाहिये। स्नानके उपरान्त देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। पत्र, पुष्प अथवा जलसे देवताओंका पूजन करना चाहिये। आयु तथा आरोग्यकी प्राप्तिके लिये आलस्य आदिसे सर्वथा मुक्त होकर 'यह मैं अमुक नामवाला आपको प्रणाम करता हूँ'—इस प्रकार धर्मपूर्वक वृद्धजनोंका नित्य अभिवादन करना चाहिये। अभिवादन किये जानेपर विप्रको **'आयुष्मान् भव सौम्य'** अर्थात् 'सौम्य! तुम दीर्घायु होओ' इस प्रकार अभिवादनका उत्तर देना चाहिये। उसके नामके अन्तिम स्वर अथवा नामके अन्तिम अक्षरके व्यञ्जन होनेपर उसके ठीक पूर्वके स्वरको प्लुत (दीर्घतर) स्वरमें बोलना चाहिये॥ १६—२०॥

जो द्विज अभिवादन करनेपर प्रत्यभिवादन (अभिवादनका उत्तर) नहीं करता, उसका अभिवादन विद्वान्‌को नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह शूद्रके समान ही है। अभिवादनके समय गुरुके चरणोंका स्पर्श व्यत्यस्तपाणि होकर करना चाहिये अर्थात् बायें हाथसे बायें पैरको और दाहिने हाथसे दाहिने पैरको स्पर्श करना चाहिये। जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया हो, उस (गुरु)-का सर्वप्रथम अभिवादन करना चाहिये। देवपूजन (देव, पित्र्य) आदि कर्मोंमें भिक्षामें प्राप्त जल, पुष्प तथा समिधा अथवा इसी प्रकारके अन्य पदार्थोंका ग्रहण (प्रयोग) नहीं करना चाहिये॥ २१—२४॥

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु॥ २५॥

(मिलनेपर) ब्राह्मणसे उसका 'कुशल' पूछना चाहिये, इसी प्रकार क्षत्रियसे 'अनामय' (रोगराहित्य), वैश्यसे 'क्षेम' और शूद्रसे 'आरोग्य' पूछना चाहिये॥ २५॥

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः।
मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ।
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः॥ २६॥

माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः।
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः॥ २७॥

इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः।
अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः॥ २८॥

उपाध्याय[1], पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, ससुर, रक्षक, मातामह, पितामह, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णवाले तथा चाचा—ये लोग गुरु कहे गये हैं। माता, मातामही, गुरुपत्नी, पिता एवं माताकी बहिन (बुआ एवं मौसी), सास, पितामही तथा ज्येष्ठ धात्री (शैशवावस्थामें पालन करनेवाली)—ये सभी स्त्रियाँ गुरु हैं। द्विजो! माता और पिताके सम्बन्धसे यह गुरुवर्ग कहा गया है अर्थात् माताके पक्षसे तथा पिताके पक्षसे जो लोग श्रेष्ठ कोटिमें हैं उन्हें बताया गया। मन, वाणी और कर्मद्वारा इनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये॥ २६—२८॥

गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः।
नैतैरुपविशेत् सार्धं विवदेन्नात्मकारणात्॥ २९॥

जीवितार्थमपि द्वेषाद् गुरुभिर्नैव भाषणम्।
उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः॥ ३०॥

गुरुको देखते ही आसनसे उठ जाना चाहिये और अभिवादनकी विधिसे उन्हें अभिवादन करना चाहिये, अनन्तर उनकी आज्ञा पाकर हाथ जोड़कर सम्मुख बैठना चाहिये, पर इनके साथ एक आसनपर नहीं बैठना चाहिये और अपने लिये (व्यक्तिगत स्वार्थके लिये) इनसे विवाद भी नहीं करना चाहिये। प्राणधारणके लिये भी द्वेषवश गुरुजनोंसे विवाद न करे। अन्य गुणोंके विद्यमान रहनेपर भी गुरुसे द्वेष करनेवालोंका अधःपतन होता है अर्थात् गुरुद्वेषीके सभी गुण व्यर्थ होते हैं॥ २९-३०॥

गुरूणामपि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः।
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता॥ ३१॥

यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥ ३२॥

आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः।
पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता॥ ३३॥

अभी बताये गये सभी गुरुओंमें भी पाँच विशेषरूपसे पूजनीय हैं। उनमें प्रथम तीन श्रेष्ठ हैं, उनमें भी माता अधिक पूज्य होती है। उत्पादक (पिता), उत्पन्न करनेवाली (माता), विद्याका उपदेश देनेवाले (गुरु), बड़े भाई और भरण-पोषण करनेवाले स्वामी—ये पाँच गुरु कहे गये हैं। कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको अपने सभी प्रयत्नोंके द्वारा प्राण ही क्यों न त्यागना पड़े, पर इन पाँचों (गुरुओं)-का विशेषरूपसे पूजन (आदर) करना चाहिये॥ ३१—३३॥

यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ।
तावत् सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात् तत्परायणः॥ ३४॥

जबतक माता और पिता ये दोनों निर्विकार[2] रहें, तबतक सब कुछ छोड़कर पुत्रको उनके परायण रहना चाहिये॥ ३४॥

१-वेदके एकदेश मन्त्र या ब्राह्मण तथा वेदाङ्ग व्याकरण आदिका जो ब्राह्मण वृत्त्यर्थ (जीविकाके लिये) अध्यापन करते हैं, वे उपाध्याय कहे जाते हैं (मनु० २। १४१)।

२-यहाँ निर्विकारका अर्थ है गोहत्या, गुरुहत्या, ब्राह्मणहत्या-जैसे परिगणित महापातकोंसे रहित। दुर्भाग्यवश यदि माता-पिता महापातकी हो जाते हैं तो उन्हें प्रायश्चित्तके लिये पुत्रादिसे अलग रहना ही पड़ता है। उस समय उनकी सेवा आदिसे पुत्रको भी वञ्चित

पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि।
स पुत्रः सकलं धर्ममाप्नुयात् तेन कर्मणा॥ ३५॥

नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पितृसमो गुरुः।
तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथञ्चन विद्यते॥ ३६॥

यदि पुत्रके गुणों (सत्कर्मनिष्ठा-सेवाभाव आदि)-के कारण पिता-माता पुत्रपर प्रसन्न रहते हैं तो वह पुत्र अपने इन सत्कर्मनिष्ठा आदि कर्म (गुणों)-से सम्पूर्ण धर्मको प्राप्त कर लेता है (अर्थात् यज्ञ, दान आदि बड़े-बड़े कर्मोंसे होनेवाले सभी पुण्य माता-पिताकी प्रसन्नताके कारण पुत्रको प्राप्त होते हैं)। माताके समान कोई देवता नहीं है, पिताके समान कोई गुरु नहीं है। उनके उपकारका कोई भी प्रत्युपकार नहीं है॥ ३५-३६॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा।
न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥ ३७॥

वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा।
धर्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः॥ ३८॥

सम्यगाराध्य वक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया।
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य चापद्यते दिवि॥ ३९॥

यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते।
तेन दोषेण स प्रेत्य निरयं घोरमृच्छति॥ ४०॥

उन दोनों (अर्थात् माता-पिता)-का मन, वाणी तथा कर्मसे नित्य ही प्रिय करना चाहिये। मोक्षसाधक (कर्मों) और नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको छोड़कर बिना उनकी आज्ञा प्राप्त किये दूसरे किसी धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। (उनकी सेवाको) धर्मका सार और मृत्युके अनन्तर मोक्षफल देनेवाला बताया गया है। उपदेष्टा (गुरु)-की अच्छी प्रकार आराधना करनेके अनन्तर उनकी आज्ञासे ब्रह्मचर्याश्रमका परित्यागकर गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेवाला स्नातक शिष्य विद्याके फलका उपभोग करता है और मृत्युके उपरान्त स्वर्गलोक प्राप्त करता है अर्थात् अभ्युदय (ऐहलौकिक उन्नति) तथा निःश्रेयस (पारलौकिक उन्नति) दोनों यथावत् प्राप्त करता है। जो पितृतुल्य बड़े भाईको मूर्ख समझता है, मरनेपर वह उस दोषके कारण घोर नरक प्राप्त करता है॥ ३७—४०॥

पुंसा वर्त्मनिविष्टेन पूज्यो भर्ता तु सर्वदा।
याति दातरि लोकेऽस्मिन् उपकाराद्धि गौरवम्॥ ४१॥

ये नरा भर्तृपिण्डार्थं स्वान् प्राणान् संत्यजन्ति हि।
तेषामथाक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान् मनुः॥ ४२॥

अच्छे मार्गमें स्थित (सत्कर्तव्यपरायण) पुरुषके लिये भरण-पोषण करनेवाला भर्ता (स्वामी) सदा पूज्य (आदरविशेषके योग्य) होता है। उपकार करनेके कारण दाता इस लोकमें अत्यधिक गौरव प्राप्त करता ही है। जो लोग भर्तासे प्राप्त जीविकाके बदले अपने प्राणोंतकका परित्याग कर देते हैं, उन्हें अक्षय लोक प्राप्त होते हैं, ऐसा भगवान् मनुने कहा है॥ ४१-४२॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून्।
असावहमिति ब्रूयुः प्रत्युत्थाय यवीयसः॥ ४३॥

अपनेसे अल्प अवस्थावाले मामा, चाचा, ससुर तथा ऋत्विज्के प्रति प्रत्युत्थानपूर्वक (आसनसे उठकर) 'मैं अमुक नामवाला हूँ'—केवल ऐसा ही कहकर अपना सम्मानभाव व्यक्त करना चाहिये, इन्हें अभिवादन-विधिसे अभिवादन नहीं करना चाहिये[1]॥ ४३॥

होना ही पड़ता है। ऐसे समयसे अतिरिक्त समयमें तो पुत्रको माता-पिताके परायण अवश्य रहना ही चाहिये। माता-पिताके सविकार होनेका निर्णय शास्त्रोंके अनुसार अधिकारी विद्वान् लोग ही करते हैं। यह निर्णय पुत्रके अधीन नहीं है।

१-मनुस्मृति (२। १३०)-में यही श्लोक है। वहाँ कुल्लूकभट्टने जो अर्थ किया है, तदनुसार ही यहाँ अर्थ समझना चाहिये। वहाँ

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्।
भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित्॥ ४४॥

अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा वन्द्य एव च।
ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा॥ ४५॥

जो अपनेसे छोटा भी (यज्ञादिमें) दीक्षित (पुरुष) हो तो उसका नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको '**भो भवत्**' अर्थात् 'आप' शब्दका प्रयोग कर इसके (दीक्षितके) साथ सम्भाषण करना चाहिये। ऐश्वर्यकी अभिलाषा करनेवाले क्षत्रियादिकोंके लिये ब्राह्मण सदा ही आदरपूर्वक अभिवादन करने योग्य, पूजन करने योग्य तथा सिरसे वन्दन करने योग्य है॥ ४४-४५॥

नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथञ्चन।
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः॥ ४६॥

ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति स्थितिः।
सवर्णेषु सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम्॥ ४७॥

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः॥ ४८॥

विप्रको कभी भी क्षत्रियादिका अभिवादन नहीं करना चाहिये, भले ही वे ज्ञान, कर्म एवं गुणोंकी दृष्टिसे उत्कृष्ट हों। ब्राह्मणको सभी वर्णोंके प्रति 'स्वस्ति' अर्थात् कल्याण हो—ऐसा कहना चाहिये—यह विधान है। समान वर्णोंमें (कनिष्ठ व्यक्तियोंको ज्येष्ठ व्यक्तियोंका) अभिवादन करना चाहिये[१]। द्विजातियोंके गुरु अग्नि और सभी वर्णोंके गुरु ब्राह्मण हैं। स्त्रियोंके एकमात्र गुरु उनके पति हैं और अतिथि सबका गुरु है॥ ४६—४८॥

विद्या कर्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम्।
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात्॥ ४९॥

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥ ५०॥

विद्या, कर्म, अवस्था, बन्धु तथा पाँचवाँ धन—ये सम्मान प्राप्त करनेके पाँच स्थान कहे गये हैं। इनमें बादकी अपेक्षा पूर्व-पूर्वकी गुरुता[२] है। (ब्राह्मणादि) तीन वर्णोंके जिस व्यक्तिमें ये पाँच गुण (मान्यताके स्थान) अधिक हों तथा प्रबल हों वह अपेक्षाकृत माननीय होता है (अर्थात् श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम होता है)। दशमी अर्थात् नब्बे वर्षसे अधिक अवस्थाको प्राप्त शूद्र भी मान देनेके योग्य हो जाता है (अर्थात् ऐसे शूद्रके आनेपर उसे बैठनेके लिये आसन आदि आदरभावपूर्वक देना चाहिये)॥ ४९-५०॥

पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे।
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च॥ ५१॥

भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद् वाग्यतस्तदनुज्ञया॥ ५२॥

ब्राह्मण, स्त्री, राजा, नेत्रहीन व्यक्ति, वृद्ध, भारसे पीड़ित व्यक्ति, रोगी तथा दुर्बलके लिये रास्ता छोड़ देना चाहिये (अर्थात् एक ही रास्तेपर आमने-सामने होनेपर स्वयं हटकर इन्हें रास्ता दे देना चाहिये। इनके निकल जानेपर स्वयं जाना चाहिये)। (ब्रह्मचारीको) प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन शिष्टोंके[३] घरोंसे भिक्षा लाकर गुरुको निवेदितकर उनकी (गुरुकी) आज्ञा प्राप्तकर मौन होकर भोजन करना चाहिये॥ ५१-५२॥

ऋत्विक्‌से अतिरिक्त गुरुको नहीं गिना गया है। श्लोकमें गिनाये गये मामासे ऋत्विक्‌तकके लिये भी 'गुरु' शब्दका उल्लेख है।

१-यहाँ अभिवादनका अर्थ इतना ही है कि दोनों हाथोंसे पादस्पर्शकर प्रणाम करे। पूर्वोक्त अभिवादन-विधिके अनुसार नाम, गोत्र आदिका उच्चारण नहीं करना चाहिये।

२-विद्या—वेदार्थतत्त्वज्ञान कर्म, श्रौत-स्मार्त क्रियाओंका पालन, अवस्था—अधिक वयस्क होना, बन्धु—पितृव्य (चाचा), मामा आदि, वित्तन्यायार्जित धन—ये पाँच मान्यताके कारण हैं, पर इनमें उत्तर-उत्तरकी अपेक्षा पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ है।

३-अपने वर्णके तथा अपने वर्णसे उच्च वर्णके जो लोग यथासम्भव आस्तिक, सदाचारी हों, महापातक आदिसे दूषित न हों, वे ही यहाँ शिष्टरूपमें अभिप्रेत हैं।

भवत्पूर्वं चरेद् भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्॥ ५३॥
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्॥ ५४॥
सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा।
भैक्ष्यस्य चरणं प्रोक्तं पतितादिषु वर्जितम्॥ ५५॥

उपनयन-संस्कार होनेपर (ब्रह्मचारी) ब्राह्मणको पूर्वमें '**भवत्**' शब्दका प्रयोगकर ('**भवति! भिक्षां देहि**' ऐसा कहकर) भिक्षा माँगनी चाहिये। क्षत्रियको बीचमें ('**भिक्षां भवति! देहि**' ऐसा कहकर) तथा वैश्यको अन्तमें '**भवत्**' शब्द कहकर ('**भिक्षां देहि भवति!**' ऐसा कहकर) भिक्षा माँगनी चाहिये[1]। अपनी माता, बहन तथा मौसीसे अथवा जो इस ब्रह्मचारीकी अवमानना न करे, उससे पहली (उपनयन-संस्कारकी अङ्गभूत प्रथम) भिक्षा माँगनी चाहिये[2]। अपनी जातिके घरोंसे अथवा अपनेसे उच्च वर्णवाले सभी लोगोंके घरसे भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, किंतु पतित आदि व्यक्तियोंके घरसे भिक्षाका ग्रहण करना वर्जित है॥ ५३—५५॥

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु।
ब्रह्मचार्याहरेद् भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्॥ ५६॥
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु।
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्॥ ५७॥
सर्वं वा विचरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे।
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन्॥ ५८॥

ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक ऐसे लोगोंके घरोंसे भिक्षा ग्रहण करे, जिनके घरोंमें वेद एवं यज्ञ आदिका लोप नहीं हुआ हो और जो (वेदशास्त्रानुसार) अपने कर्मोंके पालनके कारण प्रशस्त हों। गुरुके कुल (सपिण्ड) तथा (अपने) बन्धुके कुल अर्थात् अपने कुल और बान्धवों (मातुल आदिके घर)-से भिक्षा नहीं माँगनी चाहिये। दूसरोंका घर न मिलनेपर पहले-पहलेका त्याग करना चाहिये। अर्थात् पहले बन्धु-बान्धवों (मातुल आदि)-के घर, यदि वहाँ भिक्षा न मिले तो अपने कुलमें और वहाँ भी न मिले तो अन्तमें गुरुके कुलमें भिक्षा माँगनी चाहिये। पहलेके कहे गये घरोंसे भी न मिलनेपर प्रयत्नपूर्वक वाणीको नियन्त्रित कर दिशाओंमें न देखते हुए, सम्पूर्ण ग्राममें भिक्षा-हेतु विचरण करना चाहिये (पर पातकी एवं हीन जातिवालेके घरकी भिक्षा न ले)॥ ५६—५८॥

समाहृत्य तु तद् भैक्षं यावदर्थममायया।
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः॥ ५९॥
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद् व्रती।
भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता॥ ६०॥

अपनी आवश्यकताके अनुसार बिना किसी छल-कपटके उस भिक्षाको एकत्रितकर प्रयत्नपूर्वक नित्य मौन होकर एकाग्रतापूर्वक भोजन करना चाहिये। (ब्रह्मचारी) नित्य भिक्षासे जीविकाका निर्वाह करे। ब्रह्मचारीको नित्य एक अन्न[3] नहीं ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचारीकी भिक्षान्नसे की गयी वृत्ति उपवासके समान ही कही गयी है॥ ५९-६०॥

१-शास्त्रानुसार ब्रह्मचारी गृहस्थके घरमें भिक्षा माँगने जाता है। घरमें माताएँ रहती हैं, अतः 'भवति!' इस रूपमें माताओंको सम्बोधन कर भिक्षा माँगता है।

२-उपनयन-संस्कार जब होता है तब भिक्षा माँगनेका विधान है। यह सर्वप्रथम भिक्षा माँगना है। इसीके लिये यह वचन है।

३-एक अन्न नित्य ग्रहण करनेसे उसमें आसक्ति हो जाती है और किसी भी प्रकारकी आसक्ति वर्जित है।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥ ६१॥

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्॥ ६२॥

नित्य अन्न (प्राप्त भिक्षान्न)-का पूजन (प्राणधारक रूपमें विष्णुस्वरूप समझकर ध्यान) करे और निन्दा न करते हुए उसे ग्रहण करे। (भोजनको) देखकर हर्षित और प्रसन्न होना चाहिये तथा सर्वथा उसकी (अन्नकी) प्रशंसा करनी चाहिये। अत्यधिक भोजन करना आरोग्य, आयुष्य, स्वर्ग और पुण्यका नाश करनेवाला तथा लोकमें। (अधिक भोजीके रूपमें) निन्दा करानेवाला है, इसलिये अतिभोजनका परित्याग करना चाहिये॥ ६१-६२॥

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः॥ ६३॥

प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत्।
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत्॥ ६४॥

नित्य पूर्वकी ओर मुख करके अथवा सूर्यकी ओर मुख करके भोजन करे। उत्तरकी ओर मुखकर भोजन न करे—यह सनातन विधि है। दोनों हाथ एवं पाँव धोकर भोजनके आरम्भमें दो आचमन करे। पवित्र स्थानपर बैठकर भोजन करनेके अनन्तर पुनः दो बार आचमन करना चाहिये॥ ६३-६४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मचारीके नित्यकर्मकी विधि, आचमनका विधान, हाथोंमें स्थित तीर्थ, उच्छिष्ट होनेपर शुद्धिकी प्रक्रिया, मूत्र-पुरीषोत्सर्गके नियम

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च॥ १॥

रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे ।
ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा॥ २॥

चत्वरं वा श्मशानं वा समाक्रम्य द्विजोत्तमः।
संध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत् पुनः॥ ३॥

चण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम्।
आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च॥ ४॥

भोजने संध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः।
आचान्तोऽप्याचमेत् सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः॥ ५॥

व्यासजी बोले—भोजन करके, जल इत्यादि पीकर, शयनकर उठनेके बाद, स्नान करके तथा मार्गमें गमनके समय, रोमरहित दोनों ओष्ठोंका स्पर्शकर, वस्त्र धारणकर, वीर्य, मल-मूत्रका त्यागकर, अनुपयुक्त भाषण करनेपर, थूकनेके बाद, अध्ययनारम्भमें, खाँसी या श्वास आनेपर, चौराहे अथवा श्मशानको पार करनेपर, इसी प्रकार दोनों संध्याओंमें श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वह आचमन किये रहनेपर भी पुनः आचमन करे। चाण्डाल और म्लेच्छसे बात करनेपर, स्त्री, शूद्र और जूठे मुखवालेसे भाषण करनेपर, जूठे मुँहवाले पुरुषका तथा इसी प्रकार उच्छिष्ट भोजनका स्पर्श होनेपर, आँसू तथा रक्तके गिरनेपर, भोजनके समय, दोनों संध्याओंमें स्नानकर और जल आदिके पीनेपर तथा मल-मूत्रके उत्सर्गपर आचमन किये होनेपर भी आचमन करे। सोनेसे जगनेके बाद एक बार और अन्य समयोंमें अनेक बार आचमन करना चाहिये॥ १—५॥

अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा।
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीवीं वा परिधाय च॥ ६ ॥
उपस्पृशेज्जलं वार्द्रं तृणं वा भूमिमेव वा।
केशानां चात्मनः स्पर्शे वाससोऽक्षालितस्य च॥ ७ ॥

अग्निका, गौका स्पर्श होनेपर, किसी परिश्रम करनेवालेका, स्त्रीका तथा अपना स्पर्श होनेपर (अपने जिस अङ्गका स्पर्श आवश्यक या अनिवार्य न हो उसका कामतः यदि स्पर्श किया जाय), नीवी (कटि—कमरका वस्त्र) पहिनकर, अपने केशों तथा बिना धोये वस्त्रका स्पर्श करनेपर जल, हरे तृण या भूमिका स्पर्श करना चाहिये॥ ६-७॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरदुष्टाभिश्च धर्मतः।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः॥ ८ ॥
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा।
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्॥ ९ ॥
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी वाचमेद् बुधः।
न चैव वर्षधाराभिर्न तिष्ठन् नोद्धृतोदकैः॥ १०॥
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः।
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा॥ ११॥

धर्मकी दृष्टिसे शुद्धिकी अभिलाषावालेको चाहिये कि वह सदा पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके बैठकर शीतल, फेनरहित तथा दोषवर्जित जलसे आचमन करे। सिर या कानको ढकने और शिखा तथा कच्छ (पिछोटा) खुलनेपर, बिना पैर धोये आचमन करनेपर भी अशुद्ध रहता है (अर्थात् इन स्थितियोंमें पहले पाँवोंको धोना चाहिये। अनन्तर हाथोंको धोकर आचमन करना चाहिये)। बुद्धिमान् व्यक्तिको जूता पहने हुए, जलमें स्थित होनेपर, सिरपर पगड़ी इत्यादि धारणकर आचमन नहीं करना चाहिये। (इसी प्रकार) न वर्षाके जलसे, न खड़े होकर, न उठाये हुए जलसे, न एक हाथसे अर्पित जलसे अर्थात् किसी अन्यके द्वारा अञ्जलिसे नहीं, केवल एक हाथसे दिये गये जलसे, बिना यज्ञोपवीतके, न पादुकासनपर बैठे हुए (पाँवमें धारण की जानेवाली पादुकाको आसन बनाकर उसीपर बैठकर) अथवा न जानुओंके बाहर हाथ निकाले हुए आचमन करना चाहिये॥ ८—११॥

न जल्पन् न हसन् प्रेक्षन् शयानः प्रह्व एव च।
नावीक्षिताभिः फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा॥ १२॥
शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्न क्षाराभिस्तथैव च।
न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्वन् नान्यमानसः॥ १३॥

बोलते हुए, हँसते हुए, देखते हुए (किसी अन्यकी ओर देखते हुए), सोते हुए और झुककर आचमन नहीं करना चाहिये। बिना देखे[1] हुए अथवा फेन आदिवाले जलसे आचमन नहीं करना चाहिये। शूद्र[2] अथवा अपवित्र व्यक्तिके हाथोंसे दिये हुए एवं खारे जलसे और अंगुलियोंसे शब्द करते हुए तथा अन्यमनस्क होकर आचमन नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

१-जलमें कोई ऐसी वस्तु नहीं होनी चाहिये जो उसे अपवित्र करती है। इसलिये अच्छी प्रकार निरीक्षित जलसे ही आचमन करना चाहिये।

२-शक्ति रहनेपर किसी भी शूद्रके द्वारा लाये गये जलसे आचमन नहीं करना चाहिये। अशक्त होनेपर तथा त्रैवर्णिकके कथमपि उपलब्ध न होनेपर शूद्र (जिस शूद्रका पात्र धर्मशास्त्रके अनुसार ग्राह्य होता है)-के द्वारा लाये गये जलको कुश आदिसे पवित्रकर उससे आचमन किया जा सकता है।

न वर्णरसदुष्टाभिर्न चैव प्रदरोदकैः।
न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिष्कक्ष एव वा॥ १४॥

जिस जलका अपना स्वाभाविक वर्ण या रस विकृत हो गया है, उससे आचमन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही प्रदरोदक (अत्यल्प जल)-से आचमन नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त किसी पात्रमें रखे हुए उस जलसे भी आचमन नहीं करना चाहिये जो पूरा हाथ डालकर क्षुभित कर दिया गया हो। यदि कच्छ (पिछोटा) धोतीसे बाहर निकल जाय तो उस स्थितिमें आचमन नहीं करना चाहिये। कच्छको धोतीके भीतर करनेके अनन्तर ही आचमन करनेका विधान है॥ १४॥

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः।
प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्ततः॥ १५॥

(आचमनमें) ब्राह्मण हृदयतक पहुँचनेवाले, क्षत्रिय कण्ठतक पहुँचनेवाले जलसे और वैश्य मुखके भीतर प्रविष्ट (कण्ठतक न भी पहुँचे)जलसे शुद्ध होते हैं; स्त्री, शूद्र तो केवल (जिह्वा, ओष्ठके अन्ततक) जलके स्पर्शमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं॥ १५॥

अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखायां ब्राह्ममुच्यते।
अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्यो पितॄणां तीर्थमुत्तमम्॥ १६॥

कनिष्ठामूलतः पश्चात् प्राजापत्यं प्रचक्षते।
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं तदेवार्षं प्रकीर्तितम्॥ १७॥

मूले वा दैवमार्षं स्यादाग्नेयं मध्यतः स्मृतम्।
तदेव सौमिकं तीर्थमेतज्ज्ञात्वा न मुह्यति॥ १८॥

ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्।
कायेन वाथ दैवेन न तु पित्र्येण वै द्विजाः॥ १९॥

त्रिः प्राश्नीयादपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः।
सम्मृज्याङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत्॥ २०॥

अँगूठेके मूलकी रेखामें ब्राह्मतीर्थ, तर्जनी और अँगूठेके मध्यभागमें उत्तम पितृतीर्थ, कनिष्ठाके मूलभागमें प्राजापत्यतीर्थ कहलाता है। अँगुलियोंके अग्रभागमें दैवतीर्थ और वही आर्षतीर्थ भी कहा जाता है। अथवा (अँगुलियोंके) मूल भागको दैव या आर्षतीर्थ, मध्यभागको आग्नेयतीर्थ कहा गया है। इसी (आग्नेयतीर्थ)-को सौमिकतीर्थ कहा गया है। इसे जानकर मोह नहीं प्राप्त होता अर्थात् यथाविधि इसके अनुसार अनुष्ठान करनेपर अन्तःकरण शुद्ध होनेसे अज्ञान नष्ट हो जाता है। द्विजो! द्विजको चाहिये कि वह ब्राह्मतीर्थसे ही नित्य आचमन करे अथवा कायतीर्थ (प्राजापत्यतीर्थ) या दैवतीर्थसे करे, पितृतीर्थसे कभी भी आचमन न करे। ब्राह्मण संयत होकर पहले तीन बार जलका आचमन करे, अनन्तर मुड़े हुए अँगूठेके मूलसे मुखका स्पर्श करे यही सम्मार्जन है॥ १६—२०॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम्॥ २१॥

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत्।
सर्वासामथ योगेन हृदयं तु तलेन वा।
संस्पृशेद् वा शिरस्तद्वदङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम्॥ २२॥

तदनन्तर अँगूठे और अनामिकासे दोनों नेत्रोंका स्पर्श करे और तर्जनी तथा अँगूठेके योगसे दोनों नासापुटों (नाक)-का स्पर्श करे। कनिष्ठा और अँगूठेके योगसे दोनों कानोंका स्पर्श करे। तदनन्तर मिली हुई सभी अँगुलियोंसे अथवा हथेलीसे हृदयका स्पर्श करे। तदुपरान्त सिरका भी वैसे ही स्पर्श करे अथवा दोनों अँगूठोंसे स्पर्श करे॥ २१-२२॥

त्रिः प्राश्नीयाद् यदम्भस्तु सुप्रीतास्तेन देवताः।
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम॥ २३॥

गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात्।
संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ॥ २४॥
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये।
कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत् प्रीयेते चानिलानलौ॥ २५॥

संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः।
मूर्ध्नि संस्पर्शनादेकः प्रीतः स पुरुषो भवेत्॥ २६॥
नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं नयन्ति याः।
दन्तवद् दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शेऽशुचिर्भवेत्॥ २७॥

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्।
भूमिगैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥ २८॥

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फलमूले चेक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः॥ २९॥

प्रचरंश्चान्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नरः।
भूमौ निक्षिप्य तद् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत्॥ ३०॥
तैजसं वै समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः।
भूमौ निक्षिप्य तद् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत्॥ ३१॥

यद्यमत्रं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः।
अनिधायैव तद् द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात्।
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात् तत्संस्पृष्ट्वाचमेदिह॥ ३२॥

आचमनमें तीन बार जो जल पिया जाता है, उससे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ये तीन देवता प्रसन्न होते हैं—ऐसा हमने सुना है। मार्जन करनेसे गङ्गा और यमुना नदियाँ प्रसन्न होती हैं। नेत्रोंके स्पर्शसे सूर्य तथा चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं॥ २३-२४॥

दोनों नासापुटोंका स्पर्श करनेसे नासत्य और दस्र (दोनों अश्विनीकुमार) प्रसन्न होते हैं, इसी प्रकार दोनों कानोंका स्पर्श करनेसे अग्नि तथा वायुदेवता प्रसन्न होते हैं। हृदयके स्पर्श होनेपर सभी देवता प्रसन्न होते हैं। सिरका स्पर्श करनेसे वे अद्वितीय पुरुष विष्णु प्रसन्न होते हैं॥ २५-२६॥

(आचमन आदिके समय) अङ्गपर गिरे हुए जलकणोंसे शरीर उच्छिष्ट नहीं होता। दाँतोंके भीतर स्थित पदार्थ दाँतोंके समान ही होता है, परंतु जिह्वाके स्पर्श होनेपर व्यक्ति अपवित्र हो जाता है। आचमन करनेके समय या दूसरोंको आचमन कराते समय पैरोंपर गिरे हुए जलको भूमिपर गिरे हुएके समान समझना चाहिये। उससे मनुष्य अपवित्र नहीं होता। मनुने मधुपर्क (यथाविधि मिश्रित दधि, मधु, घी), सोम, ताम्बूल-भक्षण, फल, मूल तथा ईखका दण्ड ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं कहा है, इन्हें कोई भी दे, ग्रहण किया जा सकता है। हम चल रहे हैं तथा हमारे हाथमें ऐसी वस्तु है जो उच्छिष्टस्पर्शसे दूषित हो सकती है तो हमें अन्न, जल ग्रहण करते समय उस वस्तुको भूमिपर यथास्थान रख देना चाहिये तथा अन्न, जल ग्रहण करनेके अनन्तर आचमन करनेके बाद भूमिपर रखी हुई वस्तुका प्रोक्षण करना चाहिये, अनन्तर उस वस्तुको लेकर चलना चाहिये॥ २७—३०॥

तैजस[१] पदार्थ (घी) लिये हुए यदि ब्राह्मण (द्विज) (खाने-पीनेके कारण) उच्छिष्ट हो जाय तो उस तैजस द्रव्य (घी)-को भूमिपर रखकर आचमन करे, पुनः उस द्रव्य (घी)-का प्रोक्षण करे। यदि कोई (द्रव्य-सहित) अमत्र (पात्र) लिये हुए मनुष्य उच्छिष्ट हो जाय तो उस द्रव्य (पात्र)-को (भूमिपर) रखे बिना आचमन कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है (पात्र अपवित्र नहीं होता)। परंतु वस्त्र आदिके सम्बन्धमें विकल्प है॥ ३१-३२॥

१-'तेजो वै घृतम्' के अनुसार घीको तैजस (तेजस्वी बनानेवाला) माना जाता है।

अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि।
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति॥ ३३॥

उसका स्पर्श होनेपर आचमन करना चाहिये। उच्छिष्ट दशामें वस्त्रका स्पर्श होनेपर आचमन एवं वस्त्रका प्रोक्षण करना चाहिये। जंगलमें, जलहीन स्थानमें, रात्रिमें और चोर तथा व्याघ्र आदिसे आक्रान्त मार्गमें मल-मूत्र करनेपर भी व्यक्ति आचमन, प्रोक्षण आदि शुद्धिके अभावमें भी दूषित नहीं होता, साथ ही उसके हाथमें रखा हुआ द्रव्य भी अशुचि नहीं होता (पर शुद्धिका अवसर मिल जानेपर यथाशास्त्र शुद्धि आवश्यक है।)॥ ३३॥

निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः।
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः॥ ३४॥

अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्ठतृणेन वा।
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ ३५॥

दाहिने कानपर यज्ञोपवीत चढ़ाकर दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके तथा रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। पृथ्वीको लकड़ी, पत्तों, ढेलों अथवा घाससे ढककर तथा शिरको वस्त्रसे आवृतकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ३४-३५॥

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भःपथि भस्मसु।
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत्॥ ३६॥

न गोमये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले।
न तिष्ठन् न निर्वासा न च पर्वतमस्तके॥ ३७॥

न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन् वा समाचरेत्॥ ३८॥

तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च।
न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे॥ ३९॥

नोद्यानोदसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ।
न सोपानत्पादुको वा छत्री वा नान्तरिक्षके॥ ४०॥

न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम्।
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन॥ ४१॥

छायामें, कूपमें या उसके अति समीप, नदीमें, गौशाला, चैत्य (गाँवके सीमाका वृक्षसमूह, ग्राम्य देवताका स्थान—टीला, डीह आदिपर), जल, मार्ग, भस्म, अग्नि तथा श्मशानमें मल-मूत्र नहीं करना चाहिये। गोबरमें, जुती हुई भूमिमें, महान् वृक्षके नीचे, हरी घाससे युक्त मैदानमें और पर्वतकी चोटीपर तथा खड़े होकर एवं नग्न होकर मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। न जीर्ण देवमन्दिरमें, न दीमककी बाँबीमें, न जीवोंसे युक्त गड्ढेमें और न चलते हुए मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। धान इत्यादिकी भूसी, जलते हुए अंगार, कपाल[1], राजमार्ग, खेत, गड्ढे, तीर्थ, चौराहे, उद्यान, जलके समीप, ऊसर भूमि और अत्यधिक अपवित्र स्थानमें मल-मूत्रका त्याग न करे। जूता या खड़ाऊँ पहने, छाता लिये, अन्तरिक्षमें (भूमि-आकाशके मध्यमें), स्त्री, गुरु, ब्राह्मण, गौके सामने, देवविग्रह तथा देवमन्दिर और जलके समीपमें तो कभी भी मल-मूत्रका विसर्जन न करे॥ ३६—४१॥

न ज्योतींषि निरीक्षन् वा न संध्याभिमुखोऽपि वा।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च॥ ४२॥

नक्षत्रोंको देखते हुए, संध्याकालका समय आनेपर, सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ४२॥

१-कपालके ये अर्थ हैं—सिरकी अस्थि, घटके दोनों अर्धभाग, मिट्टीका भिक्षापात्र, यज्ञीय पुरोडाशको पकानेके लिये मिट्टीका बना हुआ पात्रविशेष।

आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणम्।
कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः॥ ४३॥

आलस्य छोड़कर (नदी या तालाबके) किनारेसे मिट्टी लेकर उसके द्वारा तथा शुद्ध कूप आदिसे निकाले हुए जलके[1] द्वारा (मल-मूत्र) लेप और गन्ध जबतक दूर न हो, तबतक शुद्धि करनी चाहिये॥ ४३॥

नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलान्न च कर्दमात्।
न मार्गान्नोषराद् देशाच्छौचशिष्टा परस्य च॥ ४४॥

न देवायतनात् कूपाद् ग्रामान्न च जलात् तथा।
उपस्पृशेत् ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः॥ ४५॥

विप्र (द्विज)-को चाहिये कि वह शौचके लिये धूलकी ढेर एवं कीचड़युक्त स्थान, रास्ते, ऊसर भूमि, दूसरेके शौच करनेसे बची हुई, मन्दिर, कुएँ, ग्राम[2] और जलके अंदरसे मिट्टी ग्रहण न करे। शौचके अनन्तर पहले बताये गये विधानके अनुसार नित्य आचमन करे॥ ४४-४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मचारीके आचारका वर्णन, गुरुसे अध्ययन आदिकी विधि, ब्रह्मचारीका धर्म, गुरु तथा गुरुपत्नीके साथ व्यवहारका वर्णन, वेदाध्ययन और गायत्रीकी महिमा, अनध्यायोंका वर्णन, ब्रह्मचारीधर्मका उपसंहार

व्यास उवाच

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद् वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥ १॥

नित्यमुद्यतपाणिः स्यात् साध्वाचारः सुसंयतः।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः॥ २॥

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः॥ ३॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसंनिधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्॥ ४॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार दण्ड आदिसे युक्त और शौचाचारसे सम्पन्न (ब्रह्मचारी)-को गुरुजीके द्वारा बुलाये जानेपर उनके अभिमुख होकर अध्ययन करना चाहिये। सदाचारसम्पन्न और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी नित्य उत्तरीयसे दाहिना हाथ बाहर निकाले हुए गुरुके द्वारा बैठनेके लिये कहे जानेपर उनके सम्मुख[3] बैठे। सोते हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए, खड़े होकर तथा गुरुकी ओर पीठ करके उनकी किसी आज्ञाका ग्रहण या उनसे बातचीत नहीं करनी चाहिये। गुरुके पासमें शिष्यकी शय्या या आसन सदा गुरुकी शय्या एवं आसनकी अपेक्षा नीचा (कम ऊँचा) होना चाहिये। गुरुके देखते रहनेपर मनमाने ढंगसे नहीं बैठना चाहिये॥ १—४॥

१-प्रवाहशून्य कहीं गड्ढे आदिमें एकत्र जल अपवित्र होता है। अपवित्र हाथ आदि साक्षात् नदी, तालाब आदिमें डालकर नहीं धोना चाहिये। किसी पात्रसे जल निकालकर ही धोना चाहिये।

२-ग्रामके अंदरकी भूमि-लेप, चलने, थूकने आदिसे अपवित्र होती है। ग्रामके अंदरकी मिट्टी लेनेसे अनपेक्षित गड्ढा आदि होता है जो लोगोंके त्रासका कारण बनता है।

३-यह श्लोक मनुस्मृति (२। १९३)-में उपलब्ध है। वहाँ 'नित्यमुद्धतपाणिः' पाठ है। यही उपयुक्त है। इसका तात्पर्य यही है कि उत्तरीय (ऊपरसे चद्दर) धारण कर ही अध्ययन करना चाहिये तथा दाहिने हाथको चद्दरसे बाहर रखना चाहिये, क्योंकि अध्ययनमें दाहिने हाथका उपयोग होता है।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम्॥ ५ ॥

इनका (गुरुका) केवल नाम (सम्मानबोधक उपाधि आदिसे शून्य नाम) परोक्षमें भी नहीं लेना चाहिये। इनके चलनेकी क्रिया, बात करनेके ढंग और अन्य क्रियाओंकी नकल उपहासकी दृष्टिसे नहीं करनी चाहिये॥ ५॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा चापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥ ६ ॥

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः।
न चैवास्योत्तरं ब्रूयात् स्थितो नासीत संनिधौ॥ ७ ॥

गुरुका जहाँ परीवाद (विद्यमान दोषका कथन) हो रहा हो अथवा जहाँ उनकी निन्दा हो रही हो, वहाँ अपने दोनों कानोंको बंद कर ले अथवा वहाँसे अन्यत्र चला जाय। दूर विद्यमान शिष्य (किसी अन्यको गुरुकी पूजाके लिये नियुक्त कर उसके द्वारा) गुरुकी पूजा न करवाये, (यदि स्वयं गुरुके समीप जाकर पूजा करनेमें समर्थ हो। स्वयं गुरुके समीप जानेमें असमर्थ होनेपर तो अन्यके द्वारा भी गुरुकी पूजा करवायी जा सकती है।) क्रोधके आवेशमें रहनेपर शिष्यको स्वयं भी गुरुकी पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि गुरु स्त्रीके समीप हों तो उस समय उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये। गुरुकी बातका उत्तर नहीं देना चाहिये और गुरुके निकट रहनेपर उनकी आज्ञाके बिना बैठना भी नहीं चाहिये॥ ६-७॥

उदकुम्भं कुशान् पुष्पं समिधोऽस्याहरेत् सदा।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वै समाचरेत्॥ ८ ॥

नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि।
आक्रमेदासनं चास्य छायादीन् वा कदाचन॥ ९ ॥

साधयेद् दन्तकाष्ठादीन् लब्धं चास्मै निवेदयेत्।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत् प्रियहिते रतः॥ १०॥

(शिष्यको चाहिये कि) गुरुके लिये सर्वदा जलसे पूर्ण घड़ा, कुश, पुष्प तथा समिधा लाये और नित्य उनके अङ्गोंका मार्जन (गुरुको स्नान कराना) तथा (गन्धादिद्वारा) लेपन (शरीरका सुगन्धीकरण) करे। उनके निर्माल्य (गुरुकी सेवामें समर्पित माला आदि), शय्या, खड़ाऊँ, जूता, आसन तथा छाया आदिका कभी भी लंघन नहीं करना चाहिये। गुरुके लिये दन्तकाष्ठ (दाँतोंको स्वच्छ करनेके लिये दतुअन) आदि लाये और (भिक्षादिमें) प्राप्त पदार्थोंको गुरुको निवेदित करे। गुरुसे बिना पूछे कहीं जाये नहीं तथा सदा गुरुके प्रिय तथा हित करनेमें लगा रहे॥ ८—१०॥

न पादौ सारयेदस्य संनिधाने कदाचन।
जृम्भितं हसितं चैव कण्ठप्रावरणं तथा।
वर्जयेत् संनिधौ नित्यमवस्फोटनमेव च॥ ११॥

यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः।
आसीताधो गुरोः कूर्चे फलके वा समाहितः॥ १२॥

गुरुके समीप कभी भी पैर फैलाकर बैठना नहीं चाहिये और उनके समीप जँभाई, हँसी, कण्ठाच्छादन (सुन्दर माला, हार आदि गलेमें पहनना) तथा ताली इत्यादिकी ध्वनि (ताल ठोंकना आदि निरर्थक एवं उद्दण्डता-सूचक हलचल) न करे। अध्ययन तबतक करते रहना चाहिये जबतक गुरु बेमन न हो जायँ (अध्यापनके प्रति सोत्साह रहें)। सावधानीपूर्वक गुरुके सम्मुख नीचे कुशासन या काष्ठासन इत्यादिपर बैठना चाहिये॥ ११-१२॥

आसने शयने याने नैव तिष्ठेत् कदाचन।
धावन्तमनुधावेत गच्छन्तमनुगच्छति॥ १३॥

गुरुके आसन, शय्या तथा यानपर कभी भी नहीं बैठना चाहिये। गुरुके दौड़नेपर उनके पीछे दौड़े और चलनेपर उनके पीछे चलना चाहिये॥ १३॥

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च॥ १४॥
जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यात्माक्रोधनः शुचिः।
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम्॥ १५॥

बैल, ऊँट एवं घोड़ेकी सवारी, प्रासाद, प्रस्तर, चटाई, शिलाखण्ड तथा नौकामें गुरुके साथ समान आसनपर बैठा जा सकता है (ऐसी जगहोंपर भी नीचे ही बैठा जाय ऐसा नियम नहीं है)। ब्रह्मचारी सदा जितेन्द्रिय रहे, अपने मनको वशमें रखे, क्रोध न करे, पवित्र रहे, सदा मधुर और हित करनेवाली वाणीका प्रयोग करे॥ १४-१५॥

गन्धमाल्यं रसं कल्यां शुक्तं प्राणिविहिंसनम्।
अभ्यङ्गं चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च॥ १६॥
कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम्।
आतर्जनं परीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा।
परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ १७॥

ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक सुगन्धित पदार्थों, माला, रस (तीखे रसवाले गुड़ आदि), मद्य, शुक्त[1] अर्थात् गुड़ आदिके मिश्रणसे बने मादक तीक्ष्ण पदार्थ, प्राणियोंकी हिंसा, तैल आदिका मर्दन, अञ्जन, जूता, छाताका धारण करना, काम, लोभ, भय, निद्रा, गायन, वादन तथा नृत्य, डाँट-फटकार लगाना, निन्दा, स्त्रीदर्शन तथा उसका स्पर्श, दूसरोंको मारना और चुगुलखोरी आदिका परित्याग करे॥ १६-१७॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान्।
आहरेद् यावदर्थानि भैक्ष्यं चाहरहश्चरेत्॥ १८॥
कृतं च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितं च यत्।
अनृत्यदर्शी सततं भवेद् गीतादिनिःस्पृहः॥ १९॥
नादित्यं वै समीक्षेत न चरेद् दन्तधावनम्।
एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम्॥ २०॥

जलका घड़ा, पुष्प, गोबर, मिट्टी और कुश—इन्हें प्रयोजन भर ही लाना चाहिये। प्रतिदिन भिक्षा माँगनी चाहिये। कृत्रिम लवण और जो भी बासी वस्तु हो, उन सबका त्याग करना चाहिये। (ब्रह्मचारीको) नृत्य नहीं देखना चाहिये और गायन आदिसे निःस्पृह रहना चाहिये। सूर्यकी ओर (उदय-अस्तके समय तथा अपवित्र दशामें) नहीं देखना चाहिये एवं दन्तधावन नहीं करना चाहिये। एकान्तमें अपवित्र स्त्रियों, शूद्रों तथा अन्त्यजोंसे सम्भाषण नहीं करना चाहिये॥ १८—२०॥

गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः।
मलापकर्षणस्नानं नाचरेद्धि कदाचन॥ २१॥
न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन।
मोहाद् वा यदि वा लोभात् त्यक्तेन पतितो भवेत्॥ २२॥

गुरुसे बचा हुआ भोजन लोभवश नहीं करना चाहिये। कभी भी शरीरके मैलको दूर करते हुए रागवश स्नान नहीं करना चाहिये। (ब्रह्मचर्यव्रतका अङ्गभूत स्नान ही यथाविधि करना चाहिये)। विप्रको (द्विजको) गुरुका कभी मनसे भी त्याग करनेका विचार नहीं करना चाहिये। मोह या लोभसे इनका (गुरुका) त्याग करनेसे वह (द्विज) पतित हो जाता है॥ २१-२२॥

१-कुल्लूकभट्टके अनुसार शुक्त वह वस्तु है जो स्वभावतः मधुर हो, पर कालवश जलमें रखने आदिसे खट्टी हो गयी हो (मनु० २। १७७ की व्याख्या)।

लौकिकं वैदिकं चापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं न तं द्रुह्येत् कदाचन॥ २३॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत्॥ २४॥

जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक किसी भी प्रकारका ज्ञान प्राप्त करे, उससे कभी भी द्रोह न करे। महापातकयुक्त कार्य और अकार्यको न जाननेवाले तथा कुमार्गगामी गुरुका त्याग[1] करना चाहिये—ऐसा मनुका कहना है॥ २३-२४॥

गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवद् भक्तिमाचरेत्।
न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत्॥ २५॥

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु।
प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्स्वपि॥ २६॥

श्रेयस्सु गुरुवद् वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्।
गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु॥ २७॥

गुरुके गुरुका यदि संनिधान प्राप्त हो तो उनके प्रति गुरुके समान ही अभिवादन आदि व्यवहार करना चाहिये और (गुरुगृहमें रहते हुए शिष्यको) गुरुकी अनुमतिके बिना अपने (माता-पितादि) गुरुजनोंका अभिवादन नहीं करना चाहिये। विद्या देनेवाले गुरुओं (उपाध्यायों), अपने जन्मके कारण-रूप (माता-पितादि), अधर्मसे रोकनेवालों और हितकारी धर्मतत्त्वका उपदेश देनेवालोंके प्रति नित्य इसी प्रकारका गुरुके समान ही आचरण करना चाहिये। विद्या एवं तपमें अपनी अपेक्षा अधिक समृद्ध लोगोंके प्रति, अपनी अवस्थाकी दृष्टिसे बड़े, समानजातीय गुरुपत्नी-पुत्रोंके प्रति और गुरुकी ज्ञाति (बन्धु-बान्धव) पितृव्य (चाचा) आदिके प्रति सदा गुरुके समान ही आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये॥ २५—२७॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि।
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति॥ २८॥

उत्सादनं वै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने।
न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च॥ २९॥

गुरुवत् परिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः।
असवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥ ३०॥

अपनेसे छोटा गुरुका पुत्र अथवा समान अवस्थावाला तथा यज्ञकर्ममें (अपना) शिष्य होनेपर भी यदि वह अध्यापन करता हो तो गुरुके समान ही सम्मान प्राप्त करने योग्य है। किंतु गुरु-पुत्रके शरीरकी मालिश, उसे स्नान कराना, उसका उच्छिष्ट भोजन तथा उसके पादका प्रक्षालन नहीं करना चाहिये। गुरुकी सवर्ण[2] स्त्रियाँ गुरुके समान ही पूज्य हैं, पर (गुरुकी) असवर्ण पत्नियोंकी केवल प्रत्युत्थान (उनके आनेपर खड़े हो जाना) एवं अभिवादनके द्वारा ही पूजा करनी चाहिये॥ २८—३०॥

अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम्॥ ३१॥

गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः।
कुर्वीत वन्दनं भूम्यामसावहमिति ब्रुवन्॥ ३२॥

गुरुपत्नीके शरीरमें उबटन लगाना, उन्हें स्नान कराना, उनके शरीरकी मालिश और केशोंके सँवारनेका कार्य नहीं करना चाहिये। यदि गुरुपत्नी युवावस्थावाली हों तो उनके चरणोंको छूकर प्रणाम नहीं करना चाहिये। 'मैं अमुक हूँ' ऐसा कहते हुए उनके सम्मुख पृथ्वीपर प्रणाम करना चाहिये॥ ३१—३२॥

१-यहाँ त्यागका तात्पर्य इतना ही है कि ऐसे गुरुके संसर्गसे स्वयंमें दोष आ सकते हैं, अतः अपनी रक्षाकी दृष्टिसे ऐसे गुरुके संसर्गमें नहीं रहना चाहिये तथा ऐसे गुरुके प्रति उदासीनभाव अपना लेना चाहिये, द्वेषभाव कथमपि नहीं होना चाहिये।

२-कलियुगसे भिन्न युगोंमें असवर्ण विवाह किया जा सकता है। इससे न पुण्य होता है न पाप। यह असवर्ण विवाह भी अपनेसे ऊँची जातिमें नहीं होता है।

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम्।
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन्॥ ३३॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृष्वसा।
सम्पूज्या गुरुपत्नीव समास्ता गुरुभार्यया॥ ३४॥

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः॥ ३५॥

पर यदि शिष्य प्रवाससे आये तो शिष्टोंके आचारका स्मरण करते हुए युवती गुरुपत्नीका पादग्रहणपूर्वक ही अभिवादन करे। मौसी, मामी, सास और बुआ (फुआ)—ये गुरुकी पत्नीके समान पूज्य हैं। ये सभी गुरुपत्नीके समान ही हैं। भाईकी सवर्ण स्त्री (भाभी)-को प्रतिदिन अवश्य प्रणाम करना चाहिये। ज्ञाति (पितापक्षके चाचा आदि), सम्बन्धी (मातापक्षके नाना आदि)-की पत्नियोंका तो प्रवाससे आनेपर अवश्य अभिवादन करना चाहिये॥ ३३—३५॥

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि।
मातृवद् वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥ ३६॥

एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम्।
वेदमध्यापयेद् धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः॥ ३७॥

माता-पिताकी बहिन तथा अपनी बड़ी बहिनके प्रति भी माताके समान व्यवहार करना चाहिये, किंतु माता इनसे श्रेष्ठ होती है। इस प्रकारके सदाचारसे सम्पन्न, आत्मवान् तथा दम्भरहित (ब्रह्मचारी)-को ही नित्य वेद, धर्मशास्त्र, पुराण और वेदाङ्गोंको पढ़ाना चाहिये॥ ३६-३७॥

संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन्।
हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः॥ ३८॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः।
शक्तोऽन्नदोऽर्थी स्वःसाधुरध्याप्या दश धर्मतः॥ ३९॥

कृतज्ञश्च तथाद्रोही मेधावी शुभकृन्नरः।
आप्तः प्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजातयः।
एतेषु ब्राह्मणो दानमन्यत्र तु यथोदितान्॥ ४०॥

एक वर्षसे यथाविधि गुरुकी सेवा करते हुए उनके समीप निवास करनेवाले शिष्यको यदि गुरु ज्ञानका उपदेश देना प्रारम्भ नहीं करते हैं तो शिष्यके दुष्कृत उनमें आ जाते हैं। आचार्यका पुत्र, सेवा-शुश्रूषा करनेवाला, ज्ञान प्रदान करनेवाला (एक विद्या देकर दूसरी विद्या लेनेवाला), धार्मिक, पवित्र, शक्तिसम्पन्न (अध्ययनके सामर्थ्यसे युक्त), अन्नदाता (गुरुकी अपेक्षाके अनुसार पर्याप्त अन्न देनेवाला), अर्थी (गुरुकी सेवामें पर्याप्त धन देनेवाला), साधु (शीलवान्) तथा आत्मीय—ये दस धर्मकी मर्यादासे अध्यापन कराने योग्य हैं। कृतज्ञ, अद्रोही, मेधासम्पन्न, कल्याण करनेवाला, विश्वस्त तथा प्रिय व्यक्ति—ये छः प्रकारके द्विजाति भी विधिपूर्वक पढ़ाने योग्य हैं। इन्हें ब्रह्मज्ञान, वेदज्ञान प्रदान करना चाहिये। इनसे अतिरिक्त जो जिज्ञासु हों उन्हें अन्य यथापेक्ष ज्ञान देना चाहिये॥ ३८—४०॥

आचम्य संयतो नित्यमधीयीत उदङ्मुखः।
उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद् विरामोऽस्त्विति चारमेत्॥ ४१॥

आचमन करके संयत होकर उत्तरकी ओर मुख करके गुरुके चरणोंमें प्रणामकर उनके मुखकी ओर देखते हुए नित्य अध्ययन करना चाहिये। (गुरुके द्वारा) 'पढ़ो' कहनेपर अध्ययन प्रारम्भ करे और 'विराम हो' ऐसा कहनेपर अध्ययन बंद कर दे॥ ४१॥

प्राक्कूलान् पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति॥ ४२॥

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्ते च विधिवद् द्विजः।
कुर्यादध्ययनं नित्यं स ब्रह्माञ्जलिपूर्वतः॥ ४३॥

सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अधीयीताप्ययं नित्यं ब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा॥ ४४॥

पूर्व दिशाकी ओर अग्रभागवाले कुशोंके आसनपर बैठकर, दोनों हाथोंमें विद्यमान पवित्र कुशोंसे पावित (पवित्रीकृत) होकर तथा तीन प्राणायामोंद्वारा पवित्र होनेके अनन्तर ही (द्विज) अध्ययनके लिये ओंकारके उच्चारणका अधिकारी होता है। द्विजन्मा (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-को (स्वाध्यायके) आरम्भ और अन्तमें विधिपूर्वक प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। नित्य अञ्जलिबद्ध होकर ही अध्ययन (स्वाध्याय) करना चाहिये। सभी प्राणियोंके लिये वेद सनातन नेत्र-रूप हैं। (ब्राह्मणको) नित्य इनका अध्ययन करना चाहिये अन्यथा वह ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है॥ ४२—४४॥

योऽधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या स देवताः।
प्रीणाति तर्पयन्त्येनं कामैस्तृप्ताः सदैव हि॥ ४५॥

यजूंष्यधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम्॥ ४६॥

अथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वा प्रीणाति देवताः।
धर्माङ्गानि पुराणानि मांसैस्तर्पयते सुरान्॥ ४७॥

जो द्विज नित्य ऋग्वेदका अध्ययन करता है और देवताओंको क्षीरकी आहुतियोंसे प्रसन्न करता है, देवता उसकी कामनाएँ पूर्णकर सदैव तृप्त करते हैं। (ऐसे ही) जो द्विज नियमपूर्वक याजुष मन्त्रोंका अध्ययन करता है और दधि (-की आहुतियों)-से देवताओंको प्रसन्न करता है, उसकी भी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इसी प्रकार जो द्विज साममन्त्रोंका अध्ययन करता और प्रतिदिन घृतकी आहुतियोंसे देवोंको प्रसन्न करता है तो उसकी भी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। अथर्ववेदका भी अध्ययन करनेवाला (द्विज) मधु (-की आहुतियों)-द्वारा देवताओंको प्रसन्नकर अभिलषित प्राप्त करता है। धर्मशास्त्र, वेदाङ्गों तथा पुराणोंका अध्ययन करनेवाले यथोपलब्ध पदार्थोंसे देवताओंको संतृप्तकर इष्ट प्राप्त करते हैं॥ ४५—४७॥

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमाश्रितः।
गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥ ४८॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्तितः॥ ४९॥

गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयाऽतोलयत् प्रभुः।
एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीं च तथैकतः॥ ५०॥

नित्यकर्मकी विधिका आश्रय लेकर वनमें जाकर सावधानीपूर्वक जलके समीप नियमितरूपसे गायत्री (-मन्त्र)-का जप भी करे। गायत्रीदेवी (मन्त्र)-का हजार बार जप करना श्रेष्ठ, सौ बारका जप मध्यम तथा दस बार जप करना निम्न कोटिका है। गायत्रीका नित्य जप करना चाहिये। इसे जपयज्ञ कहा गया है। ईश्वरने गायत्री और वेदोंको तुलामें तौला। तुलामें एक ओर चारों वेदोंको और एक ओर गायत्रीको रखा (समग्र वेदोंका सार गायत्री-मन्त्र वेदोंके समान ही रहा)॥ ४८—५०॥

ओंकारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम्।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः॥ ५१॥

आदिमें ओंकार लगाकर तदनन्तर (**भूर्भुवः स्वः**) महाव्याहृतियोंके साथ गायत्री (-मन्त्र)-का श्रद्धापूर्वक एकाग्रमनसे जप करना चाहिये॥ ५१॥

पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवःस्वः सनातनाः।
महाव्याहृतयस्तिस्त्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः॥ ५२॥

प्रधानं पुरुषः कालो विष्णुर्ब्रह्मा महेश्वरः।
सत्त्वं रजस्तमस्तिस्त्रः क्रमाद् व्याहृतयः स्मृताः॥ ५३॥

ओंकारस्तत् परं ब्रह्म सावित्री स्यात् तदक्षरम्।
एष मन्त्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः॥ ५४॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम्।

विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम्॥ ५५॥

गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते॥ ५६॥

प्राचीन कल्पमें सभी प्रकारके अमङ्गलोंको दूर करनेवाली '**भूः**' '**भुवः**' तथा '**स्वः**' ये तीन सनातन महाव्याहृतियाँ समुद्भूत हुईं। ये तीनों व्याहृतियाँ क्रमशः प्रधान, पुरुष तथा काल और विष्णु, ब्रह्मा, महेश्वर एवं सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप कही गयी हैं। ओंकार परम ब्रह्मस्वरूप और सावित्री अविनश्वर परम तत्त्वरूप है। इस मन्त्रको महायोग और सारोंका भी सार-रूप कहा गया है। जो ब्रह्मचारी (गायत्री-मन्त्रके) अर्थको जानते हुए प्रत्येक दिन इन वेदमाता गायत्रीका अध्ययन करता है (जप करता है), उसे परमगति प्राप्त होती है। गायत्री वेदोंकी माता और लोकको पवित्र करनेवाली है। गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र जपने योग्य नहीं है। इसके ज्ञानसे मुक्ति मिल जाती है॥ ५२—५६॥

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम्॥ ५७॥

उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः॥ ५८॥

पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद् बहिरुत्सर्जनं द्विजः।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥ ५९॥

छन्दांस्यूर्ध्वमथोऽभ्यस्येच्छुक्लपक्षेषु वै द्विजः।
वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षे च मानवम्॥ ६०॥

श्रेष्ठ द्विजो! श्रावण, आषाढ़ अथवा भाद्रपद मासकी पौर्णमासीको (अपने-अपने गृह्यसूत्रानुसार) वेदोंका उपाकर्म (संस्कारपूर्वक वेदग्रहण) करना बतलाया गया है। ग्राम और नगरको छोड़कर ब्रह्मचारी ब्राह्मण (द्विजमात्र)-को एकाग्रचित्तसे पवित्र स्थानमें साढ़े पाँच महीनेतक (वेदोंका) अध्ययन करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि वह (पौष मासके) पुष्य नक्षत्रमें अथवा माघ मासके प्रथम दिन पूर्वाह्णमें (ग्रामके) बाहर वेदोंका उत्सर्जन (उत्सर्ग नामका संस्कारविशेष) करे। इसके बाद द्विजको शुक्लपक्षमें वेदोंका और कृष्णपक्षमें वेदाङ्गों, पुराण तथा मानवधर्मशास्त्र (मनुस्मृति आदि)-का अभ्यास करना चाहिये॥ ५७—६०॥

इमान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यभ्यस्यन्नपि यत्नतः॥ ६१॥

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च सम्प्लवे।
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः॥ ६२॥

अध्ययन करनेवालेको इन (अग्रनिर्दिष्ट) अनध्यायोंमें अध्ययनका सदा परित्याग करना चाहिये। इसी प्रकार अध्यापन और अभ्यास करते हुए भी प्रयत्नपूर्वक अनध्यायोंमें अध्ययनका त्याग करना चाहिये। प्रजापति (ब्रह्मा)-ने कहा है कि रात्रिमें कानोंसे सुने जाने योग्य वायुके बहते रहनेपर, दिनमें धूलके समूहको उड़ा लेनेमें समर्थ वायुके बहते रहनेपर, विद्युत्की चमक एवं (मेघ) गर्जनके साथ वर्षा होनेपर और बड़ी-बड़ी उल्काओंके इधर-उधर गिरते रहनेपर आकालिक (जबसे ये निमित्त आरम्भ हों तबसे अग्रिम दिन सूर्योदयपर्यन्त) अनध्याय होता है॥ ६१-६२॥

एतानभ्युदितान् विद्याद् यदा प्रादुष्कृताग्निषु।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने॥ ६३॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने।
एतानाकालिकान् विद्यादनध्यायानृतावपि॥ ६४॥

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने।
सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ यथा दिवा॥ ६५॥
नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च नित्यशः॥ ६६॥

अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च संनिधौ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च॥ ६७॥

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रे च विसर्जने।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥ ६८॥

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोदिष्टस्य केतनम्।
त्र्यहं न कीर्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके॥ ६९॥

यावदेकोऽनुदिष्टस्य स्नेहो गन्धश्च तिष्ठति।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत्॥ ७०॥
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च॥ ७१॥

नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरुभयोरपि।
अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च॥ ७२॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्।
अष्टकासु त्वहोरात्रं ऋत्वन्त्यासु च रात्रिषु॥ ७३॥

अग्निहोत्रके लिये प्रज्वलित अग्निकी अवस्था (प्रातः-सायं-संध्याकाल)-में जब ये सभी (उत्पात) एक साथ प्रकट हों और बिना ऋतुके मेघ दिखलायी पड़ें तो अनध्याय समझना चाहिये। वज्रपात, भूकम्प, सूर्य-चन्द्रका ग्रहण एवं अन्य ताराओंके उपसर्ग (टूटना आदि) होनेपर, ऋतु होनेपर भी आकालिक (इन निमित्तोंके प्रारम्भसे अग्रिम दिन सूर्योदयपर्यन्त) अनध्याय समझना चाहिये। अग्निके प्रकट होने, बिजलीके चमकने तथा मेघके गर्जन होनेपर प्रकाश रहनेपर भी अनध्याय होता है। दिनके समान ही रात्रिमें भी अनध्याय होता है॥ ६३—६५॥

धर्ममें निपुणता प्राप्त करनेकी इच्छावालोंके लिये नगर, ग्राम एवं दुर्गन्धयुक्त स्थानमें नित्य ही अनध्याय होता है। ग्राममें शव पड़े रहनेपर, अधार्मिक जनके समीप रहनेपर, रुदन होने और मनुष्योंका समूह (कार्यान्तरके लिये) एकत्र होनेपर अनध्याय होता है। जलके मध्य, आधी रातमें, मल-मूत्रके विसर्जनके समय, उच्छिष्ट अवस्थामें और श्राद्धमें भोजन करनेपर (श्राद्धमें निमन्त्रणसे लेकर श्राद्ध-भोजनके दिन-राततक) मनसे भी (वेदादिका) चिन्तन नहीं करना चाहिये। विद्वान् द्विजको एकोदिष्टका निमन्त्रण स्वीकार कर, राजाके पुत्रजन्म आदिके सूतक तथा राहुके (ग्रहणजन्य) सूतकमें तीन दिनतक वेदका अध्ययन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणके शरीरमें जबतक एकोदिष्ट-श्राद्ध-सम्बन्धी[1] भोजनके समयका (घृत आदि) स्निग्ध द्रव्य एवं (सुगन्धित द्रव्यका) लेप रहे, तबतक विद्वान् ब्राह्मणको वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये॥ ६६—७०॥

सोते हुए, उकड़ूँ बैठे हुए (आसनारूढपाद), दोनों जानुओंको वस्त्रादिसे बाँधे हुए, मांस और सूतकादिसे सम्बन्धित अन्न खाकर, कुहरा पड़ते रहनेपर, बाणका शब्द होते समय, दोनों संध्याकालमें, अमावास्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी तथा अष्टमी तिथियोंमें (अनध्याय होता है, अतः) अध्ययन नहीं करना चाहिये। उपाकर्म और उत्सर्ग नामक कर्म करनेके अनन्तर तीन राततक अनध्याय होता है। अष्टकाओंमें[2] एक दिन-रात और ऋतुकी अन्तिम रात्रियोंमें अनध्याय होता है॥ ७१—७३॥

१-मूलमें 'एकोऽनुदिष्ट' पाठ है। कुल्लूकभट्ट (मनुस्मृति व्याख्याकार)-के अनुसार 'अनुदिष्ट' का उच्छिष्ट अर्थ है।
२-अगहन, पौष और माघमासोंमें कृष्णपक्षकी सप्तमी, अष्टमी और नवमी—इन तीन तिथियोंके समुदायको 'अष्टका' कहा जाता है

मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च।
तिस्रोऽष्टकाः समाख्याता कृष्णपक्षे तु सूरिभिः॥ ७४॥

श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च।
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः॥ ७५॥

विद्वानोंने मार्गशीर्ष (अगहन), पौष और माघमासके कृष्णपक्षमें तीन अष्टकाओंका वर्णन किया है। लिसोढ़ा, सेमल, महुआ, कचनार और कैथ वृक्षकी छायामें कभी भी (वेदका) अध्ययन नहीं करना चाहिये॥ ७४-७५॥

समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि।
आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्॥ ७६॥

छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः।
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान् विवर्जयेत्॥ ७७॥

अपने समान विद्या पढ़नेवाले, अपने ही समान सहपाठी ब्रह्मचारीकी मृत्यु होनेपर और आचार्यके अपने यहाँ आनेपर तीन रातका अनध्याय कहा गया है। जो अनध्याय बतलाये गये हैं, ये ब्राह्मणों (द्विजों)-के छिद्र-रूप हैं। इन अवसरोंपर राक्षस प्रहार करते हैं, इसलिये इनका परित्याग करना चाहिये॥ ७६-७७॥

नैत्यिके नास्त्यनध्यायः संध्योपासन एव च।
उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि॥ ७८॥

एकामृचमथैकं वा यजुः सामाथवा पुनः।
अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति॥ ७९॥

अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः।
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत्॥ ८०॥

एष धर्मः समासेन कीर्तितो ब्रह्मचारिणाम्।
ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम्॥ ८१॥

नित्य-कर्म, संध्योपासन, उपाकर्म, आरब्धकर्मके अन्तमें और होममन्त्रोंमें अनध्याय नहीं होता (अर्थात् अनध्यायकालमें भी इनसे सम्बद्ध मन्त्र बोले जाते हैं।) अष्टकाओं और प्रबल वायुके चलनेपर भी ऋग्वेद, यजुर्वेद अथवा सामवेदके एक मन्त्रका पाठ (अवश्य) करना चाहिये। वेदाङ्गों और इतिहास-पुराणके अध्ययन और अन्य धर्मशास्त्रोंके अध्ययनमें अनध्याय नहीं होता, किंतु पर्वोंमें इनके अध्ययनका त्याग करना चाहिये। संक्षेपमें यह ब्रह्मचारियोंका धर्म बतलाया गया। पूर्वकालमें ब्रह्माने इसे शुद्धात्मा ऋषियोंको बतलाया था॥ ७८—८१॥

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः।
स सम्मूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः॥ ८२॥

न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै भवेद् द्विजः।
पाठमात्रावसन्नस्तु पङ्के गौरिव सीदति॥ ८३॥

योऽधीत्य विधिवद् वेदं वेदार्थं न विचारयेत्।
स सान्वयः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते॥ ८४॥

जो द्विज वेदका अध्ययन न कर अन्यत्र (दूसरे शास्त्रोंको पढ़नेमें) प्रयत्न करता है, उस वेदबाह्य मूढ व्यक्तिके साथ द्विजातियोंको सम्भाषण नहीं करना चाहिये[१]। द्विजको वेदके पाठमात्रसे संतुष्ट नहीं होना चाहिये। पाठमात्रसे वेदाध्ययनको समाप्त करनेवाला कीचड़में फँसी गौके समान कष्ट पाता है। जो विधिपूर्वक वेदका अध्ययन कर वेदके अर्थपर विचार नहीं करता है, वह अपने वंशके साथ शूद्रके समान है। वह (वास्तवमें) पात्रता (योग्यता)-को नहीं प्राप्त करता है (अर्थात् वेदाध्ययन करनेवाला वेदार्थ अवश्य जाने यही तात्पर्य है।)॥ ८२—८४॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात्॥ ८५॥

यदि गुरुके पास ही जीवनपर्यन्त रहनेकी इच्छा हो तो शरीरके अन्त होनेतक बड़ी ही सावधानीपूर्वक इनकी (गुरुकी) सेवा करनी चाहिये॥ ८५॥

१-वेदाध्ययन द्विजको शास्त्राध्ययनके पूर्व अवश्य करना चाहिये, यही तात्पर्य है।

गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्।
अधीयीत सदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः॥ ८६॥

सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदान्तांश्च विशेषतः।
अभ्यसेत् सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः॥ ८७॥

अथवा (गुरु, गुरुपत्नी या उनके किसी सपिण्डके न रहनेपर) वनमें जाकर विधिपूर्वक अग्निमें हवन करना चाहिये और समाहित होकर ब्रह्ममें अत्यन्त निष्ठा रखते हुए नित्य वेदाभ्यास करना चाहिये। नित्य भस्म-स्नान करते हुए गायत्री, शतरुद्रिय और वेदान्त-शास्त्रोंका विशेष रूपसे निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये॥ ८६-८७॥

एतद् विधानं परमं पुराणं
वेदागमे सम्यगिहेरितं वः।
पुरा महर्षिप्रवराभिपृष्टः
स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः॥ ८८॥

एवमीश्वरसमर्पितान्तरो
योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवित्।
मोहजालमपहाय सोऽमृतो
याति तत् पदमनामयं शिवम्॥ ८९॥

वेदज्ञानकी प्राप्तिका यह सनातन विधान आप लोगोंको बतलाया गया, प्राचीन कालमें श्रेष्ठ महर्षियोंके पूछनेपर भगवान् स्वायम्भुव मनुने स्वयं ही इसे कहा था। इस प्रकार अपने अन्तःकरणको ईश्वरमें समर्पित करके विधानको जाननेवाले जो पुरुष इस (ब्रह्मचर्य) विधिका अनुष्ठान (यथावत् पालन) करता है, वह क्रमशः समस्त मोह-जालका परित्यागकर, अमर होते हुए अनामय शिवपदको प्राप्त करता है तथा अमर हो जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होकर कृतकृत्य हो जाता है॥ ८८-८९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १४॥

पंद्रहवाँ अध्याय

गृहस्थधर्म तथा गृहस्थके सदाचारका वर्णन, धर्माचरण एवं सत्यधर्मकी महिमा

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान् वेदान् वा चतुरो द्विजाः।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः॥ १॥

गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
चीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा सशक्तः स्नातुमर्हति॥ २॥

व्यासजीने कहा—द्विजो! द्विजोत्तमको चाहिये कि वह एक वेद, दो वेद (तीन) वेद अथवा वेदोंका अध्ययन कर और वेदके अर्थका ज्ञान प्राप्तकर स्नान (संस्कार-विशेष— समावर्तन) करे। गुरुको दक्षिणा निवेदित कर उनकी आज्ञासे स्नान (समावर्तन) करे। व्रत (ब्रह्मचर्यव्रत) पूर्णकर उसके फलस्वरूप शक्ति-सम्पन्न युक्तात्मा द्विज स्नान (समावर्तन)-का अधिकारी होता है॥ १-२॥

वैणवीं धारयेद् यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम्।
यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम्॥ ३॥

छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ।
रौक्मे च कुण्डले वेदं कृत्तकेशनखः शुचिः॥ ४॥

(स्नातकको) बाँसकी छड़ी, कौपीन, धोती तथा उत्तरीय वस्त्र (चद्दर), दो यज्ञोपवीत, जलपूर्ण कमण्डलु, छाता, सुन्दर स्वच्छ पगड़ी, खड़ाऊँ, जूता, दो स्वर्णकुण्डल और वेद (कुशमुष्टि) धारण करना चाहिये तथा केश और नखोंको कटवाकर स्वच्छ रहना चाहिये॥ ३-४॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् बहिर्माल्यं न धारयेत्।
अन्यत्र काञ्चनाद् विप्रो न रक्तां बिभृयात् स्त्रजम्॥ ५ ॥

(स्नातकको) नित्य स्वाध्याय करना चाहिये। केशकलापसे बाहर माला नहीं धारण करनी चाहिये[१]। सोनेकी मालाको छोड़कर ब्राह्मणको रक्तवर्णकी माला धारण नहीं करनी चाहिये॥ ५॥

शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः।
न जीर्णमलवद्वासा भवेद् वै विभवे सति॥ ६ ॥
न रक्तमुल्बणं चान्यधृतं वासो न कुण्डिकाम्।
नोपानहौ स्त्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत्॥ ७ ॥
उपवीतमलंकारं दर्भान् कृष्णाजिनानि च।
नापसव्यं परीदध्याद् वासो न विकृतं वसेत्॥ ८ ॥

उसे नित्य सफेद एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये तथा सुगन्धित द्रव्य—इत्र आदि धारणकर सदा सुगन्धयुक्त एवं सुवेशसे प्रियदर्शन होना चाहिये। धन रहनेपर पुराना और मैला वस्त्र धारण नहीं करना चाहिये। उद्वेगजनक अधिक लाल और दूसरोंद्वारा प्रयोग किया हुआ वस्त्र, कमण्डलु, जूता, माला तथा खड़ाऊँ नहीं धारण करना चाहिये। इसी प्रकार उसे (स्नातकको) दूसरे द्वारा (प्रयुक्त) यज्ञोपवीत, अलङ्कार, कुश और कृष्णमृगचर्मको धारण नहीं करना चाहिये[२]। अपसव्य नहीं रहना चाहिये, उसे विकृत (कटे-फटे) वस्त्रोंको धारण नहीं करना चाहिये॥ ६—८॥

आहरेद् विधिवद् दारान् सदृशानात्मनः शुभान्।
रूपलक्षणसंयुक्तान् योनिदोषविवर्जितान्॥ ९ ॥
अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम् ।
आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम्॥ १०॥

अपने समान (कुलके अनुरूप) शुभ, अच्छे रूप और लक्षणोंसे सम्पन्न, योनि-सम्बन्धी दोषोंसे रहित पत्नीको विधिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। ब्राह्मण (द्विज)-को अपनी माताके गोत्रमें जो उत्पन्न न हो तथा जो अपने आर्ष गोत्रमें उत्पन्न न हो, ऐसी शील और सदाचारसे सम्पन्न भार्याको ग्रहण करना चाहिये॥ ९-१०॥

ऋतुकालाभिगामी स्याद् यावत् पुत्रोऽभिजायते।
वर्जयेत् प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु॥ ११॥
षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम्।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयाहनि॥ १२॥

पुत्रके उत्पन्न होनेतक ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे सहवास करना चाहिये, किंतु निषिद्ध दिनोंका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमाको और इसी प्रकार जन्मदिनसे तीन दिनपर्यन्त सदा ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये॥ ११-१२॥

आदधीतावसथ्याग्निं जुहुयाज्जातवेदसम्।
व्रतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पालयेत्॥ १३॥
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणान्॥ १४॥

आवसथ्य (संस्कार-विशेषसे संस्कृत स्मार्त अग्नि) नामक अग्निकी स्थापना कर उसमें प्रतिदिन हवन करना चाहिये और नित्य पवित्र व्रतोंका पालन करना चाहिये। वेदमें बतलाये गये अपने कर्मोंको नित्य आलस्यरहित होकर करना चाहिये। इन्हें न करनेपर (स्नातक) शीघ्र ही अत्यन्त भयंकर नरकोंमें गिरता है॥ १३-१४॥

१-मनुस्मृति (४।७२)-के अनुसार 'बहिर्माल्य'का अर्थ है—केशकलापसे बाहर माला। इसका आशय यह है कि सिरके ऊपर माला न पहने। सिरके नीचे कण्ठमें माला पहननी चाहिये।

२-दाहिने कंधेके ऊपर तथा बाँयें हाथके नीचे यज्ञोपवीत जब रहता है तब अपसव्य कहा जाता है। ऐसा श्राद्ध आदि विशेष अवसरपर ही विहित है।

अभ्यसेत् प्रयतो वेदं महायज्ञान् न हापयेत्।
कुर्याद् गृह्याणि कर्माणि संध्योपासनमेव च॥ १५॥

प्रयत्नपूर्वक वेदोंका अभ्यास करे। (पञ्च) महायज्ञोंका परित्याग न करे। अपने गृह्यसूत्रोंमें प्रतिपादित कर्मोंको करे और संध्योपासन कर्म करे॥ १५॥

सख्यं समाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा।
दैवतान्यपि गच्छेत कुर्याद् भार्याभिपोषणम्॥ १६॥

न धर्मं ख्यापयेद् विद्वान् न पापं गूहयेदपि।
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः॥ १७॥

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन् विचरेत् सदा॥ १८॥

श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित्॥ १९॥

अपने समान अथवा श्रेष्ठ व्यक्तिसे मित्रता करे। ईश्वरकी आराधना करे। देवताओंकी भी पूजा करे और अपनी भार्याका भलीभाँति पोषण करे। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि (अपने द्वारा अनुष्ठित) धर्मका वर्णन न करे और न अपने द्वारा किये गये पापको ही छिपाये। आत्मकल्याणका प्रयत्न करे और सदैव सभी प्राणियोंपर दया करे। अपनी अवस्था, कर्म, सम्पत्ति, ज्ञान और कुलके अनुसार सदा वेष धारण करे तथा संयत-वाणी और बुद्धिसे यथोचित आचरण करते हुए लौकिक व्यवहारका निर्वाह करे। वेदों तथा धर्मशास्त्रोंमें जो कहा गया हो और जो सत्पुरुषोंसे भलीभाँति अनुष्ठित हो, उसी सदाचारका पालन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कभी भी दूसरे आचारका पालन नहीं करना चाहिये॥ १६—१९॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति॥ २०॥

यदि शास्त्रोंसे अपने मार्गका निर्धारण करनेमें किसी कारण असामर्थ्य हो तो (शास्त्रोक्त) जिस मार्गसे माता-पिता गये हों और पितामह आदिने जिस मार्गका अवलम्बन किया हो, उसी मार्गका स्वयं भी अनुसरण करना चाहिये। यही सज्जनोंका मार्ग है। इस मार्गका अवलम्बन करनेवालेका पतन नहीं होता॥ २०॥

नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान्।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ २१॥

संध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः।
अनसूयो मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्धते॥ २२॥

वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः।
सावित्रीजाप्यनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही॥ २३॥

मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः।
दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ २४॥

त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम्।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान्॥ २५॥

नित्य स्वाध्यायपरायण रहे, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहे। सत्य बोलनेवाला एवं क्रोधपर विजय प्राप्त करनेवाला, ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। नित्य स्नान और संध्या करनेवाला, ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-परायण रहनेवाला, असूयारहित, मृदु तथा जितेन्द्रिय गृहस्थ परलोकमें अभ्युदय प्राप्त करता है। राग, भय और क्रोधसे रहित, लोभ एवं मोहसे शून्य, गायत्रीके जपमें तत्पर रहनेवाला और श्राद्ध करनेवाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है। माता, पिता, गौ और ब्राह्मणके हित करनेमें निरत रहनेवाला, जितेन्द्रिय, यजन करनेवाला तथा देवताओंका भक्त ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। निरन्तर (धर्म, अर्थ एवं कामरूप) त्रिवर्गका पालन और देवताओंका पूजन करना चाहिये तथा प्रयत्नपूर्वक नित्य देवताओंको नमस्कार करना चाहिये॥ २१—२५॥

विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥ २६॥

क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः।
अध्यात्मनिरतं ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥ २७॥

एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः।
यथाशक्ति चरन् कर्म निन्दितानि विवर्जयेत्॥ २८॥
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्।
गृहस्थो मुच्यते बन्धात् नात्र कार्या विचारणा॥ २९॥

विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्।
अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा॥ ३०॥
स्वदुःखेष्विव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदात्।
दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य साधनम्॥ ३१॥

चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः।
विज्ञानमिति तद् विद्याद् येन धर्मो विवर्धते॥ ३२॥

अधीत्य विधिवद् विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद् विज्ञानमिष्यते॥ ३३॥
सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम्।
यथाभूतप्रवादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः॥ ३४॥

दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः।
अध्यात्ममक्षरं विद्याद् यत्र गत्वा न शोचति॥ ३५॥

अपनी सम्पत्तिका (शास्त्रानुसार यथायोग्य) सदा विभाग करनेवाला[1], क्षमावान्, दयायुक्त व्यक्ति ही गृहस्थ कहलाता है। केवल गृहमें रहनेसे कोई गृहस्थ नहीं कहलाता। क्षमा, दया, विशिष्ट ज्ञान (लौकिक एवं शास्त्रीय ज्ञान), सत्य, दम, शम और अध्यात्मज्ञानमें निरत होना—यह ब्राह्मणका लक्षण है। यथाशक्ति (विहित) कर्मोंको करते हुए निन्दित कर्मोंका परित्याग करना चाहिये॥ २६—२८॥

विशेषरूपसे श्रेष्ठ द्विजको इस सम्बन्धमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। मोहरूपी कल्मषको धोकर और श्रेष्ठ योगको प्राप्तकर गृहस्थ बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिये। दूसरेके क्रोधसे उत्पन्न अपनी निन्दा, अनादर, दोषारोपण, हिंसा, बन्धन और ताड़नस्वरूप दोषोंको सहना ही क्षमा है॥ २९-३०॥

सौहार्दवश अपने दुःखके समान ही दूसरोंके दुःखमें उनके प्रति करुणाभावको मुनियोंने 'दया' इस नामसे कहा है। यह धर्मका साक्षात् साधन है। चौदह[2] विद्याओंको यथार्थरूपसे धारण करनेको ही विज्ञान समझना चाहिये। इससे धर्मकी वृद्धि होती है। विधिपूर्वक विद्याको ग्रहण कर लेने और उसके अर्थको भलीभाँति जान लेनेपर भी यदि (कोई व्यक्ति) धर्म-कार्योंसे निवृत्त (विरत) रहता है, उन्हें नहीं करता तो उसका वह (अध्ययन) विज्ञान नहीं कहलाता है॥ ३१—३३॥

सत्यके आचरणसे लोकोंपर विजय प्राप्त होती है, सत्य ही वह (सर्वोच्च) परमपद है। जो जैसा है उसका उसी रूपमें कथन ही मनीषियोंने सत्य कहा है। शरीरका उपरम (शरीरकी चेष्टाओंका नियन्त्रण अर्थात् इन्द्रियोंका निग्रह) दम है और शम (मनका नियन्त्रण) प्रज्ञा (प्रकृष्ट ज्ञान)-के विशद अवभाससे उत्पन्न होता है। अध्यात्म (आत्म-सम्बन्धी) ज्ञानको ही अविनश्वर तत्त्व समझना चाहिये जहाँ पहुँचनेपर शोक नहीं होता॥ ३४-३५॥

१-सम्पत्तिका पाँच भाग—(१) धर्मके लिये, (२) यशके लिये, (३) सम्पत्तिको बढ़ानेके लिये, (४) अपने भोगके लिये, (५) स्वजनके लिये—करनेसे इस लोक तथा परलोकमें सुख प्राप्त होता है।

२-चार वेद, छः वेदाङ्ग (—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दःशास्त्र, ज्योतिष), पुराण, न्यायशास्त्र, मीमांसा और धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं।

यया स देवो भगवान् विद्यया वेद्यते परः।
साक्षाद् देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥ ३६॥

तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः।
महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम्॥ ३७॥

धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत्।
न हि देहं विना रुद्रः पुरुषैर्विद्यते परः॥ ३८॥

नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः।
न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥ ३९॥

सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्।
धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु॥ ४०॥

भूतानां प्रियकारी स्यात् न परद्रोहकर्मधीः।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात् तैश्च न संवसेत्॥ ४१॥

यस्त्विमं नियतं विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः।
अध्यापयेत् श्रावयेद् वा ब्रह्मलोके महीयते॥ ४२॥

जिस विद्याके द्वारा वे परात्पर देवाधिदेव साक्षात् भगवान् महादेव जाने जाते हैं, उसे ही ज्ञान कहा गया है। उनमें निष्ठा रखनेवाला, उनके परायण रहनेवाला, कभी भी क्रोध न करनेवाला, पवित्र, (पञ्च) महायज्ञोंको करनेवाला विद्वान् विप्र उस श्रेष्ठ तत्त्वको प्राप्त करता है। धर्मके आयतन इस शरीरका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। बिना देहके मनुष्य उस परात्पर रुद्रको नहीं जान सकता। नियत (संयत) द्विजको नित्य धर्म, अर्थ एवं कामकी साधनामें लगे रहना चाहिये। धर्मसे रहित काम अथवा अर्थका मनसे भी स्मरण नहीं करना चाहिये। धर्मके पालनमें कष्ट पाते हुए भी (उसका परित्यागकर) अधर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। धर्मदेवता ही सभी प्राणियोंके भगवान् और गति हैं। (इसलिये) प्राणियोंका प्रिय करनेवाला बनना चाहिये। दूसरोंसे द्रोह करनेकी बुद्धिवाला नहीं होना चाहिये। वेदकी तथा देवताओंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये और (जो इनकी निन्दा करता है) उसके साथ रहना (भी) नहीं चाहिये॥ ३६—४१॥

जो विप्र पवित्रतापूर्वक नित्य इस धर्माध्यायका अध्ययन, अध्यापन अथवा उपदेश करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

सदाचारका वर्णन

व्यास उवाच

न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित्।
नाहितं नाप्रियं वाक्यं न स्तेनः स्याद् कदाचन॥ १॥

तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥ २॥

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रपतितादपि।
न चान्यस्मादशक्तश्च निन्दितान् वर्जयेद् बुधः॥ ३॥
नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत्।
प्राणानपहरत्येवं याचकस्तस्य दुर्मतिः॥ ४॥

न देवद्रव्यहारी स्याद् विशेषेण द्विजोत्तमः।
ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन॥ ५॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत् ततः॥ ६॥

पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले फले तृणे।
अदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः॥ ७॥
ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम्॥ ८॥

तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद् बुधः।
धर्मार्थं केवलं विप्रा ह्यन्यथा पतितो भवेत्॥ ९॥

व्यासजीने कहा—किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये और कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिये। अहितकर और अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये और कभी भी चोरी नहीं करनी चाहिये। दूसरेके तृण, शाक, मिट्टी अथवा जलका भी अपहरण करनेवाला प्राणी नरक प्राप्त करता है। राजा[1], शूद्र तथा पतित व्यक्तिसे दान नहीं लेना चाहिये। अशक्त होनेपर भी दूसरेसे याचना नहीं करनी चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको निन्दितों (पापमें रत)-का परित्याग करना चाहिये॥ १—३॥

नित्य याचना करनेवाला नहीं होना चाहिये और एक ही व्यक्तिसे दुबारा नहीं माँगना चाहिये। याचना करनेवाला दुर्बुद्धि व्यक्ति (दाताके) प्राणोंका ही हरण[2] करता है। विशेषरूपसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको देवसम्बन्धी द्रव्यका अपहरण नहीं करना चाहिये। आपत्ति पड़नेपर भी ब्राह्मणके धनका कभी भी अपहरण न करे॥ ४-५॥

विषको विष नहीं कहा जाता बल्कि ब्राह्मणका धन ही विष-रूप है। इसी प्रकार देवसम्बन्धी स्वत्वका भी प्रयत्नपूर्वक सदा त्याग करना चाहिये। प्रजापति मनुने पुष्प, शाक, जल, लकड़ी, मूल, फल तथा तृण—इन सभी पदार्थोंको (इनके स्वामीद्वारा) बिना दिये ग्रहण कर लेनेको अस्तेय कहा है (अर्थात् पुष्प, शाक आदि यदि दूसरेके हैं तब भी अत्यावश्यक होनेपर धर्मार्थ या प्राणरक्षार्थ इनका प्रयोजनानुसार ग्रहण करनेपर चोरीका दोष नहीं लगता)॥ ६-७॥

द्विजो! देवपूजाके लिये अन्य स्वामीका पुष्प ग्रहण किया जा सकता है। परंतु केवल एक ही स्थानसे बिना आज्ञाके प्रतिदिन पुष्प नहीं ग्रहण करना चाहिये। विप्रो! विद्वान् व्यक्ति केवल धर्मकार्यके लिये तृण, काष्ठ, फल, पुष्प प्रकट-रूपसे ग्रहण कर सकता है, अन्य प्रकारसे ग्रहण करनेपर वह पतित हो जाता है॥ ८-९॥

१-राजासे दान लेनेपर तेजका ह्रास होता है—'राजान्नं हरते तेजः'।
२-पुनः-पुनः याचनासे दाताको कष्ट होना स्वाभाविक है। अतः यहाँ दाताके प्राण-हरणसे तात्पर्य कष्ट पहुँचानेसे है।

तिलमुद्‌गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः।
क्षुधार्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः॥ १०॥

ब्राह्मणो! धर्म जाननेवालोंने यह मर्यादा स्थिर की है कि केवल भूखसे पीड़ित व्यक्ति रास्तेमें स्थित तिल, मूँग तथा यव आदि पदार्थोंको एक मुट्ठी मात्र ग्रहण कर सकता है। दूसरे जो भूखसे पीड़ित नहीं हैं, ऐसा नहीं कर सकते॥ १०॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम्॥ ११॥

प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति॥ १२॥

पाप करके धर्मके बहाने किसी व्रतका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। व्रतके द्वारा पापको छिपाकर जो स्त्री और शूद्रोंका प्रवञ्चन करता है, वह विप्र इहलोक तथा परलोकमें ब्रह्मवादियोंद्वारा निन्दित होता है। छलके द्वारा किया गया व्रत राक्षसोंको प्राप्त होता है॥ ११-१२॥

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति।
स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥ १३॥

बैडालव्रतिनः पापा लोके धर्मविनाशकाः।
सद्यः पतन्ति पापेषु कर्मणस्तस्य तत् फलम्॥ १४॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वामाचारांस्तथैव च।
पाञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्‌मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १५॥

यदि (यज्ञोपवीतादि) लिङ्गका अनधिकारी व्यक्ति इन लिङ्गों (चिह्नों-लक्षणों)-को धारणकर वेष बनाकर जीविकाका निर्वाह करता है तो वह इन लिङ्गोंके वास्तविक अधिकारी पुरुषोंके पापोंका भागी होता है और तिर्यक् (पक्षी आदि) योनिको प्राप्त करता है। लोकमें धर्मके विनाशक वैडालव्रती[1] (ढोंगी) पापी लोग शीघ्र ही पापयोनिमें जाते हैं। उनके दुष्कर्मका यही फल है। पाखंडी (वेदशास्त्राननुमत-व्रत लिङ्गधारी), निषिद्ध कर्म करनेवाले, वाममार्गी, पाञ्चरात्र और पाशुपत व्रतवालोंका वाणीमात्रसे भी सत्कार नहीं करना चाहिये[2]॥ १३—१५॥

वेदनिन्दारतान् मर्त्यान् देवनिन्दारतांस्तथा।
द्विजनिन्दारतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥ १६॥

याजनं योनिसम्बन्धं सहवासं च भाषणम्।
कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद् यत्नेन वर्जयेत्॥ १७॥

देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात् कोटिगुणाधिकम्॥ १८॥

वेदकी निन्दामें परायण, देवताओंकी निन्दामें निरत और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेमें संलग्न मनुष्योंका मनसे भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। इनका यज्ञ कराना, इनके साथ विवाह आदि (योनि)-का सम्बन्ध, सहवास तथा बात करनेसे प्राणी पतित हो जाता है, अतः प्रयत्नपूर्वक इनका परित्याग करना चाहिये। देवताके द्रोहसे गुरुका द्रोह करोड़ों गुना अधिक दोषपूर्ण होता है। उस गुरुद्रोहसे भी शास्त्रीय ज्ञानकी निन्दा करना और नास्तिकताका भाव करोड़ गुना अधिक दोषपूर्ण है॥ १६—१८॥

१-बिडालव्रतसे जो अपनी जीविका चलाता है वह वैडालव्रती है। इसका आशय यह है कि जैसे विडाल (बिल्ली) मूषक आदिको पकड़कर खानेके लिये ध्याननिष्ठकी तरह विनीतकी भाँति बैठता है, वैसे ही जो दूसरोंको धोखा देकर अपने स्वार्थकी सिद्धिमात्रके लिये ध्यान, विनयभाव आदिका स्वाँग रचता है, वह वैडालव्रती है।

२-अतिथि-सत्कारकालमें इनके उपस्थित होनेपर अतिथिके समान इनका सत्कार नहीं करना चाहिये। जो लोग आदर योग्य नहीं हैं, उन्हें भी जीविका-निर्वाहके लिये यथाशक्ति देनेका विधान होनेसे जीवनोपयोगी वस्तु देनेका निषेध यहाँ नहीं है।

गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया।
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः॥ १९॥

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ २०॥

गायसे, देवताओंसे, ब्राह्मणोंसे, कृषिसे तथा राजाकी सेवासे जीविका-निर्वाह करनेवाले व्यक्तियोंका कुल दोषपूर्ण हो जाता है; क्योंकि ये वृत्तियाँ धर्मकी दृष्टिसे हीन वृत्तियाँ हैं। कुविवाह, (नित्य अथवा धार्मिक) क्रियाओंका लोप, वेदोंके अध्ययन न करने और ब्राह्मणोंके अनादर करनेसे कुल दोषपूर्ण हो जाता है॥१९-२०॥

अनृतात् पारदार्याच्च तथाभक्ष्यस्य भक्षणात्।
अश्रौतधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २१॥

अश्रोत्रियेषु वै दानाद् वृषलेषु तथैव च।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २२॥

झूठ बोलने, परदाराभिगमन, अभक्ष्य-भक्षण और वेदविरुद्ध धर्मोंका आचरण करनेसे कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अश्रोत्रिय, शूद्र तथा विहित आचारसे रहित (द्विज)-को दान देनेसे दाताका कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ २१-२२॥

नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम्।
न शूद्रराज्ये निवसेन्न पाषण्डजनैर्वृते॥ २३॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयोः शुभम्।
मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद् द्विजः॥ २४॥

कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः॥ २५॥

अधार्मिकों तथा पाखंडीजनोंसे युक्त और अत्यधिक रोगसे आक्रान्त ग्राममें तथा शूद्रके राज्यमें निवास नहीं करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि वह हिमालय एवं विन्ध्यपर्वतके मध्यके देश और पूर्व तथा पश्चिम दिशाके समुद्रके तटवर्ती शुभ प्रदेशको छोड़कर अन्यत्र निवास नहीं करे। अथवा जहाँ स्वाभाविकरूपसे नित्य कृष्ण (कृष्णसार मृग—जातिविशेषके मृग) मृग विचरण करते हों और जहाँ वेदशास्त्र-प्रसिद्ध पुण्यजलवाली नदियाँ प्रवाहित होती हों, द्विजको वहाँ निवास करना चाहिये॥ २३—२५॥

अर्धक्रोशान्नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः।
नान्यत्र निवसेत् पुण्यं नान्त्यजग्रामसंनिधौ॥ २६॥

न संवसेच्च पतितैर्न चण्डालैर्न पुक्कसैः।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥ २७॥

एकशय्यासनं पङ्क्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम्।
याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम्॥ २८॥

सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च।
एकादश समुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः॥ २९॥

समीपे वा व्यवस्थानात् पापं संक्रमते नृणाम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साङ्कर्यं परिवर्जयेत्॥ ३०॥

श्रेष्ठ द्विजको नदीके किनारेसे आधे कोसतककी भूमिका परित्यागकर अन्य किसी पवित्र स्थानपर नहीं रहना चाहिये और न अन्त्यजोंके ग्रामके समीपमें रहना चाहिये। पतित, चण्डाल, पुक्कस, मूर्ख, अभिमानी (धन आदिके मदसे गर्वित), अन्त्यज (म्लेच्छ, रजक आदि) और अन्त्यावसायीके साथ नहीं रहना चाहिये[1]। (इनके साथ) एक शय्यापर और एक आसनपर बैठना, एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करना, बरतनों और पके हुए भोजनका मेल (मिश्रण, परस्पर आदान-प्रदान), यज्ञ करना, अध्यापन, विवाहादिका सम्बन्ध, साथमें भोजन करना और दसवाँ साथमें अध्ययन करना तथा साथमें यज्ञ कराना—ये ग्यारह 'सांकर्य' नामवाले दोष बतलाये गये हैं। इन सांकर्य-दोषयुक्त व्यक्तियोंके समीपमें भी रहनेसे मनुष्यमें पापका संक्रमण हो जाता है। अतः सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे सांकर्य (दोष)-का परित्याग करना चाहिये॥ २६—३०॥

१-यहाँ घृणाका भाव नहीं है। जन्मान्तरकृत कर्मोंके आधारपर यह केवल एक व्यवस्था है।

एकपङ्क्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्।
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत्॥ ३१॥

अग्निना भस्मना चैव सलिलेनावसेकतः।
द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पङ्क्तिर्विभिद्यते॥ ३२॥

न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं न च पैशुनम्।
परक्षेत्रे गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित्।
न संवदेत् सूतके च न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत्॥ ३३॥
न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम्।
परस्मै कथयेद् विद्वान् शशिनं वा कदाचन॥ ३४॥

न कुर्याद् बहुभिः सार्धं विरोधं बन्धुभिस्तथा।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ ३५॥
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात् न नक्षत्राणि निर्दिशेत्।
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वा द्विजोत्तमः॥ ३६॥

न देवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत्।
न चात्मानं प्रशंसेद् वा परनिन्दां च वर्जयेत्।
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ ३७॥
यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान् वा निन्दति द्विजः।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः॥ ३८॥

निन्दयेद् वै गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम्।
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः॥ ३९॥

तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किंचिदुत्तरम्।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत्॥ ४०॥

वर्जयेद् वै रहस्यानि परेषां गूहयेद् बुधः।
विवादं स्वजनैः सार्धं न कुर्याद् वै कदाचन॥ ४१॥

एक पंक्तिमें बैठे रहनेपर भी जो एक-दूसरेका स्पर्श नहीं करते हों और बीचमें भस्मके द्वारा रेखारूप मर्यादा खींचे हों, उनमें सांकर्य-दोष नहीं होता। अग्नि, भस्म, जलके छिड़काव, द्वार, स्तम्भ तथा मार्ग—इन छ:के द्वारा पंक्तिका खंडन हो जाता है। अकारण शत्रुता, विवाद तथा चुगुलखोरी नहीं करनी चाहिये। दूसरेके खेतमें चरती हुई गायको किसीको बतलाना नहीं चाहिये। सूतक (अशौच)-युक्त व्यक्तिसे बात न करे और किसीके भी मर्मका स्पर्श[1] न करे॥ ३१—३३॥

विद्वान् व्यक्ति दूसरोंको सूर्यमण्डल, इन्द्रधनुष, चिताग्नि तथा चन्द्रमा (चन्द्रमण्डल) न बतलाये, न दिखलाये। बहुत लोगोंके साथ और बन्धु-बान्धवोंके साथ विरोध नहीं करना चाहिये। स्वयंके प्रति जैसा आचरण प्रतिकूल हो, वैसा आचरण दूसरोंके प्रति न करे॥ ३४-३५॥

पक्षकी तिथिको न कहे, न नक्षत्रोंका निर्देश करे। श्रेष्ठ द्विज रजस्वला स्त्रीसे बात न करे और न ही अपवित्र व्यक्तिसे बात करे। देवता, गुरु तथा ब्राह्मणोंको दी जा रही वस्तुका निषेध न करे। अपनी प्रशंसा न करे और दूसरेकी निन्दाका त्याग करे। वेदनिन्दा तथा देवनिन्दाका प्रयत्नपूर्वक (सर्वथा) परित्याग करे॥ ३६-३७॥

मुनीश्वरो! जो द्विज देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों अथवा वेदोंकी निन्दा करता है, उसके लिये इस लोकमें कोई प्रायश्चित्त शास्त्रोंमें दिखलायी नहीं देता। गुरु, देवता, वेद, उपबृंहण (इतिहास-पुराण)-की निन्दा करनेवाला व्यक्ति सैकड़ों, करोड़ों वर्षोंसे भी अधिक समयतक रौरव नरकमें कष्ट भोगता है। (देवता, शास्त्र आदिकी) निन्दा होनेपर (यदि उत्तर देनेका सामर्थ्य न हो तो) चुपचाप रहना चाहिये, उत्तरमें (दुराग्रहीसे) कुछ भी नहीं बोलना चाहिये। अथवा उस समय कान बंदकर अन्यत्र चला जाय और उन निन्दकोंकी ओर देखे भी नहीं॥ ३८—४०॥

विद्वान् व्यक्तिको दूसरोंके रहस्योंको जाननेका प्रयास नहीं करना चाहिये और (जाननेपर) उन्हें छिपाना चाहिये। अपने आत्मीय जनोंके साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिये॥ ४१॥

१-मर्मस्पर्शका तात्पर्य है—किसीके रहस्यको प्रकाशित कर उसे पीड़ा पहुँचाना।

न पापं पापिनां ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमाः।
स तेन तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विर्दोषवान् भवेत्॥ ४२॥

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात्।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥ ४३॥

ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे।
दृष्टं विशोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसने॥ ४४॥

हे द्विजोत्तमो! पापियोंके पापकी चर्चा न करे, न अपाप (पापरहित)-पर पापी होनेका आरोप लगाये, क्योंकि ऐसा करनेसे वह उसी (पापी)-के समान दोषयुक्त होकर तथा मिथ्याभिभाषणरूप दोषसे युक्त[1] होकर दो दोषोंका भागी हो जाता है। मिथ्या दोषारोपणयुक्त व्यक्तियोंके रोनेसे जो अश्रुविन्दु गिरते हैं, वे मिथ्या दोषारोपण करनेवाले व्यक्तिके पुत्रों तथा पशुओंका नाश कर देते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन—इन महापापोंकी शुद्धि वृद्धजनोंद्वारा देखी गयी है (अर्थात् बतायी गयी है), किंतु मिथ्या दोषारोपण करनेवालेकी कोई शुद्धि नहीं है अर्थात् इनकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं है॥ ४२—४४॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं चानिमित्ततः।
नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम्।
तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम्॥ ४५॥

बिना किसी प्रयोजनके उगते हुए सूर्य और चन्द्रमाको नहीं देखना चाहिये। (ऐसे ही अकारण) अस्त होते हुए, जलमें प्रतिबिम्बित, आकाशके मध्य स्थित, ग्रहणयुक्त, वस्त्राच्छादित अथवा दर्पण आदिमें प्रतिबिम्बित सूर्य-चन्द्रमाको नहीं देखना चाहिये॥ ४५॥

न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन।
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संस्पृष्टमैथुनम्।
नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयेद् बुधः॥ ४६॥

पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान् नावलोकयेत्।
नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वावगुण्ठितः॥ ४७॥

न पश्येत् प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्।
न तैलोदकयोश्छायां न पत्नीं भोजने सति।
नामुक्तबन्धनाङ्गां वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा॥ ४८॥

नाश्नीयात् भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्।
क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम्॥ ४९॥

नोदके चात्मनो रूपं न कूलं श्वभ्रमेव वा।
न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन॥ ५०॥

नग्न स्त्री अथवा पुरुषको कभी भी न देखे। मल-मूत्र विसर्जित कर रहे तथा मैथुनासक्त व्यक्तिको न देखे। बुद्धिमान् व्यक्तिको अपवित्रताकी स्थितिमें सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहोंको नहीं देखना चाहिये। पतित, विकलाङ्ग, चाण्डाल एवं उच्छिष्ट (मुखवाले) व्यक्तियोंको नहीं देखना चाहिये। उच्छिष्ट दशामें अथवा मुख ढककर दूसरेसे बात नहीं करनी चाहिये। शवका स्पर्श किये हुए व्यक्तिको (जबतक स्नानादिसे शुद्ध नहीं हो जाता है तबतक), क्रुद्ध गुरुके मुखको, तेल या जलमें पड़नेवाली छायाको, भोजन करते समय पत्नीको, खुले हुए अङ्गोंवाली स्त्रीको, पागल एवं मतवाले व्यक्तिको नहीं देखना चाहिये। पत्नीके साथ भोजन नहीं करना चाहिये और उसे भोजन करते हुए, छींकते हुए, जम्हाई लेते हुए तथा आसनपर आरामसे बैठे रहनेकी अवस्थामें नहीं देखना चाहिये। जलमें अपना रूप तथा (नदी आदिके) किनारे और गर्त (गहरा गड्ढा)-को नहीं देखना चाहिये। मूत्रको लाँघना नहीं चाहिये और न कभी उसपर बैठना चाहिये॥ ४६—५०॥

१-इसका आशय यह है कि किसीके पापकी चर्चासे स्वयंमें पाप संक्रमित होते हैं तथा वस्तुतः निष्पापमें पापकी कल्पना मिथ्याकल्पना है और इस कल्पनाके आधारपर पापका कथन मिथ्याभाषण है ही।

न शूद्राय मतिं दद्यात् कृशरं पायसं दधि।
नोच्छिष्टं वा मधु घृतं न च कृष्णाजिनं हविः॥ ५१॥

न चैवास्मै व्रतं दद्यान्न च धर्मं वदेद् बुधः।
न च क्रोधवशं गच्छेद् द्वेषं रागं च वर्जयेत्॥ ५२॥

लोभं दम्भं तथा यत्नादसूयां ज्ञानकुत्सनम्।
ईर्ष्यां मदं तथा शोकं मोहं च परिवर्जयेत्॥ ५३॥

न कुर्यात् कस्यचित् पीडां सुतं शिष्यं च ताडयेत्।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित्॥ ५४॥

नात्मानं चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत्।
न विशिष्टानसत्कुर्यात् नात्मानं वा शपेद् बुधः॥ ५५॥

शूद्रको दृष्टार्थोपदेश (लौकिक विषयका उपदेश[1]) नहीं देना चाहिये। साथ ही कृशर अर्थात् तिल, चावल आदिसे मिश्रित पदार्थ, खीर, दही[2], जूठी[3] वस्तु, मधु, घृत, कृष्णमृगचर्म[4] तथा हवनकी सामग्री नहीं देनी चाहिये। विद्वान् व्यक्ति इसे (शूद्रको) व्रत एवं धर्म-सम्बन्धी उपदेश न दे। क्रोधके वशीभूत नहीं होना चाहिये और राग-द्वेषको छोड़ देना चाहिये। लोभ, दम्भ, असूया (गुणमें दोषदर्शन), ज्ञानकी निन्दा, ईर्ष्या, मद, शोक तथा मोहको प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिये। किसीको भी पीड़ा न पहुँचाये। पुत्र और शिष्यको योग्य बनानेके पवित्रभावसे ताड़न[5] करे। कभी हीन व्यक्तियों और तीक्ष्ण (उद्धत) बुद्धिवाले व्यक्तियोंका आश्रय ग्रहण न करे। विद्वान्को अपना अपमान नहीं करना चाहिये अर्थात् हीनभाव नहीं अपनाना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक दीनताका परित्याग करना चाहिये। विशिष्ट जनोंका निरादर नहीं करना चाहिये और अपनेको (क्रोधावेशसे) शाप नहीं देना चाहिये॥ ५१—५५॥

न नखैर्विलिखेद् भूमिं गां च संवेशयेन्न हि।
न नदीषु नदीं ब्रूयात् पर्वतेषु च पर्वतान्॥ ५६॥

आवासे भोजने वापि न त्यजेत् सहयायिनम्।
नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नातिव्रजेत् पदा॥ ५७॥

शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्।
न सर्पशस्त्रैः क्रीडेत स्वानि खानि न संस्पृशेत्।
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत्॥ ५८॥

नखोंसे भूमिपर नहीं लिखना (कुरेदना) चाहिये। गौको पकड़ना नहीं चाहिये। किसी नदीके समीप दूसरी नदियों तथा किसी पर्वतपर दूसरे पर्वतोंकी चर्चा (प्रशंसा) नहीं करनी चाहिये। भोजन अथवा निवासके समय सहयात्रीको छोड़ना नहीं चाहिये (अर्थात् साथमें रहनेवालेको छोड़कर न एकाकी भोजन करना चाहिये न एकाकीके लिये निवासकी व्यवस्था करनी चाहिये)। जलमें नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये और पैरसे आगका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। सिरपर लगानेसे बचे हुए तेलका शरीरपर लेपन नहीं करना चाहिये। सर्प एवं शस्त्रसे खेल नहीं करना चाहिये। अपनी इन्द्रियों एवं गुप्तस्थानोंके रोमोंका स्पर्श (जब चाहे तब) नहीं करना चाहिये। अशिष्ट व्यक्तिके साथ कहीं नहीं जाना चाहिये॥ ५६—५८॥

---

१. यहाँ उपदेशका निषेध है। सलाह (सम्मति, राय) देनेका निषेध नहीं है। उपदेश द्विजको सामने करके ही करना चाहिये। शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार साक्षात् उपदेश लेनेका अधिकारी शूद्र नहीं है। यह मात्र व्यवस्था है, द्वेषभाव नहीं है। 'न शूद्राय मतिं दद्यात्' मनुस्मृति (४। ८०)-की कुल्लूकभट्टकी व्याख्याके अनुसार।

२-आहुति देनेसे अवशिष्ट तिल आदि हविष्य शूद्रको नहीं देना चाहिये।

३-जो शूद्र अपना सेवक नहीं है उसे उच्छिष्ट देनेका निषेध है।

४-कृष्णमृगचर्मका ब्राह्मण ही अधिकारी है।

५-यहाँ तात्पर्य यह है कि पुत्र एवं शिष्यको योग्य बनानेका उत्तरदायित्व होता है, अतः आवश्यक होनेपर करुणाका भाव रखते हुए ताड़न किया जा सकता है।

न पाणिपादवाङ्नेत्रचापल्यं समुपाश्रयेत्।
न शिश्नोदरचापल्ये न च श्रवणयोः क्वचित्॥ ५९॥

न चाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत्।
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन॥ ६०॥

कभी भी हाथ,पैर, वाणी और नेत्र-सम्बन्धी चंचलताका आश्रय न ले। इसी प्रकार लिंग तथा उदर और कान-सम्बन्धी चंचलता नहीं करनी चाहिये। अंग एवं नखकी आवाज न करे। अंजलिसे (जल) न पिये। कभी भी हाथ अथवा पैरसे जलको न पीटे॥ ५९-६०॥

न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च।
न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम्॥ ६१॥

न भेदनमवस्फोटं छेदनं वा विलेखनम्।
कुर्याद् विमर्दनं धीमान् नाकस्मादेव निष्फलम्॥ ६२॥

नोत्सङ्गे भक्षयेद् भक्ष्यं वृथा चेष्टां च नाचरेत्।
न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्॥ ६३॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः।
न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद् बाह्यजैरपि॥ ६४॥

नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत्।
नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्॥ ६५॥

ईंटों और फलके द्वारा फलोंको नहीं तोड़ना चाहिये। म्लेच्छ भाषाकी शिक्षा न ले, पैरसे आसनको न खींचे। (नखोंद्वारा) काटने, छेदने, फोड़ने तथा लिखने-सम्बन्धी क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अकस्मात् बिना प्रयोजनके शरीर या (अङ्गोंका) मर्दन (मरोड़नेकी क्रिया) नहीं करना चाहिये। (कोई पदार्थ) गोदमें रखकर नहीं खाना चाहिये। व्यर्थकी कोई चेष्टा नहीं करनी चाहिये। नृत्य, गायन तथा वादन (जब चाहे तब) नहीं करना चाहिये। दोनों हाथोंसे अपना सिर नहीं खुजलाना चाहिये। लौकिक तथा बाह्य (विदेशी) भाषाकी स्तुतियोंसे देवताओंको संतुष्ट (करनेका प्रयास) नहीं करना चाहिये[१]। पाशोंसे (जूआ) न खेले, न दौड़े, जलमें मल-मूत्रका विसर्जन न करे। जूठे मुख नहीं रहना चाहिये और कभी भी नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये॥ ६१—६५॥

न गच्छेन्न पठेद् वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्।
न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात् सुप्तं न बोधयेत्॥ ६६॥

न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत्।
नैकः सुप्याच्छून्यगृहे स्वयं नोपानहौ हरेत्॥ ६७॥

नाकारणाद् वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत्।
न पादक्षालनं कुर्यात् पादेनैव कदाचन॥ ६८॥

नाग्नौ प्रतापयेत् पादौ न कांस्ये धावयेद् बुधः।
नाभिप्रसारयेद् देवं ब्राह्मणान् गामथापि वा।
वाय्वग्निगुरुविप्रान् वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥ ६९॥

अशुद्धः शयनं यानं स्वाध्यायं स्नानवाहनम्।
बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कथञ्चन॥ ७०॥

(नग्न अवस्थामें) न कहीं जाय, न पढ़े और न अपने सिरका स्पर्श करे। दाँतोंके द्वारा नख या रोमोंको नहीं काटना चाहिये। सोये हुए व्यक्तिको जगाना नहीं चाहिये। उगते हुए सूर्यके धूपका सेवन नहीं करना चाहिये। चिताके धुएँसे दूर रहना चाहिये। शून्य गृहमें अकेले नहीं सोना चाहिये। स्वयं अपने जूतोंको नहीं ढोना चाहिये। अकारण नहीं थूकना चाहिये। तैरकर नदीको पार नहीं करना चाहिये। कभी भी पैरद्वारा पैरको नहीं धोना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अग्निसे पैर नहीं सेंकना चाहिये। काँसेके पात्रमें पैर नहीं धोना चाहिये। देवताकी ओर, ब्राह्मणोंकी ओर एवं गौ, वायु, अग्नि, गुरु, विप्र, सूर्य तथा चन्द्रमाकी ओर पैर नहीं फैलाना चाहिये। कभी भी अपवित्र अवस्थामें सोना, दूरकी यात्रा, स्वाध्याय, स्नान, सवारीपर बैठना और घरसे बाहर नहीं निकलना चाहिये॥ ६६—७०॥

१ इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग संस्कृतके अध्ययनके अधिकारी हैं, उन्हें अवश्य संस्कृतका अध्ययन करना चाहिये और वेदादिशास्त्रोंमें निर्दिष्ट स्तुतियोंसे ही देवताओंकी स्तुति करनी चाहिये। अनधिकारके कारण या सर्वथा सामर्थ्यके अभावमें श्रद्धातिशयमें जिस किसी भाषाके द्वारा स्तुति करनी ही चाहिये। यहाँ यथाधिकार संस्कृत शास्त्रोंके अवश्य अध्ययनमें तात्पर्य है। लौकिक भाषा आदिसे स्तुतिके निषेधमें तात्पर्य नहीं है।

स्वप्नमध्ययनं स्नानमुद्वर्तं भोजनं गतिम्।
उभयोः संध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत्॥ ७१॥

न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्।
न चासनं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत्॥ ७२॥

नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान् कीर्तयेदृषीन्।
नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नानिमित्ततः॥ ७३॥

न वामहस्तेनोद्धृत्य पिबेद् वक्त्रेण वा जलम्।
नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सृजेत्॥ ७४॥

अमेध्यलिप्तमन्यद् वा लोहितं वा विषाणि वा।
व्यतिक्रमेन्न स्त्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत्।
चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमाचरेत्॥ ७५॥

दोनों संध्या-समयों तथा मध्याह्नकालमें शयन, अध्ययन, स्नान, उबटन लगाना, भोजन तथा गमनका नित्य त्याग करना चाहिये। ब्राह्मणको[१] चाहिये कि वह जूठे मुँह-हाथसे गौ, ब्राह्मण, अग्नि, आसन तथा देव-प्रतिमाका स्पर्श न करे। इसी प्रकार पैरसे भी इनका स्पर्श न करे। अपवित्रताकी स्थितिमें अग्निकी परिचर्या न करे, देवताओं तथा ऋषियों (-के नाम आदि)-का कीर्तन न करे। गहरे जलमें स्नान न करे और बिना कारण (मल-मूत्रादिका वेग) न रोके। बायें हाथसे उठाकर अथवा मुखसे (पशुके समान) जल नहीं पीना चाहिये। बिना आचमन किये उत्तर न दे और जलमें वीर्यका त्याग नहीं करना चाहिये। अपवित्र वस्तुसे लिप्त किसी वस्तु, रक्त (खून), विष तथा वेगवाली नदीका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। जलमें मैथुन नहीं करना चाहिये। अश्वत्थ वृक्षको[२] नहीं काटना चाहिये। जलमें थूकना नहीं चाहिये॥ ७१—७५॥

नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्।
तुषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन॥ ७६॥

न चाग्निं लङ्घयेद् धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित्।
न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद् बुधः॥ ७७॥

न कूपमवरोहेत नावेक्षेताशुचिः क्वचित्।
अग्नौ न च क्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशमयेत् तथा॥ ७८॥

सुहृन्मरणमार्तिं वा न स्वयं श्रावयेत् परान्।
अपण्यं कूटपण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत्॥ ७९॥

हड्डी, भस्म, कपाल, केश (बाल), कण्टक, भूसी, अंगार और शुष्क गोबरपर कभी भी बैठना नहीं चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अग्निका लंघन नहीं करना चाहिये। अग्निको कभी भी (शय्या, आसन आदिके) नीचे न रखे, न ही पैरकी ओर रखे और न मुखसे ही फूँके। कभी भी कुएँके अंदर न उतरे और न ही अपवित्र अवस्थामें उसे देखे। अग्निमें अग्निको नहीं फेंकना चाहिये और पानीसे इसे बुझाना नहीं चाहिये। मित्रके मरण तथा उसके दुःखको, (अपने दुःखको) स्वयं दूसरोंको न सुनाये। जो विक्रय-योग्य न हो तथा जो पदार्थ छलद्वारा प्राप्त हो उसे विक्रय नहीं करना चाहिये॥ ७६—७९॥

न वह्निं मुखनिःश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः।
पुण्यस्थानोदकस्थाने सीमान्तं वा कृषेन्न तु॥ ८०॥

विद्वान्‌को चाहिये कि वह अग्निको मुखके निःश्वाससे प्रज्वलित न करे। अपवित्रताकी स्थितिमें पवित्र तीर्थमें, जलवाले स्थानमें नहीं जाना चाहिये और (ग्राम आदिके) सीमा-समाप्तिकी भूमिको नहीं जोतना चाहिये॥ ८०॥

न भिन्द्यात् पूर्वसमयमभ्युपेतं कदाचन।
परस्परं पशून् व्यालान् पक्षिणो नावबोधयेत्॥ ८१॥

पहले की गयी प्रतिज्ञा या नियमको कभी भी तोड़ना नहीं चाहिये। पशु, सर्प एवं पक्षियोंको परस्पर लड़ानेके लिये उत्तेजित नहीं करना चाहिये॥ ८१॥

१-सर्वप्रथम होनेसे ब्राह्मणका निर्देश है। यहाँ ब्राह्मणप्रमुख मानवमात्रको लेना चाहिये।
२-चैत्यवृक्ष (अश्वत्थवृक्ष)—चैत्यस्तदाख्यया प्रसिद्धो वृक्षः। अश्वत्थवृक्ष इति रत्नमाला। (शब्दकल्पद्रुम)

परबाधं न कुर्वीत जलवातातपादिभिः।
कारयित्वा स्वकर्माणि कारून् पश्चान्न वञ्चयेत्।
सायंप्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नावघट्टयेत्॥ ८२॥

बहिर्माल्यं बहिर्गन्धं भार्यया सह भोजनम्।
विगृह्य वादं कुद्वारप्रवेशं च विवर्जयेत्॥ ८३॥
न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पेद् वा हसन् बुधः।
स्वमग्निं नैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत्॥ ८४॥

न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।
मुखे नैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत॥ ८५॥
परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् द्विजः।
नैकश्चरेत् सभां विप्रः समवायं च वर्जयेत्॥ ८६॥

न देवायतनं गच्छेत् कदाचिद् वाप्रदक्षिणम्।
न वीजयेद् वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत्॥ ८७॥

नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह।
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितेन वा॥ ८८॥

नोपानद्वर्जितो वाथ जलादिरहितस्तथा।
न रात्रौ नारिणा सार्धं न विना च कमण्डलुम्।
नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत् क्वचित्॥ ८९॥

न वत्सतन्त्रीं विततामतिक्रामेत् क्वचिद् द्विजः।
न निन्देद् योगिनः सिद्धान् व्रतिनो वा यतींस्तथा॥ ९०॥

जल, वायु तथा धूप आदिके द्वारा किसी दूसरेको बाधा नहीं पहुँचानी चाहिये। अपने कार्योंको करवाकर शिल्पियोंको बादमें ठगना नहीं चाहिये। भिक्षाके लिये सायंकाल और प्रातः (दूसरोंके) घरके दरवाजोंको खटखटाना नहीं चाहिये। दूसरोंके द्वारा प्रयुक्त माला[१], गन्ध और भार्याके साथ भोजन, विग्रहपूर्वक विवाद एवं कुत्सित दरवाजेसे प्रवेश—इनका त्याग करना चाहिये॥ ८२-८३॥

बुद्धिमान् ब्राह्मणको[२] खाते हुए खड़ा नहीं होना चाहिये और न ही हँसते हुए बोलना चाहिये। अपने हाथोंद्वारा अपनी अग्निका स्पर्श नहीं करना चाहिये और देरतक जलमें नहीं रहना चाहिये। अग्निको न पंखेकी हवासे प्रज्वलित करना चाहिये, न सूप (-की हवा)-से और न हाथसे (हिलाकर)। मुखसे (फुँकनीद्वारा) अग्निको प्रज्वलित नहीं करना चाहिये, क्योंकि मुखसे ही अग्नि उत्पन्न हुआ है॥ ८४-८५॥

दूसरेकी स्त्रीसे बात नहीं करनी चाहिये और द्विज (ब्राह्मण)-को चाहिये कि जो यज्ञ करने योग्य नहीं है उसका यज्ञ न कराये। विप्रको अकेले सभामें नहीं जाना चाहिये और समूहका त्याग करना चाहिये। बायेंसे देव-मन्दिरमें प्रवेश नहीं करना चाहिये। अर्थात् देवमन्दिरको अपने दाहिने करके प्रवेश करना चाहिये। वस्त्रद्वारा पंखा नहीं झलना चाहिये और देवमन्दिरमें सोना नहीं चाहिये। मार्गमें अकेले नहीं चलना चाहिये और न अधार्मिक व्यक्तियोंके साथ ही कहीं जाना चाहिये। इसी प्रकार व्याधिग्रस्त, शूद्र और पतितोंके साथ भी मार्गमें नहीं जाना चाहिये[३]। जूता और जल आदिके बिना मार्गमें नहीं चलना चाहिये। न रात्रिमें, न शत्रुके साथ और न बिना कमण्डलुके चलना चाहिये। अग्नि, गौ, ब्राह्मण आदिके बीचमेंसे होते हुए नहीं निकलना चाहिये॥ ८६—८९॥

द्विज (मानवमात्र)-को चाहिये कि वह कभी भी बछड़ेको दूध पिलाती हुई गाय तथा गायको बाँधनेवाली रस्सी अथवा उसकी पूँछका उल्लंघन न करे। योगियों, सिद्धों, व्रतपरायणों तथा संन्यासियोंकी निन्दा न करे॥ ९०॥

१-शब्दकल्पद्रुममें यह श्लोक है। वहाँ 'बहिर्माल्य' का अर्थ 'कण्ठसे बाहर निकाली हुई माला' किया गया है। इससे अन्यके द्वारा धारित तथा अपने द्वारा भी धारित पुष्पमालाका पुनः धारण निषिद्ध है, यह स्पष्ट होता है।

२-सामान्य स्थितिमें यह निषेध सबके लिये है, ब्राह्मणका उल्लेख प्रमुखताकी दृष्टिसे है।

३-यहाँ घृणाका भाव नहीं है। व्यक्ति एवं समाजके दूरगामी सुपरिणाम (कल्याण)-की दृष्टिसे यह एक सुविचारित व्यवस्था है।

देवतायतनं प्राज्ञो देवानां चैव सत्रिणाम्।
नाक्रामेत् कामतश्छायां ब्राह्मणानां च गोरपि॥ ९१॥

स्वां तु नाक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत् कदाचन॥ ९२॥

वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम्।
न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयं च पिबेद् द्विजः॥ ९३॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको देवमन्दिर, देवताओं, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों तथा गायकी परछाईको इच्छापूर्वक लाँघना नहीं चाहिये। पतित आदिसे तथा रोगियोंसे अपनी परछाईंका उल्लंघन नहीं होने देना चाहिये। अंगार, भस्म तथा केश आदिपर कभी भी बैठना नहीं चाहिये। झाड़ूकी धूल, स्नानके वस्त्र तथा (स्नानसे बचे) घड़ेके जलके छींटेसे बचना चाहिये (उसे अपने ऊपर नहीं पड़ने देना चाहिये)। द्विज (मानवमात्र)-को चाहिये कि वह अभक्षणीय पदार्थको खाये नहीं और न ही अपेय पदार्थको पीये॥ ९१—९३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

भक्ष्य एवं अभक्ष्य-पदार्थोंका वर्णन

व्यास उवाच

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद् वा यदि वान्यतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि॥ १॥

षण्मासान् यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥ २॥

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणको मोहसे अथवा अन्य किसी दूसरे कारणसे शूद्रका अन्न नहीं खाना चाहिये। जो अनापत्तिकालमें शूद्रका अन्न भक्षण करता है, वह शूद्रयोनिको प्राप्त होता है। जो द्विज छः महीनेतक लगातार शूद्रका गर्हित अन्न खाता है, वह जीते हुए शूद्र हो जाता है और मृत्युके बाद श्वान-योनिमें जन्म लेता है॥ १-२॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः।
यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात्॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इनमेंसे जिसका अन्न मृत्युके समय जिसके उदरमें रहता है, उसे उसीकी योनि प्राप्त होती है (अर्थात् ब्राह्मणका अन्न उदरमें मृत्युके समय है तो ब्राह्मण-योनि प्राप्त होगी आदि-आदि)॥ ३॥

राजान्नं नर्तकान्नं च तक्ष्णोऽन्नं चर्मकारिणः।
गणान्नं गणिकान्नं च षण्ढान्नं चैव वर्जयेत्॥ ४॥

चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा।
गान्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नं च वर्जयेत्॥ ५॥

राजा, नर्तक, बढ़ई, चर्मकार, गण[1] (सौ ब्राह्मणोंका संघ), गणिका और नपुंसकके अन्नका परित्याग करना चाहिये। चक्रके आधारपर अपनी जीविका चलानेवाला (तैलिक—तेली)[2], धोबी, चोर, ध्वजी[3] (मद्यविक्रय-जीवी), गायक, लौहकार और सूतकके अन्नका त्याग करना चाहिये॥ ४-५॥

१-मनुस्मृति (४।२०९)-की कुल्लूकभट्टकी व्याख्याके अनुसार 'गण' का अर्थ 'शतब्राह्मणसंघ' है। शत संख्याको अनेक संख्यापरक मानकर ब्राह्मण-समूहका अन्न परित्याज्य समझना चाहिये।

२-मनुस्मृति (४।८४)-के अनुसार चक्रोपजीवीका अर्थ तैलिक है।

३-मनुस्मृति (४।८४)-के अनुसार ध्वजीका अर्थ मदिराविक्रयके द्वारा जिस जातिके लोग जीविका चलाते हैं, उस जातिके लोग हैं। इन्हें संस्कृतमें 'शौण्डिक' कहते हैं।

कुलालचित्रकर्मान्नं वार्धुषेः पतितस्य च।
पौनर्भवच्छत्रिकयोरभिशस्तस्य चैव हि॥ ६ ॥

सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च।
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डिकस्य च॥ ७ ॥

स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च।
सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः॥ ८ ॥

भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे।
उत्सृष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः॥ ९ ॥

कुम्भकार, चित्रकार, वार्धुषि[1] (कर्ज देकर सूदसे जीविका चलानेवाले), पतित, विधवाके पुनर्विवाहके अनन्तर अथवा पति-परित्यक्तासे उत्पन्न पुरुष[2], छत्रिक[3] (नापित), अभिशस्त (चोरी, मैथुन आदि आरोपसे ग्रस्त), स्वर्णकार, नट, व्याध, बन्धनप्राप्त, आतुर (रोगी), चिकित्सक, व्यभिचारिणी स्त्री तथा दण्डधर (दण्ड देनेवाले, नियामक—जल्लाद आदि)-का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये। चोर, नास्तिक, देवनिन्दक, सोमलता-विक्रयी तथा विशेषरूपसे चाण्डालका और स्त्रीके वशीभूत तथा जिसके घरमें उस स्त्रीका उपपति हो, (समाजद्वारा) परित्यक्त, कृपण और जूठा भोजन करनेवालेका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये॥ ६—९॥

अपाङ्क्त्यान्नं च सङ्घान्नं शस्त्राजीवस्य चैव हि।
क्लीबसंन्यासिनोश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि।
भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिक्षुतम्॥ १०॥

ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च।
वृथापाकस्य चैवान्नं शावान्नं श्वशुरस्य च॥ ११ ॥

अप्रजानां तु नारीणां भृतकस्य तथैव च।
कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥ १२ ॥

पंक्तिसे बहिष्कृत, समूहके आश्रित, शस्त्रसे आजीविका चलानेवाला, क्लीब (नपुंसक), संन्यासी, मत्त, उन्मत्त, भयभीत, रोते हुए व्यक्तिके तथा अभिशप्त एवं छींकसे अशुद्ध अन्नको ग्रहण नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणसे द्वेष करनेवालों, पापबुद्धि, श्राद्ध तथा अशौचसम्बन्धी अन्न, निष्प्रयोजन बने हुए भोजन (ईश्वर-समर्पणबुद्धिसे न बना हुआ), शव-सम्बन्धी तथा ससुरका[4] अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये। बिना संतानवाली स्त्री, भृत्य, शिल्पी (कारीगर[5]) तथा शस्त्रविक्रयीका अन्न विशेष-रूपसे त्याग करना चाहिये॥ १०—१२॥

शौण्डान्नं घाटिकान्नं च भिषजामन्नमेव च।
विद्धप्रजननस्यान्नं परिवित्त्यन्नमेव च॥ १३ ॥

पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः।
अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम्।
गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम्॥ १४॥

शौण्ड (मद्य बनानेवाले जातिविशेषके लोग), स्तुति करनेवाले 'भाट'-जातिके लोगों, भिषक् (जिससे रोग भयभीत हो), विद्धलिंगी और ज्येष्ठ भाईके अविवाहित रहनेपर विवाह कर लेनेवाले छोटे भाईका अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। दो बार विवाह करनेवाली स्त्री[6] तथा ऐसी स्त्रीके पतिका अन्न विशेषरूपसे त्याज्य है। अनादरपूर्वक दिया गया, तिरस्कारपूर्वक दिया गया, रोष एवं अभिमानपूर्वक दिया हुआ अन्न, इसी प्रकार गुरुके संस्कारहीन अन्नको ग्रहण नहीं करना चाहिये॥ १३-१४॥

१-अमरकोष (२।९।५)-के अनुसार।
२-मनुस्मृति (९।१७५)-के अनुसार।
३-शब्दकल्पद्रुमके अनुसार।
४-आलसी या प्रमादी होकर श्वशुरगृहमें स्थायीरूपसे रहनेके साथ वहाँका अन्न ग्रहण करना निषिद्ध है।
५-बढ़ई, जुलाहा, नाई, धोबी और चर्मकार—इन पाँचको 'कारु' या 'शिल्पी' कहा जाता है।
६-मूलमें 'पुनर्भू' शब्द है। इसका पर्याय 'दिधीषू' है। ये दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। इनका अर्थ दो बार विवाह करनेवाली स्त्री है (शब्दकल्पद्रुम, अमरकोश)।

दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्।
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्॥ १५॥

मनुष्यका किया हुआ सारा पाप अन्नमें स्थित रहता है। इसलिये जो जिसका अन्न ग्रहण करता है, वह उसके पापका ही भक्षण करता है॥ १५॥

आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥ १६॥

कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एव च।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधैः॥ १७॥

पायसं स्नेहपक्वं यद् गोरसं चैव सक्तवः।
पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं द्विजातिभिः॥ १८॥

आर्द्धिक (जो शूद्र द्विजातिके घर हल जोतकर उसके पारिश्रमिक-रूपमें अन्न प्राप्त करता है), कुलमित्र (पिता-पितामहकी परम्परासे जो द्विजातिके घर रहता आया है तथा अभिन्न सहयोगी है), जो अपने गौओंका पालन करनेवाला है, नापित तथा जिस शूद्रने मन, वाणी और कर्मसे सर्वथा स्वयंको 'मैं आपका ही हूँ'—इस रूपमें समर्पित कर दिया है—ऐसे शूद्रका अन्न ग्रहण किया जा सकता है। बुद्धिमान् व्यक्तिको शूद्रोंमें नाटक आदिसे जीविका चलानेवालों (चारण, कत्थक), कुम्हार और खेतमें काम करनेवालोंका अन्न थोड़ा मूल्य देकर ग्रहण करना चाहिये। द्विजातियोंद्वारा दूधका[1] विकार—मक्खन-खोआ आदि, घृतमें पके पदार्थ, गोरस (दूध), सत्तू, पिण्याक (खली, शिलाजीत, केसर, हींग इत्यादि) तथा तेल—ये पदार्थ शूद्रोंसे ग्रहण किये जा सकते हैं॥ १६—१८॥

वृन्ताकं नालिकाशाकं कुसुम्भाश्मन्तकं तथा।
पलाण्डुं लशुनं शुक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत्॥ १९॥

छत्राकं विड्वराहं च शेलुं पेयूषमेव च।
विलयं सुमुखं चैव कवकानि च वर्जयेत्॥ २०॥

गृञ्जनं किंशुकं चैव ककुभाण्डं तथैव च।
उदुम्बरमलाबुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः॥ २१॥

बैगन, नालिकासाग[2], कुसुम्भ (पुष्पविशेष), अश्मन्तक[3], प्याज, लहसुन, शुक्त[4] और वृक्षके गोंदका परित्याग करना चाहिये। छत्राक, विड्वराह (ग्राम्य-सूकर), शेलु[5] (वनमेथी), पेयूष[6], विलय, सुमुख[7], कवक, (कुकुरमुत्ता), किंशुक (पलाश), ककुभाण्ड, उदुम्बर (गूलर) तथा अलाबु (वर्तुलाकार—गोल लौकी)-का भक्षण करनेसे द्विज पतित हो जाता है॥ १९—२१॥

१-मूलमें 'पायस' शब्द है। इसका अर्थ खीर नहीं करना चाहिये। शब्दकल्पद्रुममें उद्धृत तिथितत्त्वके वराहपुराणीय वचनके अनुसार यहाँ पायसका अर्थ दुग्धविकार ही है।

२-'नालिकाशाक' मूलमें पठित है। सुश्रुत (१। ४६)-में इसकी चर्चा है। ग्राम्य भाषामें इसे 'भँसीड़' कहते हैं। यह तालाबमें होता है। इसमें पत्ते नहीं होते हैं। मात्र डंठल होता है। डंठलके भीतर छिद्र होते हैं। आप्तपरम्परामें इसका भक्षण निषिद्ध माना जाता है।

३-अश्मन्तक—तृणविशेष 'अम्लकुचाई' लोकभाषा। पर्याय 'अम्लोटक' (रत्नमाला) इसके गुण राजनिर्घण्टमें वर्णित हैं। (शब्दकल्पद्रुम)

४-'शुक्त' उसे कहते हैं जो स्वभावतः मधुर हो तथा कालवश (समयानुसार) खट्टी हो जाय। जैसे काँजी (प्रायश्चित्तविवेक)। मनुस्मृति (२। १७७)-के अनुसार भी जो स्वभावतः मधुर हो, पर समयवश जल आदिमें रखनेसे अम्ल (खट्टी) हो जाय वह शुक्त है। किंतु शुक्तके रूपमें दही और दहीसे बननेवाले मट्ठा आदि पदार्थ भक्ष्य हैं।

५-शेलु—श्लेष्मातक (लोकभाषा—लिसोढ़ा) अमरकोश।

६-पेयूष—नवप्रसूता गौका अग्निसंयोगसे कठिन किया गया दूध (फेनुष, इत्रर लोकभाषामें) यह भैंस-बकरीका भी निषिद्ध है।

७-सुमुख—शाकविशेष। इसका पर्याय—वनवर्व्वरिका, वर्व्वर है। (राजनिर्घण्ट) (शब्दकल्पद्रुम)।

वृथा कृशरसंयावं पायसापूपमेव च।
अनुपाकृतमांसं च देवान्नानि हवींषि च॥ २२॥

यवागूं मातुलिङ्गं च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्।
नीपं कपित्थं प्लक्षं च प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ २३॥

पिण्याकं चोद्धृतस्नेहं देवधान्यं तथैव च।
रात्रौ च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत्॥ २४॥

नाश्नीयात् पयसा तक्रं न बीजान्युपजीवयेत्।
क्रियादुष्टं भावदुष्टमसत्संगं च वर्जयेत्॥ २५॥

देवताके उद्देश्यसे नहीं केवल अपने लिये पकाये गये कृशरान्न (तिल-चावलके बने पदार्थ), संयाव (लपसी), खीर एवं पुआका तथा देवान्न (देवताके लिये समर्पित अन्न), हवनके योग्य द्रव्य (पुरोडाश आदि), यवागू (जौकी काँजी), मातुलिंग (बिजौरा नीबू), देव-पित्र्यकर्ममें कदम्ब, कपित्थ (कैथ) और प्लक्ष (पर्कटी—पाकड़)-का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये। तेल निकाली हुई खली, देवताका धान्य और रात्रिमें तिल-सम्बन्धी पदार्थ तथा दहीका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। दूधके साथ मट्ठेका सेवन नहीं करना चाहिये। बीजोंके द्वारा जीविकाका निर्वाह नहीं करना चाहिये। कर्मसे दूषित और भावसे दूषित तथा दुर्जनोंसे सम्बन्धका परित्याग करना चाहिये॥ २२—२५॥

केशकीटावपन्नं च सहृल्लेखं च नित्यशः।
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा॥ २६॥

उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च।
अनर्चितं पर्युषितं पर्यायान्नं च नित्यशः॥ २७॥

काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव संयुतम्।
मनुष्यैरप्यवघ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च॥ २८॥

न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोषया।
मलवद्वाससा वापि परवासोऽथ वर्जयेत्॥ २९॥

विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्रं वानिर्दशं तथा।
आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत्॥ ३०॥

केश (बाल) और कीड़ोंसे युक्त, जिस अन्नको लेकर मनमें विचिकित्सा हो, कुत्तेद्वारा सूँघा हुआ, दुबारा पकाया गया, चाण्डाल, रजस्वला तथा पतितके द्वारा देखा गया और गाय-बैल आदि गोजातिद्वारा सूँघा हुआ, अनादरपूर्वक प्राप्त, बासी तथा पर्यायान्नका[1] नित्य परित्याग करना चाहिये। कौआ एवं मुर्गासे स्पृष्ट, कृमि-युक्त, मनुष्योंद्वारा सूँघे गये तथा कुष्ठ रोगीसे स्पर्श किये गये अन्नका परित्याग करना चाहिये। रजस्वलासे प्राप्त, क्रोधयुक्त व्यभिचारिणी स्त्रीद्वारा दिया गया और मलिन वस्त्र धारण करनेवाले व्यक्तिके द्वारा (दिये अन्नका) और दूसरेके वस्त्रका परित्याग करना चाहिये। मनुने बताया है कि बछड़े-रहित गौ, ऊँटनी और दस दिनोंके भीतर ब्यायी हुई (गौ इत्यादि)-का दूध तथा भेड़ी एवं गर्भिणी गौका दूध पीने योग्य नहीं है॥ २६—३०॥

बलाकं हंसदात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा।
कुररं च चकोरं च जालपादं च कोकिलम्॥ ३१॥
वायसं खञ्जरीटं च श्येनं गृध्रं तथैव च।
उलूकं चक्रवाकं च भासं पारावतानपि।
कपोतं टिट्टिभं चैव ग्रामकुक्कुटमेव च॥ ३२॥

१-(क) मूलमें 'पर्यायान्न' शब्द है। इसका अर्थ याज्ञ० स्मृ० आचा० १६८ वें श्लोककी मिताक्षरा व्याख्याके अनुसार वह अन्न है जो अन्यस्वामिक है और अन्यको दिया जाय। जैसे ब्राह्मणस्वामिक अन्नको शूद्र दे, शूद्रस्वामिक अन्नको ब्राह्मण दे। ऐसा अन्न ग्रहण करनेपर चान्द्रायणव्रत प्रायश्चित्त है।

(ख) एक दूसरे मतके अनुसार एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवालोंमें किसी एकके उठकर आचमन कर लेनेके उपरान्त सभी भोजन करनेवालोंके अन्नको 'पर्यायान्न' कहा जाता है।

सिंहव्याघ्रं च मार्जारं श्वानं शूकरमेव च।
शृगालं मर्कटं चैव गर्दभं च न भक्षयेत्॥ ३३॥
न भक्षयेत् सर्वमृगान् पक्षिणोऽन्यान् वनेचरान्।
जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा॥ ३४॥
गोधा कूर्मः शशः श्वाविच्छल्यकश्चेति सत्तमाः।
भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः॥ ३५॥
मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान्मांसं रौरवमेव च।
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा॥ ३६॥
मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम्।
वाध्रीणसं वकं भक्ष्यं मीनहंसपराजिताः॥ ३७॥
शफरं सिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ।
मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणाय द्विजोत्तमाः॥ ३८॥
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया।
यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये॥ ३९॥
भक्षयेन्नैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते।
औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात्॥ ४०॥
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत्॥ ४१॥
अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव च।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥ ४२॥
तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्यं नित्यं विवर्जयेत्।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः॥ ४३॥
भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः।
नाधिकारी भवेत् तावद् यावद् तन्न जहात्यधः॥ ४४॥
तस्मात् परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः।
अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम्॥ ४५॥

द्विजोंके लिये मद्य न दान देने योग्य है, न पीने योग्य है, न स्पर्श करने योग्य है और न ही देखने योग्य है—ऐसी हमेशाके लिये मर्यादा बनी है। इसलिये सब प्रकारसे मद्यका नित्य ही परित्याग करना चाहिये। मद्य पीनेसे द्विज कर्मोंसे पतित और बातचीत करनेके अयोग्य हो जाता है। अभक्ष्यका भक्षण करने और अपेय पदार्थोंका पान करनेसे द्विज तबतक अपने कर्मका अधिकारी नहीं होता, जबतक उसका पाप दूर नहीं हो जाता। इसलिये प्रयत्नपूर्वक नित्य ही विप्र (द्विज)-को अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। यदि द्विज ऐसा करता है अर्थात् इन्हें ग्रहण करता है तो उसे रौरव नरकमें जाना पड़ता है॥ ४२—४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

गृहस्थके नित्यकर्मोंका वर्णन, प्रातःस्नानकी महिमा, छः प्रकारके स्नान, संध्योपासनकी महिमा तथा संध्योपासनविधि, सूर्योपस्थानका माहात्म्य, सूर्यहृदयस्तोत्र, अग्निहोत्रकी विधि, तर्पणकी विधि, नित्य किये जानेवाले पञ्चमहायज्ञोंकी महिमा तथा उनका विधान

ऋषय ऊचुः

अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने।
तदाचक्ष्वाखिलं कर्म येन मुच्येत बन्धनात्॥ १ ॥

व्यास उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं गदतो मम।
अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां क्रमाद् विधिम्॥ २ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय धर्ममर्थं च चिन्तयेत्।
कायक्लेशं तदुद्भूतं ध्यायीत मनसेश्वरम्॥ ३ ॥

उषःकालेऽथ सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः।
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि॥ ४ ॥

प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत्॥ ५ ॥

ऋषियोंने कहा—महामुने! आप द्विजोंके प्रतिदिन किये जानेवाले उन कर्मोंका सम्पूर्ण-रूपसे वर्णन करें, जिनका अनुष्ठान करनेसे बन्धनसे मुक्ति प्राप्त होती है॥ १॥

व्यासजी बोले—मैं बतला रहा हूँ। आप लोग ध्यानपूर्वक मेरे द्वारा कहे जा रहे ब्राह्मणोंके प्रतिदिन किये जानेवाले कर्मोंको और उनके विधानको सुनें[1]। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म और अर्थ एवं (उनकी सम्पन्नताके लिये) अपेक्षित शारीरिक आयास (क्या कब कैसे करना है आदि)-का चिन्तन करे तथा मनसे ईश्वरका ध्यान करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि ऊषाकाल होनेपर आवश्यक कर्मोंको करके विधिपूर्वक शौच आदिसे निवृत्त होकर शुद्ध जलवाली नदियोंमें स्नान करे। प्रातःस्नान करनेसे पाप करनेवाले व्यक्ति भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे प्रातःकाल स्नान करना चाहिये॥ २—५॥

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं शुभम्।
ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातःस्नानान्न संशयः॥ ६ ॥

मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि।
ततो नैवाचरेत् कर्म अकृत्वा स्नानमादितः॥ ७ ॥

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्।
प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः॥ ८ ॥

न च स्नानं विना पुंसां पावनं कर्म सुस्मृतम्।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत्॥ ९ ॥

अशक्तावशिरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते।
आर्द्रेण वाससा वाथ मार्जनं कापिलं स्मृतम्॥ १०॥

दृष्ट और अदृष्ट फल देनेवाले प्रातःकालीन शुभ स्नानकी सभी प्रशंसा करते हैं। नित्य प्रातःकाल स्नान करनेसे ही ऋषियोंका ऋषित्व है, इसमें संशय नहीं; क्योंकि सोये व्यक्तिके मुखसे निरन्तर लार बहती रहती है, अतः सर्वप्रथम स्नान किये बिना कोई कर्म नहीं करना चाहिये। प्रातः-स्नानसे अलक्ष्मी, कालकर्णी[2] (अलक्ष्मीविशेष) दुःस्वप्न, बुरे विचार और अन्य पाप दूर हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। बिना स्नानके मनुष्योंको पवित्र करनेवाला कोई कर्म नहीं बतलाया गया है। अतः होम तथा जपके समय विशेष-रूपसे स्नान करना चाहिये। असमर्थताकी स्थितिमें सिरको छोड़कर स्नान करनेका विधान किया गया है। अथवा भीगे वस्त्रसे शरीरका मार्जन करना चाहिये, इसे कपिलस्नान कहा गया है॥ ६—१०॥

१-इस अध्यायमें गृहस्थके प्रायः सभी अनुष्ठानोंका वर्णन है, पर क्रमसे नहीं है। क्रमका ज्ञान गृह्यसूत्र, आह्निकसूत्रावली, नित्यकर्मविधि आदि ग्रन्थोंसे करना चाहिये। इस अध्यायका उद्देश्य सभी कर्मोंका परिचय कराना है। कर्मोंका क्रम बताना उद्देश्य नहीं है।

२-कालकर्णी—अलक्ष्मी (शब्दकल्पद्रुम)।

असामर्थ्ये समुत्पन्ने स्नानमेवं समाचरेत्।
ब्राह्मादीनि यथाशक्तो स्नानान्याहुर्मनीषिणः॥ ११॥

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च।
वारुणं यौगिकं तद्वत् षोढा स्नानं प्रकीर्तितम्॥ १२॥

ब्राह्मं तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद्देहधूलनम्॥ १३॥

गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद् दिव्यमुच्यते॥ १४॥

वारुणं चावगाहस्तु मानसं त्वात्मवेदनम्।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगो विष्णुविचिन्तनम्॥ १५॥

सामर्थ्य न रहनेपर यही (कपिल-) स्नान करना चाहिये। मनीषियोंने यथाशक्ति किये जानेवाले ब्राह्म आदि स्नानोंको बतलाया है। ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण तथा यौगिक—ये छः स्नान कहे गये हैं। कुशोंके द्वारा जलबिन्दुओंसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक मार्जन करना ब्राह्म-स्नान कहलाता है। मस्तकसे पैरोंतक समस्त देहमें भस्मका उपलेपन करना आग्नेय-स्नान है। गायोंकी धूलसे सम्पन्न उत्तम स्नानको वायव्य-स्नान कहा गया है। धूपमें वर्षाके जलसे जो स्नान किया जाता है, वह दिव्य-स्नान कहलाता है। (जलमें) डुबकी लगाकर किया गया स्नान वारुण-स्नान और मनसे आत्मतत्त्वका चिन्तन करना यौगिक-स्नान कहा गया है। विष्णुका चिन्तन ही योग है॥ ११—१५॥

आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः।
मनःशुचिकरं पुंसां नित्यं तत् स्नानमाचरेत्॥ १६॥

शक्तश्चेद् वारुणं विद्वान् प्राजापत्यं तथैव च।
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वा विधानतः॥ १७॥

ब्रह्मवादियोंसे सेवित इस (यौगिक) स्नानको आत्मतीर्थ कहा गया है। यह मनुष्योंके मनको पवित्र बनानेवाला है। इसलिये यह स्नान नित्य करना चाहिये। समर्थ होनेपर विद्वान्‌को वारुण तथा प्राजापत्य (ब्राह्म)-स्नान करना चाहिये। दन्तकाष्ठको धोकर विधिपूर्वक उसका भक्षण (चर्वण) करना चाहिये॥ १६-१७॥

आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत्।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम्॥ १८॥

सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात् तदग्रेण तु धावयेत्।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्।
अपामार्गं च बिल्वं च करवीरं विशेषतः॥ १९॥

वर्जयित्वा निन्दितानि गृहीत्वैकं यथोदितम्।
परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद् वै विधानवित्॥ २०॥

नोत्पाटयेद् दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्या धावयेत् क्वचित्।
प्रक्षाल्य भङ्क्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥ २१॥

(दतुअन करके) आचमनकर (मुख-प्रक्षालनकर) प्रयत्नपूर्वक नित्य प्रातःस्नान करना चाहिये। मध्यमा अंगुलिके समान मोटा और बारह अंगुलके बराबर लंबा छिलके-युक्त दन्तकाष्ठके अग्रभागसे मुखशुद्धि करनी चाहिये। विशेषरूपसे दूधवाले वृक्ष, मालती (चमेली), अपामार्ग, बिल्व तथा करवीर (कनेर)-की लकड़ीका दन्तकाष्ठ शुभ होता है। विधिके ज्ञाताको चाहिये कि दोषपूर्ण (निषिद्ध) दिनको छोड़कर तथा निन्दित काष्ठोंको छोड़कर बताये गये दन्तकाष्ठोंमेंसे किसी एकको ग्रहणकर दन्तधावन करना चाहिये। दन्तकाष्ठको उखाड़ना नहीं चाहिये (अर्थात् किसी छोटे पौधेको पूरा उखाड़कर उससे दन्तधावन नहीं करना चाहिये) और न कभी अँगुलीसे दतुअन करना चाहिये। (मुख) धोनेके उपरान्त उसे (दन्तकाष्ठको) तोड़कर सावधानीसे किसी पवित्र स्थानमें (यथास्थान) त्याग देना चाहिये॥ १८—२१॥

स्नात्वा संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
आचम्य मन्त्रवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः॥ २२॥

अनन्तर पवित्र देशमें स्नान करके आचमनपूर्वक देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको यथाधिकार मन्त्रपूर्वक यथाविधि तृप्त करना चाहिये॥ २२॥

सम्मार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आपो हि ष्ठा व्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः॥ २३॥

ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद् भास्करं प्रति तन्मनाः॥ २४॥

प्राक्कूलेषु समासीनो दर्भेषु सुसमाहितः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत् संध्यामिति श्रुतिः॥ २५॥

तदनन्तर पुनः आचमन करे और संयतवाणीवाला होकर '**आपो हि ष्ठा**' इत्यादि मन्त्र, व्याहृतियों, गायत्रीमन्त्र तथा वरुण-सम्बन्धी शुभ मन्त्रोंका पाठ करते हुए जलबिन्दुओंसे युक्त कुशोंके द्वारा अपना मार्जन करे। ओंकार एवं व्याहृतियोंसे युक्त वेदमाता गायत्री (-मन्त्र)-का जप करके तन्मय होकर सूर्यको जलाञ्जलि देनी चाहिये। तदनन्तर पूर्वकी ओर बिछे हुए कुशासनपर सावधानीपूर्वक बैठकर तीन प्राणायाम करके संध्याका ध्यान करना चाहिये। ऐसा श्रुतिका विधान है॥ २३—२५॥

या संध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला।
ऐश्वरी तु पराशक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा॥ २६॥

ध्यात्वार्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपन् बुधः।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत्॥ २७॥

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलमाप्नुयात्॥ २८॥

अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपास्य विधिवत् संध्यां प्राप्ताः पूर्वं परां गतिम्॥ २९॥

योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः।
विहाय संध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम्॥ ३०॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन संध्योपासनमाचरेत्।
उपासितो भवेत् तेन देवो योगतनुः परः॥ ३१॥

जो संध्या है वही जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली है, मायातीत है, निष्कल है और तीन तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाली ईश्वरकी पराशक्ति है। विद्वान् ब्राह्मण (द्विज)-को पूर्वाभिमुख होकर सूर्यमण्डलमें प्रतिष्ठित सावित्री (गायत्रीमन्त्र)-का ध्यानपूर्वक जप करते हुए संध्योपासना करनी चाहिये। संध्यासे हीन व्यक्ति (द्विज) नित्य अपवित्र और सभी कर्मोंको करनेके लिये अयोग्य होता है। वह जो भी कार्य करता है, उसका उसे कोई फल प्राप्त नहीं होता। पूर्वकालमें वेदके पारंगत शान्त ब्राह्मणोंने अनन्य-मनसे संध्योपासना करके परम गतिको प्राप्त किया था। जो द्विजोत्तम संध्यावन्दनको छोड़कर दूसरे धार्मिक कार्योंके लिये प्रयत्न करता है, वह सहस्रों नरकोंमें जाता है। इसलिये सभी प्रयत्नोंसे संध्योपासना करनी चाहिये। उस उपासनासे योगविग्रह परमदेवकी उपासना हो जाती है॥ २६—३१॥

सहस्रपरमां नित्यं शतमध्यां दशावराम्।
सावित्रीं वै जपेद् विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः स्थितः॥ ३२॥

अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयन्तं समाहितः।
मन्त्रैस्तु विविधैः सौरैर्ऋग्यजुःसामसम्भवैः॥ ३३॥

उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम्।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः॥ ३४॥

विद्वान् व्यक्तिको नित्य पूर्वाभिमुख होकर सावित्री (-मन्त्र)-का सावधानीपूर्वक जप करना चाहिये। हजार बारका जप उत्कृष्ट, सौ बार किया गया जप मध्यम तथा दस बारका जप निम्नकोटिका होता है। इसके बाद खड़े होकर ध्यान लगाकर उदित होते हुए सूर्यकी ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें वर्णित सूर्य-सम्बन्धी विविध मन्त्रोंद्वारा उपासना करनी चाहिये। महायोगरूप देवाधिदेव दिवाकरका उपस्थान करके उसी मन्त्रद्वारा भूमिपर मस्तक झुकाकर प्रणाम करना चाहिये और निम्नलिखित मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिये—॥ ३२—३४॥

ओं खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे।
नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे॥ ३५॥

त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम्।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वे रुद्राः सनातनाः।
पुरुषः सन्महोऽतस्त्वां प्रणमामि कपर्दिनम्॥ ३६॥

त्वमेव विश्वं बहुधा सदसत् सूयते च यत्।
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः॥ ३७॥

प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय ते।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणं गतः॥ ३८॥

हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः।
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः॥ ३९॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने।
विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय ते नमः॥ ४०॥
नमो हंसाय ते नित्यमादित्याय नमोऽस्तु ते।
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमोऽस्तु ते॥ ४१॥

प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम्।
हिरण्मयं गृहे गुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम्॥ ४२॥

नमस्यामि परं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परां गतिम्।
विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम्॥ ४३॥

नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने।
उग्राय सर्वभक्षाय त्वां प्रपद्ये सदैव हि॥ ४४॥

एतद् वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम्।
प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद् दिवाकरम्॥ ४५॥

मैं ओंकाररूप शान्त, कारणत्रयके[1] हेतुरूप खखोल्क[2] (सूर्य)-के प्रति अपनेको समर्पित करता हूँ। ज्ञानरूपी आप (सूर्य)-को नमस्कार है। ब्रह्मरूपी घृणि[3] सूर्य! आपको नमस्कार है। आप ही परम ब्रह्म, अप्, ज्योति, रस और अमृतस्वरूप हैं। आप ही भूः, भुवः, स्वः, ओंकार तथा समस्त सनातन रुद्र हैं। आप सत्स्वरूप और महान् पुरुष हैं। आप कपर्दीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप ही अनेक रूपवाले सत्-असत्-रूप समस्त विश्वको उत्पन्न करते हैं। सूर्यरूप रुद्रको नमस्कार है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप प्रचेताको नमस्कार है। मीढुष्टम[4]! आपको नमस्कार है। रुद्रके लिये बार-बार नमस्कार है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप हिरण्यबाहु तथा हिरण्यपतिको नमस्कार है। अम्बिकाके पति तथा उमाके पति आपको नमस्कार है। नीलग्रीवको नमस्कार है तथा आप पिनाकीको नमस्कार है। विलोहित, भर्ग तथा सहस्राक्ष! आपको नमस्कार है॥ ३५—४०॥

आप हंसको नित्य नमस्कार है। आदित्य ! आपको नमस्कार है। वज्रहस्त तथा त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है। मैं आप विरूपाक्ष महान् परमेश्वरकी शरणमें हूँ। सभी देहधारियोंके हिरण्मय गृहमें (हृदयमें) आप अपनेको गुह्यरूपसे प्रतिष्ठित किये हैं। परम ज्योतिरूप, परमगति, विश्वरूप, पशुपति, भीम तथा अर्ध-नारीश्वर-रूपवाले आप ब्रह्माको मैं नमस्कार करता हूँ। प्रकाशमान सूर्यरूप परमेष्ठी रुद्रको नमस्कार है। उग्र तथा सभीके भजनीय[5] आपकी मैं सदा ही शरण ग्रहण करता हूँ॥ ४१—४४॥

इस सूर्यहृदय (नामक) उत्तम स्तोत्रका प्रातः-काल तथा मध्याह्नकालमें जपकर दिवाकरको नमस्कार करना चाहिये॥ ४५॥

१- यहाँ कारणत्रयसे मन, बुद्धि एवं अहंकार विवक्षित हैं। इन तीनोंको क्रियाशील बनानेमें सूर्य एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं।

२- खखोल्क—ख (आकाश) ख (इन्द्रियों)-में क्रमशः सूर्य तथा आत्मारूपसे जो उल्काके समान बाहर-भीतर प्रकाशक-रूपमें विद्यमान हैं, वे खखोल्क हैं। काशीखण्ड ५० वें अध्यायमें खखोल्क नामके सूर्यका वर्णन है। ये काशीमें स्थित हैं।

३-घृणि—सूर्यका नाम है—जिघर्ति दीप्यते इति घृणिः=दीप्तिशाली।

४-मीढुष्टम—शिवका नाम है (श्रीमद्भागवत स्कन्ध ४ अ० ६)। सूर्यमें सभी देवताओंकी भावना एवं उपासनाका विधान होनेसे सूर्यको मीढुष्टम कहा गया है। रुद्र आदिके रूपमें सूर्यके उल्लेखका भी यही कारण है।

५ 'सर्वः भक्षः यस्य सः' बहुव्रीहि समास हुआ है। इससे अभिप्राय यह निकलता है कि रुद्र सबके लिये भजनीय हैं।

इदं पुत्राय शिष्याय धार्मिकाय द्विजातये।
प्रदेयं सूर्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम्॥ ४६॥

सर्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम्।
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम्॥ ४७॥

ब्रह्माके द्वारा प्रदर्शित, सभी पापोंका शमन करनेवाले, वेदोंके सारसे प्रकट हुए, ब्राह्मणोंके हितकारी, पवित्र और ऋषिसमूहोंद्वारा सेवित इस सूर्यहृदय (स्तोत्र)-का द्विजाति-कुलोत्पन्न धार्मिक पुत्र एवं शिष्यके लिये उपदेश करना चाहिये॥ ४६-४७॥

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्॥ ४८॥

ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयुर्वा यथाविधि॥ ४९॥

पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लाम्बरधरोत्तरः।
अनन्यमानसो वह्निं जुहुयात् संयतेन्द्रियः॥ ५०॥

तदनन्तर घर आकर ब्राह्मण (द्विज)-को विधिपूर्वक आचमन करके अग्नि प्रज्वलित कर यथाविधि अग्निमें हवन (अग्निहोत्र) करना चाहिये। (अग्न्याधान करनेवाला यजमान द्विजाति यदि किसी अपरिहार्य कारणवश स्वयं अग्निहोत्र नहीं कर सकता है तो उसके प्रतिनिधि-रूपमें) ऋत्विक्‌का पुत्र (यज्ञोपवीत-संस्कार-सम्पन्न पुत्र), पत्नी, शिष्य (यज्ञोपवीती) अथवा (यज्ञोपवीती) सहोदर भाई भी विशेषरूपसे आज्ञा प्राप्तकर विधिपूर्वक हवन (अग्निहोत्र) कर सकता है। हाथमें पवित्री धारणकर, पवित्रात्मा होकर, शुक्लवर्णका वस्त्र एवं उत्तरीय वस्त्र धारणकर एकाग्रमनसे इन्द्रियोंको संयमित करते हुए अग्निमें हवन करे॥ ४८—५०॥

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।
राक्षसं तद्भवेत् सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्॥ ५१॥

बिना कुशके और बिना यज्ञोपवीतके जो भी कर्म किया जाता है, वह सब राक्षसी कर्म होता है, वह न इस लोकमें फल देता है और न परलोकमें॥ ५१॥

दैवतानि नमस्कुर्याद् देयसारान्निवेदयेत्।
दद्यात् पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत्॥ ५२॥

गुरुं चैवाप्युपासीत हितं चास्य समाचरेत्।
वेदाभ्यासं ततः कुर्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः॥ ५३॥

जपेदध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विचारयेत्।
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः।
वैदिकांश्चैव निगमान् वेदाङ्गानि विशेषतः॥ ५४॥

देवताओंको नमस्कार करना चाहिये। उन्हें प्रदान की जानेवाली (शास्त्रविहित) वस्तुओंमें उत्तमोत्तम वस्तुओंको ही निवेदित करना चाहिये। उन्हें (देवताओंको) पुष्प आदि (पदार्थ) समर्पित करना चाहिये और वृद्धजनोंका अभिवादन करना चाहिये। गुरुकी भी उपासना करनी चाहिये, उनका हित करना चाहिये। तदनन्तर द्विजको यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक वेदोंका अभ्यास करना चाहिये। द्विजोत्तमको जप करना चाहिये। शिष्योंको पढ़ाना चाहिये। (पढ़े विषयोंको) धारण करना चाहिये और (उसपर) विचार करना चाहिये। शास्त्रोंका अवलोकन तथा धर्मका—विशेषरूपसे वैदिक तथा वेदसम्मत शास्त्रों और वेदाङ्गोंका चिन्तन करना चाहिये॥ ५२—५४॥

उपेयादीश्वरं चाथ योगक्षेमप्रसिद्धये।
साधयेद् विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे ततो द्विजः॥ ५५॥

अनन्तर योग (अप्राप्तकी प्राप्ति), क्षेम (प्राप्तकी रक्षा)-के लिये ईश्वर (धार्मिक राजा अथवा श्रीमान्)-के समीप जाना चाहिये और द्विजको कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये विविध प्रकारकी सम्पत्तियोंका (न्यायपूर्वक) साधन (चिन्तन, अर्जन) करना चाहिये॥ ५५॥

ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत्।
पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोमयं शुद्धमेव च॥ ५६॥

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥ ५७॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाद् वै कदाचन।
पञ्चपिण्डान् समुद्धृत्य स्नायाद् वासम्भवे पुनः॥ ५८॥

मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि।
अधश्च तिसृभिः कायं पादौ षड्भिस्तथैव च॥ ५९॥

मृत्तिका च समुद्दिष्टा त्वार्द्रामलकमात्रिका।
गोमयस्य प्रमाणं तत् तेनाङ्गं लेपयेत् ततः॥ ६०॥

तदनन्तर मध्याह्न-समयमें स्नानके लिये मिट्टी, पुष्प, अक्षत, कुश, तिल तथा शुद्ध गोबर लाना चाहिये। नदियों (पुराण आदिमें प्रसिद्ध देव, ऋषिनिर्मित), अगाध जलवाले कुण्डों, (जलाशयों), सरोवरों, झरनों तथा बावलियोंमें नित्य स्नान करना चाहिये। दूसरोंके तालाब आदिमें कभी भी स्नान नहीं करना चाहिये। (अन्यत्र स्नान) असम्भव होनेपर (तालाब आदिमेंसे) मिट्टीके पाँच पिण्डोंको निकालकर स्नान करना चाहिये। मिट्टीसे एक बार सिर धोकर दो बार नाभिके ऊपर (-के अङ्गोंको) धोना चाहिये। नीचेका शरीर तीन बार तथा छः बार पाँवोंको धोना चाहिये। आँवलेके बराबर गीली मिट्टी लेनेका विधान है। गोबरका भी इतना ही प्रमाण है। उससे अङ्गोंका लेपन करे॥ ५६—६०॥

लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् ततः स्नायात् समाहितः॥ ६१॥

(नदी आदिके) किनारे बैठकर तल्लिङ्गक[1] मन्त्रोंके द्वारा (अङ्गोंमें मृत्तिका आदिका यथाविधि) लेपकर विधिपूर्वक प्रक्षालन एवं आचमन करके सावधानी-पूर्वक स्नान करना चाहिये॥ ६१॥

अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः।
भावपूतस्तदव्यक्तं ध्यायन् वै विष्णुमव्ययम्॥ ६२॥

आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्यायनं पुनः।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद् बुधः॥ ६३॥

प्रोच्य सोंकारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये।
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥ ६४॥

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥ ६५॥

तल्लिङ्गक शुभ वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंके द्वारा जलका अभिमन्त्रणकर पवित्र भावसे उन अव्यक्त अविनाशी विष्णुका ध्यान करे। 'जल'की उत्पत्ति नारायणसे ही हुई है, पुनः वही जल उन (नारायण)-का अयन (निवास) हुआ, अतः स्नानके समय विद्वान्‌को चाहिये कि वह नारायणदेवका स्मरण करे। ओंकारके साथ आदित्यका उच्चारण करके जलके भीतर तीन बार डुबकी लगानी चाहिये। आचमन किये रहनेपर भी मन्त्रवेत्ताको पुनः इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये—**अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥** अर्थात् (हे भगवन्!) सभी ओर मुखवाले आप सभी प्राणियोंके भीतर (हृदयरूपी) गुहामें विचरण करते हैं। आप ही यज्ञ हैं और आप ही वषट्कार, जल, ज्योति, रस तथा अमृतरूप हैं॥ ६२—६५॥

द्रुपदां वा त्रिरभ्यसेद् व्याहृतिप्रणवान्विताम्।
सावित्रीं वा जपेद् विद्वान् तथा चैवाघमर्षणम्॥ ६६॥

अथवा विद्वान् व्यक्तिको तीन बार द्रुपदा (दो चरणवाली) या व्याहृति अथवा प्रणवसे युक्त गायत्री और अघमर्षण-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ६६॥

---

१ स्मार्तकर्मोंमें वे मन्त्र गृह्यसूत्रानुसार विनियुक्त होते हैं, जिनमें स्मार्तकर्म-बोधक शब्द श्रुत हों। यह आवश्यक नहीं होता कि उन मन्त्रोंमें स्मार्तकर्मका प्रतिपादन हो। इसीलिये स्मार्तकर्मके मन्त्र स्मार्तकर्मविषयक नहीं, किंतु स्मार्तकर्मलिङ्गक होते हैं। 'अक्षन्नमी०' मन्त्रमें 'अक्षत' शब्द कथञ्चित् श्रुत होनेसे उसका अक्षत चढ़ानेमें विनियोग होता है, वह 'अक्षत' चढ़ाने-रूप कर्मका प्रतिपादक नहीं है, अतएव 'अक्षत'-विषयक नहीं है। मात्र अक्षतलिङ्गक है।

ततः सम्मार्जनं कुर्यादापो हि ष्ठा मयोभुवः।
इदमापः प्र वहत व्याहृतिभिस्तथैव च॥ ६७॥

ततोऽभिमन्त्र्य तत् तीर्थमापो हि ष्ठादिमन्त्रकैः।
अन्तर्जलगतो मग्नो जपेत् त्रिरघमर्षणम्॥ ६८॥

त्रिपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमं पदम्।
आवर्तयेद् वा प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम्॥ ६९॥

तदनन्तर 'आपो हि ष्ठा मयो- भुवः०'[१], 'इदमापः प्र वहत०'[२] इन मन्त्रों और व्याहृतियोंद्वारा मार्जन करना चाहिये। तदनन्तर 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि मन्त्रोंसे उस जल (स्नानीय नदी आदिके जल)-का अभिमन्त्रण करके जलके भीतर डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण-मन्त्रका जप करना चाहिये। अथवा त्रिपदा गायत्री-मन्त्र 'तद्विष्णोः परमं पदम्०[३]' इस मन्त्र या प्रणवका जप करे अथवा भगवान् विष्णुका स्मरण करे॥ ६७—६९॥

द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७०॥

अपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत् तोयं मुच्यते सर्वपातकैः॥ ७१॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः।
तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्॥ ७२॥

यजुर्वेदमें 'द्रुपदादिव०'[४] इस प्रकारसे जो मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसका जलके भीतर तीन बार जप करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। मार्जन करनेके बाद हाथमें जल लेकर मन्त्र (द्रुपदादिव०) जपपूर्वक उस जलको सिरपर रखनेसे (अघमर्षण करनेसे) सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति हो जाती है। जिस प्रकार अश्वमेध-यज्ञ समस्त यज्ञोंके राजाके समान है और समस्त पापोंको दूर करनेवाला है, उसी प्रकार अघमर्षणसूक्त[५] भी (सभी सूक्तोंका सम्राट् और) सभी पापोंको दूर करनेवाला है॥ ७०—७२॥

अथोपतिष्ठेदादित्यं मूर्ध्नि पुष्पान्विताञ्जलिम्।
प्रक्षिप्यालोकयेद् देवमुद्वयं तमसस्परि॥ ७३॥

उदु त्यं चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रतः।
हंसः शुचिषदेतेन सावित्र्या च विशेषतः॥ ७४॥

अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रैः सौरैः पापप्रणाशनैः।
सावित्रीं वै जपेत् पश्चाज्जपयज्ञः स वै स्मृतः॥ ७५॥

इसके बाद सूर्योपस्थान करना चाहिये। (इसकी प्रक्रिया यह है—) पुष्पयुक्त अञ्जलि मस्तकसे लगाकर उस फूलको ऊपर (सूर्य)-की ओर उछालकर उन सूर्यका दर्शन करते हुए 'उद्वयं तमसस्परि[६]', 'चित्रं०'[७], 'उदु त्यं०',[८] 'तच्चक्षुः०[९]', 'हंसः शुचिषद्'[१०] एवं विशेष-रूपसे सावित्री-मन्त्र और सूर्य-सम्बन्धी अन्य भी पापको नष्ट करनेवाले वैदिक मन्त्रोंके जपके द्वारा सूर्यको प्रसन्न किया जाय, यही सूर्योपस्थान है। इसके अनन्तर गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। इस (गायत्रीजपको) ही जपयज्ञ कहा गया है॥ ७३—७५॥

१-आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ (यजु० ११। ५०)
२-इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु। (यजु० ६। १७)
३-तद्विष्णोः परमं पदः सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु० ६। ५)
४-द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ (यजु० २०। २०)
५-ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।''''''मथो स्वः॥ (ऋग्वेद १०। १९०। १—३)
६-उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (यजु० २०। २१)
७-उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यः स्वाहा॥ (यजु० ७। ४१)
८-चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षः सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ (यजु० ७। ४२)
९-तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम।
शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजु० ३६। २४)
१०-हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ (यजु० १०। २४)

विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च।
शतरुद्रीयमथर्वशिरः सौरांश्च शक्तितः॥ ७६॥

प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः।
तिष्ठंश्चेदीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात् समाहितः॥ ७७॥

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः।
कर्तव्या त्वक्षमाला स्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता॥ ७८॥

पूर्वाग्र कुशोंपर पूर्वाभिमुख पवित्र होकर बैठना चाहिये और सूर्यका दर्शन करते हुए समाहित-चित्त होकर विविध पवित्र मन्त्रों, गुह्यविद्याओं, शतरुद्रिय, अथर्वशिरस् एवं सूर्यदेवताके मन्त्रोंका जप करना चाहिये। स्फटिक, इन्द्राक्ष (इन्द्र वृक्ष-विशेषके फलकी माला), रुद्राक्ष तथा पुत्रजीवककी (वृक्ष-विशेषके फलकी माला[1]) अक्षमाला बनानी चाहिये। इनमें पूर्वसे बादवाली माला क्रमशः उत्तम कही गयी है॥ ७६—७८॥

जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद् बुधः।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान् नैव प्रकाशयेत्॥ ७९॥
गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरन्ति प्रसभं यतः।
एकान्ते सुशुभे देशे तस्माज्जप्यं समाचरेत्॥ ८०॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह जप करते समय बोले नहीं, दूसरे लोगोंकी ओर न देखे। सिर और गरदनको न हिलाये और न ही दाँतोंको दिखलाये, क्योंकि (ऐसा करनेसे) गुह्यक, राक्षस तथा सिद्ध उस जपके फलका बलात् हरण कर लेते हैं, अतः किसी एकान्त अत्यन्त शुभ स्थानमें जप करना चाहिये॥ ७९-८०॥

चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत्।
तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव जपेत् पुनः॥ ८१॥

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने।
सौरान् मन्त्रान् शक्तितो वै पावमानीस्तु कामतः॥ ८२॥

यदि स्यात् क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतो जपेत्।
अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः॥ ८३॥

चाण्डाल, आशौच-युक्त व्यक्ति तथा पतितको देखनेपर आचमन करके पुनः जप करना चाहिये। इनके साथ बात करनेपर स्नान करनेके बाद ही पुनः जप करना चाहिये। अपवित्र पदार्थके दिख जानेपर आचमन करके प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति नित्य सूर्यसम्बन्धी मन्त्रों और पावमानी मन्त्रोंका इच्छानुसार (मनस्तुष्टिपर्यन्त) जप करना चाहिये। यदि भीगे वस्त्र पहने हों तो जलके मध्य स्थित होकर जप करना चाहिये। अन्यथा पवित्र भूमिमें कुशासनके ऊपर बैठकर एकाग्रतापूर्वक जप करना चाहिये॥ ८१—८३॥

प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्वा ततः क्षितौ।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥ ८४॥

ततः संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
आदावोंकारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि वः॥ ८५॥

(जप पूरा करनेके बाद) प्रदक्षिणा करके पृथ्वीपर नमस्कार करके और आचमन करके शास्त्रानुसार यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिये, तदनन्तर देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। प्रारम्भमें ओंकारका उच्चारण कर और अन्तमें 'नमः' लगाकर 'आपका तर्पण करता हूँ' (वः तर्पयामि)—ऐसा कहना चाहिये॥ ८४-८५॥

देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः।
तिलोदकैः पितॄन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः॥ ८६॥

देवताओं तथा ब्रह्मर्षियोंका तर्पण अक्षत और जलसे करना चाहिये और अपने गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार पितरोंका तर्पण तिल और जलसे भक्तिपूर्वक करना चाहिये॥ ८६॥

[1] माला-विशेषोंका विस्तृत वर्णन पद्मोत्तरखण्ड अध्याय १०८ में द्रष्टव्य है।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
देवर्षीस्तर्पयेद् धीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन्॥ ८७॥

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावतः॥ ८८॥

बुद्धिमान् (आस्तिक अधिकारी व्यक्ति)-को सव्य (बाँयें) हाथसे अन्वारब्ध (सम्बद्ध) दाहिने हाथसे अर्थात् दोनों हाथोंकी अञ्जलिद्वारा जलसे देवताओं, ऋषियों एवं पितरोंका तर्पण करना चाहिये। यज्ञोपवीती[1] अर्थात् सव्य होकर देवताओंका, निवीती[2] होकर अर्थात् मालाकी तरह कण्ठमें यज्ञोपवीत धारणकर ऋषियोंका और प्राचीनावीती[3] अर्थात् अपसव्य होकर भक्तिभावसे (देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके) अपने-अपने तीर्थोंसे[4] तर्पण करना चाहिये॥ ८७-८८॥

निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु समाचम्य च वाग्यतः।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैरथाम्बुभिः॥ ८९॥

ब्रह्माणं शंकरं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनोऽत्वरः॥ ९०॥

स्नानके वस्त्रको[5] निचोड़कर संयतवाणीसे युक्त होकर आचमन करके तत्तद् मन्त्रोंसे पत्र, पुष्प तथा जलके द्वारा देवताओंका पूजन करना चाहिये। क्रोध और शीघ्रताका सर्वथा परित्यागकर भक्तिपूर्वक ब्रह्मा, शंकर, सूर्य, विष्णु तथा अन्य जो भी अभीष्ट देवता हों, उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ८९-९०॥

प्रदद्याद् वाथ पुष्पाणि सूक्तेन पौरुषेण तु।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः॥ ९१॥

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै दैवतानि समाहितः।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद् वै पृथक् पृथक्॥ ९२॥

न विष्णवाराधनात् पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम्॥ ९३॥

पुरुषसूक्तके द्वारा पुष्प अर्पित करना चाहिये। अथवा जल सभी देवताओंका स्वरूप है, अतः उसके द्वारा पूजन करनेसे सभी देवताओंकी भलीभाँति पूजा हो जाती है। एकाग्रमनसे प्रणवका उच्चारण कर देवताओंका ध्यान करना चाहिये। नमस्कारकर पृथक्-पृथक् देवोंपर पुष्प चढ़ाना चाहिये। विष्णुकी आराधनासे अधिक पुण्यप्रद और कोई वैदिक कर्म नहीं है। इसलिये आदि, मध्य और अन्तसे रहित विष्णुकी नित्य आराधना करनी चाहिये॥ ९१—९३॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु।
नैताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि॥ ९४॥

'तद्विष्णोः०'[6] इस मन्त्रसे तथा पुरुषसूक्तसे श्रीविष्णुकी आराधना करनी चाहिये। चारों वेदोंमें भी इन दोनों (**'तद्विष्णोः०'** एवं **'पुरुष सूक्त'**) मन्त्रोंके सदृश अन्य कोई मन्त्र नहीं कहा गया है॥ ९४॥

१-बाँयें कंधेके ऊपर रखते हुए दाहिने हाथ (दाहिनी भुजा)-के नीचे रखे हुए ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)-को उपवीत या यज्ञोपवीत कहते हैं और इस प्रकार ब्रह्मसूत्र धारण करनेवालेको उपवीती या यज्ञोपवीती कहते हैं।

२-मालाकी तरह कण्ठसे सीधे वक्षःस्थलकी ओर लम्बित ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)-को निवीत कहते हैं और इस ब्रह्मसूत्र धारण करनेवालेको निवीती कहते हैं।

३-दाहिने कंधेके ऊपर रखते हुए बायें हाथ (बायीं भुजा)-के नीचे रखे हुए ब्रह्मसूत्र (जनेऊ)-को प्राचीनावीत कहते हैं और इस प्रकार ब्रह्मसूत्र धारण करनेवालेको प्राचीनावीती कहते हैं।

४-देवताओंका तर्पण देवतीर्थ (अँगुलियोंके अग्रभाग)-से, ऋषियों-मनुष्योंका तर्पण काय-तीर्थ (कनिष्ठिका अँगुलिके मूल)-से और पितरोंका तर्पण पितृतीर्थ (अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी अँगुलीके मूलों)-से करना चाहिये।

५-तर्पणके पूर्व स्नानके वस्त्रोंको सुखानेके लिये निचोड़ना नहीं चाहिये अन्यथा पितर निराश होकर चले जाते हैं। इसीलिये यहाँ तर्पणके अनन्तर स्नानके वस्त्रोंको निचोड़नेकी बात कही गयी है।

६-तद्विष्णोः परमं पदꣳसदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् (यजु० ६। ५)

निवेदयेत स्वात्मानं विष्णावमलतेजसि।
तदात्मा तन्मना: शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रत:॥ ९५ ॥

अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम्।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम्॥ ९६ ॥

'तद्विष्णो:०' इस मन्त्रके द्वारा तदात्मा और तन्मय होकर शान्तिपूर्वक अपनेको विशुद्ध तेज:-स्वरूप विष्णुमें निवेदित करना चाहिये। अथवा पवित्र भावनासे सनातन भगवान् ईशान महेश्वरदेव महादेवकी आराधना करनी चाहिये॥ ९५-९६॥

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुन:।
ईशानेनाथ वा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहित:॥ ९७ ॥

पुष्पै: पत्रैरथाद्भिर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम्।
उक्त्वा नम: शिवायेति मन्त्रेणानेन योजयेत्॥ ९८ ॥

नमस्कुर्यान्महादेवं ऋतं सत्यमितीश्वरम्।
निवेदयीत स्वात्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम्॥ ९९ ॥

प्रदक्षिणं द्विज: कुर्यात् पञ्च ब्रह्माणि वै जपन्।
ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवम्॥ १०० ॥

रुद्रगायत्री, प्रणव, ईशान-मन्त्र, रुद्र तथा त्र्यम्बक-मन्त्रसे एकाग्र-मन होकर पुष्प, पत्र, जल तथा चन्दन आदिके द्वारा महेश्वरकी आराधना करनी चाहिये और मन्त्रका उच्चारणकर मन्त्रके साथ '**नम: शिवाय**' को जोड़ना चाहिये। तदनन्तर ऋत एवं सत्यस्वरूप ईश्वर महादेवको नमस्कार करना चाहिये और '**यो ब्रह्माणं०**[1]' इस मन्त्रके द्वारा अपनेको ईश्वरके लिये समर्पित करे। द्विजको पाँच ब्रह्म (शिवके पाँच नामों[2])-का जप करते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये और आकाशके मध्य स्थित ईशानदेव शिवका ध्यान करना चाहिये॥ ९७—१००॥

अथावलोकयेदर्कं हंस: शुचिषदित्यृचा।
कुर्यात् पञ्च महायज्ञान् गृहं गत्वा समाहित:॥ १०१ ॥
देवयज्ञं पितृयज्ञं भूतयज्ञं तथैव च।
मानुष्यं ब्रह्मयज्ञं च पञ्च यज्ञान् प्रचक्षते॥ १०२ ॥

इसके अनन्तर '**हंस: शुचिषद्०**' इस ऋचासे सूर्यका दर्शन करे और घर जाकर ध्यानपूर्वक पञ्चयज्ञोंको करे। देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—ये पाँच (महा-) यज्ञ कहे गये हैं॥ १०१-१०२॥

यदि स्यात् तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञ: कृतो न हि।
कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै तत: स्वाध्यायमाचरेत्॥ १०३ ॥

अग्ने: पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान्त एव वा।
कुशपुञ्जे समासीन: कुशपाणि: समाहित:॥ १०४ ॥

शालाग्नौ लौकिके वाग्नौ जले भूम्यामथापि वा।
वैश्वदेवं तत: कुर्याद् देवयज्ञ: स वै स्मृत:॥ १०५ ॥

यदि स्याल्लौकिके पक्वं ततोऽन्नं तत्र हूयते।
शालाग्नौ तत्र देवान्नं विधिरेष सनातन:॥ १०६ ॥

देवेभ्यस्तु हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत्।
भूतयज्ञ: स वै ज्ञेयो भूतिद: सर्वदेहिनाम्॥ १०७ ॥

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च।
दद्याद् भूमौ बलिं त्वन्नं पक्षिभ्योऽथ द्विजोत्तम:॥ १०८ ॥

यदि तर्पणसे पहले ब्रह्मयज्ञ न किया हो तो मनुष्ययज्ञ करनेके बाद स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिये अथवा भूतयज्ञके अन्तमें एकाग्रचित्त होकर हाथमें कुश लेकर अग्निके पश्चिमकी दिशामें कुशपुंजपर बैठकर यज्ञशालाकी अग्नि, लौकिकाग्नि अथवा जलमें या भूमिपर वैश्वदेव करना चाहिये। यह देवयज्ञ कहलाता है। यदि लौकिकाग्निमें अन्न पकाया गया हो तो उसीमें हवन किया जाता है और यदि शालाकी अग्निमें अन्न तैयार किया गया हो तो शालाग्निमें ही वैश्वदेव होम करना चाहिये। यही सनातन विधि है। वैश्वदेव होमके पश्चात् बचे हुए अन्नद्वारा भूतबलिकर्म करना चाहिये। इसे भूतयज्ञ जानना चाहिये। यह सर्वप्राणियोंको ऐश्वर्य प्रदान करता है। द्विजोत्तमको (घरके बाहर) भूमिपर कुत्ता, चाण्डाल, पतित आदि तथा पक्षियोंको अन्नकी बलि देनी चाहिये॥ १०३—१०८॥

१-यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तंऽह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ (श्वेताश्वतर० ६। १८)

२-ईशान:[1] सर्वविद्यानाम् ईश्वर:[2] सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपति:[3] ब्रह्मणोऽधिपति:[4] ब्रह्मा[5] शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥

सायं चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत्।
भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायं प्रातर्विधीयते॥ १०९॥

एकं तु भोजयेद् विप्रं पितॄनुद्दिश्य सत्तमम्।
नित्यश्राद्धं तदुद्दिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः॥ ११०॥

पत्नी सायंकाल पके हुए अन्नकी बलि बिना मन्त्रके प्रदान करे, यही भूतयज्ञ है, जो नित्य सायंकाल और प्रातःकाल किया जाता है। पितरोंके उद्देश्यसे एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन भोजन कराना चाहिये, इसे नित्य-श्राद्ध कहा गया है। यह पितृयज्ञ (उत्तम) गति प्रदान करनेवाला है॥ १०९-११०॥

उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत्॥ १११॥

पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चयेद् द्विजम्।
मनोवाक्कर्मभिः शान्तमागतं स्वगृहं ततः॥ ११२॥

हन्तकारमथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः।
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम्॥ ११३॥

अथवा यथाशक्ति कुछ अन्न निकालकर वेदके तत्त्वार्थको जाननेवाले ब्राह्मणको समाहित होकर देना चाहिये। तदनन्तर अपने घर आये हुए शान्त द्विज अतिथिका मन, वाणी तथा कर्मके द्वारा नित्य नमस्कार, पूजन एवं अर्चन करना चाहिये। द्विज अतिथिको यथाशक्ति नित्य 'हन्तकार', 'अग्र' अथवा भिक्षा प्रदान करे और उसे परमेश्वरका रूप समझे॥ १११—११३॥

भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमग्रं तस्याश्चतुर्गुणम्।
पुष्कलं हन्तकारं तु तच्चतुर्गुणमुच्यते॥ ११४॥

गोदोहमात्रं कालं वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथिः स्वयम्।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं यथा॥ ११५॥

ग्रासमात्र (अन्न)-को भिक्षा और उसके चौगुने अर्थात् चार ग्रासके बराबर अन्नको अग्र कहा जाता है। अग्रके चौगुने अर्थात् सोलह ग्रासके बराबर पर्याप्त अन्नको हन्तकार कहा जाता है। गोदोहनकाल-पर्यन्त अतिथिकी स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिये। जिस प्रकार अतिथिकी[1] पूजा की जाती है, उसी प्रकार अभ्यागतोंकी[2] भी यथाशक्ति पूजा (सेवा) करनी चाहिये॥ ११४-११५॥

भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद् विधिवद् ब्रह्मचारिणे।
दद्यादन्नं यथाशक्ति त्वर्थिभ्यो लोभवर्जितः॥ ११६॥

सर्वेषामप्यलाभे तु अन्नं गोभ्यो निवेदयेत्।
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥ ११७॥

ब्रह्मचारी भिक्षुकको विधिवत् भिक्षा प्रदान करे। लोभरहित होकर याचकोंको यथाशक्ति अन्न प्रदान करे, इन सभीके न मिलनेपर गौओंको अन्न निवेदित करे। तदनन्तर भोजनकी निन्दा न करते हुए बन्धुओंके साथ मौन होकर भोजन करे॥ ११६-११७॥

अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमाः।
भुञ्जीत चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति॥ ११८॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा।
नाशयत्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा॥ ११९॥

यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरेष्वभिजायते॥ १२०॥

द्विजोत्तमो! यदि द्विज पञ्च महायज्ञोंको बिना किये ही भोजन करता है तो वह मूढात्मा तिर्यग्योनि प्राप्त करता है। प्रतिदिन यथाशक्ति किया गया वेदोंका अभ्यास, महायज्ञ कर्म, क्षमाका भाव और देवताओंका पूजन—ये शीघ्र ही पापोंका नाश करते हैं। जो मोहपूर्वक अथवा आलस्यसे देवताओंकी पूजा किये बिना भोजन करता है, वह नरकोंको प्राप्त करता है और बादमें शूकरकी योनिमें जन्म लेता है॥ ११८—१२०॥

१-अज्ञातपूर्वगृहागत व्यक्ति (अकस्मात् घरपर आ जानेवाला) अतिथि है। (श्रीधरस्वामी)

२-ज्ञातपूर्वगृहागत व्यक्ति (जिसका पहलेसे घरपर आना ज्ञात है ऐसा व्यक्ति) अभ्यागत है।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजाः।
भुञ्जीत स्वजनैः सार्धं स याति परमां गतिम्॥ १२१॥

द्विजो! इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा (नित्य) (अपने अधिकारानुसार शास्त्रविहित) कर्मोंको (श्रद्धापूर्वक) करनेके बाद स्वजनोंके साथ भोजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला परमगति प्राप्त करता है॥ १२१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भोजन-विधि, ग्रहणकालमें भोजनका निषेध, शयन-विधि, गृहस्थके नित्यकर्मोंके अनुष्ठानका महत्त्व

व्यास उवाच

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
आसीनस्त्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय तु॥ १॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः॥ २॥

व्यासजीने कहा—पवित्र आसनपर बैठकर पाँवोंको भूमिपर रखकर पूर्वकी ओर अथवा सूर्याभिमुख होकर अन्न (भोजन) ग्रहण करना चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर भोजन करनेसे लम्बी आयु, दक्षिणाभिमुख होकर भोजन करनेसे यश, पश्चिमाभिमुख होकर भोजन करनेसे सम्पत्ति और उत्तरकी ओर मुख करके भोजन करनेसे सत्यकी प्राप्ति होती है॥ १-२॥

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद् भूमौ पात्रं निधाय तु।
उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः॥ ३॥

उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ।
आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पञ्चार्द्रो भोजनं चरेत्॥ ४॥

महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु।
अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशानक्रियां चरेत्॥ ५॥

पाँचों अङ्गों (दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मुख)-का प्रक्षालनकर (भोजन) पात्रको भूमिपर रखकर भोजन करना चाहिये। प्रजापति मनुने इस प्रकारके भोजनको उपवासके समान बताया है। दोनों हाथ, पैर एवं मुखको धोनेके बाद आचमनकर (गोबर इत्यादिसे) लीपे गये पवित्र स्थानमें (बैठकर) क्रोधरहित होकर भोजन करना चाहिये। महाव्याहृतियोंका उच्चारण करते हुए जलसे अन्नको परिवेष्टितकर '**अमृतोपस्तरणमसि**' ऐसा कहकर **आपोशान**[1] (आचमन) क्रिया (सम्पन्न) करे॥ ३—५॥

स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुतिं ततः।
अपानाय ततो हुत्वा व्यानाय तदनन्तरम्॥ ६॥

उदानाय ततः कुर्यात् समानायेति पञ्चमीम्।
विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि द्विजः॥ ७॥

तदनन्तर स्वाहा एवं प्रणवके साथ '**प्राणाय**' का उच्चारण कर (**ॐ प्राणाय स्वाहा**) कहकर पहली आहुति देनी चाहिये। तदुपरान्त '**ॐ अपानाय स्वाहा**' और फिर '**ॐ व्यानाय स्वाहा**', पुनः '**ॐ उदानाय स्वाहा**' और अन्तमें '**ॐ समानाय स्वाहा**' कहकर पाँचवीं आहुति देनी चाहिये। इनका रहस्य समझते हुए द्विजको आत्मामें आहुति देनी चाहिये[2]॥ ६-७॥

१-भोजनके आरम्भ एवं अन्तमें आपोशान (आचमन) करके अन्नको अनग्न एवं अमृत किया जाता है।

२-आत्मामें आहुति देनेकी भावनासे भोजनके प्रारम्भमें छोटे-छोटे पाँच ग्रास मुखमें 'प्राणाय स्वाहा' आदि पाँच मन्त्रोंसे देना चाहिये।

शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीतव्यं जनैर्युतम्।
ध्यात्वा तन्मनसा देवमात्मानं वै प्रजापतिम्॥ ८ ॥

अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत्।
आचान्तः पुनराचामेदायं गौरिति मन्त्रतः॥ ९ ॥

द्रुपदां वा त्रिरावर्त्य सर्वपापप्रणाशिनीम्।
प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेद् हृदयं ततः॥ १०॥

फिर देव प्रजापति तथा आत्माका मनसे ध्यान करते हुए अवशिष्ट अन्न (भोजन)-का बन्धुओंके साथ इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। (भोजन कर लेनेके बाद) '**अमृतापिधानमसि**' यह मन्त्र पढ़कर जल पीना (आचमन करना) चाहिये। आचमनके उपरान्त पुनः '**आयं गौः**[1]**०**' इस मन्त्रको पढ़ते हुए आचमन करना चाहिये। तदनन्तर सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली '**द्रुपदा०**' का तीन बार पाठकर '**प्राणानां ग्रन्थिरसि**' इस मन्त्रसे हृदयका स्पर्श करे॥ ८—१०॥

आचम्याङ्गुष्ठमात्रेति पादाङ्गुष्ठेऽथ दक्षिणे।
निःस्रावयेद् हस्तजलमूर्ध्वहस्तः समाहितः॥ ११ ॥

हुतानुमन्त्रणं कुर्यात् श्रद्धायामिति मन्त्रतः।
अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेद् ब्रह्मणेति हि॥ १२ ॥

सर्वेषामेव यागानामात्मयागः परः स्मृतः।
योऽनेन विधिना कुर्यात् स याति ब्रह्मणः क्षयम्॥ १३ ॥

ऊपर हाथ किये हुए समाहितमन होकर आचमन करके '**अङ्गुष्ठमात्रेति**' मन्त्रद्वारा दाहिने पैरके अँगूठेपर हाथका जल गिराना चाहिये। '**श्रद्धायाम्०**' इस मन्त्रसे हुतानुमन्त्रण करे। तदनन्तर '**ब्रह्मणा०**' इस मन्त्रसे अपनी आत्माका अक्षर-तत्त्वसे योग करना चाहिये। सभी यागोंमें आत्मयाग श्रेष्ठ कहा गया है। जो इस विधिसे (आत्मयाग) करता है, वह ब्रह्मधाममें जाता है॥ ११—१३॥

यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालङ्कृतः शुचिः।
सायंप्रातर्नान्तरा वै संध्यायां तु विशेषतः॥ १४॥

नाद्यात् सूर्यग्रहात् पूर्वमह्नि सायं शशिग्रहात्।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाश्नीयात् तु मुक्तयोः॥ १५ ॥

मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा।
अमुक्तयोरस्तंगतयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि॥ १६ ॥

यज्ञोपवीती होकर अर्थात् सव्य होकर तथा माला (एवं चन्दनकी) सुगन्धिसे अलंकृत होकर पवित्रतापूर्वक भोजन करना चाहिये। सायंकाल, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और विशेषरूपसे संध्याकाल (प्रदोषकाल)-के समय भोजन नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहणसे पहले दिनमें, चन्द्रग्रहणसे पूर्व सायंकालमें तथा ग्रहणकालमें भोजन नहीं करना चाहिये। ग्रहणकी मुक्ति हो जानेपर स्नान करनेके अनन्तर भोजन करना चाहिये। चन्द्रमाके ग्रहणसे मुक्त हो जानेपर यदि अर्धरात्रि न हो तो भोजन करना चाहिये। बिना ग्रहणसे मुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके अस्त हो जानेपर दूसरे दिन उनका दर्शन करके भोजन करना चाहिये॥ १४—१६॥

नाश्नीयात् प्रेक्षमाणानामप्रदायैव दुर्मतिः।
न यज्ञशिष्टादन्यद् वा न क्रुद्धो नान्यमानसः॥ १७॥

आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।
वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम्॥ १८ ॥

देखनेवालों (भूखे व्यक्तियों)-को बिना दिये हुए तथा दुर्मना होकर भोजन नहीं करना चाहिये। यज्ञसे अवशिष्ट अन्नसे भिन्न अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। अन्यमनस्क होकर तथा क्रुद्ध होकर भोजन नहीं करना चाहिये। जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाता है, जो केवल कामसुखके लिये ही मैथुन करता है और जो केवल आजीविका प्राप्त हो जाय—इस उद्देश्यसे अध्ययन करता है, उसका जीवन निष्फल ही है॥ १७-१८॥

१-आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः। (यजु० ३। ६)

यद्भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदङ्मुखः।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥ १९॥

नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्।
न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा॥ २०॥

न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु।
नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्धानं स्पृशेदपि॥ २१॥

जो सिर ढककर भोजन करता है, उत्तरकी ओर मुख करके भोजन करता है और जूता पहनकर भोजन करता है, उसके इस प्रकार किये गये भोजनको आसुरी भोजन समझना चाहिये। ठीक अर्धरात्रि, ठीक मध्याह्न, अजीर्ण होनेपर, गीले वस्त्र धारणकर, दूसरेके लिये निर्दिष्ट आसनपर, सोते हुए, खड़े होकर, टूटे-फूटे पात्रमें, भूमिपर तथा हाथपर भोजन नहीं करना चाहिये। जूठे होकर न तो घृत ग्रहण करे और न सिरका ही स्पर्श करे॥ १९—२१॥

न ब्रह्म कीर्तयन् वापि न निःशेषं न भार्यया।
नान्धकारे न चाकाशे न च देवालयादिषु॥ २२॥

नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः।
न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन् विलपन्नपि॥ २३॥

(भोजन करते हुए) वेदका उच्चारण नहीं करना चाहिये और बिना कुछ[1] भोजन छोड़े ही अर्थात् पूर्ण भोजन न करे तथा भार्याके साथ भी भोजन न करे। न अन्धकारमें, न आकाशके नीचे (शून्य स्थानमें), न देवमन्दिरोंमें ही भोजन करे। एक वस्त्र पहनकर, सवारी या शय्यापर बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये। बिना खड़ाऊँ उतारे और हँसते हुए तथा रोते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिये॥ २२-२३॥

भुक्त्वैवं सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत्।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत्॥ २४॥

ततः संध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना द्विजः।
आसीनस्तु जपेद् देवीं गायत्रीं पश्चिमां प्रति॥ २५॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नास्ते संध्यां तु पश्चिमाम्।
स शूद्रेण समो लोके सर्वधर्मविवर्जितः॥ २६॥

इस प्रकार भोजन करके सुखपूर्वक बैठकर उस अन्नको पचाना चाहिये और इतिहास तथा पुराणोंके द्वारा वेदके रहस्योंको विस्तारपूर्वक समझना चाहिये। तदनन्तर द्विजको पूर्वमें बतलायी गयी विधिके अनुसार संध्योपासना करनी चाहिये। पश्चिमकी ओर मुख करते हुए आसनपर बैठकर गायत्री देवीका जप करना चाहिये। जो व्यक्ति पूर्वकी अर्थात् प्रातःकालकी और पश्चिमकी अर्थात् सायं-कालकी संध्या नहीं करता है, वह सभी धर्मोंसे रहित होता हुआ लोकमें शूद्रके समान होता है॥ २४—२६॥

हुत्वाग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम्।
सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि॥ २७॥

नोत्तराभिमुखः स्वप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च।
न चाकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित्॥ २८॥

मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके यज्ञसे बचे अन्नको बन्धु-बान्धव तथा भृत्यजनोंके साथ ग्रहणकर रात्रिमें सूखे पैर होकर (अर्थात् गीला पैर न रहे) शयन करना चाहिये। न तो उत्तरकी ओर सिर करके और न पश्चिमकी ओर सिर करके सोना चाहिये। खुले आकाशके नीचे (अथवा शून्य स्थानमें), नग्न होकर, अपवित्र अवस्थामें और बैठनेके आसनपर कभी नहीं सोना चाहिये॥ २७-२८॥

१-गृहस्थको भोज्य पदार्थ यथायोग्य अवशिष्ट रखकर भोजन करना चाहिये। इसका आशय यह है कि भोजन कर लेनेके अनन्तर यदि कोई ऐसा व्यक्ति आ जाय, जिसे स्वयं भोजन कर लेनेके बाद भी उसकी अपेक्षाके अनुसार भोजन कराया जा सके, जिससे भोज्य पदार्थके अभावमें वह भूखा न रह जाय।

न शीर्णायां तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि।
नानुवंशं न पालाशे शयनं वा कदाचन॥ २९॥
इत्येतदखिलेनोक्तमहन्यहनि वै मया।
ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम्॥ ३०॥

नास्तिक्यादथवालस्यात् ब्राह्मणो न करोति यः।
स याति नरकान् घोरान् काकयोनौ च जायते॥ ३१॥

नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमविधिं स्वकम्।
तस्मात् कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः॥ ३२॥

टूटी-फूटी चारपाईपर, सूनसान घरमें तथा बाँस या पलाससे बनी खाटपर कभी नहीं सोना चाहिये। इस प्रकार मैंने ब्राह्मणों (द्विजों)-के मोक्षदायक प्रतिदिन किये जानेवाले सम्पूर्ण कृत्यों (दैनिक कर्मों)-का पूर्णरूपसे वर्णन किया। जो ब्राह्मण (द्विज) नास्तिकता अथवा आलस्यके कारण इन कर्मोंको नहीं करता, वह घोर नरकोंमें जाता है और काकयोनिमें जन्म लेता है। अपने आश्रमकी विधिको छोड़कर अन्य कोई दूसरा मुक्तिका मार्ग नहीं है। इसलिये परमेष्ठी (परब्रह्म)-की प्रसन्नताके लिये (विहित) कर्मोंको करना चाहिये॥ २९—३२॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रकरण—श्राद्धके प्रशस्त दिन, विभिन्न तिथियों, नक्षत्रों और वारोंमें किये जानेवाले श्राद्धोंका विभिन्न फल, श्राद्धके आठ भेद, श्राद्धके लिये प्रशस्त स्थान, श्राद्धमें विहित तथा निषिद्ध पदार्थ

व्यास उवाच

अथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः।
पिण्डान्वाहार्यकं भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १॥

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
अपराह्णे द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च॥ २॥

व्यासजी बोले—द्विजोत्तमोंको अमावास्या आनेपर भक्तिपूर्वक भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला पिण्डान्वाहार्यक[1] नामक श्राद्ध करना चाहिये। चन्द्रमाके क्षीण होनेपर अर्थात् अमावास्या तिथिके अपराह्ण-कालमें द्विजातियोंके लिये पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना प्रशस्त होता है॥ १-२॥

प्रतिपत्प्रभृति ह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तराः॥ ३॥

अमावास्याष्टकास्तिस्त्रः पौषमासादिषु त्रिषु।
तिस्त्रश्चान्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशी तथा॥ ४॥

त्रयोदशी मघायुक्ता वर्षासु तु विशेषतः।
शस्यपाकश्राद्धकाला नित्याः प्रोक्ता दिने दिने॥ ५॥

कृष्णपक्षमें चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदादि अन्य तिथियाँ उत्तरोत्तर प्रशस्त हैं। पौष, माघ तथा फाल्गुन मासकी तीनों अष्टकाएँ (तीनों कृष्णाष्टमी) और अमावास्या, तीनों अन्वष्टकाएँ (नवमी) और माघ मासकी पूर्णिमा तिथि (श्राद्धके लिये) पुण्य तिथियाँ हैं। वर्षा-ऋतुमें मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशी तिथि और फसलके पकनेका समय विशेषरूपसे श्राद्ध करनेका काल होता है। ये सभी श्राद्ध नित्य और प्रतिदिन किये जानेवाले नित्यश्राद्ध हैं॥ ३—५॥

१-मनुस्मृति (३। १२२)-के अनुसार पिण्डान्वाहार्यक एक स्वतन्त्र श्राद्ध है। इसे अग्निहोत्री लोग ही कर सकते हैं। यह पिण्ड पितृयज्ञके बाद किया जाता है, इसलिये इसका नाम पिण्डान्वाहार्यक है। यह प्रतिमास किया जाता है। यह नित्यश्राद्ध है।

नैमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
बान्धवानां च मरणे नारकी स्यादतोऽन्यथा॥ ६ ॥

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु।
अयने विषुवे चैव व्यतीपातेऽप्यनन्तकम्॥ ७ ॥

संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि।
नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काम्यं विशेषतः॥ ८ ॥

चन्द्र और सूर्यके ग्रहणकाल तथा बान्धवोंके मरनेपर नैमित्तिक श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा न करनेपर नारकीय गति प्राप्त होती है। ग्रहण आदिके समय किये गये काम्य श्राद्ध प्रशस्त माने गये हैं। उत्तरायण एवं दक्षिणायनके समय, विषुव तथा व्यतीपात योगमें किया हुआ श्राद्ध भी अनन्त फल देनेवाला होता है। संक्रान्ति तथा जन्मके समय किया गया श्राद्ध अक्षय होता है। सभी नक्षत्रोंमें विशेषरूपसे काम्य श्राद्ध करना चाहिये॥ ६—८॥

स्वर्गं च लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तमः।
अपत्यमथ रोहिण्यां सौम्ये तु ब्रह्मवर्चसम्॥ ९ ॥

रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायां शौर्यमेव च।
पुनर्वसौ तथा भूमिं श्रियं पुष्ये तथैव च॥ १० ॥

सर्वान् कामांस्तथा सार्पे पित्र्ये सौभाग्यमेव च।
अर्यम्णे तु धनं विन्द्यात् फाल्गुन्यां पापनाशनम्॥ ११ ॥

ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायां च बहून् सुतान्।
वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखासु सुवर्णकम्॥ १२ ॥

मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैव च।
मूले कृषिं लभेद् यानसिद्धिमाप्ये समुद्रतः॥ १३ ॥

सर्वान् कामान् वैश्वदेवे श्रैष्ठ्यं तु श्रवणे पुनः।
श्रविष्ठायां तथा कामान् वारुणे च परं बलम्॥ १४ ॥

अजैकपादे कुप्यं स्यादहिर्बुध्न्ये गृहं शुभम्।
रेवत्यां बहवो गावो ह्यश्विन्यां तुरगांस्तथा।
याम्येऽथ जीवनं तत् स्याद्यदि श्राद्धं प्रयच्छति॥ १५ ॥

श्रेष्ठ द्विज कृत्तिका नक्षत्रमें श्राद्ध कर स्वर्ग प्राप्त करता है। रोहिणीमें श्राद्ध करनेसे संतान और मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे ब्रह्मतेजकी प्राप्ति होती है। आर्द्रा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे रौद्र कर्मोंकी सिद्धि तथा शौर्यकी प्राप्ति होती है। पुनर्वसु नक्षत्रमें भूमि और पुष्य नक्षत्रमें लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। आश्लेषा नक्षत्रमें (श्राद्ध करनेसे) सभी कामनाओं और मघा नक्षत्रमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार उत्तराफाल्गुनीमें धनकी प्राप्ति होती है और पूर्वाफाल्गुनीमें पापका नाश होता है। हस्त नक्षत्रमें किये गये श्राद्धसे अपनी जातिमें श्रेष्ठता और चित्रामें बहुतसे पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। स्वातीमें व्यापारकी सिद्धि और विशाखामें सुवर्णकी प्राप्ति होती है। अनुराधामें श्राद्ध करनेसे बहुतसे मित्रोंकी तथा ज्येष्ठामें राज्यकी प्राप्ति होती है। मूल नक्षत्रमें कृषि तथा पूर्वाषाढ़ामें समुद्रतककी सफल यात्रा होती है। उत्तराषाढ़ामें सभी कामनाओंकी सिद्धि और श्रवण नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे श्रेष्ठता प्राप्त होती है। धनिष्ठामें सभी कामनाओं और शतभिषामें परम बलकी प्राप्ति होती है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे कुप्य अर्थात् सोना-चाँदीसे भिन्न धातुएँ और उत्तराभाद्रपदमें शुभ गृह प्राप्त होता है। रेवती नक्षत्रमें किये गये श्राद्धसे बहुत-सी गौएँ और अश्विनीमें श्राद्ध करनेसे घोड़ोंकी प्राप्ति होती है। भरणी नक्षत्रमें यदि श्राद्ध किया जाय तो आयुकी प्राप्ति होती है॥ ९—१५॥

आदित्यवारे त्वारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च।
कौजे सर्वत्र विजयं सर्वान् कामान् बुधस्य तु॥ १६ ॥

विद्यामभीष्टां जीवे तु धनं वै भार्गवे पुनः।
शनैश्चरे लभेदायुः प्रतिपत्सु सुतान् शुभान्॥ १७ ॥

रविवारको (श्राद्ध करनेसे) आरोग्य, सोमवारको सौभाग्य, मंगलवारको सर्वत्र विजय और बुधवारको श्राद्धसे सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है। बृहस्पतिवारके दिन श्राद्धसे अभीष्ट विद्या, शुक्रवारके दिन श्राद्धसे धन और शनैश्चरको (श्राद्ध करनेसे) आयु प्राप्त होती है।

कन्यकां वै द्वितीयायां तृतीयायां तु वन्दिनः।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां शोभनान् सुतान्॥ १८॥

षष्ठ्यां द्यूतं कृषिं चापि सप्तम्यां लभते नरः।
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा॥ १९॥

स्यान्नवम्यामेकखुरं दशम्यां द्विखुरं बहु।
एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥ २०॥

द्वादश्यां जातरूपं च रजतं कुप्यमेव च।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु कुप्रजाः।
पञ्चदश्यां सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा॥ २१॥

प्रतिपदा तिथिको (श्राद्ध करनेसे) शुभ पुत्र प्राप्त होते हैं। द्वितीयामें श्राद्धसे कन्या, तृतीयामें वन्दीजनों, चतुर्थीमें क्षुद्र पशु और पञ्चमीको श्राद्ध करनेसे सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। षष्ठीमें श्राद्ध करनेसे द्यूत (-में विजय) और सप्तमीमें श्राद्धसे कृषिकी प्राप्ति होती है। अष्टमीको श्राद्ध करनेवाला सदा वाणिज्य (-में लाभ) प्राप्त करता है। नवमीमें श्राद्धसे एक खुरवाले और दशमीमें श्राद्ध करनेसे दो खुरवाले बहुतसे पशु मिलते हैं। एकादशीको (श्राद्ध करनेसे) रौप्य (रजत) पदार्थ तथा ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। द्वादशीको (श्राद्ध करनेसे) जातरूप (स्वर्ण), चाँदी तथा कुप्य, त्रयोदशीको जातिमें श्रेष्ठता और चतुर्दशीको श्राद्ध करनेसे कुप्रजाकी प्राप्ति होती है। पञ्चदशी (पूर्णिमा एवं अमावास्या)-को श्राद्ध करनेवाला सदा सभी कामनाओंको प्राप्त करता है॥ १६—२१॥

तस्माच्छ्राद्धं न कर्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभिः।
शस्त्रेण तु हतानां वै तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ २२॥

द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियमः कृतः।
तस्माद् भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युर्द्विजातयः॥ २३॥

इसलिये द्विजातियोंको चतुर्दशीके दिन श्राद्ध नहीं करना चाहिये। शस्त्र (आदि)-द्वारा जो मरे हुए हों, उनका श्राद्ध (इस चतुर्दशी तिथिको) करना चाहिये। द्रव्य एवं ब्राह्मणके उपलब्ध रहनेपर कालसम्बन्धी कोई नियम नहीं बताया गया है (अर्थात् कभी भी श्राद्ध किया जा सकता है)। इसलिये भोग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये द्विजातियोंको श्राद्ध (अवश्य) करना चाहिये॥ २२-२३॥

कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादाभ्युदयं पुनः।
पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वणि स्मृतम्॥ २४॥

अहन्यहनि नित्यं स्यात् काम्यं नैमित्तिकं पुनः।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धं तु पार्वणम्॥ २५॥

एतत् पञ्चविधं श्राद्धं मनुना परिकीर्तितम्।
यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेन पालयेत्॥ २६॥

शुद्धये सप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणा परिभाषितम्।
दैविकं चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यते भयात्॥ २७॥

संध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं राहोरन्यत्र दर्शनात्।
देशानां च विशेषेण भवेत् पुण्यमनन्तकम्॥ २८॥

सभी (शुभ) कर्मोंके प्रारम्भमें तथा पुत्रजन्म आदि समयोंमें आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। पर्वके दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। मनुने प्रतिदिन किये जानेवाले नित्यश्राद्ध, काम्य-श्राद्ध (कामनाविशेषकी सिद्धिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध), एकोद्दिष्टादि नैमित्तिक श्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध और पार्वण श्राद्ध—इन पाँच प्रकारके श्राद्धोंका वर्णन किया है। यात्राके समय (किया जानेवाला) छठा श्राद्ध कहा गया है, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। ब्रह्माने शुद्धिके लिये सातवें श्राद्धका वर्णन किया है। आठवाँ दैविक नामक श्राद्ध है, जिसे करनेसे भयसे मुक्ति हो जाती है। संध्या और रात्रिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। किंतु राहु और केतुद्वारा सूर्य-चन्द्रके ग्रस्त किये जानेपर रात्रिमें भी श्राद्ध किया जा सकता है। देशविशेषके कारण श्राद्ध अनन्त पुण्य फल देनेवाला होता है॥ २४—२८॥

गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके।
गायन्ति पितरो गाथां कीर्तयन्ति मनीषिणः ॥ २९ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः।
तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ ३० ॥

गयां प्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्धं समाचरेत्।
तारिताः पितरस्तेन स याति परमां गतिम् ॥ ३१ ॥

गङ्गा, प्रयाग तथा अमरकण्टकमें किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करता है। पितर इस गाथाका गान करते हैं और मनीषी ऐसा कीर्तन करते रहते हैं कि 'शीलवान् तथा गुणवान् बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे कोई एक भी किसी प्रसंगवश गया चला जाय और गया पहुँचकर यदि श्राद्ध कर दे तो उसके द्वारा पितर तार दिये जाते हैं (अर्थात् पितरोंको उत्तमोत्तम गति प्राप्त होती है) और वह (श्राद्धकर्ता) परमगतिको प्राप्त करता है'॥ २९—३१ ॥

वराहपर्वते चैव गङ्गायां वै विशेषतः।
वाराणस्यां विशेषेण यत्र देवः स्वयं हरः ॥ ३२ ॥
गङ्गाद्वारे प्रभासे च बिल्वके नीलपर्वते।
कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये ॥ ३३ ॥
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च।
सरस्वत्यां विशेषेण पुष्करेषु विशेषतः ॥ ३४ ॥
नर्मदायां कुशावर्ते श्रीशैले भद्रकर्णके।
वेत्रवत्यां विपाशायां गोदावर्यां विशेषतः ॥ ३५ ॥
एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च।
नदीनां चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा ॥ ३६ ॥

वराह[1] पर्वत, विशेषरूपसे गङ्गा तथा जहाँ स्वयं भगवान् हर निवास करते हैं विशेषतया उस वाराणसी, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), प्रभास, बिल्वकतीर्थ, नीलपर्वत, कुरुक्षेत्र, कुब्जाम्रतीर्थ, भृगुतुङ्ग, महालय, केदारपर्वत, फल्गुतीर्थ, नैमिषारण्य, विशेषरूपसे सरस्वती नदी तथा पुष्कर, नर्मदा, कुशावर्त, श्रीशैल, भद्रकर्णक, वेत्रवती, विपाशा तथा विशेषरूपसे गोदावरी नदी आदि स्थानों तथा अन्य तीर्थों, पुलिनों[2] और नदियोंके तटोंपर किये गये श्राद्धसे पितर सदा संतुष्ट होते हैं॥ ३२—३६ ॥

व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
श्यामाकैश्च यवैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन् ॥ ३७ ॥
आम्रान् पानेरतानिक्षून् मृद्वीकांश्च सदाडिमान्।
विदार्यांश्च भरण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् ॥ ३८ ॥
लाजान् मधुयुतान् दद्यात् सक्तून् शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृङ्गाटककशेरुकान् ॥ ३९ ॥

व्रीहि, जौ, उड़द, जल, मूल, फल, श्यामाक (सावाँ), यव, शाक, नीवार, प्रियङ्गु, गोधूम, तिल तथा मुद्गद्वारा किये गये श्राद्धसे पितर एक महीनेतक प्रसन्न रहते हैं। आम, पानेरत (पानेण, करमईद अर्थात् करौंदा या करमर्द), ईख, द्राक्षा (अंगूर), दाडिम, विदारी (भूमिकुष्माण्ड) तथा भरण्ड—इन्हें श्राद्धके समय प्रदान करना चाहिये। मधुयुक्त लाजा, शर्कराके साथ सत्तू, सिंघाड़ा तथा कसेरू—इन्हें श्राद्धमें प्रयत्नपूर्वक देना चाहिये॥ ३७—४३ ॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु ॥ ४० ॥
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेनाथ सप्त वै।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ॥ ४१ ॥
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ४२ ॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन तु।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ४३ ॥

१-वराहपर्वतकी चर्चा वह्निपुराणमें तथा महाभारत (२। २१। २)-में है।
२-पुलिन—(नदीके किनारेका वह भाग जहाँसे जल हटा हो (—तोयोत्थितं तत् पुलिनम्)। (अमरकोश)

कालशाकं महाशल्कं खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥ ४४॥
क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वा द्विजः।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते॥ ४५॥
पिप्पलीं क्रमुकं चैव तथा चैव मसूरकम्।
कूष्माण्डालाबुवार्ताकान् भूस्तृणं सुरसं तथा॥ ४६॥
कुसुम्भपिण्डमूलं वै तन्दुलीयकमेव च।
राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषं च विवर्जयेत्॥ ४७॥
कोद्रवान् कोविदारांश्च पालक्यान् मरिचांस्तथा।
वर्जयेत् सर्वयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः॥ ४८॥

श्राद्धमें पिप्पली, सुपारी, मसूर, कूष्माण्ड, (वर्तुलाकार— गोल) लौकी, बैगन, रसयुक्त भूस्तृण, कुसुम्भ, पिण्डमूल (रार्जर), तन्दुलीयक, (चौंराई शाकविशेष) राजमाष (वर्वट, वर्वटी, कड़ाई लोकभाषामें) और भैंसके दूधका प्रयोग नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ द्विजको श्राद्धमें कोदो, कोविदार (कचनार), पालक तथा मरिचका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये॥ ४४—४८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रकरणमें निमन्त्रणके योग्य पंक्तिपावन ब्राह्मणों तथा त्याज्य पंक्ति-दूषकोंके लक्षण

व्यास उवाच

स्नात्वा यथोक्तं संतर्प्य पितॄंश्चन्द्रक्षये द्विजः।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात् सौम्यमनाः शुचिः॥ १॥

पूर्वमेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद् हव्यकव्यानां प्रदाने चातिथिः स्मृतः॥ २॥

व्यासजी बोले—द्विजको चाहिये कि चन्द्रमाके क्षय होनेपर अर्थात् अमावास्याको स्नानकर यथोक्त रीतिसे पितरोंका तर्पण करके शान्तचित्त होकर तथा पवित्रतापूर्वक पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करे। (श्राद्धसे) पूर्व ही वेदमें पारंगत विद्वान् ब्राह्मणका अन्वेषण करना चाहिये, क्योंकि उसे ही (वेदपारग ब्राह्मणको ही) हव्य, कव्य, तीर्थ और दानका अतिथि (अधिकारी) कहा गया है॥ १-२॥

ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तचेतसः।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः॥ ३॥

पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च।
बह्वृचश्च त्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वाथ यो भवेत्॥ ४॥

जो सोमपायी, रजोगुणसे हीन, धर्मको जाननेवाले, शान्तचित्त, व्रतपरायण, नियममें स्थित, ऋतुकालमें गमन करनेवाले हैं (वे ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं)। पञ्चाग्निका सेवन करनेवाला, अध्ययनशील, यजुर्वेदका ज्ञाता, बह्वृच् (ऋग्वेदी) त्रिसौपर्ण[1] तथा त्रिमधु[2] अर्थात् ऋग्वेदके अंश-विशेषका अध्येता, ॥ ३-४॥

१-ऋग्वेदका विशेष वेदभाग एवं उसका व्रत त्रिसुपर्ण कहा जाता है, अतः इसके सम्बन्धसे ब्राह्मणको त्रिसुपर्ण या त्रिसौपर्ण कहा जाता है (मनु० ३। १४५)।

२-तीन बार मधु शब्द जिन ऋचाओंमें आया है, वे 'मधुव्वाता......' आदि तीन ऋचाएँ (शब्दकल्पद्रुम)।

त्रिणाचिकेतच्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः॥ ५ ॥

त्रिणाचिकेत[1] (यजुर्वेदके अंशविशेषका अध्येता) छन्दोग[2] (सामवेदका ज्ञाता) ज्येष्ठसामग[3]—ज्येष्ठसाम (सामगान) तथा अथर्ववेदका अध्येता और विशेषरूपसे रुद्राध्यायका अध्ययन करनेवाला (ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है)॥ ५॥

अग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायविच्च षडङ्गवित्।
मन्त्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद् धर्मपाठकः॥ ६ ॥

ऋषिव्रती ऋषीकश्च तथा द्वादशवार्षिकः।
ब्रह्मदेयानुसंतानो गर्भशुद्धः सहस्रदः॥ ७ ॥

चान्द्रायणव्रतचरः सत्यवादी पुराणवित्।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः॥ ८ ॥

विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः।
महादेवार्चनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः॥ ९ ॥

अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा।
सत्रिणो दाननिरता विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः॥ १० ॥

अग्निहोत्रपरायण, विद्वान्, न्यायवेत्ता, वेदके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष—इन छः अङ्गोंको जाननेवाला, वेदके मन्त्रभाग एवं ब्राह्मण-भागको जाननेवाला तथा धर्मशास्त्रको पढ़नेवाला, ऋषियोंके व्रतोंका पालन करनेवाला, ऋषीक[4], बारह वर्षोंतक चलनेवाले व्रत, यज्ञ (सत्र)-का करनेवाला, ब्राह्म[5]-विवाहद्वारा उत्पन्न संतान, गर्भाधानादि संस्कारसे शुद्ध और सहस्रों (शिष्योंको विद्या) दान करनेवाला (ब्राह्मण) पंक्तिपावन होता है। चान्द्रायणव्रत करनेवाला, सत्यवादी, पुराण जाननेवाला, गुरु, देवता और अग्निकी पूजामें आसक्त, ज्ञानपरायण, आसक्ति आदिसे सर्वथा मुक्त, धीर, ब्रह्मज्ञानी, महादेवकी पूजामें निरत रहनेवाला तथा वैष्णव श्रेष्ठ द्विज पंक्तिपावन होता है। नित्य अहिंसा-व्रतपरायण, अप्रतिग्रही, यज्ञ[6] करनेवाले और दान देने-वाले (ब्राह्मणों)-को पंक्तिपावन जानना चाहिये॥ ६—१०॥

युवानः श्रोत्रियाः स्वस्था महायज्ञपरायणाः।
सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः॥ ११ ॥

कुलीनाः श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विनः।
अग्निचित्स्नातका विप्रा विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः॥ १२ ॥

श्रोत्रिय, स्वस्थ, महायज्ञ[7]-परायण, गायत्री-जप करनेमें निरत ब्राह्मण युवक (सामर्थ्यसम्पन्न) पंक्तिपावन होते हैं। कुलीन, ज्ञानवान्, शीलवान्, तपस्वी एवं अग्निका चयन[8] करनेवाले स्नातक[9] ब्राह्मणोंको पंक्तिपावन जानना चाहिये॥ ११-१२॥

१-अध्वर्युवेदभाग (यजुर्वेदका भागविशेष) एवं उसके व्रत त्रिणाचिकेत हैं। इन दोनोंके सम्बन्धसे ब्राह्मण भी 'त्रिणाचिकेत' कहा जाता है (मनु० ३। १८५)।

२-छन्द (वेदविशेष साम)-के गानमें कुशल अथवा सामवेदका अध्येता 'छन्दोग' है (शब्दकल्पद्रुम)।

३-'ज्येष्ठसाम' सामवेद या उसके अध्ययनका अङ्ग व्रत है, इसका सम्बन्ध जिस ब्राह्मणसे है वह 'ज्येष्ठसामग' है।

४-'ऋषीक' का अर्थ 'ऋषिपुत्र' है। प्रकृतमें 'ऋषि-परम्परामें उत्पन्न' अर्थ समझना चाहिये।

५-मूलमें 'ब्रह्मदेयानुसंतान' शब्द है। इसका 'जिसकी कुलपरम्परामें ब्रह्म (वेद)-के अध्ययनाध्यापनकी परम्परा अविच्छिन्नरूपसे चल रही हो'—यह अर्थ भी किया जा सकता है।

६-मूलमें 'सत्री' शब्द है। इसका अर्थ यज्ञ, यज्ञविशेष, दान-परायण, कथाश्रवण एवं अनेक दिन-साध्य अनुष्ठान आदि हैं। इन सबके अनुष्ठाता ब्राह्मणको 'सत्री' कहा जायगा।

७-'महायज्ञ' पञ्चमहायज्ञोंको कहा जाता है, वे इस प्रकार हैं— (१) ब्रह्मयज्ञ (वेदका अध्ययनाध्यापन), (२) पितृयज्ञ (तर्पण), (३) देवयज्ञ (होम), (४) भूतयज्ञ (भूतबलि) और (५) मनुष्ययज्ञ (अतिथि-पूजन)।

८-मूलमें 'अग्निचित्' शब्द है। इसका अर्थ है—'अग्निहोत्री'।

९-सविधि ब्रह्मचर्यव्रत पूर्णकर स्नानविशेषरूप संस्कारके अनन्तर गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट या अप्रविष्ट द्विज स्नातक होता है। यहाँ ऐसे ब्राह्मणमात्रको लेना है।

मातापित्रोर्हिते युक्तः प्रातःस्नायी तथा द्विजः।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥ १३॥

ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तकः।
श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥ १४॥

वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा।
अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥ १५॥

असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च।
असम्बन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥ १६॥

माता-पिताके हितमें लगे हुए, प्रातःस्नान करनेवाले, अध्यात्मवेत्ता, मुनि एवं दान्त ब्राह्मणोंको पंक्तिपावन समझना चाहिये। ज्ञाननिष्ठ, महायोगी, वेदान्तके अर्थका विशेष चिन्तन करनेवाले, श्रद्धासम्पन्न तथा श्राद्धनिरत ब्राह्मण पंक्ति-पावन होते हैं। वेदविद्यामें निरत, सदा ब्रह्मचर्य-परायण, अथर्ववेदका अध्ययन करनेवाला, मुमुक्षु, स्नातक ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है। असमान प्रवर, असमान गोत्र (-में सम्बन्ध करनेवाला) और असम्बन्धी (निषिद्ध सम्बन्धरहित) ब्राह्मणको पंक्तिपावन समझना चाहिये॥ १३—१६॥

भोजयेद् योगिनं पूर्वं तत्त्वज्ञानरतं यतिम्।
अलाभे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा॥ १७॥

तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम्।
सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थमपि भोजयेत्॥ १८॥

सर्वप्रथम तत्त्वज्ञानमें निरत संयतचित्त योगीको भोजन कराना चाहिये। अभाव होनेपर (अर्थात् ऐसा ब्राह्मण न मिलनेपर) इन्द्रियजयी नैष्ठिक ब्रह्मचारी (जो ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकारकर यावज्जीवन गुरुकुलमें ही निवास करता है)-को और ऐसे ब्राह्मणके अभावमें उपकुर्वाणक (जो ब्रह्मचर्यव्रत पूर्णकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाला है ऐसे ब्रह्मचारी) ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। उसका भी अभाव होनेपर आसक्तिरहित मुमुक्षु गृहस्थ ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। इन सभीके अभाव होनेपर साधक (ब्राह्मण) गृहस्थको भोजन कराना चाहिये॥ १७-१८॥

प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याश्नाति यतिर्हविः।
फलं वेदविदां तस्य सहस्रादतिरिच्यते॥ १९॥

तस्माद् यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम्।
भोजयेद् हव्यकव्येषु अलाभादितरान् द्विजान्॥ २०॥

प्रकृतिके गुण और तत्त्वको जाननेवाला (तत्त्ववेत्ता) यति (संयतचित्त ब्राह्मण) जिस (व्यक्ति)-का भोजन करता है, उसे (सहस्रों) वेदज्ञको भोजन करानेकी अपेक्षा भी सहस्रगुना अधिक फल मिलता है। इसलिये ईश्वरज्ञानमें तत्पर श्रेष्ठ योगीको देवकार्य एवं पितृकार्यमें प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये। इनकी प्राप्ति न होनेपर दूसरे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ १९-२०॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः॥ २१॥

मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम्।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत्॥ २२॥

हव्य और कव्य प्रदान करनेमें यह प्रथम कल्प है। (इसके अभावमें) सज्जनों (वेदशास्त्रनिष्ठों)-द्वारा सदा अनुष्ठित इस अनुकल्पको जानना चाहिये—मातामह (नाना), मातुल (मामा), भांजा, ससुर, गुरु, दुहितापुत्र (नाती), विट्पति (जामाता), बन्धु (मौसी, बूआ एवं मामी आदिके पुत्र), ऋत्विक् तथा यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणको भोजन कराया जाय॥ २१-२२॥

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः।
पैशाची दक्षिणा सा हि नैवामुत्र फलप्रदा॥ २३॥

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम्।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥ २४॥

श्राद्धमें मित्रको भोजन नहीं कराना चाहिये। इनका संरक्षण (संग्रह) धनके आदान-प्रदानद्वारा करना चाहिये। (यदि श्राद्धमें मित्रको भोजन कराकर दक्षिणा दी जाय तो) ऐसी दक्षिणा पैशाची होती है। यह परलोकमें कोई फल नहीं देती। (किसी विशेष स्थिति या उपर्युक्त कल्प-अनुकल्पके अभावमें) श्राद्धमें भले ही मित्रका (यथोचित) सत्कार करे, किंतु अभिरूप (विद्वान्, मनोज्ञ) पात्र होनेपर भी शत्रुका सत्कार नहीं करना चाहिये, (क्योंकि) द्वेष रखनेवालेके द्वारा भुक्त हवि परलोकमें निष्फल होती है॥ २३-२४॥

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते॥ २५॥

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथानृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम्॥ २६॥

यावतो ग्रसते पिण्डान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान्॥ २७॥

(वेदादिका) अध्ययन न करनेवाला ब्राह्मण तृणमें लगी अग्निके समान शान्त (निस्तेज) हो जाता है। उसे हव्य (यथासम्भव देव-पित्र्य-कार्यमें भोजनके लिये निमन्त्रण) नहीं देना चाहिये, क्योंकि भस्ममें हवन नहीं किया जाता है। जिस प्रकार ऊसर भूमिमें बीज बोनेवाला कुछ फल नहीं प्राप्त करता, उसी प्रकार वेद न जाननेवालेको हवि देनेसे दाताको कोई फल नहीं मिलता। मन्त्रको न जाननेवाला वह ब्राह्मण देव और पितृकार्यमें जितने पिण्डों (ग्रासों)-को ग्रहण करता है, मृत्युके अनन्तर वह उतने ही स्थूल और प्रज्वलित लोहेके पिण्डों (ग्रासों)-का भक्षण करता है॥ २५—२७॥

अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः।
यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद् भवेदासुरं द्विजाः॥ २८॥

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्।
स वै दुर्ब्राह्मणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन॥ २९॥

शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजकः।
वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः॥ ३०॥

हे द्विजो! विद्या-सम्पन्न तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेपर भी आचारहीन नीच मनुष्य दैव और पित्र्यकार्यमें जो हव्य आदि ग्रहण करते हैं, वह (हव्यादि) आसुरी हो जाता है। जिसकी तीन पीढ़ीतक वेद और यज्ञ आदिका उच्छेद हो जाता है, वह दुर्ब्राह्मण होता है, वह श्राद्ध आदिमें कभी भी पूजाके योग्य नहीं होता। शूद्रका नौकर, राजासे वेतन लेनेवाला, पतित (अधार्मिक), गाँवके पुरोहित, बध और बन्धनद्वारा जीविका चलानेवाले—ये छः ब्रह्मबन्धु होते हैं॥ २८—३०॥

दत्तानुयोगान् वृत्त्यर्थं पतितान् मनुरब्रवीत्।
वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिताः॥ ३१॥

श्रुतिविक्रयिणो ये तु परपूर्वासमुद्भवाः।
असमानान् याजयन्ति पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥ ३२॥

मनुने जीविकाके लिये नौकरी करनेवालेको पतित बतलाया है। ये सभी एवं वेदका विक्रय करनेवाले (ब्राह्मण) श्राद्ध आदि कार्योंमें निन्दित हैं। जो वेदका विक्रय करनेवाले, हीन अथवा उच्चवर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न तथा असमान वर्णोंका पौरोहित्य करनेवाले हैं, वे पतित कहे गये हैं॥ ३१-३२॥

असंस्कृताध्यापका ये भृत्या वाध्यापयन्ति ये।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ३३ ॥

वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः ॥ ३४ ॥

यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः।
न तस्य तद् भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥ ३५ ॥

जो असंस्कृतों (संस्काररहितों)-के अध्यापक हैं, वेतनके लिये अध्यापन तथा वेदाध्ययन करनेवाले हैं, वे पतित कहे गये हैं। वृद्ध श्रावक अर्थात् बौद्ध, निर्ग्रन्थ अर्थात् जैन, पाञ्चरात्रके ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत (सम्प्रदायविशेषके) और उसी प्रकारके पाखंडी, तमोगुणी, दुरात्मा व्यक्ति—ये जिसके हविष्यान्नका भक्षण करते हैं, उसका किया श्राद्ध न तो इस लोकमें फल देनेवाला होता है और न परलोकमें ॥ ३३—३५ ॥

अनाश्रमी यो द्विजः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः।
मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः ॥ ३६ ॥

जो द्विज (ब्राह्मण) यथाविधि आश्रमको स्वीकार करनेवाले नहीं हैं अथवा नाममात्रके लिये किसी आश्रमका आश्रय लिये हैं, वे मिथ्याश्रमी कहे गये हैं, उन्हें पंक्तिदूषक समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः।
विद्धप्रजननश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः ॥ ३७ ॥

मद्यपो वृषलीसक्तो वीरहा दिधिषूपतिः।
आगारदाही कुण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः ॥ ३८ ॥

विकारयुक्त चर्म एवं नखवालों, कुष्ठरोगी, श्वेत कुष्ठरोगी, स्वभावतः काले दाँतवाला, विद्ध लिङ्गवाला, चोर, नपुंसक, नास्तिक, मद्य पीनेवाला, शूद्रा स्त्रीमें आसक्त, वीरहा (वह अग्निहोत्री जिसका अग्निहोत्र नष्ट हो गया है), विधवा स्त्रीसे विवाह करनेवाला, घरको जलानेवाला, कुण्ड (पतिके जीवित रहते अन्य पुरुषसे उत्पन्न संतान)-का भोजन करनेवाला तथा सोमलताका विक्रय करनेवाला—इस प्रकारके ब्राह्मण (श्राद्धादिमें त्याज्य हैं) ॥ ३७-३८ ॥

परिवेत्ता तथा हिंस्रः परिवित्तिर्निराकृतिः।
पौनर्भवः कुसीदी च तथा नक्षत्रदर्शकः ॥ ३९ ॥

परिवेत्ता अर्थात् बड़े भाईके अविवाहित अथवा अनग्निक रहते हुए विवाह तथा अग्नि स्वीकार करनेवाला छोटा भाई, हिंसा करनेवाला, परिवित्ति—(छोटे भाईके विवाहित होनेसे पहले अविवाहित रहनेवाला बड़ा भाई), निराकृति अर्थात् पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान न करनेवाला, पौनर्भव[१] (दूसरे पतिसे उत्पन्न पुत्र), ब्याज लेनेवाला तथा नक्षत्रदर्शक (ज्योतिषसे जीविका चलानेवाले)-का श्राद्धादिमें परित्याग करना चाहिये ॥ ३९ ॥

गीतवादित्रनिरतो व्याधितः काण एव च।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णिस्तथैव च ॥ ४० ॥

गाने-बजानेमें निरत, रोगी, काना, हीन अङ्गोंवाला, अधिक अङ्गोंवाला, अवकीर्णी (स्त्रीसे सम्पर्क कर ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट करनेवाला), कन्याको दूषित

१-मनुस्मृति (९। १७५)-के अनुसार।

कन्यादूषी कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ देवलः।
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं भार्यानुवर्तकः॥ ४१॥

करनेवाला, कुण्ड (पतिके जीवित रहते परपुरुषसे उत्पन्न संतान), गोलक (पतिकी मृत्युके बाद उपपतिसे उत्पन्न संतान), अभिशस्त (मिथ्या-पवादग्रस्त), (देवल)—मन्दिर आदिसे आजीविका प्राप्त करनेवाले (पुजारी आदि), मित्रद्रोही, चुगली करनेवाला और नित्य भार्याके वशीभूत रहनेवाला—ये श्राद्धादिमें त्याज्य हैं॥ ४०-४१॥

मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च।
गोत्रभिद् भ्रष्टशौचश्च काण्डस्पृष्टस्तथैव च॥ ४२॥

अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः।
समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः॥ ४३॥

देवनिन्दापरश्चैव वेदनिन्दारतस्तथा।
द्विजनिन्दारतश्चैते वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मसु॥ ४४॥

कृतघ्नः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः।
मित्रध्रुक् कुहकश्चैव विशेषात् पंक्तिदूषकाः॥ ४५॥

माता, पिता, गुरु तथा पत्नीका त्याग करनेवाला, सगोत्र (भाई-बन्धु)-में भेदबुद्धि पैदा करनेवाला, शौचभ्रष्ट (शौचाचारहीन), शस्त्रजीवी, संतानहीन, झूठी गवाही देनेवाला, याचक, रंगद्वारा जीविकोपार्जन करनेवाला (चित्रकार, नाट्यकार), समुद्रकी यात्रा करनेवाला, कृतघ्न और प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेवाला, देवनिन्दापरायण, वेदनिन्दामें निरत तथा द्विजकी निन्दा करनेवाला—ये सभी श्राद्धादि कर्मोंमें त्याज्य हैं। कृतघ्न, चुगली करनेवाला, क्रूर, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाला, मित्रद्रोही तथा ऐन्द्रजालिक (मायावी, दाम्भिक)—ये विशेषरूपसे पंक्तिदूषक हैं॥ ४२—४५॥

सर्वे पुनरभोज्यान्नास्त्वदानार्हाश्च कर्मसु।
ब्रह्मभावनिरस्ताश्च वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥ ४६॥

(उपर्युक्त) सभी प्रकारके व्यक्ति श्राद्धमें भोजन न कराने योग्य और सभी कर्मोंमें दानके अयोग्य होते हैं। ब्रह्मभावसे शून्य अर्थात् ब्राह्मणत्वसे च्युत व्यक्तियोंका विशेषरूपसे त्याग करना चाहिये॥ ४६॥

शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः संध्योपासनवर्जितः।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥ ४७॥

अधीतनाशनश्चैव स्नानहोमविवर्जितः।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥ ४८॥

शूद्रके अन्न एवं रससे पुष्ट हुए अङ्गोंवाला, संध्योपासनासे रहित, पञ्चमहायज्ञोंसे शून्य ब्राह्मण पंक्तिदूषक होता है। पढ़े गये वेदादिका विस्मरण करनेवाला, स्नान एवं होमसे रहित, तमोगुणी तथा रजोगुणी ब्राह्मण पंक्तिदूषक होता है॥ ४७-४८॥

बहुनात्र किमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते।
निन्दितानाचरन्त्येते वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥ ४९॥

अधिक क्या कहा जाय। जो शास्त्रविहित स्वकर्मोंको नहीं करते और शास्त्रनिषिद्ध (निन्दित) कर्मोंका आचरण करते हैं, वे प्रयत्नपूर्वक त्याग करने योग्य हैं॥ ४९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रकरणमें ब्राह्मण निमन्त्रित करनेकी विधि, निमन्त्रित ब्राह्मणके कर्तव्य, श्राद्धविधि, श्राद्धमें प्रशस्त पात्र, पितरोंकी प्रार्थना, श्राद्धके दिन निषिद्ध कर्म, वृद्धिश्राद्धका विधान, श्राद्ध-प्रकरणका उपसंहार

व्यास उवाच

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः।
संनिपत्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः संनिमन्त्रयेत्॥ १॥

श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्य च।
असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान्॥ २॥

तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्।
अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः॥ ३॥

ब्राह्मणैस्ते सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥ ४॥

आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते।
वसेयुर्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः॥ ५॥

अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तः सत्यवादी समाहितः।
भारं मैथुनमध्वानं श्राद्धकृद् वर्जयेज्जपम्॥ ६॥

आमन्त्रितो ब्राह्मणो वा योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम्।
स याति नरकं घोरं सूकरत्वं प्रयाति च॥ ७॥

आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यं चामन्त्रयेद् द्विजम्।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते॥ ८॥

श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ च जायते॥ ९॥

व्यासजी बोले—सावधानीपूर्वक गोबर और जलसे (श्राद्ध) भूमिको शुद्धकर सभी ब्राह्मणोंकी सेवामें पहुँचकर सज्जन पुरुषोंद्वारा उन्हें निमन्त्रित करना चाहिये। श्राद्धके पहले दिन ब्राह्मणोंकी (नम्रभावसे आदरपूर्वक) पूजाकर उनसे कहना चाहिये—'कल हमारे यहाँ श्राद्ध होगा (आपलोग कृपाकर पधारें)'। ऐसा असम्भव होनेपर दूसरे (दिन) अर्थात् श्राद्धके ही दिन यथोक्त लक्षणोंसे समन्वित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये॥ १-२॥

मनके समान शीघ्र गतिवाले पितर जब यह सुन लेते हैं कि श्राद्धकाल उपस्थित है, तब परस्पर विचारकर श्राद्धकर्ताके यहाँ एकत्र हो जाते हैं। अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाले पितर वायुरूपसे स्थित रहते हैं, ब्राह्मणोंके साथ भोजन करते हैं और भोजन करके परमगति प्राप्त करते हैं। श्राद्धका समय आनेपर सभी आमन्त्रित ब्राह्मणोंको संयमी और ब्रह्मचर्यपरायण होकर रहना चाहिये॥ ३—५॥

श्राद्ध करनेवालेको क्रोध, उतावलापन तथा प्रमादका त्यागकर समाहित होना चाहिये, सत्य बोलना चाहिये। उसे भारका ढोना, मैथुन, मार्गगमन (यात्रा आदि) और जपका (किसी कामनापरक यज्ञादिका श्राद्धके समय) परित्याग करना चाहिये॥ ६॥

(पहलेसे ही) निमन्त्रित ब्राह्मण (यदि) किसी दूसरेका निमन्त्रण स्वीकार करता है तो वह घोर नरकमें जाता है और बादमें सूकरकी योनि प्राप्त करता है। (किसी एक) ब्राह्मणको आमन्त्रित करके जो मोहसे दूसरेको आमन्त्रित करता है, वह व्यक्ति उससे भी अधिक पापी होता है (जो निमन्त्रित होनेपर भी दूसरी जगह जाता है) और विष्ठाका कीड़ा होता है। श्राद्धमें निमन्त्रित जो ब्राह्मण मैथुन करता है, वह ब्रह्महत्या (के पाप)-को प्राप्त करता है और बादमें तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न होता है॥ ७—९॥

निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः।
भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं पांशुभोजनाः॥ १०॥
निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे प्रकुर्यात् कलहं द्विजः।
भवन्ति तस्य तन्मासं पितरो मलभोजनाः॥ ११॥
तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः।
अक्रोधनः शौचपरः कर्ता चैव जितेन्द्रियः॥ १२॥

श्राद्धमें निमन्त्रित जो दुर्बुद्धि ब्राह्मण यात्रा करता है, उसके पितर उस महीने धूलिका भक्षण करते हैं श्राद्धमें निमन्त्रित जो ब्राह्मण कलह करता है, उस महीनेमें उसके पितर मलका भोजन करते हैं, इसलिये श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणको नियतात्मा, क्रोधशून्य तथा शौचपरायण रहना चाहिये और श्राद्धकर्ताको भी जितेन्द्रिय होना चाहिये॥ १०—१२॥

श्वोभूते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भान् समाहितः।
समूलानाहरेद् वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान्॥ १३॥
दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभक्तं शुभलक्षणम्।
शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत्॥ १४॥
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव सानुषु।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा॥ १५॥

श्राद्ध-दिनके पूर्व दिन समाहित होकर दक्षिण दिशामें जाकर अत्यन्त निर्मल, जड़सहित और दक्षिणकी ओर झुके हुए कुशों और जलको लाना चाहिये। दक्षिणकी ओर झुके हुए, स्निग्ध, अन्यके सम्बन्धसे रहित (अर्थात् स्व-स्वत्ववाले) शुभ लक्षणोंवाले, पवित्र तथा एकान्त स्थानका गोमयसे उपलेपन करना चाहिये। नदियोंके किनारों, तीर्थों, अपनी भूमिमें, पर्वतके शिखरों तथा एकान्त स्थानोंपर श्राद्ध करनेसे पितर सदा संतुष्ट रहते हैं॥ १३—१५॥

पारक्ये भूमिभागे तु पितॄणां नैव निर्वपेत्।
स्वामिभिस्तद् विहन्येत मोहाद्यत् क्रियते नरैः॥ १६॥
अटव्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः॥ १७॥
तिलान् प्रविकिरेत् तत्र सर्वतो बन्धयेदजान्।
असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुध्यत्यजेन वा॥ १८॥

दूसरेकी भूमिमें पितरोंका श्राद्ध नहीं करना चाहिये। यदि मोहवश मनुष्योंके द्वारा ऐसा किया जाता है तो वह कर्म (भूमिके) स्वामीके द्वारा विफल (नष्ट) कर दिया जाता है। जंगल, पर्वत, पुण्यतीर्थ, देवमन्दिर—ये सभी स्थान बिना स्वामीवाले (अर्थात् सार्वजनिक) कहे जाते हैं। इनपर किसीका स्वामित्व नहीं होता। (श्राद्धभूमिमें) सर्वत्र तिलोंको फैलाना चाहिये। तिलोंके द्वारा असुरोंसे उपहत अर्थात् आक्रान्त (श्राद्धभूमि) शुद्ध हो जाती है॥ १६—१८॥

ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमच्युतम्।
चोष्यपेयसमृद्धं च यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्॥ १९॥
ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तलोमनखान् द्विजान्।
अभिगम्य यथामार्गं प्रयच्छेद् दन्तधावनम्॥ २०॥

तदनन्तर अनेक प्रकारसे शुद्ध किये गये प्रशस्त अन्नसे ऐसे अनेक प्रकारके भोज्य पक्वान्न बनाने चाहिये, जो चोष्य, पेय आदि उत्तमोत्तम व्यंजनोंसे यथाशक्ति समृद्ध हों। तदनन्तर मध्याह्नकाल व्यतीत होनेपर कृतक्षौर (नख और बाल कटाये हुए) द्विजों (ब्राह्मणों)-से मार्गमें मिलकर उन्हें दन्तधावन प्रदान करे॥ १९-२०॥

तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम्।
पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद् वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥ २१॥
ततः स्नात्वा निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।
पाद्यमाचमनीयं च सम्प्रयच्छेद् यथाक्रमम्॥ २२॥
ये चात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहितानि च॥ २३॥

वैश्वदैवत्य मन्त्रका उच्चारण कर उन्हें उदुम्बरके पात्रोंद्वारा अभ्यञ्जनके लिये उपयोगी तैल, स्नानके लिये जल अलग-अलग दे। तदुपरान्त उनके स्नान कर लेनेपर उठकर हाथ जोड़ते हुए उन्हें क्रमशः पाद्य एवं आचमन देना चाहिये। विश्वेदेवोंके निमित्त जो ब्राह्मण पहले निमन्त्रित हैं, उन्हें तीन कुश रखकर पूर्वाभिमुख आसन प्रदान करना चाहिये॥ २१—२३॥

दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च।
दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः॥ २४॥

तेषूपवेशयेदेतानासनं स्पृश्य स द्विजम्।
आसध्वमिति संजल्पन् आसनास्ते पृथक् पृथक्॥ २५॥

पितृ-ब्राह्मणोंको दक्षिणाग्र कुशके ऊपर तिलोदकसे प्रोक्षितकर दक्षिणाभिमुख आसन प्रदान करना चाहिये। श्राद्धकर्ता आसनका स्पर्श करते हुए 'आसध्वम्'—'बैठिये' इस प्रकार कहकर उन पितृ-ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् आसनपर बिठाये[1]॥ २४-२५॥

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा।
एकैकं वा भवेत् तत्र देवमातामहेष्वपि॥ २६॥

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्।
पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥ २७॥

अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम्।
श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम्॥ २८॥

(विश्वेदेव) देवसम्बन्धी दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख, पित्र्यसम्बन्धी तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख बैठाना चाहिये अथवा देवसम्बन्धी और मातामह (पित्र्यसम्बन्धी)-के भी निमित्त एक-एक ब्राह्मणको बैठाना चाहिये। (श्राद्धमें) सत्कार, देश, काल, पवित्रता और ब्राह्मणसम्पद्—इन पाँचोंका (अधिक) विस्तारके कारण नाश होता है, अतः विस्तारकी इच्छा नहीं करनी चाहिये[2], विस्तारकी अपेक्षा श्रुतशील आदिसे सम्पन्न अनपेक्षित क्षणोंसे रहित वेदके पारंगत एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना उचित है॥ २६—२८॥

उद्धृत्य पात्रे चान्नं तत् सर्वस्मात् प्रकृतात् पुनः।
देवतायतने चास्मै निवेद्यान्यत् प्रवर्तयेत्॥ २९॥

प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद् वा ब्रह्मचारिणे।
तस्मादेकमपि श्रेष्ठं विद्वांसं भोजयेद् द्विजम्॥ ३०॥

किसी पात्रमें समस्त प्रकृत वस्तुओं (श्राद्धीय भोज्य पदार्थोंमेंसे उचित मात्रामें भोज्य लेकर) देवमन्दिरमें देवताके उद्देश्यसे प्रथम निवेदित करके अन्य कार्य प्रारम्भ करना चाहिये, उस (श्राद्धीय लवणरहित सिद्ध) अन्नको अग्निमें छोड़ना चाहिये अथवा ब्रह्मचारीको देना चाहिये। अतः एक भी श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये॥ २९-३०॥

भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः।
उपविष्टेषु यः श्राद्धे कामं तमपि भोजयेत्॥ ३१॥

अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रशस्यते।
तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः॥ ३२॥

श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठ जानेपर भोजनके निमित्त उपस्थित हुए भिक्षुक अथवा ब्रह्मचारीको भी उनकी इच्छानुसार (श्राद्धमें जो यथेष्ट हो वह) भोजन कराना चाहिये। जिसके श्राद्धमें अतिथि भोजन नहीं करता, उसका श्राद्ध प्रशंसनीय नहीं होता। इसलिये द्विजोंको प्रयत्नपूर्वक श्राद्धोंमें अतिथियोंका पूजन करना चाहिये॥ ३१-३२॥

आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः।
काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैव न संशयः॥ ३३॥

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणी पुक्कसनास्तिकौ।
कुक्कुटाः शूकरा श्वानो वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः॥ ३४॥

जो द्विज (ब्राह्मण) आतिथ्यरहित श्राद्धमें भोजन करते हैं, वे कौएकी योनिमें जाते हैं और दाताकी भी यही गति होती है, इसमें संदेह नहीं। श्राद्धमें हीन अङ्गवाला, पतित, कुष्ठरोगी, व्रणयुक्त, पुक्कस (जातिविशेष), नास्तिक, कुक्कुट, शूकर तथा कुत्ता—ये दूरसे ही हटा देने योग्य हैं॥ ३३-३४॥

१-सामान्यतः ब्राह्मणकी जगह कुशपर श्राद्ध किया जाता है, किंतु सपात्रिक श्राद्धमें ब्राह्मणको बैठाकर श्राद्ध करनेका विधान है।

२-इसका आशय यह है कि श्राद्धके अवसरपर अधिक विस्तार करनेपर यथायोग्य सत्कार, उचित देश, श्राद्धके शास्त्रविहित काल, यथाशास्त्र पवित्रता तथा श्राद्धयोग्य ब्राह्मणकी सुलभता निश्चित ही संदिग्ध हो जाती है।

बीभत्सुमशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम्।
नीलकाषायवसनं पाषण्डांश्च विवर्जयेत्॥ ३५॥

बीभत्स, अपवित्र, नग्न, मत्त, धूर्त, रजस्वला स्त्री, नीला और कषाय वस्त्र धारण करनेवाले तथा पाखंडीका परित्याग करना चाहिये॥ ३५॥

यत् तत्र क्रियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान् प्रति।
तत्सर्वमेव कर्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥ ३६॥

यथोपविष्टान् सर्वांस्तानलंकुर्याद् विभूषणैः।
स्रग्दामभिः शिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः॥ ३७॥

श्राद्धमें पितृ-ब्राह्मणोंके प्रति जो भी कर्म किया जाता है, वह सब वैश्वदेवकर्मके अनन्तर करना चाहिये। यथाविधि (श्राद्धीय भोजनमें) बैठे हुए उन सभी (ब्राह्मणों)-को आभूषण, माला, यज्ञसूत्र, शिरोवेष्टन, धूप, वस्त्र तथा अनुलेपन आदिके द्वारा अलंकृत करना चाहिये॥ ३६-३७॥

ततस्त्वावाहयेद् देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया।
उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वे देवास इत्यृचा॥ ३८॥

द्वे पवित्रे गृहीत्वाथ भाजने क्षालिते पुनः।
शं नो देव्या जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥ ३९॥

या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्घं विनिक्षिपेत्।
प्रदद्याद् गन्धमाल्यानि धूपादीनि च शक्तितः॥ ४०॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उत्तराभिमुख होकर यथाविधि '**विश्वे देवास०**' इस ऋचाका पाठकर देवोंका आवाहन करना चाहिये। दो पवित्र (कुश) ग्रहणकर '**शं नो देवी०**'—यह मन्त्र पढ़कर प्रक्षालित पात्रमें जल डाले और '**यवोऽसीति०**' मन्त्रसे यव (जौ) भी डाले। '**या दिव्या०**' इस मन्त्रसे (ब्राह्मणके) हाथपर अर्घ (अर्घपात्रका जल) छोड़े और यथाशक्ति गन्ध, माला, धूप तथा दीप आदि प्रदान करे॥ ३८—४०॥

अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः।
आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः॥ ४१॥

आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदा यन्तु नस्ततः।
शं नो देव्योदकं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा॥ ४२॥

क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वै पुनः।
संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात् समाहितः।
पितृभ्यः स्थानमेतेन न्युब्जं पात्रं निधापयेत्॥ ४३॥

अग्नौ करिष्येत्यादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम्।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवान्॥ ४४॥

यज्ञोपवीतिना होमः कर्तव्यः कुशपाणिना।
प्राचीनावीतिना पित्र्यं वैश्वदेवं तु होमवत्॥ ४५॥

तदनन्तर विद्वान् व्यक्तिको अपसव्य एवं दक्षिणाभिमुख होकर '**उशन्तस्त्वा०**' इस ऋचासे पितरोंका आवाहन करना चाहिये। आवाहन करके उनकी आज्ञासे '**आ यन्तु नः०**' इस मन्त्रका जप करना चाहिये। '**शं नो देवी०**' इस मन्त्रसे पात्रमें जल डाले और '**तिलोऽसि०**' इस मन्त्रसे तिल भी छोड़े। पहलेके समान अर्घ प्रदानकर अथवा ब्राह्मणोंके हाथमें (जलादि) प्रदानकर समाहित होकर पात्रमें संस्रव-अर्घका अवशिष्ट जल रखे। तदनन्तर '**पितृभ्यःस्थानम्०**' इस मन्त्रसे पात्रको अधोमुख (उलटकर) रखे। घृतयुक्त अन्न लेकर '**अग्नौ करिष्ये**' ऐसा पूछे और (उन ब्राह्मणोंद्वारा) '**कुरुष्व**—करो' ऐसी आज्ञा प्राप्त होनेपर उपवीती (सव्य होकर) हवन (अग्नौकरण) करे। हाथमें कुश लेकर और यज्ञोपवीती (सव्य) होकर होम करना चाहिये। पितृसम्बन्धी कार्य प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर करे और वैश्वदेवसम्बन्धी कार्य होमके समान अर्थात् सव्य होकर करे॥ ४१—४५॥

दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान् परिचरन् पुमान्।
पितॄणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा॥ ४६॥

पुरुषको दाहिना जानु जमीनपर रखकर देवोंकी परिचर्या करनी चाहिये और पितरोंकी परिचर्यामें बायाँ जानु जमीनपर रखना चाहिये॥ ४६॥

सोमाय वै पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन्।
अग्नये कव्यवाहाय स्वधेति जुहुयात् ततः॥ ४७॥

तब '**सोमाय वै पितृमते स्वधा नमः**' इस मन्त्रका उच्चारणकर '**अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा**' ऐसा कहकर हवन करे॥ ४७॥

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्।
महादेवान्तिके वाथ गोष्ठे वा सुसमाहितः॥ ४८॥

ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणां दिशम्।
गोमयेनोपलिप्योर्वीं स्थानं कृत्वा तु सैकतम्॥ ४९॥

मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणावनतं शुभम्।
त्रिरुल्लिखेत् तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि॥ ५०॥

ततः संस्तीर्य तत्स्थाने दर्भान् वै दक्षिणाग्रकान्।
त्रीन् पिण्डान् निर्वपेत् तत्र हविःशेषात् समाहितः॥ ५१॥

अग्निके अभाव होनेपर सावधानचित्त होकर ब्राह्मणके हाथपर, महादेवके समीप अथवा गोशालामें हवनीय द्रव्य रखना चाहिये। तदनन्तर उनकी आज्ञा प्राप्तकर दक्षिण दिशामें जाकर भूमिको गोमय (गोबर)-से लीपकर उस स्थानमें बालू बिछाये। तदनन्तर उस स्थानपर दक्षिणकी ओर झुकी हुई गोल अथवा चौकोर शुभ (बालुकामय) बेदी बनाये, उस बेदीके बीचमें एक कुशसे तीन रेखा खींचे और उस स्थान (बेदी)-पर दक्षिणाग्र कुशोंको बिछाकर हविके बचे हुए अंशसे निर्मित तीन पिण्ड उस (बेदी)-पर प्रदान करे॥ ४८—५१॥

न्युप्य पिण्डांस्तु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्।
तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिरायम्य शनैरसून्।
तदन्नं तु नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवित्॥ ५२॥

उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।
अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः॥ ५३॥

पिण्ड-प्रदानके अनन्तर लेपभागके अधिकारी[1] पितरोंके लिये पिण्डाधार-कुशोंके मूलमें उस (पिण्ड-शेषसे संसृष्ट) हाथका प्रोक्षण करे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि आचमन करे और धीरे-धीरे श्वास खींचकर अपने बायेंसे पीछे मुख करके धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए पिण्डोंके सामने अपना मुख कर पूरा श्वास छोड़े तथा उस अन्न एवं पितरोंको नमस्कार करे। पुनः पिण्डके समीप (ऊपर) धीरे-धीरे (अर्घपात्रका) शेष जल छोड़े (इसे अवनेजन कहते हैं)। तदनन्तर सावधानीके साथ रखे हुए उन पिण्डोंको झुककर क्रमानुसार सूँघे (और पाकपात्रमें रख दे।)॥ ५२-५३॥

अथ पिण्डावशिष्टान्नं विधिना भोजयेद् द्विजान्।
मांसान्यपूपान् विविधान् दद्यात् कृसरपायसम्॥ ५४॥

सूपशाकफलानीक्षून् पयो दधि घृतं मधु।
अन्नं चैव यथाकामं विविधं भक्ष्यपेयकम्॥ ५५॥

पिण्डदानसे बचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक खिलाना चाहिये। पूआ, कृसर, पायस (तिलके साथ पकाये चावलकी खीर), सूप, शाक, फल, ईख, दूध, दही, घृत, मधु, अन्न तथा अनेक प्रकारके खाने और पीने योग्य पदार्थ उनकी (ब्राह्मणोंकी) रुचिके अनुसार खिलाने चाहिये॥ ५४-५५॥

यद् यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्सर्वं विनिवेदयेत्।
धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा॥ ५६॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो-जो रुचिकर हो (और श्राद्धमें विहित हो) वह सब देना चाहिये। साथ ही अनेक प्रकारके धान्य, तिल तथा शर्कराका दान करना चाहिये॥ ५६॥

१- पितामहके ऊपरके प्रपितामह आदि तीसरी परम्परासे आगेके सभी पितर पिण्डके अधिकारी नहीं होते हैं, अपितु पिण्ड बनाते समय हाथमें जो पिण्डका शेष अन्न संसृष्ट (लगा) रहता है, उसीको ग्रहण करनेके अधिकारी होते हैं, अतः प्रपितामहके आगेकी पीढ़ीवाले पितरोंको 'लेपभागभुक्' कहा जाता है। इनकी तृप्ति तभी होती है, जब प्रपितामहतक तीन परम्पराको पिण्ड प्रदान कर देनेके अनन्तर पिण्डोंके आधारकुशोंके मूलमें उन दोनों हाथोंका प्रोक्षण किया जाय, जिनसे पिण्डोंको बनाया गया है।

उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।
अन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्यस्तथैव च॥ ५७॥

कल्याण प्राप्त करनेकी इच्छावाले (श्राद्धकर्ताको चाहिये कि) ब्राह्मणोंको फल, मूल और पानक (विविध स्वादयुक्त पेय पदार्थविशेष)-को छोड़कर अन्य सभी अन्न उष्ण-अवस्थामें (गरम-गरम) प्रदान करे॥ ५७॥

नाश्रूणि पातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत्।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत्॥ ५८॥

क्रोधेन चैव यद् दत्तं यद् भुक्तं त्वरया पुनः।
यातुधाना विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम्॥ ५९॥

स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत संनिधौ तु द्विजन्मनाम्।
न चात्र श्येनकाकादीन् पक्षिणः प्रतिषेधयेत्।
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः॥ ६०॥

(श्राद्धकर्ता) कभी भी अश्रुपात न करे, न कोप करे, न झूठ बोले, पाँवसे अन्नको स्पर्श न करे और न अन्नका (पैरोंसे) अवधूनन (मर्दन) करे। क्रोध करके जो दिया जाता है, जल्दी-जल्दी जो भोजन किया जाता है और बोलते हुए जो खाया जाता है, उस पदार्थको राक्षस हर लेते हैं। ब्राह्मणोंके समीप स्वेदयुक्त शरीरसे न रहे। श्राद्धस्थलसे श्येन, कौआ आदि पक्षियोंको हटाना नहीं चाहिये, क्योंकि (सम्भव है) इनके ही रूपमें पितृगण वहाँ खानेकी इच्छासे आये हों॥ ५८—६०॥

न दद्यात् तत्र हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा।
न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः॥ ६१॥

काञ्चनेन तु पात्रेण राजतौदुम्बरेण वा।
दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः॥ ६२॥

पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे भोजयते पितॄन्।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः॥ ६३॥

वहाँ (श्राद्धमें) हाथसे प्रत्यक्ष लवण नहीं देना चाहिये। लोहेके पात्रद्वारा और अश्रद्धासे कोई वस्तु नहीं देनी चाहिये। स्वर्ण, रजत या औदुम्बरके पात्रसे तथा विशेष रूपसे खड्ग नामके पात्रविशेषसे दिया हुआ पदार्थ अक्षय होता है। जो व्यक्ति श्राद्धमें मिट्टीके बर्तनोंमें पितरोंको भोजन कराता है, वह घोर नरकमें जाता है, ऐसे ही भोजन करनेवाले ब्राह्मण तथा (श्राद्ध करानेवाले) पुरोहित भी नरकमें जाते हैं॥ ६१—६३॥

न पंक्त्यां विषमं दद्यान्न याचेन्न च दापयेत्।
याचिता दापिता दाता नरकान् यान्ति दारुणान्॥ ६४॥

भुञ्जीरन् वाग्यताः शिष्टा न ब्रूयुः प्राकृतान् गुणान्।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ ६५॥

एक पंक्तिमें (भोजन करनेवालोंके साथ परोसनेमें) विषम व्यवहार नहीं करना चाहिये। सबको समान रूपसे देना चाहिये। (भोजन करनेवालोंको भी विषम दृष्टिसे) न तो माँगना चाहिये न किसी दूसरेको दिलाना चाहिये, क्योंकि ऐसा (करनेपर) माँगनेवाला, दिलानेवाला और देनेवाला—ये तीनों भीषण नरकोंमें जाते हैं। शिष्ट लोगोंको मौन होकर भोजन करना चाहिये। (अन्नके) प्राकृत गुणोंका वर्णन नहीं करना चाहिये। पितर तभीतक भोजन करते हैं, जबतक भोज्य पदार्थके गुणोंका वर्णन नहीं होता॥ ६४-६५॥

नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः।
बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पंक्त्या हरति किल्बिषम्॥ ६६॥

न किञ्चिद् वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः।
न मांसं प्रतिषेधेत न चान्यस्यान्नमीक्षयेत्॥ ६७॥

यो नाश्नाति द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्मणि।
स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्॥ ६८॥

स्वाध्यायं श्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान्॥ ६९॥

ततोऽन्नमुत्सृजेद् भुक्ते अग्रतो विकिरन् भुवि।
पृष्ट्वा तृप्ताः स्थ इत्येवं तृप्तानाचामयेत् ततः॥ ७०॥

अग्रासनपर (प्रथम पंक्तिमें) बैठे हुए किसी एक द्विजको उस पंक्ति या अन्य पंक्तिमें बैठे द्विजों (ब्राह्मणों)-के देखते-देखते (उनके द्वारा भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व) पहले अकेले भोजन आरम्भ नहीं करना चाहिये (अर्थात् अपनी तथा अन्य पंक्तियोंमें बैठे हुए सभी ब्राह्मणोंके साथ ही भोजन आरम्भ करना चाहिये)। क्योंकि ऐसा करनेपर वह अज्ञ (द्विज) पंक्तिमें बैठे हुए देखनेवालोंके पापका भागी होता है। श्राद्धमें नियुक्त श्रेष्ठ द्विजको किसी वस्तुका बहिष्कार नहीं करना चाहिये और दूसरेके अन्नकी ओर नहीं देखना चाहिये। श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंको वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास-पुराण तथा शुभ श्राद्धकल्पों (श्राद्धीय नियमों)-को सुनाना चाहिये। ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर उनसे 'क्या आप लोग तृप्त हो गये?' इस प्रकार पूछना चाहिये और उनके भोजनपात्रके सम्मुख परिवेषणसे अवशिष्ट अन्नका विकिरण करना चाहिये (साथ ही वृद्ध प्रपितामह आदि लेपभागके अधिकारी पितरोंके लिये श्राद्धीय सिद्ध अन्नका उत्सर्ग करना चाहिये)। तदनन्तर तृप्त ब्राह्मणोंको आचमन कराना चाहिये॥ ६६—७०॥

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति।
स्वधाऽस्त्विति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्॥ ७१॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु वै द्विजैः॥ ७२॥

आचमन कर लेनेपर उन्हें 'चतुर्दिक् रमण करें' ऐसा कहना चाहिये। तब ब्राह्मण उसे **'स्वधाऽस्तु'** कहकर आशीर्वाद दें। उनके (ब्राह्मणोंके) भोजन करनेसे शेष बचे अन्नको (उन ब्राह्मणोंको ही) निवेदित करे। अनन्तर वे ब्राह्मण जैसा कहें, वैसा ही उनकी आज्ञासे करे[१]॥ ७१-७२॥

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाक्यं गोष्ठेषु सूनृतम्।
सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत इत्यपि॥ ७३॥

पित्र्यकार्य (माता-पिताके एकोद्दिष्ट श्राद्ध)-में **'स्वदितम्'**, गोष्ठीश्राद्धमें[२] **'सूनृतम्'**, आभ्युदयिक[३] श्राद्धमें **'सम्पन्नम्'** तथा दैव (**देवश्राद्ध**[४])-में **'रोचते'** ऐसा कहना चाहिये॥ ७३॥

विसृज्य ब्राह्मणांस्तान् वै दैवपूर्वं तु वाग्यतः।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन्॥ ७४॥

निमन्त्रित ब्राह्मणोंको बिदाकर मौन होकर दैव-कार्य (पूर्वाभिमुख आचमन, विष्णुस्मरण आदि पुनः) करके दक्षिणाभिमुख होकर पितरोंसे इन वरोंकी याचना करे— ॥ ७४॥

१-ब्राह्मण-भोजनके अनन्तर 'शेषान्नं किं कर्तव्यम्?' पूछना चाहिये। ब्राह्मणको कहना चाहिये: 'इष्टैः सह भोक्तव्यम्'।
२-बारह श्राद्धोंमें गोष्ठीश्राद्ध विश्वामित्रके द्वारा बताया गया है।
३-आभ्युदयिक श्राद्ध—वृद्धिश्राद्ध (विवाह, यज्ञोपवीत-संस्कार आदिमें करणीय नान्दीश्राद्ध)।
४-भविष्यपुराणमें देवताओंके उद्देश्यसे श्राद्धका विधान है। (द्रष्टव्य मनु० ३। २५४ व्याख्या कुल्लूकभट्टी)

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति॥ ७५॥

हमारे (कुलमें) दान देनेवालोंकी, वेद (ज्ञान)-की तथा संततिकी वृद्धि हो। (शास्त्रों, ब्राह्मणों, पितरों, देवों आदिमें) हमारी श्रद्धा हटे नहीं। मेरे पास दान देनेके लिये बहुतसे पदार्थ हों॥ ७५॥

पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात् पत्नी सुतार्थिनी॥ ७६॥
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण तोषयेत्।
ज्ञातिष्वपि च तुष्टेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत् ततः।
पश्चात् स्वयं च पत्नीभिः शेषमन्नं समाचरेत्॥ ७७॥

(श्राद्धके) पिण्डोंको गाय, अज (बकरा) अथवा ब्राह्मणको दे, ऐसा सम्भव न होनेपर अग्नि अथवा जलमें विसर्जित करना चाहिये। पुत्रकी इच्छा करनेवाली (श्राद्धकर्ताकी) पत्नीको मध्यम पिण्डका भक्षण करना चाहिये। तदनन्तर हाथोंको धोकर आचमन करके अवशिष्ट भोज्य पदार्थोंसे अपनी जातीय बान्धवोंको तृप्त करे, उन जातीय बन्धुओंके तृप्त हो जानेपर अपने भृत्यजनोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् पत्नियोंके साथ स्वयं भी शेष अन्नको ग्रहण करे॥ ७६-७७॥

नोद्वासयेत् तदुच्छिष्टं यावन्नास्तंगतो रविः।
ब्रह्मचारी भवेतां तु दम्पती रजनीं तु ताम्॥ ७८॥
दत्त्वा श्राद्धं तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम्।
महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत् पुनः॥ ७९॥
शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः।
स्वाध्यायं च तथाध्वानं कर्ता भोक्ता च वर्जयेत्॥ ८०॥

(श्राद्धस्थलसे) जूठा अन्न तबतक नहीं उठाना चाहिये, जबतक सूर्यास्त न हो जाय। श्राद्धकी उस रात्रिमें पति-पत्नीको ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिये। श्राद्ध करके और श्राद्धका भोजन करके जो मैथुन करता है, वह महारौरव नामक नरकमें जाता है, तदुपरान्त कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। श्राद्धकर्ता तथा श्राद्धके भोजन करनेवालेको पवित्र, क्रोधरहित, शान्त, सत्यवादी तथा सावधान रहना चाहिये और स्वाध्याय तथा यात्राका त्याग करना चाहिये॥ ७८—८०॥

श्राद्धं भुक्त्वा परश्राद्धं भुञ्जते ये द्विजातयः।
महापातकिभिस्तुल्या यान्ति ते नरकान् बहून्॥ ८१॥
एष वो विहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः सनातनः।
आमेन वर्तयेन्नित्यमुदासीनोऽथ तत्त्ववित्॥ ८२॥

(किसी एक) श्राद्धमें भोजन करनेके बाद जो ब्राह्मण दूसरे श्राद्धमें भोजन करते हैं, वे महापातकियोंके समान हैं और बहुतसे नरकोंमें जाते हैं। इस प्रकार आप लोगोंसे मैंने इस सनातन श्राद्धकल्पका वर्णन किया। उदासीन (अनासक्त) तत्त्ववेत्ताको नित्य अपक्व अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये॥ ८१-८२॥

अनग्निरध्वगो वापि तथैव व्यसनान्वितः।
आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद् विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः।
तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥ ८३॥
योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात् संयतमानसः।
व्यपेतकल्मषो नित्यं योगिनां वर्तते पदम्॥ ८४॥

अग्निहोत्रसे रहित, यात्रा करनेवाले अथवा व्यसनसे युक्त (किसी प्रकारकी आपत्ति या रोगसे ग्रस्त) श्रद्धालु और विधिको जाननेवाले द्विजको आमश्राद्ध (अपक्व अन्नसे किया जानेवाला श्राद्ध) करना चाहिये। वह उसी अपक्व अन्नसे '**अग्नौकरण**'[१] करे और उसीसे पिण्डदान भी करे। जो इस विधिसे शान्त-मन होकर श्राद्ध करता है, वह सभी कल्मषोंसे दूर होता हुआ योगियोंके नित्य पदको प्राप्त करता है॥ ८३-८४॥

१-यह 'अग्नौकरण' ब्राह्मणके हाथपर होता है। (मनु० ३। २१२)

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् द्विजोत्तमः।
आराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातनः॥ ८५॥

इसलिये द्विजोत्तमको सभी प्रयत्नोंसे श्राद्ध करना चाहिये। इससे सनातन ईशकी सम्यक् रूपसे आराधना हो जाती है॥ ८५॥

अपि मूलैर्फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्धनो द्विजः।
तिलोदकैस्तर्पयेद् वा पितॄन् स्नात्वा समाहितः॥ ८६॥

न जीवत्पितृको दद्याद्धोमान्तं चाभिधीयते।
येषां वापि पिता दद्यात् तेषां चैके प्रचक्षते॥ ८७॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
यो यस्य म्रियते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु॥ ८८॥

भोजयेद् वापि जीवन्तं यथाकामं तु भक्तितः।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति श्रूयते श्रुतिः॥ ८९॥

सर्वथा निर्धन द्विजको मूल अथवा फलोंसे श्राद्ध करना चाहिये। अथवा स्नानकर समाहित होकर तिल और जलद्वारा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। जिसके पिता जीवित हों उसे श्राद्ध नहीं करना चाहिये अथवा उसके लिये होमपर्यन्त श्राद्ध करनेका विधान है। कुछ लोगोंका कहना है कि पिता जिन्हें पिण्डदान करते हों उन्हें ही (वह) पिण्डदान करे। पिता, पितामह तथा प्रपितामहमेंसे जिसकी मृत्यु हुई हो उसीके निमित्त श्राद्धकर्ताको पिण्डदान करना चाहिये, न कि अन्य किसी (जीवित व्यक्ति)-के निमित्त। अथवा जीवित पुरुषको इसकी अभिरुचिके अनुसार भक्तिपूर्वक भोजन कराये। श्रुतिमें कहा गया है कि (पितादि) जीवित व्यक्तिका अतिक्रमणकर पिण्डदान नहीं करना चाहिये॥ ८६—८९॥

द्व्यामुष्यायणिको दद्याद् बीजिक्षेत्रिकयोः समम्।
रिक्थादर्धं समादद्यान्नियोगोत्पादितो यदि॥ ९०॥

अनियुक्तः सुतो यश्च शुल्कतो जायते त्विह।
प्रदद्याद् बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा॥ ९१॥

द्वौ पिण्डौ निर्वपेत् ताभ्यां क्षेत्रिणे बीजिने तथा।
कीर्तयेदथ चैकस्मिन् बीजिनं क्षेत्रिणं ततः॥ ९२॥

द्व्यामुष्यायणिक[1] पुत्र बीजी[2] एवं क्षेत्री[3] दोनों पिताओंको पिण्डदान करे। यह पुत्र सम्पत्तिका आधा भाग ले सकता है। जो पुत्र नियोग-विधिसे उत्पन्न नहीं है, शुल्क[4] (मूल्य) देकर गृहीत है, वह बीजी (जिस पुरुषके बीजसे उत्पन्न हुआ है वह बीजी है)-को पिण्डदान करेगा और क्षेत्राधिकारी पिताके पिण्डदानका उसे अधिकार नहीं होता। (नियोगसे उत्पन्न पुत्रको) क्रमशः क्षेत्री और बीजीको दो पिण्ड देने चाहिये। एक-एक पिण्ड देते समय क्रमशः अलग-अलग दोनोंका नाम कीर्तन करना चाहिये[5]॥ ९०—९२॥

मृताहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः।
अशौचे स्वे परिक्षीणे काम्यं वै कामतः पुनः॥ ९३॥

(पिताकी) मृत्यु-तिथिमें विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। अपना अशौच समाप्त होनेपर इच्छानुसार काम्य श्राद्ध किये जा सकते हैं॥ ९३॥

१-शास्त्रीय विधिसे विवाहके लिये किसी योग्य वरको चुना जाय और उसे यह वचन दे दिया जाय कि 'मैं अपनी कन्याका विवाह तुमसे करूँगा' वह वर दैववश यदि गत हो जाय तो शास्त्रानुसार उस वाग्दत्ता कन्याका पुनर्विवाह सम्भव नहीं है, किंतु दिवंगत वरको पिण्ड देनेके लिये और उसकी सम्पत्तिके स्वामित्वके लिये पुत्रकी आवश्यकता हो तो उस वाग्दत्ता कन्याका देवर या सगोत्रसे विवाह करना शास्त्रविहित है। यही नियोग-विवाह है। इससे उत्पन्न पुरुषको द्व्यामुष्यायणिक कहते हैं।

२-वाग्दत्ता कन्यासे नियोग-विधिसे विवाह करनेवाला देवर आदि बीजी है अर्थात् विद्यमान पिता।

३-वाग्दत्ता कन्याका दिवंगत वर क्षेत्री है अर्थात् दिवङ्गत पिता।

४-औरस आदि बारह प्रकारके पुत्र धर्मशास्त्रमें बताये गये हैं। उनमें एक क्रीत पुत्र होता है। यह मूल्य देकर माता-पितासे ले लिया जाता है और अपने पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया जाता है। यही पुत्र शुल्कसे गृहीत पुत्ररूपमें यहाँ निर्दिष्ट है।

५-क्षेत्री एवं बीजी दोनोंको पिण्डदान नियोगसे उत्पन्न वही पुत्र करेगा, जिसकी उत्पत्तिके पूर्व देवर आदि तथा वाग्दत्ता कन्याने परस्पर यह संविदा कर ली हो कि यह उत्पन्न होनेवाला पुत्र हम दोनोंका होगा।

पूर्वाह्णे चैव कर्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना।
देववत्सर्वमेव स्याद् यवैः कार्या तिलक्रिया॥ ९४ ॥
दर्भाश्च ऋजवः कार्या युग्मान् वै भोजयेद् द्विजान्।
नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत्॥ ९५ ॥

अभ्युदयकी कामना करनेवालेको पूर्वाह्णमें ही आभ्युदयिक (नान्दी) श्राद्ध करना चाहिये। देवकार्यके समान इसमें सभी कार्य करने चाहिये। तिलोंका कार्य जौसे करना चाहिये। इसमें सीधे कुशोंका प्रयोग करे (मोटकके रूपमें द्विगुणीकृत कुशोंका प्रयोग न करे)। युग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराये और '**नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्**' अर्थात् नान्दीमुख नामक पितर तृप्त हों—ऐसा कहना चाहिये॥ ९४-९५॥

मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां स्यादनन्तरम्।
ततो मातामहानां तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥ ९६ ॥
देवपूर्वं प्रदद्याद् वै न कुर्यादप्रदक्षिणम्।
प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डानुपवीती समाहितः॥ ९७ ॥

पहले मातृश्राद्ध तदनन्तर पितृश्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद मातामहादिका श्राद्ध होता है। वृद्धिश्राद्धमें इन्हीं तीन प्रकारके श्राद्धोंका वर्णन हुआ है[1]। देवकार्य (विश्वेदेव कार्य) करनेके अनन्तर पिण्डदान करना चाहिये। दाहिनी ओरसे ही विश्वेदेवकार्य करना चाहिये। एकाग्रचित्तसे[2] सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो पिण्डदान करना चाहिये॥ ९६-९७॥

पूर्वं तु मातरः पूज्या भक्त्या वै सगणेश्वराः।
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु॥ ९८ ॥
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि।
पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः॥ ९९ ॥
अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत्।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥ १००॥

सर्वप्रथम (नान्दीश्राद्धके पूर्व) भक्तिपूर्वक गणेश्वरोंसे युक्त (षोडश) मातृकाओंका पूजन करना चाहिये। मनोरम स्थण्डिल, प्रतिमा अथवा ब्राह्मणोंमें पुष्प, धूप, नैवेद्य, गन्ध तथा अलंकारों आदिके द्वारा (षोडश मातृकाओंका) पूजन करना चाहिये। मातृगणोंकी पूजाकर विद्वान्‌को चाहिये कि वह तीनों श्राद्ध[3] करे। मातृपूजन किये बिना जो श्राद्ध करता है, (षोडश) मातृकाएँ क्रुद्ध होकर उससे अप्रसन्न हो जाती हैं॥ ९८—१००॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २२॥

१-पुत्रादिकी उत्पत्तिके समय होनेवाले विशेष श्राद्धके लिये यह व्यवस्था है। सामान्यतः सभी श्राद्धोंमें प्रथम पिता आदिका, अनन्तर माता आदिका श्राद्ध होता है।

२-यह किसी विशेष श्रौतकर्मके पिण्डदानकी व्यवस्था है। सामान्यतः पिण्डदान दक्षिणाभिमुख एवं अपसव्य होकर किया जाता है।

३-ये तीन श्राद्ध—पिता आदि तीन, माता आदि तीन तथा मातामह आदि तीनका समझना चाहिये। नान्दीश्राद्धमें ये तीनों श्राद्ध होते हैं।

तेईसवाँ अध्याय

आशौच-प्रकरणमें जननाशौच और मरणाशौचकी क्रियाविधि, शुद्धि-विधान, सपिण्डता, सद्यःशौच, अन्त्येष्टि-संस्कार, सपिण्डीकरण-विधि, मासिक तथा सांवत्सरिक श्राद्ध आदिका वर्णन

व्यास उवाच

दशाहं प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विपश्चितः।
मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः॥ १॥
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः।
न कुर्याद् विहितं किञ्चित् स्वाध्यायं मनसापि च॥ २॥

व्यासजीने कहा—हे द्विजोत्तमो! विद्वानोंने ब्राह्मणोंके लिये सपिण्डोंकी मृत्यु अथवा जन्म होनेपर दस दिनका आशौच कहा है। (आशौचमें) विशेषरूपसे विहित नित्य तथा काम्य कुछ भी कर्म न करे। मनसे भी स्वाध्याय (वेदाध्ययन) न करे॥ १-२॥

शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान्।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानं जुहुयात् तथा॥ ३॥

यज्ञशालाके अग्निकार्यके लिये पवित्र, क्रोधरहित, भूमिदेवरूप ब्राह्मणोंको नियुक्त करना चाहिये। शुष्क अन्न अथवा फूलोंके द्वारा वैतानाग्निमें हवन (श्रौत होम) करना चाहिये॥ ३॥

न स्पृशेयुरिमानन्ये न च तेभ्यः समाहरेत्।
चतुर्थे पञ्चमे वाह्नि संस्पर्शः कथितो बुधैः॥ ४॥
सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो न प्रदुष्यति।
सूतकं सूतिकां चैव वर्जयित्वा नृणां पुनः॥ ५॥

दूसरे लोग इन आशौचग्रस्त व्यक्तियोंको स्पर्श न करें और न कोई वस्तु ही उनसे लें। विद्वानोंने चौथे अथवा पाँचवें दिन इनके स्पर्शका विधान किया है। (सपिण्डोंके) जननाशौचमें सपिण्डोंको स्पर्श करनेमें दोष नहीं होता। तथापि उत्पन्न हुए बालक और उसे जन्म देनेवाली (सद्यः) प्रसूता स्त्रीका मनुष्योंको स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ ४-५॥

अधीयानस्तथा यज्वा वेदविच्च पिता भवेत्।
संस्पृश्याः सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहतः॥ ६॥
दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमशौचं चातिनिर्गुणे।
एकद्वित्रिगुणैर्युक्तं चतुस्त्र्येकदिनैः शुचिः॥ ७॥
दशाहात् तु परं सम्यगधीयीत जुहोति च।
चतुर्थे तस्य संस्पर्शं मनुराह प्रजापतिः॥ ८॥
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।
यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम्॥ ९॥

जननाशौचमें वेदका अध्ययन करनेवाला, यज्ञ करनेवाला और वेद जाननेवाला पिता—ये सभी स्नान करनेसे स्पर्श करने योग्य हो जाते हैं। माता दस दिनोंके बाद (स्पर्श-योग्य होती है) निर्गुण[1] अथवा अति-निर्गुण लोगोंके लिये दस दिनोंका आशौच कहा गया है। एक[2], दो अथवा तीन गुणवालोंके लिये चार, तीन या एक दिनमें शुद्धि होनेका विधान है। दस दिन हो जानेपर सम्यक्-रूपसे अध्ययन एवं हवन करना चाहिये। प्रजापति मनुने चौथे दिन (एक गुणवाले अशौची)-के स्पर्शका विधान किया है। क्रियाहीन, मूर्ख, महारोगी और मनमाना आचरण करनेवाले व्यक्तियोंका आशौच मरणपर्यन्त कहा[3] गया है॥ ६—९॥

१-वेदाध्ययन एवं अग्निहोत्रादि कर्मसे रहितको निर्गुण कहा जाता है।

२-जो स्मार्ताग्निमान् है वह एक गुणवाला है। जो स्मार्ताग्निमान् तथा वेदाध्ययनसम्पन्न है, वह दो गुणवाला है। जो इन दोनोंके साथ श्रौताग्निमान् है, वह तीन गुणोंवाला है। (मनु० ३। ५९ कुल्लूकभट्टी)

३-इस वचनका तात्पर्य क्रियाहीनता आदिकी निन्दामें है।

त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम्।
प्राक्संस्कारात् त्रिरात्रं स्यात् तस्मादूर्ध्वं दशाहकम्॥ १०॥

ब्राह्मणोंका आशौच तीन रात अथवा दस रात-तकका होता है। (उपनयन) संस्कार होनेके पूर्व (तथा चूडासंस्कारके अनन्तर मृत्यु होनेपर) तीन रातका और (उपनयन) संस्कार होनेपर दस रातका अशौच होता है॥ १०॥

ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते।
त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदि ह्यत्यन्तनिर्गुणः॥ ११॥

अदन्तजातमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते।
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद् यदि स्यातां तु निर्गुणौ॥ १२॥

आदन्तजननात् सद्य आचौलादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपनयनात् सपिण्डानामुदाहृतम्॥ १३॥

जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः।
मातुश्च सूतकं तत् स्यात् पिता स्यात् स्पृश्य एव च॥ १४॥

सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्तव्यं सोदरस्य च।
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः॥ १५॥

दो वर्षसे कम अवस्थावाले बालकके मरनेपर केवल माता-पिताको तीन रातका अशौच होता है। अत्यन्त निर्गुण (सपिण्डकी मृत्यु) होनेपर तीन रातमें शुद्धि होती है। बिना दाँतवाले शिशुके मरनेपर माता-पिताको एक दिनका अशौच कहा गया है। यदि माता-पिता निर्गुण हों तो दाँत उत्पन्न हुए शिशुकी मृत्यु होनेपर उन्हें तीन रातका अशौच होता है। दाँत उत्पन्न होनेके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः चूडाकरण-संस्कारके पूर्वतक एक रात तथा उपनयनसे पूर्वतक तीन रातका आशौच सपिण्डोंके लिये कहा गया है। उत्पन्न होते ही बालककी मृत्यु होनेपर पिता और माताको अशौच होता है, किंतु पिता (स्नानके बाद) स्पर्शके योग्य होता है। सपिण्डों और सहोदर भाईकी (जन्मसे) दस दिनोंके भीतर मृत्यु होनेपर (स्नानमात्रसे) सद्यः पवित्रता होती है। दस दिनके पश्चात् (मृत्यु होनेपर) एक दिनका अशौच उस सहोदरको होगा जो निर्गुण होता है॥ ११—१५॥

अथोर्ध्वं दन्तजननात् सपिण्डानामशौचकम्।
एकरात्रं निर्गुणानां चौलादूर्ध्वं त्रिरात्रकम्॥ १६॥

अदन्तजातमरणं सम्भवेद् यदि सत्तमाः।
एकरात्रं सपिण्डानां यदि तेऽत्यन्तनिर्गुणाः॥ १७॥

व्रतादेशात् सपिण्डानामर्वाक् स्नानं विधीयते।
सर्वेषामेव गुणिनामूर्ध्वं तु विषमं पुनः॥ १८॥

तदनन्तर दाँत निकलनेतक निर्गुण सपिण्डोंको एक रातका अशौच होता है। चौलकर्मके उपरान्त (सपिण्डोंके मरनेपर) तीन रातका अशौच होता है। श्रेष्ठ जनो! सपिण्डी (यदि) अत्यन्त निर्गुण हों तो बिना दाँत निकले उनकी मृत्यु होनेपर एक रातका अशौच होता है। उपनयनके पूर्व सपिण्डोंकी मृत्यु होनेपर सभी गुणवानोंके लिये स्नानका विधान है, किंतु उपनयनके बाद मृत्यु होनेपर भिन्न स्थिति (अलग-अलग अशौचकी व्यवस्था) होती है॥ १६—१८॥

अर्वाक् षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः।
तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम्॥ १९॥

तत ऊर्ध्वं तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम्।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च वा ततः॥ २०॥

छः महीनेसे पूर्व यदि स्त्रियोंका गर्भस्राव हो जाता है तो जितने महीनेका गर्भ रहता है, उतने ही दिनों-तकका उनका (स्त्रियोंका) अशौच कहा गया है, उसके बाद गर्भपात होनेपर स्त्रियोंके लिये बारह रात्रिका और सपिण्डोंके लिये सद्यः शौचका विधान है॥ १९-२०॥

गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे।
यथेष्टाचरणे ज्ञातौ त्रिरात्रमिति निश्चयः॥ २१॥

यदि स्यात् सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत्।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे त्रिरात्रकम्॥ २२॥

मरणोत्पत्तियोगे तु मरणाच्छुद्धिरिष्यते।
अघवृद्धिमदाशौचमूर्ध्वं चेत् तेन शुध्यति॥ २३॥

अथ चेत् पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत्।
अघवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुध्यति॥ २४॥

गर्भस्राव तथा अत्यन्त निर्गुण सपिण्डीकी मृत्यु होनेपर एक अहोरात्रका और मनमाने आचरणवाले जाति-बन्धुके (यहाँ गर्भस्राव होनेपर) तीन रातका अशौच निश्चित है। यदि जननाशौचके मध्य दूसरा जननाशौच हो जाय और मरणाशौचके बीचमें दूसरा मरणाशौच पड़ जाय तो प्रथम अशौचके जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिनोंमें दूसरे अशौचकी भी शुद्धि हो जाती है। किंतु प्रथम अशौच एक ही दिनका बचा हो तो तीन रातका आशौच होता है। मरणाशौचके मध्य जननाशौच होनेपर अथवा जननाशौचके बीचमें मरणाशौच आ जानेपर मरणाशौचके पूरा होनेपर ही शुद्धि होती है। यदि पूर्वका अशौच वृद्धिमद् (बड़ा गुरुतर) अशौच हो तो पूर्वके अशौचकी शुद्धिसे ही दोनों अशौचोंकी शुद्धि होती है। यदि पाँचवीं रात्रि बीत जानेपर वृद्धिमद् अशौच हो तो दूसरे अशौचकी शुद्धि पूर्वके ही अशौचसे हो जाती है॥ २१—२४॥

देशान्तरगतं श्रुत्वा सूतकं शावमेव तु।
तावदप्रयतो मर्त्यो यावच्छेषः समाप्यते॥ २५॥

अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम्।
तथैव मरणे स्नानमूर्ध्वं संवत्सराद् यदि॥ २६॥

देशान्तरमें गये हुएका जननाशौच या मरणाशौच-सम्बन्धी समाचार सुननेके बाद उतने समयतक संयम (अशौचके नियमका पालन) करना चाहिये जबतक शेष दिन समाप्त न हो जाय। (एक वर्षके भीतर) व्यतीत हुए मरणाशौचका समाचार सुननेपर सपिण्डोंको तीन रातका अशौच होता है, उसी प्रकार एक वर्ष बीतनेके बाद समाचार मिलनेपर मरणाशौचमें स्नानमात्र करना चाहिये॥ २५-२६॥

वेदान्तविच्चाधीयानो योऽग्निमान् वृत्तिकर्षितः।
सद्यः शौचं भवेत् तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा॥ २७॥

वेदान्तको जाननेवाला (ब्रह्मनिष्ठ), अध्ययनकर्ता (गुरुकुलमें निवास करनेवाला ब्रह्मचारी), अग्निहोत्री तथा वृत्तिहीन लोगोंको सभी अवस्थाओंमें सदा सद्यः शौच होता है॥ २७॥

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु प्रदानात् पूर्वतः सदा।
सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात् संस्कारे भर्तुरेव हि॥ २८॥

अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणे स्मृतम्।
ऊनद्विवर्षान्मरणे सद्यः शौचमुदाहृतम्॥ २९॥

अविवाहित स्त्रियों (कन्याओं)-की पाणिग्रहणसे पूर्व मृत्यु होनेपर सपिण्डोंके निमित्त सदा तीन रातका अशौच होता है और विवाह-संस्कारके अनन्तर मृत्यु होनेपर केवल पति और पतिकुलमें अशौच होता है। वाग्दानसे पूर्व कन्याओंकी मृत्यु होनेपर एक दिनका अशौच कहा गया है और दो वर्षसे कम अवस्थावाली कन्याके मरनेपर सद्यः शौच बताया गया है॥ २८-२९॥

आदन्तात् सोदरे सद्य आचौलादेकरात्रकम्।
आप्रदानात् त्रिरात्रं स्याद् दशरात्रमतः परम्॥ ३०॥

दाँत निकलनेसे पूर्व कन्याकी मृत्यु होनेपर सहोदर भाईको सद्यः शौच होता है और चूडाकरणके कालतक मृत्यु होनेपर एक रात्रिका अशौच होता है। कन्यादानके पूर्व (कन्याका मरण होनेपर) तीन रातका और विवाहके बाद मरण होनेपर दस रातका (पतिकुलमें) अशौच होता है॥ ३०॥

मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम्।
एकोदकानां मरणे सूतके चैतदेव हि॥ ३१॥

पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च।
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि॥ ३२॥

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद् विषये स्थितिः।
गृहे मृतासु दत्तासु कन्यकासु त्र्यहं पितुः॥ ३३॥

परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च।
त्रिरात्रं स्यात् तथाचार्ये स्वभार्यास्वन्यगासु च॥ ३४॥

आचार्यपुत्रे पत्न्यां च अहोरात्रमुदाहृतम्।
एकाहं स्यादुपाध्याये स्वग्रामे श्रोत्रियेऽपि च॥ ३५॥

मातामहकी मृत्यु होनेपर (दौहित्रको) तीन रातका अशौच होता है। समानोदकोंके[1] मरण या जन्ममें भी तीन रातका ही अशौच होता है। योनि-सम्बन्धवालों (भांजा, मामा, मौसी, बूआ-कुलके लोग आदि) तथा बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर पक्षिणी (आगामी तथा वर्तमान दिनसे युक्त रात्रि)-तक अशौच होता है[2]। गुरु एवं सहपाठी (-के मरणमें) एक रात्रिका अशौच बतलाया गया है। जिस देशमें निवास करता हो, उस देशके राजाकी मृत्यु होनेपर सज्योतिकालतकका[3] अशौच होता है और पिताके घरमें विवाहित कन्याकी मृत्यु होनेपर पिताको तीन रातका अशौच होता है। पूर्वमें अन्यकी भार्या रहनेवाली स्त्री, उसके पुत्र तथा कृत्रिम पुत्रके मरणमें तीन रातका आशौच होता है। इसी प्रकार आचार्यके मरणमें भी तीन रातका आशौच होता है। गुरुपुत्र तथा गुरुपत्नीका एक अहोरात्रका और उपाध्याय तथा अपने ग्राममें श्रोत्रियकी मृत्यु होनेपर भी एक दिनका आशौच होता है॥ ३१—३५॥

त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च।
एकाहं चास्ववर्ये स्यादेकरात्रं तदिष्यते॥ ३६॥

त्रिरात्रं श्वश्रूमरणे श्वशुरे वै तदेव हि।
सद्यः शौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे संस्थिते सति॥ ३७॥

शुध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥ ३८॥

क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः।
तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते॥ ३९॥

अपने घरमें रहनेवाले असपिण्डीकी मृत्यु होनेपर तीन रातका अशौच होता है और अपने घरमें (स्वेच्छासे रहनेवाले) अन्य किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर एक दिनका अशौच होता है। सास एवं ससुरके मरनेपर तीन रातका और अपने घरमें स्थित रहनेवाले सगोत्रके मरणमें सद्यः शौच कहा गया है। ब्राह्मणकी शुद्धि दस दिनमें, क्षत्रियकी बारह दिनमें, वैश्यकी पंद्रह दिनमें और शूद्रकी एक माहमें शुद्धि होती है। ब्राह्मणद्वारा क्षत्राणी, वैश्या और शूद्रासे उत्पन्न बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मणकी शुद्धि दस दिनोंमें होती है॥ ३६—३९॥

१-सातवीं परम्परासे चौदहवीं परम्परातकके लोग समानोदक होते हैं।

२-इस प्रसंगमें यह विवेक है—दिनमें मरण होनेपर वह दिन उसके बादकी रात्रि, उसके बाद दूसरे दिन नक्षत्रदर्शनतक अशौच होगा। रात्रिमें मरण होनेपर वह रात्रि बादका दिन पुनः उसके बादकी रात्रितक पक्षिणी माना जायगा और तबतक अशौच होगा।

३-दिनमें मरण होनेपर रात्रिमें स्नानसे शुद्धि और रात्रिमें मरण होनेपर दिनमें स्नानसे शुद्धि यही 'सज्योतिकाल' से अशौचमें शुद्धिका अर्थ है।

राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु।
स्वमेव शौचं कुर्यातां विशुद्ध्यर्थमसंशयम्॥ ४०॥

क्षत्रिय और वैश्यको भी हीनवर्णकी स्त्रियोंसे उत्पन्न बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर पूर्ण शुद्धिके लिये अपने वर्णके अनुसार विहित शौच-विधिका पालन करना चाहिये[1]॥ ३९-४०॥

सर्वे तूत्तरवर्णानामशौचं कुर्युरादृताः।
तद्वर्णविधिदृष्टेन स्वं तु शौचं स्वयोनिषु॥ ४१॥

षड्रात्रं वा त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण हि।
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव तु॥ ४२॥

अर्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुंगवाः।
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्येष्वाशौचमिष्यते॥ ४३॥

षड्रात्रं वै दशाहं च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः।
अशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुंगवाः॥ ४४॥

शूद्रविट्क्षत्रियाणां तु ब्राह्मणे संस्थिते सति।
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलोद्भवः॥ ४५॥

सभी वर्णके व्यक्तियोंको उत्तर वर्णके लिये विहित अशौचका आदरपूर्वक पालन करना चाहिये। किंतु अपने वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न बन्धुकी मृत्यु होनेपर अपने ही वर्णके अनुसार अशौचका पालन करना चाहिये। शूद्र सपिण्डकी मृत्यु या जन्म होनेपर वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणोंको क्रमानुसार छः रात, तीन रात और एक रातका आशौच होता है। द्विजश्रेष्ठो! वैश्य सपिण्डके जन्म या मृत्युपर शूद्र, क्षत्रिय और ब्राह्मणोंको क्रमशः आधे मास, छः रात तथा तीन रातका आशौच होता है। द्विजश्रेष्ठो! क्षत्रिय सपिण्डके जन्म या मरणमें क्रमशः ब्राह्मणको छः दिन और वैश्य तथा शूद्रको दस दिनोंका अशौच होता है। ब्रह्माजीने कहा है कि ब्राह्मण (सपिण्ड)-का (जन्म-मरण होनेपर) शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रियकी शुद्धि दस रातमें होती है[2]॥ ४१—४५॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुध्यति॥ ४६॥

यद्यन्नमत्ति तेषां तु त्रिरात्रेण ततः शुचिः।
अनदन्नन्नमह्नैव न च तस्मिन् गृहे वसेत्॥ ४७॥

सोदकेष्वेतदेव स्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु।
दशाहेन शवस्पर्शे सपिण्डश्चैव शुध्यति॥ ४८॥

यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः।
दशाहेन द्विजः शुध्येद् द्वादशाहेन भूमिपः॥ ४९॥

अर्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति।
षड्रात्रेणाथवा सर्वे त्रिरात्रेणाथवा पुनः॥ ५०॥

असपिण्ड द्विजकी मृत्यु होनेपर बन्धुवत् उसके प्रेतकर्ममें सम्मिलित होकर भोजन एवं निवास करनेवाला ब्राह्मण दस रातमें शुद्ध होता है। मृत व्यक्तिके यहाँ भोजन करनेपर तीन रातमें शुद्धि होती है। अन्न न खानेवालेकी उसी दिन शुद्धि हो जाती है, परंतु उसके घरमें निवास नहीं करना चाहिये। समानोदक तथा माताके श्रेष्ठ बान्धवोंके मरणमें शव वहन करनेवाला सपिण्ड व्यक्ति दस दिनोंमें शुद्ध होता है। यदि कोई व्यक्ति लोभके वशीभूत हो शवको ढोता है तो वह यदि ब्राह्मण है तो दस दिनोंमें, क्षत्रिय है तो बारह दिनोंमें, वैश्य है तो आधे मासमें और शूद्र है तो एक मासमें शुद्ध होता है अथवा सभी वर्णके व्यक्ति छः रात या तीन रातमें शुद्ध हो जाते हैं॥ ४६—५०॥

अनाथं चैव निर्हृत्य ब्राह्मणं धनवर्जितम्।
स्नात्वा सम्प्राश्य तु घृतं शुध्यन्ति ब्राह्मणादयः॥ ५१॥

धनहीन अनाथ ब्राह्मणके शवका वहन आदि कर्म करनेवाले ब्राह्मणादि स्नान करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ५१॥

१-यह अन्य युग-विषयक है। अपने वर्णसे इतर वर्णमें विवाह कलियुगमें सर्वथा निषिद्ध है।

२-यह अशौचकी व्यवस्था घनिष्ठ सम्पर्क, एक साथ रहने अथवा परस्पर उपकार्य-उपकारक-भाव रहनेपर है।

अवरश्चेद् वरं वर्णमवरं वा वरो यदि।
अशौचे संस्पृशेत् स्नेहात् तदाशौचेन शुध्यति॥ ५२॥

प्रेतीभूतं द्विजं विप्रो योऽनुगच्छेत कामतः।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति॥ ५३॥

एकाहात् क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्च द्व्यहेन तु।
शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः॥ ५४॥

स्नेहवश यदि हीनवर्णके व्यक्ति उच्च वर्णके शवका और उच्च वर्णके व्यक्ति हीनवर्णके शवका स्पर्श करते हैं तो वे उस मृतवर्णके निर्धारित अशौच (नियमपालन)-से शुद्ध होते हैं। यदि ब्राह्मण अपनी इच्छासे मरे हुए द्विजका अनुगमन करता है (शव-यात्रामें जाता है) तो वह वस्त्रसहित स्नानकर, अग्निका स्पर्श करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्ध हो जाता है। (द्विजके शवका अनुगमन करनेपर) क्षत्रियकी शुद्धि एक दिनमें, वैश्यकी दो दिनमें, शूद्रकी तीन दिनोंमें कही गयी है। (अशौचके दिन बीतनेके बाद) सौ बार प्राणायाम (भी शुद्धिके लिये) करना चाहिये॥ ५२—५४॥

अनस्थिसंचिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मणः स्वकैः।
त्रिरात्रं स्यात् तथाशौचमेकाहं त्वन्यथा स्मृतम्॥ ५५॥

अस्थिसंचयनादर्वागेकाहं क्षत्रवैश्ययोः।
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव तु॥ ५६॥

अनस्थिसंचिते विप्रे ब्राह्मणो रौति चेत् तदा।
स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेन न संशयः॥ ५७॥

शूद्रके अस्थिसंचय होनेसे पहले यदि ब्राह्मण उसके स्वजनोंके साथ विलाप करता है तो उसे तीन रातका अशौच होता है, इसके विपरीत (अस्थि-संचयनतक प्रेतकर्म हो जानेके अनन्तर यदि शूद्रका मरण जानकर ब्राह्मण उसके बान्धवोंके साथ विलाप करता है, उनका स्पर्श करता है तो उसे) एक दिनका अशौच होता है। अस्थिसंचयके पूर्व (शूद्रके घर विलाप करनेवाले) क्षत्रिय एवं वैश्यको एक दिनका और अन्य अवस्थामें सज्योति(काल)-तकका आशौच होता है। ब्राह्मणकी स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। ब्राह्मणके अस्थिसंचयके पूर्व यदि (असपिण्ड, असगोत्र, सम्बन्धरहित) ब्राह्मण रोता है तो वस्त्रोंसहित स्नानमात्रसे उसकी शुद्धि हो जाती है, इसमें संदेह नहीं॥ ५५—५७॥

यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि।
बान्धवो वापरो वापि स दशाहेन शुध्यति॥ ५८॥

यस्तेषामन्नमश्नाति सकृदेवापि कामतः।
तदाशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुध्यति॥ ५९॥

यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षोपहतो नरः।
तावन्त्यहान्यशौचं स्यात् प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्॥ ६०॥

आशौचीजनोंके साथ जो भोजन तथा शयन आदि करता है, वह चाहे बान्धव हो या कोई दूसरा, दस दिनमें शुद्ध होता है। जो इच्छापूर्वक उनका एक बार भी अन्न ग्रहण करता है तो वह अशौच पूरा होनेपर स्नान करनेसे शुद्ध हो जाता है। दुर्भिक्षसे पीड़ित व्यक्ति जितने दिनतक उस (अशौची)-का अन्न ग्रहण करता है, उतने दिनोंतकका उसे अशौच होता है, तदनन्तर उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ५८—६०॥

दाहाद्यशौचं कर्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम्।
सपिण्डानां तु मरणे मरणादितरेषु च॥ ६१॥

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥ ६२॥

अग्निहोत्री द्विजोंका दाह-कालसे अशौच आरम्भ होता है, अतः (तभीसे इनके मरणके निमित्त) नियमका पालन करना चाहिये। सपिण्डोंके मरने तथा जन्ममें भी अशौचका पालन करना चाहिये। पुरुषकी सपिण्डता सातवीं पीढ़ीमें समाप्त हो जाती है। अपने वंशके मूल पुरुषका नाम ज्ञात न होनेपर समानोदकता नष्ट हो जाती है॥ ६१-६२॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
लेपभाजस्त्रयश्चात्मा सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥ ६३॥

अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्।
ऊढानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः पितामहः॥ ६४॥

ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्यं भवेत् तेषां त्रिपूरुषम्॥ ६५॥

पिता, पितामह तथा प्रपितामह—इन तीनोंसे आगेके पितर लेपभागी होते हैं। सात पुरुषोंतक सपिण्डता होती है। अविवाहित कन्याओंकी सपिण्डता उसके पिताके सात पुरुषों (पीढ़ीतक)-में होती है और विवाहित स्त्रियोंकी सपिण्डता उसके पतिके साथ (सात पीढ़ीतक) होती है—ऐसा भगवान् ब्रह्माने कहा है। एक पुरुषद्वारा भिन्न वर्णकी[1] स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्रोंकी सपिण्डता तीन पीढ़ीतक होती है॥ ६३—६५॥

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च।
दातारो नियमी चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ॥ ६६॥

सत्रिणो व्रतिनस्तावत् सद्यःशौचा उदाहृताः।
राजा चैवाभिषिक्तश्च प्राणसत्रिण एव च॥ ६७॥

यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च।
सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे॥ ६८॥

डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः।
सद्यःशौचं समाख्यातं सर्पादिमरणे तथा॥ ६९॥

अग्नौ मरुप्रपतने वीराध्वन्यप्यनाशके।
ब्राह्मणार्थे च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते॥ ७०॥

बढ़ई, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, दाता, व्रतपरायण, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मचारी, यज्ञकर्ता, व्रती—ये सभी (किसीका मरण होनेपर) स्नानमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार अभिषिक्त राजा एवं प्राणकी रक्षा करनेवाले अन्नदाताको भी सद्यः शौच होता है। यज्ञ, विवाहारम्भ, देवपूजनका आरम्भ हो जानेपर तथा दुर्भिक्ष और उपद्रवकी स्थितिमें सद्यः शौच होता है। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणोंके साथ मामूली लड़ाई अथवा झड़प आदिमें मरनेवालों तथा विद्युत् और सर्पादिके कारण मरनेवालोंका सद्यः शौच कहा गया है। अग्निमें गिरकर अथवा मरुस्थलमें मरनेपर, दुर्गम मार्गमें गमन और अकाल-मृत्युपर, ब्राह्मणके लिये मरनेपर तथा संन्यासी होनेके उपरान्त मृत्यु होनेपर सद्यः शौचका विधान है॥ ६६—७०॥

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
नाशौचं कीर्त्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते॥ ७१॥

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः।
न चाश्रुपातपिण्डौ वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित्॥ ७२॥

विद्वानोंने नैष्ठिक अर्थात् जीवनभर ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करनेवाले ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ-धर्मावलम्बी, यति तथा ब्रह्मचारीकी मृत्यु होनेपर और पतित व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर अशौच नहीं बताया है। पतित व्यक्तियोंका न दाह होता है, न अन्त्येष्टि-संस्कार होता है और न अस्थिसंचय ही होता है। उनके लिये अश्रुपात, पिण्डदान तथा श्राद्धादि कार्य भी कभी नहीं करने चाहिये॥ ७१-७२॥

व्यापादयेत् तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥ ७३॥

अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः।
तस्याशौचं विधातव्यं कार्यं चैवोदकादिकम्॥ ७४॥

जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात् प्रतिग्रहम्।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलान्नगुडसर्पिषाम्॥ ७५॥

जो व्यक्ति अग्नि तथा विष आदिके द्वारा स्वयं अपनी आत्महत्या करता है, उसके निमित्त अशौच, दाह तथा उदकदान आदिका विधान नहीं है। यदि कोई प्रमादवश अग्नि अथवा विष आदिद्वारा मर जाता है, उसके (सम्बन्धियोंके) लिये अशौचका विधान है और उदकदान आदि भी करना चाहिये। पुत्रका जन्म होनेपर उस दिन स्वर्ण, धान्य, गौ, वस्त्र, तिल, अन्न, गुड़ तथा घृत—इन वस्तुओंका इच्छापूर्वक (कार्पण्यरहित होकर) दान करना चाहिये॥ ७३—७५॥

१-भिन्न वर्णकी स्त्री होना अन्य युगमें शास्त्रानुसार सम्भव है।

फलानि पुष्पं शाकं च लवणं काष्ठमेव च।
तोयं दधि घृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च।
आशौचिनां गृहाद् ग्राह्यं शुष्कान्नं चैव नित्यशः॥ ७६॥

आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः।
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः॥ ७७॥

देहाभावात् पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिं पुनः।
दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः॥ ७८॥

आशौची व्यक्तियोंके घरोंसे फल, पुष्प, शाक, लवण, काष्ठ, मट्ठा, दही, घी, तेल, औषधि तथा क्षीर और शुष्कान्नको नित्य ग्रहण किया जा सकता[1] है। आहिताग्नि श्रोत्रियका दाह-संस्कार तीनों अग्नियोंसे यथाविधि करना चाहिये और अनाहिताग्निका[2] दाह गृह्याग्निसे तथा दूसरे सामान्य लोगोंका दाह लौकिक अग्निसे करना चाहिये। (मृत व्यक्तिके) देहका अभाव (शव न मिलनेपर) होनेपर पलाशके पत्तोंसे उसके ही समान आकृति बनाकर सपिण्डीजनोंको चाहिये कि वे श्रद्धायुक्त होकर विधिपूर्वक दाह-संस्कार करें॥ ७६—७८॥

सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः।
दशाहं बान्धवैः सार्धं सर्वे चैवार्द्रवाससः॥ ७९॥

पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथाविधि।
प्रेताय च गृहद्वारि चतुर्थे भोजयेद् द्विजान्॥ ८०॥

सभी बान्धवोंको संयमपूर्वक दस दिनोंतक (मृत व्यक्तिके) नाम तथा गोत्रका उच्चारण करते हुए स्नानके गीले वस्त्र पहने हुए ही एक बार जलदान करना चाहिये। प्रेतके निमित्त यथाविधि प्रातःसे सायंकाल (अर्थात् दिनमें किसी भी समय) प्रतिदिन पिण्डदान करना चाहिये और चौथे दिनसे घरके द्वारपर (अभ्यागत) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ७९-८०॥

द्वितीयेऽहनि कर्तव्यं क्षुरकर्म सबान्धवैः।
चतुर्थे बान्धवैः सर्वैरस्थ्नां संचयनं भवेत्।
पूर्वं तु भोजयेद् विप्रानयुग्मान् श्रद्धया शुचीन्॥ ८१॥

पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि।
अयुग्मान् भोजयेद् विप्रान् नवश्राद्धं तु तद्विदुः॥ ८२॥

एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः।
द्वादशे वाथ कर्तव्यमनिन्द्ये त्वथवाहनि।
एकं पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च॥ ८३॥

दूसरे दिन बान्धवोंके साथ क्षौरकर्म करना चाहिये। चौथे दिन बन्धुओंसहित अस्थिसंचयन करना चाहिये। अस्थिसंचयनसे पूर्व श्रद्धापूर्वक पवित्र अयुग्म (विषम संख्यावाले) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। पाँचवें, नवें तथा ग्यारहवें दिन अयुग्म (विषम संख्यामें) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसे नवश्राद्ध जानना चाहिये। प्रेतके निमित्त ग्यारहवें, बारहवें अथवा किसी अनिन्दित दिनमें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। इस श्राद्धमें एक पवित्र, एक अर्घ और एक ही पिण्डपात्र होता है॥ ८१—८३॥

एवं मृताह्नि कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
सपिण्डीकरणं प्रोक्तं पूर्णे संवत्सरे पुनः॥ ८४॥

कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः।
प्रेतार्घं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत् ततः॥ ८५॥

इसी प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक महीनेमें मृत्युकी तिथिको श्राद्ध करना चाहिये। संवत्सर (वर्ष)-के पूर्ण हो जानेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध करनेका विधान किया गया है। हे द्विजोत्तमो! प्रेतादि अर्थात् प्रेत, पितामह, प्रपितामह तथा वृद्ध प्रपितामहके उद्देश्यसे चार अर्घ-पात्र बनाना चाहिये और पितृपात्रोंमें प्रेतपात्रका अर्घ डालना चाहिये॥ ८४-८५॥

१-यहाँ नित्य ग्रहणका इतना ही अर्थ है कि अनिवार्य होनेपर ये वस्तुएँ कभी भी ली जा सकती हैं। रागतः इन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये।

२-स्मार्त अग्न्याधान करनेवालेको भी अनाहिताग्नि ही माना जाता है।

ये समाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि।
सपिण्डीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं विधीयते॥ ८६॥

'ये समाना:०' इन दो मन्त्रोंका उच्चारणकर पितामहादिके पिण्डोंमें प्रेतपिण्डको मिलाना चाहिये। देवश्राद्ध करनेके अनन्तर सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिये। पहले पितरोंका आवाहनकर पुनः प्रेतका आवाहन करना चाहिये। जिन प्रेतोंका सपिण्डीकरण कर लिया जाता है, उनकी श्राद्धक्रिया पृथक् नहीं होती। जो (सपिण्डीकृत प्रेतका) पृथक् पिण्डदान करता है, वह पितृघाती कहलाता है॥ ८६-८७॥

पितॄनावाहयेत् तत्र पुनः प्रेतं च निर्दिशेत्।
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां स्यात् पृथक्क्रियाः।
यस्तु कुर्यात् पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते॥ ८७॥
मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत्।
दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहं प्रेतधर्मतः॥ ८८॥

पिताके मर जानेपर पुत्रको वर्षपर्यन्त पिण्डदान करना चाहिये। प्रतिदिन प्रेतधर्मानुसार उदककुम्भ एवं अन्नका दान करना चाहिये। प्रत्येक वर्ष पार्वण-विधानके अनुसार सांवत्सरिक श्राद्ध करना चाहिये। यही सनातन विधि है[1]। पुत्रोंको माता-पिताका पिण्डदान आदि जो कार्य है, वह सब करना चाहिये। पुत्रके अभाव होनेपर पत्नी करे और पत्नीके अभाव होनेपर सहोदर भाई करे। अथवा (पुत्रादि श्राद्ध न कर सकें या इनके अभावमें) सभी दान आदि कर्म करनेके बाद समाहित होकर मनुष्यको श्रद्धापूर्वक यथाविधान जीते हुए ही श्राद्ध कर लेना चाहिये (इससे श्राद्धकी अनिवार्यता स्पष्ट है)॥ ८८—९१॥

पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते।
प्रतिसंवत्सरं कार्यं विधिरेष सनातनः॥ ८९॥

मातापित्रोः सुतैः कार्यं पिण्डदानादिकं च यत्।
पत्नी कुर्यात् सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः॥ ९०॥
अनेनैव विधानेन जीवन् वा श्राद्धमाचरेत्।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः॥ ९१॥

एष वः कथितः सम्यग् गृहस्थानां क्रियाविधिः।
स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मो नान्य इहेष्यते॥ ९२॥

इस प्रकार मैंने आप लोगोंको गृहस्थोंकी क्रिया-विधि सम्यक्‌रूपसे बतलायी। स्त्रियोंका तो पतिकी सेवा करना ही एकमात्र धर्म है, उनका अन्य कोई धर्म नहीं कहा गया है। नित्य अपने धर्मका पालन करनेवाला और भगवान्‌में समर्पित मनवाला वेदज्ञोंद्वारा बताये गये उस परम पदको प्राप्त करता है[2]॥ ९२-९३॥

स्वधर्मपरमो नित्यमीश्वरार्पितमानसः।
प्राप्नोति तत् परं स्थानं यदुक्तं वेदवादिभिः॥ ९३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २३॥

१-इस वचनका तात्पर्य प्रतिवर्ष पार्वणश्राद्धमें है। सांवत्सरिक (एकोद्दिष्टश्राद्ध)-की विधि पार्वणविधिसे भिन्न है।

२-इस अध्यायमें श्राद्ध एवं अशौचका विधान संक्षेपमें सांकेतिक मात्र है। इसी आधारपर निर्णय नहीं लेना चाहिये। विभिन्न निबन्धग्रन्थोंसे श्राद्ध एवं अशौच-सम्बन्धी समस्त वचनोंका समाकलन कर सामान्य एवं अपवाद वचनादिकोंकी व्यवस्थाकर निष्कृष्ट निर्णय किया गया है। अतः उन्हींके आधारपर अन्तिम निर्णय लेना चाहिये। निबन्धग्रन्थोंमें सभी वचनोंका समन्वयकर युग, देश, काल आदिकी दृष्टिसे स्पष्ट व्यवस्था की गयी है।

चौबीसवाँ अध्याय

अग्निहोत्रका माहात्म्य, अग्निहोत्रीके कर्तव्य, श्रौत एवं स्मार्तरूप द्विविध धर्म, तृतीय शिष्टाचारधर्म, वेद, धर्मशास्त्र और पुराणसे धर्मका ज्ञान तथा इनपर श्रद्धा रखना आवश्यक

व्यास उवाच

अग्निहोत्रं तु जुहुयादाद्यन्तेऽहर्निशोः सदा।
दर्शेन चैव पक्षान्ते पौर्णमासेन चैव हि॥ १ ॥

शस्यान्ते नवशस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सौमिकैर्मखैः॥ २ ॥

नानिष्ट्वा नवशस्येष्ट्या पशुना वाग्निमान् द्विजः।
नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥ ३ ॥

नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः॥ ४ ॥

सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः।
पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चन् नित्यमन्वष्टकासु च॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा—सदैव सायं और प्रातः अग्निहोत्र करना चाहिये। पक्षके अन्तमें अमावास्या और पौर्णमासीको हवन (दर्शेष्टि एवं पौर्णमासेष्टि) करना चाहिये। द्विजको फसल कट जानेपर नवशस्येष्टि, ऋतुकी समाप्तिपर (किया जानेवाला) यज्ञ एवं अयनके अन्तमें अर्थात् छः-छः महीनेपर संवत्सरके अन्तमें सौमिक याग करना चाहिये। दीर्घ आयुकी इच्छा करनेवाले अग्निहोत्री द्विजको नवशस्येष्टि किये बिना नया अन्न नहीं खाना चाहिये। नवीन अन्नका अग्निमें हवन किये बिना नवान्न खानेका इच्छुक व्यक्ति अपने प्राणोंको ही खाना चाहता है। प्रत्येक पर्वोमें नित्य ही सावित्रीहोम, शान्ति-होम करना चाहिये तथा अष्टकाओं और अन्वष्टकाओंमें नियमसे नित्य पितरोंकी अर्चना करनी चाहिये॥ १—५॥

एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥ ६ ॥

नास्तिक्यादथवालस्याद् योऽग्नीन् नाधातुमिच्छति।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून्॥ ७ ॥

गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले तीनों वर्णों (द्विजाति)-का यह नियमित श्रेष्ठ धर्म है, अन्य धर्म अपधर्म कहलाता है। नास्तिकता अथवा आलस्यके कारण जो अग्नियोंका आधान एवं यज्ञसे यजन नहीं करना चाहता, वह बहुतसे नरकोंमें जाता है॥ ६-७॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा॥ ८ ॥

अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्यान्ते सुदुर्मतिः।
अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते॥ ९ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्॥ १० ॥

अग्निहोत्रात् परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥ ११ ॥

यश्चाधायाग्निमालस्यान्न यष्टुं देवमिच्छति।
सोऽसौ मूढो न सम्भाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः॥ १२ ॥

विप्रो! (अग्न्याधान आदि कृत्य न करनेवाला) वह दुर्मति तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, वैतरणी, असिपत्रवन तथा अन्य घोर नरकोंको प्राप्तकर बादमें अन्त्यजोंके कुल तथा शूद्रयोनिमें जन्म लेता है। अतः विशेषरूपसे विशुद्धात्मा ब्राह्मणोंको सभी प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा अग्निका आधानकर परमेश्वरका यजन-पूजन करना चाहिये। द्विजोंके लिये अग्निहोत्रसे श्रेष्ठ कोई अन्य धर्म नहीं है। इसलिये अग्निहोत्रके द्वारा नित्य शाश्वत (पुरुष)-की आराधना करनी चाहिये। जो अग्निका आधानकर फिर आलस्यवश यज्ञद्वारा देवताकी आराधना नहीं करना चाहता, वह व्यक्ति मूढ़ होता है, उससे बात नहीं करनी चाहिये। अधिक क्या, वह मनुष्य नास्तिक होता है॥ ८—१२॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये।
अधिकं चापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति॥ १३॥

एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते।
सोमेनाराधयेद् देवं सोमलोकमहेश्वरम्॥ १४॥

न सोमयागादधिको महेशाराधने क्रतुः।
समो वा विद्यते तस्मात् सोमेनाभ्यर्चयेत् परम्॥ १५॥

जिसके पास सेवकोंके पोषणहेतु तीन वर्षतकके लिये पर्याप्त अथवा उससे भी अधिक (भोजन) सामग्री विद्यमान हो, वह सोमपानका अधिकारी होता है। सभी यज्ञोंमें सोमयाग सबसे श्रेष्ठ है। सोमद्वारा सोमलोकमें स्थित महेश्वरदेवकी आराधना करनी चाहिये। महेश्वरकी आराधनाके लिये सोमयागसे बड़ा अथवा उसके समान कोई यज्ञ नहीं है। इसलिये सोमके द्वारा श्रेष्ठ देवकी आराधना करनी चाहिये॥ १३—१५॥

पितामहेन विप्राणामादावभिहितः शुभः।
धर्मो विमुक्तये साक्षाच्छ्रौतः स्मार्तो द्विधा पुनः॥ १६॥

श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात् स्मार्तः पूर्वं मयोदितः।
श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत्॥ १७॥

उभावभिहितौ धर्मौ वेदादेव विनिःसृतौ।
शिष्टाचारस्तृतीयः स्याच्छ्रुतिस्मृत्योरलाभतः॥ १८॥

ब्राह्मणोंकी मुक्तिके लिये साक्षात् पितामहने आरम्भमें ही शुभ धर्म बतलाया है, वह श्रौत तथा स्मार्त नामसे दो प्रकारका है। तीन (आहवनीय, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि) अग्नियोंके सम्बन्धसे श्रौतधर्म होता है। स्मार्तधर्मको मैंने पूर्वमें बता दिया है। श्रौतधर्म अधिक श्रेयस्कर है, इसलिये श्रौतधर्मका पालन करना चाहिये। कहे गये ये दोनों धर्म वेदसे ही निकले हुए हैं। श्रुति तथा स्मृतिके अभावमें शिष्टाचार ही तीसरा धर्म होता[१] है॥ १६—१८॥

धर्मेणाभिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ता नित्यमात्मगुणान्विताः॥ १९॥

तेषामभिमतो यः स्याच्चेतसा नित्यमेव हि।
स धर्मः कथितः सद्भिर्नान्येषामिति धारणा॥ २०॥

परिबृंहण (रामायण, महाभारत एवं पुराणादि ग्रन्थ) सहित वेदोंका धर्मपूर्वक ज्ञान प्राप्त करनेवाले और (दया, अहिंसा, सत्य आदि आठ) आत्मिक गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण सदैव शिष्ट कहे गये हैं। इनके (शिष्टजनोंके) अन्तःकरणद्वारा जो समर्थित होता है, विद्वानोंद्वारा उसे ही धर्म कहा गया है। अन्य लोगोंके अभिमतको धर्म नहीं कहा जाता, यही निश्चित सिद्धान्त है॥ १९-२०॥

पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदानामुपबृंहणम्।
एकस्माद् ब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः॥ २१॥

धर्मं जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम्।
धर्मशास्त्रं पुराणं तद् ब्रह्मज्ञाने परा प्रमा॥ २२॥

नान्यतो जायते धर्मो ब्रह्मविद्या च वैदिकी।
तस्माद् धर्मं पुराणं च श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः॥ २३॥

पुराण तथा धर्मशास्त्र वेदोंके उपबृंहण (विस्तार) हैं। एकसे ब्रह्मका विशेष ज्ञान होता है और दूसरेसे धर्मका ज्ञान होता है। धर्मकी जिज्ञासा करनेवालोंके लिये धर्मशास्त्र श्रेष्ठ प्रमाण कहा गया है और ब्रह्मज्ञानके लिये पुराण उत्कृष्ट प्रमाण है। वेदसे अतिरिक्त अन्य किसीसे धर्मका तथा वैदिक ब्रह्मविद्याका ज्ञान नहीं होता, इसलिये द्विजातियोंको धर्मशास्त्र तथा पुराणपर श्रद्धा रखनी चाहिये॥ २१—२३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २४॥

१-शिष्टाचारका भी मूल श्रुति एवं तन्मूलक स्मृति ही होती है। श्रुतियाँ अनन्त हैं, उनमें वर्णित धर्मोंका क्रमसे प्रसंगानुसार संग्रह करनेवाली स्मृतियाँ भी अनेक हैं। अतः सभी श्रुतियों एवं तन्मूलक स्मृतियोंका ज्ञान अल्पज्ञ मानवको नहीं भी हो सकता है। ऐसी स्थितिमें धर्माधर्म-विवेकमें कठिनाई होना अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिये शिष्टोंके आचारसे धर्माधर्मका निर्णय करना पड़ता है और इस निर्णयके मूलमें यही भाव निहित है कि शिष्ट वही आचरण करते हैं जो श्रुति एवं तन्मूलक स्मृतिमें प्रतिपादित है।

पचीसवाँ अध्याय

गृहस्थ ब्राह्मणकी मुख्य वृत्ति तथा आपत्कालकी वृत्ति, गृहस्थके साधक तथा असाधक दो भेद, न्यायोपार्जित धनका विभाग एवं उसका उपयोग

व्यास उवाच

**एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः।
द्विजातेः परमो धर्मो वर्तनानि निबोधत॥ १॥**

व्यासजीने कहा—यह मैंने आप लोगोंको गृहस्थाश्रम-में निवास करनेवाले द्विजातियोंका सम्पूर्ण श्रेष्ठ धर्म बतलाया, अब उनकी वृत्तियोंका वर्णन सुनें॥ १॥

**द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः।
अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम्।
कुसीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीतास्वयंकृतम्॥ २॥
कृषेरभावाद् वाणिज्यं तदभावात् कुसीदकम्।
आपत्कल्पो ह्ययं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते॥ ३॥
स्वयं वा कर्षणं कुर्याद् वाणिज्यं वा कुसीदकम्।
कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद् विवर्जयेत्॥ ४॥**

साधक तथा असाधक-भेदसे (ब्राह्मण) गृहस्थको दो प्रकारका समझना चाहिये। पहले (साधक गृहस्थकी आजीविका) अध्ययन कराना, यज्ञ कराना और (दान लेना) है। इसके अतिरिक्त वे अपने द्वारा न किये गये कुसीद (ब्याजका लेन-देन), कृषि तथा वाणिज्य भी अन्यके द्वारा करा सकते हैं। कृषिके अभावमें वाणिज्य और उसके अभावमें कुसीदका आश्रय लिया जा सकता है। इसे आपत्कल्प कहा गया है और पहलेको मुख्यवृत्ति कही गयी है। अथवा (आपत्कालमें अन्य उपाय न होनेपर) स्वयं कृषि, वाणिज्य अथवा कुसीद-वृत्तिका आश्रय ले। कुसीद-वृत्ति (सूद लेना) अत्यन्त कष्टकारक और पापकी वृत्ति है, इसलिये इसका परित्याग करना चाहिये॥ २—४॥

**क्षात्रवृत्तिं परां प्राहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजैः।
तस्मात् क्षात्रेण वर्तेत वर्तनेनापदि द्विजः॥ ५॥
तेन नावाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिं कृषिं व्रजेत्।
न कथंचन कुर्वीत ब्राह्मणः कर्म कर्षणम्॥ ६॥
लब्धलाभः पितॄन् देवान् ब्राह्मणांश्चापि पूजयेत्।
ते तृप्तास्तस्य तं दोषं शमयन्ति न संशयः॥ ७॥**

क्षात्रवृत्तिको (कृषिवृत्तिकी अपेक्षा) श्रेष्ठ वृत्ति कहा गया है, किंतु द्विजोंको स्वयं कर्षण नहीं करना चाहिये। अतएव द्विजको आपत्तिमें (ही) क्षात्रधर्मसे भी जीविकाका निर्वाह करना चाहिये। उस क्षात्रवृत्ति (शस्त्र-जीविका)-द्वारा भी निर्वाह न होनेपर कृषिस्वरूप वैश्यवृत्तिका आश्रय लेना चाहिये, किंतु ब्राह्मणको कभी भी खेत जोतनेका कार्य नहीं करना चाहिये। लाभ होनेपर (विशेषकर अन्य वर्णकी जीविकासे लाभ मिलनेपर अवश्य ही) पितरों, देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये। तृप्त होनेपर वे उसके उस (कर्मजन्य) दोषको शान्त कर देते हैं, इसमें संशय नहीं॥ ५—७॥

**देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्याद् भागं तु विंशकम्।
त्रिंशद्भागं ब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन् न दुष्यति॥ ८॥
वणिक् प्रदद्याद् द्विगुणं कुसीदी त्रिगुणं पुनः।
कृषीवलो न दोषेण युज्यते नात्र संशयः॥ ९॥**

देवताओं और पितरोंको (कृषिसे प्राप्त लाभका) बीसवाँ भाग (५ प्रतिशत) और ब्राह्मणोंको तीसवाँ भाग ($३\frac{१}{३}$ प्रतिशत) देना चाहिये। ऐसी अवस्थामें कृषिकर्म करनेवाला दोषी नहीं होता। वाणिज्य करनेपर (कृषिजन्य लाभसे दिये जानेवाले अंशकी अपेक्षा) दुगुना, कुसीद-वृत्तिपर तिगुना दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे कृषि करनेवाला निस्संदेह दोषी नहीं होता॥ ८-९॥

शिलोञ्छं वाप्याददीत गृहस्थः साधकः पुनः।
विद्याशिल्पादयस्त्वन्ये बहवो वृत्तिहेतवः॥ १०॥

असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः॥ ११॥

अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि।
अयाचितं स्यादमृतं मृतं भैक्षं तु याचितम्॥ १२॥

अथवा साधक (ब्राह्मण) गृहस्थको शिलोञ्छवृत्तिका[1] आश्रय लेना चाहिये। विद्या तथा शिल्प आदि भी अन्य बहुतसे जीविकाके साधन हैं। गृहस्थाश्रममें रहनेवाला जो असाधक (नामका दूसरा गृहस्थ) कहा गया है, श्रेष्ठ महर्षियोंद्वारा उसके लिये शिल तथा उञ्छ नामक दो वृत्तियाँ कही गयी हैं। अमृत अथवा मृत साधनद्वारा जीवनयापन करना चाहिये। अयाचित पदार्थ अमृत और याचनाद्वारा भिक्षास्वरूप प्राप्त वस्तु मृत होती है॥ १०—१२॥

कुशूलधान्यको वा स्यात् कुम्भीधान्यक एव वा।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव च॥ १३॥

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम्।
श्रेयान् परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः॥ १४॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥ १५॥

ब्राह्मणको कुशूलधान्यक (तीन वर्षोंतकके लिये संचित धान्यवाला), कुम्भीधान्यक (एक वर्षतकके लिये संचित धान्यवाला), त्र्यैहिक (तीन दिनोंतकके लिये संचित धान्यवाला) अथवा अश्वस्तनिक (अगले दिनके लिये भी धान्य संचित न करनेवाला) होना चाहिये। इन (उपर्युक्त) चार प्रकारके गृहस्थ द्विजों (ब्राह्मणों)-में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है (ऐसा ब्राह्मण) अपने धर्मके कारण श्रेष्ठ लोकजयी (स्वर्ग आदि लोकोंको जीतनेवाला) होता है। इनमें कोई (जिनके पास पोष्य-वर्ग अधिक है) द्विज (ब्राह्मण) षट्कर्मोंसे[2] अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, दूसरे (अल्प परिग्रहवाले) कुछ द्विज (ब्राह्मण) तीन साधनोंसे[3] निर्वाह करते हैं, कुछ दो[4] साधनोंसे और चौथे प्रकारके ब्राह्मण ब्रह्मयज्ञ (अध्यापन)-द्वारा आजीविका चलाते हैं॥ १३—१५॥

वर्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः।
इष्टीः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत् सदा॥ १६॥

जो ब्राह्मण केवल उञ्छ या शिल-वृत्तिसे अपना निर्वाह करे वह (धनसाध्य अन्य कर्मोंके अनुष्ठानमें असमर्थ होनेके कारण) केवल नित्य-कर्म अग्निहोत्रको ही करता रहे तथा पर्व एवं अयनके मध्य सम्पन्न की जानेवाली दर्शपौर्णमास एवं आग्रयण इष्टियाँ करता रहे॥ १६॥

१-जिस धान्यपर पशु-पक्षीतकका भी अधिकार नहीं है, उसके एक-एक कण (कणसमूह-मंजरीको छोड़ देना है)-को प्रतिदिन अंगुलीसे उठाकर एकत्र किया जाय और उसीसे जीविका निर्वाह किया जाय—यह उञ्छवृत्ति है और यदि धान्य-समूहरूप मंजरीका भी संग्रह प्रतिदिन करके जीविकानिर्वाह किया जाय तो यह 'शिल' वृत्ति है। ये दोनों वृत्तियाँ ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ हैं। इनमें भी प्रथम वृत्ति सर्वोत्तम है।

२-ऋत (उञ्छ, शिल), अयाचित, भैक्ष, कृषि, वाणिज्य तथा कुसीद—ये ही षट्कर्म हैं।

३-याजन, अध्यापन, परिग्रह—ये तीन साधन हैं।

४-याजन, अध्यापन—ये दो साधन हैं।

न लोकवृत्तिं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम्॥ १७॥

ब्राह्मण जीविकाके लिये लोकवृत्ति (विचित्र हास-परिहास आदिसे युक्त लोककथा आदि)-का आश्रयण कभी न करे। अजिह्म (किसीकी झूठी निन्दा-स्तुति आदिके वर्णनरूप पापसे रहित), अशठ (दम्भ आदि अनेक प्रकारके बनावटी व्यवहारसे शून्य), शुद्ध (वैश्य आदिकी जीवनवृत्तिसे असम्बद्ध) शास्त्रीय वृत्तिका ही आश्रयण करना चाहिये॥ १७॥

याचित्वा वापि सद्भ्योऽन्नं पितॄन् देवांस्तु तोषयेत्।
याचयेद् वा शुचिं दान्तं न तृप्येत स्वयं ततः॥ १८॥
यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु।
देवान् पितॄंश्च विधिना शुनां योनिं व्रजत्यसौ॥ १९॥

उसे (ब्राह्मणको) सज्जनोंसे अन्न माँगकर भी पितरों तथा देवताओंको संतुष्ट करना चाहिये। अथवा पवित्र इन्द्रियजयी व्यक्तियोंसे याचना करे, किंतु उससे स्वयं तृप्त न होवे (अर्थात् उस याचित द्रव्यका उपयोग स्वयंके लिये न करे)। जो गृहस्थ द्रव्योपार्जन करके देवताओं तथा पितरोंको विधिपूर्वक संतुष्ट नहीं करता है, वह कुत्तेकी योनिमें जाता है॥ १८-१९॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च श्रेयो मोक्षश्चतुष्टयम्।
धर्माविरुद्धः कामः स्याद् ब्राह्मणानां तु नेतरः॥ २०॥
योऽर्थो धर्माय नात्मार्थः सोऽर्थोऽनर्थस्तथेतरः।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद् वै जुहुयाद् यजेत्॥ २१॥

धर्म, अर्थ, काम तथा कल्याणकारी मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ हैं। ब्राह्मणोंका काम (नामक पुरुषार्थ) धर्मका अविरोधी होना चाहिये, इससे भिन्न (अर्थात् धर्मविरोधी कथमपि) नहीं होना चाहिये। जो अर्थ धर्मके लिये होता है अपने लिये नहीं वह (वास्तविक) अर्थ है, इससे भिन्न प्रकारका अर्थ तो अनर्थ है। इसलिये (धर्मपूर्वक) अर्थ प्राप्त होनेपर दान, हवन तथा यज्ञ करना चाहिये॥ २०-२१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

दानधर्मका निरूपण एवं नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल-चतुर्विध दान-भेद, दानके अधिकारी तथा अनधिकारी, कामना-भेदसे विविध देवताओंकी आराधनाका विधान, ब्राह्मणकी महिमा तथा दानधर्मप्रकरणका उपसंहार

व्यास उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम्।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम्॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—अब मैं श्रेष्ठ दानधर्मका वर्णन करूँगा। इसे पूर्वमें ब्रह्माजीने ब्रह्मवादी ऋषियोंसे कहा था—॥ १॥

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ २ ॥

यद् ददाति विशिष्टेभ्यः श्रद्धया परया युतः।
तद् वै वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥ ३ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ ४ ॥

उदित अर्थात् वेदवेदाङ्गाध्ययन करनेवाले प्रशस्त पात्रमें अर्थके श्रद्धापूर्वक प्रतिपादनको दान कहा गया है। यह भोग तथा मोक्षरूप फलको देनेवाला है। विशिष्ट अर्थात् सदाचारसम्पन्न व्यक्तियों (ब्राह्मणों)-को अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न होकर जो धन दिया जाता है, उसे ही मैं धन मानता हूँ। अवशिष्ट धन (तो किसी दूसरेका ही है, वह) किसी अन्यकी रक्षा करता है। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इस प्रकारसे दान तीन प्रकारका कहा गया है। चौथा दान विमल-दान कहा गया है, जो सभी दानोंमें उत्तमोत्तम है॥ २—४॥

अहन्यहनि यत् किंचिद् दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥ ५ ॥

यत् तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम्॥ ६ ॥

अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते।
दानं तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥ ७ ॥

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद् विमलं शिवम्॥ ८ ॥

प्रत्येक दिन बिना किसी फल-प्राप्तिरूप प्रयोजनके अर्थात् निःस्वार्थभावसे (कर्तव्य समझकर) जो कुछ भी अनुपकारी (जिससे अपना उपकार करानेकी तनिक भी आशा न हो ऐसे) ब्राह्मणको दिया जाता है, वह नित्य-दान कहलाता है। पापके शमन करनेके लिये विद्वान् (ब्राह्मणों)-के हाथमें जो दिया जाता है, उसे नैमित्तिक दान कहा गया है। सज्जनोंद्वारा इसका अनुष्ठान किया जाता है। संतान, विजय, ऐश्वर्य तथा स्वर्ग-प्राप्तिके लिये जो दान दिया जाता है, वह धर्मविचारक ऋषियोंके द्वारा काम्य-दान कहा गया है। ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये धर्मभावनासे ब्रह्मज्ञानियोंको जो दिया जाता है, वह कल्याणकारी दान विमल-दान कहलाता है॥ ५—८॥

दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत् तारयति सर्वतः॥ ९ ॥

कुटुम्बभक्तवसनाद् देयं यदतिरिच्यते।
अन्यथा दीयते यद्धि न तद् दानं फलप्रदम्॥ १० ॥

सत्पात्र उपलब्ध होनेपर यथाशक्ति दानधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि वह सत्पात्र कदाचित् ही सौभाग्यसे उपलब्ध होता है जो दाताका हर तरहसे उद्धार कर देता है। कुटुम्बके भरण-पोषणसे अधिक अवशिष्ट पदार्थका दान करना चाहिये। इससे भिन्न प्रकारका दिया जानेवाला दान फलप्रद नहीं होता॥ ९-१०॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने।
वृत्तस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥ ११॥

यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ १२॥

इक्षुभिः संततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्।
ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते॥ १३॥

गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिं सम्प्रयच्छति।
ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १४॥

भूमिदानात् परं दानं विद्यते नेह किञ्चन।
अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्॥ १५॥

श्रोत्रिय, कुलीन, विनयी, तपस्वी, सदाचारी तथा धनहीन (ब्राह्मण)-को भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। जो अग्निहोत्री ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भूमिका दान करता है, वह उस परमपदको प्राप्त करता है, जहाँ जानेपर शोक नहीं करना पड़ता। ईख, जौ तथा गेहूँसे फली हुई विस्तृत भूमिको जो वेदज्ञ (ब्राह्मण)-को दानमें देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अथवा गोचर्म[1] (भूमिकी एक विशेष नाप)-के बराबर भूमि जो धनहीन ब्राह्मणको दानमें देता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस संसारमें भूमिदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। उसके समान ही अन्नदान है और विद्यादान उससे बड़ा है॥ ११—१५॥

यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचये धर्मशालिने।
ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते॥ १६॥

दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात्॥ १७॥

गृहस्थायान्नदानेन फलं प्राप्नोति मानवः।
आममेवास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिम्॥ १८॥

जो पवित्र, शान्त, धर्माचरणसम्पन्न ब्राह्मणको विधिपूर्वक विद्या प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ब्रह्मचारीको प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अन्नदान करना चाहिये। इससे (दाता) सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। गृहस्थ (ब्राह्मण)-को अन्नदान करनेसे मनुष्य (महान्) फल प्राप्त करता है। इसे आमान्न अर्थात् अपक्व अन्न ही देना चाहिये, दान देकर वह परम गति प्राप्त करता है॥ १६—१८॥

वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
उपोष्य विधिना शान्तः शुचिः प्रयतमानसः॥ १९॥

पूजयित्वा तिलैः कृष्णैर्मधुना च विशेषतः।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद् वा स्वयं वदेत्॥ २०॥

प्रीयतां धर्मराजेति यद् वा मनसि वर्तते।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ २१॥

वैशाखमासकी पूर्णमासीको संयतचित्तसे उपवासकर शान्ति और पवित्रतापूर्वक सात या पाँच ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक काले तिलों विशेषरूपसे मधु तथा गन्ध आदि उपचारोंसे अच्छी प्रकारसे पूजा करे तथा (सविधि भोजन कराकर) जो मनमें है उसका स्मरण करते हुए उन ब्राह्मणोंसे '**प्रीयतां धर्मराज**' अर्थात् 'धर्मराज प्रसन्न हों' यह वाक्य कहलाये अथवा स्वयं कहे। इससे सम्पूर्ण जीवनमें किया हुआ पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है॥ १९—२१॥

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥ २२॥

कृष्णाजिन नामके वृक्ष विशेषसे निर्मित पात्रमें तिल, स्वर्ण, मधु तथा घृत रखकर जो ब्राह्मणको देता है, वह सभी पापोंसे पार हो जाता है॥ २२॥

१-आचार्य बृहस्पतिने 'गोचर्म-भूमि' कितनी लंबी-चौड़ी होती है—इसे बताते हुए कहा है कि दस हाथके दण्डसे तीस दण्डका एक निवर्तन होता है और दस निवर्तन विस्तारवाली भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। इस प्रकार (१० हाथ=एक दण्ड, तीस दण्ड=३०० हाथ या एक निवर्तन और १० निवर्तन=३००० हाथ) तीन हजार हाथ या लगभग $1\frac{1}{4}$ कि० मी० लंबी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। गोचर्म-भूमिका एक अन्य परिमाप देते हुए कहा गया है कि एक वृषभ तथा बछड़े-बछड़ियोंसहित एक हजार गायें, जितनी भूमिमें आरामसे इधर-उधर टहल सकें, घूम-फिर सकें, उतनी लंबी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है।

कृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां च विशेषतः।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात्॥ २३॥

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २४॥

माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः।
शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्॥ २५॥

प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलानेव समाहितः।
जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः॥ २६॥

विशेषरूपसे वैशाखमासकी पूर्णिमाको ब्राह्मणोंको जो कृतान्न-पक्वान्न (अथवा सत्तू) तथा जलसे भरा घड़ा धर्मराजके उद्देश्यसे देता है, वह भयसे मुक्त हो जाता है। जो सात अथवा पाँच ब्राह्मणोंको स्वर्ण तथा तिलसे युक्त जलपूर्ण घड़ोंसे संतुष्ट करता है, वह ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। माघमासकी (कृष्ण) द्वादशीको उपवास करके शुक्ल वस्त्र धारणकर काले तिलोंसे अग्निमें हवन कर जो विप्र (द्विज) समाहित होकर ब्राह्मणोंको (कृष्ण) तिल दान करता है, वह (द्विज) जन्मसे आजतकके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २३—२६॥

अमावस्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत्किंचिद् देवदेवेशं दद्याच्चोद्दिश्य शंकरम्॥ २७॥

प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ २८॥

अमावस्या आनेपर जो देवदेवेश भगवान् शंकरको उद्दिष्ट कर **'प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः'** अर्थात् (इस दानसे) 'सनातन महादेव ईश्वर सोम प्रसन्न हों' ऐसा कहकर तपस्वी ब्राह्मणको जो कुछ भी दान देता है, उससे सात जन्मोंमें किया हुआ उसका पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है॥ २७-२८॥

यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।
आराधयेद् द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः॥ २९॥

कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये।
स्नात्वाभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः॥ ३०॥

प्रीयतां मे महादेवो दद्याद् द्रव्यं स्वकीयकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ३१॥

जो कृष्ण चतुर्दशीको स्नान करनेके अनन्तर भगवान् पिनाकीकी आराधनाकर ब्राह्मणको भोजन कराता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। विशेषरूपसे कृष्णपक्षकी अष्टमीको स्नान करके पादप्रक्षालन आदिके द्वारा विधिपूर्वक धार्मिक द्विजाति (ब्राह्मण)-की अर्चना करके जो **'प्रीयतां मे महादेवाः'** ऐसा कहकर अपना द्रव्य प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करता है॥ २९—३१॥

द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः।
अमावास्यायां भक्तैस्तु पूजनीयस्त्रिलोचनः॥ ३२॥

एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
अर्चयेद् ब्राह्मणमुखे स गच्छेत् परमं पदम्॥ ३३॥

एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद् द्वादशी शुक्लपक्षके।
तस्यामाराधयेद् देवं प्रयत्नेन जनार्दनम्॥ ३४॥

यत्किञ्चिद् देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ।
दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम्॥ ३५॥

भक्त द्विजोंको कृष्ण चतुर्दशी विशेषरूपसे कृष्णाष्टमी और अमावास्याको त्रिलोचन (महादेव)-की पूजा करनी चाहिये। एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीके दिन ब्राह्मणको भोजन कराकर जो पुरुषोत्तमकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त करता है। शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि वैष्णवी तिथि है। इस तिथिको प्रयत्नपूर्वक भगवान् जनार्दनकी आराधना करनी चाहिये। भगवान् ईशान (शंकर)-को अथवा विष्णुको उद्दिष्ट कर पवित्र ब्राह्मणको जो कुछ दान दिया जाता है, वह अनन्त फल प्रदान करनेवाला होता है॥ ३२—३५॥

यो हि यां देवतामिच्छेत् समाराधयितुं नरः।
ब्राह्मणान् पूजयेद् यत्नात् स तस्यां तोषयेत् ततः॥ ३६॥

जो मनुष्य जिस देवताकी आराधना करना चाहता है, वह यत्नपूर्वक (उस आराध्य देवताकी प्रतिमूर्ति-रूपमें) ब्राह्मणोंकी पूजा करे, इससे वह आराध्य देवता संतुष्ट हो जाते हैं॥ ३६॥

द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित्॥ ३७॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत् तत् फलमभीप्सता।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः॥ ३८॥

देवता नित्य ही ब्राह्मणोंके शरीरका आश्रय ग्रहणकर प्रतिष्ठित रहते हैं। कभी ब्राह्मणोंके प्राप्त न होनेपर प्रतिमा आदिमें भी उन देवताओंकी पूजा की जाती है। इसलिये उन-उन फलोंकी प्राप्तिकी इच्छासे सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे विशेषरूपसे ब्राह्मणोंमें देवताओंकी नित्य पूजा करनी चाहिये॥ ३७-३८॥

विभूतिकामः सततं पूजयेद् वै पुरन्दरम्।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः॥ ३९॥

आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम्।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद् वै विनायकम्॥ ४०॥

ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवालेको सर्वदा इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मतेज और ब्रह्मप्राप्तिके अभिलाषीको ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये। आरोग्यकी इच्छावालेको सूर्यकी, धनाभिलाषीको अग्निकी और कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त करनेकी (अपने कार्यकी निर्विघ्न सम्पन्नताकी) इच्छावालेको विनायककी पूजा करनी चाहिये॥ ३९-४०॥

भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम्।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम्॥ ४१॥

यस्तु योगं तथा मोक्षमन्विच्छेज्ज्ञानमैश्वरम्।
सोऽर्चयेद् वै विरूपाक्षं प्रयत्नेनेश्वरेश्वरम्॥ ४२॥

ये वाञ्छन्ति महायोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम्।
ते पूजयन्ति भूतेशं केशवं चापि भोगिनः॥ ४३॥

भोग-प्राप्तिकी इच्छावालेको चन्द्रमाकी, बलप्राप्तिकी इच्छावालेको वायुकी और समस्त संसारसे मुक्तिके अभिलाषीको प्रयत्नपूर्वक विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो, उसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वरोंके भी ईश्वर विरूपाक्ष (शंकर)-की पूजा करनी चाहिये। जो महायोग और ज्ञानकी इच्छा करते हैं, वे भूताधिपति महेश्वरकी पूजा करते हैं और योगीजन केशवकी आराधना करते हैं॥ ४१—४३॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥ ४४॥

भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥ ४५॥

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः।
अनडुदः श्रियं पुष्टां गोदो व्रध्नस्य विष्टपम्॥ ४६॥

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसात्म्यताम्॥ ४७॥

धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥ ४८॥

जलदान करनेवाला तृप्ति प्राप्त करता है, अन्नदान करनेवाला अक्षय सुख प्राप्त करता है, तिलदान करनेवाला इच्छित संतान प्राप्त करता है और दीपदान करनेवाला उत्तम ज्योति (चक्षु) प्राप्त करता है। भूमिदान करनेवाला सब कुछ प्राप्त करता है। स्वर्णदाता दीर्घ आयु, गृह-दान करनेवाला ऊँचे महल तथा चाँदी दान करनेवाला उत्तम रूप प्राप्त करता है। वस्त्र दान करनेवाला चन्द्रलोकमें निवास करता है और अश्व-दान करनेवाला अश्विनीकुमारोंके लोकमें जाता है। वृषभ-दान करनेवालेको पुष्ट लक्ष्मी और गो-दान करनेवालेको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। यान (सवारी) और शय्या-दान करनेवालेको भार्या तथा अभयदाताको ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्यदाता शाश्वत सौख्य तथा वेदविद्याका दान करनेवाला ब्रह्म-तादात्म्यको प्राप्त करता है। विशिष्ट वेदज्ञाता ब्राह्मणोंको यथाशक्ति धान्य भी प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मृत्युके अनन्तर स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ ४४—४८॥

गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥ ४९॥

फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः सदा भवेत्॥ ५०॥

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥ ५१॥

असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम्।
तीव्रतापं च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः॥ ५२॥

यद् यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥ ५३॥

गौओंको घास प्रदान करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधनका दान करनेसे मनुष्य प्रदीप्त (जाठर) अग्निवाला (उत्तम पाचनशक्ति-सम्पन्न) होता है। जो ब्राह्मणोंको फल, मूल, शाक तथा विविध भोज्य पदार्थ प्रदान करता है, वह सर्वदा आनन्दित रहता है। रोगीके रोग-शान्तिके लिये जो उन्हें औषधि, स्नेह (तेल, घृत आदि) तथा आहार प्रदान करता है, वह रोगरहित, सुखी तथा दीर्घ आयुवाला होता है। छाता और जूता प्रदान करनेवाला मनुष्य छुरेकी धारसे पूर्ण असिपत्रवनके मार्गमें तीव्र तापको पार कर लेता है। संसारमें जो-जो भी स्वयंको अत्यन्त अभीष्ट हो और जो घरमें सबके लिये अत्यन्त प्रिय वस्तु हो, उस-उस वस्तुको गुणवान् ब्राह्मणको दानमें देना चाहिये, ऐसा करनेसे अभीष्ट एवं प्रिय वस्तु अक्षय होकर प्राप्त होती है॥ ४९—५३॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥ ५४॥

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च॥ ५५॥

अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), विषुव (मेष और तुला-संक्रान्ति), चन्द्र और सूर्यग्रहण तथा (अन्य) संक्रान्ति आदि समयोंमें दिया हुआ दान अक्षय होता है। प्रयाग आदि तीर्थों, पवित्र मन्दिरों, नदियोंके किनारों तथा (नैमिष आदि पुण्यप्रद) अरण्योंमें दान देनेसे अक्षय (फल) प्राप्त होता है॥ ५४-५५॥

दानधर्मात् परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते।
तस्माद् विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः॥ ५६॥

स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये।
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्वहम्॥ ५७॥

इस संसारमें प्राणियोंके लिये दानसे बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं है। इसलिये द्विजातियोंको श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान देना चाहिये। स्वर्ग, आयु तथा ऐश्वर्यका अभिलाषी और पापकी शान्तिके इच्छुक तथा मोक्षार्थी पुरुषको प्रतिदिन ब्राह्मणोंके निमित्त दान करना चाहिये॥ ५६-५७॥

दीयमानं तु यो मोहाद् गोविप्राग्निसुरेषु च।
निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत् तु सः॥ ५८॥

यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद् ब्राह्मणान् सुरान्।
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत्॥ ५९॥

जो व्यक्ति मोहवश गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवताओंके निमित्त दिये जा रहे दानको रोकता है, वह पापात्मा तिर्यग्योनिमें जाता है। जो द्रव्यका अर्जन करके ब्राह्मणों तथा देवताओंकी पूजा नहीं करता है (अर्थात् धर्मसम्मत, लोकसम्मत-रूपमें धनका उपयोग नहीं करता है तो) उसका सर्वस्व अपहरण करके उसे राष्ट्रसे बाहर निकाल देना राजाका कर्तव्य है॥ ५८-५९॥

यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति।
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्राह्मण: स तु गर्हित:॥ ६०॥

न तस्मात् प्रतिगृह्णीयुर्न विशेयुश्च तेन हि।
अङ्कयित्वा स्वकाद् राष्ट्रात् तं राजा विप्रवासयेत्॥ ६१॥

यस्त्वसद्‌भ्यो ददातीह स्वद्रव्यं धर्मसाधनम्।
स पूर्वाभ्यधिक: पापी नरके पच्यते नर:॥ ६२॥

जो व्यक्ति दुर्भिक्षके समय मरणप्राय विप्रोंको अन्न आदि नहीं देता, वह ब्राह्मण[१] (या मनुष्य) निन्दित होता है, उसके साथ न आदान-प्रदानका व्यवहार करना चाहिये और न उसके साथ बैठना ही चाहिये। राजा उसको चिह्नितकर[२] अपने राष्ट्रसे बाहर निकाल दे। संसारमें अपने धर्मके साधनरूप द्रव्यको जो असज्जनों (दानके अयोग्यों)-को दान करता है, वह मनुष्य पूर्वसे (पूर्वोक्त वर्णित सभी पापियोंसे) भी अधिक पापी होता है और नरकमें पड़ता है॥ ६०—६२॥

स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रिया:।
सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमा:॥ ६३॥

सुभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकं भोजयेद् द्विजम्।
न तु मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम्॥ ६४॥

हे द्विजोत्तमो! जो ब्राह्मण स्वाध्यायनिरत, विद्यावान्, जितेन्द्रिय तथा सत्य और संयम-सम्पन्न है, उसे दान देना चाहिये। भोजन किये रहनेपर भी विद्वान् धार्मिक द्विजको भोजन कराना चाहिये, किंतु मूर्ख और सदाचारहीन ब्राह्मणको दस दिनोंका भूखा होनेपर भी भोजन नहीं कराना[३] चाहिये॥ ६३-६४॥

संनिकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं य: प्रयच्छति।
स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम्॥ ६५॥

यदि स्यादधिको विप्र: शीलविद्यादिभि: स्वयम्।
तस्मै यत्नेन दातव्यं अतिक्रम्यापि संनिधिम्॥ ६६॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णीयाद् दद्यादर्चितमेव च।
तावुभौ गच्छत: स्वर्गं नरकं तु विपर्यये॥ ६७॥

न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च।
पाषण्डेषु च सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित्॥ ६८॥

जो समीपमें स्थित श्रोत्रियकी अवमानना कर अन्य (ब्राह्मण)-को दान देता है, वह पापी अपने उस पापके कारण अपने सात पीढ़ीतकको दग्ध कर डालता है। यदि कोई ब्राह्मण शील, विद्या आदिमें अधिक गुणसम्पन्न हो, तो समीपके ब्राह्मणका भी अतिक्रमण कर यत्नपूर्वक उसे दान देना चाहिये। जो आदरपूर्वक दान ग्रहण करता है और जो आदरपूर्वक देता है, वे दोनों स्वर्ग प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत करनेवाले नरक जाते हैं। धर्मज्ञको नास्तिक, कुतर्की, सभी पाखंडियों तथा वेदज्ञानसे हीन व्यक्तिके निमित्त जलका भी दान नहीं करना चाहिये[४]॥ ६५—६८॥

अपूपं च हिरण्यं च गामश्वं पृथिवीं तिलान्।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत्॥ ६९॥

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तम:।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात् कथञ्चन॥ ७०॥

अपूप (पुआ), स्वर्ण, गौ, अश्व, पृथ्वी तथा तिलका दान ग्रहण करनेवाला अविद्वान् व्यक्ति लकड़ीके समान भस्म हो जाता है (अर्थात् दान लेनेकी योग्यता न रहनेपर लोभवश दान नहीं लेना चाहिये)। श्रेष्ठ द्विजको प्रशस्त द्विजातियोंसे धनकी इच्छा करनी चाहिये अथवा अपनी जातिवालोंसे ही धन ग्रहण करना चाहिये, किंतु शूद्रसे किसी प्रकार धन नहीं लेना चाहिये॥ ६९-७०॥[५]

१-मूलमें 'ब्राह्मण' शब्द है। पर वह मनुष्यमात्रका उपलक्षण है।

२-अपराधसूचक चिह्नसे अपराधीको अङ्कित करना भी दण्ड देनेके अन्तर्गत एक शास्त्रीय प्रक्रिया है।

३-यह अनुष्ठानके अङ्गभूत भोजनका निषेध है। सामान्यत: तो किसी भी भूखेको भोजन कराना गृहस्थका अनिवार्य कर्तव्य है।

४-यहाँ जलके दानका निषेध है। प्यासेको पानी पिलानेका निषेध नहीं है। दानके लिये ही योग्य पात्रकी अपेक्षा है।

५-शूद्र छोटा भाई है, इसलिये उससे धन लेनेका निषेध किया है। छोटेसे माँगना उचित नहीं होता।

वृत्तिसंकोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥ ७१॥

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः।
न तां गतिमवाप्नोति संकोचाद् यामवाप्नुयात्॥ ७२॥

प्रतिग्रहरुचिर्न स्यात् यात्रार्थं तु समाहरेत्।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥ ७३॥

ब्राह्मणको वृत्तिके संकोचकी इच्छा रखनी चाहिये, उसे धनका विस्तार करनेकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। धनके लोभमें आसक्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है। सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करने और सभी यज्ञोंको कर लेनेपर भी वह गति नहीं प्राप्त होती जो (वृत्तिके) संकोचसे प्राप्त होती है (अर्थात् जीवननिर्वाहके लिये जीविकाका अधिक-से-अधिक विस्तार उचित नहीं है)। दान लेनेमें रुचि नहीं होनी चाहिये। मात्र जीवन-निर्वाहके लिये धन ग्रहण करना चाहिये। अपनी स्थितिमात्रसे अधिक धन लेनेवाला ब्राह्मण अधोगति प्राप्त करता है (अर्थात् अपने तथा अपने परिवारके पोषणके लिये जितना अत्यावश्यक है, उतना ही लेना चाहिये।)॥ ७१—७३॥

यस्तु याचनको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम्।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः॥ ७४॥

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षुरर्चिष्यन् देवतातिथीन्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत् स्वयं ततः॥ ७५॥

जो नित्य याचना करता है, वह स्वर्गका भागी नहीं होता। वह प्राणियोंको उद्विग्न करता है, वह चोरके ही समान होता है। गुरुजनों तथा सेवकोंके उद्धारकी इच्छा करनेवाला तथा देवता और अतिथियोंकी आराधना करनेवाला सबसे दान ग्रहण कर सकता है, किंतु उस दानसे वह अपनी तृप्ति न करे॥ ७४-७५॥

एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः।
वर्तमानः संयतात्मा याति तत् परमं पदम्॥ ७६॥

पुत्रे निधाय वा सर्वं गत्वारण्यं तु तत्त्ववित्।
एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः॥ ७७॥

एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः।
ज्ञात्वानुतिष्ठेन्नियतं तथानुष्ठापयेद् द्विजान्॥ ७८॥

इस प्रकार संयत आत्मावाला, देवताओं तथा अतिथियोंकी पूजा करनेवाला युक्तात्मा गृहस्थ परमपदको प्राप्त करता है। अथवा पुत्रको अपना सर्वस्व समर्पित कर तत्त्वज्ञानी पुरुषको वनमें जाकर समाहित होकर, विरक्तभावसे नित्य एकाकी विचरण करना चाहिये। हे द्विजोत्तमो! यह मैंने आप लोगोंको गृहस्थोंका धर्म बतलाया। इसे जानकर इसका नियमपर्वूक स्वयं अनुष्ठान करना चाहिये और अन्य द्विजोंसे इसका पालन करवाना चाहिये॥ ७६—७८॥

इति देवमनादिमेकमीशं
गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम्।
समतीत्य स सर्वभूतयोनिं
प्रकृतिं याति परं न याति जन्म॥ ७९॥

इस प्रकार गृहस्थधर्मके द्वारा अनादि, अद्वितीय देव ईश्वरकी सतत आराधना करनी चाहिये। (ऐसा करनेवाला) वह व्यक्ति समस्त प्राणियोंके मूल कारण प्रकृतिका अतिक्रमण कर परमपदको प्राप्त कर लेता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ ७९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-आश्रम तथा वानप्रस्थ-धर्मका वर्णन, वानप्रस्थीके कर्तव्योंका निरूपण

व्यास उवाच

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् सदारः साग्निरेव च॥ १ ॥
निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद् वनमथापि वा।
दृष्ट्वापत्यस्य चापत्यं जर्जरीकृतविग्रहः॥ २ ॥
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ने प्रशस्ते चोत्तरायणे।
गत्वारण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात् समाहितः॥ ३ ॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार आयुके द्वितीय भागतक गृहस्थाश्रममें रहकर (तृतीय भागमें) अग्नि तथा भार्यासहित वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करना चाहिये। अथवा पुत्रके भी पुत्रको देखकर और शरीरके जर्जर हो जानेपर अपनी पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें रख दे तथा स्वयं वनमें चला जाय। प्रशस्त उत्तरायणमें शुक्लपक्षके पूर्वाह्नमें वनमें जाकर नियम ग्रहणकर समाहित होकर तप करना चाहिये॥ १—३॥

फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत्।
यताहारो भवेत् तेन पूजयेत् पितृदेवताः॥ ४ ॥
पूजयित्वातिथिं नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत् सुरान्।
गृहादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः॥ ५ ॥
जटाश्च बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत्।
स्वाध्यायं सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद् वाचमन्यतः॥ ६ ॥

नित्य पवित्र फल-मूलोंको आहारके लिये स्वीकार करना चाहिये और इस प्रकार संयत आहारवाला होकर उसी फल-मूल आदिसे पितरों तथा देवताओंका पूजन (संतर्पण) करना चाहिये। स्नान करके नित्य अतिथियोंका पूजन करके देवताओंका पूजन करे। घरसे लाकर एकाग्रतापूर्वक आठ ग्रास भोजन करे। नित्य जटा धारण करे, नख तथा रोम न कटवाये। सर्वदा स्वाध्याय करे और अन्य विषयोंसे वाणीको रोके॥ ४—६॥

अग्निहोत्रं च जुहुयात् पञ्चयज्ञान् समाचरेत्।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा॥ ७ ॥
चीरवासा भवेन्नित्यं स्नायात् त्रिषवणं शुचिः।
सर्वभूतानुकम्पी स्यात् प्रतिग्रहविवर्जितः॥ ८ ॥
दर्शेन पौर्णमासेन यजेत नियतं द्विजः।
ऋक्षेष्वाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्।
उत्तरायणं च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च॥ ९ ॥
वासन्तैः शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत् पृथक्॥ १०॥
देवताभ्यश्च तद् हुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः।
शेषं समुपभुञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम्॥ ११॥

अग्निहोत्र करे और (वनमें स्वयं उत्पन्न होनेवाले) मुनियोंके विविध प्रकारके पवित्र अन्नों एवं शाक, मूल अथवा फलोंसे पञ्चमहायज्ञोंको सम्पन्न करे। नित्य चीररूपी (अचला, कौपीनमात्र) वस्त्र धारण करे, तीनों संध्याओंमें पवित्रतापूर्वक स्नान करे। सभी प्राणियोंपर दया रखे और दान ग्रहण न करे। (वानप्रस्थी) द्विजको नियमसे दर्श-पौर्णमासयाग, नक्षत्रयाग, आग्रयण (नवशस्येष्टि) और चातुर्मासयाग करना चाहिये तथा क्रमशः उत्तरायण एवं दक्षिणायन याग करना चाहिये। वसन्त तथा शरत्कालमें उत्पन्न स्वयं लाये हुए पवित्र मुन्यन्नोंसे पृथक्-पृथक् पुरोडाश एवं चरु बनाकर देवताओं (तथा पितरों)-को अतिपवित्र वन्य हवि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर अवशिष्ट उस हविको लवण मिलाकर स्वयं भक्षण करना चाहिये॥ ७—११॥

वर्जयेन्मधुमांसानि भौमानि कवकानि च।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च॥ १२॥

मधु, मांस, भूमिमें उत्पन्न कवक (कुकुरमुत्ता), भूस्तृण (शाकविशेष), शिग्रुक (सहिजन) तथा श्लेष्मातक (लिसोढ़ा)-के फलोंका त्याग करना चाहिये॥ १२॥

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च॥ १३॥

श्रावणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत् सदा।
न द्रुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्॥ १४॥

न नक्तं किंचिदश्नीयाद् रात्रौ ध्यानपरो भवेत्।
जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत्॥ १५॥
यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत्।
तद् व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ १६॥

तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः।
न हि वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि॥ १७॥

अधः शयीत सततं सावित्रीजाप्यतत्परः।
शरण्यः सर्वभूतानां संविभागपरः सदा॥ १८॥
परिवादं मृषावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत्।
एकाग्निरनिकेतः स्यात् प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत्॥ १९॥

मृगैः सह चरेद् वासं तैः सहैव च संवसेत्।
शिलायां शर्करायां वा शयीत सुसमाहितः॥ २०॥

सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा।
षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव वा॥ २१॥
त्यजेदाश्वयुजे मासि सम्पन्नं पूर्वसंचितम्।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च॥ २२॥

दन्तोलूखलिको वा स्यात् कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत्।
अश्मकुट्टो भवेद् वापि कालपक्वभुगेव वा॥ २३॥

हलसे जोती हुई भूमिमें उत्पन्न और दूसरोंके द्वारा परित्यक्त पदार्थका भक्षण नहीं करना चाहिये। कष्टमें होते हुए भी ग्राममें उत्पन्न पुष्पों-फलोंका भक्षण नहीं करना चाहिये॥ १३॥

सर्वदा श्रावणी विधिके अनुसार अग्निकी परिचर्या करे। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करे, द्वन्द्वोंसे परे और भयरहित रहे। रातमें कुछ भी भोजन न करे, रात्रिमें केवल ध्यानपरायण रहे। नित्य इन्द्रियजयी, क्रोधजयी, तत्त्वज्ञानका चिन्तक तथा ब्रह्मचर्यपरायण रहे। पत्नीका भी आश्रय न ले॥ १४-१५॥

जो (द्विज) वनमें जाकर कामवश पत्नीके साथ मैथुन करता है तो वह व्रत (वानप्रस्थव्रत)-से च्युत हो जाता है और प्रायश्चित्तका भागी होता है। वहाँ (वानप्रस्थाश्रममें) जो संतान उत्पन्न होती है, वह द्विजातियोंके द्वारा स्पर्शके योग्य नहीं होती। उसका वेदमें अधिकार नहीं होता और उसके वंशमें भी यही स्थिति रहती है। (वानप्रस्थीको) नित्य भूमिपर शयन करना चाहिये। गायत्रीके जपमें तत्पर रहना चाहिये। सभी प्राणियोंको शरण देनेवाला होना चाहिये और दानशील होना चाहिये॥ १६—१८॥

परिवाद (परनिन्दा), असत्यभाषण, निद्रा तथा आलस्यका परित्याग करना चाहिये। एकाग्नि और घरसे रहित होना चाहिये। प्रोक्षित की गयी भूमिपर रहना चाहिये। (वनमें) मृगोंके साथ विचरण करना चाहिये और उन्हींके साथ रहना चाहिये (अर्थात् असंग हो वनमें ही रहे)। शिला या बालूके ऊपर शयन करना चाहिये और सदा समाहितचित्त रहना चाहिये। शीघ्र ही समाप्त होने योग्य फल-मूल आदिका संग्रह करनेवाला होना चाहिये अथवा एक महीनेतक, छः महीनेतक या एक वर्षतक उपयोग किये जानेवाले (फल-मूलादि)-का संग्रह करनेवाला होना चाहिये॥ १९—२१॥

पूर्वसंचित पदार्थों, जीर्ण वस्त्रों तथा शाक, फल, मूल आदिका आश्विनमासमें परित्याग कर देना चाहिये। दाँतोंको ही ऊखल (तथा मूसल) समझना चाहिये। कापोतीवृत्ति (कबूतरकी तरह दाना चुगकर खानेवाली वृत्ति)-का आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ २२-२३॥

नक्तं चान्नं समश्नीयाद् दिवा चाहृत्य शक्तितः।
चतुर्थकालिको वा स्यात् स्याद्वाप्यष्टमकालिकः॥ २४॥

अथवा पत्थरपर ही कूटकर अन्नका भक्षण करनेवाला होना चाहिये या समयानुसार पके हुए (फल-मूलादि)-का भक्षण करनेवाला होना चहिये। यथाशक्ति दिनमें अन्न (फल-मूलादि) लाकर रात्रिमें भक्षण करना चाहिये अथवा चतुर्थकालिक या अष्टमकालिक भोजन करनेवाला होना चाहिये। अथवा शुक्ल और कृष्णपक्षमें चान्द्रायणविधिसे रहे। या प्रत्येक पक्षमें एक बार उबाले गये यवागूका भक्षण करे॥ २४-२५॥

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत्।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद् यवागूं क्वथितां सकृत्॥ २५॥
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत् सदा।
स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः॥ २६॥

अथवा सर्वदा वैखानस (वानप्रस्थ) व्रतका पालन करते हुए केवल स्वाभाविक रीतिसे अपने-आप (वृक्षसे) गिरे हुए पुष्प, मूल एवं फलोंसे निर्वाह करता रहे। भूमिपर लेटना एवं रहना चाहिये। दिनमें पंजोंके बल उठना, बैठना या चलना चाहिये। धैर्य कभी भी न छोड़े। ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि-तप (तप-विशेषका सेवन) करे। वर्षाके दिनोंमें खुले आकाशके नीचे रहे और हेमन्तमें गीले वस्त्र धारण करे—इस प्रकार क्रमशः तपस्याको बढ़ाता रहे॥ २६—२८॥

भूमौ वा परिवर्तेत तिष्ठेद् वा प्रपदैर्दिनम्।
स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद् धैर्यमुत्सृजेत्॥ २७॥

ग्रीष्मे पञ्चतपाश्च स्याद् वर्षास्वभ्रावकाशकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः॥ २८॥
उपस्पृश्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत्।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन् वा पिबेत् तदा॥ २९॥

आचमनकर तीनों संध्याओंमें स्नान तथा पितरों और देवताओंका तर्पण (एवं पूजन) करे। उस समय एक पैरसे खड़ा रहे अथवा सूर्यकिरणोंका पान करे। पञ्चाग्निका सेवन करे अथवा धुएँका पान करे या ऊष्माका पान करे अथवा सोमपान करे। शुक्लपक्षमें दुग्ध-पान करे और कृष्णपक्षमें गोमयका सेवन करे अथवा गिरे हुए पत्तोंका सेवन करे या सदा कृच्छ्रव्रतका पालन करता रहे॥ २९-३०॥

पञ्चाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽपि वा।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु गोमयम्।
शीर्णपर्णाशिनो वा स्यात् कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत् सदा॥ ३०॥
योगाभ्यासरतश्च स्याद् रुद्राध्यायी भवेत् सदा।
अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः॥ ३१॥

सदा योगका अभ्यास करता रहे, रुद्राध्यायका अध्ययन करता रहे। अथर्वशिरस्‌के अध्ययन और वेदान्तके अभ्यासमें तत्पर रहे। आलस्यरहित होकर निरन्तर यमों और नियमोंका पालन करे। कृष्ण-मृगचर्म, उत्तरीय और शुक्ल यज्ञोपवीत धारण करे। अग्नियोंको अपनी आत्मामें प्रतिष्ठित कर ध्यान-परायण रहे। अग्नि (गृह्याग्नि) और गृहका परित्याग कर दे और मुनिव्रतद्वारा मोक्षकी प्राप्तिका प्रयत्न करता रहे॥ ३१—३३॥

यमान् सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतन्द्रितः।
कृष्णाजिनी सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान्॥ ३२॥

अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत्॥ ३३॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत्।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु॥ ३४॥

जीवन-निर्वाहके लिये तपस्वी ब्राह्मणोंसे ही भिक्षा माँगे। अथवा अन्य गृहस्थों तथा वनवासी द्विजोंसे भिक्षा लेनी चाहिये॥ ३४॥

ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान् वने वसन्।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा॥ ३५॥

अथवा वनमें रहते हुए ग्रामसे लाकर मात्र आठ ग्रास भोजन करना चाहिये। पत्तोंके दोने, हाथ अथवा कसोरे (मिट्टीके पात्र) इत्यादिके टुकड़ेमें ही भोजन ग्रहण करना चाहिये॥ ३५॥

विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत्।
विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च॥ ३६॥

महाप्रास्थानिकं चासौ कुर्यादनशनं तु वा।
अग्निप्रवेशमन्यद् वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः॥ ३७॥

आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये (विधिपूर्वक) विविध उपनिषदोंका निरन्तर पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार विशिष्ट विद्याओं, गायत्री तथा रुद्राध्यायकी आवृत्ति करनी चाहिये। अथवा ब्रह्मार्पण-विधिमें स्थित रहते हुए महाप्रस्थान (मृत्यु-पथ)-के उद्देश्यसे अनशन करे या अग्निमें प्रवेश करे॥ ३६-३७॥

यस्तु सम्यगिममाश्रमं शिवं
संश्रयेदशिवपुञ्जनाशनम्।
तापसः स परमैश्वरं पदं
याति यत्र जगतोऽस्य संस्थितिः॥ ३८॥

जो तपस्वी अमंगल-समूहका नाश करनेवाले तथा कल्याणकारी इस (वानप्रस्थ) आश्रमका भलीभाँति आश्रयण करता है, वह उस परम ऐश्वर पदको प्राप्त करता है, जिसमें इस जगत्की स्थिति है॥ ३८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

संन्यासधर्मका प्रतिपादन, संन्यासियोंके भेद तथा संन्यासीके कर्तव्योंका वर्णन

व्यास उवाच

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत् क्रमात्॥ १॥

अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत्।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः॥ २॥

यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु।
तदा संन्यासमिच्छेच्च पतितः स्याद् विपर्यये॥ ३॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः।
दान्तः पक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्॥ ४॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार वानप्रस्थ-आश्रममें आयुके तीसरे भागको व्यतीतकर क्रमशः आयुके चौथे भागको संन्यास-आश्रमद्वारा व्यतीत करना चाहिये। अग्नियोंको आत्मामें प्रतिष्ठित कर द्विजको संन्यास ग्रहण करना चाहिये। उसे योगाभ्यासमें निरत, शान्त तथा ब्रह्मविद्यापरायण रहना चाहिये। जब सभी वस्तुओंके प्रति मनमें वितृष्णा उत्पन्न हो जाय, तब संन्यास ग्रहण करनेकी इच्छा करनी चाहिये। इसके विपरीत करनेसे (अर्थात् स्वल्प भी तृष्णाके रहते संन्यास ग्रहण करनेपर) मनुष्य पतित हो जाता है। प्राजापत्य अथवा आग्नेय याग करके इन्द्रियनिग्रही एवं पूर्ण वैराग्यवान् द्विजको ब्रह्माश्रम (संन्यासाश्रम)-का आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १—४॥

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनः परे।
कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्तिताः॥ ५॥

कुछ ज्ञानसंन्यासी होते हैं, कुछ वेदसंन्यासी होते हैं और कुछ कर्मसंन्यासी होते हैं। इस प्रकार तीन प्रकारके संन्यासी कहे गये हैं॥ ५॥

य: सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भय:।
प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थित:॥ ६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशी निष्परिग्रह:।
प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रिय:॥ ७ ॥

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विज:।
ज्ञेय: स कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायण:॥ ८ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मत:।
न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चित:॥ ९ ॥

जो सभी आसक्तियोंसे मुक्त है, सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंसे रहित है और निर्भय है, अपनी आत्मामें ही प्रतिष्ठित रहनेवाला है, वह ज्ञानसंन्यासी कहलाता है। जो नित्य वेदका ही अभ्यास (स्वाध्याय) करता रहता है, आशारहित है, संग्रहशून्य है, जितेन्द्रिय है तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाला है, वह वेदसंन्यासी कहा जाता है। जो अग्नियोंको आत्मसात्कर ब्रह्मार्पणतत्पर रहता है, उस महायज्ञपरायण (सतत ब्रह्मचिन्तन-परायण) द्विजको कर्मसंन्यासी जानना चाहिये। इन तीनोंमें ज्ञानी (ज्ञान-संन्यासी)-को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। उस (ज्ञानी)-का न कोई कर्तव्य (शेष) रह जाता है और न कोई चिह्न ही होता है॥ ६—९॥

निर्ममो निर्भय: शान्तो निर्द्वन्द्व: पर्णभोजन:।
जीर्णकौपीनवासा: स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्पर:॥ १० ॥

संन्यासीको ममताशून्य, भयरहित, शान्त, द्वन्द्वोंसे परे, पत्तोंका ही आहार करनेवाला, जीर्ण कौपीनको वस्त्र-रूपमें धारण करनेवाला अथवा नग्न और ध्यान-परायण होना चाहिये॥ १०॥

ब्रह्मचारी मिताहारो ग्रामादन्नं समाहरेत्।
अध्यात्ममतिरासीत निरपेक्षो निरामिष:॥ ११ ॥

आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेदिह।
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्॥ १२ ॥

कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा।
नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन।
एवं ज्ञात्वा परो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ १३ ॥

(संन्यासी) ब्रह्मचर्यका पालन करे, सीमित मात्रामें आहार ग्रहण करे, ग्रामसे अन्न माँगकर लाये। अध्यात्म (ज्ञान)-में बुद्धि रखे, निरपेक्ष रहे तथा निरामिष रहे। अपनी ही सहायतासे अर्थात् स्वावलम्बी होकर आत्मतुष्टिके लिये इस संसारमें विचरण करे, न तो मृत्युका ही अभिनन्दन करे और न जीवनका अभिनन्दन करे। जिस प्रकार सेवक (अपने स्वामीके) आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे भी कालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। न कभी अध्ययन करे, न प्रवचन करे और न कुछ श्रवण ही करे। इस प्रकारका ज्ञान रखकर (आत्मनिष्ठ होकर) वह श्रेष्ठ योगी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥ ११—१३॥

एकवासाथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनस्तथा।
मुण्डी शिखी वाथ भवेत् त्रिदण्डी निष्परिग्रह:।
काषायवासा: सततं ध्यानयोगपरायण:॥ १४ ॥

ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद् देवालयेऽपि वा।
सम: शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो:।
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत् क्वचित्॥ १५ ॥

विद्वान् संन्यासी (कौपीनके साथ) एक वस्त्र (उत्तरीय) धारण करे अथवा कौपीनमात्रसे शरीरका आच्छादन करे। मुण्डित सिर अथवा जटाधारी रहे। त्रिदण्डी रहे, संचयवृत्तिसे शून्य रहे। काषाय वस्त्र ही धारण करे और निरन्तर ध्यानयोगमें परायण रहे। उसे (संन्यासीको) ग्रामकी सीमापर, वृक्षके मूलमें अथवा किसी देवमन्दिरमें रहना चाहिये। शत्रु-मित्र तथा मान-अपमानमें समान रहना चाहिये। नित्य भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करे। कभी भी उसे किसी एक ही व्यक्तिका अन्न खानेवाला नहीं होना चाहिये॥ १४-१५॥

यस्तु मोहेन वालस्यादेकान्नादी भवेद् यतिः।
न तस्य निष्कृतिः काचिद् धर्मशास्त्रेषु कथ्यते॥ १६॥

रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात् सर्वनिस्पृहः॥ १७॥

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद् वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥ १८॥
नैकत्र निवसेद् देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः।
स्नानशौचरतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः॥ १९॥

ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत्।
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेन्द्रियः॥ २०॥

दम्भाहंकारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्॥ २१॥

अभ्यसेत् सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम्।
स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु॥ २२॥
यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः।
धौतकाषायवसनो भस्मच्छन्नतनूरुहः॥ २३॥

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥ २४॥

पुत्रेषु वाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम्॥ २५॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपः परम्।
क्षमा दया च संतोषो व्रतान्यस्य विशेषतः॥ २६॥

वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्च यज्ञान् समाहितः।
कुर्यादहरहः स्नात्वा भिक्षान्नेनैव तेन हि॥ २७॥

जो संन्यासी मोह या आलस्यवश किसी एक ही व्यक्तिका अन्न भक्षण करता है, उसकी मुक्तिका कोई उपाय धर्मशास्त्रोंमें नहीं बतलाया गया है। (संन्यासीको) राग-द्वेषसे मुक्त, मिट्टी, पत्थर और सोनेमें समान भाव रखनेवाला, प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त, मौनी और सब प्रकारसे आसक्तिशून्य होना चाहिये, अच्छी तरह देखकर पैर रखना चाहिये, वस्त्रसे छानकर जल पीना चाहिये, सत्यसे पवित्र वाणी बोलनी चाहिये और मनसे शुद्ध आचरण करना चाहिये॥ १६—१८॥

संन्यासीको वर्षा-ऋतुके अतिरिक्त (अन्य ऋतुओंमें) किसी एक ही स्थानपर नहीं रहना चाहिये। नित्य स्नान एवं शौचमें तत्पर, हाथमें कमण्डलु धारण करनेवाला तथा पवित्र होना चाहिये। नित्य ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिये, वनवासी ही रहना चाहिये तथा मोक्षविषयक शास्त्राध्ययनमें निरत रहते हुए ब्रह्मसूत्री (यज्ञोपवीतसे युक्त दण्डधारी) और जितेन्द्रिय रहना चाहिये। दम्भ-अहंकारसे मुक्त रहे, निन्दा तथा पिशुनता (चुगलखोरी)-का सर्वथा परित्याग करे। आत्मज्ञानसम्बन्धी गुणोंसे सम्पन्न रहे—ऐसा संन्यासी मोक्ष प्राप्त करता है। विधिपूर्वक स्नानोपरान्त आचमन करके पवित्रतापूर्वक देवालयोंमें प्रणव नामक सनातन वेद (मन्त्र)-का निरन्तर अभ्यास (जप) करे॥ १९—२२॥

यज्ञोपवीती, शान्तात्मा, हाथमें कुश धारण करनेवाला, एकाग्रचित्त, धुला हुआ काषाय वस्त्र धारण करनेवाला और भस्मसे धूसरित देहवाला रहना चाहिये[1]। संन्यासीको वेदान्त-प्रतिपादित अधियज्ञ, (समस्त यज्ञोंके अधिष्ठान) आधिदैविक तथा आध्यात्मिक ब्रह्म (मन्त्र-प्रणव)-का सतत जप करना चाहिये। अथवा मननशील तथा ब्रह्मचारी यतिको पुत्रोंके बीच रहते हुए नित्य वेदका ही अभ्यास करना चाहिये, इससे उसे परम गति प्राप्त होती है॥ २३—२५॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, श्रेष्ठ तप, क्षमा, दया और संतोष—ये ब्रह्मचारी यतिके विशेष व्रत हैं। अथवा वेदान्त-ज्ञानमें निष्ठाके साथ समाहित होकर स्नानादि कर भिक्षामें प्राप्त अन्नसे नित्य पञ्चमहायज्ञोंका सम्पादन करना चाहिये (इसे विरक्त कर्मयोगीका धर्म समझना चाहिये)॥ २६-२७॥

१-कुटीचक संन्यासी शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (नारदपरिव्राजकोपनिषद्-५)

होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः।
स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात् सावित्रीं संध्ययोर्जपेत्॥ २८॥

ध्यायीत सततं देवमेकान्ते परमेश्वरम्।
एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥ २९॥

एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्।
कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम्॥ ३०॥

नियत समयपर समाहित होकर नित्य होम-मन्त्रोंका जप करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करे और संध्याओंमें गायत्रीका जप करे। एकान्तमें निरन्तर परमेश्वरदेवका ध्यान करे। नित्य एक ही व्यक्तिके अन्नका और काम, क्रोध तथा परिग्रहका त्याग करे। एक वस्त्र अथवा दो वस्त्र धारण करे। शिखा एवं यज्ञोपवीत धारण करे। हाथमें कमण्डलु धारण करे, ऐसा त्रिदण्डी विद्वान् भी (अनासक्त—द्वन्द्वातीत कर्मयोगी होनेके कारण) परम पदको प्राप्त करता है॥ २८—३०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

संन्यासाश्रमधर्म-निरूपणमें यतियोंकी भैक्ष्यवृत्तिका स्वरूप, यतियोंके लिये महेश्वरके ध्यानका प्रतिपादन, व्रतभङ्गमें प्रायश्चित्तविधान तथा पुनः यथास्थितिमें आनेकी विधि, संन्यासधर्म-प्रकरणकी समाप्ति

व्यास उवाच

एवं स्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम्।
भैक्षेण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापि वा॥ १॥

एककालं चरेद् भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति॥ २॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार अपने आश्रममें स्थित नियतात्मा यतियोंके लिये भिक्षा अथवा फल-मूलद्वारा जीवन-निर्वाह करना कहा गया है। एक समय ही भिक्षा करनी चाहिये। उसके विस्तारमें आसक्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि भिक्षामें आसक्ति रखनेवाला संन्यासी विषयोंमें भी आसक्त हो जाता है॥ १-२॥

सप्तागारं चरेद् भैक्षमलाभात् तु पुनश्चरेत्।
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीयादद्भिः प्रक्षालयेत् तु तत्॥ ३॥

अथवान्यदुपादाय पात्रे भुञ्जीत नित्यशः।
भुक्त्वा तत् संत्यजेत् पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः॥ ४॥

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्॥ ५॥

सात घरोंसे भिक्षा माँगनी चाहिये। (उतने घरोंमें) न मिलनेपर पुनः भिक्षा माँगनी चाहिये। पात्रको धोकर उसमें भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और भिक्षाके बाद पुनः उसे जलसे धोना चाहिये। अथवा (सम्भव हो तो) बिना लोभके जीवन-निर्वाहमात्र करनेवाले यतिको प्रतिदिन नवीन पात्र लाकर उसमें भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और भिक्षा ग्रहण करनेके बाद उसका परित्याग कर देना चाहिये। गृहस्थका घर धूएँसे रहित हो जानेपर, मूसलका शब्द बंद हो जानेपर, आगके न रहनेपर, सभी लोगोंके भोजन कर चुकनेपर, कसोरे एवं पत्रादिका ढेर लग जानेपर यतिको (गृहस्थके घर) नित्य भिक्षा माँगनी चाहिये॥ ३—५॥

गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः।
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत् तूष्णीमश्नीयाद् वाग्यतः शुचिः ॥ ६ ॥

प्रक्षाल्य पाणिपादौ च समाचम्य यथाविधि।
आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखोत्तरः ॥ ७ ॥

हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः।
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम् ॥ ८ ॥

अलाबुं दारुपात्रं च मृण्मयं वैणवं ततः।
चत्वारि यतिपात्राणि मनुराह प्रजापतिः ॥ ९ ॥

प्राग्रात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च।
संध्यास्वह्नि विशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम् ॥ १० ॥

एक बार 'भिक्षा' ऐसा शब्द उच्चारण कर भिक्षा माँगनेवाले संन्यासीको नीचे मुख किये हुए उतने समयतक प्रतीक्षा करनी चाहिये, जितनी देरमें गाय दुही जाती है। (भिक्षा प्राप्त होनेपर) पवित्रतापूर्वक मौन होकर भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। हाथ-पाँव धोकर यथाविधि आचमन कर सूर्यकी ओर अन्न दिखलाकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके भोजन करना चाहिये। (**प्राणाय स्वाहा इत्यादि**) पाँच प्राणाहुति देकर समाहित होकर आठ ग्रास ग्रहण करे। तदनन्तर आचमन कर परमेश्वर देव ब्रह्मका ध्यान करे। प्रजापति मनुने संन्यासीके लिये लौकी, लकड़ी, मिट्टी तथा बाँसके बने चार प्रकारके पात्र बताये हैं। यतिको रात्रिके प्रथम भाग, अन्तिम भाग, मध्यरात्रि, संध्या-काल तथा दिनमें नित्य विशेषरूपसे ईश्वरका चिन्तन करना चाहिये ॥ ६—१० ॥

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम्।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात् तमसः स्थितम् ॥ ११ ॥

सर्वस्याधारभूतानामानन्दं ज्योतिरव्ययम्।
प्रधानपुरुषातीतमाकाशं दहनं शिवम् ॥ १२ ॥

तदन्तः सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम्।
ध्यायेदनादिमद्वैतमानन्दादिगुणालयम् ॥ १३ ॥

महान्तं परमं ब्रह्म पुरुषं सत्यमव्ययम्।
सितेतरारुणाकारं महेशं विश्वरूपिणम् ॥ १४ ॥

ओंकारान्तेऽथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि।
आकाशे देवमीशानं ध्यायीताकाशमध्यगम् ॥ १५ ॥

(संन्यासीको) हृदयकमलरूपी घरमें विश्व नामक संसारके उत्पादक, सभी भूतोंके आत्मरूप, तमोगुणसे परे रहनेवाले, सभीके आश्रय, प्राणियोंको आनन्द देनेवाले, ज्योतिःस्वरूप, अविनाशी, प्रधान एवं पुरुषसे अतीत, आकाशरूप, अग्नि एवं शिवरूप, वस्तुमात्रके अस्तित्वके अधिष्ठाता, ब्रह्मरूपी ईश्वर, अनादि, अद्वैत, आनन्दादि गुणोंके निधान, महान्, पुरुष, परम ब्रह्म, सत्य, शाश्वत, सित (शुक्ल), तदितर (कृष्ण) एवं अरुणवर्णवाले अर्थात् सत्त्व, रज, तमोरूप त्रिगुणात्मक, विश्वरूपी महेश्वरका ध्यान करना चाहिये। ओंकारका उच्चारणकर आत्माको प्रणवके परम तात्पर्यरूप परमात्मामें प्रतिष्ठितकर आकाशके मध्यमें स्थित रहनेवाले ईशानदेवका (हृदयरूपी) आकाशमें ध्यान करना चाहिये ॥ ११—१५ ॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्।
पुराणं पुरुषं शम्भुं ध्यायन् मुच्येत बन्धनात् ॥ १६ ॥

यद्वा गुहायां प्रकृतौ जगत्सम्मोहनालये।
विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ॥ १७ ॥

जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते।
आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत् पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥ १८ ॥

तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्।
अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः ॥ १९ ॥

सभी भावोंके कारणरूप, आनन्दके एकमात्र आश्रयस्वरूप पुराण-पुरुष शम्भुका ध्यान करनेसे बन्धनसे मुक्ति हो जाती है। अथवा संसारके सम्मोहनालयरूप मूलप्रकृतिरूपी गुहामें परम व्योमरूप सभी भूतोंके एकमात्र कारण, सभी प्राणियोंके जीवनरूप और संसारके विलय-स्थान, ब्रह्मानन्द-स्वरूप तथा मुमुक्षु लोग जिनका सूक्ष्मरूपसे दर्शन करते हैं, उनका (परम व्योम विराट् ब्रह्मका) ध्यानकर उनके मध्यमें स्थित शुद्ध ज्ञानस्वरूप अनन्त, सत्य एवं ईशानरूप ब्रह्मका चिन्तन करते हुए संयत होकर स्थित रहना चाहिये ॥ १६—१९ ॥

गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्।
योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम्॥ २०॥

यतियोंका यह गुह्यसे भी गुह्यतम ज्ञान महेशने बतलाया है। जो इसका अनुष्ठान करता है, वह ऐश्वरयोगको प्राप्त करता है॥ २०॥

तस्माद् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः।
ज्ञानं समभ्यसेद् ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात्॥ २१॥

मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम्।
आनन्दमजरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः परम्॥ २२॥

यस्माद् भवन्ति भूतानि यद् गत्वा नेह जायते।
स तस्मादीश्वरो देवः परस्माद् योऽधितिष्ठति॥ २३॥

यदन्तरे तद् गगनं शाश्वतं शिवमव्ययम्।
यदंशस्तत्परो यस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः॥ २४॥

व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते॥ २५॥

अतएव नित्य ध्यानमें निरत और आत्मविद्यापरायण होते हुए ब्रह्मज्ञानका अभ्यास करते रहना चाहिये। इसके कारण बन्धनसे मुक्ति होती है। अपनी आत्माको सबसे भिन्न (शाश्वत-नित्य) समझकर उसकी अद्वितीय, अजर, आनन्दरूप, श्रेष्ठ ज्ञानरूपताका पुनः-पुनः ध्यान करना चाहिये। जिनसे चर-अचर समस्त प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है, जिन्हें प्राप्तकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति हो जाती है और इसी कारण जो ईश्वर हैं, देव हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं, सबके अधिष्ठाता हैं, वे ही महेश्वर हैं। जिनके अन्तर्गत शाश्वत, शिव, अव्यय, गगन विद्यमान है, जगन्नियन्ता परमात्मा जिनके अंश हैं, वे ही देव महेश्वर हैं (इनका पुनः-पुनः ध्यान यतिको करना चाहिये)। भिक्षुओं (संन्यासियों)-के जो व्रत और उपव्रत हैं, उनमेंसे एक-एकका अतिक्रमण करनेपर प्रायश्चित्तका विधान किया गया है॥ २१—२५॥

उपेत्य च स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं समाहितः।
प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात् सांतपनं शुचिः॥ २६॥

ततश्चरेत नियमात् कृच्छ्रं संयतमानसः।
पुनराश्रममागम्य चरेद् भिक्षुरतन्द्रितः॥ २७॥

कामवश स्त्रीप्रसंग करनेपर समाहित होकर प्राणायाम कर पवित्रतापूर्वक प्रायश्चित्तके लिये सांतपन नामक व्रत करना चाहिये। तदनन्तर संयतमानस होकर नियमसे कृच्छ्र (चान्द्रायण)-व्रत करे। पुनः अपने आश्रममें आकर आलस्यका परित्याग कर भिक्षुको आश्रमोचित आचरण करना चाहिये॥ २६-२७॥

न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः।
तथापि च न कर्तव्यं प्रसंगो ह्येष दारुणः॥ २८॥

एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा।
उक्त्वानृतं प्रकर्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना॥ २९॥

परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः।
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः।
हिंसा चैषापरा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका॥ ३०॥

विद्वानोंका यह कहना है कि धर्मयुक्त असत्यसे व्रतभङ्ग नहीं होता, तथापि ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि इसमें आसक्ति रखना दारुण कर्म है। धर्माभिलाषी यतिको चाहिये कि वह असत्यभाषण करनेपर एक रात्रि उपवास तथा सौ प्राणायाम करे। अत्यन्त संकटमें होनेपर भी भिक्षुको किसी अन्य प्रयोजनसे भी चोरी नहीं करनी चाहिये। चोरीसे बढ़कर दूसरा कोई अधर्म नहीं है, यही सबसे बड़ी हिंसा भी है, क्योंकि इससे आत्मज्ञान विनष्ट हो जाता है, ऐसा स्मृतियोंका सिद्धान्त है॥ २८—३०॥

यदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम्॥ ३१॥

यह जो द्रविण—धन नामकी वस्तु है, यह बाहरी प्राण ही है, इसलिये जो जिसके धनका अपहरण करता है, वह उसके प्राणोंका ही हरण करता है॥ ३१॥

एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्युतः।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥ ३२॥

विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद् भिक्षुरतन्द्रितः॥ ३३॥
अकस्मादेव हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत्।
कुर्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा॥ ३४॥

स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश।
दिवास्कन्दे त्रिरात्रं स्यात् प्राणायामशतं तथा॥ ३५॥
एकान्ने मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च।
प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम्॥ ३६॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्॥ ३७॥

यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमद्वयम्।
योऽन्तरात्र परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः॥ ३८॥

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम्॥ ३९॥

यस्मान्महीयते देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः॥ ४०॥
नान्यद् देवान्महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्॥ ४१॥

मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः॥ ४२॥
एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम्।
स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते॥ ४३॥

तस्माद् यतेत नियतं यतिः संयतमानसः।
ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः॥ ४४॥

निश्चित ही धन हरण करनेवाला दुष्टात्मा आचारसे भ्रष्ट और व्रतसे च्युत हो जाता है। श्रुतिका विधान है कि यदि कोई अपने व्रतसे च्युत व्यक्ति अपने पुनः व्रतभङ्गपर पश्चात्ताप करे तो शास्त्रानुकूल विधिसे आलस्य-रहित होकर एक वर्षतक चान्द्रायणव्रत करे॥ ३२-३३॥

यदि भिक्षुसे अकस्मात् हिंसा हो जाय तो उसे पश्चात्तापपूर्वक कृच्छ्रव्रत, अतिकृच्छ्रव्रत अथवा चान्द्रायण-व्रत (हिंसाके स्वरूपके अनुसार) करना चाहिये। इन्द्रियकी दुर्बलताके कारण यदि स्त्रीको देखकर यति स्खलित हो जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करना चाहिये। दिनमें स्खलन होनेपर तीन रातका उपवास और सौ प्राणायाम करना चाहिये॥ ३४-३५॥

एकका ही अन्न भक्षण करने, मधु ग्रहण करने, नवश्राद्ध-सम्बन्धी अन्न तथा प्रत्यक्ष लवण खानेपर प्राजापत्यव्रतको (पापकी) शुद्धिका उपाय बतलाया गया है। निरन्तर ध्याननिष्ठ पुरुषके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं, इसलिये महेश्वरका ज्ञान प्राप्तकर उनके ध्यानमें परायण रहना चाहिये। जो ब्रह्म परम ज्योतिरूप, सभीका अधिष्ठान, अक्षर अद्वितीय है तथा जो सभीके भीतर स्थित है, परम ब्रह्म है, उसे महेश्वर जानना चाहिये। ये ही महेश्वर देव, महादेव एवं अद्वितीय परम शिव हैं। ये ही अविनाशी, अद्वैत हैं और ये ही आदित्यके भीतर प्रतिष्ठित परम (तत्त्व) हैं। आत्मयोग नामसे प्रसिद्ध, स्वप्रकाश, नित्य-ज्ञान नामसे भी विख्यात, परम तत्त्वरूप अपने धाममें सर्वाधिक पूजनीय-रूपसे ये महेश्वर प्रतिष्ठित हैं, इसीलिये महादेव कहे जाते हैं॥ ३६—४०॥

जो महादेवसे भिन्न किसी दूसरे देवको नहीं जानता और इन्हींको अपनी आत्मा मानता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो अपनी आत्माको परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं, वे उस देवका दर्शन नहीं करते हैं, उनका परिश्रम व्यर्थ होता है॥ ४१-४२॥

परम ब्रह्म एक ही हैं, इन्हें ही अव्यय तत्त्वके रूपमें जानना चाहिये। ये अव्यय तत्त्व ब्रह्म ही देव हैं, महादेव हैं, इन्हें जान लेनेपर बन्धन नहीं होता। इसलिये यतिको संयतमन होकर (इन्हें प्राप्त करनेके लिये) प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञानयोगमें रत रहना चाहिये, शान्त रहना चाहिये और महादेवके परायण रहना चाहिये॥ ४३-४४॥

एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः।
पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वमीरितम्॥ ४५॥

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम्।
ज्ञानं स्वयम्भुवा प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम्॥ ४६॥

हे विप्रो! यह आप लोगोंको संन्यासियोंके कल्याणकारी आश्रम (संन्यासाश्रम)-के विषयमें बतलाया। पूर्वकालमें पितामह विभुने मुनियोंसे इसे कहा था। ब्रह्माजीद्वारा कहे गये यतिधर्मविषयक इस कल्याणकारी उत्तम ज्ञानको पुत्र, शिष्य तथा योगियोंके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं देना चाहिये॥ ४५-४६॥

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं
पशुपतिपरितोषे यद् भवेदेकहेतुः।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः
प्रणिहितमनसो ये नित्यमेवाचरन्ति॥ ४७॥

इस प्रकार संन्यासियोंके नियमोंके इस विधानको बतलाया गया। यह पशुपति (शंकर)-को संतुष्ट करनेका एकमात्र उपाय है। जो अव्यग्रभावसे एकाग्रतापूर्वक इसका नित्य आचरण करते हैं, उनका पुनः जन्म अथवा मरण कुछ भी नहीं होता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं॥ ४७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-प्रकरणमें प्रायश्चित्तका स्वरूपनिरूपण, पाँच महापातकोंके नाम तथा ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तका संक्षिप्त निरूपण

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।
हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये॥ १॥

व्यासजीने कहा—इसके अनन्तर अब मैं सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये और दोषोंके विनाशके लिये शुभ प्रायश्चित्त-विधिका वर्णन करूँगा॥ १॥

अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निन्दितमेव च।
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम्॥ २॥

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः क्वचित्।
यद् ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत्॥ ३॥

वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्मकामोऽग्निमान् द्विजः।
स एव स्यात् परो धर्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति॥ ४॥

अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः।
यद् ब्रूयुर्धर्मकामास्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम्॥ ५॥

विहित कर्मोंको न करने और निन्दित कर्मोंको करनेसे पुरुष दोष (पाप)-का भागी होता है। इसकी निवृत्ति प्रायश्चित्त करनेसे होती है। ब्राह्मणको बिना प्रायश्चित्त किये कभी भी नहीं रहना चाहिये। शान्त एवं विद्वान् ब्राह्मण जो कहें, उसे करना चाहिये। वेदार्थज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, शान्त, धर्मपालनको ही सर्वस्व माननेवाला एक भी अग्निहोत्री ब्राह्मण जो अपने आचरणमें लाता है, वही श्रेष्ठ धर्म होता है। वेदार्थमें पारंगत, धर्मपरायण अनाहिताग्नि[1] तीन ब्राह्मण जो कहें, उसे धर्मका साधन समझना चाहिये॥ २—५॥

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः।
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्तिताः॥ ६॥

अनेक धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता, ऊहापोहमें दक्ष (शास्त्रीय विभिन्न सिद्धान्तोंके आकलन तथा समन्वयमें कुशल) तथा वेदाध्ययनशील सात ब्राह्मण धर्ममें प्रमाण कहे गये हैं॥ ६॥

१-स्मार्त अग्निहोत्र करनेवाले भी अनाहिताग्नि होते हैं। श्रौत अग्निहोत्र करनेवाले ही आहिताग्नि कहे जाते हैं।

मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजा:।
एकविंशतिसंख्याता: प्रायश्चित्तं वदन्ति वै॥ ७ ॥

मीमांसाज्ञानके तत्त्वज्ञ (वेदवाक्यार्थ-विचार एवं श्रौत-स्मार्त-कर्मकाण्डके रहस्यको जाननेवाले) तथा वेदान्तके ज्ञानमें कुशल (पारमार्थिक तत्त्व अद्वैतके रहस्यवेत्ता) संख्यामें इक्कीस ब्राह्मण प्रायश्चित्तका विधान कर सकते हैं॥ ७॥

ब्रह्महा मद्यप: स्तेनो गुरुतल्पग एव च।
महापातकिनस्त्वेते यश्चैतै: सह संवसेत्॥ ८ ॥

संवत्सरं तु पतितै: संसर्गं कुरुते तु य:।
यानशय्यासनैर्नित्यं जानन् वै पतितो भवेत्॥ ९ ॥

याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विज:।
कृत्वा सद्य: पतेज्ज्ञानात् सह भोजनमेव च॥ १०॥

ब्रह्मघाती, मद्यपायी, चोर, गुरुतल्पगामी तथा इनके साथ निवास करनेवाले—(ये सभी) महापातकी होते हैं। जो एक वर्षपर्यन्त नित्य सब कुछ जानते हुए भी पतितोंके साथ यान (सवारी), शय्या तथा आसन-सम्बन्धी संसर्ग करता है, वह पतित हो जाता है। जानते हुए भी (पतितोंका) यज्ञ कराने, अध्यापन करने, उनके साथ योनि अर्थात् विवाह आदिका सम्बन्ध रखने और भोजन करनेसे द्विज शीघ्र ही पतित हो जाता है॥ ८—१०॥

अविज्ञायाथ यो मोहात् कुर्यादध्यापनं द्विज:।
संवत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च॥ ११॥

ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्षमात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्॥ १२॥

ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत्।
विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तं च संस्मरन्॥ १३॥

असंकल्पितयोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत्।
विधूमे शनकैर्नित्यं व्यङ्गारे भुक्तवज्जने॥ १४॥

एककालं चरेद् भैक्षं दोषं विख्यापयन् नृणाम्।
वन्यमूलफलैर्वापि वर्तयेद् धैर्यमाश्रित:॥ १५॥

जो द्विज अज्ञानमें मोहवश इनके साथ अध्ययन अथवा अध्यापन करता है, वह एक वर्षमें पतित हो जाता है। आत्मशुद्धिके लिये ब्रह्मघातीको बारह वर्षोंतक कुटी बनाकर वनमें रहना चाहिये और शवके सिरको ध्वजाके समान धारणकर भिक्षा माँगनी चाहिये। (ब्रह्मघातीको) ब्राह्मणोंके निवासस्थानों तथा देवमन्दिरोंमें नहीं जाना चाहिये और स्वयं अपनी आत्माकी निन्दा करते हुए तथा जिस ब्राह्मणको मारा है, उसका स्मरण करते हुए पहलेसे असंकल्पित (अनिश्चित), धूएँसे रहित, शान्त अग्निवाले तथा जहाँ लोगोंने भोजन कर लिया है—ऐसे सात घरोंसे नित्य धीरे-धीरे भिक्षा माँगनी चाहिये। उसे मनुष्योंको अपना दोष (पाप) बताते हुए एक समय भिक्षा माँगनी चाहिये अथवा धैर्य रखते हुए वन्य मूल-फलोंद्वारा निर्वाह करना चाहिये॥ ११—१५॥

कपालपाणि: खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायण:।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ १६॥

अकामत: कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम्।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित्॥ १७॥

हाथमें कपाल लिये हुए और खट्वाङ्ग (चारपाईके टुकड़ेको) धारणकर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो जानेपर ब्रह्महत्या दूर होती है। अनिच्छापूर्वक किये गये पापका यह प्रायश्चित्त है, इससे कल्याण होता है, किंतु इच्छापूर्वक किये गये पापसे शुद्धि अनेक प्रायश्चित्तके बाद मृत्युके अनन्तर ही समझनी चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे नहीं॥ १६-१७॥

कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव वा।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत् स्वयम्॥ १८॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु॥ १९॥

दीर्घामयान्वितं विप्रं कृत्वानामयमेव तु।
दत्त्वा चान्नं स दुर्भिक्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २०॥

अथवा (ब्रह्मघातीको) स्वयं अनशन (व्रत) करना चाहिये या भृगु-पतन करे (उच्च स्थानसे गिरे) अथवा प्रज्वलित अग्नि या जलमें प्रविष्ट हो जाय। दूसरे प्रकारसे अर्थात् बुद्धिपूर्वक ब्राह्मणहत्या करनेपर ब्रह्म-हत्या दूर करनेके लिये, ब्राह्मण अथवा गौके निमित्त भलीभाँति अपने प्राणोंका परित्याग कर देना चाहिये। दीर्घ रोगसे ग्रस्त ब्राह्मणको रोगसे मुक्त करने तथा दुर्भिक्षके समय अन्न प्रदान करनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है॥ १८—२०॥

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुध्यते द्विजः।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय तु॥ २१॥

सरस्वत्यास्त्वरुणया संगमे लोकविश्रुते।
शुध्येत् त्रिषवणस्नानात् त्रिरात्रोपोषितो द्विजः॥ २२॥

अश्वमेध-यज्ञकी समाप्तिपर होनेवाले अवभृथ-स्नानसे अथवा वेदज्ञ ब्राह्मणको अपना सर्वस्व दान कर देनेसे द्विज (ब्रह्महत्याके पापसे) मुक्त हो जाता है। सरस्वती एवं अरुणा नदीके लोकप्रसिद्ध संगममें तीनों संध्याओंमें स्नान करने और तीन रात्रि उपवास करनेसे द्विज (ब्रह्महत्याजनित पापसे) शुद्ध हो जाता है॥ २१-२२॥

गत्वा रामेश्वरं पुण्यं स्नात्वा चैव महोदधौ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रं विमुच्यते॥ २३॥

कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् भक्त्या ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २४॥

यत्र देवादिदेवेन भैरवेणामितौजसा।
कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ २५॥

समभ्यर्च्य महादेवं तत्र भैरवरूपिणम्।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ २६॥

ब्रह्मचर्य आदिसे युक्त द्विज पवित्र (तीर्थ) रामेश्वर जाकर वहाँ सागरमें स्नान करके शंकरका दर्शन करके (ब्रह्महत्याके पापसे) मुक्त हो जाता है। त्रिशूलधारी भगवान् शंकरके कपालमोचन नामक तीर्थमें स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोंकी पूजा करनेसे (ब्रह्मघाती) ब्रह्महत्याके पापसे दूर हो जाता है। पूर्वकालमें वहाँ (कपालमोचन तीर्थमें) अमित तेजस्वी देवादिदेव भैरवने परमेष्ठी ब्रह्माके कपालको स्थापित किया। वहाँ स्नान करके भैरवरूपी महादेवकी भलीभाँति अर्चना करके एवं पितरोंका तर्पण करके ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्ति हो जाती है॥ २३—२६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-प्रकरणमें कपालमोचन-तीर्थका आख्यान

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण शंकरेणामितौजसा।
कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजं भुवि॥ १ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः पुण्यां कथां पापप्रणाशिनीम्।
माहात्म्यं देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः॥ २ ॥
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः।
प्रोचुः प्रणम्य लोकादिं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥ ३ ॥

स मायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः।
अविज्ञाय परं भावं स्वात्मानं प्राह धर्षिणम्॥ ४ ॥

अहं धाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः।
अनादिमत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्य विमुच्यते॥ ५ ॥

अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्तकनिवर्तकः।
न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन॥ ६ ॥
तस्यैवं मन्यमानस्य जज्ञे नारायणांशजः।
प्रोवाच प्रहसन् वाक्यं रोषताम्रविलोचनः॥ ७ ॥

किं कारणमिदं ब्रह्मन् वर्तते तव साम्प्रतम्।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतदुचितं तव॥ ८ ॥

अहं धाता हि लोकानां यज्ञो नारायणः प्रभुः।
न मामृतेऽस्य जगतो जीवनं सर्वदा क्वचित्॥ ९ ॥

अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम्॥ १० ॥
एवं विवदतोर्मोहात् परस्परजयैषिणोः।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि॥ ११ ॥

अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मानं च संस्थितम्।
प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिनः॥ १२ ॥

ऋषियोंने पूछा—अमित तेजस्वी देव शंकर रुद्रने पूर्वकालमें किस प्रकार ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न कपालको पृथ्वीपर स्थापित किया?॥ १॥

सूतजी बोले—ऋषियो! आप लोग पापको नष्ट करनेवाली इस पुण्य कथा एवं धीमान् देवाधिदेव महादेवके माहात्म्यको सुनें—॥ २॥

प्राचीन कालमें मेरुशृंगपर लोकोंके मूल कारण देव पितामहको प्रणाम कर महर्षियोंने उनसे पूछा—अव्यय अद्वितीय तत्त्व क्या है? महेश्वरकी मायासे मोहित, लोकोंको उत्पन्न करनेवाले उन ब्रह्माने (महर्षियोंके) परम भावको न जानते हुए अभिमानपूर्वक स्वयंको ही (अव्यय) तत्त्व बतलाया (और कहा—) मैं ही जगत्का मूल कारण, धाता, स्वयम्भू तथा अद्वितीय अनादि परम ब्रह्म ईश्वर हूँ। मेरी आराधना करनेसे मुक्ति हो जाती है। मैं ही सभी देवोंका प्रवर्तक तथा निवर्तक हूँ। लोकोंमें मुझसे महान् और कोई नहीं है॥ ३—६॥

(पितामह अहंभावपूर्वक) ऐसा कह ही रहे थे कि नारायणके अंशसे उत्पन्न यज्ञभगवान्ने क्रोधसे आरक्तनेत्र होकर परिहास करते हुए यह वाक्य कहा—ब्रह्मन्! सम्प्रति आपके ऐसे व्यवहारका क्या कारण है? आप अज्ञानसे युक्त हैं, आपके लिये यह उचित नहीं है। मैं लोकोंका धाता यज्ञरूप नारायण प्रभु हूँ, मेरे बिना इस संसारमें जीवन कभी भी नहीं रह सकता। मैं ही परम ज्योति हूँ, मैं ही परम गति हूँ, मेरे द्वारा प्रेरणा प्राप्तकर आपने इस भुवनमण्डलकी रचना की है॥ ७—१०॥

परस्पर विजयके अभिलाषी उन दोनोंके मोहपूर्वक इस प्रकार विवाद करते समय ही जहाँ वे दोनों देव (पितामह एवं यज्ञभगवान्) थे, वहीं चारों वेद (मूर्तिमान् होकर) आ गये। देव ब्रह्मा तथा यज्ञात्मा विष्णुको स्थित देखकर संविग्नहृदय होकर उन्होंने ब्रह्मासे यथार्थ तत्त्व कहा—॥ ११-१२॥

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात् सर्वं प्रवर्तते।
यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः॥ १३॥

(मूर्तिमान्) **ऋग्वेदने कहा**—जिसके भीतर सभी प्राणी प्रतिष्ठित हैं, जिससे सभीकी प्रवृत्ति होती है और जिसे परम तत्त्व कहा गया है, उन्हें ही महेश्वर देव समझना चाहिये॥ १३॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते।
यमाहुरीश्वरं देवं स देवः स्यात् पिनाकधृक्॥ १४॥

यजुर्वेदने कहा—जो ईश सभी यज्ञों तथा योगके द्वारा अर्चित होते हैं और जिन देवको ईश्वर कहा गया है, वे देव ही पिनाक धारण करनेवाले (शंकर) हैं॥ १४॥

सामवेद उवाच

येनेदं भ्राम्यते चक्रं यदाकाशान्तरं शिवम्।
योगिभिर्विद्यते तत्त्वं महादेवः स शंकरः॥ १५॥

सामवेदने कहा—जिसके द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डरूपी चक्र प्रवर्तित है, जो (निरतिशय अवकाशस्वरूप) आकाशके मध्य प्रतिष्ठित है, शिवस्वरूप है, योगियोंके द्वारा वेद्य है, वह परम तत्त्व ही शंकर हैं, महादेव हैं॥ १५॥

अथर्ववेद उवाच

यं प्रपश्यन्ति योगेशं यजन्तो यतयः परम्।
महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः॥ १६॥

अथर्ववेदने कहा—यति लोग प्रयत्नपूर्वक जिन परम योगेश्वर महेशका दर्शन करते हैं, वे पुरुष रुद्र ही देव भगवान् भव हैं॥ १६॥

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम्।
श्रुत्वाह प्रहसन् वाक्यं विश्वात्मापि विमोहितः॥ १७॥
कथं तत्परमं ब्रह्म सर्वसंगविवर्जितम्।
रमते भार्यया सार्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः॥ १८॥

इस प्रकार विश्वात्मा होनेपर भी वे भगवान् ब्रह्मा मोहित होनेके कारण वेदोंके द्वारा बनाये गये कल्याणकारी तत्त्वको सुननेपर भी हँसते हुए कहने लगे—जब वे परम ब्रह्म महेश सभी आसक्तियोंसे रहित हैं तो कैसे अपनी भार्याके साथ रमण करते हैं तथा अतिगर्वित अपने प्रमथगणोंके साथ सुख-सुविधाओंका भोग करते हैं?॥ १७-१८॥

इतीरितेऽथ भगवान् प्रणवात्मा सनातनः।
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा वचः प्राह पितामहम्॥ १९॥

ऐसा कहे जानेपर सनातन, अमूर्त भगवान् प्रणवने मूर्तिमान् होकर पितामहसे कहा—॥ १९॥

प्रणव उवाच

न ह्येष भगवान् पत्न्या स्वात्मनो व्यतिरिक्तया।
कदाचिद् रमते रुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः॥ २०॥
अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः।
स्वानन्दभूता कथिता देवी नागन्तुका शिवा॥ २१॥

प्रणव बोले—ये वे महेश्वर हैं, जो स्वात्माराम हैं। ये अपनी आत्मामें ही रमण करते हैं। इनकी आत्मा ही इनकी पत्नी हैं। यही वे भगवान् ईश स्वयंज्योति, सनातन हैं और देवी शिवा आत्मानन्द-स्वरूपिणी कही गयी हैं, वे आगन्तुक (देवी उन भगवान्‌से पृथक्) नहीं हैं॥ २०-२१॥

इत्येवमुक्तेऽपि तदा यज्ञमूर्तेरजस्य च।
नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैव मायया॥ २२॥
तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः।
प्रापश्यदद्भुतं दिव्यं पूरयन् गगनान्तरम्॥ २३॥
तन्मध्यसंस्थं विमलं मण्डलं तेजसोज्ज्वलम्।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः॥ २४॥

इस प्रकार कहे जानेपर भी उस समय ईश्वरकी ही मायासे (मोहित) यज्ञमूर्ति भगवान् तथा ब्रह्माका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ। इसी बीच विश्वभावन ब्रह्माने आकाशमध्यको व्याप्त करते हुए अद्भुत एवं दिव्य महाज्योतिका दर्शन किया। द्विजोत्तमो! उस (महाज्योति)-के मध्य स्थित तेजसे उज्ज्वल दिव्य निर्मल मण्डल आकाशके मध्यमें प्रकट हुआ॥ २२—२४॥

स दृष्ट्वा वदनं दिव्यं मूर्ध्नि लोकपितामहः।
तेन तन्मण्डलं घोरमालोकयदनिन्दितम्॥ २५॥

वह अनिन्दित मण्डल दिव्य था और तेजोमय होनेके कारण घोर (भीषण) था तथा मूर्धापर (सबसे ऊपर) स्थित था। उसे देखकर ब्रह्माने अपने मुखको, सबसे ऊपर विद्यमान उस मण्डलके आलोकसे आलोकित किया;॥ २५॥

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
क्षणाददृश्यत महान् पुरुषो नीललोहितः॥ २६॥

त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान्।
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शंकरं नीललोहितम्॥ २७॥

जानामि भवतः पूर्वं ललाटादेव शंकर।
प्रादुर्भावं महेशान मामेव शरणं व्रज॥ २८॥

पर उसी समय अज्ञानवश अति कुपित ब्रह्माके ही अति कोपसे उन (ब्रह्मा)-का पाँचवाँ सिर जलने लगा। उसी क्षण भगवान् नीललोहित रुद्र (महेश्वरके गणके देवविशेष) प्रकट हुए। वे रुद्रदेव त्रिशूल धारण किये हुए थे, पिङ्गलवर्णके थे तथा सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उन नीललोहित शंकर रुद्रसे भगवान् ब्रह्माने कहा—हे महेशान! आपका मेरे ही ललाटसे सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ था, यह मैं जानता हूँ। आप मेरी शरणमें आयें॥ २६—२८॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः।
प्राहिणोत् पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम्॥ २९॥
स कृत्वा सुमहद् युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः।
चकर्त तस्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम्॥ ३०॥

तदनन्तर पद्मयोनिके गर्वयुक्त वचनको सुनकर ईश्वर (नीललोहित रुद्र)-ने लोकको जलानेवाले पुरुष कालभैरवको भेजा। उस कालभैरवने ब्रह्माके साथ महान् युद्ध किया और उन ब्रह्माके पाँचवें मुखको काटडाला॥ २९-३०॥

निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना।
ममार चेशयोगेन जीवितं प्राप विश्वसृक्॥ ३१॥

अथानुपश्यद् गिरिशं मण्डलान्तरसंस्थितम्।
समासीनं महादेव्या महादेवं सनातनम्॥ ३२॥

भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं जटाजूटविराजितम्॥ ३३॥

शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम्।
त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम्॥ ३४॥

यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम्।
तमादिदेवं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह॥ ३५॥

देव शम्भुकी प्रेरणासे कालभैरवद्वारा ब्रह्माका मस्तक काट दिये जानेपर उन देव ब्रह्माकी मृत्यु हो गयी, किंतु ईश्वरके योगसे पुनः वे विश्वस्रष्टा (ब्रह्मा) जीवित हो गये। तदनन्तर (ब्रह्माने) उस मण्डलके मध्यमें स्थित सनातन महादेव (गिरिश) महेश्वरको महादेवीके साथ विराजमान देखा। वे सर्पराजका कङ्कण पहने थे, चन्द्रमाके अवयवको (द्वितीयाके चन्द्रमाको) भूषणरूपमें धारण किये थे। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा जटाजूट धारण किये हुए थे। उन्होंने व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारण किया था, दिव्य मालाओंसे समन्वित थे, हाथमें त्रिशूल धारण किये थे, कठिनतासे देखे जा सकने योग्य तथा भस्मसे सुशोभित ऐसे योगी (शंकर)-को उन्होंने देखा। योगनिष्ठ अपने हृदयके मध्य जिन ईश्वरका दर्शन करते हैं, उन ब्रह्मस्वरूप आदिदेव महादेवको (ब्रह्माने) देखा॥ ३१—३५॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंस्थिता।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल॥ ३६॥

यस्याशेषजगद् बीजं विलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते॥ ३७॥

योऽथ नाचारनिरतान् स्वभक्तानेव केवलम्।
विमोचयति लोकानां नायको दृश्यते किल॥ ३८॥

आकाशमें स्थित वे परमा देवी जिनकी शक्ति हैं, वे अनन्त ऐश्वर्यसम्पन्न योगात्मा महेश्वर मुझे दिखलायी पड़ रहे हैं। जिन्हें एक बार प्रणाम मात्र कर लेनेसे ही प्रणाम करनेवालेके सम्पूर्ण मोहको उत्पन्न करनेवाला संसारका बीज विलीन हो जाता है, वे रुद्र दिखलायी पड़ रहे हैं। वे लोकोंके नायक दिखलायी पड़ रहे हैं, जो उन लोगोंको भी मुक्त कर देते हैं जो आचारयुक्त न होनेपर भी केवल उनकी भक्ति करते हैं॥ ३६—३८॥

यस्य वेदविदः शान्ता निर्द्वन्द्वा ब्रह्मचारिणः।
विदन्ति विमलं रूपं स शम्भुर्दृश्यते किल॥ ३९॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः।
अर्चयन्ति सदा लिङ्गं विश्वेशः खलु दृश्यते॥ ४०॥

यस्याशेषजगद् बीजं विलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते॥ ४१॥

विद्यासहायो भगवान् यस्यासौ मण्डलान्तरम्।
हिरण्यगर्भपुत्रोऽसावीश्वरो दृश्यते किल॥ ४२॥

यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरी।
न मुञ्चति सदा पार्श्वं शंकरोऽसावदृश्यत॥ ४३॥

पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम्।
दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल॥ ४४॥

तत्संनिधाने सकलं नियच्छति सनातनः।
कालः किल स योगात्मा कालकालो हि दृश्यते॥ ४५॥

जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम्।
सोमः स दृश्यते देवः सोमो यस्य विभूषणम्॥ ४६॥

देव्या सह सदा साक्षाद् यस्य योगः स्वभावतः।
गीयते परमा मुक्तिः स योगी दृश्यते किल॥ ४७॥

योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखाऽनिशम्।
योगं ध्यायन्ति देव्याऽसौ स योगी दृश्यते किल॥ ४८॥

सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम्।
वरासने समासीनमवाप परमां स्मृतिम्॥ ४९॥

लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यां संस्मृतिं भगवानजः।
तोषयामास वरदं सोमं सोमविभूषणम्॥ ५०॥

ब्रह्मोवाच

नमो देवाय महते महादेव्यै नमो नमः।
नमः शिवाय शान्ताय शिवायै शान्तये नमः॥ ५१॥

वेदोंके ज्ञाता, शान्त तथा द्वन्द्वरहित ब्रह्मचारी जिनके विशुद्ध स्वरूपको जानते हैं, वे शम्भु दिखलायी पड़ रहे हैं। ब्रह्मा आदि देवता तथा ब्रह्मवादी ऋषिजन जिनके लिङ्गकी सदा आराधना करते हैं, वे विश्वेश्वर दिखलायी पड़ रहे हैं॥ ३९-४०॥

जिन्हें एक बार प्रणाममात्र कर लेनेसे ही प्रणाम करनेवालेके सम्पूर्ण मोहको उत्पन्न करनेवाला संसारका बीज विलीन हो जाता है, वे रुद्र दिखलायी पड़ रहे हैं। जिनके मण्डलके मध्य सरस्वतीके साथ ये भगवान् ब्रह्मा स्थित हैं, हिरण्यगर्भके पुत्र वे ईश्वर दिखलायी पड़ रहे हैं। सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न करनेवाली विज्ञान-तनुरूपी (विज्ञानमयी) ईश्वरी (शक्ति) जिनके पार्श्वका कभी त्याग नहीं करती, वे शंकर दिखलायी पड़ रहे हैं। जिनके चरणकमलोंमें पत्र, पुष्प अथवा जल अर्पण करनेसे (प्राणी) संसारसे पार हो जाते हैं, वे रुद्र दिखलायी पड़ रहे हैं। जिनकी संनिधिमात्रसे (अमोघशक्ति प्राप्तकर) सनातन (शाश्वतकाल) सब कुछ प्राणिमात्रको प्रदान करता है, वे कालके भी काल योगात्मा महेश्वर दृष्टिगोचर हो रहे हैं॥ ४१—४५॥

जो सम्पूर्ण लोकोंके जीवन हैं, तीनों लोकोंके भूषण हैं तथा चन्द्रमा जिनका आभूषण है, वे देव सोम (उमाके साथ महेश्वर) दिखलायी पड़ रहे हैं। देवी उमा (पार्वती)-के साथ जिनका स्वभावसे ही नित्य साक्षात् संयोग है एवं जिनके अनुग्रहसे परम मुक्तिकी प्राप्ति शास्त्रोंमें बतायी जाती है, वे योगी महेश्वर दिखलायी पड़ रहे हैं। वैराग्यकी ओर उन्मुख, योगके तत्त्वको जाननेवाले योगीजन देवीके साथ निरन्तर जिनके योगका ध्यान करते हैं, वे ही योगी (शंकर) दिखलायी पड़ रहे हैं॥ ४६—४८॥

महादेवीके साथ सनातन महादेवको श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखकर ब्रह्माको परम स्मृति प्राप्त हुई। भगवान् ब्रह्माने दिव्य माहेश्वरी स्मृतिको प्राप्तकर चन्द्रमाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले तथा वर प्रदान करनेवाले सोम (शंकर)-को स्तुतिद्वारा प्रसन्न किया॥ ४९-५०॥

ब्रह्माने कहा—महान् देव (महादेव)-को नमस्कार है। महादेवीको बार-बार नमस्कार है। शिवको, शान्तको नमस्कार है, शिवाको, शान्तिको नमस्कार है॥ ५१॥

ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विद्यायै ते नमो नमः।
नमो मूलप्रकृतये महेशाय नमो नमः॥ ५२॥

नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमो नमः।
नमस्ते कालकालाय ईश्वरायै नमो नमः॥ ५३॥

नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमो नमः।
नमो नमस्ते कामाय मायायै च नमो नमः॥ ५४॥

नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमो नमः।
नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च॥ ५५॥

योगदायै नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः।
नमः संसारनाशाय संसारोत्पत्तये नमः॥ ५६॥

नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्तये।
नमः कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः॥ ५७॥

ओंकारमूर्तये तुभ्यं तदन्तःसंस्थिताय च।
नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्त्यै नमो नमः॥ ५८॥

ओंकार ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है, विद्यारूप आपको नमस्कार है। मूलप्रकृतिको नमस्कार है, महेश्वरको बार-बार नमस्कार है। विज्ञानस्वरूप देहवाले (महेश्वर)-को नमस्कार है, चिन्तन (विचारशक्ति-चितिस्वरूप) आप (देवी)-को नमस्कार है। कालके भी काल आपको नमस्कार है, ईश्वरीको बार-बार नमस्कार है। रुद्रके लिये बार-बार नमस्कार है, रुद्राणी आपको बार-बार नमस्कार है। काम (समस्त प्रपञ्चको मोहित करनेवाले) आपको बार-बार नमस्कार है और मायाको बार-बार नमस्कार है। सभी कार्योंके नियामक (महेश्वर) और क्षोभ उत्पन्न करनेवाली (सृष्टिके लिये कूटस्थ परब्रह्ममें उत्कट इच्छा जाग्रत् करनेवाली (उमा)-को बारंबार नमस्कार है। प्रकृतिरूप आप (देवी)-को तथा नारायण (महेश्वर)-को नमस्कार है। योग प्रदान करनेवाली आपको नमस्कार है और योगियोंके गुरु (शंकर)-को नमस्कार है। संसारका विनाश (प्रलय) करनेवाले (महेश्वर)-को नमस्कार है तथा संसारकी उत्पत्ति करनेवाली (देवी)-को नमस्कार है। नित्यानन्द, विभु तथा आनन्दमूर्तिको नमस्कार है। कार्यविहीन (विकाररहित)-को नमस्कार है, विश्वप्रकृति (देवी)-को नमस्कार है। ओंकारमूर्ति तथा उसके भीतर प्रतिष्ठित रहनेवाले आपको नमस्कार है। आकाशमें स्थित व्योमशक्ति[1] (ब्रह्मशक्ति देवी)-को बार-बार नमस्कार है॥ ५२—५८॥

इति सोमाष्टकेनेशं प्रणनाम पितामहः।
पपात दण्डवद् भूमौ गृणन् वै शतरुद्रियम्॥ ५९॥

अथ देवो महादेवः प्रणतार्तिहरो हरः।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम्॥ ६०॥

इस प्रकार पितामह ब्रह्माने इस सोमाष्टक (नामक स्तुति)-से ईशको प्रणाम किया और शतरुद्रियका पाठ करते हुए उन्होंने दण्डवत् भूमिपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। तदनन्तर प्रणतजनोंके कष्टको हरनेवाले देव, हर, महादेवने दोनों हाथोंसे उन्हें (ब्रह्माको) उठाया और कहा—इस समय मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ॥ ५९-६०॥

दत्त्वासौ परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत्।
प्रोवाचाग्रे स्थितं देवं नीललोहितमीश्वरम्॥ ६१॥

एष ब्रह्मास्य जगतः सम्पूज्यः प्रथमः सुतः।
आत्मनो रक्षणीयस्ते गुरुर्ज्येष्ठः पिता तव॥ ६२॥

अनन्तर उन्हें (ब्रह्माको) परम योग और अतुल महान् ऐश्वर्य प्रदानकर महादेवने सम्मुख स्थित ईश्वर नीललोहित देवसे कहा—ये ब्रह्मा मेरे प्रथम पुत्र हैं, इस संसारके पूज्यके रूपमें प्रसिद्ध हैं। गुरु, ज्येष्ठ एवं आपके पिता हैं, आपको इनकी रक्षा करनी चाहिये॥ ६१-६२॥

१-व्योम ब्रह्मका भी नाम है।

अयं पुराणपुरुषो न हन्तव्यस्त्वयानघ।
स्वयोगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेव शरणं गतः॥ ६३॥

अयं च यज्ञो भगवान् सगर्वो भवतानघ।
शासितव्यो विरिञ्चस्य धारणीयं शिरस्त्वया॥ ६४॥

ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोकाय दर्शयन्।
चरस्व सततं भिक्षां संस्थापय सुरद्विजान्॥ ६५॥

अनघ! आपको इन पुराणपुरुषकी हत्या नहीं करनी चाहिये। ये अपने योगैश्वर्यके माहात्म्यसे मेरी ही शरणमें आये हैं। पुनः महेश्वरने नीललोहित रुद्रको सम्बोधित करते हुए नारायणके अंशसे उत्पन्न यज्ञभगवान्‌के विषयमें कहा—हे अनघ! ये भगवान् यज्ञ हैं। ब्रह्माको मोहग्रस्त देखकर सगर्व हो गये हैं, इनका शासन करें तथा ब्रह्माके (कटे हुए) सिरको धारण करें और आप संसारको यह दिखाते हुए भिक्षाचरणपूर्वक भ्रमण करें कि मैं ब्रह्महत्याके निवारणके लिये व्रत कर रहा हूँ। आप देवताओं एवं ब्राह्मणोंको (अर्थात् उनकी मर्यादाको) संस्थापित करें॥ ६३—६५॥

इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरः।
स्थानं स्वाभाविकं दिव्यं ययौ तत्परमं पदम्॥ ६६॥

ततः स भगवानीशः कपर्दी नीललोहितः।
ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम्॥ ६७॥

चर त्वं पापनाशार्थं व्रतं लोकहितावहम्।
कपालहस्तो भगवान् भिक्षां गृह्णातु सर्वतः॥ ६८॥

उक्त्वैवं प्राहिणोत् कन्यां ब्रह्महत्यामिति श्रुताम्।
दंष्ट्राकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम्॥ ६९॥

यावद् वाराणसीं दिव्यां पुरीमेष गमिष्यति।
तावत् त्वं भीषणे कालमनुगच्छ त्रिलोचनम्॥ ७०॥

ऐसा वचन कहकर भगवान् परमेश्वर अपने परम पदरूप स्वाभाविक दिव्य स्थानको चले गये। तदनन्तर जटाधारी नीललोहित उन भगवान् ईश (रुद्र)-ने ब्रह्माका मुख कालभैरवको ग्रहण कराया (तथा कहा—) पापको नष्ट करनेके लिये आप लोककल्याणकारी व्रतका पालन करें और कपाल हाथमें धारणकर आप भगवान् सर्वत्र जायँ तथा भिक्षा ग्रहण करें। ऐसा कहकर उन्होंने भयंकर दाढ़ और मुखवाली ज्वालासमूहको ही आभूषण-रूपमें धारण करनेवाली ब्रह्महत्या नामसे प्रसिद्ध कन्याको भी यह कहकर भेजा—हे भीषण आकारवाली! ये कालभैरव त्रिलोचन जबतक दिव्य वाराणसीपुरीमें पहुँचें, तबतक तुम इनके पीछे-पीछे जाओ॥ ६६—७०॥

एवमाभाष्य कालाग्निं प्राह देवो महेश्वरः।
अटस्व निखिलं लोकं भिक्षार्थी मन्नियोगतः॥ ७१॥

यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम्।
तदासौ वक्ष्यति स्पष्टमुपायं पापशोधनम्॥ ७२॥

ऐसा कहनेके बाद महेश्वरदेवने कालाग्नि (भैरव)-से कहा—मेरे निर्देशानुसार आप भिक्षा माँगते हुए सम्पूर्ण लोकमें भ्रमण करें। जब आप देवेश अनामय नारायणका दर्शन करेंगे, तब वे (श्रीनारायण) पापकी शुद्धिका स्पष्ट उपाय (आपको) बतायेंगे॥ ७१-७२॥

स देवदेवतावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः।
कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम्॥ ७३॥

आस्थाय विकृतं वेषं दीप्यमानं स्वतेजसा।
श्रीमत् पवित्रमतुलं जटाजूटविराजितम्॥ ७४॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशैः प्रमथैश्चातिगर्वितैः।
भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः॥ ७५॥

देवाधिदेवका वाक्य सुनकर कपालपाणि वे विश्वात्मा भगवान् हर (कालभैरव) तीनों लोकोंमें भ्रमण करने लगे। विकृत वेष बनाकर अपने तेजसे प्रकाशित, श्रीसम्पन्न, अत्यन्त पवित्र, जटाजूटसे सुशोभित, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, अत्यन्त गर्वित प्रमथगणोंसे आवृत, कालाग्निके समान नेत्रवाले महादेव (कालभैरव) सुशोभित होने लगे॥ ७३—७५॥

पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दं परमेष्ठिनः।
लीलाविलासबहुलो लोकानागच्छतीश्वरः॥ ७६॥

परमेष्ठीके उस दिव्य अमृतस्वरूप आनन्दका पान-कर अतिशय लीला-विलास करनेवाले ईश्वर लोगोंके पास आये॥ ७६॥

तं दृष्ट्वा कालवदनं शंकरं कालभैरवम्।
रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु॥ ७७॥

गायन्ति विविधं गीतं नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः।
सस्मितं प्रेक्ष्य वदनं चक्रुर्भ्रूभङ्गमेव च॥ ७८॥

अस्तु, उन कालात्मा महेश्वरके प्रमुख गण कालभैरव शंकरको रूप एवं लावण्यसे सम्पन्न देखकर नारी-समूह उनके पीछे चलने लगा। वे स्त्रियाँ प्रभुके सामने विविध प्रकारके गीत गाने लगीं और नृत्य करने लगीं तथा मन्द मुसकानके साथ उनके मुखको देखकर भौंहोंसे हाव-भाव प्रदर्शित करने लगीं॥ ७७-७८॥

स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक्।
जगाम विष्णोर्भवनं यत्रास्ते मधुसूदनः॥ ७९॥

निरीक्ष्य दिव्यभवनं शंकरो लोकशंकरः।
सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥ ८०॥

वे शूलधारी कालभैरव देवों तथा दानवों आदिके देशोंमें जानेके अनन्तर विष्णुके भवनमें गये, जहाँ मधुसूदन निवास करते हैं। उस दिव्य भवनको देखकर लोकोंके कल्याणकारी शंकर (कालभैरव) श्रेष्ठ भूतोंके साथ ही उसमें प्रवेश करने लगे॥ ७९-८०॥

अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम्।
न्यवारयत् त्रिशूलाङ्कं द्वारपालो महाबलः॥ ८१॥

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा महाभुजः।
विष्वक्सेन इति ख्यातो विष्णोरंशसमुद्भवः॥ ८२॥

अथैनं शंकरगणो युयुधे विष्णुसम्भवम्।
भीषणो भैरवादेशात् कालवेग इति श्रुतः॥ ८३॥

विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः।
रुद्रायाभिमुखं रौद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्॥ ८४॥

अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत्।
तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदमित्रजित्॥ ८५॥

उन (कालभैरव)-के दिव्य परम पारमेश्वर भावको न समझते हुए शंख, चक्र तथा गदा हाथोंमें लिये हुए, पीत वस्त्र धारण किये, महान् भुजावाले, विष्णुके अंशसे उत्पन्न विष्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध महाबलवान् द्वारपालने त्रिशूलधारी उन कालभैरवको रोका। तब भैरवकी आज्ञासे कालवेग इस नामसे प्रसिद्ध शंकरका भयंकर गण विष्णु-समुद्भूत (विष्वक्सेन)-से युद्ध करने लगा। उस कालवेगको जीतकर क्रोधसे लाल हुए नेत्रोंवाला (द्वारपाल) रुद्र (कालभैरव)-की ओर भयंकर सुदर्शनचक्र फेंका। तब त्रिशूलधारी शत्रुजित् त्रिपुरारिदेव महादेव (कालभैरव)-ने उस आते हुए चक्रको अवज्ञापूर्वक देखा॥ ८१—८५॥

तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम्।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥ ८६॥

स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वं परमं बलम्।
तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव॥ ८७॥

उसी समय महादेव (कालभैरव)-ने त्रिशूलके द्वारा प्रलयकालीन अग्निके तुल्य अति भीषण विष्वक्सेनके वक्षःस्थलमें प्रहारकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। त्रिशूलसे आहत होनेपर अपने महान् बलका त्यागकर उस विष्वक्सेनने अपने प्राणोंका उसी प्रकार परित्याग कर दिया, जैसे व्याधिसे आहत प्राणी मृत्युको देखकर अपने प्राणोंका परित्याग कर देता है॥ ८६-८७॥

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्धं प्रमथपुंगवैः।
विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम्॥ ८८॥

निरीक्ष्य जगतो हेतुमीश्वरं भगवान् हरिः।
शिरो ललाटात् सम्भिद्य रक्तधारामपातयत्॥ ८९॥

गृहाण भगवन् भिक्षां मदीयाममितद्युते।
न विद्यतेऽनाभ्युदिता तव त्रिपुरमर्दन॥ ९०॥

विष्णुके पुरुष (विष्वक्सेन)-को मारकर (उसके) कलेवर (मृत शरीर)-को लेकर श्रेष्ठ प्रमथगणोंके साथ महादेव (कालभैरव) भवनके अंदर प्रविष्ट हुए। जगत्के कारणरूप ईश्वर (कालभैरव)-को देखकर भगवान् हरिने अपने ललाटका भेदनकर रक्तकी धारा गिरायी और कहा—अपरिमेय तेजरूप भगवन्! आप मेरी भिक्षा ग्रहण करें। त्रिपुरमर्दन! आपके लिये कोई अप्रकट (अमङ्गलजनक भिक्षा) नहीं है॥ ८८—९०॥

न सम्पूर्णं कपालं तद् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता॥ ९१ ॥

अथाब्रवीत् कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः।
संस्तूय वैदिकैर्मन्त्रैर्बहुमानपुरःसरम्॥ ९२ ॥

किमर्थमेतद् वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम्।
प्रोवाच वृत्तमखिलं भगवान् परमेश्वरः॥ ९३ ॥

हजारों दिव्य वर्षोंतक वह (रक्तकी) धारा प्रवाहित होती रही, किंतु परमेष्ठी ब्रह्माका वह (कालभैरवके हाथमें विद्यमान) कपाल भरा नहीं। तब नारायण प्रभु हरिने वैदिक मन्त्रोंद्वारा अत्यन्त आदरपूर्वक स्तुति कर भगवान् कालरुद्रसे कहा—आपने ब्रह्माका यह सिर किस कारणसे धारण कर रखा है? तब परमेश्वर भगवान् (कालभैरव)-ने सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया॥ ९१—९३॥

समाहूय हृषीकेशो ब्रह्महत्यामथाच्युतः।
प्रार्थयामास देवेशो विमुञ्चेति त्रिशूलिनम्॥ ९४ ॥

न तत्याजाथ सा पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिः शंकरं प्राह सर्ववित्॥ ९५ ॥

व्रजस्व भगवन् दिव्यां पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
यत्राखिलजगद्दोषं क्षिप्रं नाशयतीश्वरः॥ ९६ ॥

तदनन्तर हृषीकेश देवेश भगवान् अच्युतने ब्रह्महत्याको बुलाकर प्रार्थना की—त्रिशूली (कालभैरव)-को छोड़ दो। मुरारि विष्णुद्वारा प्रार्थना करनेपर भी उसने (कालभैरवके) पार्श्वका त्याग नहीं किया। तब जगद्योनि सर्वज्ञ (विष्णु)-ने देरतक ध्यानकर शंकर (कालभैरव)-से कहा—भगवन्! आप दिव्य एवं मङ्गल करनेवाली वाराणसीपुरी जायँ, जहाँ ईश्वर सम्पूर्ण सांसारिक दोषोंको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं॥ ९४—९६॥

ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया॥ ९७ ॥

संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः॥ ९८ ॥

तमभ्यधावद् भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम्।
अथास्थायापरं रूपं नृत्यदर्शनलालसः॥ ९९ ॥

तब वे महायोगी कालभैरव अपने हाथमें (विष्णु-पार्षद विष्वक्सेनका) कलेवर लेकर वाराणसीपुरीके दर्शनकी प्रसन्नतामें नृत्य करते हुए सर्वप्रथम अति-गोपनीय सभी तीर्थों एवं देवस्थानोंमें देवताओंके हितकी कामनासे गये। कालभैरवके चारों ओर महायोगी प्रमथगण उनकी स्तुति करते हुए चल रहे थे। उन (कालभैरव)-का नृत्य देखनेकी लालसावाले भगवान् नारायण हरि दूसरा रूप धारणकर स्वयं उनके पीछे-पीछे चलने लगे॥ ९७—९९॥

निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः।
सस्मितोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुनः पुनः॥ १००॥

अथ सानुचरो रुद्रः सहरिर्धर्मवाहनः।
भेजे महादेवपुरीं वाराणसीमिति श्रुताम्॥ १०१॥

श्रेष्ठ वृषभके चिह्नसे अङ्कित शासन (ध्वजा)-वाले अनन्त योगात्मरूप (शंकर) गोविन्दको देखते हुए प्रसन्नतापूर्वक बार-बार नृत्य करने लगे। तदनन्तर अनुचरों और हरिके सहित धर्मरूपी वृषभको वाहनके रूपमें स्वीकार करनेवाले रुद्र (कालभैरव) वाराणसी इस नामसे प्रसिद्ध महादेवकी पुरीमें पहुँचे॥ १००-१०१॥

प्रविष्टमात्रे देवेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि।
हा हेत्युक्त्वा सनादं सा पातालं प्राप दुःखिता॥ १०२॥

कपर्दी देवेशके वहाँ प्रवेश करते ही वह ब्रह्महत्या तीव्र स्वरसे हाहाकार करती हुई दुःखी होकर पातालमें चली गयी॥ १०२॥

प्रविश्य परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हरः।
गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शंकरः॥ १०३॥

स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम्।
उक्त्वा सजीवमस्त्वीशो विष्णवे स घृणानिधिः॥ १०४॥

श्रेष्ठ स्थान (वाराणसी)-में प्रविष्ट होकर देव हर शंकर (कालभैरव)-ने गणोंके सामने ब्रह्माके कपालको स्थापित किया और उन्हीं करुणानिधि ईश महादेव (कालभैरव)-ने 'जीवित हो जाय' ऐसा कहकर (विष्वक्सेनका) कलेवर विष्णु (हरि भगवान्)-को दे दिया॥ १०३-१०४॥

ये स्मरन्ति ममाजस्त्रं कापालं वेषमुत्तमम्।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥ १०५॥

आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः।
तर्पयित्वा पितॄन् देवान् मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ १०६॥

अशाश्वतं जगज्ज्ञात्वा येऽस्मिन् स्थाने वसन्ति वै।
देहान्ते तत् परं ज्ञानं ददामि परमं पदम्॥ १०७॥

इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम्।
सहैव प्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत॥ १०८॥

मेरे इस कपालयुक्त उत्तम वेषका (रूपका) निरन्तर स्मरण करनेसे ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सब पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस श्रेष्ठ (वाराणसीके कपालमोचन) तीर्थमें आकर स्नान करके विधिपूर्वक पितरों तथा देवताओंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे मुक्ति मिल जाती है। संसारको अनित्य जानकर जो इस स्थानमें निवास करते हैं, उन्हें देहान्तके समयमें परम ज्ञान और परम पद प्रदान करता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् (कालभैरव) जनार्दनका आलिंगनकर प्रमथेश्वरोंके साथ ही क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये॥ १०५—१०८॥

स लब्ध्वा भगवान् कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः।
स्वं देशमगमत् तूर्णं गृहीत्वा परमं वपुः॥ १०९॥

वे भगवान् कृष्ण (हरि) त्रिशूलीसे विष्वक्सेनको प्राप्तकर[1] अपना परम रूप धारणकर शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ १०९॥

एतद् वः कथितं पुण्यं महापातकनाशनम्।
कपालमोचनं तीर्थं स्थाणोः प्रियकरं शुभम्॥ ११०॥

य इमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः।
वाचिकैर्मानसैः पापैः कायिकैश्च विमुच्यते॥ १११॥

आप लोगोंसे स्थाणु (शंकर)-को अत्यन्त प्रिय, महापातकोंको नष्ट करनेवाले, पवित्र एवं मङ्गलकारी इस कपालमोचन तीर्थके विषयमें मैंने बताया। जो ब्राह्मणोंके समीप इस अध्यायका पाठ करता है, वह कायिक, वाचिक तथा मानसिक (त्रिविध) पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ११०-१११॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें एकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३१॥

१-इसी अध्यायके ९९वें श्लोकके अनुसार श्रीहरिने दूसरा रूप धारणकर श्रीकालभैरवके साथ वाराणसीमें प्रवेश किया था, अब अपने पार्षद विष्वक्सेनके शरीरको प्राप्तकर अपने वास्तविक स्वरूपसे अपने धाम जा रहे हैं।

बत्तीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त[१]-प्रकरणमें महापातकोंके प्रायश्चित्तका विधान तथा अन्य उपपातकोंसे शुद्धिका उपाय

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरां तप्तामग्निवर्णां स्वयं पिबेत्।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते तु द्विजोत्तमः॥ १॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा।
पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात् ततः॥ २॥

जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वा नारायणं हरिम्।
ब्रह्महत्याव्रतं चाथ चरेत् तत्पापशान्तये॥ ३॥

व्यासजीने कहा— सुरापान करनेवाले द्विजोत्तमको अग्निके समान वर्णवाली प्रतप्त (अति उष्ण) सुराका स्वयं पान करना चाहिये। उससे शरीरके दग्ध होनेपर वह (पापसे) मुक्त हो जाता है। अथवा अग्निके समान रंगवाला (अति उष्ण) गोमूत्र या गोबरका रस अथवा (गौका) दुग्ध, घृत या जल पीनेपर द्विज (पापसे) मुक्त हो जाता है। उस (सुरापानजन्य) पापके शमनके लिये जलसे भींगा वस्त्र धारणकर तथा प्रयत्नपूर्वक नारायण हरिका ध्यान कर पुनः ब्रह्महत्यासम्बन्धी (प्रायश्चित्त) व्रतका पालन करना चाहिये॥ १—३॥

सुवर्णस्तेयकृद् विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति॥ ४॥

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद् हन्यात् ततः स्वयम्।
वधे तु शुद्ध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा॥ ५॥

स्कन्धेनादाय मुसलं लकुटं वाऽपि खादिरम्।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा॥ ६॥

राजा तेन च गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता।
आचक्षाणेन तत्पापमेवंकर्माऽस्मि शाधि माम्॥ ७॥

शासनाद् वा विमोक्षाद् वा स्तेनः स्तेयाद् विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्॥ ८॥

तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम्॥ ९॥

सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि वह राजाके पास जाकर अपने (पाप) कर्मको बताते हुए कहे—'आप मुझे दण्डित करें'। राजा मूसल लेकर स्वयं उसे एक बार मारे। इस प्रकार वध हो जानेपर ब्राह्मण चोरी-रूप (महापाप)-से शुद्ध हो जाता है अथवा तपस्या करनेसे वह शुद्ध होता है। मूसल अथवा खैरकी लकड़ीकी लाठी और दोनों ओर तीक्ष्ण धारवाली शक्ति या लोहेका दण्ड कंधेपर लेकर उस (पापयुक्त ब्राह्मण)-को राजाके पास केश खोले दौड़ते हुए जाना चाहिये और अपने उस (पापकर्म)-को बताते हुए कहना चाहिये—'मैंने यह कर्म किया है, आप मुझे दण्ड दें।' दण्डसे अथवा (यथाशास्त्र प्रायश्चित्तपूर्वक शरीर) परित्याग कर देनेसे सुवर्ण-चोर चोरी (-रूप पापकर्म)-से मुक्त हो जाता है। उसको दण्डित न करनेसे तो राजा चोरका पाप (स्वयं) प्राप्त कर लेता है। तपस्याद्वारा सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको दूर करनेकी इच्छा रखनेवाले द्विजको चाहिये कि वह चीर (फटे-पुराने) वस्त्र धारण करके जंगलमें जाकर ब्रह्महत्या-सम्बन्धी (प्रायश्चित्त) व्रतका पालन करे॥ ४—९॥

१-'प्रायः' का अर्थ तप है। चित्तका अर्थ निश्चय है। इसलिये दृढ़-संकल्पपूर्वक तप करना ही प्रायश्चित्तका आचरण है (याज्ञ० मिता० श्लोक २७५)। मनुस्मृति अ० ११ तथा याज्ञ० स्मृ० प्रायश्चित्त-प्रकरण आदिमें इस कूर्मपुराणके अध्यायके अनुसार प्रायः सूक्ष्म विचार करके प्रायश्चित्तका निर्णय किया गया है। अपेक्षानुसार प्रायश्चित्त-निर्णय वहींसे करना चाहिये। इस अध्यायमें प्रायश्चित्तकी दिशामात्रका संक्षेपमें निर्देश है।

स्नात्वाश्वमेधावभृथे पूतः स्यादथवा द्विजः।
प्रदद्याद् वाऽथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरण्यकम्॥ १०॥

चरेद् वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये॥ ११॥

अथवा अश्वमेधयज्ञ-सम्बन्धी अवभृथ-स्नान करनेसे द्विज पवित्र हो जाता है। या (शुद्ध होनेके लिये) ब्राह्मणोंको अपने भारके बराबर स्वर्ण-दान करना चाहिये। अथवा सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणको उस पापको दूर करनेके लिये एक वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए कृच्छ्रव्रत करना चाहिये॥ १०-११॥

गुरोर्भार्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः।
अवगूहेत् स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम्॥ १२॥

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ।
आतिष्ठेद् दक्षिणामाशामानिपातादजिह्मगः॥ १३॥

गुर्वर्थं वा हतः शुध्येच्चरेद् वा ब्रह्महा व्रतम्।
शाखां वा कण्टकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम्।
अधः शयीत नियतो मुच्यते गुरुतल्पगः॥ १४॥

कृच्छ्रं वाब्दं चरेद् विप्रश्चीरवासाः समाहितः।
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुध्यते नरः॥ १५॥

कालेऽष्टमे वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदाव्रती।
स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः॥ १६॥

अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तद् व्यपोहति पातकम्।
चान्द्रायणानि वा कुर्यात् पञ्च चत्वारि वा पुनः॥ १७॥

कामसे मोहित होकर गुरुकी भार्याके साथ गमन करनेवाले ब्राह्मणको लोहेसे बनायी गयी कृष्णवर्णकी तप्त एवं उद्दीप्त स्त्रीका आलिङ्गन करना चाहिये। अथवा स्वयं लिङ्ग एवं अण्डकोशको काटकर और अपनी अञ्जलिमें रखकर निष्कपट-भावसे दक्षिण दिशाकी ओर तबतक जाना चाहिये, जबतक शरीरपात न हो जाय। गुरुके लिये मारे जानेसे भी गुरुपत्नीगामी शुद्ध हो जाता है अथवा ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये या एक वर्षतक काँटोंसे युक्त शाखाका आलिङ्गन करते हुए गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेको नियमपूर्वक नीचे भूमिपर सोना चाहिये। इससे वह गुरुपत्नीगामी पापमुक्त हो जाता है। अथवा ब्राह्मणको चीर (कन्था) वस्त्र धारणकर समाहित होकर एक वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। या अश्वमेधयज्ञके अवभृथ-स्नान करनेसे व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। अथवा सर्वदा ब्रह्मचर्यपूर्वक व्रत धारणकर अष्टमकाल (अर्थात् चौथे दिन, सायंकाल)-में भोजन करना चाहिये। इसके पूर्व प्रयत्नपूर्वक एक ही स्थानपर एक ही आसनसे रहकर केवल जल पीते हुए तीन दिन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा करते हुए तीन वर्षोंतक भूमिपर शयन करनेसे उस (गुरुपत्नी-गमनरूप) पापसे छुटकारा मिलता है, अथवा चार या पाँच चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ १२—१७॥

पतितैः सम्प्रयुक्तानामथ वक्ष्यामि निष्कृतिम्।
पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः।
स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्॥ १८॥

तप्तकृच्छ्रं चरेद् वाथ संवत्सरमतन्द्रितः।
षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्धमर्हति॥ १९॥

अब पतितों (पापियों)-के साथ संसर्ग करनेवालोंके निस्तारका उपाय (प्रायश्चित्त) बतलाता हूँ। जिस पतितके साथ जो द्विज (एक वर्षतक) संसर्ग करता है, उसे उस पतितद्वारा किये गये पापको दूर करनेके लिये विहित व्रतका (एक वर्षतक) पालन करना चाहिये। अथवा वर्षभरतक आलस्यरहित होकर तप्तकृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये। छः महीनोंतक संसर्ग होनेपर उपर्युक्त व्रतका आधा प्रायश्चित्त करे॥ १८-१९॥

एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम्।
पुण्यतीर्थाभिगमनात् पृथिव्यां वाथ निष्कृतिः ॥ २० ॥

इन व्रतोंके द्वारा महापातकी अपने पापको दूर करते हैं। अथवा पृथ्वीके पुण्य-तीर्थोंकी यात्रा करनेसे भी निष्कृति (निस्तार) हो जाती है॥ २०॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
कृत्वा तैश्चापि संसर्गं ब्राह्मणः कामकारतः ॥ २१ ॥

कुर्यादनशनं विप्रः पुण्यतीर्थे समाहितः।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्दिनम् ॥ २२ ॥

न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभिः।
तस्मात् पुण्येषु तीर्थेषु दहेद् वापि स्वदेहकम् ॥ २३ ॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी तथा गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाले अथवा स्वेच्छापूर्वक उनके साथ संसर्ग करनेवाले ब्राह्मणको भी पुण्य-तीर्थमें समाहित होकर अनशनव्रत करना चाहिये अथवा कपर्दी भगवान् शंकरका ध्यान करते हुए जलती हुई अग्निमें प्रवेश करना चाहिये। धर्मवादी मुनियोंने (इसके अतिरिक्त) दूसरा प्रायश्चित्त नहीं बतलाया है, इसलिये पुण्य-तीर्थोंमें अपना शरीर जला देना चाहिये॥ २१—२३॥

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्नुषामपि।
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥ २४ ॥

मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम्।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ ॥ २५ ॥

चान्द्रायणं च कुर्वीत तस्य पापस्य शान्तये।
ध्यायन् देवं जगद्योनिमनादिनिधनं परम् ॥ २६ ॥

भ्रातृभार्यां समारुह्य कुर्यात् तत्पापशान्तये।
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः ॥ २७ ॥

पैतृष्वस्रेयीं गत्वा तु स्वस्रेयां मातुरेव च।
मातुलस्य सुतां वापि गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २८ ॥

सखिभार्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च।
अहोरात्रोषितो भूत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ २९ ॥

उदक्यागमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति।
चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः।
सह सांतपनेनास्य नान्यथा निष्कृतिः स्मृता ॥ ३० ॥

(जान-बूझकर) अपनी पुत्री, बहिन या पुत्रवधूके साथ गमन करनेवालेको जलती हुई प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करना चाहिये। ऐसी मर्यादा है। मौसी, मामी, फूआ तथा भांजीके साथ गमन करनेपर कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र नामक व्रतोंको करना चाहिये और इन पापोंकी शान्तिके लिये जगद्योनि अनादिनिधन परमदेवका ध्यान करते हुए चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। भाईकी पत्नीके साथ सहवास करनेपर उस पापकी शान्तिके लिये अच्छी प्रकार समाहित-मन होकर चार अथवा पाँच चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। फूआकी लड़की, मौसीकी लड़की अथवा मामाकी लड़कीके साथ गमन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। मित्रकी पत्नी तथा सालीके साथ सहवास करनेपर एक अहोरात्र उपवास करके तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। रजस्वलाके साथ गमन करनेपर विप्र तीन रातमें शुद्ध होता है और चाण्डालीके साथ गमन करनेपर तीन तप्तकृच्छ्र व्रतोंके साथ सांतपनव्रत करनेसे शुद्धि होती है। अन्य किसी प्रकारसे निष्कृति (निस्तार) नहीं कही गयी है॥ २४—३०॥

मातृगोत्रां समासाद्य समानप्रवरां तथा।
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मा समाहितः ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत्।
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ ३२ ॥

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ३३ ॥

माताके गोत्रकी अथवा समान प्रवरवाले कुलकी स्त्रीसे समागम करनेपर इन्द्रियजयी होकर एकाग्रतापूर्वक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। (समागमके अयोग्य) ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर ब्राह्मणको एक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और कन्याको दूषित करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। अमानुषी स्त्री, रजस्वला, अयोनि तथा जलमें वीर्यपात करनेपर पुरुषको कृच्छ्रसांतपनव्रत करना चाहिये॥ ३१—३३॥

बन्धकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति।
गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥ ३४॥

अजावीमैथुनं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
पतितां च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति॥ ३५॥

पुल्कसीगमने चैव कच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्।
नटीं शैलूषकीं चैव रजकीं वेणुजीविनीम्।
गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात् तथा चर्मोपजीविनीम्॥ ३६॥

व्यभिचारिणी स्त्रीके साथ गमन करनेपर ब्राह्मण तीन रातमें शुद्ध होता है। गौके साथ मैथुन करनेपर चान्द्रायणव्रतका पालन करना चाहिये। बकरी या भेड़ीके साथ मैथुन करनेवाले द्विजको प्राजापत्य-व्रत करना चाहिये। पतित स्त्रीके साथ सहवास करनेपर तीन कृच्छ्रव्रतोंसे शुद्धि होती है। पुल्कसी (शूद्रामें निषादसे उत्पन्न स्त्री)-के साथ गमन करनेपर कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करना चाहिये। नटी, नर्तकी धोबिन, बाँसके द्वारा तथा चर्मके द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाली स्त्रीके साथ मैथुन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ ३४—३६॥

ब्रह्मचारी स्त्रियं गच्छेत् कथञ्चित्काममोहितः।
सप्तागारं चरेद् भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम्॥ ३७॥

उपस्पृशेत् त्रिषवणं स्वपापं परिकीर्तयन्।
संवत्सरेण चैकेन तस्मात् पापात् प्रमुच्यते॥ ३८॥

ब्रह्महत्याव्रतं वापि षण्मासानाचरेद् यमी।
मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थितः॥ ३९॥

सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम्।
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ ४०॥

ओंकारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा।
संवत्सरं तु भुञ्जानो नक्तं भिक्षाशनः शुचिः॥ ४१॥

सावित्रीं च जपेच्चैव नित्यं क्रोधविवर्जितः।
नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात् पापाद् विमुच्यते॥ ४२॥

कदाचित् यदि कामसे मोहित होकर ब्रह्मचारी स्त्रीके साथ गमन करता है तो उसे गदहेका चर्म धारणकर सात घरोंसे भिक्षा माँगनी चाहिये। अपने पापको प्रकट करते हुए तीनों कालोंमें स्नान करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक करनेसे वह इस पापसे मुक्त हो जाता है। अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यव्रतसे च्युत संन्यासी या ब्रह्मचारी) ब्राह्मणके कथनानुसार संयमपूर्वक छः मासतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रत करनेसे (इस पापसे) मुक्त हो जाता है। यदि सात अहोरात्रतक समर्थ रहनेपर भी भिक्षाचरण तथा अग्निहोत्र न करे तथा बुद्धिपूर्वक अपने शुक्र (वीर्य)-का परित्याग करे तो इस प्रकारका प्रायश्चित्त करना चाहिये—नदी-तीरमें अथवा तीर्थमें एक वर्षतक शान्तभावसे पवित्रताके साथ प्रणव एवं महाव्याहृतियोंसे युक्त सावित्री (गायत्री)-का निरन्तर जप करे और भिक्षामात्रसे प्राप्त अन्न केवल रात्रिमें ग्रहण करे। ऐसा करनेसे उपर्युक्त दोनों पापोंसे मुक्ति मिलती है॥ ३७—४२॥

हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्।
अकामतो वै षण्मासान् दद्यात् पञ्चशतं गवाम्॥ ४३॥

अब्दं चरेत नियतो वनवासी समाहितः।
प्राजापत्यं सान्तपनं तप्तकृच्छ्रं तु वा स्वयम्॥ ४४॥

प्रमाप्याकामतो वैश्यं कुर्यात् संवत्सरद्वयम्।
गोसहस्रं सपादं च दद्यात् ब्रह्महणो व्रतम्।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा॥ ४५॥

बुद्धिपूर्वक क्षत्रियकी हत्या करनेपर ब्राह्मणको ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये। अनचाहे क्षत्रियकी हत्या हो जानेपर छः महीनेतक पाँच सौ गायोंका दान करना चाहिये। अथवा स्वयं वनमें रहते हुए एक वर्षतक एकाग्रतापूर्वक संयमित होकर प्राजापत्य, सान्तपन अथवा तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अनिच्छापूर्वक वैश्यकी हत्या करनेपर दो वर्षतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये तथा एक हजार दो सौ पचास गायोंका दान करना चाहिये अथवा कृच्छ्र या अतिकृच्छ्रव्रत एवं चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ ४३—४५॥

संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः।
गोसहस्रार्धपादं च दद्यात् तत्पापशान्तये॥ ४६॥

प्रमादवश शूद्रकी हत्या करनेपर इस पापके शमनके लिये एक वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करना चाहिये और एक हजार एक सौ पचीस गौओंका दान करना चाहिये॥ ४६॥

अष्टौ वर्षाणि षट् त्रीणि कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्।
हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं चैव यथाक्रमम्॥ ४७॥

निहत्य ब्राह्मणीं विप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतं चरेत्।
राजन्यां वर्षषट्कं तु वैश्यां संवत्सरत्रयम्।
वत्सरेण विशुध्येत शूद्रां हत्वा द्विजोत्तमः॥ ४८॥

वैश्यां हत्वा प्रमादेन किञ्चिद् दद्याद् द्विजातये।
अन्त्यजानां वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्।
पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः॥ ४९॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इनमेंसे किसी एकका वध करनेपर क्रमशः आठ, छः तथा तीन वर्षतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणीकी हत्या करनेपर ब्राह्मणको आठ वर्षतक ब्रह्महत्याके व्रतका पालन करना चाहिये। क्षत्राणीकी हत्या करनेपर छः वर्षतक और वैश्याकी हत्या होनेपर तीन वर्षतक तथा शूद्राकी हत्या होनेपर एक वर्षतक ब्रह्महत्या-सम्बन्धी व्रतका पालन करनेसे द्विजोत्तम शुद्ध हो जाता है। प्रमादवश वैश्यकी स्त्रीकी हत्या करनेपर द्विजको किञ्चित् दान करना चाहिये। अन्त्यजोंका वध होनेपर चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये अथवा भगवान् ब्रह्माने पराकव्रतके द्वारा शुद्धि बतलायी है॥ ४७—४९॥

मण्डूकं नकुलं काकं दन्दशूकं च मूषिकम्।
श्वानं हत्वा द्विजः कुर्यात् षोडशांशं व्रतं ततः॥ ५०॥

पयः पिबेत् त्रिरात्रं तु श्वानं हत्वा सुयन्त्रितः।
मार्जारं वाथ नकुलं योजनं वाध्वनो व्रजेत्।
कृच्छ्रं द्वादशरात्रं तु कुर्यादश्ववधे द्विजः॥ ५१॥

अभ्रीं कार्ष्णायिसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः।
पलालभारं षण्डं च सैसकं चैकमाषकम्॥ ५२॥

मेढक, नकुल, कौआ, दन्दशूक (हिंसक जन्तु), चूहा अथवा कुत्तेकी हत्या करनेपर द्विजको व्रतके सोलहवें अंशका पालन करना चाहिये। कुत्तेकी हत्या करनेपर सावधान होकर तीन रात्रिपर्यन्त दूधमात्र पीकर रहना चाहिये। बिल्ली अथवा नेवलेका वध हो जानेपर एक योजन (चार कोस)-तक मार्गमें (अनशनपूर्वक) चलना चाहिये। द्विजको अश्वका वध करनेपर बारह रात्रिपर्यन्त कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। द्विजोत्तमको चाहिये कि वह सर्पको मारनेपर काले लोहेकी अभ्री (तीक्ष्ण अग्रभागवाला लोहदण्ड)-की प्रतिमा दान करे। साँड़की हत्या करनेपर एक भार धानकी भूसी तथा एक मासा सीसा दान देना चाहिये॥ ५०—५२॥

घृतकुम्भं वराहं च तिलद्रोणं च तित्तिरिम्।
शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम्॥ ५३॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम्॥ ५४॥

वराहकी हत्या करनेपर घृतसे भरा घड़ा और तितिरकी हत्या करनेपर एक द्रोण तिल देना चाहिये। शुककी हत्या करनेपर दो वर्षतकके (गायका) बछड़ा, क्रौञ्चको मारनेपर तीन वर्षके (गायके) बछड़ेका दान करना चाहिये। हंस, बलाका (वक-पंक्ति), बक (बगुला), मोर, वानर, बाज एवं गिद्धका वध करनेपर ब्राह्मणके लिये गौका दान करना चाहिये॥ ५३- ५४॥

क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्।
अक्रव्यादान् वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्॥ ५५॥

मांस भक्षण करनेवाले अरण्यके पशुओं (व्याघ्र आदि)-की हत्या करनेपर पयस्विनी गौका दान करना चाहिये। मांस न खानेवाले पशुओं—हरिण, खंजरीट आदिकी हत्या करनेपर (गौकी) बछड़ीका दान करना चाहिये और ऊँटका वध करनेपर कृष्णलका (घुँघची अर्थात् एक रत्ती सुवर्णका) दान करना चाहिये। अस्थिवाले पशु-पक्षीका वध करनेपर ब्राह्मणको किञ्चित् दान करना चाहिये और बिना अस्थिवाले पशु-पक्षीका वध होनेपर प्राणायाम करनेसे शुद्धि होती है॥ ५५-५६॥

किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति॥ ५६॥
फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधाम्॥ ५७॥

अन्येषां चैव वृक्षाणां सरसानां च सर्वशः।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम्॥ ५८॥

हस्तिनां च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्।
चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः।
मतिपूर्वं वधे चास्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ५९॥

फलदार वृक्षोंके काटनेपर एक सौ ऋचाओंका जप करना चाहिये। गुल्म, वल्ली, लता तथा फूलवाले वृक्षों और अन्य सभी प्रकारके रसवाले, फल तथा पुष्प देनेवाले वृक्षोंको नष्ट करनेपर घृत-प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। हाथीका वध करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। प्रमादवश गौकी हत्या करनेपर चान्द्रायण अथवा पराकव्रत करना चाहिये और जान-बूझकर वध करनेपर इस हिंसाका कोई प्रायश्चित्त नहीं है॥ ५७—५९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त-प्रकरणमें चोरी तथा अभक्ष्य-भक्षणका प्रायश्चित्त, प्रकीर्ण पापोंका प्रायश्चित्त, समस्त पापोंकी एकत्र मुक्तिके विविध उपाय, पतिव्रताको कोई पाप नहीं लगता, पतिव्रताके माहात्म्यमें देवी सीताका आख्यान, सीताद्वारा अग्निस्तुति, ज्ञानयोगकी प्रशंसा तथा प्रायश्चित्त-प्रकरणका उपसंहार

व्यास उवाच

मनुष्याणां तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च।
वापीकूपजलानां च शुध्येच्चान्द्रायणेन तु॥ १॥
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये॥ २॥
धान्यान्नधनचौर्यं तु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति॥ ३॥
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम्॥ ४॥
तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥ ५॥

व्यासजीने कहा—मनुष्य, स्त्री, गृह, वापी, कूप तथा जलाशयोंका अपहरण करनेपर चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। दूसरेके घरोंसे अल्प सारवाली अर्थात् सामान्य वस्तुओंकी चोरी करनेपर उस पापसे अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रसान्तपनव्रत करना चाहिये। द्विजोत्तम यदि इच्छापूर्वक अपनी जातिवाले बान्धवोंके घरसे धान्य, अन्न अथवा धनकी चोरी करे तो अर्धकृच्छ्रव्रतका पालन करनेसे शुद्ध होता है। भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थों तथा यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल तथा फलोंकी चोरीकी शुद्धि पञ्चगव्य-प्राशनसे होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्कान्न, गुड़, वस्त्र, चर्म तथा मांसकी चोरी करनेपर तीन रात्रितक भोजन नहीं करना चाहिये॥ १—५॥

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणाशनम्॥ ६ ॥

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः॥ ७ ॥

मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थरकी चोरी करनेपर बारह दिनतक कण (टूटे चावल)-का भक्षण करना चाहिये। कपास, रेशम, ऊन, दो खुर तथा एक खुरवाले पशु, पक्षी, गन्ध, औषधि तथा रस्सीका हरण करनेपर तीन दिनतक जलमात्र पीकर रहना चाहिये॥ ६-७॥

नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्।
काकं चैव तथा श्वानं जग्ध्वा हस्तिनमेव च।
वराहं कुक्कुटं चाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥ ८ ॥

क्रव्यादानां च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव च।
गोगोमायुकपीनां च तदेव व्रतमाचरेत्।
उपोष्य द्वादशाहं तु कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्॥ ९ ॥

नकुलोलूकमार्जारं जग्ध्वा सांतपनं चरेत्।
श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
व्रतवच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु॥ १०॥

मनुष्यका मांस भक्षण करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। कौआ, कुत्ता, हाथी, वराह और कुक्कुटका मांस खानेपर तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है। कच्चा मांस खानेवाले जानवरों, सियारों तथा बंदरोंका मांस तथा मल-मूत्र भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये तथा बारह दिनोंतक उपवास करके कूष्माण्ड-संज्ञक मन्त्रोंसे घीकी आहुति देनी चाहिये। नेवला, उल्लू तथा बिल्लीका मांस भक्षण करनेपर सान्तपनव्रत करना चाहिये। शिकारी पशु, ऊँट और गदहेका मांस खानेपर तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है। पहले निर्दिष्ट विधानके अनुसार व्रतके समान ही संस्कार भी करना चाहिये॥ ८—१०॥

बकं चैव बलाकं च हंसं कारण्डवं तथा।
चक्रवाकं प्लवं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम्॥ ११॥

कपोतं टिट्टिभं चैव शुकं सारसमेव च।
उलूकं जालपादं च जग्ध्वाप्येतद् व्रतं चरेत्॥ १२॥

शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च।
जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव चरेद् व्रतम्॥ १३॥

कोकिलं चैव मत्स्यांश्च मण्डूकं भुजगं तथा।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति॥ १४॥

जलेचरांश्च जलजान् प्रत्तुदान् नखविष्किरान्।
रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत्॥ १५॥

शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थं च तथा कृतम्।
भुक्त्वा मासं चरेदेतत् तत्पापस्यापनुत्तये॥ १६॥

वार्ताकं भूस्तृणं शिग्रुं खुखुण्डं करकं तथा।
प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा शंखं कुम्भीकमेव च॥ १७॥

बक (बगुला), बलाक (बक-पंक्ति), हंस, कारण्डव, चक्रवाक तथा प्लव पक्षीका मांस भक्षण करनेपर बारह दिनतक भोजन (अन्न ग्रहण) नहीं करना चाहिये। कपोत, टिट्टिभ, शुक, सारस, उलूक तथा कलहंसका मांस भक्षण करनेपर भी यही व्रत (बारह दिनतक उपवास) करना चाहिये। शिशुमार, नीलकण्ठ, मछलीका मांस तथा गीदड़का मांस भक्षण करनेपर भी यही (उपर्युक्त) व्रत करना चाहिये। कोयल, मत्स्य, मेढक तथा सर्प भक्षण करनेपर एक मासतक गोमूत्रमें अधपके यवका या यवके सत्तू आदिका भक्षण करनेसे शुद्धि होती है। जलचर, जलज, प्रत्तुद अर्थात् चोंचद्वारा ठोकर मारकर आहार करनेवाले कौआ आदि, नखविष्किर अर्थात् तितिर आदि और लाल पैरवाले पक्षियोंका मांस भक्षण करनेपर एक सप्ताहतक यह (उपर्युक्त) व्रत करना चाहिये। कुत्तेका मांस, सूखा मांस तथा अपने लिये बनाया मांस खानेपर उस पापको हटानेके लिये एक महीनेतक यह (ऊपर कहा गया) व्रत करना चाहिये। बैगन, भूस्तृण, सहजन, खुखुण्ड, करक, शङ्ख और कुम्भीकका भक्षण करनेपर प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥ ११—१७॥

पलाण्डुं लशुनं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
नालिकां तण्डुलीयं च प्राजापत्येन शुध्यति॥ १८॥

अश्मान्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात् कक्कुभाण्डस्य भक्षणे॥ १९॥

अलाबुं किंशुकं चैव भुक्त्वा चैतद् व्रतं चरेत्।
उदुम्बरं च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥ २०॥

प्याज एवं लहसुन भक्षण करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। नालिका शाक और तण्डुलीयक (चौलाई)-का साग खानेपर प्राजापत्य व्रतसे शुद्धि होती है। अश्मान्तक तथा पोतका भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। कक्कुभके अंडेका भक्षण करनेपर प्राजापत्य-व्रतसे शुद्धि होती है। अलाबु (वर्तुलाकार अर्थात् गोल लौकी) तथा किंशुक (पलाश)-का भक्षण करनेपर भी यही व्रत करना चाहिये। इच्छापूर्वक उदुम्बर (गूलर)-का भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्रसे शुद्धि होती है॥ १८—२०॥

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपसंकुलम्।
भुक्त्वा चैवंविधं त्वन्नं त्रिरात्रेण विशुध्यति॥ २१॥

पीत्वा क्षीराण्यपेयानि ब्रह्मचारी समाहितः।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति॥ २२॥

अनिर्दशाहं गोक्षीरं माहिषं चाजमेव च।
संधिन्याश्च विवत्सायाः पिबन् क्षीरमिदं चरेत्॥ २३॥

एतेषां च विकाराणि पीत्वा मोहेन मानवः।
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति॥ २४॥

किसी शास्त्रीय उद्देश्यके बिना व्यर्थ ही या केवल अपने लिये कृसर (अन्न), संयाव (लपसी), खीर और मालपूआके समान पदार्थ भक्षण करनेपर तीन रात्रितक व्रत करनेसे शुद्धि होती है। पीनेके अयोग्य दूधका पान करनेपर सावधानीपूर्वक गोमूत्रमें पके यावकका आहार करनेसे एक मासमें ब्रह्मचारी शुद्ध होता है। ब्यानेके दस दिन हुए बिना अथवा गर्भिणी और बिना बच्चेवाली गौ, भैंस और बकरीका दूध पीनेपर यही व्रत करना चाहिये। इनके (दूधके) विकार अर्थात् घी-दही आदिका मोहवश भक्षण करनेपर मनुष्य सात रात्रितक गोमूत्रमें अधपके यवका अथवा यवके सत्तू आदिका भोजन करनेसे शुद्ध होता है॥ २१—२४॥

भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा।
चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणस्तु समाहितः॥ २५॥

यस्याग्नौ हूयते नित्यं न यस्याग्रं न दीयते।
चान्द्रायणं चरेत् सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः॥ २६॥

अभोज्यानां तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम्।
अन्तावसायिनां चैव तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥ २७॥

चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणं चरेत्।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च॥ २८॥

(मृत्युके अनन्तर होनेवाले) नवश्राद्ध (मृत व्यक्तिके प्रथम दिनसे लेकर दशम दिनतक किये जानेवाले श्राद्ध), जननाशौच तथा मरणाशौचमें भोजन करनेपर ब्राह्मण समाहित होकर चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्ध होता है। जो (अधिकारी) न नित्य अग्निमें हवन करता है और न अग्रासन (भोजन करनेके पूर्व ब्राह्मण तथा अतिथिको भोजन कराता है, न गोग्रास ही निकालता है) देता है, उसका अन्न भक्षण करनेपर द्विजको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो अभोज्य हैं उन सभीका तथा अन्त्यजोंका पक्वान्न ग्रहण करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है। बिना जाने चाण्डालका अन्न भक्षण करके द्विजको भलीभाँति चान्द्रायणव्रत करना चाहिये और जान-बूझकर ऐसा करनेपर एक वर्षतक कृच्छ्रव्रतका पालन करके पुनः (द्विजत्व-प्राप्तिके लिये) संस्कार करना चाहिये॥ २५—२८॥

असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्।
अभोज्यान्नं तु भुक्त्वा च प्राजापत्येन शुध्यति॥ २९॥

विण्मूत्रप्राशनं कृत्वा रेतसश्चैतदाचरेत्।
अनादिष्टेषु चैकाहं सर्वत्र तु यथार्थतः॥ ३०॥

सुराभिन्न मद्यका पान करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये और अभोज्यान्न-भक्षण करनेपर प्राजापत्यव्रतसे शुद्धि होती है। मल, मूत्र एवं वीर्यका भक्षण करनेपर भी यही (प्राजापत्य नामक) व्रत करना चाहिये। अन्य सभी न कहे गये पापोंमें यथाविधि एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ २९-३०॥

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥ ३१॥

अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥ ३२॥

क्रव्यादां पक्षिणां चैव प्राश्य मूत्रपुरीषकम्।
महासांतपनं मोहात् तथा कुर्याद् द्विजोत्तमः।
भासमण्डूककुररे विष्किरे कृच्छ्रमाचरेत्॥ ३३॥

ग्रामसूकर, गदहा, ऊँट, शृगाल, बंदर तथा कौएके मल-मूत्रका भक्षण करनेपर द्विजको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। अज्ञानसे मल-मूत्रका भक्षण करने और सुराका स्पर्श करनेपर तीनों वर्णवाले द्विजातियोंको पुनः संस्कार करना चाहिये। अज्ञानवश कच्चा मांसभक्षी पक्षियोंके मूत्र-पुरीषका भक्षण हो जानेपर द्विजोत्तमको महासांतपन नामक व्रत करना चाहिये। गृध्र,मेढक, कुरर पक्षी एवं विष्किर (नखसे बिखेरकर खानेवाले पक्षी)-का भक्षण करनेपर (अथवा इनके मूत्र-पुरीषादिका भक्षण करनेपर) कृच्छ्रव्रत करना चाहिये॥ ३१—३३॥

प्राजापत्येन शुध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद् वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम्।
शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्॥ ३४॥

सुराभाण्डोदरे वारि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्।
शुनोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति।
गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषं च रागवान्॥ ३५॥

ब्राह्मणका उच्छिष्ट भक्षण करनेपर प्राजापत्य-व्रतसे शुद्धि होती है। क्षत्रियोंका उच्छिष्ट भक्षण करनेपर तप्तकृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिये, वैश्यका उच्छिष्ट ग्रहण करनेपर अतिकृच्छ्र और शूद्रका उच्छिष्ट ग्रहण करनेपर ब्राह्मणको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। सुराके पात्रमें जल पीनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। कुत्तेका जूठा खानेपर द्विजकी शुद्धि तीन रात्रितक उपवास करनेसे होती है। कुत्तेका पीतशेष इच्छापूर्वक ग्रहण करनेवालेको तीन राततक गोमूत्रमें पके हुए यवान्नका आहारमात्र ग्रहण करना चाहिये॥ ३४-३५॥

अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद् यदा।
तदा सांतपनं प्रोक्तं व्रतं पापविशोधनम्॥ ३६॥

चाण्डालकूपभाण्डेषु यदि ज्ञानात् पिबेज्जलम्।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम्॥ ३७॥

चाण्डालेन तु संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रेण विशुध्येत पञ्चगव्येन चैव हि॥ ३८॥

महापातकिसंस्पर्शे भुंक्तेऽस्नात्वा द्विजो यदि।
बुद्धिपूर्वं तु मूढात्मा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्॥ ३९॥

स्पृष्ट्वा महापातकिनं चाण्डालं वा रजस्वलाम्।
प्रमादाद् भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति॥ ४०॥

यदि मल तथा मूत्र आदिसे दूषित जलका पान कर ले तो उस पापकी शुद्धिके लिये सांतपन नामक व्रत बतलाया गया है। चाण्डालके कूपसे तथा उसके बरतनोंमें यदि ज्ञानपूर्वक ब्राह्मण जल पी ले तो उस पापकी शुद्धिके लिये कृच्छ्रसांतपन नामक व्रत करना चाहिये। चाण्डालके द्वारा स्पर्श हुआ जल पीनेपर द्विजोत्तम तीन रात्रितक पञ्चगव्य ग्रहण करनेसे शुद्ध होता है। महापातकीका स्पर्श होनेपर बिना स्नान किये यदि द्विज जान-बूझकर मोहवश भोजन करता है तो उसे तप्तकृच्छ्र करना चाहिये। प्रमादवश महापातकी, चाण्डाल या रजस्वलाका स्पर्शकर भोजन करनेपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवाससे शुद्धि होती है॥ ३६—४०॥

स्नानार्हो यदि भुञ्जीत अहोरात्रेण शुध्यति।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः॥ ४१॥

शुष्कपर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषितम्।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा॥ ४२॥

संवत्सरान्ते कृच्छ्रं तु चरेद् विप्रः पुनः पुनः
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥ ४३॥

भगवान् ब्रह्माने कहा है कि स्नानके योग्य व्यक्ति यदि बिना स्नान किये भोजन करता है तो वह अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्ध हो जाता है, किंतु ज्ञानपूर्वक भोजन करनेपर कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। शुष्क, बासी आदि तथा गौ आदिद्वारा दूषित (उच्छिष्ट) पदार्थोंका भक्षण करनेपर एक दिनका उपवास अथवा कृच्छ्रव्रतका चतुर्थांश व्रत करना चाहिये। अज्ञानमें अभोज्य पदार्थोंके भक्षणसे होनेवाले पापकी शुद्धिके लिये संवत्सरके अन्तमें ब्राह्मणको बार-बार कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और जान-बूझकर ऐसा होनेपर इसे विशेषरूपसे करना चाहिये॥ ४१—४३॥

व्रात्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति॥ ४४॥

ब्राह्मणादिहतानां तु कृत्वा दाहादिकाः क्रियाः।
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुध्यति॥ ४५॥

तैलाभ्यक्तोऽथवा कुर्याद् यदि मूत्रपुरीषके।
अहोरात्रेण शुध्येत श्मश्रुकर्म च मैथुनम्॥ ४६॥

संस्कारहीन पुरुषोंका यज्ञ कराने और दूसरोंका[१] अन्त्येष्टिकर्म तथा अभिचार-कर्म करनेपर तीन कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। ब्राह्मण आदिके द्वारा मारे गये पुरुषोंका दाहादि कर्म करनेपर गोमूत्रमें पके यवान्नका आहार करने और प्राजापत्य-व्रत करनेसे शुद्धि होती है। तेल लगाकर और मल-मूत्रका त्याग करने, श्मश्रुकर्म करने (दाढ़ी आदि बनाने) तथा मैथुन करनेपर अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्धि होती है॥ ४४—४६॥

एकाहेन विवाहाग्निं परिहार्य द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रेण विशुध्येत त्रिरात्रात् षडहं पुनः॥ ४७॥

दशाहं द्वादशाहं वा परिहार्य प्रमादतः।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्यात् तत्पापस्यापनुत्तये॥ ४८॥

एक दिन विवाहाग्नि (गृह्याग्नि)-का त्याग करने अर्थात् उस अग्निमें हवन न करनेसे द्विजोत्तम तीन दिन (उपवास करने)-से शुद्ध होता है और तीन दिनतक नित्य हवन न करनेपर छः दिनोंके उपवाससे शुद्ध होता है। प्रमादवश दस दिन अथवा बारह दिनतक गृह्याग्निका त्याग करनेपर उस पापकी शुद्धिके लिये कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ ४७-४८॥

पतिताद् द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रमित्याह भगवान् प्रभुः॥ ४९॥

अनाशकनिवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च॥ ५०॥

भगवान् प्रभुने बताया है कि पतित व्यक्तिसे द्रव्य लेनेपर उस द्रव्यका त्याग कर देनेसे शुद्धि होती है, साथ ही कृच्छ्रसांतपनव्रत करना चाहिये। प्रायोपवेशन-व्रतसे भ्रष्ट तथा संन्यास-आश्रमसे च्युत व्यक्तिको तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायणव्रत करना चाहिये॥ ४९-५०॥

पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः।
शुध्येयुस्तद् व्रतं सम्यक् चरेयुर्धर्मवर्धनाः॥ ५१॥

पुनः जातकर्मादि संस्कारोंद्वारा संस्कृत होनेपर धर्मकी वृद्धि चाहनेवाले द्विजोंको भलीभाँति व्रतका पालन करना चाहिये॥ ५१॥

१-यद्यपि अधिकारीके अभावमें किसीका अन्त्यकर्म करना पुण्यप्रद होता है, पर यदि यही अन्त्यकर्म लोभवश अधिकारीके रहते हुए भी स्वयं किया जाय तो पापका कारण होता है, अतः इसके लिये प्रायश्चित्तका विधान है।

अनुपासितसंध्यस्तु तदहर्यापको वसेत्।
अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद् रात्रिमेव हि॥ ५२॥

अकृत्वा समिदाधानं शुचिः स्नात्वा समाहितः।
गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं कुर्याद् विशुद्धये॥ ५३॥

उपासीत न चेत् संध्यां गृहस्थोऽपि प्रमादतः।
स्नात्वा विशुध्यते सद्यः परिश्रान्तस्तु संयमात्॥ ५४॥

वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु।
स्नातकव्रतलोपं तु कृत्वा चोपवसेद् दिनम्॥ ५५॥

(प्रातः) संध्या न करनेपर उस दिन वैसे ही बिना भोजन किये संयतमन होकर रहना चाहिये और सायं-संध्या न करनेपर रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिये। (गार्हपत्याग्निमें) समिधा न डालनेपर अर्थात् नित्य-हवन (नित्यकर्म—अग्निहोत्र) न करनेपर उस पापकी शुद्धिके लिये स्नान करके पवित्रतापूर्वक समाहित होकर आठ हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी व्यक्ति यदि प्रमादसे संध्या नहीं करता है तो स्नान करके उपवास करनेसे वह शुद्ध हो जाता है और थकानके कारण संध्या न करनेवाला संयम (मन एकाग्रकर पश्चात्तापमात्र) करनेसे शुद्ध हो जाता है। वेदमें बताये गये नित्य-कर्मोंका लोप करने तथा स्नातकके व्रतका लोप करनेपर स्नातकको एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ ५२—५५॥

संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रमग्न्युत्सादी द्विजोत्तमः।
चान्द्रायणं चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुध्यति॥ ५६॥

नास्तिक्यं यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति॥ ५७॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः।
त्रिरात्रेण विशुध्येत् तु नग्नो वा प्रविशेज्जलम्॥ ५८॥

अग्निका परित्याग करनेवाले द्विजोत्तमको एक वर्षतक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और संस्कारहीन व्यक्ति चान्द्रायणव्रत करने और गोदान करनेसे शुद्ध हो जाता है। नास्तिकता करनेवाले द्विजको प्राजापत्य-व्रतका पालन करना चाहिये। देवतासे तथा गुरुसे द्रोह करनेपर तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। इच्छापूर्वक ऊँट या गदहेकी सवारी करनेपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवास करनेसे शुद्धि होती है। इसी प्रकार नग्न होकर जलमें प्रवेश करनेपर तीन राततक उपवास करना चाहिये॥ ५६—५८॥

षष्ठान्नकालतामासं संहिताजप एव च।
होमाश्च शाकला नित्यमपांक्तानां विशोधनम्॥ ५९॥

पंक्तिसे बहिष्कृत यदि ऐसे लोग हैं, जिनके लिये विशेष प्रायश्चित्तका उपदेश नहीं किया गया है, वे लोग एक मासतक नियमपूर्वक 'षष्ठान्नकालता' (तीन दिन भोजन न कर तीसरे दिन सायं केवल एक बार सात्त्विक (हविष्यान्न) भोजन करें, संहिताजप (वेदसंहिताके मन्त्रोंका पाठ) करें तथा शाकल होम (बौधायनस्मृति प्रश्न ४, अध्याय ३ के अनुसार) करें तो शुद्ध हो सकते हैं। नीला या लाल वस्त्र धारण करनेपर ब्राह्मण एक अहोरात्र उपवास करनेके अनन्तर स्नानकर पञ्चगव्यका पान करनेसे शुद्ध होता है॥ ५९-६०॥

नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि।
अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ६०॥

वेदधर्मपुराणानां चण्डालस्य तु भाषणे।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिः॥ ६१॥

चाण्डालको वेद, धर्मशास्त्रों तथा पुराणोंका उपदेश करनेपर चान्द्रायणसे शुद्धि होती है, इसके अतिरिक्त उसकी निष्कृति (निस्तार)-का कोई अन्य उपाय नहीं है॥ ६१॥

उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः क्वचित्।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात् प्राजापत्येन वा पुनः॥ ६२॥

उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः।
प्रमादाद् वै जपेत् स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम्॥ ६३॥

द्रुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः।
त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ६४॥

चण्डालपतितादींस्तु कामाद् यः संस्पृशेद् द्विजः।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये॥ ६५॥

उद्बन्धन (फाँसी) आदिद्वारा मरे व्यक्तिका कदाचित् स्पर्श होनेपर ब्राह्मण चान्द्रायण अथवा प्राजापत्यव्रत करनेसे शुद्ध होता है। प्रमादवश यदि जूठे मुँह बिना आचमन किये द्विज चाण्डाल आदिका स्पर्श करता है तो उसे स्नानकर आठ हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ब्रह्मचारीको तो समाहित होकर तीन रात उपवास करके भलीभाँति सौ बार द्रुपदा मन्त्रका जप करना चाहिये और फिर पञ्चगव्यप्राशन करनेपर उसकी शुद्धि होती है। जो उच्छिष्टमुख द्विज इच्छापूर्वक चाण्डाल तथा पतित आदिका स्पर्श करता है, उसे शुद्धिके लिये प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥ ६२—६५॥

चाण्डालसूतकशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम्।
स्पृष्ट्वा स्नायाद् विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टं पतितं तथा॥ ६६॥

चाण्डालसूतकशवैः संस्पृष्टं संस्पृशेद् यदि।
प्रमादात् तत आचम्य जपं कुर्यात् समाहितः॥ ६७॥

तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः।
आचमेत् तद्विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः॥ ६८॥

चाण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति, शव, रजस्वला स्त्री, उनसे स्पृष्ट व्यक्ति तथा पतितका स्पर्श करनेपर शुद्धिके लिये स्नान करना चाहिये। प्रमादवश चाण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति तथा शव—इनको स्पर्श किये व्यक्तिका स्पर्श होनेपर (स्नानोपरान्त) आचमन करके एकाग्र होकर (गायत्री-) जप करना चाहिये। द्विजोत्तम यदि जान-बूझकर चाण्डाल आदिद्वारा स्पर्श किये व्यक्तिका स्पर्श करे तो उसे उस पापकी शुद्धिके लिये (स्नान[1] करके) आचमन करना चाहिये—ऐसा पितामहदेवने कहा है॥ ६६—६८॥

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् संस्रवेद् गुदम्।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् घृतम्॥ ६९॥

चाण्डालान्त्यशवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद् विशुद्धये।
स्पृष्ट्वाभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्यमहोरात्रेण शुध्यति॥ ७०॥

भोजन करते समय ब्राह्मणके गुदामार्गसे कदाचित् मलस्राव हो जाय तो शौच करनेके अनन्तर स्नान करना चाहिये और उपवास करके घृतसे हवन करे। चाण्डाल एवं अन्त्यजके शवका स्पर्श करके शुद्धिके लिये कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। उबटन आदि लगानेके बाद अस्पृश्य व्यक्तिका स्पर्श होनेपर एक अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्धि होती है॥ ६९-७०॥

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात् प्राणायामत्रयं शुचिः।
पलाण्डुं लशुनं चैव घृतं प्राश्य ततः शुचिः॥ ७१॥

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पयः पिबेत्।
नाभेरूर्ध्वं तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत्॥ ७२॥

स्यादेतत् त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम्।
स्नात्वा जपेद् वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः॥ ७३॥

सुराका स्पर्श करके द्विज तीन प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है। प्याज, लहसुनका स्पर्श होनेपर घृतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। कुत्तेके काटनेपर ब्राह्मणको (कुत्तेके स्पर्शके प्रायश्चित्तके साथ) तीन दिन सायंकाल केवल दूध पीना चाहिये। नाभिके ऊपरी भागमें काटनेपर यही क्रिया (प्रायश्चित्त) दो बार करनी चाहिये। इसी प्रकार बाहुमें काटनेपर यही क्रिया तीन बार और मस्तकमें काटनेपर चार बार करनी चाहिये अथवा कुत्तेके काटनेपर द्विजोत्तमको स्नान करके गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ७१—७३॥

[1] १-यथाविधि आचमनकी योग्यता स्नानके बिना नहीं होती है।

अनिर्वर्त्य महायज्ञान् यो भुंक्ते तु द्विजोत्तमः।
अनातुरः सति धने कृच्छ्रार्धेन स शुध्यति॥ ७४॥

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद् यस्तु पर्वणि।
ऋतौ न गच्छेद् भार्यां वा सोऽपि कृच्छ्रार्धमाचरेत्॥ ७५॥

स्वस्थ रहते और धन होनेपर भी जो द्विजोत्तम प्रतिदिन विहित पाँच महायज्ञोंको बिना सम्पन्न किये भोजन करता है, वह अर्धकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है। जो अग्निहोत्री ब्राह्मण पर्वोंमें उपस्थान नहीं करता और जो ऋतुकालमें भार्याके साथ सहवास नहीं करता वह भी अर्धकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होता है॥ ७४-७५॥

विनाऽद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य च।
सचैलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति॥ ७६॥

बुद्धिपूर्वं त्वभ्युदितो जपेदन्तर्जले द्विजः।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु त्र्यहं चोपवसेद् व्रती॥ ७७॥

कोई आर्त (मल-मूत्रके वेगसे आर्त-त्रस्त) व्यक्ति यदि जलके अभावमें मल-मूत्रका त्याग अकस्मात् कर देता है या जलके मध्यमें रहता हुआ मल-मूत्रके वेगसे आर्त होनेके कारण जलके मध्य ही अकस्मात् मल-मूत्रका त्याग कर देता है तो मल-मूत्रका प्रक्षालनकर ग्राम या नगर आदिके बाहर नदी आदिमें शरीरपर धारित समस्त वस्त्रोंके साथ उसे स्नान करना चाहिये तथा गौका स्पर्श करना चाहिये, तभी शुद्धि होती है। जान-बूझकर (सूर्योदयकालतक शयन करनेवाले अथवा आलस्यवश सोये रहनेके कारण सूर्योदयकालीन अनुष्ठानको न करनेवाले) ब्राह्मणको सूर्योदयके समय जलमें प्रविष्ट होकर आठ हजार गायत्रीका जप तथा तीन दिनतक उपवास करना चाहिये॥ ७६-७७॥

अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूतं द्विजोत्तमः।
गायत्र्यष्टसहस्रं च जप्यं कुर्यान्नदीषु च॥ ७८॥

कृत्वा तु शपथं विप्रो विप्रस्य वधसंयुतम्।
मृषैव यावकान्नेन कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्॥ ७९॥

पंक्त्यां विषमदानं तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम्॥ ८०॥

इच्छापूर्वक मृत शूद्रके शवका अनुगमन करनेपर द्विजोत्तमको नदीके किनारे आठ हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ब्राह्मणके वध करनेकी झूठी शपथ करनेपर ब्राह्मणको यावकान्न (यवके सत्तू या उससे बने हुए किसी अन्य पदार्थ)-से चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। एक ही पंक्तिमें बैठे हुए ब्राह्मणोंको विषम दान करनेपर कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्धि होती है। चाण्डालकी छायाका स्पर्श होनेपर स्नान करके घृतका प्राशन करना चाहिये॥ ७८—८०॥

ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाग्निं चन्द्रमेव वा।
मानुषं चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुध्यति॥ ८१॥

कृत्वा तु मिथ्याध्ययनं चरेद् भैक्षं तु वत्सरम्।
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पञ्च संवत्सरं व्रती॥ ८२॥

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः।
स्नात्वानश्नन्नहःशेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥ ८३॥

अशुद्धिकी स्थितिमें अग्नि अथवा चन्द्रमाका दर्शनकर सूर्यका दर्शन करना चाहिये। मनुष्यकी हड्डीका स्पर्श होनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। मिथ्या (असत् विषयका अथवा दम्भपूर्ण) अध्ययन करनेपर एक वर्षतक भिक्षाव्रत ग्रहण करना चाहिये। कृतघ्नको (ब्रह्मचर्य) व्रतका पालन करते हुए पाँच वर्षतक ब्राह्मणके घरमें निवास करना चाहिये। ब्राह्मणको 'हुंकार' तथा गुरुजनोंको 'त्वंकार' (तुम) कहनेपर स्नान करके दिनभर भोजन नहीं करना चाहिये और उन्हें प्रणामके द्वारा प्रसन्न करना चाहिये॥ ८१—८३॥

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठं बद्ध्वापि वाससा।
विवादे वापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥ ८४॥

अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्॥ ८५॥

गुरोराक्रोशमनृतं कृत्वा कुर्याद् विशोधनम्।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा तत्पापस्यापनुत्तये॥ ८६॥

देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते।
उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दातव्यं च हिरण्यकम्॥ ८७॥

देवोद्याने तु यः कुर्यान्मूत्रोच्चारं सकृद् द्विजः।
छिन्द्याच्छिश्नं तु शुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं तु वा॥ ८८॥

देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः।
शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्॥ ८९॥

देवतानामृषीणां च देवानां चैव कुत्सनम्।
कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तमः॥ ९०॥

तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवान् समर्चयेत्।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत्॥ ९१॥

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ ९२॥

चान्द्रायणं चरेत् पूर्वं कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्।
प्रपन्नः शरणं देवं तस्मात् पापाद् विमुच्यते॥ ९३॥

सर्वस्वदानं विधिवत् सर्वपापविशोधनम्।
चान्द्रायणं च विधिना कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ९४॥

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविनाशनम्।
देवताभ्यर्चनं नृणामशेषाघविनाशनम्॥ ९५॥

तृणद्वारा भी (उनकी) ताड़ना करनेपर, वस्त्रद्वारा कण्ठ बाँधनेपर, विवादमें पराजित करनेपर प्रणामके द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। ब्राह्मणको धमकानेपर कृच्छ्रव्रत और पटक देनेपर अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। विप्रका रक्त बहानेपर कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करना चाहिये॥ ८४-८५॥

गुरुको गाली या शाप देनेपर या उनसे झूठ बोलनेपर उस पापकी शुद्धिके लिये (पापके तारतम्यके अनुसार) एक रात या तीन रातका उपवास रखना चाहिये। देवताओं और ऋषियोंकी ओर थूकने तथा (उनके प्रति) आक्रोश (आक्षेप) प्रकट करनेपर उल्मुक (अंगारवाली लकड़ी)-से जीभका दाह करना चाहिये और स्वर्णका दान करना चाहिये। जो द्विज देवताओंके उद्यानमें एक बार भी मल-मूत्र विसर्जित करता है तो शुद्धिके लिये मूत्रेन्द्रियका छेदन कर देना चाहिये अथवा चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो द्विजोत्तम देवमन्दिरमें मोहवश मूत्रोत्सर्ग करता है, उसे मूत्रेन्द्रियका उच्छेद करके चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। देवताओं, ऋषियों तथा देवों (देवतुल्य महापुरुषों—माता, पिता, गुरु आदि)-की निन्दा करनेपर द्विजोत्तमको भलीभाँति प्राजापत्य-व्रत करना चाहिये। इनके साथ सम्भाषण करनेपर स्नान करके देवताओंकी पूजा करनी चाहिये और उन्हें देखनेपर सूर्यका दर्शन करना चाहिये तथा विश्वेश्वरका स्मरण करना चाहिये॥ ८६—९१॥

जो सभी प्राणियोंके अधिपति विश्वेशानकी निन्दा करता है, उसके पापकी शुद्धि सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है, पर (पश्चात्तापपूर्वक) पहले चान्द्रायणव्रत करे, अनन्तर कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्रव्रतोंको श्रद्धापूर्वक करके देव (शंकर)-की शरणमें जाय। ऐसा करनेपर देव शंकरकी कृपासे ही पापसे मुक्ति हो जाती है। विधिपूर्वक अपना सर्वस्व दान करनेसे सभी पापोंकी शुद्धि हो जाती है। इसी प्रकार विधिपूर्वक चान्द्रायणव्रत करने, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्रव्रतोंको करनेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं। पुण्य क्षेत्रोंकी यात्रा सभी पापोंको दूर कर देती है। मनुष्योंके लिये देवताओंकी आराधना करना सम्पूर्ण पापोंके नाशका अचूक साधन है॥ ९२—९५॥

अमावस्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेच्छिवम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९६ ॥

कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम्।
सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९७ ॥

त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम्।
दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः॥ ९८ ॥

उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥ ९९ ॥

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान् दद्यात् सप्तोदकाञ्जलीन्।
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः॥ १०० ॥

अमावास्या तिथि आनेपर जो शिवकी भलीभाँति आराधना करता है और ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तथा कृष्णपक्षकी ही चतुर्दशीको महादेव शंकरका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन करानेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। त्रयोदशीकी रात्रिके प्रथम याममें उपहारसहित त्रिलोचन ईश शंकरका दर्शन करनेसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको पूर्वाह्नमें समाहित होकर नदीमें स्नानकर उपवास करके यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा सर्वभूतविनाशक—इनमें प्रत्येकके निमित्त तिलमिश्रित सात जलाञ्जलि प्रदान करनेवाला सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९६—१०० ॥

ब्रह्मचर्यमधःशय्यामुपवासं द्विजार्चनम्।
व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः॥ १०१ ॥

अमावस्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम्।
ब्राह्मणांस्त्रीन् समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः॥ १०२ ॥

षष्ठ्यामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहितः।
सप्तम्यामर्चयेद् भानुं मुच्यते सर्वपातकैः॥ १०३ ॥

भरण्यां च चतुर्थ्यां च शनैश्चरदिने यमम्।
पूजयेत् सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नरः॥ १०४ ॥

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते॥ १०५ ॥

(प्रायश्चित्तके प्रसंगसे उपदिष्ट) इन सभी व्रतोंमें शान्त और संयतमन होकर ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, उपवास तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। अमावास्याको पितामह ब्रह्माको उद्दिष्ट करके तीन ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे सभी पातकोंसे मुक्ति हो जाती है। शुक्लपक्षकी षष्ठीको समाहित होकर उपवास करके सप्तमीको सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये, इससे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। शनिवारको भरणी नक्षत्र और चतुर्थी तिथि होनेपर (ऐसे योगमें) जो मनुष्य यमराजका पूजन करता है, वह सात जन्मोंमें किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है। शुक्लपक्षकी एकादशीको निराहार रहकर द्वादशीको जनार्दनकी पूजा करनेसे महापापोंसे मुक्ति मिल जाती है॥ १०१—१०५ ॥

तपो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम्।
ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम्॥ १०६ ॥

यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः।
नियमेन त्यजेत् प्राणान् स मुच्येत् सर्वपातकैः॥ १०७ ॥

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण आदि समयोंमें जप, तप, तीर्थ-सेवा और देवता तथा ब्राह्मणोंका पूजन महापातकोंसे शुद्ध करनेवाला होता है। सभी पापोंसे युक्त होनेपर भी जो मनुष्य नियमपूर्वक पुण्य तीर्थोंमें प्राणोंका त्याग करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १०६-१०७ ॥

ब्रह्मघ्नं वा कृतघ्नं वा महापातकदूषितम्।
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्॥ १०८ ॥

एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः।
सर्वपापसमुद्भूतौ नात्र कार्या विचारणा॥ १०९ ॥

मृत पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करनेवाली नारी ब्रह्मघाती, कृतघ्न अथवा महापातकोंसे दूषित भी पतिका उद्धार कर देती है। विद्वानोंने स्त्रीके लिये सभी प्रकारके पापोंका यही (पातिव्रतधर्म-पालन ही) श्रेष्ठ प्रायश्चित्त बतलाया है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये॥ १०८-१०९ ॥

पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुका।
न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च॥ ११०॥

जो नारी पतिव्रता है और पतिकी सेवा-शुश्रूषामें अनुरक्त है, उसके लिये न तो इस लोकमें कोई पाप है और न परलोकमें॥ ११०॥

पतिव्रता धर्मरता रुद्राण्येव न संशयः।
नास्याः पराभवं कर्तुं शक्नोतीह जनः क्वचित्॥ १११॥

यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता।
पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥ ११२॥

रामस्य भार्यां विमलां रावणो राक्षसेश्वरः।
सीतां विशालनयनां चकमे कालचोदितः॥ ११३॥

गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने।
समाहर्तुं मतिं चक्रे तापसः किल कामिनीम्॥ ११४॥

विज्ञाय सा च तद्भावं स्मृत्वा दाशरथिं पतिम्।
जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता॥ ११५॥

(पातिव्रत) धर्मपरायण पतिव्रता (स्त्री) रुद्राणी ही होती है, इसमें संदेह नहीं। इस संसारमें कोई भी मनुष्य इसे कभी भी पराजित करनेमें समर्थ नहीं है। उदाहरणके लिये दशरथके पुत्र रामकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध सुन्दर पत्नी देवी सीताने राक्षसेश्वर (रावण)-को पराजित कर दिया था। कालसे प्रेरित राक्षसराज रावणने रामकी सुन्दर तथा विशाल नेत्रोंवाली भार्या सीताको प्राप्त करनेकी इच्छा की। उसने मायासे तपस्वीका वेष धारणकर जनशून्य वनमें विचरण (निवास) करती हुई कामिनी (सीता)-का अपहरण करनेका विचार किया। तब पतिव्रता भगवती सीताने रावणके दुष्ट भावको समझकर अपने पति दशरथ-पुत्र रामका स्मरण किया और पवित्र मुसकानवाली उन सीतादेवीने आवसथ्य अग्निकी शरण ग्रहण की॥ १११—११५॥

उपतस्थे महायोगं सर्वदोषविनाशनम्।
कृताञ्जली रामपत्नी साक्षात् पतिमिवाच्युतम्॥ ११६॥

नमस्यामि महायोगं कृतान्तं गहनं परम्।
दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम्॥ ११७॥

नमस्ये पावकं देवं साक्षिणं विश्वतोमुखम्।
आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम्॥ ११८॥

प्रपद्ये शरणं वह्निं ब्रह्मण्यं ब्रह्मरूपिणम्।
भूतेशं कृत्तिवसनं शरण्यं परमं पदम्॥ ११९॥

ॐ प्रपद्ये जगन्मूर्तिं प्रभवं सर्वतेजसाम्।
महायोगेश्वरं वह्निमादित्यं परमेष्ठिनम्॥ १२०॥

रामकी पत्नी (सीतादेवी) हाथ जोड़कर साक्षात् पतिके समान सभी दोषोंको नष्ट करनेवाले महायोगरूप अच्युत (अग्नि)-की शरणमें गयीं (और उनकी स्तुति करने लगीं—) महायोगस्वरूप, परम गहन (रहस्यस्वरूप), कृतान्त, दहन करनेवाले, सभी प्राणियोंके नियामक कालरूपी अग्निको मैं नमस्कार करती हूँ। मैं सभी ओर मुखवाले, सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित, दीप्त शरीरवाले, आत्मरूप तथा साक्षीदेव पावक (अग्नि)-को नमस्कार करती हूँ। मैं ब्राह्मणोंके उपकारक, ब्रह्मरूपी, कृत्तिवासा,[1] शरणागतवत्सल, परमपदरूप भूतेश वह्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। मैं जगन्मूर्ति, सभी तेजोंके उद्भव-स्थान, महायोगेश्वर, परमेष्ठी, आदित्य और ओंकाररूप वह्निदेवकी शरण ग्रहण करती हूँ॥ ११६—१२०॥

प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम्।
कालाग्निं योगिनामीशं भोगमोक्षफलप्रदम्॥ १२१॥

प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भुर्भुवःस्वःस्वरूपिणम्।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम्॥ १२२॥

मैं महाग्रास, त्रिशूली, भोग एवं मोक्षरूप फलोंके प्रदाता, योगियोंके ईश और रुद्रस्वरूप कालाग्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। मैं भूर्भुवः तथा स्वःस्वरूप, हिरण्मयगृहमें सुगुप्त, विरूपाक्ष तथा अमित तेजस्वी आप महान्‌की शरण ग्रहण करती हूँ॥ १२१-१२२॥

१-'कृत्ति' मृग आदिके चर्मको कहते हैं। अग्नि रुद्रके अंश हैं और रुद्र कृत्तिवासा हैं, इसलिये अग्निको भी कृत्तिवासा कहते हैं।

वैश्वानरं प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम्।
हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम्॥ १२३॥

प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः स्वयम्।
भर्गमग्निपरं ज्योती रक्ष मां हव्यवाहन॥ १२४॥

इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा॥ १२५॥

अथावसथ्याद् भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः।
आविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसा प्रवहन्निव॥ १२६॥

सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेप्सया।
सीतामादाय धर्मिष्ठां पावकोऽन्तरधीयत॥ १२७॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम्॥ १२८॥

कृत्वाथ रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः।
समादायाभवत् सीतां शङ्काकुलितमानसः॥ १२९॥

सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुनः।
विवेश पावकं दीप्तं ददाह ज्वलनोऽपि ताम्॥ १३०॥
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुग्रदीधितिः।
रामायादर्शयत् सीतां पावकोऽभूत् सुरप्रियः॥ १३१॥

प्रगृह्य भर्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा।
चकार प्रणतिं भूमौ रामाय जनकात्मजा॥ १३२॥
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः।
ननाम वह्निं शिरसा तोषयामास राघवः॥ १३३॥

उवाच वह्नेर्भगवान् किमेषा वरवर्णिनी।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता॥ १३४॥

तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः।
यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव संनिधौ॥ १३५॥

सभी प्राणियोंमें अवस्थित वैश्वानरकी मैं शरण ग्रहण करती हूँ। मैं हव्य तथा कव्यको वहन करनेवाले ईश्वर वह्निदेवकी शरणमें हूँ। मैं उस पर-तत्त्व, वरणीय, साक्षात् सविता और तेजोरूप परम ज्योति अग्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। हव्यवाहन! आप मेरी रक्षा करें॥ १२३-१२४॥

इस वह्न्यष्टकका जप करके यशस्विनी उन्मीलित नेत्रोंवाली रामकी पत्नी सीता मनसे रामका ध्यान करती हुई स्थित हो गयीं॥ १२५॥

स्तुति करनेके अनन्तर उस आवसथ्य अग्निसे अत्यन्त उद्दीप्त स्वरूपवाले (दुष्ट भाववाले रावणपर क्रुद्ध होनेके कारण) तेजसे जलते हुएके समान भगवान् महेश्वर हव्यवाह प्रकट हो गये। रावणके वधकी इच्छासे मायामयी सीताको उत्पन्नकर वे पावक (अग्निदेव) धर्ममयी सीताको लेकर अन्तर्हित हो गये। धर्ममयी सीता-जैसी ही उस मायामयी सीताको देखकर राक्षसराज रावण उसे ही लेकर सागरके मध्यमें स्थित लंकाको चला गया। रावणका वध करके (भगवती) सीताको प्राप्तकर लक्ष्मणसहित रामका मन शंकायुक्त हो गया। जनसामान्यको विश्वास दिलानेके लिये वह मायासे निर्मित सीता उद्दीप्त अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं और अग्निने उन्हें अपनेमें मिला लिया॥ १२६—१३०॥

मायामयी सीताको अपनेमें लीन कर लेनेके पश्चात् उग्र किरणोंवाले भगवान् पावक (अग्नि)-ने रामको (वास्तविक) सीताका दर्शन कराया। इससे 'पावक' देवताओंके प्रिय बन गये। सुन्दर मध्य-भागवाली उन जनककी पुत्रीने अपने दोनों हाथोंसे अपने स्वामी रामके दोनों चरणोंको पकड़कर भूमिपर प्रणाम किया॥ १३१-१३२॥

(सीताको) देखकर आश्चर्यचकित नेत्रोंवाले रघुवंशी रामने प्रसन्नमन हो सिरसे प्रणामकर अग्निको संतुष्ट किया। भगवान् (राम)-ने वह्निसे कहा—मेरे समीपमें आयी यह दिव्यगुणोंवाली सीता किस प्रकार पहले आपद्वारा अपनेमें लीन की जाती हुई देखी गयी। लोकोंको अपनेमें पचा लेनेवाले तथा हव्यको वहन करनेवाले अग्निने उन दशरथपुत्र रामसे सभी लोगोंकी संनिधिमें ही वह सब बताया जो पूर्वमें घटित हुआ था॥ १३३—१३५॥

इयं सा मिथिलेशेन पार्वतीं रुद्रवल्लभाम्।
आराध्य लब्धा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा॥ १३६॥

भर्तुः शुश्रूषणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता।
भवानीपार्श्वमानीता मया रावणकामिता॥ १३७॥

या नीता राक्षसेशेन सीता भगवताहृता।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधाय सा॥ १३८॥

तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः।
मयोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः॥ १३९॥

गृहाण विमलामेनां जानकीं वचनान्मम।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम्॥ १४०॥

मिथिलानरेश जनकने तपद्वारा रुद्रप्रिया पार्वतीकी आराधनाकर देवीकी अत्यन्त प्रिय जिन सीताको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया था, उन पतिसेवापरायणा, सुन्दर शीलवाली पतिव्रताको रावण चाह रहा है, जब मैंने यह जाना तब उन्हें (भगवती सीताको) मैं पार्वतीके पास ले आया और राक्षसराज रावणद्वारा ले जायी गयी जिन सीताको आपने प्राप्त किया उन्हें मैंने रावणके वधके लिये मायासे निर्मित किया था, उन्हींके लिये आपने लोकोंका विनाश करनेवाले दुष्ट राक्षसराज रावणको मारा तथा मैंने उन्हीं मायामयी सीताको उपसंहृत (अपनेमें लीन)-कर लिया है। मेरे कहनेसे आप इन विशुद्ध जानकीको ग्रहण करें और अपने-आपको प्रभव, अव्यय, नारायणदेवके रूपमें देखें॥ १३६—१४०॥

इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत॥ १४१॥

एतत् पतिव्रतानां वै माहात्म्यं कथितं मया।
स्त्रीणां सर्वाघशमनं प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्॥ १४२॥

अशेषपापयुक्तस्तु पुरुषोऽपि सुसंयतः।
स्वदेहं पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्बिषात्॥ १४३॥

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा पुण्येषु वा द्विजः।
मुच्यते पातकैः सर्वैः समस्तैरपि पूरुषः॥ १४४॥

ऐसा कहकर सभी ओर शिखा (ज्वाला) तथा सभी ओर मुखवाले भगवान् प्रचण्ड (अमित तेजोरूप) अग्निदेव राघव (राम) तथा अन्य लोगोंद्वारा सम्मानित होकर अन्तर्धान हो गये। यह मैंने आप लोगोंको पतिव्रताओंका माहात्म्य बताया। इसे स्त्रियोंके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला प्रायश्चित्त कहा गया है। सम्पूर्ण पापोंसे युक्त पुरुष भी भलीभाँति संयत होकर पुण्य-तीर्थोंमें अपना शरीर त्याग करके पापसे मुक्त हो जाता है। अथवा पृथ्वीके सभी पुण्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे द्विज पुरुष समस्त सञ्चित पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १४१—१४४॥

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकं कथितो मया।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगं च शाश्वतम्॥ १४५॥

योऽनेन विधिना युक्तं ज्ञानयोगं समाचरेत्।
स पश्यति महादेवं नान्यः कल्पशतैरपि॥ १४६॥

स्थापयेद् यः परं धर्मं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम्।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥ १४७॥

यः संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः॥ १४८॥

तस्मात् सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै॥ १४९॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार आप लोगोंसे मैंने इस मानवधर्मका और महेश्वरकी आराधनाके लिये सनातन ज्ञानयोगका वर्णन किया। जो इस विधिसे युक्त होकर ज्ञानयोगका पालन करता है, वह महादेवका दर्शन करता है। दूसरा व्यक्ति सैकड़ों कल्पोंमें भी उनका दर्शन नहीं कर सकता। जो इस परम धर्म और परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञानकी स्थापना (अधिकारी लोगोंमें प्रतिष्ठा) करता है, संसारमें उससे बढ़कर और कोई नहीं है, उसे श्रेष्ठ योगी माना गया है। इसकी स्थापना करनेमें समर्थ होनेपर भी जो व्यक्ति मोहवश धर्म एवं ज्ञानकी स्थापना नहीं करता, वह योगसम्पन्न मुनि होनेपर भी भगवान्‌का अत्यन्त प्रिय नहीं होता। इसलिये सदा ही विशेष-रूपसे धर्मयुक्त शान्त और श्रद्धासम्पन्न ब्राह्मणोंको इसका उपदेश करना चाहिये॥ १४५—१४९॥

यः पठेद् भवतां नित्यं संवादं मम चैव हि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमां गतिम्॥ १५०॥

जो मेरे एवं आपके बीच हुए इस संवादको नित्य पढ़ेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करेगा॥ १५०॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानां च संनिधौ।
पठेत नित्यं सुमनाः श्रोतव्यं च द्विजातिभिः॥ १५१॥

योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद् ब्राह्मणान् शुचीन्।
स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम्॥ १५२॥

श्राद्धमें अथवा देवकार्य—पूजा आदिमें और ब्राह्मणोंके सम्मुख प्रसन्न-मनसे नित्य इसका पाठ करना चाहिये तथा द्विजातियोंको इसे सुनना चाहिये। जो योगात्मा इसके अर्थका विचारकर पवित्र ब्राह्मणोंको इसे सुनाता है, वह दोषरूपी कञ्चुक (आवरण)-का परित्याग कर भगवान् महेश्वरको प्राप्त करता है॥ १५१-१५२॥

एतावदुक्त्वा भगवान् व्यासः सत्यवतीसुतः।
समाश्वास्य मुनीन् सूतं जगाम च यथागतम्॥ १५३॥

इतना कहनेके बाद सत्यवतीके पुत्र भगवान् व्यास मुनियों तथा सूतजीको आश्वासन प्रदानकर जैसे आये थे वैसे ही चले गये[1]॥ १५३॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें प्रयाग, गया, एकाम्र तथा पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन, सप्तसारस्वत-तीर्थके वर्णनमें शिवभक्त मङ्कणक मुनिका आख्यान

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन् विश्रुतानि महान्ति च।
तानि त्वं कथयास्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम्॥ १॥

ऋषियोंने कहा—रोमहर्षण! अब आप हमें इस संसारमें जो महान् तथा प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उन्हें बतलायें॥ १॥

रोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं कथयिष्येऽहं तीर्थानि विविधानि च।
कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ २॥
यत्र स्नानं जपो होमः श्राद्धदानादिकं कृतम्।
एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ ३॥

रोमहर्षण बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! आप लोग सुनें, मैं पुराणोंमें ब्रह्मवादी मुनियोंद्वारा बताये गये विविध तीर्थोंको बताऊँगा, जिनमें एक बार भी किया गया स्नान, जप, होम, श्राद्ध तथा दान आदि कर्म सात कुलोंको पवित्र कर देता है॥ २-३॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रयागं प्रथितं तीर्थं तस्य माहात्म्यमीरितम्॥ ४॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणां देववन्दितम्।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम्॥ ५॥

परमेष्ठी ब्रह्माका पाँच योजनमें फैला हुआ प्रयाग नामक प्रसिद्ध तीर्थ है, उसका माहात्म्य बतलाया जा चुका है। दूसरा कुरुओंका श्रेष्ठ तीर्थ (कुरुक्षेत्र) है, जो देवताओंद्वारा वन्दित, ऋषियोंके आश्रमोंसे परिपूर्ण और सभी पापोंकी शुद्धि करनेवाला है॥ ४-५॥

---

[1] (क)-इस अध्यायमें आये प्रायः सभी पारिभाषिक शब्दोंका अर्थ इस उपरिविभागके पिछले अध्याय १६वें एवं १७वेंमें किया गया है।

(ख)-इस अध्यायमें निर्दिष्ट चान्द्रायण, सांतपन, प्राजापत्य, कृच्छ्र आदि व्रतोंका स्वरूप यहाँ विस्तारके भयसे नहीं लिखा जा रहा है। यह याज्ञवल्क्यस्मृति, प्रायश्चित्ताध्यायके अन्तमें तथा अन्य स्मृतियों एवं निबन्धग्रन्थोंमें द्रष्टव्य है।

तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम्॥ ६ ॥

वहाँ स्नान करके विशुद्धात्मा व्यक्ति दम्भ और मात्सर्यसे रहित होकर जो कुछ भी दान करता है, उससे वह दोनों (माता-पिताके) कुलोंको पवित्र करता है॥ ६॥

गयातीर्थं परं गुह्यं पितॄणां चातिवल्लभम्।
कृत्वा पिण्डप्रदानं तु न भूयो जायते नरः॥ ७ ॥

सकृद् गयाभिगमनं कृत्वा पिण्डं ददाति यः।
तारिताः पितरस्तेन यास्यन्ति परमां गतिम्॥ ८ ॥

तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना।
शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितॄन् प्रसादयेत्॥ ९ ॥

गयाऽभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति।
शोचन्ति पितरस्तं वै वृथा तस्य परिश्रमः॥ १० ॥

गया नामक परम गुह्य तीर्थ पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पिण्डदान करके मनुष्यका पुनः जन्म नहीं होता। जो एक बार भी गया जाकर पिण्डदान करता है, उसके द्वारा तारे गये पितर (नरक आदि कष्टप्रद लोकोंसे मुक्त होकर) परम गतिको प्राप्त करते हैं। वहाँ (गयामें) संसारके कल्याणकी कामनासे परमात्मा रुद्रने शिलातलपर चरण (-का चिह्न) स्थापित किया है। वहाँपर पितरोंको (पिण्डदान आदिद्वारा) प्रसन्न करना चाहिये। गयाकी यात्रा करनेमें समर्थ होनेपर भी जो वहाँ नहीं जाता, उसके सम्बन्धमें पितर शोक करते हैं, उसका (अन्य सभी) परिश्रम व्यर्थ ही होता है॥ ७—१०॥

गायन्ति पितरो गाथाः कीर्तयन्ति महर्षयः।
गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान् संतारयिष्यति॥ ११ ॥

यदि स्यात् पातकोपेतः स्वधर्मरतिवर्जितः।
गयां यास्यति वंश्यो यः सोऽस्मान् संतारयिष्यति॥ १२ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः।
तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥ १३ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः।
प्रदद्याद् विधिवत् पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः॥ १४ ॥

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याप्नुयात् परम्॥ १५ ॥

पितर इस गाथाका गान करते हैं और महर्षि इसका कीर्तन करते हैं कि जो कोई भी गया जायगा, वही हमें तारेगा अर्थात् असद्गतिसे मुक्त करेगा। मेरे वंशमें उत्पन्न व्यक्ति किसी कारण भले ही पापयुक्त हो, स्वधर्ममें निष्ठा न रखता हो, तब भी यदि गया-तीर्थकी यात्रा करेगा तो वह हम लोगोंका तारक होगा। शीलवान् तथा गुणवान् बहुतसे पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये; क्योंकि उन सभीमेंसे कोई एक तो गया जायगा। इसलिये सभी प्रयत्नोंके द्वारा विशेषरूपसे ब्राह्मणको तो गया जाकर समाहित-मनसे विधिवत् पिण्डदान करना चाहिये। वे मनुष्य धन्य हैं जो गयामें पिण्डदान करते हैं। वे दोनों (माता-पिताके) कुलकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर स्वयं भी परमगति प्राप्त करते हैं॥ ११—१५॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम्।
प्रभासमिति विख्यातं यत्रास्ते भगवान् भवः॥ १६ ॥

तत्र स्नानं तपः श्राद्धं ब्राह्मणानां च पूजनम्।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्रह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम्॥ १७ ॥

तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम्।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलं लभेत्॥ १८ ॥

सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्दिनम्।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु गाणपत्यं लभेद् ध्रुवम्॥ १९ ॥

अन्य प्रभास नामक प्रसिद्ध श्रेष्ठ तीर्थ है, जिसे सिद्धोंका निवास-स्थान बतलाया गया है। वहाँ भगवान् भव (शंकर) स्थित हैं। वहाँ स्नान, तप, श्राद्ध तथा ब्राह्मणोंका पूजन करनेसे ब्रह्माके अक्षय्य और उत्तम लोककी प्राप्ति होती है। त्रैयम्बक नामक तीर्थ सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत है। वहाँ रुद्रकी आराधना करनेसे ज्योतिष्टोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ कपर्दी तथा सुवर्णाक्ष महादेवकी भलीभाँति आराधना करने तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे निश्चय ही गाणपत्य-पदकी प्राप्ति होती है॥ १६—१९॥

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः।
सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रसालोक्यकारणम्॥ २०॥

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम्।
तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयं नाम विश्रुतम्॥ २१॥

षण्मासान् नियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमं पदम्॥ २२॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशे सुशोभनम्।
एकाम्रं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम्॥ २३॥

दत्त्वात्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम्।
सार्वभौमो भवेद् राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात्॥ २४॥

महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम्।
ग्रहणे समुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः॥ २५॥
अन्या च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता।
तस्यां स्नात्वा नरो विप्रा ब्रह्मलोके महीयते॥ २६॥
तीर्थं नारायणस्यान्यन्नाम्ना तु पुरुषोत्तमम्।
तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः॥ २७॥
पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ २८॥
तीर्थानां परमं तीर्थं गोकर्णं नाम विश्रुतम्।
सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः॥ २९॥
दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णेश्वरमुत्तमम्।
ईप्सिताँल्लभते कामान् रुद्रस्य दयितो भवेत्॥ ३०॥
उत्तरं चापि गोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिनः।
महादेवस्यार्चयित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३१॥
तत्र देवो महादेवः स्थाणुरित्यभिविश्रुतः।
तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते तत्क्षणान्नरः॥ ३२॥

अन्यत् कुब्जाम्रमतुलं स्थानं विष्णोर्महात्मनः।
सम्पूज्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते॥ ३३॥

यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः॥ ३४॥

परमेष्ठी रुद्रका सोमेश्वर नामक श्रेष्ठ तीर्थ सभी प्रकारकी व्याधियोंका हरण करनेवाला, पवित्र तथा रुद्रलोकको प्राप्ति करानेका साधन है॥ २०॥

विजय नामका एक सुन्दर तीर्थ है जो तीर्थोंमें श्रेष्ठ है। वहाँ महेश्वरका विजय नामक प्रसिद्ध लिङ्ग है। वहाँपर छः महीनेतक संयत आहार करते हुए ब्रह्मचर्य-व्रत धारणकर, एकाग्र-मनसे उपवास कर श्रेष्ठ ब्राह्मण परम पद प्राप्त करते हैं। पूर्व दिशामें अत्यन्त सुन्दर एक दूसरा एकाम्र नामक श्रेष्ठ तीर्थ है जो देवाधिदेव (शंकर)-के गाणपत्यपदरूपी फलको प्रदान करनेवाला है। वहाँ शिवभक्तोंको थोड़ी-सी भी स्थिर तथा सुन्दर भूमि दान करनेसे (दाता) चक्रवर्ती सम्राट् होता है और मोक्षकी इच्छा रखनेवाला मोक्ष प्राप्त करता है। वहाँ महानदीका जल पवित्र और सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है, ग्रहणके समय उसका स्पर्श (स्नान आदि) करनेसे सभी पातकोंसे मुक्ति हो जाती है॥ २१—२५॥

विप्रो! दूसरी विरजा नामकी एक नदी है जो तीनों लोकोंमें विख्यात है, उसमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। नारायणका पुरुषोत्तम नामक एक दूसरा तीर्थ है, वहाँ परम पुरुष श्रीमान् नारायण निवास करते हैं। वहाँ स्नान करके श्रेष्ठ विष्णुकी अर्चना और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे द्विजोत्तम विष्णुलोक प्राप्त करता है। सभी पापोंको हरनेवाला तीर्थोंमें श्रेष्ठ गोकर्ण नामका एक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ परमेष्ठी शम्भुका निवास है। वहाँ देव (शंकर)-के गोकर्णेश्वर नामक उत्तम लिङ्गका दर्शनकर मनुष्य अभीप्सित कामनाओंको प्राप्त करता है और रुद्रका प्रिय होता है। उत्तर गोकर्णमें भी त्रिशूलधारी शंकर महादेवका लिङ्ग है। उसकी अर्चनासे शिव-सायुज्यकी प्राप्ति होती है॥ २६—३१॥

देवाधिदेव महादेव वहाँ 'स्थाणु' इस नामसे विख्यात हैं। उनका दर्शनकर मनुष्य तत्क्षण ही सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। महात्मा विष्णुका एक दूसरा कुब्जाम्र नामक अतुलनीय स्थान है, वहाँ विष्णु (-स्वरूप) पुरुषका पूजन करनेसे व्यक्ति (भगवान्‌के धाम) श्वेतद्वीपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यहाँ त्रिपुरारि रुद्रने ही दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेके अनन्तर नारायणदेवको प्रतिष्ठित किया है॥ ३२—३४॥

समन्ताद् योजनं क्षेत्रं सिद्धर्षिगणवन्दितम्।
पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः॥ ३५॥

अन्यत् कोकामुखं विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः।
मृतोऽत्र पातकैर्मुक्तो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात्॥ ३६॥

शालग्रामं महातीर्थं विष्णोः प्रीतिविवर्धनम्।
प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशं प्रपश्यति॥ ३७॥

अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुपावनम्।
आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम्॥ ३८॥

यहाँ चारों ओर एक योजनमें फैला क्षेत्र है जो सिद्धों तथा ऋषिगणोंसे वन्दित है। यहींपर विष्णुका पवित्र मन्दिर है, जिसमें पुरुषोत्तम (विष्णु) स्थित हैं॥ ३५॥

अद्भुतकर्मा विष्णुका एक दूसरा कोकामुख नामका तीर्थ है, यहाँ मृत मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है और विष्णुके सारूप्य (नामक मोक्ष)-को प्राप्त करता है। शालग्राम नामका महातीर्थ विष्णुकी प्रीतिको बढ़ानेवाला है। वहाँ प्राणोंका त्यागकर मनुष्य हृषीकेशका दर्शन प्राप्त करता है। अश्वतीर्थ नामका एक अन्य तीर्थ है जो सिद्धोंका निवास-स्थल तथा अत्यन्त पवित्र है। वहाँ स्वयं नारायण हयग्रीव-रूपसे नित्य स्थित रहते हैं॥ ३६—३८॥

तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम्॥ ३९॥

मनसा संस्मरेद् यस्तु पुष्करं वै द्विजोत्तमः।
पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते॥ ४०॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्॥ ४१॥

तत्र स्नात्वा भवेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
पूजयित्वा द्विजवरान् ब्रह्माणं सम्प्रपश्यति॥ ४२॥

तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम्।
सुरूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ४३॥

परमेष्ठी ब्रह्माका पुष्कर नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह सभी पापोंको नष्ट करनेवाला तथा वहाँ मरनेवालोंको ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला है। जो द्विजोत्तम मनसे भी पुष्करका स्मरण करता है, वह सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है और (इन्द्रलोकमें देवराज) इन्द्रके साथ आनन्द करता है। वहाँ गन्धर्वों, यक्षों, नागों, राक्षसों तथा सिद्धोंके समूहोंके साथ देवता पद्मजन्मा ब्रह्माकी उपासना करते हैं। वहाँ स्नानसे शुद्ध होकर परमेष्ठी ब्रह्मा तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका पूजन करनेसे ब्रह्माजीका साक्षात्कार प्राप्त होता है। वहाँ जाकर अनिन्दित देवराज इन्द्रका दर्शन करनेसे मनुष्य सुन्दर रूपसे सम्पन्न हो जाता है और सभी कामनाओंको प्राप्त करता है॥ ३९—४३॥

सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम्।
पूजयित्वा तत्र रुद्रमश्वमेधफलं लभेत्॥ ४४॥

यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नः परमेश्वरम्।
आराधयामास हरं पञ्चाक्षरपरायणः॥ ४५॥

नमः शिवायेति मुनिः जपन् पञ्चाक्षरं परम्।
आराधयामास शिवं तपसा गोवृषध्वजम्॥ ४६॥

ब्रह्मा आदिके द्वारा सेवित सप्तसारस्वत नामक एक श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ रुद्रकी पूजा करनेसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ मङ्कणक (नामक शिवभक्त मुनि) परमेश्वर रुद्रके शरणागत हुए थे और पञ्चाक्षर-मन्त्र (**नमः शिवाय**)-का जप करते हुए उन्होंने शिवकी आराधना की थी। (वहाँ) मुनि (मङ्कणक)-ने '**नमः शिवाय**' इस श्रेष्ठ पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए तपस्याद्वारा गोवृषध्वज शिवकी आराधना की थी॥ ४४—४६॥

प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा।
ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम्॥ ४७॥

तं प्राह भगवान् रुद्रः किमर्थं नर्तितं त्वया।
दृष्ट्वापि देवमीशानं नृत्यति स्म पुनः पुनः॥ ४८॥

तदनन्तर रुद्रको आया हुआ जानकर मङ्कणक मुनि तपस्याके तेजसे उद्दीप्त हो गये और आनन्दातिरेकसे नृत्य करने लगे। भगवान् रुद्रने उनसे पूछा—'आप क्यों नृत्य कर रहे हैं।' (किंतु वे कुछ बोले नहीं और) देव ईशानको देखनेपर भी (अपनी नृत्यकलाको सर्वोत्तम समझकर) बार-बार नृत्य करते ही रहे॥ ४७-४८॥

सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वं गर्वशान्तये।
स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत्॥ ४९॥

पश्येमं मच्छरीरोत्थं भस्मराशिं द्विजोत्तम।
माहात्म्यमेतत् तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते॥ ५०॥

यत् सगर्वं हि भवता नर्तितं मुनिपुंगव।
न युक्तं तापसस्यैतत् त्वत्तोऽप्यत्राधिको ह्यहम्॥ ५१॥
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रः किल विश्वदृक्।
आस्थाय परमं भावं ननर्त जगतो हरः॥ ५२॥

सहस्रशीर्षा भूत्वा सहस्राक्षः सहस्रपात्।
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामाली भयंकरः॥ ५३॥

सोऽन्वपश्यदशेषस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः।
विशाललोचनामेकां देवीं चारुविलासिनीम्।
सूर्यायुतसमप्रख्यां प्रसन्नवदनां शिवाम्॥ ५४॥

सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशं तिष्ठन्तीममितद्युतिम्।
दृष्ट्वा संत्रस्तहृदयो वेपमानो मुनीश्वरः।
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायं जपन् वशी॥ ५५॥
प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः।
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत्॥ ५६॥

आलिङ्ग्य भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयं शिवः।
न भेतव्यं त्वया वत्स प्राह किं ते ददाम्यहम्॥ ५७॥
प्रणम्य मूर्ध्ना गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम्।
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः॥ ५८॥

नमोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नमोऽस्तु ते।
किमेतद् भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम्॥ ५९॥

का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता।
अन्तर्हितेव सहसा सर्वमिच्छामि वेदितुम्॥ ६०॥

तब भगवान् शंकर उन्हें गर्वयुक्त देखकर उनके गर्वको दूर करनेके लिये अपने शरीरको विदीर्ण कर (उसमेंसे निकलती हुई) भस्मराशि उन्हें दिखलायी (और कहा)—हे द्विजोत्तम! मेरे शरीरसे निकलती हुई इस भस्मराशिको देखो। यह तपस्याका माहात्म्य है। आपके समान दूसरा भी है। मुनिपुंगव! आप (तपस्याके) गर्वसे गर्वित होकर नृत्य कर रहे हैं, यह एक तपस्वीके लिये उचित नहीं है, मैं आपसे भी अधिक (नृत्यकलामें कुशल—बड़ा तपस्वी) हूँ॥ ४९—५१॥

मुनिश्रेष्ठ (मङ्कणक)-से ऐसा कहकर वे विश्वद्रष्टा तथा संसारके संहारक रुद्र परम भावमें स्थित होकर नृत्य करने लगे। (वे रुद्र) हजारों सिर, हजारों आँख और हजारों चरणवाले, भयंकर दाढ़ोंसे युक्त मुखवाले, ज्वालामालाओंसे व्याप्त तथा अत्यन्त भीषण रूपवाले हो गये। तदनन्तर उन मङ्कणकने उन अशेष (विराट् शरीरवाले) त्रिशूलधारीके पार्श्व-भागमें विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दर विलासयुक्त, हजारों सूर्योंके समान तेजवाली और प्रसन्न मुखवाली देवी शिवाको देखा। मुसकराते हुए विश्वेश्वर (शिव) तथा अमित द्युतिसम्पन्न (शिवा)-को स्थित देखकर मुनीश्वर (मङ्कणक)-का हृदय भयभीत हो गया और वे (अपने गर्वको ध्यानमें रखकर) काँपने लगे तथा संयमित होकर रुद्राध्यायका जप करते हुए उन्होंने रुद्रको सिरसे प्रणाम किया॥ ५२—५५॥

उन भक्तवत्सल त्र्यम्बक भगवान् शिवने प्रसन्न होकर अपना पूर्वरूप धारण किया और देवी अन्तर्हित हो गयीं। साक्षात् देवाधिदेव शिवने शरणागत भक्तका आलिङ्गनकर कहा—वत्स! तुम डरो मत! मैं तुम्हें क्या प्रदान करूँ?॥ ५६-५७॥

तब प्रसन्न मुनि (मङ्कणक)-ने त्रिपुरका नाश करनेवाले गिरिश हरको सिरसे प्रणामकर पूछनेकी इच्छासे कहा—महादेव! आपको नमस्कार है। महेश्वर! आपको नमस्कार है। सभी ओर मुखवाला आपका यह भयंकर कौन-सा रूप है? और आपके पार्श्वभागमें स्थित होकर सुशोभित होनेवाली वे देवी कौन हैं? जो सहसा अन्तर्धान हो गयीं। मैं सब कुछ जानना चाहता हूँ॥ ५८—६०॥

इत्युक्ते व्याजहारेमं तथा मङ्कणकं हरः।
महेशः स्वात्मनो योगं देवीं च त्रिपुरानलः॥ ६१॥

अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।
दाहकः सर्वपापानां कालः कालकरो हरः॥ ६२॥

मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम्।
सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः॥ ६३॥

तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनिः सनातनी॥ ६४॥

स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्ववित्।
नारायणः परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुतिः॥ ६५॥

एवमेतज्जगत् सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्।
योजयामि प्रकृत्याऽहं पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ ६६॥

(मङ्कणकके) इतना कहनेपर त्रिपुरदाहक महेश्वर हरने मङ्कणकसे अपने योग तथा देवीका इस प्रकार वर्णन किया। मैं हजार नेत्रोंवाला, सर्वात्मा, सभी ओर मुखवाला, सभी पापोंको जलानेवाला, काल, कालको भी उत्पन्न करनेवाला हर हूँ। मेरे द्वारा ही समस्त चेतन एवं अचेतन-स्वरूप (जगत्) प्रवृत्त किया जाता है। मैं ही वह अन्तर्यामी और मैं ही वह पुरुष तथा पुरुषोत्तम हूँ, जिसकी त्रिगुणात्मिका प्रकृति-रूप परम माया मुनियोंके द्वारा सनातनी शक्ति और जगत्का मूल कारण कही जाती है। मैं वही सर्वज्ञ (पुरुष) हूँ जो मायाद्वारा विश्वको व्यामोहित करता है और जिसे श्रुति नारायण, पर, अव्यक्त तथा मायारूप कहती है। मैं इसी प्रकार सदा इस जगत्की स्थापना करता हूँ। मैं प्रकृतिसे उस पुरुषको संयुक्त करता हूँ (जो पचीस तत्त्वोंमें एक-मात्र चेतन प्रमुख तत्त्व है।)॥ ६१—६६॥

तथा वै संगतो देवः कूटस्थः सर्वगोऽमलः।
सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्तेः प्रकृतेरजः॥ ६७॥

स देवो भगवान् ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः।
तवैतत् कथितं सम्यक् स्त्रष्टृत्वं परमात्मनः॥ ६८॥

एकोऽहं भगवान् कालो ह्यनादिश्चान्तकृद् विभुः।
समास्थाय परं भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभिः॥ ६९॥

इस प्रकार यह देव (चेतन), कूटस्थ (निर्विकार), सर्वत्र विद्यमान, निर्मल, नित्यपुरुष अपनी ही मूर्ति 'प्रकृति'से संगत होकर समस्त जगत्की सृष्टि करता है। इसी पुरुषको देव, भगवान्, ब्रह्मा, विश्वरूप एवं पितामहके रूपमें समझना चाहिये। इस प्रकार मैंने आपको भलीभाँति परमात्माके सृष्टिकर्तृत्वको बतलाया। मैं अद्वितीय, अनादि, संहार करनेवाला, विभु तथा भगवान् काल हूँ। परम भावका आश्रय ग्रहण करनेपर मनीषी लोग मुझे रुद्र कहते हैं॥ ६७—६९॥

मम वै सापरा शक्तिर्देवी विद्येति विश्रुता।
दृष्टा हि भवता नूनं विद्यादेहस्त्वहं ततः॥ ७०॥

एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वराः।
विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान् रुद्रः काल इति श्रुतिः॥ ७१॥

त्रयमेतदनाद्यन्तं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्।
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः॥ ७२॥

आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमं पदम्।
आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते॥ ७३॥

एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु।
सम्पूज्यो वन्दनीयोऽहं ततस्तं पश्य शाश्वतम्॥ ७४॥

मेरी ही अपरा शक्ति विद्यादेवीके नामसे प्रसिद्ध है। मेरे विद्या-रूप देहका और मेरा आपने दर्शन किया है। इस प्रकार ये सभी तत्त्व प्रधान, पुरुष और ईश्वररूप हैं। श्रुतिने इन्हें ही विष्णु, ब्रह्मा और कालरूप भगवान् रुद्र कहा है। ये तीनों ही अनादि तथा अनन्त ब्रह्ममें ही स्थित हैं। अतः श्रुतिका कथन है कि ये तीनों देव तदात्मक, (परमपुरुष ईश्वररूप), वही अव्यक्तरूप, वही अक्षररूप, आत्मानन्दस्वरूप, परमतत्त्व, चिन्मात्र और परम पदरूप हैं, आकाशरूप एवं निष्कल ब्रह्म हैं। वास्तवमें परमतत्त्व ईश्वरके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसा जानकर आपको भक्तियोगका अवलम्बन लेकर मेरी पूजा तथा वन्दना करनी चाहिये। तदनन्तर आपको उस शाश्वत (पुरुष)-के दर्शन होंगे॥ ७०—७४॥

एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनं हरः।
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः॥ ७५॥

एतत् पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम्।
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान् मुच्यते सर्वपातकैः॥ ७६॥

इतना कहकर भगवान् हर अदृश्य हो गये। मुनि (मङ्कणक) वहीं (सप्तसारस्वत तीर्थ)-पर भक्तियोगके द्वारा रुद्रकी आराधना करने लगे। यह अतुलनीय पवित्र तीर्थ ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित है। इसका सेवनकर विद्वान् ब्राह्मण सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७५-७६॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें विविध तीर्थोंका माहात्म्य, कालञ्जर तीर्थकी महिमाके वर्णनके प्रसंगमें शिवभक्त राजा श्वेतकी कथा

सूत उवाच

अन्यत् पवित्रं विपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिनः॥ १॥
पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्पराः।
कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमन् परम्॥ २॥
अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम्।
अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां व्याघातो जायते किल॥ ३॥
तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः।
कोटिरूपोऽभवद् रुद्रो रुद्रकोटिस्ततः स्मृतः॥ ४॥

ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम्।
पश्यन्तः पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन्॥ ५॥

अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम्।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्॥ ६॥

अथान्तरिक्षे विमलं पश्यन्ति स्म महत्तरम्।
ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परं पदम्॥ ७॥

एतत् सदेशाध्युषितं तीर्थं पुण्यतमं शुभम्।
दृष्ट्वा रुद्रं समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ८॥

सूतजीने कहा—परमेष्ठी रुद्रका रुद्रकोटि नामक एक दूसरा महान् पवित्र तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। पूर्वकालमें किसी पवित्र समयमें देव-दर्शनोंके लिये उत्सुक एक करोड़ इन्द्रियजयी ब्रह्मर्षि उस श्रेष्ठ स्थानपर गये। उन भक्तियुक्त महर्षियोंमें यह महान् विवाद उत्पन्न हो गया कि सबसे पहले मैं ही पिनाकी गिरिशका दर्शन करूँगा॥ १—३॥

तब उनकी (विशेष) भक्तिको देखकर योगियोंके गुरु गिरिश रुद्र करोड़ों रूपोंमें हो गये, तभीसे वे रुद्रकोटिके नामसे स्मरण किये जाने लगे। पर्वतकी गुहाके मध्य स्थित पार्वतीनाथ उन महादेव हरका दर्शनकर वे सभी हृष्ट-पुष्ट बुद्धिवाले हो गये। और मैंने ही सबसे पहले अनादि-अनन्त महादेव ईश्वरका दर्शन किया है, इस प्रकार समझकर वे भक्तिभावपूर्वक रुद्रपरायण बुद्धिवाले हो गये। तदनन्तर परम पदकी अभिलाषा रखनेवाले उन सभीने वहीं अन्तरिक्षमें महान्-से-महान् विशुद्ध ज्योतिका दर्शन किया। यह देश (रुद्रद्वारा) निवास किया हुआ पुण्यतम शुभ तीर्थ है। यहाँ रुद्रका दर्शनकर और उनकी सम्यक् आराधना कर रुद्रका सामीप्य (सामीप्य नामक मोक्ष) प्राप्त होता है॥ ४—८॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं स्मृतम्।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥ ९॥

अथान्यत् पुष्पनगरी देशः पुण्यतमः शुभः।
तत्र गत्वा पितॄन् पूज्य कुलानां तारयेच्छतम्॥ १०॥

एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है जो मधुवन नामसे कहा जाता है, नियमपूर्वक वहाँ जानेवाला (निवास करनेवाला) इन्द्रका अर्धासन प्राप्त करता है। एक अन्य पुष्पनगरी नामक देश पुण्यतम तथा शुभ है। वहाँ जाकर पितरोंकी पूजा करनेसे व्यक्ति सौ कुलोंको तार देता है॥ ९-१०॥

कालञ्जरं महातीर्थं लोके रुद्रो महेश्वरः।
कालं जरितवान् देवो यत्र भक्तप्रियो हरः॥ ११॥

श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवरः पुरा।
तदाशीस्तन्नमस्कारः पूजयामास शूलिनम्॥ १२॥

संस्थाप्य विधिना लिङ्गं भक्तियोगपुरःसरः।
जजाप रुद्रमनिशं तत्र संन्यस्तमानसः॥ १३॥

स तं कालोऽथ दीप्तात्मा शूलमादाय भीषणम्।
नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति॥ १४॥

इस लोकमें कालञ्जर नामका एक महातीर्थ है, जहाँ भक्तोंके प्रिय महेश्वर रुद्र हरने कालको जीर्ण किया था। प्राचीन कालमें श्वेत नामक एक श्रेष्ठ राजर्षि थे, जो शिवके भक्त थे। उन्होंने त्रिशूली (रुद्र)-की भक्ति करते हुए उन्हें ही नमस्कार करते हुए उनकी पूजा की। विधिपूर्वक शिवलिङ्गकी स्थापना कर भक्तियोगपूर्वक वहीं वे उन्हीं (रुद्र)-में मन लगाते हुए निरन्तर उनका जप करने लगे। वे राजा (श्वेत) जिस स्थानपर थे कुछ समय बाद वहाँ भयंकर शूल लिये हुए प्रदीप्त स्वरूपवाला काल उन्हें अपने देश ले जानेके लिये आया॥ ११—१४॥

वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम्।
कालं कालकरं घोरं भीषणं चण्डदीधितिम्॥ १५॥

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वासौ लिङ्गमैश्वरम्।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम्॥ १६॥

जपन्तमाह राजानं नमन्तमसकृद् भवम्।
एह्येहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव॥ १७॥

तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः।
एकमीशार्चनरतं विहायान्यं निषूदय॥ १८॥

हाथमें शूल लिये हुए, मृत्युजनक, घोर, भीषण, उग्र किरणोंवाले उस कालको आया हुआ देखकर राजा (श्वेत) भयभीत हो गये। उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे ईश्वरके लिङ्गका स्पर्श करते हुए सिरसे उनको प्रणाम किया और शतरुद्रियका जप करने लगे। जप कर रहे तथा बार-बार भवको प्रणाम कर रहे राजासे उनके सामने खड़े होकर कृतान्त (काल)-ने हँसते हुए 'आओ', 'आओ' इस प्रकारसे कहा। भयसे व्याकुल रुद्रपरायण राजाने उससे कहा—एकमात्र ईशकी आराधनामें रत व्यक्तिको छोड़कर अन्यको मारो॥ १५—१८॥

इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद् भीतमानसम्।
रुद्रार्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति॥ १९॥

एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः।
बबन्ध पाशै राजापि जजाप शतरुद्रियम्॥ २०॥

इस प्रकार कह रहे भयभीत मनवाले राजासे भगवान् (काल)-ने कहा—चाहे रुद्रकी आराधना करनेवाला हो या अन्य कोई हो, कौन मेरे वशमें नहीं है अर्थात् सभी मुझ कालके वशमें हैं। ऐसा कहकर लोकसंहारक वह काल राजाको पाशोंके द्वारा बाँधने लगा और राजा शतरुद्रियका जप करने लगे॥ १९-२०॥

अथान्तरिक्षे विमलं दीप्यमानं
तेजोराशिं भूतभर्तुः पुराणम्।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं
प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श॥ २१॥

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं
देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम्।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो
मेने चास्मन्नाथ आगच्छतीति॥ २२॥

अनन्तर राजा श्वेतने समस्त प्राणियोंके अधिपति महादेव रुद्रकी तेजोराशिको देखा। यह तेजोराशि आकाशमें अकस्मात् उत्पन्न हुई थी तथा वहीं विद्यमान थी। यह अति निर्मल स्वतः प्रकाशमान, शाश्वत, ज्वालामाला (प्रभामण्डल)-से आवृत और समस्त विश्वमें व्याप्त थी। उस (तेज:समूह)-के मध्य देवीके साथ, स्वर्णिम वर्णवाले, चन्द्रलेखा-सी उज्ज्वल अङ्गवाले तेजोमय पुरुषको देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने समझा कि ये मेरे नाथ आ रहे हैं॥ २१-२२॥

आगच्छन्तं नातिदूरेऽथ दृष्ट्वा
कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम्।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं
राजर्षिस्तं नेतुमभ्याजगाम॥ २३॥
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्मा
देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराणः।
एकं भक्तं मत्परं मां स्मरन्तं
देहीतीमं कालमूचे ममेति॥ २४॥

तदनन्तर सम्पूर्ण ईशोंके एकमात्र स्वामी महेश्वर रुद्रको महादेवीके साथ समीपमें ही आते हुए देखकर राजर्षि भयरहित हो गये, (तथापि) काल उन्हें लेने आया। प्राणियोंके स्वामी, पुराण तथा उग्रकर्मा भगवान् रुद्रदेवने यह देखकर कालसे कहा—मेरे शरणागत तथा मेरा स्मरण कर रहे इस मेरे भक्तको मुझे दे दो॥ २३-२४॥

श्रुत्वा वाक्यं गोपतेरुग्रभावः
कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम्।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशैः
क्रुद्धो रुद्रमभिदुद्राव वेगात्॥ २५॥
प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः
सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः।
सावज्ञं वै वामपादेन मृत्युं
श्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान॥ २६॥
ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातितः।
रराज देवतापतिः सहोमया पिनाकधृक्॥ २७॥

गोपति (इन्द्रियों एवं वाणीके स्वामी)-के वाक्यको सुनकर वह उग्रभाववाला क्रुद्ध कालात्मा अपने स्वभावपर गर्व करते हुए पुनः उस (शिव) भक्तको पाशोंसे बाँधकर वेगपूर्वक रुद्रकी ओर दौड़ा। तब उसे (काल-मृत्यु) आता हुआ देखकर विश्वमायाके विधानको जाननेवाले शंकरने शैलपुत्रीकी ओर देखते हुए उस (श्वेत)-के देखते-देखते अवज्ञापूर्वक अपने बाँयें पैरसे मृत्यु (काल)-को मार दिया। महेश्वरके पादसे आहत होकर अति भयंकर वह (काल) मर गया तथा पिनाक धारण करनेवाले देवताओंके पति महेश्वर पार्वतीके साथ भक्त राजा श्वेतकी रक्षा कर लेनेके कारण प्रसन्न हो गये॥ २५—२७॥

निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम्।
ननाम साम्बमव्ययं स राजपुंगवस्तदा॥ २८॥

(भक्तवत्सल महादेव रुद्रके अनुग्रहसे) प्रसन्न-मनवाले उस श्रेष्ठ राजाने देव ईश्वर हरको देखकर अम्बासहित उन अव्ययको प्रणाम किया॥ २८॥

नमो भवाय हेतवे हराय विश्वसम्भवे।
नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने॥ २९॥
नमो नमो नमोऽस्तु ते महाविभूतये नमः।
विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते॥ ३०॥
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदुःखनाशन।
अनादिनित्यभूतये वराहशृङ्गधारिणे॥ ३१॥
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः।
नमो महानटाय ते नमो वृषध्वजाय ते॥ ३२॥

(राजाने प्रार्थना करते हुए कहा—)जगत्के कारणरूप और विश्वको उत्पन्न करनेवाले भव एवं हरको नमस्कार है। धीमान् शिवको नमस्कार है। मोक्ष प्रदान करनेवालेको नमस्कार है। महाविभूतिस्वरूप आपको नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है। विभागहीन रूपवाले (अखण्डरूप), नरोंके अधिपति आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंके दुःखोंका नाश करनेवाले गणोंके ईश्वर! आपको नमस्कार है। अनादि तथा नित्य ऐश्वर्यसम्पन्न और वराहका श्रृंग धारण करनेवालेको नमस्कार है। वृषध्वज! आपको नमस्कार है। कपालकी माला धारण करनेवालेको नमस्कार है। महानट[१]! आपको नमस्कार है, वृषध्वज! आपको नमस्कार है॥ २९—३२॥

अथानुगृह्य शंकरः प्रणामतत्परं नृपम्।
स्वगाणपत्यमव्ययं सरूपतामथो ददौ॥ ३३॥

प्रणाममें तत्पर (अत्यन्त प्रणत) राजाके ऊपर अनुग्रह करके शंकरने उन्हें अपना शाश्वत गाणपत्य पद तथा अपना स्वरूप प्रदान किया॥ ३३॥

१-ताण्डवनृत्यके एकमात्र परम अधिष्ठाता महादेव हैं, अतः ये 'महानट' कहे जाते हैं।

सहोमया सपार्षदः सराजपुंगवो हरः।
मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात्॥ ३४॥

काले महेशाभिहते लोकनाथः पितामहः।
अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवत्विति॥ ३५॥

नास्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज।
कृतान्तस्यैव भवता तत्कार्ये विनियोजितः॥ ३६॥

स देवदेववचनाद् देवदेवेश्वरो हरः।
तथास्त्वियाह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत्॥ ३७॥

इत्येतत् परमं तीर्थं कालंजरमिति श्रुतम्।
गत्वाभ्यर्च्य महादेवं गाणपत्यं स विन्दति॥ ३८॥

उमा, पार्षद, तथा श्रेष्ठ राजा (श्वेत)-के साथ हर (महेश्वर) मुनीशों तथा सिद्धोसे वन्दित होते हुए क्षणभरमें अदृश्य हो गये। महेश्वरके द्वारा कालके मारे जानेपर लोकनाथ पितामह (ब्रह्मा)-ने रुद्रसे इस वरकी याचना की कि यह (काल) जीवित हो जाय। (ब्रह्माने कहा-) ईशान! वृषध्वज! इस कृतान्तका लेशमात्र भी दोष नहीं है। आपने ही इसे उस कार्य (मृत्युके कार्य) में नियोजित किया है। देवाधिप (ब्रह्मा)-के कहनेपर उन देवदेवेश्वर विश्वात्मा हरने 'ऐसा ही हो' यह कहा। तब वह काल भी उसी प्रकारका अर्थात् जीवित हो गया॥ ३४—३७॥

इस प्रकार यह श्रेष्ठ तीर्थ कालञ्जर इस नामसे विख्यात है। यहाँ जाकर महादेवकी आराधना करनेवाला व्यक्ति गाणपत्य पद प्राप्त करता है॥ ३८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चत्रिंऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें विविध तीर्थोंकी महिमा, देवदारु-वन-तीर्थका माहात्म्य

सूत उवाच

इदमन्यत् परं स्थानं गुह्याद् गुह्यतमं महत्।
महादेवस्य देवस्य महालयमिति श्रुतम्॥ १॥

तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
शिलातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम्॥ २॥

तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः॥ ३॥

स्नात्वा तत्र पदं शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम्।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ४॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं शम्भोर्महात्मनः।
केदारमिति विख्यातं सिद्धानामालयं शुभम्॥ ५॥

तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम्।
पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ६॥

श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभते फलम्।
द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्यतमानसैः॥ ७॥

सूतजीने कहा—भगवान् महादेवका एक दूसरा गुह्यसे भी गुह्य महान् श्रेष्ठ स्थान है, जो 'महालय' इस नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ त्रिपुरारि तथा देवोंके आदिदेव रुद्रने नास्तिकोंके लिये प्रमाणके रूपमें शिलातलपर चरण (-का चिह्न) स्थापित किया है। वहाँ समस्त शरीरमें भस्म लगाये हुए, शान्त पशुपतिके भक्तजन वेदाध्ययनमें तत्पर रहकर महादेवकी उपासना करते हैं। उस तीर्थमें स्नानकर भक्तिपूर्वक शंकरके पदका दर्शन करके उन्हें सिरसे नमस्कार करनेसे उन रुद्रका सामीप्य प्राप्त होता है॥ १—४॥

देवाधिदेव महात्मा शम्भुका एक दूसरा स्थान है जो 'केदार' इस नामसे विख्यात है। वह शुभ स्थान सिद्धोंकी निवासभूमि है। वहाँ स्नान करके वृषकेतु महादेवकी आराधना करने और (वहाँके) पवित्र जलका पान करनेसे गाणपत्य-पदकी प्राप्ति होती है। वह तीर्थ श्रेष्ठ द्विजातियों तथा संयतचित्तवाले योगियोंद्वारा सेवित है। वहाँ श्राद्ध, दान आदि कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है॥ ५—७॥

तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम्।
तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते॥ ८ ॥

अन्यं मगधराजस्य तीर्थं स्वर्गगतिप्रदम्।
अक्षयं विन्दति स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तमः॥ ९ ॥

तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम्।
यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः॥ १० ॥

तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः।
मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोकं लभेन्मृतः॥ ११ ॥

महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम्।
तत्राभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं निगच्छति॥ १२ ॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना श्रीपर्वतं शुभम्।
तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रस्य दयितो भवेत्॥ १३ ॥

तत्र संनिहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः।
स्नानपिण्डादिकं तत्र कृतमक्षय्यमुत्तमम्॥ १४ ॥
गोदावरी नदी पुण्या सर्वपापविनाशिनी।
तत्र स्नात्वा पितॄन् देवांस्तर्पयित्वा यथाविधि।
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत्॥ १५ ॥

पवित्रसलिला पुण्या कावेरी विपुला नदी।
तस्यां स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेन वा॥ १६ ॥

द्विजातीनां तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम्।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ।
अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात्॥ १७ ॥
स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र संनिहितो नित्यं स्कन्दोऽमरनमस्कृतः॥ १८ ॥

स्नात्वा कुमारधारायां कृत्वा देवादितर्पणम्।
आराध्य षण्मुखं देवं स्कन्देन सह मोदते॥ १९ ॥

(एक) प्लक्षावतरण-तीर्थ (है जो) सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है। वहाँ श्रीनिवासकी आराधना करनेसे विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। मगधराजका एक अन्य तीर्थ है, जो स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। वहाँकी यात्रा करनेसे द्विजोत्तमको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होता है। कनखल नामका एक तीर्थ है जो पुण्यप्रद तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला है। रुद्रदेवने जहाँ दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था। वहाँपर पवित्र भावनासे युक्त होकर गङ्गास्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और मरनेपर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। 'महातीर्थ' इस नामसे विख्यात नारायणका प्रिय एक पवित्र तीर्थ है, वहाँ हृषीकेशकी आराधना करनेसे श्वेतद्वीपकी प्राप्ति होती है॥ ८—१२॥

'श्रीपर्वत' नामका एक दूसरा शुभ श्रेष्ठ तीर्थ है, वहाँ प्राणोंका परित्याग करनेसे व्यक्ति रुद्रका प्रिय होता है। वहाँ देवी (पार्वती)-के साथ महेश्वर रुद्र स्थित रहते हैं। वहाँ किये हुए स्नान, पिण्डदान आदि उत्तम कर्म अक्षय हो जाते हैं॥ १३-१४॥

गोदावरी नदी पवित्र और सभी पापोंका नाश करनेवाली है। वहाँ स्नानकर विधिपूर्वक पितरों तथा देवताओंका तर्पण करनेसे (मनुष्य) सभी पापोंसे रहित होकर पवित्रात्मा हो जाता है और उसे हजारों गोदान करनेका फल प्राप्त होता है। शुद्ध जलवाली विशाल कावेरी नदी पुण्यस्वरूप ही है। उसमें स्नान कर तीन रात्रि अथवा एक रात्रिका उपवास करके तर्पण आदि करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजातियोंके लिये यहाँ तीर्थोंके सेवनका विधान किया गया है। जिसके मन एवं वाणी शुद्ध हों तथा हाथ-पैर संयमित हों, ऐसा लोभरहित तथा ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला द्विज तीर्थों (-में निवास)-का फल प्राप्त करता है॥ १५—१७॥

स्वामितीर्थ नामक महातीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। देवताओंद्वारा नमस्कृत (भगवान्) कार्तिकेय वहाँ नित्य स्थित रहते हैं। (वहाँ) कुमारधारामें स्नानकर देवताओंका पूजन तथा पितरोंका तर्पण करके षण्मुख देव कार्तिकेयकी आराधना करनेसे (आराधक) स्कन्द (कार्तिकेय)-के साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ १८-१९॥

नदी त्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीति नामतः।
तत्र स्नात्वा पितॄन् भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि।
पापकर्तॄनपि पितॄंस्तारयेन्नात्र संशयः॥ २०॥

ताम्रपर्णी नामवाली नदी तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ स्नानकर विधिपूर्वक भक्तिभावसे पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य पाप करनेवाले पितरोंको भी मुक्त कर देता है, इसमें संदेह नहीं॥ २०॥

चन्द्रतीर्थमिति ख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम्।
तीर्थं तत्र भवेद् वस्तुं मृतानां स्वर्गतिर्ध्रुवा॥ २१॥

विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम्।
भक्त्या ये ते न पश्यन्ति यमस्य सदनं द्विजाः॥ २२॥

देविकायां वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वोदकं दत्त्वा योगसिद्धिं च विन्दति॥ २३॥

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्वपापविनाशनम्।
दशानामश्वमेधानां तत्राप्नोति फलं नरः॥ २४॥

पुण्डरीकं महातीर्थं ब्राह्मणैरुपसेवितम्।
तत्राभिगम्य युक्तात्मा पौण्डरीकफलं लभेत्॥ २५॥

कावेरीके उद्‌गम स्थानपर चन्द्रतीर्थ नामसे विख्यात अक्षय फल देनेवाला एक तीर्थ है। वहाँ निवास करने तथा वहाँ मृत्यु होनेपर निश्चय ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो विन्ध्यपादमें देवाधिदेव सदाशिवका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, वे द्विज यमलोकका दर्शन नहीं करते। देविकामें वृष नामका एक तीर्थ है जो सिद्धोंद्वारा सेवित है। वहाँ स्नानकर (पितरोंको) जलदान (तर्पण) करनेसे योगसिद्धि प्राप्त होती है। दशाश्वमेधिक नामक तीर्थ सभी पापोंको विनष्ट करनेवाला है। वहाँ (स्नान, दान आदि पुण्य कार्य करनेसे) मनुष्य दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। पुण्डरीक नामक महातीर्थ ब्राह्मणोंके द्वारा भलीभाँति सेवित है। वहाँकी यात्रा करनेसे संयतचित्त व्यक्ति पौण्डरीक (याग)-का फल प्राप्त करता है॥ २१—२५॥

तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्।
ब्रह्माणमर्चयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते॥ २६॥

सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम्।
व्यासतीर्थं परं तीर्थं मैनाकं च नगोत्तमम्।
यमुनाप्रभवं चैव सर्वपापविशोधनम्॥ २७॥

तीर्थोंमें परम तीर्थ 'ब्रह्मतीर्थ' इस नामसे विख्यात है। वहाँ ब्रह्माकी पूजा करनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। सरस्वतीका विनशन अर्थात् लुप्त होनेका स्थान, शुभ प्लक्षप्रस्रवण, श्रेष्ठ व्यासतीर्थ, पर्वतोंमें उत्तम मैनाक तथा सभी पापोंका शोधन करनेवाला यमुनाका उद्‌गम स्थान—ये सभी तीर्थ हैं(तथा सभी पापोंका शोधन करनेवाले हैं)॥ २६-२७॥

पितॄणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता।
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत्॥ २८॥

कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम्।
प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत्॥ २९॥

उमातुङ्गमिति ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा।
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत्॥ ३०॥

भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धं दानं तथा कृतम्।
कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति श्रुतिर्मम॥ ३१॥

पितरोंकी पुत्री गन्धकाली देवी (एक विशेष नदीके रूपमें) विख्यात है। उसमें स्नान करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और मरनेके उपरान्त पूर्वजन्मोंके स्मरणकी शक्ति प्राप्त होती है। सिद्धों तथा चारणोंसे सेवित 'कुबेरतुङ्ग' नामक तीर्थ पापोंको विनष्ट करनेवाला है। वहाँ प्राणोंका परित्याग करनेसे व्यक्ति कुबेरका अनुचर होता है। 'उमातुङ्ग' नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ रुद्रकी प्रिया पार्वती स्थित रहती हैं। वहाँ महादेवीकी आराधना करनेसे हजारों गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। मैंने ऐसा सुना है कि भृगुतुङ्ग (अन्य तीर्थ-विशेष)-पर तपस्या करने, श्राद्ध तथा दान आदि करनेसे व्यक्ति अपने दोनों कुलों (मातृकुल-पितृकुल)-की सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है॥ २८—३१॥

काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम्।
तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया॥ ३२॥
दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमस्तथा जपः।
अक्षयं चाव्ययं चैव कृतं भवति सर्वदा॥ ३३॥
तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्ना वै कुरुजाङ्गलम्।
दत्त्वा तु दानं विधिवद् ब्रह्मलोके महीयते॥ ३४॥
वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च।
धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणः परमे शुभे॥ ३५॥
भरतस्याश्रमे पुण्ये पुण्ये श्राद्धवटे शुभे।
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम्॥ ३६॥
मुञ्जपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता।
हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निदर्शनम्॥ ३७॥

अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः।
पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः॥ ३८॥

नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
उदीच्यां मुञ्जपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ ३९॥

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति सशरीरा द्विजातयः।
दत्तं चापि सदा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम्।
ऋणैस्त्रिभिर्नरः स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मषः॥ ४०॥
मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्धासनं लभेत्।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥ ४१॥

तस्मान्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम्।
कामान् स लभते दिव्यान् मोक्षोपायं च विन्दति॥ ४२॥
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः।
योजनानां सहस्राणि सोऽशीतिस्त्वायतो गिरिः।
सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः॥ ४३॥

तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामतः।
तत्र गत्वा द्विजो विद्वान् ब्रह्महत्यां विमुञ्चति॥ ४४॥

श्राद्धं भवति चाक्षय्यं तत्र दत्तं महोदयम्।
तारयेच्च पितॄन् सम्यग् दश पूर्वान् दशापरान्॥ ४५॥

काश्यपका 'कालसर्पि' इस नामवाला विख्यात महातीर्थ है। पापोंके क्षय करनेकी अभिलाषासे वहाँ नित्य श्राद्ध करना चाहिये। दशार्णामें किया गया दान, श्राद्ध, होम तथा जप सदाके लिये अक्षय और अविनाशी हो जाता है। द्विजातियोंके द्वारा सेवित तीर्थ 'कुरुजाङ्गल' नामवाला है। वहाँ विधिपूर्वक दान करनेसे ब्रह्मलोकमें आदर प्राप्त होता है। वैतरणी, महातीर्थ, स्वर्णवेदी, धर्मपृष्ठ, परम शुभ ब्रह्मसरोवर, पवित्र भरताश्रम, पुण्य तथा शुभ श्राद्धवट, महाह्रद तथा कौशिकी नदीमें दिया गया दान अक्षय होता है॥ ३२—३६॥

सभी लोगोंके कल्याणके लिये मुञ्जपृष्ठमें अपने चरण (चिह्न) स्थापित कर परम ज्ञानी महादेवने नास्तिकोंके लिये प्रमाण उपस्थित किया। (यहाँ) अल्पकालमें ही धर्मपरायण व्यक्ति पापोंका उसी प्रकार शीघ्रतासे परित्याग करता है, जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचा (केंचुल)-का परित्याग कर देता है। ब्रह्मर्षिगणोंके द्वारा सेवित मुञ्जपृष्ठके उत्तर भागमें स्थित कनकनन्दा नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ स्नानकर द्विजाति लोग सशरीर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। वहाँपर दिया गया दान तथा किया गया श्राद्ध अक्षय कहा गया है। वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य पापरहित होकर तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३७—४०॥

मानस सरोवरमें स्नान करनेसे इन्द्रका अर्धासन प्राप्त होता है। उत्तर मानस तीर्थकी यात्रा करनेसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। अतः (वहाँ) अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुसार श्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेवाला दिव्य भोगों और मोक्षके उपाय (धर्म)-को प्राप्त कर लेता है॥ ४१-४२॥

विविध प्रकारकी धातुओंसे सुशोभित हिमवान् नामका पर्वत एक हजार अस्सी योजन विस्तृत, सिद्धों तथा चारणोंसे परिपूर्ण और देवर्षिगणोंसे सेवित है। वहाँ सुषुम्ना नामवाली रमणीय पुष्करिणी है। वहाँकी यात्रा कर विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्त हो जाता है। वहाँ किया गया श्राद्ध अक्षय होता है और दिया हुआ दान महान् अभ्युदयको प्राप्त कराता है। वहाँ जानेसे व्यक्ति अपनेसे पहले और बादकी दस पीढ़ीतकके पितरोंको भलीभाँति तार देता है॥ ४३—४५॥

सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गा पुण्या समन्ततः।
नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः॥ ४६॥

हिमालय तथा गङ्गा सर्वत्र ही पवित्र हैं। समुद्रमें जानेवाली नदियाँ तथा विशेषरूपसे समुद्र पवित्र हैं॥ ४६॥

बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते कलिकल्मषात्।
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः॥ ४७॥

अक्षयं तत्र दानं स्यात् जप्यं वापि तथाविधम्।
महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद् विशेषतः।
तारयेच्च पितॄन् सर्वान् दत्त्वा श्राद्धं समाहितः॥ ४८॥

बदर्याश्रममें पहुँचकर मनुष्य कलिके पापसे मुक्त हो जाता है। वहाँपर सनातन नारायणदेव नरके साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ विधिपूर्वक किया गया दान तथा जप अक्षय हो जाता है। वह पवित्र तीर्थ महादेवको विशेषरूपसे प्रिय है। वहाँ समाहित मनसे श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरोंको मुक्त कर देता है॥ ४७-४८॥

देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम्।
महादेवेन देवेन तत्र दत्तं महद् वरम्॥ ४९॥

मोहयित्वा मुनीन् सर्वान् पुनस्तैः सम्प्रपूजितः।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान्॥ ५०॥

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा।
मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥ ५१॥

सिद्ध तथा गन्धर्वोंसे सेवित पवित्र देवदारु-वन नामक एक तीर्थ है। देव महादेवने वहाँ महान् वर प्रदान किया था। सभी मुनियोंको मोहित करनेके अनन्तर पुनः उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होनेपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने भक्तहृदय उन मुनियोंसे कहा— इस रमणीय तथा श्रेष्ठ आश्रममें आप लोग मेरी भक्तिसे संयुक्त होकर सदा निवास करें, इससे आप लोगोंको सिद्धि प्राप्त होगी॥ ४९—५१॥

येऽत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरा जनाः।
तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम्॥ ५२॥

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन च।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म विन्दति॥ ५३॥

इस लोकमें धर्मपरायण जो लोग यहाँ मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं श्रेष्ठ शाश्वत गाणपत्य-पद प्रदान करता हूँ। मैं यहाँ नारायणके साथ नित्य निवास करता हूँ। जो मनुष्य यहाँ प्राणोंका परित्याग करता है, वह पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता॥ ५२-५३॥

संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः।
तेषां च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः॥ ५४॥

श्राद्धं दानं तपो होमः पिण्डनिर्वपणं तथा।
ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम्॥ ५५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः।
देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम्॥ ५६॥

यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः।
तत्र संनिहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च॥ ५७॥

हे द्विजोत्तमो! दूसरे देशोंमें गये हुए जो लोग इस तीर्थका स्मरण करते हैं, उनके सभी पापोंको मैं नष्ट कर देता हूँ। यहाँ किया हुआ श्राद्ध, दान, तप, होम, पिण्डदान, ध्यान, जप तथा नियम सर्वदाके लिये अक्षय हो जाता है। इसलिये द्विजातियोंको महादेवद्वारा सेवित पुण्य देवदारु-वनका सभी प्रयत्नोंद्वारा दर्शन (सेवन) करना चाहिये। जहाँ ईश्वर महादेव अथवा पुरुषोत्तम विष्णु रहते हैं, वहाँ गङ्गा, सभी तीर्थ तथा सभी मन्दिरोंकी स्थिति होती है॥ ५४—५७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

देवदारु-वनमें स्थित मुनियोंका वृत्तान्त एवं शिवलिङ्गका पतन, मुनियोंको ब्रह्माका उपदेश, शिवको प्रसन्न करने-हेतु ऋषियोंद्वारा तपस्या तथा स्तुति, शिवद्वारा सांख्यका उपदेश

ऋषय ऊचुः

कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान् गोवृषध्वजः।
मोहयामास विप्रेन्द्रान् सूत वक्तुमिहार्हसि॥ १ ॥

सूत उवाच

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते।
सपुत्रदारा मुनयस्तपश्चेरुः सहस्रशः॥ २ ॥

प्रवृत्तं विविधं कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः॥ ३ ॥

तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलधृक्।
ख्यापयन् स महादोषं ययौ दारुवनं हरः॥ ४ ॥

कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवो महेश्वरः।
ययौ निवृत्तिविज्ञानस्थापनार्थं च शंकरः॥ ५ ॥

आस्थाय विपुलं वेशमूनविंशतिवत्सरः।
लीलालसो महाबाहुः पीनाङ्गश्चारुलोचनः॥ ६ ॥

चामीकरवपुः श्रीमान् पूर्णचन्द्रनिभाननः।
मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः॥ ७ ॥

कुशेशयमयीं मालां सर्वरत्नैरलंकृताम्।
दधानो भगवानीशः समागच्छति सस्मितः॥ ८ ॥

योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययो हरिः।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शूलिनम्॥ ९ ॥

सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम्।
शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नूपुरकद्वयम्॥ १० ॥

सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलं चारुलोचनम्।
उदारहंसचलनं विलासि सुमनोहरम्॥ ११ ॥

ऋषियोंने कहा—सूतजी! इस समय आप यह बतलायें कि भगवान् गोवृषध्वजने दारुवनमें आकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको क्यों मोहित किया?॥ १॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें देवताओं तथा सिद्धोंसे सेवित रमणीय दारुवनमें हजारों मुनिजन अपने पुत्रों तथा अपनी स्त्रियोंके साथ तपस्या करते थे। विविध कर्मोंमें प्रवृत्त होते हुए तथा यथाविधि उन्हें सम्पन्न करते हुए वे महर्षिगण विविध यज्ञोंसे यजन तथा तप करते थे॥ २-३॥

तदनन्तर त्रिशूल धारण करनेवाले वे हर प्रवृत्तिमार्गमें मन लगानेवाले उन ऋषियोंके महान् दोषका वर्णन करते हुए दारुवनमें गये। महेश्वर देव शंकर निवृत्तिविज्ञानकी स्थापना करनेके लिये विश्वके गुरु विष्णुको अपने पार्श्वमें लेकर वहाँ गये। महान् बाहुवाले, पुष्ट शरीरवाले तथा सुन्दर नेत्रवाले उन्नीस वर्षके लीलायुक्त पुरुषका वेश धारणकर श्रीशंकर वहाँ गये॥ ४—६॥

जगदीश्वर (शंकर)-का शरीर स्वर्ण-वर्णके समान तथा श्रीसम्पन्न था। उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान, उनकी गति मतवाले हाथीके समान और दिशाएँ ही उनके वस्त्रका स्थान ले रखी थीं। सभी रत्नोंसे अलंकृत कमलोंकी माला धारण किये हुए भगवान् ईश मुसकराते हुए आ रहे थे॥ ७-८॥

जो सभी लोकोंके उत्पत्ति-स्थान, अनन्त अव्यय पुरुष हरि विष्णु हैं, वे स्त्री-वेष धारणकर शूली शंकरका अनुगमन कर रहे थे। उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रके तुल्य था। पयोधर पीन और उन्नत थे। पवित्र मुसकान थी और वे (विष्णु) अत्यन्त प्रसन्न थे। दोनों चरणोंसे नूपुरकी ध्वनि हो रही थी, सुन्दर पीताम्बर उन्होंने धारण कर रखा था। दिव्य श्यामल शरीर था। नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे। हंसके समान उदार गति थी। भगवान् विष्णु विलासमय एवं अति मनोहारी रूप धारण कर रखे थे॥ ९—११॥

एवं स भगवानीशो देवदारुवने हरः।
चचार हरिणा भिक्षां मायया मोहयन् जगत्॥ १२॥

दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम्।
मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः॥ १३॥

विस्त्रस्तवस्त्राभरणास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः।
सहैव तेन कामार्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि॥ १४॥

ऋषीणां पुत्रका ये स्युर्युवानो जितमानसाः।
अन्वगच्छन् हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीडिताः॥ १५॥

गायन्ति नृत्यन्ति विलासवाह्या
नारीगणा मायिनमेकमीशम्।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्त-
मिच्छन्त्यथालिङ्गनमाचरन्ति॥ १६॥

पदे निपेतुः स्मितमाचरन्ति
गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं
भ्रूभङ्गमन्ये विचरन्ति तेन॥ १७॥

आसामथैषामपि वासुदेवो
मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः।
करोति भोगान् मनसि प्रवृत्तिं
मायानुभूयन्त इतीव सम्यक्॥ १८॥

विभाति विश्वामरभूतभर्ता
स माधवः स्त्रीगणमध्यविष्टः।
अशेषशक्त्यासनसंनिविष्टो
यथैकशक्त्या सह देवदेवः॥ १९॥

करोति नृत्यं परमप्रभावं
तदा विरूढः पुनरेव भूयः।
ययौ समारुह्य हरिः स्वभावं
तदीशवृत्तामृतमादिदेवः॥ २०॥

दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्राणामपि केशवम्।
मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं संदधिरे भृशम्॥ २१॥

इस प्रकारके (स्त्री-वेषवाले) हरिके साथ वे भगवान् ईश हर अपनी मायासे संसारको मोहित करते हुए भिक्षाके लिये दारुवनमें विचरण करने लगे। पिनाकी विश्वेश्वरको स्थान-स्थानपर भ्रमण करते देखकर (उनकी) मायासे मोहित हो (देवदारु-वनकी) स्त्रियाँ देवाधिदेवका अनुगमन करने लगीं। अस्त-व्यस्त वस्त्र तथा आभरणोंवाली ये सभी पतिव्रता स्त्रियाँ लज्जाका परित्यागकर विलासयुक्त और कामार्त होकर उन्हींके साथ भ्रमण करने लगीं। जिन्होंने अपने मनको वशमें कर रखा था, ऋषियोंके वे सभी युवा पुत्र भी कामपीड़ित होकर (स्त्रीरूपधारी) हृषीकेशके पीछे-पीछे चलने लगे॥ १२—१५॥

पत्नीके रूपमें श्रीविष्णुको साथमें लेकर चलनेवाले अतीव सुन्दर, मायामय, अद्वितीय ईश (श्रीशंकर)-को देखकर (महर्षियोंकी) विलासिनी स्त्रियाँ नाचने-गाने लगीं, उन्हें प्राप्त करनेकी अभिलाषा करने लगीं और उनका आलिंगन करने लगीं। लक्ष्मीके पति आदिदेव (विष्णु)-को (स्त्री-रूपमें) देखकर मुनीश्वरोंके पुत्र उनके पैरोंपर गिरने लगे, मुसकराने लगे और गीत गाने लगे। दूसरे मुनिपुत्र भ्रूविलास (कटाक्षपात) करते हुए उनके साथ विचरण करने लगे। उन (स्त्रियों) तथा उन (पुरुषों)-के मनमें प्रविष्ट होकर मायावी मुरारि वासुदेवने उनके मनमें भोगोंके प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न की। इस प्रकार उन सभीने भलीभाँति मायाका अनुभव किया॥ १६—१८॥

स्त्रियोंके मध्य घिरे हुए समस्त देवों और प्राणियोंके स्वामी वे माधव तथा शंकर वैसे ही सुशोभित हुए जैसे समस्त शक्तियोंके आसनपर स्थित अद्वितीय शक्तिस्वरूपा पार्वतीके साथ देवाधिदेव शंकर सुशोभित होते हैं। उस समय महादेव (मुनियोंको मोहित करनेकी भावनापर) आरूढ़ होकर पुनः बार-बार अत्यन्त प्रभावकारी नृत्य करने लगे और आदिदेव हरि उन ईशके चरितामृत-रूप स्वभावके रहस्यको समझकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे॥ १९-२०॥

स्त्री-समूहको मुग्ध कर रहे रुद्र और पुत्रोंको मोहित कर रहे (नारीरूप) विष्णुको देखकर उन श्रेष्ठ मुनियोंको अत्यन्त क्रोध हो आया॥ २१॥

अतीव परुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम्।
शेपुश्च शापैर्विविधैर्मायया तस्य मोहिता:॥ २२॥

तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शंकरे।
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिता:॥ २३॥

उन (शंकर)-की मायासे मोहित होकर मुनियोंने कपर्दीदेव (शंकर)-से अत्यन्त परुष (कठोर) वचन कहा और विविध शापोंसे उन्हें अभिशप्त किया। पर वे सभी परुष वचन एवं शाप व्यर्थ हो गये; क्योंकि उन मुनियोंकी तपस्याएँ (तपस्यासे उत्पन्न शक्तियाँ) भगवान् शंकरसे प्रत्याहत होकर वैसे ही प्रभावशून्य हो गयीं, जैसे आकाशमें सूर्यके प्रकाशसे प्रत्याहत ताराएँ प्रभावशून्य हो जाती हैं॥ २२-२३॥

ते भग्नतपसो विप्रा: समेत्य वृषभध्वजम्।
को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिता:॥ २४॥

सोऽब्रवीद् भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागत:।
इदानीं भार्यया देशे भवद्भिरिह सुव्रता:॥ २५॥

इस प्रकार अपनी तपस्याको निष्प्रभाव देखकर मोहित हुए वे मुनि वृषभध्वज देवेशके पास जाकर उनसे पूछने लगे—'आप कौन हैं?' तब उन भगवान् ईशने कहा—सुव्रतो! इस समय आप लोगोंके इस स्थानमें मैं पत्नीसहित तपस्या करनेके लिये आया हूँ॥ २४-२५॥

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुंगवा:।
ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर॥ २६॥

उनके उस वाक्यको सुनकर उन भृगु आदि श्रेष्ठ मुनियोंने कहा—वस्त्र धारणकर, भार्याका परित्यागकर तपस्या करो॥ २६॥

अथोवाच विहस्येश: पिनाकी नीललोहित:।
सम्प्रेक्ष्य जगतो योनिं पार्श्वस्थं च जनार्दनम्॥ २७॥

कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकै:।
त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञै: शान्तमानसै:॥ २८॥

तब नीललोहित पिनाकी ईश्वरने हँसकर पार्श्वभागमें स्थित संसारके मूल कारण जनार्दनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—धर्मको जाननेवाले तथा शान्त मनवाले और अपनी भार्याके पालन-पोषणमें तत्पर रहनेवाले आप लोगोंने मुझसे यह कैसे कहा कि अपनी भार्याका परित्याग कर दो॥ २७-२८॥

ऋषय ऊचु:

व्यभिचाररता नार्य: संत्याज्या: पतिनेरिता:।
अस्माभिरेषा सुभगा तादृशी त्यागमर्हति॥ २९॥

ऋषियोंने कहा—(शास्त्रोंके अनुसार) पतिका कर्तव्य है कि व्यभिचारिणी पत्नीको (भरण-आच्छादनकी व्यवस्था भले ही कर दे, पर) पत्नीरूपमें उसे न स्वीकार करे। अत: आपको भी इस प्रकारकी इस सुन्दरीका त्याग करना चाहिये॥ २९॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति।
नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामि कदाचन॥ ३०॥

महादेव बोले—विप्रो! यह कभी मनसे भी किसी दूसरेकी इच्छा नहीं करती और न मैं कभी इसका परित्याग करता हूँ॥ ३०॥

ऋषय ऊचु:

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभि: पुरुषाधम।
उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेव हि॥ ३१॥

ऋषियोंने कहा—पुरुषाधम! हमने इसे यहाँ व्यभिचार करते हुए देखा है। आपने असत्य कहा है। अत: शीघ्र ही यहाँसे चले जाइये॥ ३१॥

एवमुक्ते महादेव: सत्यमेव मयेरितम्।
भवतां प्रतिभात्येषेत्युक्त्वासौ विचचार ह॥ ३२॥

सोऽगच्छद्धरिणा सार्धं मुनीन्द्रस्य महात्मन:।
वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थी परमेश्वर:॥ ३३॥

दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती।
वसिष्ठस्य प्रिया भार्या प्रत्युद्गम्य ननाम तम्॥ ३४॥

ऋषियोंके ऐसा कहनेपर महादेवने कहा—मैंने सत्य ही कहा है। आपको यह (मेरे पार्श्वमें विद्यमान सुन्दरी स्त्री) ऐसी प्रतीत होती है। ऐसा कहकर महादेव विचरण करने लगे। भिक्षाकी इच्छासे वे परमेश्वर विष्णुके साथ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठके पवित्र आश्रममें गये। भिक्षा माँगते हुए देवको आये देखकर वसिष्ठकी प्रिय पत्नी अरुन्धतीने समीपमें जाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ३२—३४॥

प्रक्षाल्य पादौ विमलं दत्त्वा चासनमुत्तमम्।
सम्प्रेक्ष्य शिथिलं गात्रमभिघातहतं द्विजैः।
संधयामास भैषज्यैर्विषण्णा वदना सती॥ ३५॥

(परमेश्वरके) चरणोंको धोकर और शुद्ध उत्तम आसन प्रदान कर द्विजोंके आघातसे आहत उनके शिथिल शरीरको देखकर अत्यन्त खिन्न सती (अरुन्धती)-ने (उनके व्रणोंपर) औषधि लगायी और भार्यासहित (परमेश्वरकी) उन्होंने (अरुन्धतीने) महती पूजा की तथा पूछा—'आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं, आपका आचार क्या है?' महादेवने उनसे कहा—'मैं सिद्धोंमें श्रेष्ठ (सिद्ध) हूँ।' जो यह ब्रह्ममय शुद्ध मण्डल सदा प्रकाशित होता है वही मेरे देवता (आस्पद) हैं। मैं सदा ही उनको धारण करता हूँ॥ ३५—३७॥

चकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्यया।
को भवान् कुत आयातः किमाचारो भवानिति।
उवाच तां महादेवः सिद्धानां प्रवरोऽस्म्यहम्॥ ३६॥

यदेतन्मण्डलं शुद्धं भाति ब्रह्ममयं सदा।
एषैव देवता मह्यं धारयामि सदैव तत्॥ ३७॥

इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमाननुगृह्य पतिव्रताम्।
ताडयाञ्चक्रिरे दण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजाः॥ ३८॥

ऐसा कहकर तथा पतिव्रता (अरुन्धती)-पर कृपा करके श्रीमान् (महादेव) चल पड़े। द्विज उन्हें डंडों, ढेलों तथा मुक्कोंसे मारने लगे। नग्न तथा विकृत लक्षणवाले गिरिशको घूमते हुए देखकर मुनियोंने कहा—हे दुर्मते! तुम अपने इस लिङ्गको उखाड़ो। महायोगी शंकरने उनसे कहा—आप लोगोंको यदि मेरे लिङ्गके प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया हो तो मैं वैसा ही करूँगा॥ ३८—४०॥

दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतलक्षणम्।
प्रोचुरेतद् भवाँल्लिङ्गमुत्पाटयतु दुर्मते॥ ३९॥

तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शंकरः।
युष्माकं मामके लिङ्गे यदि द्वेषोऽभिजायते॥ ४०॥

इत्युक्त्वोत्पाटयामास भगवान् भगनेत्रहा।
नापश्यंस्तत्क्षणेनेशं केशवं लिङ्गमेव च॥ ४१॥

तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः।
न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः।
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः॥ ४२॥

ऐसा कहकर भगके नेत्रोंको नष्ट करनेवाले भगवान्ने (अपने) लिङ्गको उखाड़ दिया। पर तत्काल ही सब कुछ अदृश्य हो गया और (मुनियोंने) न शंकरको देखा न केशवको और न लिङ्गको ही देखा और तभी पूरे लोकमें भय उत्पन्न करनेवाले उपद्रव होने लगे। सहस्रकिरण (सूर्य)-का तेज समाप्त हो गया, पृथ्वी काँपने लगी। सभी ग्रह प्रभावहीन हो गये और समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न हो गया॥ ४१-४२॥

अपश्यच्चानसूयात्रेः स्वप्नं भार्या पतिव्रता।
कथयामास विप्राणां भयादाकुलितेक्षणा॥ ४३॥

तेजसा भासयन् कृत्स्नं नारायणसहायवान्।
भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति॥ ४४॥

तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः।
सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्॥ ४५॥

इधर अत्रिकी पत्नी पतिव्रता अनसूयाने स्वप्न देखा। उनके नेत्र भयसे व्याकुल हो गये। उन्होंने ब्राह्मणोंसे (स्वप्नकी बात बताते हुए) कहा—निश्चय ही हम लोगोंके घरमें अपने तेजसे सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित कर रहे शिव (भगवान् शंकर) नारायणके साथ भिक्षा माँगते हुए दिखलायी पड़े थे। उनके वचन सुनकर सशंकित सभी महर्षि जगत्को उत्पन्न करनेवाले महायोगी ब्रह्माजीके पास गये॥ ४३—४५॥

उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः।
चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिः सावित्र्या सहितं प्रभुम्॥ ४६॥

वहाँ उन्होंने ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ विशुद्ध योगिजनोंद्वारा तथा मूर्तिमान् चारों वेदोंद्वारा उपासित होते हुए प्रभु (ब्रह्मा)-को सावित्रीके साथ देखा॥ ४६॥

आसीनमासने रम्ये नानाश्चर्यसमन्विते।
प्रभासहस्रकलिले ज्ञानैश्वर्यादिसंयुते॥ ४७॥

विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम्।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम्॥ ४८॥

विलोक्य वेदपुरुषं प्रसन्नवदनं शुभम्।
शिरोभिर्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्॥ ४९॥
तान् प्रसन्नमना देवश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः।
व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्॥ ५०॥

तस्य ते वृत्तमखिलं ब्रह्मणः परमात्मनः।
ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ ५१॥

ऋषय ऊचुः

कश्चिद् दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः।
भार्यया चारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्न एव हि॥ ५२॥

मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः।
कन्यकानां प्रिया चास्य दूषयामास पुत्रकान्॥ ५३॥

अस्माभिर्विविधाः शापाः प्रदत्ताश्च पराहताः।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गं तु विनिपातितम्॥ ५४॥

अन्तर्हितश्च भगवान् सभार्यो लिङ्गमेव च।
उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयंकराः॥ ५५॥
क एष पुरुषो देव भीताः स्म पुरुषोत्तम।
भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत॥ ५६॥

त्वं हि वेत्सि जगत्यस्मिन् यत्किञ्चिदपि चेष्टितम्।
अनुग्रहेण विश्वेश तदस्माननुपालय॥ ५७॥

विज्ञापितो मुनिगणैर्विश्वात्मा कमलोद्भवः।
ध्यात्वा देवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत॥ ५८॥

ब्रह्मोवाच

हा कष्टं भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम्।
धिग्बलं धिक् तपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह॥ ५९॥

सम्प्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनां परमं निधिम्।
उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिह मोहितैः॥ ६०॥

नाना प्रकारके आश्चर्योंसे समन्वित, हजारों प्रकारकी प्रभासे सुशोभित और ज्ञान तथा ऐश्वर्यसे युक्त रमणीय आसनपर विराजमान परम रमणीय अप्राकृत दिव्य शरीरके कारण शोभासम्पन्न, मुसकानयुक्त, उज्ज्वल नेत्रोंवाले, महाबाहु, छन्दोमय, अजन्मा, प्रसन्नवदन, शुभ एवं श्रेष्ठ चतुर्मुख वेदपुरुष (ब्रह्मा)-को देखकर वे (मुनिजन) भूमिपर मस्तक टेककर ईश्वरकी स्तुति करने लगे—॥ ४७—४९॥

चतुर्मूर्ति चतुर्मुख देवने उनपर प्रसन्न होकर पूछा—'मुनिश्रेष्ठो! आपके आनेका क्या प्रयोजन है?' तब सभी मुनियोंने मस्तकपर हाथ जोड़कर उन परमात्मा ब्रह्माको उस (भगवान् शंकरकी दिव्य लीलाके) सम्पूर्ण वृत्तान्तको बतलाया॥ ५०-५१॥

ऋषियोंने कहा—पवित्र दारुवनमें अत्यन्त सुन्दर कोई पुरुष सम्पूर्ण सुन्दर अङ्गोंवाली अपनी भार्याके साथ नग्न ही प्रविष्ट हुआ। उस ईश्वरने अपने शरीरसे (हमारी) स्त्रियोंके समूहको तथा सभी कन्याओंमें अति रमणीय उसकी प्रियाने (हमारे) पुत्रोंको दूषित (अपनी ओर आकृष्ट) किया। हम लोगोंने उस पुरुषको विविध शाप दिये, किंतु वे निष्फल हो गये, तब हम लोगोंने उसे बहुत मारा और उसके लिङ्गको गिरा दिया, पर तत्काल ही भार्याके साथ भगवान् और लिङ्ग अन्तर्हित हो गये। तभीसे प्राणियोंको भय प्रदान करनेवाले भीषण उत्पात होने लगे हैं॥ ५२—५५॥

पुरुषोत्तम! वह देव-पुरुष कौन है? हम लोग भयभीत हो गये हैं। अच्युत! हम सब आपकी शरणमें आये हैं। इस संसारमें जो कुछ भी चेष्टा होती है, उसे आप अवश्य जानते हैं, इसलिये विश्वेश! अनुग्रह कर आप हमारी रक्षा करें॥ ५६-५७॥

मुनिगणोंके द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जानेपर कमलसे उत्पन्न विश्वात्मा (ब्रह्मा)-ने त्रिशूलका चिह्न धारण करनेवाले देव (शंकर)-का ध्यान करते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ ५८॥

ब्रह्मा बोले—आह! कष्ट है कि आज आप लोगोंका सर्वस्व नष्ट हो गया। आपके बलको धिक्कार है, तपश्चर्याको धिक्कार है, आपका यह सब मिथ्या ही हो गया। पवित्र संस्कारों और निधियोंमें परम निधिको प्राप्तकर वृथाचारी आप लोगोंने मोहवश उनकी उपेक्षा कर दी॥ ५९-६०॥

कांक्षन्ते योगिनो नित्यं यतन्तो यतयो निधिम्।
यमेव तं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥ ६१॥

यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्त्यै वेदवादिनः।
महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥ ६२॥

यं समासाद्य देवानामैश्वर्यमखिलं जगत्।
तमासाद्याक्षयनिधिं हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥ ६३॥

योगी लोग तथा यत्न करनेवाले यति लोग जिस निधिको प्राप्त करनेकी नित्य अभिलाषा करते हैं, उसीको प्राप्तकर आप लोगोंने उपेक्षा कर दी, यह बहुत ही कष्टकी बात है। वैदिक लोग जिसकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, बड़ा कष्ट है कि उन महानिधिको प्राप्तकर भी आप सभीने उनकी उपेक्षा कर दी। हाय! जिसे प्राप्तकर देवताओंके ऐश्वर्य-रूपमें समस्त लोक-लोकान्तर दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उन अक्षयनिधिको प्राप्तकर आपने उनकी उपेक्षा कर दी॥ ६१—६३॥

यत्समापत्तिजनितं विश्वेशत्वमिदं मम।
तदेवोपेक्षितं दृष्ट्वा निधानं भाग्यवर्जितैः॥ ६४॥

यस्मिन् समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत् तदव्ययम्।
तमासाद्य निधिं ब्राह्मं हा भवद्भिर्वृथा कृतम्॥ ६५॥

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः।
न तस्य परमं किञ्चित् पदं समधिगम्यते॥ ६६॥

जिनकी प्राप्ति होनेसे मुझे यह विश्वेश्वरत्व प्राप्त हुआ है, उन (समस्त ऐश्वर्यके) निधानका दर्शनकर भाग्यरहित आप लोगोंने (उनकी) उपेक्षा कर दी। जिनमें वह अविनाशी दिव्य ऐश्वर्य समाहित है, उन ब्रह्मरूप निधिको प्राप्तकर भी आप लोगोंने अपना सुअवसर खो दिया, यह बड़े कष्टकी बात है। इन्हीं देवको महादेव और महेश्वर समझना चाहिये। इनका परम पद (सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य) किंचित् भी प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् जाना नहीं जा सकता॥ ६४—६६॥

देवतानामृषीणां च पितॄणां चापि शाश्वतः।
सहस्रयुगपर्यन्तं प्रलये सर्वदेहिनाम्।
संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः॥ ६७॥

एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा।
एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः॥ ६८॥

योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
द्वापरे भगवान् कालो धर्मकेतुः कलौ युगे॥ ६९॥

रुद्रस्य मूर्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम्।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति प्रभुः॥ ७०॥

हजारों युग-पर्यन्त रहनेवाले प्रलयकालमें ये ही सनातन भगवान् महेश्वर कालरूप होकर देवताओं, ऋषियों तथा पितरों और समस्त देहधारियोंका संहार (अपनेमें लय) करते हैं। ये ही अद्वितीय अपने तेजसे समस्त प्रजाओंकी सृष्टि करते हैं। चक्र, वज्र तथा श्रीवत्सके चिह्नको धारण करनेवाले ये ही हैं (क्योंकि इनमें तथा श्रीविष्णुमें सर्वथा अभेद है), ये ही देव कृतयुगमें योगी, त्रेतामें यज्ञरूप, द्वापरमें भगवान् काल तथा कलियुगमें धर्मकेतु कहलाते हैं। रुद्रकी तीन मूर्तियाँ हैं, इन्होंने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। तमोगुणके अधिष्ठाताको अग्नि, रजोगुणके अधिष्ठाताको ब्रह्मा तथा सत्त्वगुणके अधिष्ठाताको प्रभु विष्णु कहा गया है॥ ६७—७०॥

मूर्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रुवा।
यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्॥ ७१॥

या चास्य पार्श्वगा भार्या भवद्भिरभिवीक्षिता।
सा हि नारायणो देवः परमात्मा सनातनः॥ ७२॥

तस्मात् सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयं व्रजेत्।
स एव मोहयेत् कृत्स्नं स एव परमा गतिः॥ ७३॥

इनकी एक दूसरी मूर्ति है जो दिगम्बरा, शाश्वत तथा शिवात्मिका कहलाती है। उसीमें योगसे युक्त परम ब्रह्म प्रतिष्ठित रहते हैं। जिनको इनके पार्श्वभागमें स्थित भार्याके रूपमें आपने देखा है, वे ही सनातन परमात्मा नारायण देव हैं। उनसे ही यह सब उत्पन्न है और उनमें ही यह सब लीन भी हो जाता है। वे ही सबको मोहित करते हैं और वे ही परम गति हैं॥ ७१—७३॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
एकशृङ्गो महानात्मा पुराणोऽष्टाक्षरो हरिः ॥ ७४ ॥
चतुर्वेदश्चतुर्मूर्तिस्त्रिमूर्तिस्त्रिगुणः परः।
एकमूर्तिरमेयात्मा नारायण इति श्रुतिः ॥ ७५ ॥

महान् आत्मा पुराण (शाश्वत) पुरुष हरि एक शृंगधारी (अनन्त ब्रह्माण्डको एक शृंग-रूपमें धारण करनेवाले) अष्टाक्षर (अष्टमूर्तिरूप तथा अविनाशी तत्त्व) हजारों सिरवाले, हजारों आँखवाले एवं हजारों चरणवाले हैं। श्रुतिका कथन है कि नारायण चतुर्वेद, चतुर्मूर्ति, त्रिमूर्ति एवं त्रिगुण होते हुए भी एकमूर्ति तथा अमेयात्मा हैं ॥ ७४-७५ ॥

ऋतस्य गर्भो भगवानापो मायातनुः प्रभुः।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्धर्ममोक्षिभिः ॥ ७६ ॥
संहृत्य सकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः।
शेते योगामृतं पीत्वा यत् तद् विष्णोः परं पदम् ॥ ७७ ॥
न जायते न म्रियते वर्धते न च विश्वसृक्।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरजः ॥ ७८ ॥

माया (-से विविध) शरीर धारण करनेवाले तथा (समस्त जगत्के जीवन-जलको ही अपने आयतनके रूपमें स्वीकार करनेवाले) जलस्वरूप प्रभु भगवान् कर्मफलके एकमात्र अधिष्ठाता हैं। धर्म तथा मोक्षकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण लोग विविध मन्त्रोंके द्वारा (उनकी) स्तुति करते हैं। कल्पान्तमें समस्त विश्वका संहार करनेके अनन्तर योगामृतका पानकर पुरुषोत्तम (भगवान् शंकर) जिस सर्वाधिष्ठान, स्वप्रकाशमें शयन (परम विश्रान्तिका अनुभव) करते हैं, वही विष्णु नामका परम पद है। विश्वकी सृष्टि करनेवाले ये न जन्म लेते हैं, न मरते हैं और न वृद्धिको प्राप्त होते हैं। वैदिक लोग इन्हीं अजन्मा (भगवान्)-को अव्यक्त मूलप्रकृति कहते हैं ॥ ७६—७८ ॥

ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलं जगत्।
अजस्य नाभौ तद् बीजं क्षिपत्येष महेश्वरः ॥ ७९ ॥
तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्।
महान्तं पुरुषं विश्वमपां गर्भमनुत्तमम् ॥ ८० ॥
न तं विदथ जनकं मोहितास्तस्य मायया।
देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम् ॥ ८१ ॥

ये महेश्वर (प्रलयरूपी) रात्रिके बीत जानेपर सम्पूर्ण जगत्की सृष्टिकी इच्छासे अजकी नाभिमें इस (सृष्टि)-के बीजको स्थापित करते हैं। उन (अज)-के रूपमें मुझे ही आप लोग जानें। मैं ही समस्त लोकोंका मूल होनेके कारण महात्मा, ब्रह्मा, सर्वतोमुख, महान् पुरुष, विश्वात्मा अप् (समस्त स्थूल जल)-का अधिष्ठाता सर्वोत्तम देव हूँ। अनन्त ब्रह्माण्डके बीजको मेरेमें स्थापित करनेवाले उन परमपिता देवाधिपति महादेव हरको आप लोग उनकी मायासे मोहित होनेके कारण नहीं जान सके ॥ ७९—८१ ॥

एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान् हरः।
विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च ॥ ८२ ॥
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद् विद्यते परम्।
स वेदान् प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम ॥ ८३ ॥

वे ही अनादि देव भगवान् महादेव हर विष्णुके साथ युक्त होकर सृष्टि और संहार करते रहते हैं। उनका कोई कार्य (कर्तव्य) नहीं है और उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। योगमायामय शरीर धारण करनेवाले उन्होंने पूर्वकालमें मुझे वेद प्रदान किया ॥ ८२-८३ ॥

स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च।
तमेव मुक्तये ज्ञात्वा व्रजेत शरणं भवम्॥ ८४॥

इतीरिता भगवता मरीचिप्रमुखा विभुम्।
प्रणम्य देवं ब्रह्माणं पृच्छन्ति स्म सुदुःखिताः॥ ८५॥

मुनय ऊचुः

कथं पश्येम तं देवं पुनरेव पिनाकिनम्।
ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम्॥ ८६॥

पितामह उवाच

यद् दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम्।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम्॥ ८७॥

पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः।
वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः॥ ८८॥

संस्थाप्य शांकरैर्मन्त्रैर्ऋग्यजुःसामसम्भवैः।
तपः परं समास्थाय गृणन्तः शतरुद्रियम्॥ ८९॥

समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः।
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यथ॥ ९०॥

ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः।
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति॥ ९१॥

ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम्।
जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः॥ ९२॥

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितः यथा।
अजानन्तः परं देवं वीतरागा विमत्सराः॥ ९३॥

स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च।
नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥ ९४॥

शैवालभोजनाः केचित् केचिदन्तर्जलेशयाः।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठाग्रविष्ठिताः॥ ९५॥

वे मायी (अपनी) मायाद्वारा सभीकी सृष्टि और संहार करते हैं। उन्हें ही मुक्तिका मूल समझकर उन भवकी ही शरणमें जाना चाहिये। भगवान् (ब्रह्मा)-के ऐसा कहनेपर मरीचि आदि प्रमुख ऋषियोंने विभु ब्रह्मदेवको प्रणामकर अत्यन्त दुःखित होकर उनसे पूछा—॥ ८४-८५॥

मुनिजन बोले—समस्त देवोंके स्वामी! उन पिनाकधारी देवका दर्शन हम पुनः किस प्रकार कर पायेंगे, आप हमें बतायें। आप शरण चाहनेवालोंकी रक्षा करनेवाले हैं॥ ८६॥

पितामहने कहा—पृथ्वीपर गिराये गये उनके (महेश्वरके) जिस लिङ्गको आप लोगोंने देखा था, उसी लिङ्गके समान श्रेष्ठ लिङ्ग बनाकर सपत्नीक तथा पुत्रोंसहित आदरपूर्वक विविध वैदिक मन्त्रोंसे ब्रह्मचर्यपूर्वक आप लोग उसकी पूजा करें। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें कहे गये शंकरके मन्त्रोंसे (लिङ्गकी) स्थापना कर परम तपका अवलम्बन कर, शतरुद्रियका जप करते हुए समाहित होकर बन्धुओं तथा पुत्रोंसहित आप सभी लोग हाथ जोड़कर शूलपाणिकी शरणमें जायँ। तदनन्तर आप लोग अकृतात्माओंके लिये दुर्दर्श उन देवेश्वरका दर्शन करेंगे, जिनको देख लेनेपर सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म दूर हो जाता है॥ ८७—९१॥

तब अमित ओजस्वी वरदाता ब्रह्माको प्रणामकर प्रसन्नमनवाले वे सभी महर्षि पुनः देवदारु-वनकी ओर चले गये और परम देवको न जानते हुए भी उन महर्षियोंने राग एवं मात्सर्यसे रहित होकर ब्रह्माजीने जैसा बताया था, तदनुसार अनेकविध यज्ञीय वेदियों, पर्वतोंकी गुफाओं तथा जनशून्य नदियोंके सुन्दर किनारोंपर भगवान् शंकरकी आराधना प्रारम्भ कर दी॥ ९२—९४॥

कुछ लोग शैवालका भोजन करते हुए, कुछ जलके अंदर शयनकी मुद्रामें स्थित रहते हुए तथा कुछ लोग खुले आकाशके नीचे पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित रहकर श्रीशंकरकी आराधनामें दत्तचित्त हो गये॥ ९५॥

दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथा परे।
शाकपर्णाशिनः केचित् सम्प्रक्षाला मरीचिपाः॥ ९६ ॥

वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा परे।
कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम्॥ ९७ ॥

कुछ दूसरे दन्तोलूखली अर्थात् दाँतोंके ही द्वारा अनाजको तुष (भूसी) आदिसे रहितकर बिना पकाये खा लेते थे, कुछ दूसरे पत्थरपर ही अन्नको कूटकर खा लेते थे[1]। कुछ शाक तथा पत्तोंका ही भोजन करते थे, कुछ लोग एक समय भोजन करके अङ्गोंकी चिन्ता (शारीरिक सौष्ठव आदिकी चिन्ता) नहीं रखते थे, कुछ लोग स्नानपरायण एवं कुछ लोग सूर्य-किरणोंका ही पान करते थे। कुछ लोग वृक्षके नीचे रहते थे, दूसरे शिलारूपी शय्यापर ही सोते थे। इस प्रकार तपस्या (विविधाके) द्वारा महेश्वरकी पूजा करते हुए वे (मुनिजन) समय व्यतीत कर रहे थे॥ ९६-९७॥

ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रपन्नार्तिहरो हरः।
चकार भगवान् बुद्धिं प्रबोधाय वृषध्वजः॥ ९८ ॥

देवः कृतयुगे ह्यस्मिन् शृङ्गे हिमवतः शुभे।
देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः॥ ९९ ॥

भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः।
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः॥ १००॥

(मुनियोंको इस प्रकार पश्चात्तापपूर्वक तपस्यामें निरत देखकर) उनकी व्याकुलता दूर करनेके लिये शरणागतोंके दुःखहर्ता भगवान् वृषध्वज हरने उन्हें प्रबोधित (मोहमुक्त) करनेका विचार किया। इसलिये प्रसन्न परमेश्वर वे देव (शंकर) सत्ययुगमें हिमालयके इस शुभ शिखरपर स्थित देवदारु-वनमें पुनः आये। उनके सारे अङ्ग भस्मसे उपलिप्त होनेके कारण श्वेत वर्णके थे, नग्न थे, विकृत लक्षणवाले थे, हाथमें उल्मुक (जलती लकड़ी) लेकर उसे घुमा रहे थे और उनके नेत्र लाल तथा पिंगलवर्णके थे॥ ९८—१००॥

क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद् गायति विस्मितः।
क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारी क्वचिद् रौति मुहुर्मुहुः॥ १०१ ॥

आश्रमेऽभ्यागतो भिक्षां याचते च पुनः पुनः।
मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद् वनमागतः॥ १०२॥

कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वे देवः पिनाकधृक्।
सा च पूर्ववद् देवेशी देवदारुवनं गता॥ १०३॥

कभी वे भयंकर रूपसे हँसते, कभी आश्चर्ययुक्त हो गान करने लगते, कभी शृंगारपूर्वक नृत्य करने लगते और कभी बार-बार रोने लगते। (इस स्थितिमें भगवान्) महादेव आश्रममें आकर बार-बार भिक्षा माँगने लगे। इस प्रकार अपना मायामय रूप बनाकर वे देव (शंकर) उस (देवदारु) वनमें विचरने लगे और उन पिनाकधारी देवने पर्वतपुत्री गौरीको अपने पार्श्वभागमें कर लिया था। वे देवेशी पूर्वके समान ही देवदारु-वनमें महादेवके साथ आयीं॥ १०१—१०३॥

दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम्।
प्रणेमुः शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम्॥ १०४॥

वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैः सूक्तैर्माहेश्वरैः शुभैः।
अथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैर्ब्रह्मभिर्भवम्॥ १०५॥

देवीके साथ कपर्दी (शंकर) देवको आया देखकर उन्होंने (मुनियोंने) भूमिमें सिर रखकर ईश्वरको प्रणाम किया और स्तुति की। वे विविध वैदिक मन्त्रों, शुभ माहेश्वर सूक्तों, अथर्वशिरस् तथा अन्य रुद्रसम्बन्धी वेदमन्त्रोंसे शंकरकी स्तुति करने लगे—॥ १०४-१०५॥

१-भोज्य अन्नकी स्वादिष्टताके प्रति अनासक्त होनेसे अन्नके परिष्कारके साधन उलूखल तथा सिलको उपयोगमें नहीं लाते थे। (इनके उपयोगमें हिंसा भी होती है, इसलिये तपस्वी लोग विशेषरूपसे इनका वर्जन करते हैं।)

नमो देवादिदेवाय महादेवाय ते नमः।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे॥ १०६॥

नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने।
सर्वप्रणतदेहाय स्वयमप्रणतात्मने॥ १०७॥

अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे॥ १०८॥

नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः।
नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च॥ १०९॥

विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमस्ते लेलिहानाय शितिकण्ठाय ते नमः॥ ११०॥

अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः।
नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च॥ १११॥

गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिपतये ब्रह्माधिपतये नमः॥ ११२॥

देवोंके आदिदेवको नमस्कार है। महादेव! आपको नमस्कार है। श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है। दिगम्बर, (स्वेच्छासे) विकृत (रूप धारण करनेवाले) तथा पिनाकी आपको नमस्कार है। समस्त प्रणतजनोंके आश्रय तथा स्वयं निराश्रय (निरधिष्ठान देव)-को नमस्कार है। अन्त करनेवाले (यम)-का भी अन्त करनेवाले और सबका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। नृत्यपरायण और भैरवरूप आपको नमस्कार है। नर-नारी शरीरवाले (अर्धनारीश्वर) एवं योगियोंके गुरु आपको नमस्कार है। दान्त, शान्त, तापस (विरक्त) तथा हरको नमस्कार है। अत्यन्त भीषण, चर्माम्बरधारी रुद्रको नमस्कार है। लेलिहानको नमस्कार है, शितिकण्ठको नमस्कार है। अघोर तथा घोर रूपवाले वामदेवको नमस्कार है। धतूरेकी माला धारण करनेवाले और देवीके प्रियकर्ताको नमस्कार है। गङ्गाजलकी धाराको धारण करनेवाले परमेष्ठी शम्भुको नमस्कार है। योगाधिपतिको नमस्कार है तथा ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है॥ १०६—११२॥

प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गरागिणे।
नमस्ते घनवाहाय दंष्ट्रिणे वह्निरेतसे॥ ११३॥

ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च।
विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥ ११४॥

नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम्।
कपालपाणये तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय ते।
नमः कनकलिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः॥ ११५॥

नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः।
नमो भुजंगहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः॥ ११६॥

भस्मका अङ्गराग लगानेवाले प्राणरूप आपको बार-बार नमस्कार है। घनवाह[१]! दंष्ट्री तथा वह्निरेताको[२] नमस्कार है। ब्रह्माके सिरका हरण करनेवाले कालरूपको नमस्कार है। हम आपके न आगमनको जानते हैं और न गमनको ही जानते हैं। विश्वेश्वर! महादेव! आप जिस रूपमें हैं, उसी रूपमें आपको नमस्कार है। प्रमथनाथ तथा शुभ सम्पदा देनेवालेको नमस्कार है। हाथमें कपाल[३] धारण करनेवाले आपको तथा आप मीढुष्टम—शिवलिङ्ग-विग्रहको नमस्कार है। कनकलिङ्ग[४] और वारिलिङ्ग[५] आपको नमस्कार है। अग्नि तथा सूर्यस्वरूप लिङ्गवालेको नमस्कार है, ज्ञानलिङ्ग! आपको नमस्कार है। सर्पोंकी मालावाले और कर्णिकारप्रिय[६] आपको नमस्कार है। किरीटी, कुण्डल धारण करनेवाले तथा कालके भी काल आपको नमस्कार है॥ ११३—११६॥

१-मेघ शंकरके वाहन हैं, इसलिये वे 'घनवाहन' हैं।
२-भगवान् शंकरके वीर्यसे स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है और स्वर्ण वह्निका ही एक रूप है, इसलिये भगवान् शंकरको 'वह्निरेता' कहते हैं।
३-ब्रह्माके सिर-हरणकी कथा पिछले अध्यायमें आयी है।
४-वह्नि महादेवकी मूर्ति है और वह्निका ही रूप कनक (स्वर्ण) है, इसीलिये महादेवको 'कनकलिङ्ग' कहते हैं।
५-जल भी भगवान् महादेवकी मूर्ति है, इसलिये महादेवको वारि (जल)-की मूर्ति कहते हैं।
६-कर्णिकार पुष्पविशेषका नाम है।

वामदेव महेशान देवदेव त्रिलोचन।
क्षम्यतां यत्कृतं मोहात् त्वमेव शरणं हि नः॥ ११७॥

चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च।
ब्रह्मादीनां च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽसि शंकर॥ ११८॥

अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानाद् यत्किंचित् कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥ ११९॥

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
ऊचुः प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥ १२०॥

वामदेव! त्रिलोचन! महेशान! देवाधिदेव! मोहवश हमने जो किया, उसे आप क्षमा करें। हम सभी आपकी शरणमें हैं। आपके चरित्र विचित्र, गहन तथा गुह्य हैं। शंकर! आप ब्रह्मा आदि सभीके लिये दुर्विज्ञेय हैं। मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञानसे जो कुछ भी करता है, वह सब आप भगवान् ही अपनी योगमायासे करते हैं। इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर प्रसन्न-मनसे (मुनियोंने) उनको प्रणाम किया और कहा—हम लोग आपको पूर्वरूपमें देखना चाहते हैं॥ ११७—१२०॥

तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः।
स्वमेव परमं रूपं दर्शयामास शंकरः॥ १२१॥
तं ते दृष्ट्वाथ गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम्।
यथा पूर्वं स्थिता विप्राः प्रणेमुर्हृष्टमानसाः॥ १२२॥
ततस्ते मुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम्।
भृग्वङ्गिरोवसिष्ठास्तु विश्वामित्रस्तथैव च॥ १२३॥
गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचिः कश्यपश्चापि संवर्तश्च महातपाः।
प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन्॥ १२४॥

उनकी (मुनियोंकी इस) स्तुतिको सुनकर चन्द्रभूषण सोम शंकरने अपने परम रूपका दर्शन (उन्हें) कराया। उन पिनाकी गिरिशको देवी (पार्वती)-के साथ पहले-जैसे (मङ्गलमय) रूपमें स्थित देखकर प्रसन्न-मनवाले ब्राह्मणोंने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ तथा विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, कश्यप तथा महातपस्वी संवर्त आदि सभी ऋषियोंने महेश्वरकी स्तुतिकर उन देवदेवेशको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १२१—१२४॥

कथं त्वां देवदेवेश कर्मयोगेन वा प्रभो।
ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि॥ १२५॥

केन वा देवमार्गेण सम्पूज्यो भगवानिह।
किं सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद् ब्रवीहि नः॥ १२६॥

देवदेवेश! प्रभो! हम सब किस प्रकारसे आपकी सदा पूजा करें, कर्मयोग या ज्ञानयोगसे? किस देवमार्ग (प्रशस्त मार्ग)-के द्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये, हम लोगोंके लिये क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय है, यह सब आप हमें बतलायें॥ १२५-१२६॥

देवदेव उवाच

एतद् वः सम्प्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम्।
ब्रह्मणे कथितं पूर्वमादावेव महर्षयः॥ १२७॥

देवदेवने कहा—महर्षियो! मैं आप लोगोंको यह उत्तम और गम्भीर रहस्य बतलाता हूँ। पूर्वकालमें (मैंने) इसे ब्रह्माजीको बतलाया था॥ १२७॥

सांख्ययोगो द्विधा ज्ञेयः पुरुषाणां हि साधनम्।
योगेन सहितं सांख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम्॥ १२८॥

न केवलेन योगेन दृश्यते पुरुषः परः।
ज्ञानं तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम्॥ १२९॥

भवन्तः केवलं योगं समाश्रित्य विमुक्तये।
विहाय सांख्यं विमलमकुर्वन्त परिश्रमम्॥ १३०॥

एतस्मात् कारणात् विप्रा नृणां केवलधर्मिणाम्।
आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन् मोहसम्भवम्॥ १३१॥

पुरुषोंके लिये साधनस्वरूप दो प्रकारका सांख्ययोग समझना चाहिये। योगसहित (कर्मयोगसहित अर्थात् अनासक्त-भावसे कर्मनिष्ठाके साथ) सांख्य (ज्ञाननिष्ठा) पुरुषोंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। केवल योगके द्वारा परम पुरुषका दर्शन नहीं होता। (शुद्ध) ज्ञान (ज्ञाननिष्ठा) भलीभाँति केवल मोक्षफलको देनेवाला है। आप लोग मुक्ति प्राप्त करनेके लिये विमल सांख्यका परित्याग करके केवल योगका ही अवलम्बनकर परिश्रम कर रहे थे। ब्राह्मणो! इसी कारणसे केवल धर्म करनेवाले (कर्ममात्रनिष्ठ-कर्मव्यसनी) मनुष्योंको मोह उत्पन्न होता है, यह बतानेके लिये मैं इस स्थानपर आया हूँ॥ १२८—१३१॥

तस्माद् भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम्।
ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च॥ १३२॥

अतः आप लोगोंको मोक्षके साधनरूप विशुद्ध ज्ञानको प्रयत्नपूर्वक जानना, सुनना तथा उसका साक्षात्कार करना चाहिये॥ १३२॥

एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः।
आनन्दो निर्मलो नित्यं स्यादेतत् सांख्यदर्शनम्॥ १३३॥

एतदेव परं ज्ञानमेष मोक्षोऽत्र गीयते।
एतत् कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः॥ १३४॥

आश्रित्य चैतत् परमं तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम्॥ १३५॥

आत्मा सर्वत्र व्याप्त, विशुद्ध, चिन्मात्र, आनन्द, निर्मल, नित्य तथा एक है। यही सांख्य (ज्ञाननिष्ठाका) दर्शन है। यही परम ज्ञान है, इसीको यहाँ मोक्ष कहा गया है। यही निर्मल मोक्ष है और यही शुद्ध ब्रह्मभाव बताया गया है। इस परम (ज्ञान)-का आश्रय ग्रहणकर उसमें ही निष्ठा रखते हुए और उसीके परायण रहते हुए महात्मा तथा यतिजन मुझ विश्वरूप ईश्वरका दर्शन करते हैं॥ १३३—१३५॥

एतत् तत् परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम्।
अहं हि वेद्यो भगवान् मम मूर्तिरियं शिवा॥ १३६॥

बहूनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु।
तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुंगवाः॥ १३७॥

यही वह सत्, निरञ्जन तथा अद्वितीय परम ज्ञान है। मुझे ही भगवान् जानना चाहिये और यह शिवा मेरी ही मूर्ति है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! सिद्धिके लिये यहाँ (शास्त्रोंमें) बहुतसे साधन बताये गये हैं, किंतु उनमें मेरे विषयका ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है॥ १३६-१३७॥

ज्ञानयोगरताः शान्ता मामेव शरणं गताः।
ये हि मां भस्मनिरता ध्यायन्ति सततं हृदि॥ १३८॥

मद्भक्तिपरमा नित्यं यतयः क्षीणकल्मषाः।
नाशयाम्यचिरात् तेषां घोरं संसारसागरम्॥ १३९॥

भस्म धारण करनेवाले, (संसारकी निःसारताको हृदयसे समझनेवाले) ज्ञानयोगपरायण, शान्त और मेरे ही शरणमें आये हुए जो लोग हृदयमें निरन्तर मेरा ही ध्यान करते हैं और नित्य मेरी परम भक्तिमें तत्पर हैं, कल्मषोंसे रहित एवं पूर्ण संयत हैं, उन लोगोंके घोर संसाररूपी सागरको मैं शीघ्र ही नष्ट कर देता हूँ॥ १३८-१३९॥

प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः।
ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत्॥ १४०॥

निर्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं परम्।
गुह्याद् गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये॥ १४१॥

भस्मसे धूसरित शरीरवाला होकर संयतमन तथा शान्त होकर, ब्रह्मचर्यव्रत-परायण होते हुए वस्त्रादि परिधानकी आसक्तिसे रहित होकर पाशुपत-व्रतका पालन करना चाहिये। मुक्तिप्राप्तिके लिये मैंने पूर्वकालमें गुह्यसे भी गुह्यतम, वेदके साररूप, सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ पाशुपत-व्रतका उपदेश किया था॥ १४०-१४१॥

यद् वा कौपीनवसनः स्याद् वैकवसनो मुनिः।
वेदाभ्यासरतो विद्वान् ध्यायेत् पशुपतिं शिवम्॥ १४२॥

एष पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः।
भस्मच्छन्नैर्हि सततं निष्कामैरिति विश्रुतिः॥ १४३॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः॥ १४४॥

अथवा कौपीन वस्त्र या एक वस्त्र धारणकर विद्वान् मुनिको वेदाभ्यासमें रत रहते हुए पशुपति शिवका (सतत) ध्यान करना चाहिये। मोक्षकी अभिलाषावाले मुमुक्षुजनोंको सतत भस्मसे उपलिप्त रहकर निष्कामभावसे इस पाशुपतयोगका सेवन करना चाहिये। ऐसा श्रुतिका कथन है। राग, भय तथा क्रोधसे सर्वथा रहित, मुझे ही सर्वस्व समझनेवाले और मेरा ही आश्रय ग्रहण करनेवाले बहुतसे (भक्तजन) इस योगके द्वारा पवित्र होकर मेरे भावको प्राप्त हुए हैं॥ १४२—१४४॥

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन् मोहनानि तु।
वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु॥ १४५॥

वामं पाशुपतं सोमं लाकुलं चैव भैरवम्।
असेव्यमेतत् कथितं वेदबाह्यं तथेतरम्॥ १४६॥

इस संसारमें मोहित करनेवाले तथा वेदमतका विरोध करनेवाले अन्य भी शास्त्र हैं, वे मेरे द्वारा ही कहे गये हैं। वाम (मार्ग), पाशुपत, सोम, लाकुल तथा भैरव (मार्ग) तथा अन्य—ये असेव्य और वेदबाह्य कहे गये हैं॥ १४५-१४६॥

वेदमूर्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः।
ज्ञायते मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा वेदं सनातनम्॥ १४७॥

स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम्।
अचिरादैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः॥ १४८॥

मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः।
ध्यातमात्रो हि सांनिध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः॥ १४९॥

ब्राह्मणो! मैं वेदमूर्ति हूँ। सनातन वेदका परित्यागकर दूसरे शास्त्रको जाननेवाले लोग मेरे स्वरूपको नहीं जान सकते। (अतः आप लोग) इस मार्गकी स्थापना करें, महेश्वरकी पूजा करें (इससे) शीघ्र ही आप लोगोंको ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है। श्रेष्ठ जनो! आप सभीकी मुझमें महान् भक्ति हो। श्रेष्ठ मुनियो! ध्यान करनेमात्रसे मैं आपको अपना सांनिध्य प्रदान करूँगा॥ १४७—१४९॥

इत्युक्त्वा भगवान् सोमस्तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि दारुवने तस्मिन् पूजयन्ति स्म शंकरम्।
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः॥ १५०॥

समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः।
वितेनिरे बहून् वादानध्यात्मज्ञानसंश्रयान्॥ १५१॥

इतना कहकर भगवान् सोम (शंकर) वहींपर अन्तर्धान हो गये। वे शान्त महर्षि भी ब्रह्मचर्यपरायण होकर, ज्ञानयोग-परायण रहते हुए उस दारुवनमें शंकरकी पूजा करने लगे। उन ब्रह्मवादी महात्मा मुनिगणोंने (स्वयं मोहरहित हो जानेके कारण) एकत्रित होकर अध्यात्मज्ञान-सम्बन्धी बहुतसे सिद्धान्तोंका विस्तार किया॥ १५०-१५१॥

किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि।
कोऽपि स्यात् सर्वभावानां हेतुरीश्वर एव च॥ १५२॥

इत्येवं मन्यमानानां ध्यानमार्गावलम्बिनाम्।
आविरासीन्महादेवी देवी गिरिवरात्मजा॥ १५३॥

इस जगत्का मूल (कारण) क्या है? (उत्तर—) हमारी आत्मा ही इस जगत्का मूल है। सभी भाव पदार्थोंका हेतु कौन है? (उत्तर—) ईश्वर ही सभी भावोंका जनक है। इस प्रकारकी दृढ़ धारणाके साथ ध्यानमार्गका अवलम्बन करनेवाले उन महर्षियोंके समक्ष श्रेष्ठ पर्वत (हिमालय)-की पुत्री महादेवी पार्वती प्रकट हुई॥ १५२-१५३॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता।
स्वभाभिर्विमलाभिस्तु पूरयन्ती नभस्तलम्॥ १५४॥

तामन्वपश्यन् गिरिजाममेयां
ज्वालासहस्रान्तरसंनिविष्टाम्।
प्रणेमुरेकामखिलेशपत्नीं
जानन्ति ते तत् परमस्य बीजम्॥ १५५॥

करोड़ों सूर्यके समान, ज्वालामालाओं (तेजोराशि)-से समावृत वे अपनी विमल प्रभासे आकाशमण्डलको आपूरित कर रही थीं। हजारों ज्वालाओं (तेजोमण्डल)-के मध्यमें प्रतिष्ठित, अतुलनीय, अद्वितीय सम्पूर्ण जगत्के ईश (शंकर)-की पत्नी, उन गिरिजाका दर्शनकर मुनियोंने उन्हें प्रणाम किया। क्योंकि वे जानते हैं कि ये ही परमेश्वरी परमेश्वर महेश्वरकी मूलशक्ति (बीज) हैं॥ १५४-१५५॥

अस्माकमेषा परमेशपत्नी
गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना।
पश्यन्त्यथात्मानमिदं च कृत्स्नं
तस्यामथैते मुनयश्च विप्राः॥ १५६॥

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम्।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं
रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम्॥ १५७॥

आलोक्य देवीमथ देवमीशं
प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम् ।
ज्ञानं तदैशं भगवत्प्रसादा-
दाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु॥ १५८॥

अनन्तर उन लोगोंने ऐसी भावना की—ये ही परमेश-पत्नी हम सबकी गति हैं, आत्मा हैं, इन्हें गगन (आकाश) नामसे कहा जाता है, (क्योंकि ये महादेवी वस्तुगत्या निराकार तथा परम व्यापक हैं, अतएव परम अवकाशस्वरूप सर्वाधिष्ठान होनेसे कथंचित् आकाशके द्वारा तुलनीय हैं और परब्रह्मका व्योम (आकाश) नाम है ही तथा इन महादेवी एवं परब्रह्ममें सर्वथा अभेद है।) समस्त मुनि एवं समस्त विप्र इन्हींमें अपनेको तथा समस्त प्रपञ्चको देखते हैं। (मुनियोंके इस पवित्र भावसे संतुष्ट होकर) परमेश्वरकी पत्नी (पार्वती)-ने उन्हें (विशेषरूपसे) देखा। इसी बीच (मुनियोंने) सभीके मूल कारण, नियामक, पुराण पुरुष, बृहत् एवं रुद्रात्मक कवि, देव शम्भु (महादेव)-का दर्शन किया। तदनन्तर देवी (पार्वती) तथा देव (शंकर)-को देखकर उन्होंने (मुनियोंने) प्रणाम किया, उत्तम आनन्द प्राप्त किया और उनमें भगवान् (परमेश)-की कृपासे जन्मके विनाशके हेतुरूप अर्थात् पुनर्जन्म न करानेवाले ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका आविर्भाव हुआ॥ १५६—१५८॥

इयं हि सा जगतो योनिरेका
सर्वात्मिका सर्वनियामिका च।
माहेश्वरीशक्तिरनादिसिद्धा
व्योमाभिधाना दिवि राजतीव॥ १५९॥
अस्यां महत्परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वरः शिव एकोऽथ रुद्रः।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठां
मायामथारुह्य स देवदेवः॥ १६०॥

(इस ज्ञानके आविर्भावके साथ ही मुनियोंने यह अनुभव किया) ये ही देवी जगत्की एकमात्र मूल कारण, सर्वात्मिका, सबका नियन्त्रण करनेवाली तथा अनादिसिद्ध व्योम नामवाली माहेश्वरी शक्ति हैं, जो द्युलोकमें शोभित होती हुई प्रतीत हो रही हैं। देवाधिदेव महान् परमेष्ठी, परसे भी पर, अद्वितीय रुद्र महेश्वर शिवने इसी परम शक्ति (महादेवी)-में अंशरूपसे विद्यमान मायाका आश्रय ग्रहणकर विश्वकी सृष्टि की॥ १५९-१६०॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढो
मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च।
स एव देवी न च तद्विभिन्न-
मेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति॥ १६१॥

अन्तर्हितोऽभूद् भगवानथेशो
देव्या भर्गः सह देवादिदेवः।
आराधयन्ति स्म तमेव देवं
वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम्॥ १६२॥

ये देव ही सभी प्राणियोंमें गूढरूपसे प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सर्वत्र सूक्ष्मरूपसे व्याप्त हैं। वे मायी (मायाके नियन्ता) रुद्र सकल (साकार) तथा निष्कल (निराकार) हैं। वे ही देवी (रूप) हैं, उनसे भिन्न (जगत्में और कुछ भी) नहीं है, ऐसा जानकर अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। इधर भर्ग (वरेण्य तेजोरूप), देवाधिदेव, भगवान् परमेश मुनियोंके मोहको दूरकर तथा उन्हें परमज्ञानसे सम्पन्न कर महादेवीके साथ अन्तर्हित हो गये और एकमात्र अरण्यको ही अपना घर माननेवाले वे परम ज्ञानी मुनि लोग उन परम देव रुद्रकी आराधनामें दत्तचित्त हो गये॥ १६१-१६२॥

एतद् वः कथितं सर्वं देवदेवविचेष्टितम्।
देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम्॥ १६३॥

यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः।
श्रावयेद् वा द्विजान् शान्तान् स याति परमां गतिम्॥ १६४॥

इस तरह प्राचीन कालमें देवदारु-वनमें घटित देवाधिदेवका जो वृत्तान्त मैंने पुराणमें सुना था, वह आप लोगोंको बता दिया। जो नित्य इसका पाठ करेगा अथवा श्रवण करेगा, वह सभी पातकोंसे मुक्त हो जायगा अथवा जो शान्त द्विजोंको इसे सुनायेगा, वह परम गतिको प्राप्त होगा॥ १६३-१६४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-संवादका प्रारम्भ, मार्कण्डेयजीद्वारा नर्मदा तथा अमरकण्टकतीर्थके माहात्म्यका प्रतिपादन

सूत उवाच

एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता।
नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी॥ १॥

तस्याः शृणुध्वं माहात्म्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्।
युधिष्ठिराय तु शुभं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २॥

सूतजीने कहा—देवताओं तथा गन्धर्वोंद्वारा सेवित ये अत्यन्त पवित्र नर्मदादेवी संसारमें प्रसिद्ध हैं तथा नदीरूपमें सभी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ हैं। इनका वह शुभ माहात्म्य आप लोग सुनें, जो महर्षि मार्कण्डेयद्वारा युधिष्ठिरको बताया गया है तथा सभी पापोंका नाशक होनेके कारण शुभ है॥ १-२॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्तु विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने।
माहात्म्यं च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च॥ ३॥

नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता।
तस्यास्त्विदानीं माहात्म्यं वक्तुमर्हसि सत्तम॥ ४॥

युधिष्ठिर बोले—महामुने! आपकी कृपासे मैंने विविध धर्मोंको सुना, साथ ही प्रयागका माहात्म्य और विविध तीर्थोंका भी (माहात्म्य) श्रवण किया। आपने बतलाया कि सभी तीर्थोंमें नर्मदा मुख्य हैं, अतः हे सत्तम! इस समय आप उन्हींका माहात्म्य मुझे बतलायें॥ ३-४॥

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ५॥
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्।
इदानीं तत् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वैकमनाः शुभम्॥ ६॥

मार्कण्डेयने कहा—रुद्रकी देहसे निकली हुई नर्मदा सभी नदियोंमें श्रेष्ठ हैं। (वे) सभी चर-अचर प्राणियोंको पार उतारनेवाली हैं। पुराणमें नर्मदाका जो माहात्म्य मैंने सुना है, उसे अब बतलाता हूँ, आप लोग एकाग्र होकर सुनें—॥ ५-६॥

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥ ७॥

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥ ८॥

गङ्गा कनखलमें तथा सरस्वती कुरुक्षेत्रमें पवित्र (कही गयी) हैं, किंतु ग्राम अथवा अरण्यमें सर्वत्र ही नर्मदाको पवित्र कहा गया है। सरस्वतीका जल तीन दिनोंतक, यमुनाका जल सात दिनोंतक तथा गङ्गाजल तत्काल स्नान-पानसे पवित्र करता है, किंतु नर्मदाका जल तो दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देता है॥ ७-८॥

कलिङ्गदेशपश्चार्धे पर्वतेऽमरकण्टके।
पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा॥ ९ ॥

सदेवसुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमां गताः॥ १० ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन् नियमस्थो जितेन्द्रियः।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्॥ ११ ॥

योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता॥ १२ ॥

षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च।
पर्वतस्य समन्तात् तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके॥ १३ ॥

ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः॥ १४ ॥

एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् समुत्सृजेत्।
तस्य पुण्यफलं राजन् शृणुष्वावहितो नृप॥ १५ ॥

शतवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति पाण्डव।
अप्सरोगणसंकीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः॥ १६ ॥

दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः।
क्रीडते देवलोके तु दैवतैः सह मोदते॥ १७ ॥

ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः।
गृहं तु लभतेऽसौ वै नानारत्नसमन्वितम्॥ १८ ॥

स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम् ।
आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीदाससमन्वितम्॥ १९ ॥

राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः।
जीवेद् वर्षशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः॥ २० ॥

अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवाऽनशने कृते।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा॥ २१ ॥

कलिंग देशके पश्चार्धमें अमरकण्टक पर्वतपर तीनों लोकोंमें पवित्र, रमणीय, मनोरम नर्मदाका उद्‌गम स्थल है। राजेन्द्र! वहाँ देवताओंसहित असुरों, गन्धर्वों, ऋषियों तथा तपस्वियोंने तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्त की है। राजन्! मनुष्य वहाँ (नर्मदामें) स्नान करके जितेन्द्रिय तथा नियम-परायण रहते हुए एक रात्रि उपवास करे तो अपने सौ पीढ़ियोंको तार देता है॥ ९—११॥

राजेन्द्र! सुना जाता है कि वह श्रेष्ठ नदी सौ योजनसे कुछ अधिक लम्बी तथा दो योजन चौड़े विस्तारमें फैली है। अमरकण्टक पर्वतमें चारों ओर साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ स्थित हैं। राजन्! जो ब्रह्मचर्यपरायण है, पवित्र है, क्रोध तथा इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किया है, सभी प्रकारकी हिंसाओंसे सर्वथा निवृत्त है, सभी प्राणियोंके हितमें परायण है तथा ऐसे ही सभी पवित्र आचारोंसे सम्पन्न है, वह मनुष्य यहाँ प्राणोंका परित्यागकर जिस पुण्य फलको प्राप्त करता है, उसे आप सावधान होकर सुनें—॥ १२—१५॥

पाण्डव! वह पुरुष अप्सराओंके समूहोंसे व्याप्त अर्थात् सेवित तथा चारों ओर दिव्य स्त्रियोंसे आवृत रहकर स्वर्गमें सौ हजार वर्षोंतक आनन्द प्राप्त करता है। दिव्य गन्ध (चन्दन)-से अनुलिप्त होकर तथा दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित होकर देवलोकमें क्रीडा करता है और देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है। स्वर्गमें सुख भोगने योग्य पुण्योंके निःशेष होनेपर वह धार्मिक राजा होता है और नाना प्रकारके रत्नोंसे समन्वित दिव्य मणिमय स्तम्भों, हीरे एवं वैदूर्यमणिसे विभूषित, उत्तम चित्रों तथा वाहनोंसे अलंकृत और दासी-दाससे समन्वित भवन प्राप्त करता है। वह राजराजेश्वर श्रीसम्पन्न, सभी स्त्रियोंका प्रियकर तथा भोगोंसे युक्त होकर वहाँ (पृथ्वीपर) सौ वर्षसे भी अधिक समयतक जीवित रहता है॥ १६—२०॥

(इस तीर्थमें) अग्नि अथवा जलमें प्रवेश करने अथवा अनशन-व्रत करनेसे वैसी ही पुनरागमनरहित गति होती है, जैसी कि आकाशमें पवनकी होती है (इसका आशय यह है कि शास्त्रविहित तपके रूपमें अग्निप्रवेश आदि तप इस तीर्थमें अक्षय पुण्य देनेवाले होते हैं)॥ २१॥

पश्चिमे पर्वततटे सर्वपापविनाशनः।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ २२॥

तत्र पिण्डप्रदानेन संध्योपासनकर्मणा।
दशवर्षाणि पितरस्तर्पिताः स्युर्न संशयः॥ २३॥

(अमरकण्टक) पर्वतके पश्चिमी किनारेपर सभी पापोंका नाश करनेवाला और तीनों लोकोंमें विख्यात जलेश्वर नामका एक ह्रद (तालाब) है। वहाँ पिण्डदान करने तथा संध्योपासन कर्म करनेसे दस (हजार) वर्षतक पितर तृप्त रहते हैं, इसमें संदेह नहीं॥ २२-२३॥

दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्या महानदी।
सरलार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥ २४॥

सा तु पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर॥ २५॥

तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्।
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २६॥

द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्॥ २७॥

कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ता लोकानां हितकाम्यया॥ २८॥

अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥ २९॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्।
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते॥ ३०॥

नर्मदाके दक्षिण तटके समीपमें ही कपिला नामवाली महानदी स्थित है, जो साल तथा अर्जुनके वृक्षोंसे घिरी हुई है। वह महाभागा (नदी) पवित्र तथा तीनों लोकोंमें विख्यात है। युधिष्ठिर! वहाँ सौ करोड़से भी अधिक तीर्थ हैं। कालक्रमसे जो वृक्ष उस तीर्थमें गिरते हैं, वे नर्मदाके जलका स्पर्श प्राप्त हो जानेके कारण परम गतिको प्राप्त होते हैं। दूसरी महाभागा शुभ नदी विशल्यकरणी है, उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य तत्क्षण ही शल्यसे (सभी प्रकारके पापरूपी काँटोंसे) रहित हो जाता है। राजश्रेष्ठ! यह आप्त श्रुति है कि ईश्वरने इन कपिला तथा विशल्या नामकी दोनों नदियोंको प्राणिमात्रके कल्याण करनेका आदेश पहलेसे ही दे रखा है। नराधिपति! उस तीर्थमें जो (शास्त्रीय विधिसे) अनशनव्रत करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमें जाता है। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य अश्वमेधका फल प्राप्त करता है और जो लोग उत्तरी तटपर निवास करते हैं, वे रुद्रलोकमें निवास करते हैं॥ २४—३०॥

सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर।
समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत्॥ ३१॥

परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके।
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते॥ ३२॥

नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मिसमलंकृतम्।
पवित्रं शिरसावन्द्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३३॥

नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३४॥

जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापविनाशनम्।
तत्र गत्वा नियमवान् सर्वकामाँल्लभेन्नरः॥ ३५॥

चन्द्रसूर्योपरागे तु गत्वा ह्यमरकण्टकम्।
अश्वमेधाद् दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः॥ ३६॥

युधिष्ठिर! शंकरने मुझे जैसा बतलाया था, उसके अनुसार गङ्गा, सरस्वती एवं नर्मदामें किया गया स्नान और दान समान फलदायक होता है। जो अमरकण्टक पर्वतपर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सौ करोड़ वर्षोंसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमें पूजित होता है। फेन और उर्मियों (तरङ्गों)-से अलंकृत नर्मदाके पवित्र जलको पवित्रतापूर्वक सिरसे वन्दित करनेपर अर्थात् सिरपर धारण करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। नर्मदा सभी प्रकारसे पवित्र और ब्रह्महत्याको दूर करनेवाली है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करनेसे ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्ति हो जाती है। जालेश्वर नामका श्रेष्ठ तीर्थ सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है। वहाँ जाकर नियमसे रहनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। चन्द्र तथा सूर्यग्रहणमें अमरकण्टककी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेध-यज्ञसे दस गुना अधिक पुण्य प्राप्त करता है॥ ३१—३६॥

एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः।
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः॥ ३७॥

तत्र संनिहितो राजन् देव्या सह महेश्वरः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह॥ ३८॥

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् पर्वतं ह्यमरकण्टकम्।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३९॥

कावेरी नाम विपुला नदी कल्मषनाशिनी।
तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद् वृषभध्वजम्।
संगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते॥ ४०॥

यह पुण्यप्रद श्रेष्ठ पर्वत (अमरकण्टक) देवताओं तथा गन्धर्वोंद्वारा सेवित, नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे परिपूर्ण एवं विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित है। राजन्! यहाँ देवी (पार्वती)-के साथ महेश्वर और विद्याधरगणोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र भी स्थित रहते हैं। जो मानव अमरकण्टक पर्वतकी परिक्रमा करता है, वह पौण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। ऐसे ही कावेरी नामकी एक प्रसिद्ध नदी है। यह विशाल है तथा कल्मषोंका नाश करनेवाली है। उसमें स्नानकर तथा नर्मदाके संगममें स्नान करके वृषभध्वज महादेवकी आराधना करनेसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है॥ ३७—४०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे अष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-वर्णनके प्रसंगमें नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका विस्तारसे वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी।
मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुवा॥ १॥
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रगात्राद् विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥ २॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥ ३॥
उत्तरे चैव तत्कूले तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते॥ ४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५॥

ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥ ६॥

मार्कण्डेयने कहा—मुनियोंने तथा उनसे पूर्व स्वयम्भू ईश्वरने नर्मदाका वर्णन सभी पापोंका नाश करनेवाली सर्वश्रेष्ठ नदीके रूपमें किया है। मुनियोंद्वारा स्तुति करनेपर यह श्रेष्ठ नर्मदा नदी लोगोंके कल्याणकी कामनासे रुद्रके शरीरसे निकली है। यह नित्य सभी पापोंको हरनेवाली है, सभी देवोंद्वारा नमस्कृत है और देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंके द्वारा स्तुत्य है॥ १—३॥

इस (नर्मदा) नदीके उत्तरी किनारेपर तीनों लोकोंमें विख्यात भद्रेश्वरनामका तीर्थ है, जो पवित्र, शुभ तथा सभी पापोंका हरण करनेवाला है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्दित होता है। राजेन्द्र! वहाँसे आम्रातकेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य हजार गौओंके दानका फल प्राप्त करता है॥ ४-५॥

तदनन्तर संयमपूर्वक नियत आहार करते हुए अङ्गारेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। इससे (तीर्थ-विधि सम्पन्न करनेसे) सभी पापोंका शोधन होता है और रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है॥ ६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाम पुण्यदम्।
तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ७॥

पिप्पलेशं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम्।
तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते॥ ८॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ ९॥

ततः पुष्करिणीं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥ १०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेदमिति श्रुतम्।
तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं गोसहस्रफलं लभेत्॥ ११॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र बलितीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्॥ १२॥

शक्रतीर्थं ततो गच्छेत् कूले चैव तु दक्षिणे।
उपोष्य रजनीमेकां स्नानं कृत्वा यथाविधि॥ १३॥

आराधयेन्महायोगं देवं नारायणं हरिम्।
गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति॥ १४॥
ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते॥ १५॥

नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥ १६॥

यत्र तप्तं तपः पूर्वं नारदेन सुरर्षिणा।
प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः॥ १७॥

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम्।
यत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते॥ १८॥

ऋणतीर्थं ततो गच्छेत् स ऋणान्मुच्यते ध्रुवम्।
महेश्वरं ततो गच्छेत् पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥ १९॥

राजेन्द्र! इसके बाद पुण्य प्रदान करनेवाले केदार नामक तीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ स्नान करके उदकदान (तर्पण आदि क्रिया) करनेसे सभी कामनाओंकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर सभी पापोंका विनाश करनेवाले पिप्पलेश (तीर्थ)-में जाना चाहिये। महाराज! वहाँ स्नान करनेसे रुद्रलोकमें आदर प्राप्त होता है। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ विमलेश्वर (तीर्थ)-में जाना चाहिये। वहाँ प्राणोंका परित्याग करनेसे रुद्रलोक प्राप्त होता है। इसके बाद पुष्करिणीमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य इन्द्रका आधा आसन प्राप्त करता है॥ ७—१०॥

राजेन्द्र! ऐसी श्रुति है कि वहाँसे शूलभेद नामके तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करके देवाराधना करनी चाहिये। इससे हजार गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम बलितीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य सिंहासनाधिपति अर्थात् राजा होता है। इसके उपरान्त (बलितीर्थके) दक्षिणी किनारेपर स्थित शक्रतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ एक रात्रि उपवास करके यथाविधि स्नान करना चाहिये तथा महायोगस्वरूप नारायण हरिकी आराधना करनी चाहिये। इनसे हजार गौओंके दानका फल प्राप्तकर मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है॥ ११—१४॥

तदनन्तर मनुष्योंके समस्त पापोंको हरनेवाले ऋषितीर्थमें जाकर वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य शिवलोकमें पूजित होता है। वहींपर नारदजीका परम शोभन तीर्थ है। वहाँ स्नानमात्र करके मनुष्य हजार गोदानका फल प्राप्त करता है। पूर्वकालमें इसी तीर्थमें देवर्षि नारदने तपस्या की थी और इसी तपस्याके फलस्वरूप देवाधिदेव महेश्वरने प्रसन्न होकर उन्हें योग प्रदान किया था। राजन्! ब्रह्माके द्वारा स्थापित लिङ्ग ब्रह्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। इस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १५—१८॥

तदनन्तर ऋणतीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ जानेवाला निश्चित ही ऋणसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद महेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जाकर तीर्थसेवन करनेसे जन्मका अन्तिम फल (महेश्वरका दर्शन) प्राप्त होता है॥ १९॥

भीमेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वव्याधिविनाशनम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥ २०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्॥ २१॥

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ २२॥

यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात् तत्र नराधिप।
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ २३॥

नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठन्ते ये तु मानवाः।
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥ २४॥
ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम्।
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुंकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता॥ २५॥

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर।
प्रीतस्तस्य भवेद् व्यासो वाञ्छितं लभते फलम्॥ २६॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु संगमम्।
त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्र संनिहितः शिवः।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २७॥

स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्
आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तीव्रं व्यपोहति॥ २८॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा भवात्मजमनुत्तमम्।
उपासते महात्मानं स्कन्दं शक्तिधरं प्रभुम्॥ २९॥

ततो गच्छेदाङ्गिरसं स्नानं तत्र समाचरेत्।
गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ ३०॥
अङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम्।
तपसाराध्य विश्वेशं लब्धवान् योगमुत्तमम्॥ ३१॥

कुशतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्।
स्नानं तत्र प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत्॥ ३२॥

तदुपरान्त सभी व्याधियोंका विनाश करनेवाले भीमेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य सभी दुःखोंसे मुक्त हो जाता है॥ २०॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम पिङ्गलेश्वर (तीर्थमें) जाना चाहिये। वहाँ अहोरात्रका उपवास करनेसे त्रिरात्र (उपवास)-का फल प्राप्त होता है। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जो कपिला (गौ)-का दान करता है, वह उस कपिलाके तथा उसके कुलमें उत्पन्न संतानोंके शरीरोंपर जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षपर्यन्त रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नराधिप! वहाँ जो प्राणोंका त्याग करता है, वह जबतक सूर्य-चन्द्रमा हैं, तबतक अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। जो मनुष्य नर्मदाके तटका आश्रयकर (वहाँ) रहते हैं, वे मरनेपर पुण्यवान् संतोंके समान स्वर्ग प्राप्त करते हैं॥ २१—२४॥

तदनन्तर व्यासतीर्थ नामक तपोवनमें स्थित दीप्तेश्वर (तीर्थमें) जाना चाहिये। प्राचीन कालमें वहाँ व्यासजीसे भयभीत होकर महानदी (नर्मदा) वापस हो गयी थी और व्यासके द्वारा हुंकार किये जानेपर (अर्थात् रोष प्रकट करनेपर) वहाँसे दक्षिणकी ओर चली गयी। युधिष्ठिर! उस तीर्थमें जो प्रदक्षिणा करता है, प्रसन्न होकर व्यासजी उसे अभिलषित फल प्रदान करते हैं॥ २५-२६॥

राजेन्द्र! तदनन्तर तीनों लोकोंमें विख्यात तथा पवित्र इक्षुनदीके संगमपर जाना चाहिये। वहाँ शिव प्रतिष्ठित हैं। राजन्! वहाँ मनुष्य स्नानकर (शिवका) गाणपत्य-पद प्राप्त करता है। इसके बाद सभी पापोंका विनाश करनेवाले स्कन्दतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे जन्मभरका किया हुआ पाप शीघ्र ही दूर हो जाता है। वहाँ शंकरजीके पुत्र, श्रेष्ठ महात्मा, शक्तिसम्पन्न प्रभु स्कन्दकी गन्धर्वोंसहित देवता उपासना करते हैं। तदनन्तर आङ्गिरस तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेवाला व्यक्ति हजार गोदानका फल प्राप्त कर रुद्रलोकमें जाता है॥ २७—३०॥

वहाँ ब्रह्माजीके पुत्र (महर्षि) अङ्गिराने तपस्याके द्वारा देवेश वृषध्वज विश्वेश्वरकी आराधना कर उत्तम योग प्राप्त किया था। तदनन्तर समस्त पापोंको नष्ट करनेवाले कुशतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे व्यक्ति अश्वमेधका फल प्राप्त करता है॥ ३१-३२॥

कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः॥ ३३॥

इसके पश्चात् सभी पापोंको नष्ट करनेवाले कोटितीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नानकर मनुष्य राज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं॥ ३३॥

चन्द्रभागां ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥ ३४॥
नर्मदादक्षिणे कूले संगमेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ३५॥
नर्मदायोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्।
आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेण तु भाषितम्॥ ३६॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दानं तु शक्तितः।
तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम्॥ ३७॥
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये च दुष्कृतकारिणः।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च॥ ३८॥

तदुपरान्त चन्द्रभागामें स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्रसे ही मनुष्य सोमलोकमें आदर प्राप्त करता है। राजन्! नर्मदाके दक्षिणी किनारेपर उत्तम संगमेश्वर (तीर्थ) है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है। नर्मदाके उत्तरी किनारेपर अत्यन्त सुन्दर तीर्थ है। वहाँ आदित्यका रमणीय मन्दिर है। यह स्वयं ईश्वरने बताया है। राजेन्द्र! वहाँ स्नानकर यथाशक्ति दान देनेपर उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय फल प्राप्त होता है तथा जो लोग दरिद्र, व्याधियुक्त और दुष्कर्म करनेवाले हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकको जाते हैं॥ ३४—३८॥

मार्गेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ ३९॥

ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुदालयमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः॥ ४०॥

काञ्चनं तु द्विजो दद्याद् यथाविभवविस्तरम्।
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति॥ ४१॥

तदनन्तर मार्गेश्वर (तीर्थ) जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। इसके पश्चात् पश्चिमकी ओर स्थित श्रेष्ठ मरुदालयमें (वायुके स्थानमें) जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र होकर अपनी सम्पत्तिके विस्तारके अनुसार द्विजको स्वर्ण प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य पुष्पक-विमानके द्वारा वायुलोक जाता है॥ ३९—४१॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र अहल्यातीर्थमुत्तमम्।
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमक्षयम्॥ ४२॥

चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत्॥ ४३॥

यत्र तत्र नरोत्पन्नो वरस्तत्र प्रियो भवेत्।
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान् कामदेव इवापरः॥ ४४॥

अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥ ४५॥

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ अहल्यातीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नानमात्रसे मनुष्य अक्षय (अनन्त) कालतक अप्सराओंके साथ आनन्द करता है। चैत्र शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी कामदेवका दिन है। उस दिन इस अहल्यातीर्थमें जो मनुष्य अहल्याकी पूजा करता है, वह जहाँ-कहीं भी उत्पन्न होता है, श्रेष्ठ तथा प्रिय होता है और विशेषरूपसे दूसरे कामदेवके समान हो जानेसे श्री-शोभासम्पन्न तथा स्त्रीवल्लभ होता है। इन्द्रके प्रसिद्ध तीर्थ अयोध्यामें आकर स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य हजार गोदानका फल प्राप्त करता है॥ ४२—४५॥

सोमतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४६॥
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत्।
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन् सोमतीर्थं महाफलम्॥ ४७॥

तदनन्तर सोमतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्! तीनों लोकोंमें विख्यात सोमतीर्थ महान् फल देनेवाला है॥ ४६-४७॥

यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात् तत्र तीर्थे समाहितः।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति॥ ४८॥

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात् सोमतीर्थे नराधिप।
जले चानशनं वापि नासौ मर्त्योऽभिजायते॥ ४९॥

स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥ ५०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णोः स्थानमनुत्तमम्॥ ५१॥

असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीको भवेदिह।
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ५२॥

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्।
कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्चयद् भवम्॥ ५३॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः।
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते॥ ५४॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्।
उमाहकमिति ख्यातं तत्र संतर्पयेत् पितॄन्॥ ५५॥

पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद् यथाविधि।
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता॥ ५६॥

तस्मिंस्तु दापयेत् पिण्डान् वैशाख्यां तु विशेषतः।
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जितः।
तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावत् तिष्ठति मेदिनी॥ ५७॥
सिद्धेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्॥ ५८॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दनः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते॥ ५९॥

यत्र नारायणो देवो मुनीनां भावितात्मनाम्।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत् परमं पदम्॥ ६०॥

राजेन्द्र! वहाँ चन्द्रग्रहण (-का स्नान) पापोंका क्षय करनेवाला होता है। उस तीर्थमें जो एकाग्र-मनसे चान्द्रायणव्रत करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो विशुद्ध आत्मावाला होकर सोमलोकको जाता है। नराधिप! जो सोमतीर्थमें अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा अनशन करता है, वह मनुष्य पुनः उत्पन्न नहीं होता। तदनन्तर स्तम्भतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है अर्थात् पूजित होता है॥ ४८—५०॥

राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम विष्णुतीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ योधनीपुर नामक विष्णुका श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ वासुदेवने करोड़ों असुरोंसे युद्ध किया था। अतः वह स्थान (वासुदेवकी पवित्र संनिधिके कारण) तीर्थ (पुण्यमय) हो गया है। जो मनुष्य उस तीर्थका सेवन करता है, वह विष्णुके समान श्रीसम्पन्न हो जाता है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करनेसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। नर्मदाके दक्षिणी किनारेपर कामतीर्थ नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त सुन्दर तीर्थ है। वहाँपर कामदेवने शंकरकी आराधना की थी। उस तीर्थमें स्नानकर उपवासपरायण रहनेवाला मनुष्य कामदेवके समान रूपवाला होकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ५१—५४॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम ब्रह्मतीर्थमें जाना चाहिये। वह तीर्थ 'उमाहक' इस नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ पितरोंका तर्पण करना चाहिये। पूर्णिमा तथा अमावास्याको विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ जलके भीतर हाथीके आकारकी शिला स्थित है। उस शिलापर विशेष रूपसे वैशाख पूर्णिमाको स्नानके अनन्तर दम्भ तथा मात्सर्यसे रहित होकर एकाग्रमनसे पिण्डदान करना चाहिये। इससे पिण्डदाताके पितर जबतक पृथ्वी रहती है, तबतक तृप्त रहते हैं॥ ५५—५७॥

इसके बाद सिद्धेश्वर (तीर्थमें) जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य गाणपत्य-पद प्राप्त करता है। राजेन्द्र! तदनन्तर जहाँ जनार्दन लिङ्गरूपमें प्रतिष्ठित हैं, वहाँ जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे विष्णुलोकमें आदर प्राप्त होता है। यही एकमात्र वह स्थान है, जहाँ नारायणदेवने भक्तिपूर्ण मुनियोंको लिङ्गरूपमें अपना दर्शन कराया था। यह लिङ्ग विष्णुरूप होनेसे परमपद है॥ ५८—६०॥

अङ्कोलं तु ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम्।
स्नानं दानं च तत्रैव ब्राह्मणानां च भोजनम्।
पिण्डप्रदानं च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम्॥ ६१॥

त्रैयम्बकेन तोयेन यश्चरुं श्रपयेत् ततः।
अङ्कोलमूले दद्याच्च पिण्डांश्चैव यथाविधि।
तारिताः पितरस्तेन तृप्यन्त्याचन्द्रतारकम्॥ ६२॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्नुयात् तपसः फलम्॥ ६३॥
शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम्।
नास्ति तेन समं तीर्थं नर्मदायां युधिष्ठिर॥ ६४॥

दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य स्नानदानतपोजपात्।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत् फलम्॥ ६५॥

योजनं तत् स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम्।
शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम्॥ ६६॥

पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शंकरः॥ ६७॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाखे मासि सुव्रत।
कैलासाच्चाभिनिष्क्रम्य तत्र संनिहितो हरः॥ ६८॥

देवदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा।
गणाश्चाप्सरसां नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुंगव॥ ६९॥
रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा।
आजन्मनि कृतं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति।
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते॥ ७०॥

शुक्लतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति॥ ७१॥

कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
घृतेन स्नापयेद् देवमुपोष्य परमेश्वरम्।
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात्॥ ७२॥

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञदानेन वा पुनः।
न तां गतिमवाप्नोति शुक्लतीर्थे तु यां लभेत्॥ ७३॥

तदनन्तर सभी पापोंको नष्ट करनेवाले अंकोल तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ किया गया स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन तथा पिण्डदान परलोकमें अनन्त फल प्रदान करनेवाला होता है। जो त्रैयम्बक (त्र्यम्बक) मन्त्रके द्वारा जलसे चरु पकाकर उससे अंकोल (वृक्ष)-के मूलमें यथाविधि पिण्डदान करता है, उसके द्वारा तारे गये पितर जबतक चन्द्रमा तथा तारे रहते हैं, तबतक तृप्त रहते हैं। राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम तापसेश्वर (तीर्थमें) जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नानमात्र करनेसे व्यक्ति तपस्याका फल प्राप्त करता है॥ ६१—६३॥

इसके पश्चात् सभी पापोंका नाश करनेवाले शुक्लतीर्थमें जाना चाहिये। युधिष्ठिर! नर्मदामें उसके समान कोई तीर्थ नहीं है। उस शुक्लतीर्थके दर्शन करने, स्पर्श करने तथा वहाँ स्नान, दान, तप, जप, होम और उपवास करनेसे महान् फल प्राप्त होता है। देवताओं तथा गन्धर्वोंसे सेवित वह एक योजनका क्षेत्र शुक्लतीर्थ इस नामसे विख्यात है। वह समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है। (इस तीर्थमें स्थित) वृक्षके अग्रभागको भी देखनेसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है, वहाँ देवी (पार्वती)-के साथ भर्ग (तेजोमय) शंकर सदैव निवास करते हैं। सुव्रत! वैशाख मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ कैलाससे आकर हर (शंकर) स्थित होते हैं। श्रेष्ठ! वहाँ देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराओंके समूह तथा नाग रहते हैं॥ ६४—६९॥

जिस प्रकार रजक (धोबी)-के द्वारा जलसे (धोनेसे) वस्त्र स्वच्छ (मलरहित) हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थमें स्नानसे जन्मभरका किया हुआ पाप दूर हो जाता है, वहाँ किया गया स्नान, दान, तप तथा श्राद्ध अनन्त फलदायक हो जाता है। शुक्लतीर्थ-सा परम तीर्थ न कोई हुआ न होगा। मनुष्य पूरी अवस्थाभरमें किये गये पापोंको शुक्लतीर्थमें एक अहोरात्रके उपवाससे दूर कर देता है। कार्तिक मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको उपवासकर परमेश्वर देवको घृतसे स्नान कराना चाहिये। इससे मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ ईश्वरके लोकमें निवास करता है। कभी भी वहाँसे च्युत नहीं होता। शुक्लतीर्थमें जो गति प्राप्त होती है, वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दानसे प्राप्त नहीं होती॥ ७०—७३॥

शुक्लतीर्थं महातीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुनर्जन्म न विन्दति॥ ७४॥

अयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा।
स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः॥ ७५॥

दानं दद्याद् यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशंकरौ।
एतत् तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥ ७६॥

अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा।
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ७७॥

यावत् तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ ७८॥

ऋषियों तथा सिद्धोंसे सेवित शुक्लतीर्थ महान् तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता। वहाँ अयन, चतुर्दशी, संक्रान्ति तथा विषुव (योग)-में स्नानोपरान्त उपवास करते हुए विजितात्मा पुरुषको समाहित होकर यथाशक्ति दान देना चाहिये। इससे विष्णु तथा शिव प्रसन्न होते हैं। इस तीर्थके प्रभावसे सब कुछ अक्षय होता है। अनाथ, दुर्गतिको प्राप्त अथवा सनाथ ब्राह्मणका भी इस तीर्थमें विवाह करानेसे जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, उसे सुनो—उसके (विवाह सम्पन्न करानेवालेके) शरीरमें तथा उसके कुलकी संतानोंके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७४—७८॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम्।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद् योनिसङ्कटम्॥ ७९॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम्।
संगमे तु नरः स्नायादुपवासपरायणः।
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिताः॥ ८०॥

एरण्डीसंगमे स्नात्वा भक्तिभावात् तु रञ्जितः।
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च तज्जलम्।
नर्मदोदकसम्मिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ८१॥

राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम यमतीर्थमें जाना चाहिये। युधिष्ठिर! माघमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको इस यमतीर्थमें स्नान करके रात्रिमें भोजन करनेवालेको गर्भके संकटका सामना नहीं करना पड़ता। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ एरण्डी-तीर्थमें जाना चाहिये। व्यक्ति वहाँ संगममें स्नानकर उपवासपरायण रहते हुए एक ब्राह्मणको भोजन कराये, इससे करोड़ों (ब्राह्मणों)-को भोजन करानेका फल मिलता है। एरण्डी-संगममें स्नान करके भक्तिभावसे परिपूर्ण होकर मस्तकमें वहाँकी मिट्टी लगानेसे तथा नर्मदाके जलसे मिश्रित उस (एरण्डी-संगम)-के जलमें स्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७९—८१॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं कार्णाटिकेश्वरम्।
गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः॥ ८२॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविधि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ८३॥

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
प्रीयते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते॥ ८४॥

राजेन्द्र! इसके पश्चात् कार्णाटिकेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ पुण्य (पर्व)-दिनमें निश्चित रूपसे गङ्गा अवतरित होती हैं। वहाँ स्नानकर, (जल) पीकर और विधिपूर्वक दान देनेसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तदनन्तर नन्दितीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसपर नन्दीश्वर प्रसन्न होते हैं और वह सोमलोकमें आदर प्राप्त करता है॥ ८२—८४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्वनरकं शुभम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नरकं नैव पश्यति॥ ८५॥

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत्।
रूपवान् जायते लोके धनभोगसमन्वितः॥ ८६॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त शुभ अनरक नामक तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य नरकका दर्शन नहीं करता। राजेन्द्र! उस तीर्थमें अपनी अस्थियोंके विसर्जनकी प्रेरणा अपने परिजनोंको देनी चाहिये। (वहाँ जिसकी अस्थि विसर्जित होती है) वह जन्मान्तरमें दिव्य रूप एवं विविध ऐश्वर्यसे सम्पन्न होता है॥ ८५-८६॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ८७॥

ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दद्याद् दीपं घृतेन तु॥ ८८॥

घृतेन स्नापयेद् रुद्रं सघृतं श्रीफलं दहेत्।
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत्॥ ८९॥

सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः।
शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत् क्रीडते चिरम्॥ ९०॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिलातीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर व्यक्ति हजार गोदानका फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मासके आनेपर विशेषरूपसे चतुर्दशी तिथिको वहाँ उपवास कर मनुष्यको भक्तिपूर्वक घृतका दीप-दान करना चाहिये। घृतसे ही रुद्रका अभिषेक करना चाहिये, घृतयुक्त श्रीफलका हवन करना चाहिये और घंटा तथा आभरणोंसे सम्पन्न कपिला गौका दान करना चाहिये। इससे मनुष्य सभी अलंकारोंसे युक्त, सभी देवताओंके लिये वन्दनीय और शिवके समान तुल्य बलवाला होकर चिरकालतक शिवके समान क्रीडा करता है॥ ८७—९०॥

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम्॥ ९१॥

सर्वभोगसमायुक्तो विमानैः सार्वकामिकैः।
गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते॥ ९२॥

ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो धनवान् भोगवान् भवेत्।
अङ्गारकनवम्यां तु अमावास्यां तथैव च।
स्नापयेत् तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत्॥ ९३॥

विशेषरूपसे मंगलके दिन चतुर्थी पड़नेपर (इस कपिलातीर्थमें) शिवका अभिषेककर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी भोगोंसे समन्वित होकर अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र अप्रतिहतगति एवं सभी प्रकारकी सुविधाओंसे परिपूर्ण विमानोंके द्वारा इन्द्रके भवनमें जाकर इन्द्रके साथ आनन्दित होता है। स्वर्गसे च्युत होनेपर इस लोकमें भी धनवान् और भोगवान् होता है। अङ्गारक-नवमी (मंगलवारयुक्त नवमी) तथा अमावास्याको भी वहाँ (कपिलातीर्थमें) प्रयत्नपूर्वक अभिषेक करनेसे व्यक्ति रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है॥ ९१—९३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुत्तमम्।
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ ९४॥

स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते।
पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यतेऽसावृणत्रयात्॥ ९५॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गणेश्वर (तीर्थ)-में जाना चाहिये। श्रावण मास आनेपर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है और पितरोंका तर्पण करनेसे तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९४-९५॥

गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम्।
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ९६॥

गणेश्वर (तीर्थ)-के समीप श्रेष्ठ गङ्गावदन नामक तीर्थ है। वहाँ मनुष्य कामनापूर्वक अथवा निष्कामभावसे स्नान करके जन्मभरके किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९६॥

तस्य वै पश्चिमे देशे समीपे नातिदूरतः।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ९७॥

उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे शुभे।
अमावस्यां नरः स्नात्वा पूजयेद् वृषभध्वजम्॥ ९८॥

उस (गङ्गावदन)-के पश्चिमी भागमें बहुत दूर नहीं अपितु समीपमें ही तीनों लोकोंमें विख्यात दशाश्वमेधिक नामक तीर्थ है। वहाँ शुभ भाद्रपद मासकी अमावास्याको एक रात्रिका उपवासकर स्नानपूर्वक वृषभध्वजका पूजन करना चाहिये॥ ९७-९८॥

काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना।
गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते॥ ९९ ॥

सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्।
पितॄणां तर्पणं कुर्यादश्वमेधफलं लभेत्॥ १०० ॥

ऐसा करनेसे किंकिणीके समूहसे अलंकृत सोनेके विमानसे रमणीय रुद्रपुरमें पहुँचने तथा वहाँ रुद्रके साथ आनन्दानुभव करनेका सुअवसर प्राप्त होता है। उस (दशाश्वमेधिक) तीर्थमें सर्वत्र सभी दिनोंमें स्नान करना चाहिये और पितरोंका तर्पण करना चाहिये, इससे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है॥ ९९-१०० ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें नर्मदा तथा उसके समीपवर्ती तीर्थोंकी महिमा, मार्कण्डेय तथा युधिष्ठिरके संवादकी समाप्ति

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रमाराधयत् पुरा॥ १ ॥

दर्शनात् तस्य देवस्य सद्यः पापात् प्रमुच्यते।
एतत् क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २ ॥

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
उपानहोस्तथा युग्मं देयमन्नं सकाञ्चनम्।
भोजनं च यथाशक्ति तदस्याक्षयमुच्यते॥ ३ ॥

क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानं तपः क्रिया।
अक्षयं तत् तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर॥ ४ ॥

तस्यैव तपसोग्रेण तुष्टेन त्रिपुरारिणा।
सांनिध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! तदन्तर श्रेष्ठ भृगुतीर्थमें जाना चाहिये। प्राचीन कालमें यहाँ महर्षि भृगुदेवने भगवान् रुद्रकी आराधना की थी। उन देवके दर्शन करनेसे तत्काल पापसे मुक्ति हो जाती है। यह क्षेत्र बहुत बड़ा तथा सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है। यहाँ स्नान कर व्यक्ति स्वर्ग जाते हैं और यहाँ मृत्युको प्राप्त होनेवालोंका पुनर्जन्म नहीं होता। यहाँ जूतेका जोड़ा तथा सोनेके साथ अन्नका दान करना चाहिये। यथाशक्ति भोजन भी कराना चाहिये। यह सब अक्षय (फलवाला) कहा गया है। युधिष्ठिर! सभी दान, यज्ञ, तप तथा कर्म नष्ट हो जाते हैं (किंतु) भृगुतीर्थमें किया हुआ तप अक्षय होता है। युधिष्ठिर! उन्हीं (महर्षि भृगु)-की उग्र तपस्यासे प्रसन्न होकर त्रिपुरारि भगवान् शंकर भृगुतीर्थमें सदैव संनिहित रहते हैं, यह शास्त्रोंमें कहा गया है॥ १—५ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्।
यत्राराध्य त्रिशूलाङ्कं गौतमः सिद्धिमाप्नुयात्॥ ६ ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन् उपवासपरायणः।
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते॥ ७ ॥

वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात्।
न जानन्ति नरा मूढा विष्णोर्मायाविमोहिताः॥ ८ ॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गौतमेश्वर (तीर्थ)-में जाना चाहिये। जहाँ त्रिशूलका चिह्न धारण करनेवाले त्रिशूली (भगवान् शंकर)-की आराधनाकर (महर्षि) गौतमने सिद्धि प्राप्त की थी। राजन्! वहाँ (गौतमेश्वर-तीर्थमें) स्नानकर उपवासरत व्यक्ति सोनेके विमानद्वारा ब्रह्मलोक जाता है तथा वहाँ आदर प्राप्त करता है। तदुपरान्त वृषोत्सर्ग-तीर्थकी यात्रा कर शाश्वत पद प्राप्त करना चाहिये। विष्णुकी मायासे मोहित मूढ व्यक्ति इस तीर्थको नहीं जानते॥ ६—८ ॥

धौतपापं ततो गच्छेद् धौतं यत्र वृषेण तु।
नर्मदायां स्थितं राजन् सर्वपातकनाशनम्।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ९ ॥

तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च हरतुल्यबलो भवेत्॥ १० ॥

वसेत् कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः।
कालेन महता जातः पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥ ११ ॥

इसके पश्चात् धौतपाप नामक तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ स्वयं वृष (अर्थात् भगवान् धर्म)-ने अपना (पाप) धोया था। राजन्! सभी पातकोंका नाश करनेवाला वह तीर्थ नर्मदामें स्थित है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जो प्राणोंका त्याग करता है, वह चार भुजावाला, तीन नेत्रोंवाला और शंकरके समान बलवाला होता है। शिवके समान पराक्रमी होकर वह दस हजार कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें निवास करता है और बहुत समयके बाद वह पृथ्वीपर एकच्छत्र सम्राट् बनकर उत्पन्न होता है॥ ९—११ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते॥ १२ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः।
वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम्॥ १३ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।
पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते॥ १४ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र कन्यातीर्थमनुत्तमम्।
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥ १५ ॥

देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम्।
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते॥ १६ ॥

राजेन्द्र! उसके बाद श्रेष्ठ हंस-तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजेन्द्र! वहाँसे विष्णुलोककी गति प्रदान करनेवाले वराहतीर्थ नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ जनार्दनने सिद्धि प्राप्त की थी। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ विशेषरूपसे पौर्णमासीको स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेवाला व्यक्ति चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजेन्द्र! इसके पश्चात् अत्युत्तम कन्यातीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे व्यक्ति पृथ्वीमें एकमात्र सम्राट् होता है। तदनन्तर सभी देवताओंसे वन्दित देवतीर्थमें जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे देवताओंके साथ आनन्द (-के अनुभवका अवसर) प्राप्त होता है॥ १२—१६ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम्।
यत् तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ १७ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामहं शुभम्।
यत् तत्र क्रियते श्राद्धं सर्वं तदक्षयं भवेत्॥ १८ ॥

सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते॥ १९ ॥

मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते॥ २० ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र मानसं तीर्थमुत्तमम्।
स्नात्वा तत्र नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ २१ ॥

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ शिखितीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब करोड़ गुना फलवाला हो जाता है। राजेन्द्र! शुभ पैतामह तीर्थमें भी जाना चाहिये। वहाँ जो श्राद्ध किया जाता है, वह अक्षय (फलवाला) हो जाता है। सावित्रीतीर्थमें पहुँचकर जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी पापोंको धोकर ब्रह्मलोकमें महिमा प्राप्त करता है। वहीं मनोहर नामक परम सुन्दर तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है। राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम मानस तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १७—२१ ॥

स्वर्गबिन्दुं ततो गच्छेत् तीर्थं देवनमस्कृतम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गतिं नैव गच्छति॥ २२॥

अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
क्रीडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभिः स मोदते॥ २३॥

तदुपरान्त देवताओंसे नमस्कृत स्वर्गबिन्दु नामक तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती। इसके बाद अप्सरेश-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। इससे वह स्वर्गलोकमें निवास करते हुए क्रीड़ा करता है और अप्सराओंके साथ आनन्दित होता है॥ २२-२३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र भारभूतिमनुत्तमम्।
उपोषितोऽर्चयेदीशं रुद्रलोके महीयते।
अस्मिंस्तीर्थे मृतो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २४॥

कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत् पार्वतीपतिम्।
अश्वमेधात् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २५॥

वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम्।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति॥ २६॥

एतत् तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥ २७॥

जलप्रवेशं यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छति॥ २८॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम भारभूति नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ उपवास करते हुए ईश्वरकी आराधना करनेसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। राजन्! इस तीर्थमें मरनेवाला (शिवलोकमें) गाणपत्य-पद प्राप्त करता है। (यहाँ) कार्तिक मासमें पार्वतीपति देवताओंके ईश शंकरकी पूजा करनी चाहिये। इसका फल मनीषी लोग अश्वमेधके फलसे भी दस गुना अधिक बताते हैं। जो वहाँ कुन्दपुष्प तथा इन्दु (चन्द्रमा)-के समान (श्वेत) वर्णवाले वृषभका दान करता है, वह वृषयुक्त विमानसे रुद्रलोकमें जाता है। इस तीर्थमें पहुँचकर जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो विशुद्ध आत्मावाला होकर रुद्रलोकमें जाता है। नराधिप! इस तीर्थमें जो जलमें प्रवेश (-कर प्राणत्याग) करता है, वह हंसयुक्त विमानसे स्वर्गलोक जाता है॥ २४—२८॥

एरण्ड्या नर्मदायास्तु संगमं लोकविश्रुतम्।
तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २९॥

उपवासपरो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमम्।
जमदग्निरिति ख्यातः सिद्धो यत्र जनार्दनः॥ ३१॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन् नर्मदोदधिसंगमे।
त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३२॥

एरण्डी तथा नर्मदाका संगम विख्यात है। वहाँ सभी पापोंको नष्ट करनेवाला महान् पुण्यप्रद तीर्थ है। राजेन्द्र! वहाँ स्नानकर उपवास करनेवाला तथा नित्य व्रतपरायण रहनेवाला व्यक्ति ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदनन्तर नर्मदा और सागरके संगम-स्थलमें जाना चाहिये। जहाँ जमदग्नि नामसे विख्यात जनार्दनको सिद्धि प्राप्त हुई थी। राजन्! वहाँ नर्मदा तथा सागरके संगममें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेधके फलका तिगुना फल प्राप्त करता है॥ २९—३२॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ ३३॥

तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम्।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम्॥ ३४॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम पिङ्गलेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वहाँ उपवास करके जो विमलेश्वरका दर्शन करता है, वह सात जन्मोंमें किये पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें जाता है॥ ३३-३४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र आलिकातीर्थमुत्तमम्।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३५॥

राजेन्द्र! वहाँसे उत्तम आलिका-तीर्थमें जाना चाहिये। इस तीर्थका माहात्म्य यह है कि यहाँ एक रात्रि उपवास करके संयत रहते हुए नियमपूर्वक सात्त्विक आहार करनेसे ब्रह्महत्या (-के पाप)-से मुक्ति मिल जाती है॥ ३५॥

एतानि तव संक्षेपात् प्राधान्यात् कथितानि तु।
न शक्या विस्तराद् वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव॥ ३६॥

पाण्डव! संक्षेपमें मैंने प्रधान-प्रधान तीर्थोंको बतलाया। विस्तारपूर्वक तीर्थोंकी संख्याका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ३६॥

एषा पवित्रा विमला नदी त्रैलोक्यविश्रुता।
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा॥ ३७॥

मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदां वै युधिष्ठिर।
चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः॥ ३८॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः।
पतन्ति नरके घोरे इत्याह परमेश्वरः॥ ३९॥

नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥ ४०॥

यह पवित्र तथा स्वच्छ जलवाली नर्मदा नदी तीनों लोकोंमें विख्यात है। नर्मदा सभी नदियोंमें श्रेष्ठ है और महादेवको अत्यन्त प्रिय है। युधिष्ठिर! जो मनसे भी नर्मदाका स्मरण करता है, वह सौ चान्द्रायण व्रतोंसे भी अधिक फल प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है। परमेश्वरका यह कहना है कि श्रद्धासे रहित तथा घोर नास्तिकताका आश्रय लेनेवाले पुरुष भीषण नरकमें गिरते हैं (इसलिये ऐसे पुरुषोंको नरकसे बचनेके लिये नर्मदाका दर्शन-सेवन करना चाहिये)। इसी कारण स्वयं देव महेश्वर हम लोगोंको प्रेरणा देनेके लिये नित्य नर्मदाका सेवन करते हैं, अतः इस पवित्र नदीको ब्रह्महत्या-जैसे पापोंको दूर करनेवाली समझना चाहिये (तथा पूर्ण निष्ठाके साथ इसका दर्शन, सेवन अवश्य करना चाहिये)॥ ३७—४०॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें नैमिषारण्य तथा जप्येश्वर-तीर्थकी महिमा, जप्येश्वर-तीर्थमें महर्षि शिलादके पुत्र नन्दीकी तपस्या तथा उनके गणाधिपति होनेका आख्यान

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिशमुत्तमम्।
महादेवप्रियकरं महापातकनाशनम्॥ १॥

महादेवं दिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिनाम्।
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः॥ २॥

सूतजीने कहा—तीनों लोकोंमें विख्यात यह उत्तम नैमिष-तीर्थ महादेवको प्रिय लगनेवाला तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला है। द्विजोत्तमो! ब्रह्माने इस नैमिष-तीर्थकी सृष्टि उन परमेष्ठी (ब्रह्मनिष्ठ) ऋषियोंके लिये की है जो महादेवका दर्शन करनेकी इच्छासे तपस्या करना चाहते हैं॥ १-२॥

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वा ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥ ३॥

समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम्।
पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमच्युतम्॥ ४॥

ब्राह्मणो! प्राचीन कालमें मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु तथा अंगिराके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंने सभी प्रकारका वर देनेवाले, कमलसे उत्पन्न चतुर्मूर्ति, चतुर्मुख, अच्युत, विश्वकर्मा ब्रह्माके पास जाकर प्रणामकर उनसे पूछा—॥ ३-४॥

षट्कुलीया ऊचुः

भगवन् देवमीशानं भर्गमेकं कपर्दिनम्।
केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देवनमस्कृतम्॥ ५ ॥

ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्त्रमासध्वं वाङ्मनोदोषवर्जिताः।
देशं च वः प्रवक्ष्यामि यस्मिन् देशे चरिष्यथ॥ ६ ॥

उक्त्वा मनोमयं चक्रं स सृष्ट्वा तानुवाच ह।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मा चिरम्।
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशः पुरुषर्षभाः॥ ७ ॥
ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन्।
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत।
नैमिशं तत्स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥ ८ ॥

सिद्धचारणसंकीर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्।
स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिशमुत्तमम्॥ ९ ॥

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान् वरान्॥ १० ॥
इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः।
सत्रेणाराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥ ११ ॥

अत्र दानं तपस्तप्तं स्नानं जप्यादिकं च यत्।
एकैकं पावयेत् पापं सप्तजन्मकृतं द्विजाः॥ १२ ॥

अत्र पूर्वं स भगवानृषीणां सत्रमासताम्।
प्रोवाच वायुर्ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मभाषितम्॥ १३ ॥

अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वकृत्।
रमतेऽद्यापि भगवान् प्रमथैः परिवारितः॥ १४ ॥

अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते॥ १५ ॥

षट्कुलोत्पन्न ऋषियोंने कहा—भगवन्! यह बतलायें कि हम किस उपायसे देवताओंद्वारा नमस्कृत, अद्वितीय तेजस्वी कपर्दी ईशानदेवका दर्शन करें॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—आप लोग वाणी तथा मनके दोषोंसे रहित होकर हजार यज्ञविशेष-सत्र सम्पन्न करें। मैं वह देश आप लोगोंको बतलाता हूँ, जहाँ आप यज्ञ करेंगे। ऐसा कहकर उन (ब्रह्मा)-ने एक मनोमय चक्रका निर्माण करके उन (ऋषियों)-से कहा—मेरे द्वारा छोड़े गये इस चक्रका आप लोग अनुगमन करें, विलम्ब न करें। श्रेष्ठ पुरुषो! जहाँ इस (चक्र)-की नेमि शीर्ण होगी (गिरकर टूटेगी) वही स्थान तपस्या एवं यज्ञ करनेका शुभ स्थान होगा॥ ६-७॥

तब उन्होंने (ब्रह्माने) उस (मनोमय) चक्रको छोड़ा और वे ऋषि उस चक्रके पीछे-पीछे चलने लगे। शीघ्रतापूर्वक जा रहे उस चक्रकी नेमि जहाँ (शीर्ण हुई) गिरी, वह स्थान नैमिश नामसे प्रसिद्ध हुआ और पवित्र तथा सर्वत्र पूजित हुआ। सिद्धों तथा चारणोंसे परिपूर्ण, यक्षों-गन्धर्वोंसे सेवित यह उत्तम नैमिश नामक स्थान भगवान् शम्भुका स्थान है। प्राचीन कालमें यहाँपर तपस्या करके देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, नागों और राक्षसोंने श्रेष्ठ वरोंको प्राप्त किया था॥ ८—१०॥

(मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु तथा अंगिरा—इन) छः कुलोंके ऋषियोंने इस देशमें रहते हुए एकाग्रतापूर्वक यज्ञानुष्ठानद्वारा देवेशकी आराधना कर महेश्वरका दर्शन किया था। द्विजो! यहाँ किया गया दान, तप, स्नान तथा जप आदि कोई भी शुभ कर्म अकेला ही सात जन्मोंमें किये पापको नष्ट कर उसे पवित्र बना देता है। प्राचीन कालमें इसी तीर्थमें भगवान् वायुने यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको ब्रह्माजीद्वारा कहे गये ब्रह्माण्डपुराणको सुनाया था। आज भी यहाँ विश्वकी सृष्टि करनेवाले भगवान् महादेव प्रमथगणोंसे घिरे रहकर रुद्राणीके साथ रमण करते हैं। (अपनी अन्तिम अवस्थामें) नियमपूर्वक यहाँ निवासकर प्राणोंका परित्याग करनेवाले द्विजाति लोग उस ब्रह्मलोकमें जाते हैं, जहाँ जाकर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ११—१५॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम्।
जजाप रुद्रमनिशं यत्र नन्दी महागणः॥ १६॥

प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक्।
ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च॥ १७॥

एक दूसरा तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ है, जो जाप्येश्वर नामसे प्रसिद्ध है। जहाँ महान् गण नन्दीने निरन्तर रुद्रका जप किया था और पिनाक धारण करनेवाले रुद्र-महादेव देवीके साथ उनपर प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें (नन्दीको) अपनी समानता तथा मृत्युसे बचनेका वर प्रदान किया था॥ १६-१७॥

अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित्।
आराधयन्महादेवं पुत्रार्थं वृषभध्वजम्॥ १८॥

तस्य वर्षसहस्रान्ते तप्यमानस्य विश्वकृत्।
शर्वः सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ १९॥

स वव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम्।
अयोनिजं मृत्युहीनं देहि पुत्रं त्वया समम्॥ २०॥

तथास्त्वित्याह भगवान् देव्या सह महेश्वरः।
पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्धानं गतो हरः॥ २१॥

(इन नन्दीके प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—) शिलाद नामके एक धर्मज्ञ धर्मात्मा ऋषि हुए, उन्होंने पुत्रप्राप्तिके लिये वृषभध्वज महादेवकी आराधना की। तप करते हुए उन्होंने जब हजार वर्षका समय व्यतीत कर दिया, तब गणोंसे आवृत विश्वकर्ता सोम शर्वने 'मैं वर दूँगा' इस प्रकार कहा। उन्होंने (शिलाद ऋषिने) वरेण्य गिरिजापति ईशानसे वर माँगा कि मुझे आप मृत्युसे रहित अपने ही समान अयोनिज पुत्र प्रदान करें। देवीके साथ भगवान् महेश्वरने—'ऐसा ही हो' कहा और उन विप्रर्षिके देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गये॥ १८—२१॥

ततो यियक्षुः स्वां भूमिं शिलादो धर्मवित्तमः।
चकर्ष लाङ्गलेनोर्वीं भित्त्वादृश्यत शोभनः॥ २२॥

संवर्तकानलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन् दिशः॥ २३॥

कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा।
शिलादं तात तातेति प्राह नन्दी पुनः पुनः॥ २४॥

तं दृष्टः नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे।
मुनिभ्यो दर्शयामास ये तदाश्रमवासिनः॥ २५॥

तदनन्तर धर्मज्ञ शिलादने अपनी भूमिमें यज्ञ करनेकी इच्छासे हलद्वारा पृथ्वीको जोता। पृथ्वीका भेदन करनेपर उन्होंने संवर्तक नामक अग्निके समान, रूप तथा लावण्यसे सम्पन्न और अपने तेजसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए, हँसते हुए एक सुन्दर कुमारको देखा। कुमार (कार्तिकेय)-के समान उन अतुलनीय नन्दी (नामक कुमार)-ने मेघ-सदृश गम्भीर वाणीमें शिलादको बार-बार 'तात' 'तात' इस प्रकारसे कहा। आविर्भूत हुए उस पुत्रको देखकर शिलादने उसका आलिंगन किया और उस आश्रममें रहनेवाले जो मुनि थे, उन्हें भी उसे दिखाया॥ २२—२५॥

जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् सुतम्॥ २६॥

अधीतवेदो भगवान् नन्दी मतिमनुत्तमाम्।
चक्रे महेश्वरं द्रष्टुं जेष्ये मृत्युमिति प्रभुम्॥ २७॥

स गत्वा सरितं पुण्यामेकाग्रश्रद्धयान्वितः।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः॥ २८॥

तस्य कोट्यां तु पूर्णायां शंकरो भक्तवत्सलः।
आगत्य साम्बः सगणो वरदोऽस्मीत्युवाच ह॥ २९॥

अनन्तर उन्होंने (शिलाद ऋषिने) उन नन्दीके जातकर्म आदि सभी संस्कार किये और शास्त्रविधिसे उपनयन-संस्कार कर वेद पढ़ाया। वेदका अध्ययन कर भगवान् नन्दीने यह श्रेष्ठ विचार किया कि प्रभु महेश्वरका दर्शन कर मैं मृत्युको जीतूँगा। उन्होंने पवित्र नदीके तटपर जाकर एकाग्र तथा श्रद्धायुक्त होकर महेश्वरमें अपने मनको आसक्तकर निरन्तर रुद्रका जप करना प्रारम्भ कर दिया। उनके द्वारा एक करोड़ जपकी संख्या पूर्ण होनेपर भक्तवत्सल शंकरने अपने गणों तथा पार्वतीके साथ वहाँ आकर 'मैं वर दूँगा' इस प्रकार कहा॥ २६—२९॥

स वव्रे पुनरेवाहं जपेयं कोटिमीश्वरम्।
तावदायुर्महादेव देहीति वरमीश्वर॥ ३०॥

एवमस्त्विति सम्प्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः॥ ३१॥

द्वितीयायां च कोट्यां वै सम्पूर्णायां वृषध्वजः।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥ ३२॥

तृतीयां जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शंकर।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देवोऽप्यन्तरधीयत॥ ३३॥

कोटित्रयेऽथ सम्पूर्णे देवः प्रीतमना भृशम्।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥ ३४॥

जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तव तेजसा।
इत्युक्ते भगवानाह न जप्तव्यं त्वया पुनः॥ ३५॥

नन्दीने वर माँगते हुए कहा—ईश्वर! मैं पुनः ईश्वरका एक करोड़ जप करना चाहता हूँ, अतः महादेव! आप मुझे उतनी ही लम्बी आयु प्रदान करें। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देव अन्तर्धान हो गये। भगवान् नन्दीने पुनः उनमें मन लगाते हुए एक करोड़ जप किया। दो करोड़ जप पूरा होनेपर पुनः भूतगणोंसे आवृत वृषध्वज (शंकर)-ने आकर 'मैं वर प्रदान करूँगा' ऐसा कहा। (तब नन्दीने कहा—) प्रभु शंकर! मैं पुनः तीसरी बार एक करोड़ जप करना चाहता हूँ। 'ऐसा ही हो' कहकर विश्वात्मा देव पुनः अन्तर्धान हो गये। तीन करोड़ जप पूरा होनेपर भूतगणोंसे आवृत, अत्यन्त प्रसन्न-मन, देव (शंकर)-ने वहाँ आकर कहा—'मैं वर प्रदान करूँगा।' (इसपर नन्दीने कहा—) मैं पुनः आपके तेजसे सम्पन्न होकर करोड़की संख्यामें जप करना चाहता हूँ। ऐसा कहे जानेपर भगवान्ने कहा—अब तुम्हें आगे जप नहीं करना है॥ ३०—३५॥

अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वगतः सदा।
महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भव महेश्वरः॥ ३६॥

योगीश्वरो योगनेता गणानामीश्वरेश्वरः।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वज्ञो मद्बलान्वितः॥ ३७॥

ज्ञानं तन्मामकं दिव्यं हस्तामलकवत् तव।
आभूतसम्प्लवस्थायी ततो यास्यसि मत्पदम्॥ ३८॥

तुम जरासे (वृद्धावस्थासे) मुक्त और अमर होकर सदा मेरे समीपमें स्थित रहोगे। तुम देवी (पार्वती)-के पुत्र, महागणपति (मेरे गणके अधिपति) एवं महेश्वर होओगे! तुम योगीश्वर, योगनेता, गणोंके ईश्वरोंके भी ईश्वर, सभी लोकोंके अधिपति, श्रीमान् सर्वज्ञ और मेरे बलसे सम्पन्न रहोगे। मेरा दिव्य ज्ञान तुम्हें हस्तामलकवत् प्राप्त रहेगा। तुम महाप्रलयपर्यन्त (गणेश्वर एवं नन्दीके रूपमें) स्थित रहोगे और उसके बाद मेरे पदको प्राप्त करोगे॥ ३६—३८॥

एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शंकरः।
अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्॥ ३९॥

उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक्।
मरुतां च शुभां कन्यां सुयशेति च विश्रुताम्॥ ४०॥

ऐसा कहकर महादेव शंकरने गणोंको बुलाकर उन नन्दीश्वरको गणोंके अधिपतिके पदपर अत्यन्त उपयुक्त अभिषेक-विधिसे नियुक्त कर दिया। पिनाक धारण करनेवाले शंकरने स्वयं ही मरुद्गणोंकी शुभ कन्या जो 'सुयशा' इस नामसे विख्यात थी, उसके साथ इनका विवाह कर दिया॥ ३९-४०॥

एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः।
यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते॥ ४१॥

यह जप्येश्वर नामक स्थान देवाधिदेव शूली शंकरका स्थान है। यहाँ जहाँ कहीं भी शरीर त्याग करनेवाला रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

विविध शैव-तीर्थोंके माहात्म्यका निरूपण, तीर्थोंके अधिकारी तथा तीर्थ-माहात्म्यका उपसंहार

सूत उवाच

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः।
नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १ ॥

त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥ २ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं शंकरस्यामितौजसः।
महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम्॥ ३ ॥

तीर्थानां च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी।
सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रजा॥ ४ ॥

सूतजीने कहा—जप्येश्वरके समीपमें ही पञ्चनद नामका एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है, जो पवित्र तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ तीन रात्रिपर्यन्त उपवासकर महेश्वरकी पूजा करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध आत्मावाला होकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अमित तेजस्वी शंकरका एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है जो महाभैरव नामसे कहा गया है, वह महापातकोंका नाश करनेवाला है। वितस्ता नामक श्रेष्ठ नदी तीर्थोंमें परम तीर्थ है, वह सभी पापोंको हरनेवाली, पवित्र और साक्षात् पार्वतीरूप ही है॥ १—४॥

तीर्थं पञ्चतपं नाम शम्भोरमिततेजसः।
यत्र देवादिदेवेन चक्रार्थं पूजितो भवः॥ ५ ॥

पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्तफलप्रदम्।
मृतस्तत्रापि नियमाद् ब्रह्मलोके महीयते॥ ६ ॥

अमित तेजस्वी शम्भुका पञ्चतप नामका एक तीर्थ है, जहाँ देवोंके आदिदेव (विष्णु)-ने चक्र-प्राप्तिके लिये शंकरकी पूजा की थी। वहाँ (पञ्चनद तीर्थमें) किया गया पिण्डदान आदि कर्म परलोकमें अनन्त फल प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ संकल्पपूर्वक नियमसे निवास करते हुए यथासमय प्राण-त्याग करनेवाला ब्रह्मलोकमें महिमा प्राप्त करता है॥ ५-६॥

कायावरोहणं नाम महादेवालयं शुभम्।
यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः सम्प्रवर्तिताः॥ ७ ॥

श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः।
परित्यजति यः प्राणान् रुद्रलोकं स गच्छति॥ ८ ॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमिति श्रुतम्।
तत्र गत्वा त्यजेत् प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान्॥ ९ ॥

जामदग्न्यस्य तु शुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत्॥ १० ॥

महाकालमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ११ ॥

गुह्याद् गुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम्।
तत्र संनिहितः श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वरः॥ १२ ॥

कायावरोहण नामक महादेवका एक शुभ स्थान (तीर्थ) है, जहाँ मुनियोंने माहेश्वर धर्मोंका प्रवर्तन किया था। वहाँ किया गया श्राद्ध, दान, तप, होम तथा उपवास अक्षय (फल प्रदान करनेवाला) होता है। वहाँ जो प्राण परित्याग करता है, वह रुद्रलोकमें जाता है। एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है, जो कन्यातीर्थ इस नामसे विख्यात है। वहाँ जाकर प्राणोंका परित्याग करनेसे शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति होती है। जमदग्निके पुत्र अक्लिष्टकर्मा परशुरामका भी एक शुभ तीर्थ है। उस तीर्थ-श्रेष्ठमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। महाकाल इस नामसे विख्यात तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर प्राणोंका परित्याग करनेसे गाणपत्य-पद प्राप्त होता है। श्रेष्ठ नकुलीश्वर तीर्थ गुह्यस्थानोंमें भी अत्यन्त गुह्य है। वहाँ श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर विराजमान रहते हैं॥ ७—१२॥

हिमवच्छिखरे रम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने।
देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्यैश्च संवृतः॥ १३॥
तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम्।
सर्वपापैर्विमुच्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात्॥ १४॥

हिमालयके रमणीय शिखरपर स्थित अत्यन्त सुन्दर गङ्गाद्वारमें शिष्योंसे घिरे हुए महादेव देवीके साथ नित्य निवास करते हैं। वहाँ स्नानकर वृषध्वज महादेवकी पूजा करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है और मृत्युके बाद परम ज्ञान प्राप्त होता है॥ १३-१४॥

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम्।
भीमेश्वरमिति ख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम्॥ १५॥
तथान्यच्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ १६॥

देवाधिदेव (शंकर)-का एक दूसरा शुभ तथा पवित्रतम स्थान है जो भीमेश्वर इस नामसे विख्यात है। वहाँ जानेसे व्यक्ति पापसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार चण्डवेगा नदीका उद्गम-स्थान भी पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करने तथा जलका पान करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है॥ १५-१६॥

सर्वेषामपि चैतेषां तीर्थानां परमा पुरी।
नाम्ना वाराणसी दिव्या कोटिकोट्ययुताधिका॥ १७॥
तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं वो मया त्विह।
नान्यत्र लभ्यते मुक्तिर्योगिनाप्येकजन्मना॥ १८॥

इन सभी तीर्थोंमें भी श्रेष्ठ तथा दिव्य वाराणसी नामकी पुरी हजारों कोटिगुना अधिक फलप्रदा है। पूर्वमें मैंने आप लोगोंसे उसके माहात्म्यका वर्णन किया था। योगीको भी (वाराणसीके अतिरिक्त) अन्यत्र एक जन्ममें मुक्ति नहीं मिलती॥ १७-१८॥

एते प्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम्।
गत्वा संक्षालयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्॥ १९॥
यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च॥ २०॥

मनुष्योंके पापोंको हरनेवाले ये प्रधान-प्रधान देश (तीर्थ) बतलाये गये हैं। यहाँ जाकर सैकड़ों जन्मोंमें किये पापोंका प्रक्षालन करना चाहिये। जो अपने धर्मोंका परित्यागकर तीर्थोंका सेवन करता है, उसके लिये तीर्थ न इस लोकमें फलदायी होते हैं न परलोकमें॥ १९-२०॥

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा पापचरो गृही।
प्रकुर्यात् तीर्थसंसेवां ये चान्ये तादृशा जनाः॥ २१॥
सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत् तीर्थानि यत्नतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात्॥ २२॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य कुर्याद् वा तीर्थसेवनम्।
विधाय वृत्तिं पुत्राणां भार्यां तेषु निधाय च॥ २३॥

प्रायश्चित्ती, पत्नीसे रहित विधुर पुरुष तथा जिनके द्वारा पाप हो गया है ऐसे गृहस्थ एवं इसी प्रकारके जो अन्य लोग हैं, उन्हें (पश्चात्तापपूर्वक यथाशास्त्र) तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक अग्नि[१] अथवा पत्नीके साथ तीर्थोंमें जाना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होकर यथोक्त गति (उत्तम गति) प्राप्त करता है। अथवा तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेके बाद पुत्रोंके लिये जीविका-सम्बन्धी वृत्तिकी व्यवस्थाकर और अपनी पत्नीको उन्हें सौंपकर तीर्थका सेवन करना चाहिये॥ २१—२३॥

१-अग्निहोत्री वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकारकर अपनी अग्नि तथा धर्मपत्नीके साथ तीर्थमें निवास करता है।

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि मुच्यते सर्वपातकैः॥ २४॥

प्रायश्चित्तके प्रसंगवश तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया। इसे पढ़नेवाला अथवा सुननेवाला भी सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ २४॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

चतुर्विध प्रलयका प्रतिपादन, नैमित्तिक प्रलयका विशेष वर्णन, विष्णुद्वारा अपने माहात्म्यका निरूपण

सूत उवाच

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम्।
कूर्मरूपधरं देवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम्॥ १॥

मुनय ऊचुः

कथिता भवता धर्मा मोक्षज्ञानं सविस्तरम्।
लोकानां सर्गविस्तारं वंशमन्वन्तराणि च॥ २॥

प्रतिसर्गमिदानीं नो वक्तुमर्हसि माधव।
भूतानां भूतभव्येश यथा पूर्वं त्वयोदितम्॥ ३॥

सूत उवाच

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपधृक्।
व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसंचरम्॥ ४॥

कूर्म उवाच

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतात्यन्तिकौ तथा।
चतुर्धायं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसंचरः॥ ५॥

योऽयं संदृश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह।
नित्यः संकीर्त्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसंचरः॥ ६॥

ब्राह्मो नैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति।
त्रैलोक्यस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः॥ ७॥

महदाद्यं विशेषान्तं यदा संयाति संक्षयम्।
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं प्रोच्यते कालचिन्तकैः॥ ८॥

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः॥ ९॥

सूतजीने कहा—नारायणके मुखसे कहे गये इस विशिष्ट ज्ञानको सुनकर मुनियोंने कूर्मरूप धारण करनेवाले प्रभु देवसे पूछा—॥ १॥

मुनियोंने कहा—(सूतजी!) आपने विस्तारपूर्वक धर्म, मोक्ष, ज्ञान, लोकोंकी सृष्टिके विस्तार, वंश और मन्वन्तरोंको हमें बतलाया। माधव! भूतभव्येश! जैसा आपने पूर्वमें (पुराण-लक्षणके प्रसंगसे प्रतिसर्गके विषयमें) बतलाया है, तदनुसार अब हमें प्राणियोंके प्रतिसर्गके विषयमें बतलायें॥ २-३॥

सूतजीने कहा—तब उनके उस वचनको सुनकर कूर्मरूपधारी महायोगी भगवान्‌ने भूतोंके प्रतिसंचर अर्थात् प्रलयका वर्णन किया॥ ४॥

कूर्म बोले—इस पुराणमें नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत तथा आत्यन्तिक—इस प्रकारसे चार प्रकारका प्रतिसंचर (प्रलय) कहा गया है। लोकमें यहाँ जो प्राणियोंका नित्य क्षय दिखलायी देता है, उसे मुनियोंने नित्य-प्रलयके नामसे कहा है। कल्पान्तमें ब्रह्मा (की निद्रा)-के निमित्तसे होनेवाले तीनों लोकोंके प्रतिसर्ग—प्रलयको विद्वानोंने (नैमित्तिक प्रलय) कहा है। महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त समस्त तत्त्वोंका जो क्षय हो जाता है, उसे कालचिन्तकोंने प्राकृत प्रतिसर्ग कहा है और ज्ञानद्वारा परमात्मामें होनेवाले योगियोंके आत्यन्तिक प्रलयको[1] कालचिन्तक द्विज आत्यन्तिक प्रतिसर्ग (प्रलय) कहते हैं॥ ५—९॥

१-यहाँ 'प्रलय' का तात्पर्य परमात्मतत्त्वके साथ एकरूपतामें है।

आत्यन्तिकश्च कथितः प्रलयोऽत्र ससाधनः।
नैमित्तिकमिदानीं वः कथयिष्ये समासतः॥ १०॥

यहाँ साधनसहित आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्षका वर्णन किया गया है। अब मैं संक्षेपमें आप लोगोंको नैमित्तिक प्रलयके विषयमें बतलाऊँगा॥ १०॥

चतुर्युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे।
स्वात्मसंस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रतिपेदे प्रजापतिः॥ ११॥

ततो भवत्यनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयंकरी॥ १२॥

ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले।
तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥ १३॥

सप्तरश्मिरथो भूत्वा समुत्तिष्ठन् दिवाकरः।
असह्यरश्मिर्भवति पिबन्नम्भो गभस्तिभिः॥ १४॥

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे।
तेनाहारेण ता दीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्त्युत॥ १५॥

ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्या भूत्वा चतुर्दिशम्।
चतुर्लोकमिदं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तथा॥ १६॥

एक हजार चतुर्युग (सत्य-त्रेता-द्वापर तथा कलियुग)-के अन्तमें प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्रजापति समस्त प्रजाको आत्मस्थ करनेकी इच्छा करते हैं। इसके बाद सौ वर्षोंतक तीव्र अनावृष्टि होती है, वह भूतों एवं सभी प्राणियोंका विनाश करनेवाली तथा अत्यन्त भयंकर होती है। तदनन्तर भूमिपर जो अल्पसार अर्थात् निर्बल प्राणी होते हैं, सबसे पहले उनका लय होता है और वे भूमिमें मिल जाते हैं। तब सात रश्मियोंवाले रथपर आरूढ़ होकर सूर्य उदित होते हैं। उनकी किरणें असह्य हो जाती हैं, वे अपनी किरणोंद्वारा जल पीने लगते हैं। उनकी वे सातों रश्मियाँ महासमुद्रमें स्थित जलको पीती हैं। उस आहारसे उद्दीप्त होकर वे (सात) रश्मियाँ पुनः सात सूर्य बन जाती हैं। तदनन्तर सूर्यरूप वे सातों रश्मियाँ चारों दिशाओं तथा सम्पूर्ण इस चतुर्लोकको अग्निके समान दग्ध करने लगती हैं॥ ११—१६॥

व्याप्नुवन्तश्च ते विप्रास्तूर्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रतापिनः॥ १७॥

ते सूर्या वारिणा दीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः।
खं समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुंधराम्॥ १८॥

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुंधरा।
साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निस्नेहा समपद्यत॥ १९॥

दीप्ताभिः संतताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः।
अधश्चोर्ध्वं च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम्॥ २०॥

ब्राह्मणो! प्रलयकालीन अग्निके तेजसे युक्त वे सातों सूर्य अपनी-अपनी रश्मियोंके द्वारा ऊर्ध्व तथा अधोभागको व्याप्तकर अतिशय उद्दीप्त हो जाते हैं। जलसे प्रदीप्त अनेक सहस्र रश्मियोंवाले वे सूर्य आकाशको आवृतकर स्थित रहते हैं और पृथिवीको जलाने लगते हैं। तदनन्तर उनके तेजसे जलती हुई पृथ्वी पर्वतों, नदियों, समुद्रों तथा द्वीपोंके साथ स्नेह (द्रवभाव)-से रहित हो जाती है अर्थात् अत्यन्त सूख जाती है। सतत प्रदीप्त रहनेवाली वे रश्मियाँ ऊपर-नीचे तथा आड़े-तिरछे सभी ओर व्याप्त हो जाती हैं॥ १७—२०॥

सूर्याग्निना प्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम्।
एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत॥ २१॥

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा सुकुण्डली।
चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्यात्मतेजसा॥ २२॥

सूर्यरूप अग्निके द्वारा प्रकृष्टरूपसे शोधित और परस्पर संसृष्ट संसारके समस्त पदार्थ एक ज्वालाके रूपमें एकाकार हो जाते हैं। सभी लोकोंको नष्ट करनेवाली वह सूर्यरूप अग्नि एक मण्डलके रूपमें होकर अपने तेजसे इस सम्पूर्ण चतुर्लोकको दग्ध करने लगती है॥ २१-२२॥

ततः प्रलीने सर्वस्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठा प्रकाशते॥ २३॥

अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत्।
सर्वमेव तदर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते पुनः॥ २४॥

तब सम्पूर्ण स्थावर एवं जंगम पदार्थोंके लीन हो जानेपर वृक्षों तथा तृणोंसे रहित भूमि कछुएके पीठके समान दिखलायी देती है। (किरणोंसे) व्याप्त समस्त जगत् अम्बरीष (भड़-भूजेकी कड़ाही)-के सदृश वर्णवाला दिखलायी देता है। उन ज्वालाओंके द्वारा सभी कुछ पूर्णरूपसे प्रज्वलित होने लगता है॥ २३-२४॥

पाताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च।
ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥ २५॥

द्वीपांश्च पर्वतांश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन्।
तान् सर्वान् भस्मसात् कृत्वा सप्तात्मा पावकः प्रभुः॥ २६॥

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वशः।
पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥ २७॥

तदनन्तर पातालमें तथा महासमुद्रोंमें जो प्राणी रहते हैं, उनका लय होता है और वे सभी भूमिके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। सात (सूर्यों)-के रूपमें प्रदीप्त हो रहे प्रभु पावक (अग्निदेव) उन सभी द्वीपों, पर्वतों, वर्षों तथा महासमुद्रोंको भस्मसात् कर देते हैं। समुद्रों, नदियों तथा पातालोंके सम्पूर्ण जलका शोषण करती हुई प्रदीप्त अग्नि (सूर्यकी ज्वाला) पृथ्वीपर प्रज्वलित होने लगती है अर्थात् पृथ्वीको जलाने लगती है॥ २५—२७॥

ततः संवर्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा।
लोकान् दहति दीप्तात्मा रुद्रतेजोविजृम्भितः॥ २८॥

स दग्ध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोषयत्।
अधस्तात् पृथिवीं दग्ध्वा दिवमूर्ध्वं दहिष्यति॥ २९॥

योजनानां शतानीह सहस्राण्ययुतानि च।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य वह्नेः संवर्तकस्य तु॥ ३०॥

तदनन्तर महान् संवर्तक नामक अग्नि पर्वतोंका अतिक्रमण करते हुए रुद्रके तेजसे पुष्ट होनेके कारण दीप्त आत्मावाला होकर लोकोंको जलाने लगती है। (सम्पूर्ण) पृथ्वीको दग्धकर वे अग्निदेव रसातलको शोषित करते हैं। पृथ्वीके नीचेके भागको जलाकर ऊपरके द्युलोकको जलाने लगते हैं। उस संवर्तक अग्निकी शिखाएँ सैकड़ों, हजारों तथा दस हजार योजन ऊपरतक उठने लगती हैं॥ २८—३०॥

गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान्।
तदा दहत्यसौ दीप्तः कालरुद्रप्रचोदितः॥ ३१॥

भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च तथा महः।
दहेदशेषं कालाग्निः कालो विश्वतनुः स्वयम्॥ ३२॥

व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना।
तत् तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः।
अयोगुडनिभं सर्वं तदा चैकं प्रकाशते॥ ३३॥

तब कालरुद्रद्वारा प्रेरित होकर यह उद्दीप्त अग्नि गन्धर्वों, पिशाचों, यक्षों, नागों तथा राक्षसोंको जलाती है। कालाग्निस्वरूप विश्वात्मा स्वयं काल भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोकको सम्पूर्णरूपसे जला देता है। इन लोकोंमें तिरछे तथा ऊँचे सब जगह अग्निके द्वारा व्याप्त कर दिये जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् उस तेजसे धीरे-धीरे पूरित होकर (जलते हुए) एक अयःपिण्ड (लोहपिण्ड)-के समान प्रकाशित होने लगता है॥ ३१—३३॥

ततो गजकुलोन्नादास्तडिद्भिः समलंकृताः।
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः॥ ३४॥

तदनन्तर हाथियोंके समूहके समान नाद करनेवाले विद्युत्से अलंकृत संवर्तक नामक भयंकर मेघ आकाशमें प्रकट होते हैं॥ ३४॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित् कुमुदसंनिभाः।
धूम्रवर्णास्तथा केचित् केचित् पीताः पयोधराः॥ ३५॥

केचिद् रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभास्तथा।
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभाः परे॥ ३६॥

मनःशिलाभास्त्वन्ये च कपोतसदृशाः परे।
इन्द्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा।
इन्द्रचापनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि॥ ३७॥

उन मेघोंमेंसे कुछ नीलकमलके समान श्यामवर्णके, कुछ कुमुदके समान श्वेत वर्णके, कुछ धूम्रवर्णके, कुछ पीतवर्णके, कुछ रासभ (धूसर) वर्णके, कुछ लाक्षारसके समान, कुछ दूसरे शंख तथा कुन्द (पुष्प)-के समान रंगवाले, कुछ जाती पुष्प (चमेली)-के तथा अञ्जन (काजल)-के समान, कुछ मनःशिला (मैनसिल)-के समान रंगवाले और कुछ दूसरे कपोतके समान वर्णवाले, कुछ इन्द्रगोप (बीरबहूटी कीट)-के समान, कुछ हरतालके समान और कुछ इन्द्रधनुषके समान वर्णवाले मेघ आकाशमें प्रकट होते हैं॥ ३५—३७॥

केचित् पर्वतसंकाशाः केचिद् गजकुलोपमाः।
कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहाः।
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः॥ ३८॥

तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभःस्थलम्।
ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः।
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत॥ ३९॥

कुछ मेघ पर्वतके तुल्य, कुछ हाथियोंके समूहके समान, कुछ कूटाङ्गारके समान और कुछ मछलियोंके समूहके आकारके होते हैं। वे मेघ अनेक रूप धारण करनेवाले, भयंकर आकारवाले तथा घोर गर्जना-जैसी ध्वनि करनेवाले होते हैं। उस समय वे सभी बादल आकाशको व्याप्त कर लेते हैं, तदनन्तर भास्करसे उत्पन्न गर्जना करनेवाले वे सात प्रकारके भयंकर बादल एकत्रित होकर उस अग्निको शान्त करते हैं॥ ३८-३९॥

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्तीह महौघवत्।
सुघोरमशिवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम्॥ ४०॥

प्रवृष्टे च तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत्।
अद्भिस्तेजोऽभिभूतत्वात् तदाग्निः प्रविशत्यपः॥ ४१॥

तदुपरान्त वे मेघ महान् बाढ़के समान जलकी वर्षा करते हैं और अत्यन्त भयंकर, अकल्याणकारी उस सम्पूर्ण अग्निको नष्ट कर देते हैं। अतिशय वृष्टि होनेके कारण जगत् जलसे परिपूर्ण हो जाता है। जलके द्वारा तेज (अग्नि)-के अभिभूत होनेके कारण उस समय वह अग्नि जलमें प्रविष्ट हो जाता है॥ ४०-४१॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतैः पयोदाः क्षयसम्भवाः।
प्लावयन्तोऽथ भुवनं महाजलपरिस्रवैः॥ ४२॥

धाराभिः पूरयन्तीदं चोद्यमानाः स्वयम्भुवा।
अत्यन्तसलिलौघैश्च वेला इव महोदधिः॥ ४३॥

इस तरह अग्निके शान्त हो जानेपर स्वयम्भू—ब्रह्माके द्वारा प्रेरित मेघ अत्यधिक जलके प्रवाहोंसे समस्त भुवनको आप्लावित करते हुए वैसे ही अपनी जलधाराओंसे इस भुवनको परिपूर्ण कर देते हैं, जैसे समुद्र अत्यधिक जलोंके प्रवाहोंसे अपने तटोंको आप्लावित कर देता है। ये मेघ इतने जलसे भरपूर हैं कि इनका क्षय दिव्य सैकड़ों वर्षोंमें कदाचित् सम्भव है॥ ४२-४३॥

साद्रिद्वीपा तथा पृथ्वी जलैः संच्छाद्यते शनैः।
आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति।
पुनः पतति तद् भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः॥ ४४॥

ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रान्तास्तु कृत्स्नशः।
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति॥ ४५॥

धीरे-धीरे पर्वतों तथा द्वीपोंवाली पृथ्वी जलसे ढक जाती है और सूर्यकी रश्मियोंद्वारा गृहीत वह जल बादलोंमें स्थित रहता है। पुनः वह जल पृथ्वीपर गिरता है और उससे समुद्र इतने आपूरित हो जाते हैं कि सर्वत्र अपने तटोंका अतिक्रमण कर वे जलमय हो जाते हैं, पर्वत जलमें विलीन हो जाते हैं और पृथ्वी भी जलमें डूब जाती है॥ ४४-४५॥

तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
योगनिद्रां समास्थाय शेते देवः प्रजापतिः॥ ४६॥

उस भयंकर एकार्णव (महासमुद्र)-में स्थावर-जंगम सभीके लीन हो जानेपर योगनिद्राका आश्रय ग्रहणकर देव प्रजापति शयन करते हैं॥ ४६॥

चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुर्महर्षयः।
वाराहो वर्तते कल्पो यस्य विस्तार ईरितः॥ ४७॥

असंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः।
कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः॥ ४८॥

सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः॥ ४९॥

योऽयं प्रवर्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको मतः।
अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः॥ ५०॥

महर्षियोंने एक हजार चतुर्युगीका एक कल्प कहा है। अभी जिसका विस्तार बतलाया गया है, वह वाराह कल्प इस समय चल रहा है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवात्मक असंख्य कल्प हैं। पुराणोंमें काल-चिन्तक मुनियोंने उनका वर्णन किया है। सात्त्विक (सत्त्वप्रधान) कल्पोंमें हरिका अधिक माहात्म्य होता है। तामस (तम:प्रधान) कल्पोंमें शंकरका और राजस (रज:-प्रधान) कल्पोंमें प्रजापति ब्रह्माका अधिक माहात्म्य होता है। इस समय प्रवर्तमान वाराह कल्प सात्त्विक कल्प है। अन्य भी सात्त्विक कल्प हैं, उनमें मुझे कूर्मभगवान्‌का आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ ४७—५०॥

ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा तेष्वेव योगिनः।
आराध्य गिरिशं मां च यान्ति तत् परमं पदम्॥ ५१॥

सोऽहं सत्त्वं समास्थाय मायी मायामयीं स्वयम्।
एकार्णवे जगत्यस्मिन् योगनिद्रां व्रजामि तु॥ ५२॥

मां पश्यन्ति महात्मानः सुप्तं कालं महर्षयः।
जनलोके वर्तमानास्तपसा योगचक्षुषा॥ ५३॥

उन कल्पोंमें योगीजन ध्यान, तप तथा ज्ञान प्राप्तकर उनके द्वारा शंकरकी तथा मेरी आराधना करके परमपदको प्राप्त करते हैं। जगत्‌के एकार्णव हो जानेपर मायाका अधिष्ठाता मैं सत्त्वका आश्रय ग्रहणकर मायामय योगनिद्रामें स्थित हो जाता हूँ। उस समय जनलोकमें विद्यमान महात्मा, महर्षिगण तपस्या तथा योगरूपी नेत्रोंके द्वारा निद्रालीन कालस्वरूप मेरा दर्शन करते हैं॥ ५१—५३॥

अहं पुराणपुरुषो भूर्भुवः प्रभवो विभुः।
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्रांशुः सहस्रदृक्॥ ५४॥

मन्त्रोऽग्निर्ब्राह्मणा गावः कुशाश्च समिधो ह्यहम्।
प्रोक्षणी च स्रुवश्चैव सोमो घृतमथास्म्यहम्॥ ५५॥

संवर्तको महानात्मा पवित्रं परमं यशः।
वेदो वेद्यं प्रभुर्गोप्ता गोपतिर्ब्रह्मणो मुखम्॥ ५६॥

अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतां वरः।
हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्तिः सनातनः॥ ५७॥

क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम्।
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥ ५८॥

मैं पुराणपुरुष, भूर्भुवः, प्रभव तथा विभु हूँ, मैं हजारों चरणोंवाला, श्रीसम्पन्न, हजारों किरणोंवाला तथा हजारों नेत्रोंवाला हूँ। मैं ही मन्त्र, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, कुश एवं समिधा हूँ और प्रोक्षणी, स्रुव (यज्ञीय पात्र) सोम तथा घृत भी मैं ही हूँ। मैं ही संवर्तक (अग्नि), महान् आत्मा, पवित्र तथा परम यश हूँ। वेद-वेद्य (जिसे जाना जाता है), प्रभु, गोप्ता (रक्षक), गोपति (इन्द्रियों एवं वाणीके स्वामी) और ब्रह्माका मुख (आविर्भावस्थल) भी मैं ही हूँ। मैं अनन्त, तारक, योगी, गति, गतिशीलोंमें श्रेष्ठ, हंस, प्राण, कपिल, विश्वमूर्ति, सनातन, क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, काल, जगद्बीज और अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही माता, पिता तथा महादेव हूँ, मुझसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है॥ ५४—५८॥

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता
नारायणः पुरुषो योगमूर्तिः।
मां पंश्यन्ति यतयो योगनिष्ठा
ज्ञात्वात्मानममृतत्वं व्रजन्ति॥ ५९॥

मैं आदित्यके समान वर्णवाला, भुवनोंका रक्षक, नारायण पुरुष तथा योगमूर्ति हूँ। योगपरायण यतिजन मेरा दर्शन करते हैं और अपनी आत्माका ज्ञान प्राप्तकर अमृतत्व (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं॥ ५९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

प्राकृत प्रलयका वर्णन, शिवके विविध रूपों और विविध शक्तियोंका वर्णन, शिवकी आराधनाकी विधि, मुनियोंद्वारा कूर्मरूपधारी विष्णुकी स्तुति, कूर्मपुराणकी विषयानुक्रमणिकाका वर्णन, कूर्मपुराणकी फलश्रुति तथा इस पुराणकी वक्तृ-श्रोतृपरम्पराका प्रतिपादन, महर्षि व्यास तथा नारायणकी वन्दनाके साथ पुराणकी पूर्णताका कथन

कूर्म उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम्।
प्राकृतं हि समासेन शृणुध्वं गदतो मम॥ १॥

(भगवान्) कूर्मने कहा—इसके अनन्तर अब मैं उत्तम प्राकृत प्रलयका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। उसे आप सब श्रवण करें॥ १॥

गते परार्धद्वितये कालो लोकप्रकालनः।
कालाग्निर्भस्मसात् कर्तुं करोति निखिलं मतिम्॥ २॥

स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वा देवो महेश्वरः।
दहेदशेषं ब्रह्माण्डं सदेवासुरमानुषम्॥ ३॥

तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहितः।
करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रितः॥ ४॥

प्रविश्य मण्डलं सौरं कृत्वासौ बहुधा पुनः।
निर्दहत्यखिलं लोकं सप्तसप्तिस्वरूपधृक्॥ ५॥

द्वितीय[१] परार्ध (अर्थात् ब्रह्माजीकी परमायु—दिव्य १०० वर्षका समय)-के बीत जानेपर समस्त लोकोंका लय करनेवाला कालरूप कालाग्नि सम्पूर्ण जगत्को भस्मसात् करनेका निश्चय करता है। महेश्वर देव अपनी आत्मामें आत्मा (जीवात्मा)-को आविष्टकर देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध करते हैं। भगवान् नीललोहित महादेव भीषण रूप धारणकर उस अग्निमें प्रविष्ट होकर अर्थात् महाकालरूप होकर लोकका संहार करते हैं। सौर-मण्डलमें प्रविष्ट होकर उसे पुनः अनेक रूपवाला बनाकर सात-सात किरणोंवाले सूर्यरूपधारी वे महेश्वर सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध करते हैं॥ २—५॥

स दग्ध्वा सकलं सत्त्वमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत्।
देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम्॥ ६॥

दग्धेष्वशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा।
एका सा साक्षिणी शम्भोस्तिष्ठते वैदिकी श्रुतिः॥ ७॥

समस्त सत्त्व (पदार्थों)-को दग्ध करके वे महेश्वर देवताओंके शरीरपर सभीको जलानेमें समर्थ ब्रह्मशिर नामक महान् अस्त्रको छोड़ते हैं। सम्पूर्ण देवताओंके दग्ध हो जानेपर श्रेष्ठ पर्वत (हिमवान्)-की पुत्री देवी पार्वती अकेली ही साक्षीके रूपमें उन (शिव)-के पास स्थित रहती हैं—ऐसी वैदिकी श्रुति है॥ ६-७॥

१-ब्रह्माकी आयु दिव्य सौ वर्षकी है। इस कालको 'पर' कहते हैं। इसका आधा भाग 'परार्ध' होता है। (कूर्म० पूर्वविभाग अ० ५) शब्दकल्पद्रुममें उद्धृत।

शिर:कपालैर्देवानां कृतस्त्रग्वरभूषणः।
आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन् व्योममण्डलम्॥ ८॥
सहस्रनयनो देवः सहस्राकृतिरीश्वरः।
सहस्रहस्तचरणः सहस्रार्चिर्महाभुजः॥ ९॥
दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः।
त्रिशूली कृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः॥ १०॥
पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम्।
करोति ताण्डवं देवीमालोक्य परमेश्वरः॥ ११॥

देवताओंके मस्तकके कपालसे निर्मित मालाको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले, हजारों नेत्रवाले, हजारों आकृतिवाले, हजारों हाथ-पैरवाले, हजारों किरणवाले, भीषण दंष्ट्रा (दाढ़)-के कारण भयंकर मुखोंवाले, प्रदीप्त अग्निके समान नेत्रोंवाले, त्रिशूली चर्माम्बरधारी वे देव महेश्वर अनन्त सूर्य एवं चन्द्रके समूहोंसे समस्त आकाशमण्डलको व्याप्तकर ऐश्वरयोगमें स्थित हो जाते हैं और भगवती पार्वतीको देखते हुए परमानन्दमय अमृतका पानकर स्वयं ताण्डव नृत्य करते हैं॥ ८—११॥

पीत्वा नृत्तामृतं देवी भर्तुः परममङ्गला।
योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शूलिनः॥ १२॥
संत्यक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक्।
ज्योतिः स्वभावं भगवान् दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम्॥ १३॥
संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मविष्णुपिनाकिषु।
गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिषु॥ १४॥
सवारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहनः।
तेजस्तु गुणसंयुक्तं वायौ संयाति संक्षयम्॥ १५॥

पतिके नृत्यरूपी अमृतका पानकर परम कल्याणरूपिणी देवी (पार्वती) योगका आश्रय लेते हुए त्रिशूली शिवके शरीरमें प्रविष्ट हो जाती हैं। ब्रह्माण्डमण्डलको दग्ध करनेके अनन्तर पिनाक धारण करनेवाले भगवान् (शिव) अपनी इच्छासे ही ताण्डव (-के आनन्द)-रसका परित्यागकर ज्योतिःस्वरूप अपने भावमें स्थित हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा पिनाकी शिवके इस प्रकार स्थित हो जानेपर अपने सम्पूर्ण गुणोंके साथ पृथ्वी जलमें विलीन हो जाती है। अपने गुणोंसहित उस जल-तत्त्वको हव्यवाहन अग्नि ग्रहण कर लेता है और अपने गुणोंसहित वह तेज (अग्नि) वायुमें विलीन हो जाता है॥ १२—१५॥

आकाशे सगुणो वायुः प्रलयं याति विश्वभृत्।
भूतादौ च तथाकाशं लीयते गुणसंयुतम्॥ १६॥
इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम्।
वैकारिके देवगणाः प्रलयं यान्ति सत्तमाः॥ १७॥
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चेति सत्तमाः।
त्रिविधोऽयमहंकारो महति प्रलयं व्रजेत्॥ १८॥

विश्वका भरण-पोषण करनेवाला वायु अपने गुणोंके साथ आकाश (तत्त्व)-में लीन हो जाता है और अपने गुणसहित वह आकाश भूतादि अर्थात् तामस अहंकारमें लीन हो जाता है। सत्तमो! सभी इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारमें विलीन हो जाती हैं और (इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) देवगण वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारमें प्रलीन हो जाते हैं। श्रेष्ठो! वैकारिक, तैजस तथा भूतादि (तामस) नामक तीन प्रकारका अहंकार महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है॥ १६—१८॥

महान्तमेभिः सहितं ब्रह्माणमतितेजसम्।
अव्यक्तं जगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम्॥ १९॥
एवं संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः।
वियोजयति चान्योन्यं प्रधानं पुरुषं परम्॥ २०॥

यह महत्तत्त्व पृथ्वीसे अहंकारपर्यन्त समस्त तत्त्वोंका मूल होनेके कारण एक प्रकारसे अमित तेजस्वी ब्रह्मा ही हैं। अतः ब्रह्मारूप तथा अपनेमें पृथ्वी आदि समस्त तत्त्वोंको समाविष्ट कर लेनेवाले इस अद्वितीय महत्तत्त्वका संहार वह प्रकृति कर देती है, जो अव्यक्त है एवं समस्त जगत्का मूल कारण है। इस प्रकार (पञ्च) भूतों तथा तत्त्वोंका संहारकर महेश्वर प्रधान—प्रकृति और पुरुषको परस्पर वियुक्त कर देते हैं॥ १९-२०॥

प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ईरितः।
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लयः॥ २१॥

इस (प्रकृति-पुरुष वियोगको) ही अनादि प्रकृति और पुरुषका संहार कहा जाता है (क्योंकि सांख्यशास्त्रके अनुसार इन दोनोंके नित्य होनेसे इनका लय कहीं नहीं हो सकता)। यह (वियोगरूप) लय भी महेश्वरकी इच्छासे ही होनेवाला है, स्वयं नहीं हो सकता। गुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति है और अव्यक्त है। जगत्का मूल कारण प्रधान है। वह अचेतन है, इसे मायाके रूपमें समझना चाहिये॥ २१-२२॥

गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृतिः परिगीयते।
प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम्॥ २२॥
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलः पञ्चविंशकः।
गीयते मुनिभिः साक्षी महानेकः पितामहः॥ २३॥

एवं संहारकरणी शक्तिर्माहेश्वरी ध्रुवा।
प्रधानाद्यं विशेषान्तं दहेद् रुद्र इति श्रुतिः॥ २४॥

योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेतसाम्।
आत्यन्तिकं चैव लयं विदधातीह शंकरः॥ २५॥

कूटस्थ, अद्वितीय पचीसवाँ तत्त्वरूप आत्मा चिन्मय-चेतन होता है। मुनिगण इसे साक्षी, महान् तथा पितामह कहते हैं। इतनेसे यह स्पष्ट है कि महेश्वरकी शाश्वत शक्ति ही संहार करती है। श्रुतिका भी यही कथन है कि रुद्र प्रधान अर्थात् प्रकृतिसे विशेष अर्थात् स्थूल-भूतपर्यन्त सभी तत्त्वोंको दग्ध करते हैं। ज्ञानपरायण सभी योगियोंका आत्यन्तिक प्रलय भी शंकर ही करते हैं॥ २३—२५॥

इत्येष भगवान् रुद्रः संहारं कुरुते वशी।
स्थापिका मोहनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः॥ २६॥

हिरण्यगर्भो भगवान् जगत् सदसदात्मकम्।
सृजेदशेषं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः॥ २७॥

इस प्रकार सबको अपने वशमें रखनेवाले ये भगवान् रुद्र ही संहार करते हैं। श्रुतिके अनुसार (जगत्की) स्थापना करनेवाली (रुद्रकी) मोहनी शक्तिको ही नारायण कहते हैं। पचीसवें तत्त्व अर्थात् पुरुषस्वरूप भगवान् हिरण्यगर्भ प्रकृतिसे तन्मय (संयुक्त) होकर सम्पूर्ण सत्-असदात्मक जगत्की सृष्टि करते हैं॥ २६-२७॥

सर्वज्ञाः सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥ २८॥
सर्वेश्वराः सर्ववन्द्याः शाश्वतानन्तभोगिनः।
एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुंप्रधानेश्वरात्मकम्॥ २९॥

अपनी आत्मामें ही व्यवस्थित रहनेवाली (अर्थात् स्वयंमें ही अधिष्ठित वस्तुतः निरधिष्ठान) ब्रह्मा, विष्णु तथा ईश (महेश्वर) नामक सर्वज्ञ, सर्वव्यापी तथा शान्त तीन शक्तियाँ भोग तथा मोक्षरूप फलको देनेवाली हैं। ये शक्तियाँ सर्वेश्वरस्वरूप, सभीके द्वारा वन्दनीय, शाश्वत और अनन्त भोगोंसे सम्पन्न हैं। अद्वितीय अक्षर तत्त्व ही पुरुष, प्रधान और ईश्वररूप है॥ २८-२९॥

अन्याश्च शक्तयो दिव्याः सन्ति तत्र सहस्रशः।
इज्यन्ते विविधैर्यज्ञैः शक्रादित्यादयोऽमराः॥ ३०॥
एकैकस्य सहस्राणि देहानां वै शतानि च।
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा॥ ३१॥

उस परमात्मा (अव्यक्त अक्षर-तत्त्व)-में अन्य भी इन्द्र, सूर्य आदि हजारों दिव्य शक्तियाँ हैं। इनकी भी विविध यज्ञोंके द्वारा आराधना की जाती है। इन इन्द्र, सूर्य आदि एक-एक देवका भी ऐसा माहात्म्य है कि इनके सैकड़ों-हजारों अर्थात् अनन्त शरीर हैं और इन शरीरोंमें लोक-कल्याणके लिये अनन्त शक्तियाँ हैं, पर वस्तुतः इन सबका मूल एक ही निर्गुण शक्ति है—॥ ३०-३१॥

तां तां शक्तिं समाधाय स्वयं देवो महेश्वरः।
करोति देहान् विविधान् ग्रसते चैव लीलया॥ ३२॥

इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभिः।
सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः॥ ३३॥

सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
प्राधान्येन स्मृता देवाः शक्तयः परमात्मनः॥ ३४॥
आद्यः परस्ताद् भगवान् परमात्मा सनातनः।
गीयते सर्वशक्त्यात्मा शूलपाणिर्महेश्वरः॥ ३५॥

एनमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे।
इन्द्रमेके परे विश्वान् ब्रह्माणमपरे जगुः॥ ३६॥
ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिताः॥ ३७॥

यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्।
तत् तद् रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः॥ ३८॥

तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम्।
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम्॥ ३९॥

किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम्।
आराधयेद् वै गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम्॥ ४०॥
मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः।
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत् परमेश्वरम्॥ ४१॥

पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तवाससम्।
पद्मासनस्थं रुक्माभं चिन्तयेद् वैदिकी श्रुतिः॥ ४२॥

अव्यक्त अक्षर अद्वितीय तत्त्व। उन-उन शक्तियोंका आश्रयण कर महेश्वरदेव स्वयं लीलापूर्वक विविध देहोंकी सृष्टि करते हैं और उनका संहार भी करते हैं। वेदवादी (वेदज्ञ) ब्राह्मणोंके द्वारा समस्त यज्ञोंमें उन (महेश्वर)-का पूजन किया जाता है। ये ही रुद्र हैं तथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाले हैं—ऐसा वेदका कथन है। परमात्माकी सभी शक्तियोंमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर-देव प्रधान शक्तिके रूपमें माने गये हैं॥ ३२—३४॥

शूलपाणि[1] महेश्वर (कारणब्रह्म-तुरीय तत्त्व) तो आद्य, सबसे परे, भगवान्, परमात्मा, सनातन एवं सर्वशक्त्यात्मा (समस्त शक्तियोंके मूल उद्गम एवं अधिष्ठान)-के रूपमें वेदोंमें वर्णित हैं। इसलिये कुछ लोग इन्हें अग्नि तथा कुछ लोग नारायण कहते हैं। ऐसे ही कोई इन्हें इन्द्र, कोई विश्वेदेव तथा कोई ब्रह्मा कहते हैं॥ ३५-३६॥

ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वरुण तथा अन्य सभी देवता और महर्षिगण एक ही रुद्र (महेश्वर)-के विभिन्न स्वरूप कहे गये हैं। मनुष्य इन स्वरूपोंमेंसे जिस भेद (स्वरूप)-का अवलम्बन कर परमेश्वरकी आराधना करते हैं, शिव (महेश्वर) उसी स्वरूपको ग्रहणकर फल प्रदान करते हैं। अतः इनमेंसे किसी एक भी भेद (स्वरूप)-का अवलम्बन कर सनातन महादेवकी आराधना करनेवालेको उस परम (शिव) पदकी प्राप्ति होती है। निष्कर्ष यह है कि सर्वशक्तिसम्पन्न सनातन, देव, गिरिश महादेवकी सगुण अथवा निर्गुण किसी भी रूपमें आराधना अवश्य करनी चाहिये॥ ३७—४०॥

मैंने आप लोगोंको निर्गुण-योग (निर्बीज समाधि[2]) पहले ही बता दिया है। सगुणरूप (-की उपासना)-में आरूढ़ होनेकी इच्छा करनेवालेको भी परमेश्वरकी पूजा (आराधना) करनी चाहिये। वेदके कथनके अनुसार पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, तीन नेत्रवाले, जटाधारी, चर्माम्बरधारी, पद्मासनमें स्थित तथा स्वर्णिम आभावाले (शंकर)-का ध्यान करना चाहिये॥ ४१-४२॥

१-महेश्वर कार्यब्रह्म एवं कारणब्रह्म-रूपमें शास्त्रोंमें वर्णित हैं। अव्यक्ततत्त्वकी शक्तिरूपमें जिन महेश्वरकी चर्चा अभी ऊपर की गयी है, वे कार्यब्रह्म हैं। अव्यक्त अक्षर-तत्त्व कारणब्रह्म महेश्वरको समझना चाहिये। इन्हीं कारणब्रह्मको तुरीय (चतुर्थ) अद्वैत या तत्त्व कहा जाता है।

२-'निर्बीज समाधि' साधककी वह अवस्था है, जिसमें कोई भी संस्कार शेष नहीं रहता। इसीलिये इस अवस्थामें किसी भी प्रकारकी चित्तवृत्तिका अस्तित्व नहीं रहता। इसी कारण इस निर्बीज समाधिको कैवल्यावस्था कहते हैं।

एष योगः समुद्दिष्टः सबीजो मुनिसत्तमाः।
तस्मात् सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्।
आराधयेद् विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम्॥ ४३॥

भक्तियोगसमायुक्तः स्वधर्मनिरतः शुचिः।
तादृशं रूपमास्थाय समायात्यन्तिकं शिवम्॥ ४४॥

एष योगः समुद्दिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावने।
यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरं पदम्॥ ४५॥
अत्राप्यशक्तोऽथ हरं विष्णुं ब्रह्माणमर्चयेत्।
अथ चेदसमर्थः स्यात् तत्रापि मुनिपुंगवाः।
ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद् भक्तिसंयुतः॥ ४६॥

ये चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह।
अथापि कथितो योगो निर्बीजश्च सबीजकः॥ ४७॥

ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं पूर्वं हि भवतां मया।
विष्णुं रुद्रं विरिञ्चिं च सबीजं भावयेद् बुधः।
अथवाग्न्यादिकान् देवांस्तत्परः संयतेन्द्रियः॥ ४८॥

पूजयेत् पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्तिधरं हरिम्।
अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम्॥ ४९॥

नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमं पदम्।
तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तस्तदपाश्रयः।
एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चान्तिके मतः॥ ५०॥

मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार इस सबीज[१] योगका वर्णन किया गया। (इस संक्षिप्त वर्णनसे यह स्पष्ट है कि महेश्वरतत्त्व ही सर्वस्व, परम ध्येय है) इसलिये ब्रह्मा आदि प्रधान सभी देवोंको छोड़कर आदि, मध्य तथा अन्तमें रहनेवाले (शाश्वत तत्त्व) विरूपाक्ष (शंकर)-की आराधना करनी चाहिये। अपने धर्ममें निरत रहनेवाला, पवित्र तथा भक्तियोग-परायण व्यक्ति वैसा ही (शंकरके समान) रूप धारणकर शिवके समीप आता है। अत्यन्त भावना—ध्येयाकार चित्तवृत्तिवाले इस सबीज योगका वर्णन किया गया। इसका यथाविधि अनुष्ठान करता हुआ व्यक्ति ऐश्वर (ईश्वर)-पदको प्राप्त करता है॥ ४३—४५॥

मुनिश्रेष्ठो! यदि मनुष्य इसमें भी असमर्थ हो तो उसे हर, विष्णु एवं ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये और उसमें भी असमर्थ होनेपर भक्तियुक्त होकर (कार्यब्रह्मकी शक्ति) वायु, अग्नि तथा इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वमें आप लोगोंको जो दो शुद्ध भावनाएँ बतायी गयी हैं (वे भी कल्याणकर हैं)। साथ ही निर्बीज तथा सबीज योगका भी वर्णन किया गया है (ये भी परम उपादेय हैं)। मैंने पूर्वमें भी यह निर्बीज ज्ञान (योग) आप लोगोंको बताया था। बुद्धिमान् व्यक्तिको सर्वप्रथम सबीज (साकाररूपमें) ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रकी भावना करनी चाहिये अथवा प्रारम्भमें जितेन्द्रिय होकर अग्नि आदि देवताओंकी तत्परतापूर्वक (इन देवताओंको ही परम ध्येय मानकर) आराधना करनी चाहिये। विष्णुके भक्त एवं विष्णुपरायण पुरुषको वैष्णव चिह्न (शंख-चक्रादि) धारणकर नियमपूर्वक (नारायण, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप) चार मूर्ति धारण करनेवाले, अनादिनिधन, जगद्योनि, आकाशरूप, परमपदरूप सनातन देव वासुदेव पुरुष विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मी भावना (विष्णुको ही ब्रह्म माननेकी भावना)-में भी यही विधि श्रीविष्णुका सामीप्य प्राप्त करनेके लिये मान्य है॥ ४६—५०॥

१-'सबीज योग' का अर्थ है—सबीज समाधि। वह समाधि सबीज है, जिसमें बीज रहता है। बीजका अर्थ है—ध्येयाकार चित्तवृत्ति। इसका आशय यह है कि स्वयंसे पृथक् ध्येय तत्त्वको समझकर उसका अनुसंधान यदि साधक कर रहा है तो ध्येयाकार चित्तवृत्तिका अस्तित्व रहनेसे साधककी यह समाधि-अवस्था सबीज ही है। (इसे कैवल्यावस्था नहीं कह सकते, क्योंकि चित्तवृत्तिका पृथक् अस्तित्व रहनेसे साधकमें कैवल्य भाव नहीं है)।

इत्येतत् कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयं परम्।
इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मया पुरा॥ ५१॥

अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत्।
तदीश्वरः परं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्॥ ५२॥

इस प्रकार यह पवित्र भावनापर आश्रित परम ज्ञान बतलाया गया। प्राचीन कालमें मैंने इस ज्ञानको इन्द्रद्युम्न मुनिसे कहा था। यह चेतनात्मक एवं अचेतनात्मक जगत् अव्यक्त (अक्षर अद्वितीय तत्त्व महेश्वर)-स्वरूप ही है। वह ईश्वर (महेश्वर) ही परम ब्रह्म है, इसलिये यह जगत् ब्रह्ममय है॥ ५१-५२॥

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् विरराम जनार्दनः।
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुं शक्रेण सह माधवम्॥ ५३॥

सूतजीने कहा—इतना कहकर भगवान् जनार्दन (कूर्म) चुप हो गये। तब इन्द्रके साथ मुनिगण माधव विष्णु (कूर्म)-की स्तुति करने लगे—॥ ५३॥

मुनय ऊचुः

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने।
नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः॥ ५४॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।
माधवाय नमस्तुभ्यं नमो यज्ञेश्वराय च॥ ५५॥

मुनियोंने कहा—कूर्मरूपधारी परमात्मा विष्णुको नमस्कार है। विश्वरूप नारायण वासुदेव! आपको नमस्कार है। कृष्णको बार-बार नमस्कार है। गोविन्दको बारम्बार नमस्कार है। माधव! आपको नमस्कार है। यज्ञेश्वरको नमस्कार है॥ ५४-५५॥

सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः।
नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च॥ ५६॥

ॐ नमो ज्ञानरूपाय परमात्मस्वरूपिणे।
आनन्दाय नमस्तुभ्यं मायातीताय ते नमः॥ ५७॥

नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते।
पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे॥ ५८॥

नमः सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते।
धर्मज्ञानाधिगम्याय निष्कलाय नमो नमः॥ ५९॥

नमोऽस्तु व्योमतत्त्वाय महायोगेश्वराय च।
परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नमः॥ ६०॥

हजारों सिरवाले तथा हजारों नेत्रवाले आपको नमस्कार है। हजारों हाथ तथा हजारों चरणवाले आपको नमस्कार है। प्रणवस्वरूप-ज्ञानरूप परमात्माको नमस्कार है। आनन्दरूप आपको नमस्कार है। आप मायातीतको नमस्कार है। गूढ (रहस्यमय) शरीरवाले आपको नमस्कार है। आप निर्गुणको नमस्कार है। पुराणपुरुष तथा सत्तामात्र स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। सांख्य तथा योगरूप आपको नमस्कार है। अद्वितीय (तत्त्वरूप) आपको नमस्कार है। धर्म तथा ज्ञानद्वारा प्राप्त होनेवाले आपको तथा निष्कल आपको बार-बार नमस्कार है। व्योमतत्त्वरूप महायोगेश्वरको नमस्कार है। पर तथा अवर पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले वेदद्वारा वेद्य आपको नमस्कार है॥ ५६—६०॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे।
नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः॥ ६१॥

शुद्ध (निराकारस्वरूप) आपको नमस्कार है, बुद्ध (ज्ञानस्वरूप) आपको नमस्कार है। योगयुक्त तथा हेतु (अनन्त प्रपञ्चके मूल कारण)-रूपको नमस्कार है। आपको बार-बार नमस्कार है। मायावी (मायाके नियन्त्रक) वेधा (विश्व-प्रपञ्चके स्रष्टा)-को नमस्कार है॥ ६१॥

नमोऽस्तु ते वराहाय नारसिंहाय ते नमः।
वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः॥ ६२॥

नमोऽस्तु कालरुद्राय कालरूपाय ते नमः।
स्वर्गापवर्गदात्रे च नमोऽप्रतिहतात्मने॥ ६३॥

वराहरूप आपको नमस्कार है। आप नरसिंह-रूपधारीको नमस्कार है। वामनरूप आपको नमस्कार है। आप हृषीकेश (इन्द्रियके ईश)-को नमस्कार है। कालरुद्रको नमस्कार है। कालरूप आपको नमस्कार है। स्वर्ग तथा अपवर्ग प्रदान करनेवाले और अप्रतिहत आत्मा (शाश्वत अद्वितीय)-को नमस्कार है॥ ६२-६३॥

नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने।
देवानां पतये तुभ्यं देवार्तिशमनाय ते॥ ६४॥

योगाधिगम्य, योगी और योगदाताको नमस्कार है। देवताओंके स्वामी तथा देवताओंके कष्टका शमन करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ६४॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम्।
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते॥ ६५॥

श्रुतास्तु विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तरः॥ ६६॥

त्वं हि सर्वजगत्साक्षी विश्वो नारायणः परः।
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मंस्त्वमेव शरणं गतिः॥ ६७॥

भगवन्! आपकी कृपासे समस्त संसार (भवबन्धन)-का नाश हो जाता है। हमें आपसे वह ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिसे जानकर अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। हम लोगोंने विविध धर्म, वंश, मन्वन्तर, सर्ग, प्रतिसर्ग तथा इस ब्रह्माण्डके विस्तारके विषयमें आपसे सुना। आप ही सम्पूर्ण जगत्के साक्षी, विश्वरूप और परम नारायण हैं। अनन्तात्मन्! आप ही हम लोगोंकी शरण और गति हैं। आप हमारी रक्षा करें॥ ६५—६७॥

सूत उवाच

एतद् वः कथितं विप्रा योगमोक्षप्रदायकम्।
कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥ ६८॥

अस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु सम्भवः कथितः पुरा।
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजनम्॥ ६९॥

प्रजापतीनां सर्गस्तु वर्णधर्माश्च वृत्तयः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम्॥ ७०॥

पितामहस्य विष्णोश्च महेशस्य च धीमतः।
एकत्वं च पृथक्त्वं च विशेषश्चोपवर्णितः॥ ७१॥

भक्तानां लक्षणं प्रोक्तं समाचारश्च शोभनः।
वर्णाश्रमाणां कथितं यथावदिह लक्षणम्॥ ७२॥

सूतजीने कहा—विप्रो! योग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले उस सम्पूर्ण कूर्मपुराणको मैंने आप लोगोंको बतलाया, जिसे गदाधर (कूर्मभगवान्)-ने कहा था। पहले इस पुराणमें सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करनेके लिये लक्ष्मीकी उत्पत्ति तथा वासुदेवके साथ उनके संयोगका वर्णन किया गया है। तदनन्तर प्रजापतियोंकी सृष्टि, वर्णोंके धर्मों और उनकी वृत्तियोंका वर्णन तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके शुभ लक्षणोंका यथावत् वर्णन किया गया है। इसमें पितामह (ब्रह्मा), विष्णु तथा धीमान् महेश्वरके एकत्व, पृथकत्व और वैशिष्ट्यका वर्णन हुआ है। भक्तोंके लक्षण तथा सुन्दर सदाचारको कहा गया है। साथ ही वर्णों तथा आश्रमोंके लक्षणोंको शास्त्रानुसार बतलाया गया है॥ ६८—७२॥

आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डावरणसप्तकम्।
हिरण्यगर्भसर्गश्च कीर्तितो मुनिपुंगवाः॥ ७३॥

कालसंख्याप्रकथनं माहात्म्यं चेश्वरस्य च।
ब्रह्मणः शयनं चाप्सु नामनिर्वचनं तथा॥ ७४॥

वराहवपुषा भूयो भूमेरुद्धरणं पुनः।
मुख्यादिसर्गकथनं मुनिसर्गस्तथापरः॥ ७५॥

व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः।
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात् पूर्वमेव तु॥ ७६॥

तदनन्तर आदिसर्ग पुनः सात आवरणयुक्त ब्रह्माण्डका वर्णन हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! फिर हिरण्यगर्भसर्ग कहा गया है। काल-गणनाका विवरण, ईश्वरका माहात्म्य, ब्रह्माका जलमें शयन तथा भगवान्के नामोंकी निरुक्तिका वर्णन हुआ है। (विष्णुद्वारा) वराह-शरीर धारणकर भूमि (पृथ्वी)-के उद्धार करनेका भी इसमें वर्णन हुआ है। तदनन्तर पहले मुख्यसर्ग आदि और पुनः मुनिसर्ग बताया गया है। (इस पुराणमें) रुद्रसर्ग, ऋषिसर्ग, तापससर्ग और तामससर्गसे पहले धर्मका प्रजासर्ग बताया गया है॥ ७३—७६॥

ब्रह्मविष्णुविवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम्।
पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्य च धीमतः॥ ७७॥

ब्रह्मा एवं विष्णुके विवाद और (परस्पर) एक-दूसरेके देहके अन्तर्गत प्रविष्ट होने, ब्रह्माके कमलसे उत्पन्न होने और धीमान् देव (ब्रह्मा)-के मोहका (इस पुराणमें) वर्णन हुआ है॥ ७७॥

दर्शनं च महेशस्य माहात्म्यं विष्णुनेरितम्।
दिव्यदृष्टिप्रदानं च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ७८॥

तत्पश्चात् (ब्रह्माद्वारा) महेशका दर्शन करने, विष्णु-द्वारा कहे गये उनके माहात्म्य और परमेष्ठी ब्रह्माको दिव्य

संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च॥ ७९॥

संवादो विष्णुना सार्धं शंकरस्य महात्मनः।
वरदानं तथापूर्वमन्तर्धानं पिनाकिनः॥ ८०॥

परमेष्ठी ब्रह्माद्वारा देवाधिदेव (महेश्वर)-की स्तुति, (प्रसन्न होकर) गिरिशद्वारा अनुग्रह तथा वर प्रदान करनेका भी वर्णन हुआ है। विष्णुके साथ महात्मा शंकरके संवाद, पिनाकीद्वारा वर प्रदान करने और उनके अन्तर्धान होनेका वर्णन हुआ है॥ ७८—८०॥

वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयोः पुरा।
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात्॥ ८१॥

एकीभावश्च देवस्य विष्णुना कथितस्ततः।
विमोहो ब्रह्मणश्चाथ संज्ञालाभो हरेस्ततः॥ ८२॥

विप्रो! इसमें प्राचीन कालमें हुए मधुकैटभके वधका तथा देव (विष्णु)-के नाभिकमलसे ब्रह्माके अवतारका वर्णन हुआ है। तदनन्तर विष्णुसे देव ब्रह्माके एकीभावको कहा गया है और ब्रह्माका मोहित होना तदनन्तर हरिसे चेतनाप्राप्तिको बताया गया है॥ ८१-८२॥

तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः।
प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात् कथितस्ततः॥ ८३॥

रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम्।
भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ॥ ८४॥

अन्तर्धानं च रुद्रस्य तपश्चर्याण्डजस्य च।
दर्शनं देवदेवस्य नरनारीशरीरता॥ ८५॥

तदुपरान्त धीमान् देवाधिदेवकी तपश्चर्याका वर्णन है और फिर उनके (ब्रह्माके) मस्तकसे महेश्वरके प्रादुर्भावका वर्णन किया गया है। रुद्रोंकी सृष्टि करनेपर ब्रह्माके द्वारा उसके प्रतिषेधका वर्णन हुआ है। देवाधिदेव (शंकर)-के ऐश्वर्य एवं ब्रह्माको वरदान और उपदेश देनेका वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् रुद्रके अन्तर्धान होने, ब्रह्माकी तपश्चर्या, देवाधिदेवके दर्शन और उनके नर-नारी-शरीर धारण करनेका वर्णन किया गया है॥ ८३—८५॥

देव्या विभागकथनं देवदेवात् पिनाकिनः।
देव्यास्तु पश्चात् कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च॥ ८६॥

हिमवद्दुहितृत्वं च देव्या माहात्म्यमेव च।
दर्शनं दिव्यरूपस्य वैश्वरूपस्य दर्शनम्॥ ८७॥

नाम्नां सहस्रं कथितं पित्रा हिमवता स्वयम्।
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च॥ ८८॥

देवाधिदेव पिनाकीसे देवी (सती)-के अलगावका कथन हुआ है और फिर देवीका दक्षपुत्रीके रूपमें जन्म लेनेका वर्णन हुआ है। देवीकी हिमवान्‌की पुत्री होना और उनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है तथा (उनके) दिव्यरूपके दर्शन और विश्वरूपके दर्शनका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त स्वयं पिता हिमालयद्वारा कहे गये (देवीके) सहस्रनाम, महादेवीके द्वारा प्रदत्त उपदेश और वरदानका भी वर्णन हुआ है॥ ८६—८८॥

भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः।
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्दनम्॥ ८९॥

दधीचस्य च दक्षस्य विवादः कथितस्तदा।
ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुंगवाः॥ ९०॥

भृगु आदि ऋषियोंका प्रजासर्ग, राजाओंके वंशका विस्तार, दक्षके प्रचेताके पुत्र होने और दक्षयज्ञ-विध्वंसका वर्णन हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर दधीच और दक्षके विवादको बतलाया गया है, फिर मुनियोंके शापका वर्णन हुआ है॥ ८९-९०॥

रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्धानं पिनाकिनः।
पितामहस्योपदेशः कीर्त्यते रक्षणाय तु॥ ९१॥

तदुपरान्त रुद्रके आगमन एवं अनुग्रह और उन पिनाकी रुद्रके अन्तर्धान होने तथा (दक्षकी) रक्षाके लिये पितामहद्वारा उपदेश करनेका वर्णन हुआ है॥ ९१॥

दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्मनः।
हिरण्यकशिपोर्नाशो हिरण्याक्षवधस्तथा॥ ९२॥

ततश्च शापः कथितो देवदारुवनौकसाम्।
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम्॥ ९३॥

तदुपरान्त दक्षके तथा महात्मा कश्यपसे होनेवाली प्रजासृष्टिका वर्णन है। हिरण्यकशिपुके नष्ट होने तथा हिरण्याक्षके वधका वर्णन हुआ है। इसके बाद देवदारुवनमें निवास करनेवाले मुनियोंकी शापप्राप्तिका कथन है, अन्धकके निग्रह और उसको श्रेष्ठ गाणपत्यपद प्रदान करनेका वर्णन हुआ है॥ ९२-९३॥

प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बलेः संयमनं ततः।
बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः॥ ९४॥

ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्तिताः।
वसुदेवात् ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः॥ ९५॥

तदनन्तर प्रह्लादके निग्रह, बलिके बाँधे जाने, त्रिशूली (शंकर)-द्वारा बाणासुरके निग्रह और फिर उसपर कृपा करनेका वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् ऋषियोंके वंशका विस्तार तथा राजाओंके वंशका वर्णन हुआ है और फिर स्वेच्छासे वसुदेवके पुत्रके रूपमें हरिविष्णुकी उत्पत्तिका वर्णन है॥ ९४-९५॥

दर्शनं चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च।
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम्॥ ९६॥

कैलासगमनं चाथ निवासस्तत्र शार्ङ्गिणः।
ततश्च कथ्यते भीतिर्द्वारवत्या निवासिनाम्॥ ९७॥

रक्षणं गरुडेनाथ जित्वा शत्रून् महाबलान्।
नारदागमनं चैव यात्रा चैव गरुत्मतः॥ ९८॥

उपमन्युका दर्शन करने और तपश्चर्या करनेका वर्णन है। तत्पश्चात् अम्बासहित त्रिलोचन महादेवका दर्शनकर वर प्राप्त करनेका वर्णन हुआ है। तदनन्तर शार्ङ्गी (कृष्ण)-का कैलासपर जाने और वहाँ निवास करनेका वर्णन है फिर द्वारवती-निवासियोंके भयभीत होनेका वर्णन है। इसके बाद महाबलशाली शत्रुओंको जीतकर गरुडके द्वारा (द्वारकावासियोंकी) रक्षा करने, नारद-आगमन और गरुडकी यात्राका वर्णन हुआ है॥ ९६—९८॥

ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामागतिस्ततः।
नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा॥ ९९॥

मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम्।
लिङ्गार्चननिमित्तं च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः॥ १००॥

तदनन्तर कृष्णके आगमन, मुनियोंके आने और वासुदेव (विष्णु)-द्वारा नित्य किये जानेवाले शिव-लिङ्गार्चनका वर्णन है। तदुपरान्त मुनि मार्कण्डेयजीद्वारा (लिङ्गके विषयमें) प्रश्न करने तथा (वासुदेवद्वारा) लिङ्गार्चनके प्रयोजन और लिङ्गी (शंकर)-के लिङ्गके स्वरूपका निरूपण हुआ है॥ ९९-१००॥

याथात्म्यकथनं चाथ लिङ्गाविर्भाव एव च।
ब्रह्मविष्ण्वोस्तथा मध्ये कीर्तितो मुनिपुंगवाः॥ १०१॥

मोहस्तयोस्तु कथितो गमनं चोर्ध्वतोऽप्यधः।
संस्तवो देवदेवस्य प्रसादः परमेष्ठिनः॥ १०२॥

मुनिश्रेष्ठो! फिर ब्रह्मा तथा विष्णुके मध्य ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भाव तथा उसके वास्तविक स्वरूपका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त उन दोनोंके मोहित होने तथा (लिङ्गका परिमाण जाननेके लिये) ऊर्ध्वलोक एवं अधोलोकमें जाने, पुनः परमेष्ठी देवाधिदेव (महादेव)-की स्तुति करने और उनके द्वारा अनुग्रह प्रदान करनेका वर्णन हुआ है॥ १०१-१०२॥

अन्तर्धानं च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततः परम्।
कीर्तिता चानिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः॥ १०३॥

कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणामागतिस्तथा।
अनुशासितं च कृष्णेन वरदानं महात्मनः॥ १०४॥

द्विजोत्तमो! तदनन्तर लिङ्गके अन्तर्धान होने और फिर साम्ब तथा अनिरुद्धकी उत्पत्तिका वर्णन हुआ है। तदुपरान्त महात्मा कृष्णका (अपने लोक) जानेका निश्चय, ऋषियोंका (द्वारकामें) आगमन, कृष्णद्वारा उन्हें उपदेश तथा वरदान देनेका वर्णन किया गया है॥ १०३-१०४॥

गमनं चैव कृष्णस्य पार्थस्यापि च दर्शनम्।
कृष्णद्वैपायनस्योक्ता युगधर्माः सनातनाः॥ १०५॥
अनुग्रहोऽथ पार्थस्य वाराणसीगतिस्ततः।
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः॥ १०६॥

इसके अनन्तर कृष्णका (स्वधाम) गमन, अर्जुनद्वारा कृष्णद्वैपायनका दर्शन एवं उनके द्वारा कहे गये सनातन युगधर्मोंका वर्णन हुआ है। आगे अर्जुनके ऊपर (व्यासद्वारा) अनुग्रह और पराशरपुत्र अद्भुतकर्मा व्यास मुनिका वाराणसीमें जानेका वर्णन है॥ १०५-१०६॥

वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानां चैव वर्णनम्।
तीर्थयात्रा च व्यासस्य देव्याश्चैवाथ दर्शनम्।
उद्वासनं च कथितं वरदानं तथैव च॥ १०७॥

तदुपरान्त वाराणसीका माहात्म्य, तीर्थोंका वर्णन, व्यासकी तीर्थयात्रा और देवीके दर्शन करनेका वर्णन है। साथ

प्रयागस्य च माहात्म्यं क्षेत्राणामथ कीर्तनम्।
फलं च विपुलं विप्रा मार्कण्डेयस्य निर्गमः॥ १०८॥

भुवनानां स्वरूपं च ज्योतिषां च निवेशनम्।
कीर्त्यन्ते चैव वर्षाणि नदीनां चैव निर्णयः॥ १०९॥
पर्वतानां च कथनं स्थानानि च दिवौकसाम्।
द्वीपानां प्रविभागश्च श्वेतद्वीपोपवर्णनम्॥ ११०॥
शयनं केशवस्याथ माहात्म्यं च महात्मनः।
मन्वन्तराणां कथनं विष्णोर्माहात्म्यमेव च॥ १११॥

वेदशाखाप्रणयनं व्यासानां कथनं ततः।
अवेदस्य च वेदानां कथनं मुनिपुंगवाः॥ ११२॥

योगेश्वराणां च कथा शिष्याणां चाथ कीर्तनम्।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्तिताः॥ ११३॥
वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः।
कपालित्वं च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च॥ ११४॥

पतिव्रतायाश्चाख्यानं तीर्थानां च विनिर्णयः।
तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्त्यते द्विजाः॥ ११५॥
वधश्च कथितो विप्राः कालस्य च समासतः।
देवदारुवने शम्भोः प्रवेशो माधवस्य च॥ ११६॥

दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः।
वरदानं च देवस्य नन्दिने तु प्रकीर्तितम्॥ ११७॥

नैमित्तिकस्तु कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम्।
प्राकृतः प्रलयश्चोर्ध्वं सबीजो योग एव च॥ ११८॥

एवं ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्तयेत् तु यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ११९॥
एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः।
संत्यज्य कूर्मसंस्थानं स्वस्थानं च जगाम ह॥ १२०॥
देवाश्च सर्वे मुनयः स्वानि स्थानानि भेजिरे।
प्रणम्य पुरुषं विष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतं द्विजाः॥ १२१॥

एतत् पुराणं परमं भाषितं कूर्मरूपिणा।
साक्षाद् देवादिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना॥ १२२॥

ही (देवीद्वारा वाराणसीसे व्यासके) निष्कासन और वरदान देनेका वर्णन हुआ है। ब्राह्मणो! तदनन्तर प्रयागका माहात्म्य, (पुण्य) क्षेत्रोंका वर्णन, (तीर्थोंका) महान् फल और मार्कण्डेय मुनिके निगमनका वर्णन है॥ १०७-१०८॥

(इसके पश्चात्) भुवनोंके स्वरूप, ग्रहों तथा नक्षत्रोंकी स्थिति और वर्षों तथा नदियोंके निर्णयका वर्णन किया गया है। पर्वतों तथा देवताओंके स्थानों, द्वीपोंके विभाग तथा श्वेतद्वीपका वर्णन किया गया है॥ १०९-११०॥

महात्मा केशवके शयन, उनके माहात्म्य, मन्वन्तरों और विष्णुके माहात्म्यका निरूपण हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर वेदकी शाखाओंका प्रणयन, व्यासोंका नाम-परिगणन और अवेद (वेदबाह्य सिद्धान्तों) तथा वेदोंका कथन किया गया है। (इसके अनन्तर) योगेश्वरोंकी कथा, (उनके) शिष्योंका वर्णन और ईश्वर-सम्बन्धी अनेक गुह्य गीताओंका उल्लेख हुआ है॥ १११—११३॥

तदनन्तर वर्णों और आश्रमोंके सदाचार, प्रायश्चित्तविधि, रुद्रके कपाली होने और (उनके) भिक्षा माँगनेका वर्णन हुआ है। द्विजो! इसके बाद पतिव्रताके आख्यान, तीर्थोंके निर्णय और मङ्कणक मुनिके निग्रह करनेका उल्लेख हुआ है॥ ११४-११५॥

ब्राह्मणो! (तदनन्तर) संक्षेपमें कालके वध और शंकर तथा विष्णुके देवदारुवनमें प्रवेश करनेका उल्लेख है। छः कुलोंमें उत्पन्न ऋषियोंद्वारा धीमान् देवाधिदेवके दर्शन करने और महादेवद्वारा नन्दीको वरदान देनेका वर्णन हुआ है। इसके बाद नैमित्तिक प्रलय कहा गया है और फिर आगे प्राकृत प्रलय एवं सबीज योग बतलाया गया है॥ ११६—११८॥

इस प्रकार संक्षेपमें (इस कूर्म) पुराणको जानकर जो उसका उपदेश करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ११९॥

इतना कहकर कूर्मरूपका परित्यागकर देवी लक्ष्मीके साथ पुरुषोत्तम (विष्णु) अपने धामको चले गये। द्विजो! सभी देवता तथा मुनिगण भी परम पुरुष विष्णुके (उपदेशरूपी) अमृतको प्राप्तकर तथा उन्हें प्रणामकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। यह श्रेष्ठ (कूर्म-) पुराण कूर्मरूपधारी विश्वयोनि साक्षात् देवोंके आदिदेव विष्णुद्वारा कहा गया है॥ १२०—१२२॥

यः पठेत् सततं मर्त्यो नियमेन समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ १२३॥

लिखित्वा चैव यो दद्याद् वैशाखे मासि सुव्रतः।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत॥ १२४॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः।
भुक्त्वा च विपुलान् स्वर्गे भोगान् दिव्यान् सुशोभनान्॥ १२५॥

ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥ १२६॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे नियमपूर्वक इस पुराणको पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो पुरुष शास्त्रानुसार व्रतनिष्ठ होते हुए इस पुराणको लिखकर वैशाखमासमें वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करता है, उसका पुण्य सुनो—वह सभी पापोंसे रहित और सभी ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होते हुए (मृत्युके बाद) स्वर्गमें प्रचुर मात्रामें दिव्य तथा सुन्दर भोगोंका उपभोग करता है, तत्पश्चात् स्वर्गसे इस लोकमें आकर ब्राह्मणोंके वंशमें उत्पन्न होता है और पूर्व-संस्कारोंकी महिमाके कारण ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेता है॥ १२३—१२६॥

पठित्वाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
योऽर्थं विचारयेत् सम्यक् स प्राप्नोति परं पदम्॥ १२७॥

अध्येतव्यमिदं नित्यं विप्रैः पर्वणि पर्वणि।
श्रोतव्यं च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्॥ १२८॥

एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नशः।
एकत्र चेदं परममेतदेवातिरिच्यते॥ १२९॥

धर्मनैपुण्यकामानां ज्ञाननैपुण्यकामिनाम्।
इदं पुराणं मुक्त्वैकं नास्त्यन्यत् साधनं परम्॥ १३०॥

इस (पुराण)-के एक ही अध्यायके पाठ करनेसे सभी पापोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है और जो इसके अर्थपर ठीक-ठीक विचार करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। श्रेष्ठ द्विजो! ब्राह्मणोंको प्रत्येक पर्वपर महापातकोंका नाश करनेवाले इस पुराणका नित्य अध्ययन एवं श्रवण करना चाहिये। एक ओर सभी इतिहास-पुराणोंको (शास्त्रीय विचारणाकी कसौटीपर) रखा जाय और दूसरी ओर अकेले इस श्रेष्ठ कूर्मपुराणको रखा जाय तो यही अपेक्षाकृत अतिशय विशिष्ट सिद्ध होगा। जो व्यक्ति धर्ममें निपुणता प्राप्त करना चाहते हों, और जो ज्ञानमें निपुणता प्राप्त करनेके अभिलाषी हों उनके लिये एकमात्र इस पुराणको छोड़कर और कोई दूसरा श्रेष्ठ उपाय नहीं है॥ १२७—१३०॥

यथावदत्र भगवान् देवो नारायणो हरिः।
कथ्यते हि यथा विष्णुर्न तथान्येषु सुव्रताः॥ १३१॥
ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशिनी।
अत्र तत् परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः॥ १३२॥
तीर्थानां परमं तीर्थं तपसां च परं तपः।
ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम्॥ १३३॥

सुव्रतो! इस पुराणमें जिस प्रकारसे भगवान् हरि नारायण देव विष्णुका कीर्तन हुआ है, वैसा अन्यत्र नहीं है। यह पौराणिकी ब्राह्मीसंहिता पापोंका नाश करनेवाली है। इसमें परम ब्रह्मका यथार्थरूपमें कीर्तन किया गया है। यह तीर्थोंमें परम तीर्थ, तपोंमें परम तप, ज्ञानोंमें परम ज्ञान और व्रतोंमें परम व्रत है॥ १३१—१३३॥

नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च संनिधौ।
योऽधीते स तु मोहात्मा स याति नरकान् बहून्॥ १३४॥

इस शास्त्रका अध्ययन वृषल (अधार्मिक व्यक्ति)-के समीप नहीं करना चाहिये। जो अध्ययन करता है, वह अज्ञानी है, वह बहुतसे नरकोंको प्राप्त करता है॥ १३४॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयं द्विजातिभिः।
यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम्॥ १३५॥

द्विजातियोंके श्राद्ध अथवा देवकार्यमें इस ब्राह्मीसंहिता (कूर्मपुराण)-को सुनाना चाहिये। यज्ञकी पूर्णतापर विशेषरूपसे (इसका पाठ करनेसे एवं) श्रवण करनेसे सभी दोषोंसे शुद्धि हो जाती है॥ १३५॥

मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः।
श्रोतव्यं चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम्॥ १३६॥

मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालोंको विशेषरूपसे वेदके अर्थका विस्तार करनेवाले इस शास्त्रका श्रवण, अध्ययन तथा मनन करना चाहिये।

ज्ञात्वा यथावद् विप्रेन्द्रान् श्रावयेद् भक्तिसंयुतान्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥ १३७॥
योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा।
स प्रेत्य गत्वा निरयान् शुनां योनिं व्रजत्यधः॥ १३८॥

नमस्कृत्वा हरिं विष्णुं जगद्योनिं सनातनम्।
अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा॥ १३९॥

इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः।
पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मनः॥ १४०॥
श्रुत्वा नारायणाद् दिव्यां नारदो भगवानृषिः।
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः॥ १४१॥
पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः।
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्॥ १४२॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते।
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्॥ १४३॥
सनकाद् भगवान् साक्षाद् देवलो योगवित्तमः।
अवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम्॥ १४४॥
सनत्कुमाराद् भगवान् मुनिः सत्यवतीसुतः।
लेभे पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंचयम्॥ १४५॥

तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्।
ऊचिवान् वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने॥ १४६॥
तस्मै व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये।
पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने॥ १४७॥

यस्मात् संजायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते।
नमस्तस्मै सुरेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥ १४८॥

इसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्तकर भक्तियुक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको इसे (सबको) सुनाना चाहिये। इससे वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है। जो (व्यक्ति) श्रद्धारहित तथा अधार्मिक पुरुषको इसका उपदेश देता है, वह परलोकमें जाकर नरकोंका भोग भोगकर पुनः मृत्युलोकमें कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है। 'संसारके मूल कारण सनातन हरि विष्णु तथा कृष्णद्वैपायन व्यासजीको नमस्कार करके इस शास्त्र (पुराण)-का अध्ययन करना चाहिये'—अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु और पराशरके पुत्र महात्मा विप्रर्षि व्यासकी ऐसी आज्ञा है॥ १३६—१४०॥

नारायणसे इस दिव्य संहिताको सुनकर भगवान् नारद ऋषिने पूर्वकालमें गौतमको इसका उपदेश दिया था और उनसे पराशरको यह (शास्त्र) प्राप्त हुआ। मुनीश्वरो! भगवान् पराशरने भी गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप चतुर्विध पुरुषार्थको देनेवाले इस पुराणको मुनियोंसे कहा। पूर्वकालमें धीमान् सनक और सनत्कुमारको सभी पापोंका नाश करनेवाले इस शास्त्रका उपदेश ब्रह्माने दिया था। सनकसे योगज्ञानियोंमें श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् देवलने और देवलसे पञ्चशिखने इस उत्तम शास्त्रको प्राप्त किया। सत्यवतीके पुत्र भगवान् व्यास मुनिने सभी अर्थोंका संचय करनेवाले इस श्रेष्ठ पुराणको सनत्कुमारसे प्राप्त किया। १४१—१४५॥

उन व्याससे सुनकर मैंने आप लोगोंसे पापोंका नाश करनेवाले इस पुराणको कहा है। आप लोगोंको भी धार्मिक व्यक्तिको (इसका उपदेश) प्रदान करना चाहिये॥ १४६॥

पराशरके पुत्र सर्वज्ञ, गुरु, शान्त तथा नारायणस्वरूप महर्षि व्यासको नमस्कार है। जिनसे सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति होती है और जिनमें यह सब लीन हो जाता है, उन देवताओंके स्वामी कूर्मरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको नमस्कार है॥ १४७-१४८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

(उपरिविभागः समाप्तः)

॥ इति श्रीकूर्मपुराणं समाप्तम्॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ४४॥

(उपरिविभाग समाप्त)

॥ श्रीकूर्मपुराण समाप्त॥